



Centre for Distance & Online Education

Faculty of Arts

काव्य- I

काव्य- I



1MASANS4



Dr. C.V. Raman University
Kargi Road, Kota, BILASPUR, (C. G.),
Ph. : +07753-253801, +07753-253872
E-mail : info@cvru.ac.in | Website : www.cvru.ac.in



DR. C.V. RAMAN UNIVERSITY

Chhattisgarh, Bilaspur A STATUTORY UNIVERSITY UNDER SECTION 2(F) OF THE UGC ACT

1MASANS4

काव्य - I

1MASANS4

काव्य - I

Credit- 4

Subject Expert Team

Dr. V.P.Mishra, Dr. C.V. Raman
University, Kota, Bilaspur,
Chhattisgarh

Dr. Renu Shukla, Dr. C.V. Raman
University, Kota, Bilaspur,
Chhattisgarh

Shri Prakash Tiwari, Dr. C.V. Raman
University, Kota, Bilaspur,
Chhattisgarh

Dr. Krishna Kumar Bhaskar, Dr. C.V.
Raman University, Kota, Bilaspur,
Chhattisgarh

Dr. Vinod Pandey, Asso. Prof.& Head,
Sanskrit Dept. D.A.V. Mahavidyalaya
Civil Line kanpur (U.P.)

Dr. Raghvendra Sharma, Asso. Prof. &
Head Dept. of Veda, Govt. Dudhadhari
Sanskrit P.G. Collage, Raipur (C.G.)

Course Editor:

Dr. Rajesh Musalgavkar, Associate, Professor, Vikram Vishwavidyalaya Ujjain (M.P.)

Unit Written By:

1. Dr. Renu Shukla

Assistant Professor, Dr. C. V. Raman University, Bilaspur (C.G.)

Warning: All rights reserved, No part of this publication may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the publisher. Published by: Dr. C.V. Raman University Kargi Road, Kota, Bilaspur, (C. G.)

Edition : March 2024

Published by: Dr. C.V. Raman University Kargi Road, Kota, Bilaspur, (C. G.), Ph. +07753-253801,07753-253872 E-mail: info@cvru.ac.in, Website: www.cvru.ac.in

विषय-सूची

इकाई-1	मेघदूतम् (पूर्वमेघः)	1-66
	● मेघदूतम् (पूर्वमेघः)	
इकाई-2	मेघदूतम् (उत्तरमेघः)	67-120
	● मेघदूतम् (उत्तरमेघः)	
इकाई-3	नैषधीयचरितम् (श्रीहर्ष)	121-272
	● नैषधीयचरितम् (आलोचना भाग)	
	● नैषधीयचरितम् (व्याख्या भाग)	
इकाई-4	कुमारसंभवम् एवं महाकाव्य और गद्य काव्य	273-364
	● कुमारसंभवम् (आलोचना भाग)	
	● कुमारसंभवम् (व्याख्या भाग)	
	● महाकाव्य और गद्य काव्य: उत्पत्ति, विकास एवं परिचय	

इकाई में सम्मिलित है :

- अध्ययन के उद्देश्य
- प्रस्तावना
- मेघदूतम् (पूर्वमेघः) सम्पूर्ण व्याख्या
- विभिन्न नदियों एवं पर्वतों का वर्णन
- विभिन्न राज्यों की राजधानियों एवं नगरों का वर्णन
- सारांश
- अभ्यास-प्रश्न

अध्ययन के उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई में कवि कालिदास के सुविख्यात गीतिकाव्य 'मेघदूतम्' के 'पूर्व मेघ' शीर्षक प्रथम भाग की सम्पूर्ण व्याख्या दी गयी है। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त छात्र :

- कवि कालिदास के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से परिचित हो सकेंगे।
- कवि कालिदास की भाषा-शैली एवं काव्यगत विशेषताओं से अवगत हो सकेंगे।
- मेघदूतम् के पूर्व मेघ-भाग के सम्पूर्ण कथा-क्रम से परिचित हो सकेंगे।
- मेघदूतम् के पूर्व मेघ-भाग के समस्त पद्यों की सप्रसंग व्याख्या कर सकेंगे।
- मेघदूतम् गीतिकाव्य की विशिष्टता एवं महत्ता से अवगत हो सकेंगे।
- कालिदास के प्रकृति-वर्णन के भाव-पक्ष एवं कला-पक्ष से परिचित हो सकेंगे।

NOTES

मेघदूत महाकवि कालिदास द्वारा रचित प्रसिद्ध गीतिकाव्य है। यह गीतिकाव्य साहित्य का देदीव्यमान रत्न है। इस गीतिकाव्य में कवि ने एक विरही यक्ष की मनोव्यथा का मार्मिक वर्णन किया है। इस छोटे से काव्य की गागर में कवि ने मानो अपनी भावनाओं का सागर ही भर दिया है। निस्संदेह मेघदूत को गीतिकाव्यों में अद्वितीय कहा जा सकता है। इस गीतिकाव्य के दो भाग हैं— पूर्व मेघ तथा उत्तर मेघ। कुबेर के शाप के कारण एक वर्ष तक अपनी प्रियतमा से अलग रहने को विवश कोई यक्ष अलकापुरी से दूर रहता है। आषाढ़ मास में एक दिन आकाश में छाये हुए मेघ को देखकर वह यक्ष उससे प्रार्थना करता है कि वह मेघ अलकापुरी जाकर उसकी प्रियतमा को उसकी कुशलता का संदेश पहुँचाने की कृपा करे। मेघदूत गीतिकाव्य के पूर्व मेघ खण्ड में यक्ष ने रामगिरि पर्वत से अलकापुरी तक के मार्ग का सरस एवं मनोरम वर्णन किया है। उत्तर मेघ खण्ड में यक्ष ने अलकापुरी नगरी एवं वहाँ स्थित अपने भवन का विवरण दिया है। यक्ष मेघ से प्रार्थना करता है कि वह अलकापुरी में स्थित उसके भवन में जाये और उसकी विरह-व्याकुल पत्नी को उसका संदेश सुनाकर सान्त्वना प्रदान करे।

यद्यपि मेघदूत का वर्ण्य विषय तो वियोग श्रृंगार की अबाध धारा में मार्मिक संदेश का अवतरण ही है तथापि कालिदास ने भारतीय संस्कृति का उपासक होने के कारण मेघदूत में महाकाल मंदिर की संध्योपासना में धार्मिकता का, नभचारी वक्-पंक्ति की स्वच्छन्दता का, मानवीय स्वभाव एवं जीवन का, लोक-कथाओं का तथा नदियों एवं पर्वतों के प्राकृतिक सौन्दर्य का भी मनोरम वर्णन किया है। मेघदूत में सर्वत्र विप्रलम्भ-श्रृंगार का चित्रण है, विशेषकर उत्तर-मेघ में यक्ष अपनी स्वयं की तथा अपनी पत्नी की विरहावस्था का अत्यन्त मार्मिक वर्णन करता है। प्रस्तुत इकाई में मेघदूतम् के पूर्व मेघ खण्ड की व्याख्या दी गयी है जिसमें यक्ष रामगिरि से अलकापुरी तक के मार्ग का वर्णन करता है। इस खण्ड में प्रकृति वर्णन का सौन्दर्य भी दर्शनीय है।

मेघदूतम् (पूर्वमेघः)

प्रसंग—महाकवि कालिदास, अपने इस मेघदूत नामक खण्डकाव्य में, इस काव्य के नायक विरही यक्ष का परिचय देते हुए कहते हैं।

“कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात् प्रमत्तः

शापेनास्तंगमितमहिमा वर्षभोग्येण भर्तुः।

यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु

स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु ॥१॥

अन्वय—स्वाधिकारात् प्रमत्तः कान्ताविरहगुरुणा वर्षभोग्येण भर्तुः शापेन अस्तंगमितमहिमा कश्चित् यक्षः जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु स्निग्धच्छायातरुषु रामगिर्याश्रमेषु वसति चक्रं।

शब्दार्थ—स्वाधिकारात् = अपने अधिकार से अर्थात् अपने लिए निर्धारित किए गये कर्तव्य के पालन से। **प्रमत्तः** = असावधान, प्रमादी, उपेक्षा करने वाला। **कान्ताविरहगुरुणा** = पत्नी के वियोग के कारण, गुरु अर्थात् असहनीय। **वर्षभोग्येण** = एक वर्ष में भोगे जाने योग्य, अर्थात् एक वर्ष की अवधि तक भोगे जाने वाले। **भर्तुः** = स्वामी के अर्थात् यक्षाधिपति कुबेर के। **शापेन** = शाप से अर्थात् क्रोधवश दण्डरूप शाप के द्वारा। **अस्तंगमितमहिमा** = जिसकी दिव्य शक्ति और उच्च पद का गौरव नष्ट हो गया है अर्थात् लुप्त

दिव्यशक्ति एवं उच्च पद गौरव वाला। **कश्चित्** = कोई। **यक्ष** = अज्ञातनामा, 'यक्ष' नामक देवयोनिविशेष का कोई व्यक्ति। **जनकस्तनयास्नानपुण्योदकेषु** = जनक की पुत्री सीता के स्नान से पवित्र हुए जलों वाले। **स्निग्धच्छायातरुषु** = सघन छाया युक्त वृक्षों वाले। **रामगिर्याश्रमेषु** = रामगिरि नामक पर्वत के वनाश्रमों में। **वसतिम्** = निवास स्थान। **चक्र** = बनाया अर्थात् निवास किया।

मेघदूतम् (पूर्वमेघः)

NOTES

अनुवाद—अपने अधिकार अर्थात् नियोग या कर्तव्य पालन से असावधान (फलतः) अपनी प्रिया पत्नी के वियोग के कारण असहनीय (और) एक वर्ष पर्यन्त भोगने योग्य, अपने स्वामी यक्षाधिपति कुबेर के शाप से जिसकी दिव्य शक्ति और उच्च पद प्रतिष्ठा नष्ट हो गई थी (ऐसा) कोई (अज्ञातनामा) यक्ष, जनक-पुत्री सीता के स्नान करने से पवित्र हुए जल से युक्त, (एवं) सघन छाया वाले वृक्षों से युक्त, रामगिरि नामक पर्वत के वनाश्रमों में निवास करता था।

भावार्थ—जब यक्षाधिपति कुबेर ने अपने एक सेवक यक्ष को, अपने कर्तव्यपालन में असावधानी करने से, ऐसा शाप दे दिया कि उसे एक वर्ष तक अपनी पत्नी के असहनीय वियोग को भोगना पड़ेगा, तब उसकी दिव्यशक्ति और पद प्रतिष्ठा नष्ट हो गयी, फलतः वह शाप की अवधि बिताने के लिये, रामगिरि पर्वत के उन आश्रमों में जाकर रहने लगा जो कि सघन छाया वाले वृक्षों से युक्त थे तथा जिनके जल भगवती सीता के स्नान करने से पवित्र हो गये थे।

संस्कृत व्याख्या—स्वाधिकारात् आत्मनियोगात्, प्रमत्तः असावधानः कान्तायाः विरहेण गुरुस्तेन कान्ताविरहगुरुणा पत्नीवियोगासहेन, वर्षभोग्येण सम्बत्सरभोगयोग्येन भर्तुः स्वामिनः, कुबेरस्य, शापेन, अस्तंगमितः महिमा यस्य सः—अस्तंगमितमहिमा विनाशितदिव्यसामर्थ्यगौरवः, कश्चित् अज्ञातनामा यक्षः देवयोनिविशेष, जनकतनयायाः स्नानेन पुण्यानि उदकानि येषान्तेषु—जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु जनकपुत्रीस्नानपवित्रीकृतजलेषुः स्निग्धच्छायातरुषु निविडच्छायावृक्षेषु, रामगिर्याश्रमेषु, रामगिरिनामकपर्वततपोवनेषु, वसतिम् निवासस्थानम् चक्रे कृतवान्।

प्रसंग—प्रस्तुत श्लोक द्वारा कवि ने वर्षाकालारम्भ में यक्ष द्वारा देखे जाने वाले, पर्वत शिखरों का स्पर्श करने वाले मेघ का वर्णन किया है—

“तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबलाविप्रयुक्तः स कामी,
नीत्वा मासान् कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः।
आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुं
वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श।। २।।”

अन्वय—तस्मिन् अद्रौ अवलाविप्रयुक्तः कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः कामी स कतिचित् मासान् नीत्वा आषाढस्य प्रथमदिवसे आश्लिष्टसानुम् वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयम्, मेघम् ददर्श।

शब्दार्थ—तस्मिन् अद्रौ = उस रामगिरि नामक पर्वत पर। **अबलाविप्रयुक्तः** = पत्नी से विरहित हुए। **कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः** = (विरह जन्य कृशतावश) स्वर्ण कंकण के गिर जाने से शून्य कलाई वाले। **कामी स** = कामसक्त उस यक्ष ने। **कतिचित्** = कुछ। **मासान्** = महीनों को। **नीत्वा** = बिता करके। **आषाढस्य** = आषाढनामक महीने के। **प्रथम दिवसे** = प्रथम दिन अर्थात् आषाढ मास की प्रतिपदा तिथि के दिन। **आश्लिष्टसानुम्** = पर्वत शिखर पर चिपटे हुए अर्थात् पर्वत की चोटी का स्पर्श करने वाले। **वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयम्** = वप्रक्रीडा में तिरछे होकर दन्त प्रहार करने वाले हाथी के समान दिखलाई पड़ने योग्य (वप्रक्रीडा, वह क्रीडा या खेल कहा जाता है, जिसमें कोई गज या सांड आदि पशु, किसी मिट्टी के

टीले या पर्वतीय शिला पर स्वभावतः कुछ तिरछे होकर अपने दाँतों या सींगों से बार-बार प्रहार करके उसे गिराने का प्रयास करता है। यह इन पशुओं की स्वभाविकी क्रीडा होती है। वे अकारण ही इस खेल में मदमस्त होकर प्रवृत्त होते हैं) **मेघम् ददर्श** = मेघ को देखा।

NOTES

अनुवाद—उस रामगिरि नामक पर्वत पर, पत्नी से वियुक्त हुए, (अतएव विरह जन्य कृशतावश) स्वर्णवलय के गिर जाने से शून्य कलाई वाले, कामासक्त उस यक्ष ने, कुछ महीनों को बिताकर आषाढ़ मास के प्रथम दिन अर्थात् प्रतिपदा के दिन, पर्वत शिखर पर चिपटे हुए (एवम्) वप्रक्रीड़ा में तिरछे दन्त प्रहार करने वाले गज के समान दर्शनीय मेघ को देखा।

भावार्थ—पत्नी से वियुक्त उस कामी यक्ष ने, जिसकी विरह कृशतावश स्वर्ण-वलय के गिर जाने से कलाई खाली हो गई थी, उस पर्वत पर कुछ महीने बिताकर आषाढ़ प्रतिपदा के दिन एक मेघ को देखा, जो कि पर्वत शिखर पर चिपटा हुआ था और वप्रक्रीड़ा में लगे हुए हाथी के समान दिखलाई पड़ रहा था।

संस्कृत व्याख्या—तस्मिन् अद्रौ पूर्वोक्ते रामगिरिनामके पर्वते, अवलाविप्रयुक्तः पत्नीविरहितः, कनकवलयस्य भ्रंशेन रिक्तः प्रकोष्ठः यस्य स—कनकवलय भ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः स्वर्णवलयनिपातशून्यमणिबन्धः, कामी कामपरवशः स यक्षः, कतिचित् मासान् कतिपयान् मासान्, नीत्वा गमयित्वा, आषाढस्य प्रथम दिवसे आषाढनामकस्य मासस्य प्रथम दिने, आश्लिष्टसानुम् आलिङ्गितपर्वतशिखरं, वप्रक्रीडासु परिणतः यः गजः तमिव प्रेक्षणीयम्—वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयम् उत्खातकेलितिर्यग्दन्तप्रहारगजदर्शनीयं, मेघं ददर्श दृष्टवान्।

प्रसंग—‘आश्लिष्टसानु मेघ को देखकर यक्ष देर तक चिन्ता-निमग्न बना रहा’ इसी बात को इस श्लोक में बतलाया गया है—

तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः कौतुकाधानहेतौः

अन्तर्वाष्पश्चिरमनुचरो रजराजस्य दध्यौ।

मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः

कण्ठाश्लेषणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे ॥ ३॥

अन्वय—राजराजस्य अनुचरः अन्तर्वाष्पः (सन्) कौतुकाधानहेतोः तस्य पुनः कथम् अपि स्थित्वा चिरं दध्यौ। मेघालोके सुखिनः अपि चेतः अन्यथा वृत्ति (जायते) कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने दूरसंस्थे (सति) किम् पुनः।

शब्दार्थ—राजराजस्य = यक्षराज कुवेर का, अनुचरः = सेवक अर्थात् यक्ष, अन्तर्वाष्पः = भीतर ही आँसुओं को रोक लेने वाला (सन्—होकर) कौतुकाधानहेतोः = अभिलाषा की उत्पत्ति के कारण रूप, तस्य = उस मेघ के, पुरः = सामने, कथमपि = किसी भी प्रकार, जैसे-तैसे, स्थित्वा = ठहरकर या खड़ा होकर, चिरम् = देर तक, दध्यौ = ध्यान करता या सोचता रहा। मेघालोके = मेघों के देखने पर सुखिनः = सुखी जन का, अर्थात् जो प्रियजन वियोग से रहित होने से सुखी व्यक्ति है। अपि = भी, चेतः = चित्त, अन्यथा वृत्ति = विकारयुक्त अथवा और ही प्रकार का (जायते = हो जाता है) कण्ठाश्लेषप्रणयिनिजने = कण्ठ के आलिङ्गन करने को उत्सुक व्यक्ति के, दूरसंस्थे = (सति) दूर रहने पर किम् पुनः = फिर क्या कहना।

अनुवाद—यक्षेश्वर कुवेर का सेवक यक्ष, आँसुओं के भीतर ही आँसुओं को रोके हुए, (प्रिया-विषयक) अभिलाषा की उत्पत्ति के कारण रूप उस मेघ के आगे किसी भी प्रकार खड़ा होकर देर तक अपनी प्रिया के विषय में सोचता रहा। (ऐसा क्यों न हो क्योंकि जब) मेघों को देखने पर, (प्रियजनों से युक्त अतएव) सुखी भी

जन का चित्त और ही प्रकार का अर्थात् विकारयुक्त (हो जाता है) तो फिर (ऐसे जन के विषय में तो) कहना ही क्या ? जिसके गले का आलिङ्गन करने के लिये उत्सुक प्रियजन दूरी पर स्थित हो, अर्थात् वह विरही हो।

मेघदूतम् (पूर्वमेघः)

NOTES

भावार्थ—कुवेर-सेवक वह यक्ष विरहजन्य आँसुओं को भीतर ही रोके हुए, उस कामोत्पादक मेघ के आगे किसी भी प्रकार खड़ा होकर बहुत देर तक अपनी प्रिया के विषय में इस बात को सोचता रहा कि वर्षाकालारम्भ के इस उद्दीपक समय में वह वियोगिनी किसी प्रकार जीवित रहेगी, क्योंकि जब यह स्वाभाविक ही है कि अपने प्रियजनों के साथ रहने वाले सुखी भी जन का चित्त मेघों के देखने पर विकार को प्राप्त हो जाता है, तब उस जन के विषय में तो कहना ही क्या, जिसका अतिप्रेमी जन उससे दूर देश में रहता हो और फलतः वह विरह पीड़ित हो। तात्पर्य यह है कि जब संयोगावस्था में भी लोगों का चित्त कामोद्दीपक मेघों के देखने पर विकृत हो जाता है तब वियोग दशा में तो विरही की क्या दशा होगी, यह तो भुक्त-भोगी ही जान सकते हैं।

संस्कृत व्याख्या—राज्ञां राजा राजराजः तस्य राजराजस्य धनाधिपस्यः कुवेरस्य अनुचरः सेवकः यक्ष इत्यर्थः अन्तर्गता वाष्पा यस्य सः अन्तर्वाष्पः (वाष्पो नेत्रजलोष्मणोः अन्तः स्तम्भिताश्रुः सन्, कौतुकस्याधानस्य हेतुः तस्य कौतुकाधानहेतोः अभिलाषोत्पत्तिकारणस्य तस्य मेघस्य पुरः अग्रे कथमपि येन केनापि प्रकारेण स्थित्वा स्थितिं विधाय चिरं बहुकालं दध्यौ ध्याननिमग्नोऽतिष्ठत्। मेघालोके जलददर्शने सुखिनः प्रियजनसङ्गतस्य अपि जनस्य चेतः चि त्तं, अन्यथावृत्ति अन्यथाभूतव्यापारं विकृतं वा (भवति) कण्ठस्याश्लेषे प्रणयी तस्मिन् कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने कण्ठालिङ्गनोत्सुके जने दूरसंस्थे दूरवर्तिनि सति किम् पुनः किं कथनीयं किमुत वक्तव्यमित्यर्थः।

प्रसंग—‘अपनी प्रिया के पास, सन्देश लेकर जाने की प्रार्थना करने के पूर्व यक्ष शिष्टाचारानुरोध से मेघ का स्वागत करता है’ यही बात प्रस्तुत श्लोक द्वारा बतलाई गई है।

“प्रत्यासन्ने नभसि दयिताजीवितालम्बनार्थी,
जीमूतेन स्वकुशलमयीं हारयिष्यन् प्रवृत्तिम्।
स प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै।
प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार॥ ४॥”

अन्वय—नभसि प्रत्यासन्ने (सति) दयिताजीवितालम्बनार्थी (अतएव) जीमूतेन स्वकुशलमयीम् प्रवृत्तिम् हारयिष्यन् सः प्रीतः (सन्) प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै प्रीतिप्रमुखवचनम् स्वागतम् व्याजहार।

शब्दार्थ—नभसि प्रत्यासन्ने (सति) = श्रावण मास के सन्निकट होने पर, दयिताजीवितलम्बनार्थी = प्रिया के जीवन के अवलम्बन अर्थात् धारण का इच्छुक, अर्थात् अपनी प्रिया के जीवनालम्बन की इच्छा रखने वाला, (अतएव) जीमूतेन = मेघ के द्वारा, स्वकुशलमयीम् = अपनी कुशलता से पूर्ण, प्रवृत्तिम् = बात या सन्देश को, हारयिष्यन् = भेजने वाले, सः = उस यक्ष ने, प्रीतः (सन्) = प्रसन्न होकर, प्रत्यग्रैः = ताजे-नवीन खिले हुए, कुटजकुसुमैः = पर्वतीय चमेली के पुष्पों से, कल्पितार्घाय = जिसके लिए अर्घ सम्पादित किया गया है (ऐसे) तस्मै = उस मेघ से, प्रीतिप्रमुखवचनम् = प्रीति भरे वचनपूर्वक, स्वागतम् = स्वागत वचन, व्याजहार = बोला या कहा।

अनुवाद—श्रावण मास के समीपवर्ती होने पर, प्रिया के जीवन धारण के लिए इच्छुक (अतएव) मेघ द्वारा अपने कुशलतापूर्ण चमेली के पुष्पों से जिसे अर्घदान किया गया था (ऐसे) उस मेघ से, प्रीति-पूर्ण वचनपूर्वक स्वागत वचन कहा।

NOTES

भावार्थ—जब अतिकामोद्दीपक श्रावण मास समीप आ गया तब यक्ष को अपनी प्रिया के जीवन के लिए बड़ी चिन्ता होने लगी अतएव उसने मेघ के द्वारा अपने कुशल सन्देश भेजने के उद्देश्य से, पहले मेघ को चमेली के ताजे पुष्पों द्वारा अर्घ्य दिया—और तब बड़े प्रेममय, वचनों से उसका स्वागत किया।

संस्कृत व्याख्या—नभसि श्रावणे मासे, प्रत्यासन्ने समीपवर्तिनि सति, दयितायाः, जीवितस्यालम्बनस्य अर्थयते—इति—दयिताजीवितालम्बनार्थी प्रियाजीवनधारणाभिलाषी (अतएव) जीमूतेन मेघेन स्वकुशलमयीं, आत्मकुशलतापूर्णाम् प्रवृत्तिवार्ताम् हारयिष्यन्—प्रापयिष्यन्, प्रीतः प्रसन्नो भूत्वा स यक्षः प्रत्यग्रैः अभिनवैः कुटकुसुमैः गिरिमल्लिकाः पुष्पैः कल्पितार्घ्याय सम्पादितार्घ्याख्यपूजाविधये तस्मै मेघाय प्रीतिप्रमुखवचनम् प्रीतिप्रधानवचनं यथा स्यात् तथा, स्वागतम् स्वागतवचनम् व्याजहार कथितवान्।

प्रसंग—अचेतन मेघ से सन्देश ले जाने की प्रार्थना करना कहाँ तक उचित है ? इसी बात को श्लोक में बतलाया गया है।

“धूमज्योतिःसलिलमरुतां सन्निपातं क्व मेघः,

सन्देशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः।

इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकस्तं ययाचे

कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु।। ५।।

अन्वयः—धूमज्योतिःसलिलमरुताम् सन्निपातः मेघः क्व, पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः सन्देशार्थाः क्व इति औत्सुक्यात् अपरिगणयन् गुह्यकस्तं ययाचे, हि कामार्ताः चेतनाचेतनेषु प्रकृतिकृपणाः (भवन्ति)।

शब्दार्थ—धूमज्योतिःसलिलमरुताम् = धुआँ, अग्नि, जल, वायु का, सन्निपातः = संघटन या समूह, क्व = कहाँ, पटुकरणैः = कुशल इन्द्रियों वाले अर्थात् बुद्धिमान् जनों के द्वारा, करण शब्द का अर्थ यहाँ इन्द्रिय है और पटु का अर्थ कार्य कुशल है। (मनोयोग से इन्द्रियों द्वारा दृष्ट श्रुत वस्तु ही बुद्धि द्वारा गृहीत होती है। अतः इन्द्रियाँ ही बुद्धि के साधन होते हैं, इनका कार्य कुशल होना आवश्यक है)। प्राणिभिः = जीवधारियों के द्वारा, प्रापणीयाः = पहुँचाये जाने योग्य, सन्देशार्थाः = सन्देश विषय, क्व = कहाँ, इति = इस तथ्य को, औत्सुक्यात् = उत्सुकता के कारण अर्थात् प्रिया के जीवन रक्षण की अत्यधिक उत्सुकतावश, अपरिगणयन् = न गिनता हुआ, उपेक्षा करता हुआ, गुह्यकः = यक्ष ने, तम् = उस मेघ से, ययाचे = प्रार्थना की, हि = क्योंकि, कामार्ताः = काम पीड़ितजन, चेतनाचेतनेषु = चेतन और अचेतन अर्थात् जड़ चेतन के विषय में; प्रकृतिकृपणाः = स्वभाव से दुर्बल या दीन (भवन्ति = होते हैं)।

अनुवाद—धुआँ अग्नि जल और वायु का समुदाय अथवा संघात रूप (अचेतन) मेघ कहाँ ? और आर्यकुशल इन्द्रियों वाले बुद्धिमान् प्राणियों द्वारा पहुँचाये जाने योग्य सन्देश के विषय कहाँ ? अर्थात् दोनों में बहुत बड़ा अन्तर है, अचेतन मेघ द्वारा सन्देश की बातें नहीं पहुँचाई जा सकती। (फिर भी) उत्सुकतावश इस तथ्य की उपेक्षा करते हुए यक्ष ने उस मेघ से प्रार्थना की, क्योंकि काम पीड़ित जन चेतन और अचेतन सभी के विषय में स्वभाव से ही दीन होते हैं (अर्थात् उन्हें चेतनाचेतन का ध्यान नहीं रहता)।

भावार्थ—मेघ, धूम, अग्नि, जल और वायु का संघात रूप होने के कारण अचेतन (जड़) होता है और सन्देश की बातें केवल समर्थ इन्द्रियों वाले चेतन बुद्धिमान् जनों द्वारा ही पहुँचाई जा सकती हैं अतः अचेतन मेघ से समाचार भेजना सर्वथा असम्भव है, किन्तु प्रियाप्राणरक्षण की अत्यधिक उत्सुकता वश यक्ष ने इस तथ्य पर ध्यान न देकर मेघ से समाचार ले जाने की प्रार्थना की। अचेतन मेघ से यक्ष ने क्यों प्रार्थना की ? इस सम्बन्ध में कवि ने यहाँ एक लोक सामान्य तथ्य का निर्देश करते हुए कहा है, “कामातुर जन जड़ चेतन में भेद न देख सभी

मेघदूतम् (पूर्वमेघः)

NOTES

विशेष—प्रस्तुत श्लोक के प्रथम दो चरणों में मेघ और सन्देश इन दो परस्पर विरूप या विषम पदार्थों की संघटना की गई है। अतः यहाँ **विषमालंकार** है। प्रस्तुत श्लोक के चतुर्थ चरण में एक लोक सामान्य तथ्य द्वारा पूर्व पंक्तियों में कथित बात का समर्थन किया गया है, अतः यहाँ **अर्थान्तरन्यास** अलंकार भी है और मन्दाक्रान्ता छन्द है।

संस्कृत व्याख्या—धूमश्च ज्योतिश्च सलिलञ्च मरुच्चेति तेषाम्—धूमज्योतिःसलिलमरुताम्, धूमग्निजलवायूनाम्, सन्निपातः समुदायरूपः मेघः पयोदः क्व कुत्र, पटून करणानि येषान्ते तैः पटुकरणैः समर्थेन्द्रियैः प्राणिभिः, सचेतनैः जनैः प्रापणीयाः नेतव्याः सन्देशार्थाः सन्देशविषयाः क्व कुत्र, इति इदं तथ्यम्, औत्सुक्यात् अत्युत्कण्ठावशात् अपरिगणयन् अविचारयन् गुह्यकः यक्षः तम् मेघम् ययाचे प्रार्थितवान्। हि यतः कामार्ताः कामपीडिताः चेतनाचेतनेषु जडचेतनविषये प्रकृतिकृपणाः स्वभावदीनाः भवन्ति ।

प्रसंग—अपनी याचना का कारण बतलाता हुआ यक्ष मेघ की शक्ति का वर्णन करता है—

जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां,
जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मधोनः
तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद् दूरवन्धुर्गतोऽहं,
याञ्चा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ॥ ६ ॥

अन्वयः—(हे मेघ ? अहम्) त्वाम् भुवनविदिते पुष्करावर्तकानाम् वंशे जातम् मघोनः कामरूपम् प्रकृतिपुरुषम्, तेन विधिवशात् दूरबन्धुः अहम् त्वयि अर्थित्वम् गतः (अस्मि) अधिगुणे मोघा (अपि) याञ्चा वरम् (किन्तु) अधमे लब्धकामा (अपि) न (वरम्) ।

शब्दार्थ—(हे मेघ ! अहम् = हे मेघ। मैं) भुवनविदिते = लोकों में प्रसिद्ध, पुष्करावर्तकानाम् = पुष्कर और आवर्तक नामक मेघों के, वंशे = वंश में, जातम् = उत्पन्न हुए, मघोनः = इन्द्र के, कामरूपम् = अपनी इच्छा के अनुकूल रूप धारण करने वाले, प्रकृतिपुरुषम् = प्रधान सेवक, जानामि = जानता हूँ, तेन = इसलिये, विधिवशात् = भाग्यवश, दूरबन्धुः = जिसका प्रियजन दूरवर्ती है, (ऐसा) अहम् = मैं यक्ष, त्वयि = तुम्हारे विषय में, अर्थित्वम् = याचकत्व को, गतः = प्राप्त हुआ हूँ, अधिगुणे = उच्च गुण वाले व्यक्ति के विषय में, मोघा = निष्फल (भी) याञ्चा = याचना या प्रार्थना, वरम् = अच्छी (होती है) अधमे = नीच व्यक्ति के विषय में, लब्धकामा = सफलाभिलाषा वाली (भी) न वरम् = अच्छी नहीं होती।

अनुवाद—(हे मेघ !) मैं तुमको लोकों में विख्यात पुष्कर और आवर्तक नामक मेघों के कुल में उत्पन्न हुआ, (एवं) इन्द्र का, इच्छानुसार रूपधारी प्रधान सेवक जानता हूँ। इसीलिये दैवयोग से जिसका प्रियजन दूरवर्ती है ऐसा मैं तुम्हारे विषय में याचकता को प्राप्त हुआ हूँ, क्योंकि उच्चगुण वाले व्यक्ति के विषय में निष्फल याचना भी अच्छी होती है, (किन्तु) अधमजन के विषय में सफल मनोरथ वाली भी याचना अच्छी नहीं होती।

भावार्थ—अपने कार्य की सिद्धि के लिये यक्ष पहिले तो मेघ की चाटुकारिता के रूप में उसके उत्तम गुणवान् परोपकारपरायण वंश की प्रशंसा करता है और फिर उससे अपनी याचकता का औचित्य बतलाता हुआ कहता है कि आप पुष्कर और आवर्तक जैसे उत्तम गुण सम्पन्न वंश में उत्पन्न हुए हैं और देवाधिराज इन्द्र के प्रधान सेवक तथा स्वेच्छानुकूल रूप धारण करने की शक्ति रखते हैं। आपके इन गुणों के कारण ही मैं आप से अपना सन्देश वहन करने की याचना कर रहा हूँ क्योंकि उत्तम गुण सम्पन्न व्यक्ति से यदि किसी की याचना

सफल नहीं भी होती है तो यही अच्छी बात है परन्तु यदि अधम व्यक्ति से याचना सफल भी हो जाय तब भी उचित नहीं होता। तात्पर्य यह है कि मुझे आशा है कि आप मेरी प्रार्थना अवश्य सुनेंगे।

NOTES

विशेष—प्रस्तुत श्लोक की चतुर्थ पंक्ति में वर्णित एक लोक-सामान्य तथ्य के द्वारा, पूर्वोक्त यक्ष की याचना के औचित्य रूप विशेष बात का समर्थन किया गया है, अतः यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है। मल्लिनाथ ने यहाँ अर्थान्तरन्यास से अनुप्राणित प्रेयः प्रियतराख्यानम् स्वार्थसिद्धि के लिए किसी की प्रशंसा करने में यह अलंकार होता है और वह प्रशंसा इस श्लोक में यक्ष द्वारा की गई है। मन्दाक्रान्ता छन्द है।

संस्कृत व्याख्या—(हे मेघ ! अहं यक्षः) त्वाम् भुवनविदिते = लोक-विख्याते, पुष्करांश्च आवर्तकाश्चेति तेषाम्-पुष्करावर्तकानाम् ऐतन्नामकानां कल्पान्तकालजलदानाम्, वंशे कुले जातम् समुत्पन्नम् मधोनः इन्द्रस्य कामरूपम् इच्छाधीनरूपधारिणम् प्रकृतिपुरुषम् प्रधानसेवकम् जानामि अवगच्छामि, तेन अनेन हेतुना विधिवशात् दैवाधीनत्वात् दूरे बन्धुर्भार्यारूपः प्रियजनः यस्य सदूरबन्धुः विप्रकृष्टभार्यः अहम् यक्षः, त्वयि मेघविषये अर्थित्वम् = याचकत्वम् गतः = प्राप्तः (अस्मि) (यतः) अधिका औदार्यादयः गुणाः यस्य स तस्मिन् अधिगुणे समधिकगुणवति याञ्चा प्रार्थना याचना वा मोघा निष्फला (अपि) वरम् ईषत्प्रिया (भवति किन्तु) अधमे नीचजने लब्धकामा प्राप्ताभिलाषा (अपि सा) न वरम्।

प्रसंग—यक्ष कहता है कि हे मेघ ! तुम सभी सन्तप्तजनों को शरण देने वाले हो, अतः तुम मुझ विरही का समाचार मेरी पत्नी के पास अलकापुरी तक पहुँचा दो—

“सन्तप्तानां त्वमसि शरणं तत्पयोद प्रियायाः,

सन्देशं मे हर धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य।

गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणां,

बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे पयोद ! त्वम् सन्तप्तानाम् शरणम् असि, तत् धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य मे सन्देशम् प्रियायाः हर, ते बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या अलका नाम यक्षेश्वराणाम् वसतिः गन्तव्या (अस्ति)।

शब्दार्थ—हे पयोद = जलद ! त्वम् = तुम, सन्तप्तानाम् = पीड़ित जनों के, शरणम् असि = रक्षक हो, तत् = इसलिये, धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य = कुवेर के क्रोध से वियुक्त किये हुए, मे = मेरे, सन्देशम् = समाचार को, प्रियायाः = प्रिया के पास, हर = ले जाओ, ते = तुम्हें, बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या = जिसके प्रासाद (धनीजनों के गृह) बाहरी उद्यान में स्थिति शिवजी के शिर की चाँदनी से उज्ज्वल हो रहे हैं (ऐसी) अलका नाम = अलका नाम वाली, यक्षेश्वराणाम् = यक्षेश्वरों की, वसतिः = निवास स्थान, गन्तव्या (अस्ति) जाना है।

अनुवाद—हे मेघ ! तुम पीड़ितजनों के रक्षक हो। इसलिए कुवेर के क्रोध से वियुक्त किये गये मेरे सन्देश को (मेरी) प्रिया के पास ले जाओ। तुम्हें, जिस के प्रासाद बाहरी उद्यान में विराजमान शिवजी के शिर की चन्द्रिका से उज्ज्वल हो रहे हैं, (ऐसी) यक्षेश्वरों की अलका नाम की बस्ती को जाना है।

भावार्थ—यक्ष मेघ से कहता है कि तुम सन्तप्त अर्थात् ग्रीष्मतप तथा विरह से पीड़ित प्रवासी जनों के रक्षक हो। मैं भी इस समय कुवेर के शाप से प्रिया से वियुक्त विरही प्रवासी हूँ अतः तुम मेरे सन्देश को मेरी प्रिया के पास पहुँचा दो और इस प्रकार तुम उसके सन्ताप को दूर करो, क्योंकि “कान्तोदन्तः सुहृदुपनतः संगमात् किञ्चिद्दूनः” अर्थात् प्रिय का समाचार सम्मिलन से कुछ ही कम होता है। इसके लिये तुमको यक्षेश्वरों की उस

अलका नामक नगरी को जाना होगा जिसके प्रासाद, बाहरी उद्यान में विराजमान शिवाजी की शिर की चन्द्रिका से उज्ज्वल रहते हैं।

मेघदूतम् (पूर्वमेघः)

NOTES

संस्कृत व्याख्या—हे पयोद जलद ! त्वम् सन्तप्तानाम् ग्रीष्मातपतापेन प्रियजनविरहेण च पीडितानां जनानां शरणम् आश्रयः रक्षको वासि, (शरणं गृहरक्षितोः) तत् तस्मात् कारणात् धनपतेः क्रोधेन विश्लेषितस्य-धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य, कुवेरकोपवियोजितस्य मे मम यक्षस्य सन्देश वार्ताम् प्रियाया हर प्रियां प्रति नय ते तव बाह्ये उद्याने स्थितस्य शिरसि या चन्द्रिका तया धौतानि हर्म्याणि यस्याः सा-बा ह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या बाह्योपवनविराजमानशिवमस्तकचन्द्रज्योत्स्नोज्ज्वलप्रासादा, अलका नाम अलकेति नाम्नी यक्षेश्वराणां यक्षाधिपानां वसतिः निवास स्थान गन्तव्या यातव्या (अस्ति)।

प्रसंग—यक्ष कहता है कि अलकापुरी को जाते हुए उसे पथिक जनों की वियोगिनी पत्नियाँ, इस आशा से आश्वस्त होकर देखेंगी कि अब मेघकाल में उनके प्रियजन घर लौटेंगे।

त्वामारुढं पवनपदवीमुद्गृहीतालकान्ताः,

प्रेक्षिष्यन्ते पथिक वनिताः प्रत्ययादाश्वसत्यः।

कः सन्नद्धे विरहविधुरां त्वय्युपेक्षेत जायां,

न स्यादन्योऽप्यहमिव जनो यः पराधीनवृत्तिः॥८॥

अन्वयः—पवनपदवीम् आरुढम् त्वाम् पथिकवनिताः प्रत्ययात् आश्वसत्यः उद्गृहीतालकान्ताः (सत्यः) प्रेक्षिष्यन्ते, त्वयि सन्नद्धे सति विरहविधुराम् जायाम् कः उपेक्षेत, अन्यः अपि यः जनः अहम् इव पराधीनवृत्तिः न स्यात्।

शब्दार्थ—पवनपदवीम्—वायु के मार्ग अर्थात् अकाश पर, आरुढम् = चढ़े हुए अथवा स्थित, त्वाम् = तुमको अर्थात् मेघ को, पथिकवनिताः = यात्रियों की पत्नियाँ अर्थात् प्रोषितभर्तुकार्ये, प्रत्ययात् = विश्वास से अर्थात् अपने पतियों के अपने पास वापस लौटने के विश्वास से, आश्वसत्यः = धैर्य धारण करती हुई, उद्गृहीतालकान्ताः (सत्यः) शिर के बालों (अलकों) के अग्रभागों को उठाकर ऊपर की ओर अर्थात् पीछे की ओर करने वाली (होकर) तात्पर्य यह है कि अपनी अलकों को ऊपर करके जिससे कि मेघों को आसानी से स्पष्ट देख सके, प्रेक्षिष्यन्ते = देखेंगी। अन्यः अपिः य जनः = दूसरा भी जो कोई व्यक्ति, त्वयि सन्नद्धे = तुम्हारे आकाश पर घिर आने पर अर्थात् जबकि तुम (मेघ) आकाश पर घिरे हुए होंगे, विरहविधुराम् जायाम् = विरह से व्याकुल पत्नी को, कः उपेक्षेत = कौन अपेक्षा कर सकता है, अहम् इव = मेरे समान, पराधीनवृत्तिः = परवश जीवन वाला, न स्यात् = न हो।

अनुवाद—आकाश पर उमड़े हुए तुमको, यात्रियों की पत्नियाँ, (प्रिय आगमन के) विश्वास से धैर्य धारण करती हुई, अलकों के अग्रभागों को ऊपर उठाये हुए, देखेंगी। तुम्हारे (आकाश पर) उमड़े हुए होने पर, विरह-व्याकुल पत्नी की कौन अपेक्षा कर सकता है, (यदि) मेरे ही समान कोई दूसरा भी व्यक्ति, पराधीन जीवन वाला न हो अर्थात् जो मेरे समान पराधीन न होगा वह कभी भी वियोगिनी पत्नी की उपेक्षा न कर सकेगा।

भावार्थ—वर्षा काल में आकाश पर छाये हुए मेघ वियोगियों के मन में अत्यधिक कामोत्कण्ठा उत्पन्न करने वाले होते हैं, अतएव यक्ष कहता है कि तुमको आकाश पर घिरा हुआ देखकर पथिकों की पत्नियाँ अपने प्रियजनों के आगमन से आश्वस्त होकर अपनी अलकों को ऊपर उठाकर तुमको देखेंगी अर्थात् बड़े चाव और प्यार से तुमको देखेंगी क्योंकि तुम्हारे देखने से उन्हें यह पूर्ण विश्वास हो जायेगा कि अब उनके प्रियजन अवश्य लौट रहे होंगे। इस विश्वास का कारण बतलाता हुआ यक्ष आगे कहता है कि यदि मेरे ही समान कोई व्यक्ति पराधीन

गिन न होगा तो वह ऐसे समय में अपनी वियोगिनी पत्नी की कभी उपेक्षा न करेगा अर्थात् अवश्य उससे मिलेगा किन्तु मैं तो पराधीन होने के कारण उसके पास नहीं जा सकता हूँ।

NOTES

विशेष—प्रस्तुत श्लोक में उत्तरार्द्ध में वर्णित लोक सामान्य तथ्य के द्वारा पूर्वार्द्धगत विशेष बात का समर्थन किया गया है, अतः यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है, और मन्दाक्रान्ता छन्द है।

संस्कृत व्याख्या—पवनस्य पदवी ताम्—पवनपदवीम् आकाशमार्गम् आरूढम् अधिष्ठितम् त्वां मेघम् पथिकवनिताः पथिकपत्न्यः प्रोषितभर्तृका इत्यर्थः, प्रत्ययात् प्रियागमनविश्वासान् आश्वसत्यः धैर्यमासादयन्त्यः उद्गृहीता अलकानामन्ता याभिस्ताः—उद्गृहीतालकान्ताः (मेघमालोकयितुं) उन्नमितालकाग्रभागाः (सत्यः) प्रेक्षिष्यन्ते विलोकयिष्यन्ते। त्वयि मंथे सन्नद्धे समागते सति विरहविधुरां वियोगव्याकुलितां जायां पत्नीं कः उपेक्षेत उपेक्ष्य तान्नोपेयात् न कोऽपीत्यर्थः, अन्यः यद्व्यतिरिक्तः अपि यो जनः अहम् इव पराधीनवृत्तिः परायत्तजीवनको न स्यात् न भवेत्, स्ववशजीविको न कोऽप्युपेक्षेतेति भावः।

प्रसंग—यक्ष कहता है कि जब तुम अलकापुरी पहुँचोगे तब वहाँ तुमको मेरी पतिव्रता पत्नी जीवित ही मिलेगी तुम्हारा जाना निरर्थक न होगा—

“तां चावश्यं दिवसगणनातत्परामेकपत्नी—

मव्यापन्ना-मविहतगतिर्द्रक्ष्यसि भ्रातृजायाम्।

आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां

सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि॥ ९॥

अन्वय—(हे मेघ !) दिवसगणनातत्पराम् (अतएव) अव्यापन्नाम् ताम् एकपत्नीम् भ्रातृजायाम् च अविहतगतिः (त्वम्) अवश्यम् द्रक्ष्यसि। हि आशाबन्धः अङ्गनानाम् कुसुमसदृशम् विप्रयोगे सद्यः पाति प्रणयि हृदयम् प्रायशः रुणद्धि।

शब्दार्थ—दिवसगणनातत्पराम् = अवशिष्ट दिनों की गणना में लगी हुई (अतएव) अव्यापन्नाम् = न मरी हुई, अपितु शापानन्तर मेरी प्राप्ति की आशा में जीवित, एकपत्नीम् = पतिव्रता, ताम् = उस, भ्रातृजायाम् = भ्रातृ पत्नी अर्थात् भाभी को, अविहतगतिः—अवाधगति वाले, (तुम) अवश्यम् = अवश्य ही, द्रक्ष्यसि = देखोगे। हि = क्योंकि, आशाबन्ध = आशा रूपी बन्धन, अङ्गनानाम् = स्त्रियों के, कुसुमसदृशम् = पुष्पसदृश, विप्रयोगे = वियोगकाल में, सद्यःपाति = शीघ्र ही टूट पड़ने वाले या नष्ट हो जाने वाले, प्रणयि = प्रेममय, हृदयम् = हृदय को, प्रायशः = प्रायः, रुणद्धि = रोक लेता है अर्थात् नष्ट होने से बचा लेता है।

अनुवाद—(यक्ष कहता है हे मेघ !) (शाप के शेष बचे) दिनों की गणना में लगी हुई है, (अतएव) जीवित, उस पतिव्रता भ्रातृ जाया (भाभी) को निर्वाधगति वाले तुम अवश्य देखोगे। क्योंकि आशा रूपी बन्धन, स्त्रियों के पुष्पसदृश (अति कोमल) (और) वियोग काल में शीघ्र ही नष्ट होने वाले प्रेममय हृदय को प्रायः रोक लेता है अर्थात् नष्ट होने से बचा लेता है।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि हे मेघ ! निर्वाध गति से सर्वत्र पहुँच सकने की क्षमता रखने वाले तुम अलकापुरी पहुँचकर, मेरे शाप के अवशिष्ट दिनों की गणना में तत्पर अतएव जीवित उस पतिव्रता भ्रातृजाया अर्थात् मेरी पत्नी को तुम अवश्य देखोगे क्योंकि आशा रूपी बन्धन, स्त्रियों के पुष्पसदृश कोमल और वियोग में शीघ्र ही नष्ट होने वाले प्रेममय हृदय को प्रायः बचा लेता है, टूटने नहीं देता।

विशेष—प्रस्तुत श्लोक के ‘आशाबन्धः’ पद में रूपक अलंकार है और ‘कुसुमसदृशं’ में उपमालंकार है,

तथा श्लोक के उत्तरार्ध में वर्णित लोक सामान्य तथ्य द्वारा पूर्वार्धगत विशेष बात का समर्थन किया गया है। अतः यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार भी है, मन्दाकान्ता छन्द है।

मेघदूतम् (पूर्वमेघः)

NOTES

संस्कृत व्याख्या—दिवसगणनातत्पराम्, शापावशिष्टदिनसंख्यानासक्ताम्—प्रोषितस्य मत्प्रियस्येयन्ति दिनानि अव्यतीतानि इयन्तो दिवसा अवशिष्टा इति गणनासंलग्नमित्यर्थः। (अतएव) अव्यापन्नाम् अत्यक्तप्राणाम्—शापा नरन्तरं भद्गमनाशया जीवनं धारयन्ती मित्यर्थः। एकः पतिर्यस्याः सा एकपत्नी ताम्—एकपत्नीम् पतिव्रताम्—मद्विरहे नान्यासक्तमित्यर्थः। तां भ्रातृजायाम्—भ्रातृ मे जायां तां मत्प्रियाम् (त्वम्) अविहता गतिर्यस्य सः अविहतगतिः अविच्छिन्नगतिः सन् अवश्यम् निश्चितम् द्रक्ष्यसि अवलोकयिष्यसि। निर्वाधगतित्वात् त्वया सा भ्रातृवन्निःशंकं दर्शनीया भविष्यतीत्यर्थः। हि यतः आशा एव बन्धः **आशाबन्धः** आशा रूपबन्धनम् अङ्गनानाम् स्त्रीणां कुसुमसदृशम् पुष्पतुल्यम् (अतिकोमलम्) (अतएव) विप्रयोगे विरहे, सद्यः पाति = सद्यः पतनशीलम्, प्रणयि प्रेमयुक्तम् हृदयम् प्रायशः प्रायः रुणद्धि, प्रतिवध्नाति विनाशान्निवारयतीत्यर्थः।

प्रसंग—यक्ष कहता है कि हे मेघ, अलकापुरी के प्रस्थान के लिये इस समय तुम्हारे लिए शुभशकुन हो रहे हैं, अतः तुम्हें ऐसे शुभ समय में यात्रा आरम्भ कर देनी चाहिए—

“मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां,

वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगन्धः।

गर्भाधानक्षणपरिचयात् नृमाबद्धमालाः

सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः॥ १०॥

अन्वय—अनुकूलः पवनः त्वाम् मन्दं मन्दं यथा नुदति, ते वामः अयं सगन्धः चातकः च मधुरम् नदति, गर्भाधानक्षणपरिचयात् खे आबद्धमाला बलाकाः नयनसुभगम् भवन्तम् सेविष्यन्ते।

शब्दार्थ—अनुकूलः पवनः = अनुकूल वायु, त्वाम् = तुम (मेघ को), यथा = सदृश, भावी फल के अनुरूप, नुदति = प्रेरित करता अर्थात् आगे बढ़ने के लिए मार्ग प्रशस्त करता है। ते = तुम्हारे, वामः = वामभाग में स्थित, अयं सगन्धः = यह सम्बन्धी, चातकः = चातक नामक पक्षिविशेष, च = और, मधुरम् नदति = श्रवण सुखद बोलता है, नूनम् = निः सन्देह, गर्भाधानक्षणपरिचयात् = गर्भ धारण करने के सुखद समय के परिचय से (क्षण शब्द का अर्थ यहाँ उत्सव, आनन्द अथवा सुखदायक समय है (“काल विशेषोत्सवयोः क्षणः”) खे = आकाश पर, आबद्धमालाः = पंक्ति बाँधकर स्थित, बलाकाः = बलाका नाम पक्षी—बगुलियाँ, नयनसुभगम् = आँखों को प्रिय लगने वाले, भवन्तम् = आपको, सेविष्यन्ते = सेवा करेंगी।

अनुवाद—अनुकूल वायु तुमको जिस प्रकार (भाविफलानुरूप) धीरे-धीरे प्रेरित कर रहा है, और तुम्हारे वाम भाग में स्थित यह (तुम्हारा) सम्बन्धी चातक भी मधुर शब्द कर रहा है। (इन दो शकुनों के अतिरिक्त आगे भी) गर्भ धारण करने के सुखद काल के परिचय से पंक्तिबद्ध हुई बलाकायें आकाश में, नेत्रों को प्रिय लगने वाले आपको सेवा करेंगी (तुम्हारे लिए यह तीसरा शुभ शकुन होगा)।

भावार्थ—यहाँ प्रस्तुत श्लोक में कवि मेघ के लिए त्रिविध शकुनों का निर्देश करता हुआ कहता है कि अनुकूल वायु धीरे-धीरे तुमको आगे बढ़ा रहा है और यह तुम्हारा साथी चातक भी बाईं ओर मधुर शब्द कर रहा है। वायु और चातक इन दो के अतिरिक्त जब तुम आगे बढ़ोगे तो अपने गर्भाधान के ज्ञान के कारण आकाश में पंक्तिबद्ध बलाकायें भी आपकी सेवा करेंगी। अतः इन शुभ शकुनों के साथ आपको यात्रा आरम्भ कर देनी चाहिए।

NOTES

संस्कृत व्याख्या—अनुकूलः पवनः गन्तव्यदिग्विभागं प्रति प्रवहमानः सुखदो वायुः त्वाम् मेघम् यथा भाविफलानुरूपम् मन्दं मन्दं शनैः शनैः नुदति प्रेरयति, ते वामः तव वामभागस्थितः अयं पुरोदृश्यमानः सगन्धः सम्बन्धी सहचरो वा चातकः च मधुरं यथा स्यात्तथा नदति व्याहरति। गर्भस्याधानस्य क्षणस्य परिचयस्तस्मात् गर्भधारण-सुखदकालाभिज्ञानात् खे आकाशे, आबद्धा मालाः याभिस्ता आबद्धमालाः पंक्तिबद्धाः बलाकाः वक्ष्य नयनसुभग नेत्रप्रिय भवन्तम् मेघ सेविष्यन्ते, भवतः सेवां विधास्यन्ति। एतन्निमित्तत्रयमासाद्य भवता यात्रारम्भो विधीय इत्याशयः।

प्रसंग—यात्रा के समय कोई न कोई साथी सहायक होना चाहिए अतएव यक्ष कहता है कि अलकापुरी की यात्रा में राजहंस तुम्हारे सहयात्री बन जायेंगे।

“कर्तुं यच्च प्रभवति महीमुच्छिलीन्ध्रामवन्ध्यां,

तच्छ्रुत्वा ते श्रवणसुभगं गर्जितं मानसोत्काः।

आकैलासाद्विसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः,

सम्पत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसाः सहायाः॥ ११॥

अन्वय—यत् च महीम् उच्छिलीन्ध्राम् अवन्ध्याम् कर्तुम् प्रभवति, तत् श्रवण-सुभगम् ते गर्जितम् श्रुत्वा मानसोत्काः विसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः राजहंसाः नभसि आकैलासात् भवतः सहायाः सम्पत्स्यन्ते।

शब्दार्थ—यत् च = और जो, महीम् = पृथ्वी को, उच्छिलीन्ध्राम् = उगी हुई कन्दलियों वाली कन्दली को देशी भाषा में छत्रक या कुकुरमुत्ता कहते हैं और कहीं-कहीं इसे सर्वछतरी भी कहते हैं यह एक छोटा सा पौध ॥ वर्षारम्भ में कहीं पर भी उग आता है। इस पौधे के छोटे से डंठल के ऊपर छत्र सा बना होता है। यह अति कोमल होता है, जब तक वर्षा का पानी मिलता रहता है तब तक यह खड़ा रहता है अन्यथा सूख जाता है इससे लोग अन्नोत्पत्ति का अनुमान लगाते हैं। वर्षा ऋतु के आरम्भ का यह सर्वप्रथम चिह्न होता है। (फलतः) अवन्ध्याम् = सफल या उपजाऊ, कर्तुम् = करने के लिए, प्रभवति = समर्थ होता है। तत् श्रवणसुभगम् = उस कर्णप्रिय, ते गर्जितम् = तुम्हारे गर्जन को, श्रुत्वा = सुनकर के, मानसोत्काः = मान सरोवर को जाने के लिए उत्कण्ठित (अतएव) विसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः—विसानां किसलयान्येव पाथेय तदेषाम् अस्ति ते विसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः = कमल नाल के अग्रभागों के टुकड़ों रूप मार्गभोजन से युक्त (हंस सरोवरों में रहते हैं और उनमें होने वाले कमलों के नाल या दण्ड को खाते हैं, यही उनका मुख्य भोजन होता है। वर्षा ऋतु में कमल भी नहीं रहते और सरोवरों का जल भी गन्दा हो जाता है। अतः ऐसी प्रसिद्धि है कि हंस वर्षा ऋतु में अपने-अपने सरोवरों को छोड़कर मान सरोवर को चले जाते हैं और फिर वहाँ से शरद ऋतु में लौटते हैं। पर जब वे दूरस्थित मानसरोवर की यात्रा पर जाते हैं तब अपने रास्ते के भोजन के लिए कमलनालों को चोंच में दबाकर ले जाते हैं और यही इनका मार्ग का भोजन होता है। इह पद के द्वारा कवि ने यही हंसों की प्रक्रिया बतलाई है) राजहंसा = राजहंस, आकैलासात् = कैलास पर्वत तक, नभसि = आकाश में, भवतः = आपके, सहायाः सम्पत्स्यन्ते = सहायक या सहयात्री बनेंगे (होंगे)।

अनुवाद—और जो पृथ्वी को उगी हुई कन्दलियों वाली (और फलतः) उपजाऊ बनाने में समर्थ होता है, श्रोत्रप्रिय उस तुम्हारे गर्जन को सुनकर मान सरोवर के लिए उत्सुक (अतएव) विसों के अग्रभागों के टुकड़ों रूप पाथेय से युक्त राजहंस कैलाश पर्वत तक आकाश में आपके सहयात्री होंगे।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि जब तुम अलकापुरी के लिए प्रस्थान करोगे तब तुम्हारी श्रवण सुखद उस गर्जना को सुनकर, जो कि वर्षारम्भ में कन्दलियों को उगाने एवं फलतः पृथ्वी को उपजाऊ बनाने में समर्थ होती

हैं, मानसरोवर के लिए उत्सुक राजहंस पाथेय के लिए अपने चोंचों में कमल नाल को दबाये हुए, आकाश में कैलाश पर्वत तक तुम्हारे सहयात्री होंगे अर्थात् तुम्हारे साथ जायेंगे।

मेघदूतम् (पूर्वमेघः)

NOTES

(यात्रा में साथी की भी उतनी ही आवश्यकता होती है जितनी कि पाथेय की इन दोनों के अभाव में यात्रा असम्भव नहीं तो कष्टसाध्य अवश्य होती है। अतएव यहाँ यक्ष, मेघ के लिए उन दोनों साधनों को बता रहा है, जिससे उसे कष्ट न हो)।

संस्कृत व्याख्या—यत् तव गर्जितम् च महीम् पृथिवीम् उच्छिलीन्ध्राम् उदगतकन्दालिकाम् (अतएव) अवन्ध्याम् उर्वराम् कर्तुम् विधातुम् प्रभवति क्षमते तत् श्रवणसुभगम् श्रोत्रप्रियम् ते तव गर्जितम् गर्जनम् श्रुत्वा आकर्ण्य मानसोत्काः मानसरोवरगमनोत्सुकाः विकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः मृणलाग्रभागखण्डसम्बलयुक्ताः राजहंसा हंसविशेषा नभसि आकाशे आकैलाशात् कैलासपर्वतं यावत् भवतः तव सहायाः सहायकाः सहयायिनः सम्पत्स्यन्ते भविष्यन्ति भवता सह यास्यन्तीत्यर्थः।

प्रसंग—यक्ष कहता है कि अब तुम अपने इस प्रिय मित्र रामगिरि पर्वत से विदा लेकर अलकापुरी को प्रस्थान करो—

आपृच्छस्व प्रियसखममुं तुङ्गमालिङ्ग्य शैलं,
वन्द्यैः पुंसां रघुपतितदैरङ्कितं मेखलासु।
काले काले भवति भवतो यस्य संयोगमेत्य,
स्नेहव्यक्तिश्चिरविरहजं मुञ्चतो वाष्पमुष्णम्॥ १२॥

अन्वय—पुंसाम् वन्द्यैः रघुपतिपदैः मेखलासु अङ्कितम् प्रियसखम् अमुम् तुङ्गम् शैलम् आलिङ्ग्य आपृच्छस्व, काले काले भवतः संयोगम् एत्य चिरविरहजम् उष्णम् वाष्पम् मुञ्चतः यस्य स्नेहव्यक्तिः भवति।

शब्दार्थ—पुंसाम् वन्द्यैः = मानवों के द्वारा पूजनीय, रघुपतिपदैः = श्री रामचन्द्र के चरणों से, मेखलासु = पर्वतीय ढलानों पर, अङ्कितम् = चिह्नित, प्रियसखम् = प्रियमित्र, अमुम् = इस, तुङ्गम् = ऊँचे, शैलम् = पर्वत को, आलिङ्ग्य = आलिङ्गन करके आपृच्छस्व = विदा लो, काले काले = समय-समय पर अर्थात् पर वर्षा ऋतु में, भवतः = आपके, संयोगम् = सम्पर्क को, एत्य = प्राप्त करके, चिरविरहजम् = लम्बे या दीर्घकालीन विरह से उत्पन्न, वाष्पम् = भाप को, मुञ्चतः = छोड़ने वाले, यस्य = जिस पर्वत की, स्नेहव्यक्तिः = प्रेम की प्रकटता, भवति = होती है।

अनुवाद—मानवों द्वारा पूजनीय श्री रामचन्द्र के चरणों से पर्वतीय ढलानों पर चित (अपने) प्रियमित्र इस ऊँचे पर्वत रामगिरि का आलिङ्गन कर (इससे) विदाई लो। समय-समय पर अर्थात् प्रत्येक वर्षाकाल में आपके (मेघ) सम्पर्क को प्राप्त कर दीर्घकालीन विरह से उत्पन्न गरम भाप को छोड़ने वाले जिस पर्वत की प्रेम प्रकटता होती है अर्थात् जो कि भाप को छोड़कर अपने प्रेम को प्रकट करता है।

भावार्थ—हे मेघ! लोकपूज्य श्री रामचन्द्र के चरणों से चर्चित मेखलाओं वाले तथा प्रत्येक वर्षाकाल में तुमसे मिलकर दीर्घकालीन विरह से उत्पन्न स्नेहाभिव्यञ्जक भाप को छोड़ने वाले इस अपने प्रियमित्र ऊँचे पर्वत रामगिरि का आलिङ्गन कर अलकापुरी के लिए विदाई लो, अर्थात् प्रस्थान करो।

संस्कृत व्याख्या—पुंसाम् मानवानाम् वन्द्यैः पूजनीयैः रघुपतिपदैः श्रीरामचन्द्रचरणैः मेखलासु अद्रिकटेषु मध्यप्रदेशेषु वा अङ्कितम् चिह्नितम् प्रियसखम् प्रियमित्रम् अमुम् इमम् तुङ्गम् उन्नतम् शैलम् पर्वतम् आलिङ्ग्य आश्लेषं विधाय आपृच्छस्व यामि इति आमन्त्रणेन सभाजय, काले-काले प्रतिवर्षाकालम् भवतः (मेघस्य) तव

NOTES

प्रसंग—यक्ष इस श्लोक द्वारा मेघ को मार्ग बतलाता हुआ कहता है—

मार्गं तावच्छृणु कथयतस्त्वत्प्रयणानुरूपं,

सन्देशं मे तदनु जलद श्रोष्यसि श्रोत्रपेयम्।

खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदं न्यस्य गन्तासि यत्र,

क्षीणः क्षीणः परिलघु पयः स्रोतसां चोपभज्य ॥ १३ ॥

अन्वय—हे जलद तावत् कथयतः (मत्तः) त्वत्प्रयाणानुरूपम् मार्गम् शृणु, तदनु श्रोत्रपेयम् मे सन्देशम् श्रोष्यसि, यत्र खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदं न्यस्य, क्षीणः क्षीणः, स्रोतसाम् परिलघु पयः उपभुज्य च गन्ता असि।

शब्दार्थ—हे जलद ! = मेघ ! तावत् = पहले तो, कथयतः = कहते हुए या बतलाते हुये (मत्तः मुझसे) त्वत्प्रयाणानुरूपम् = अपने प्रस्थान या यात्रा के अनुरूप, मार्गम् = मार्ग को, शृणु = सुनो, तदनु = उसके बाद, श्रोत्रपेयम् = कानों द्वारा सुनने योग्य अर्थात् श्रवण सुखद मधुर, सन्देशम् = मेरे सन्देश को, श्रोष्यसि = सुनोगे। खिन्नः खिन्नः = थक थक कर, शिखरिषु = पर्वतों पर, पदं न्यस्य = पैर रख कर, यत्र = जिस मार्ग पर और क्षीणः क्षीणः = दुर्बल हो हो कर जल वर्षा के बाद मेघ क्षीण या दुर्बल हो जाते हैं, अतः उन्हें फिर जल भरने की आवश्यकता होती है। इसलिए कवि आगे कहता है, स्रोतसाम् = नदियों के, परिलघु = अत्यल्प हल्का सा, पयः = जल का, उपभुज्य = उपभोग करके अर्थात् पाकर या भरकर, च = और, गन्ताअसि = जाओगे।

अनुवाद—हे मेघ ! पहले तुम, कहते हुए मुझसे अपनी यात्रा के अनुकूल मार्ग सुनो, उसके बाद कानों के द्वारा सुनने योग्य मेरे सन्देश को सुनोगे। थक-थककर पर्वतों पर पैर रखकर अर्थात् ठहरकर या विश्राम लेकर तथा दुर्बल या जलरहित होने पर नदियों के थोड़े से जल को पीकर जिस मार्ग पर जाओगे।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि हे मेघ ! पहले तो तुम अपनी यात्रा का मार्ग सुनो, तदनु श्रवण सुखद मेरे सन्देश को सुनोगे। साथ ही तुम उन पर्वतों को, जिन पर कि तुम चलते-चलते थक कर विश्राम करोगे और उन नदियों को भी, जिनसे कि तुम क्षीण या खाली होने पर, जल प्राप्त करोगे समझो।

(कवि ने यहाँ से रामगिरि पर्वत से लेकर अलकापुरी तक के मार्ग में पड़ने वाले प्रसिद्ध पर्वतों और नदियों का भी वर्णन किया है। इस प्रकार कवि ने यक्ष के मुख से तत्कालीन भारतीय भौगोलिक स्थिति का वर्णन किया है और इसी बहाने प्रकृति का भी मनोरम चित्र प्रस्तुत किया है)।

विशेष—प्रस्तुत पद्य में यक्ष अचेतन भी मेघ को मार्ग बतलाता है और अपना सन्देश भी बताने को कहता है। 'मार्ग और सन्देश' यही इस काव्य के दो प्रमुख विषय हैं, जिनका आरम्भ इसी श्लोक से किया जा रहा है। यक्ष अचेतन भी मेघ से, थक जाने पर पर्वतों पर ठहरने को तथा क्षीण होने पर नदियों का जल पीने को उसी प्रकार कहता है जैसे कि कोई सामान्य पथिक से कहता है। इस प्रकार यहाँ मेघ पर सामान्य पथिक के व्यवहार का समारोपण करने से समासोक्ति नामक अलंकार है। मन्दाकान्ता छन्द है।

संस्कृत व्याख्या—हे जलद मेघ ! तावत् प्रथमतः कथयतः वदतः (मत्तः) त्वत्प्रयाणानुरूपम् स्वयात्रानुकूलम् मार्गम् वर्त्म शृणु अकर्णय, तदनु मार्गश्रवणानन्तरम् श्रोत्रपेयम् कर्णाभ्यां पातुं योग्यम् मधुरमित्यर्थः मे मम सन्देशम् सन्देशवार्ताम् श्रोष्यसि आकर्णयिष्यसि, यत्र यस्मिन् मार्गे खिन्नः खिन्नः अभीक्ष्णम् श्रान्तः भूत्वा, शिखरिषु

पर्वतेषु पदं न्यस्य पदं निधाय, क्षणं विश्रम्येत्यर्थः अथ च, खिन्नः खिन्नः अभीक्ष्णम् कृशाङ्गं भूत्वा यदैव दौर्बल्यं मनुभवसि तदैवेत्यर्थः स्रोतसाम् नदीनाम् परिलघु लघुतायुक्तम् अल्पमेवेत्यर्थः पयः जलम् उपभुज्य अभ्यवहृत्य, गन्ता असि गमिष्यसि।

मेघदूतम् (पूर्वमेघः)

NOTES

प्रसंग—यक्ष, मेघ से कहता है कि वह सबसे पहले उत्तर दिशा की ओर उड़े और मार्ग की बाधाओं को दूर करता हुआ आगे बढ़ता जाय।

अद्रेः शृङ्गं हरति पवनः किंस्विदित्युन्मुखीभिः,
दृष्टोत्साहश्चकितचकितं मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः।
स्थानादस्मात्सरसनिचुलादुत्पतोदङ् मुखं,
दिङ् नागानां पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान्॥ १४॥

अन्वय—पवनः अद्रेः शृङ्गम् हरति किंस्वित् इति उन्मुखीभिः मुग्धसिद्धाङ्ग नाभिः चकितचकितम् दृष्टोत्साहः (सन्) सरसनिचुलात् अस्मात् स्थानात् पथि दिङ्नागानाम् स्थूलहस्तावलेपान् परिहरन् उदङ्मुखः सन् खम् उत्पत।

शब्दार्थ—पवनः = वायु, अद्रेः शृङ्गम् = पर्वत के शिखर को, हरति = (उड़ाकर) लिये जा रहा है, किंस्वित् = क्या, इति = इस आशंका से, उन्मुखीभिः = ऊपर की ओर मुख उठाने वाली, मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः = भोली भाली सिद्धों की स्त्रियों के द्वारा चकितचकितम् = परम आश्चर्य पूर्वक, दृष्टोत्साहः = जिसका उत्साह देखा गया है (ऐसे तुम) सरसनिचुलात् = गीले स्थल बेतसों वाले, अस्मात् स्थानात् = इस स्थान से, पथि = मार्ग में, दिङ्नागानाम् = दिग्गजों के, स्थूल-हस्तावलेपान् = मोटी-मोटी सूइयों के प्रहारों को, परिहरन् = दूर करते हुए अर्थात् बचाते हुए। उदङ् मुखः सन् = उत्तर दिशा की ओर मुख वाले होकर, खम् = आकाश को, उत्पत = उड़ जाओ।

अनुवाद—क्या वायु पर्वत के शिखर को (उड़ाये) लिये जा रहा है ? इस आशंका से ऊपर की ओर मुख उठाए हुए भोली भाली सिद्धों की स्त्रियों द्वारा परमाश्चर्य पूर्वक जिस तुम्हारा उत्साह देखा गया है, (ऐसे तुम) गीले स्थल बेतसों वाले इस स्थान से मार्ग में दिग्गजों की मोटी-मोटी सूइयों के प्रहारों को बचाते हुए, उत्तर की ओर मुख करके आकाश पर उड़ जाओ।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि मेघ ? जब तुम इस रामगिरि पर्वत से, वायु से प्रेरित होकर उत्तर की ओर उड़ोगे, तब भोली भाली सिद्धों की स्त्रियाँ इस आशंका से कहीं वायु पर्वत शिखर को तो उड़ाकर नहीं ले जा रहा है, ऊपर की ओर मुख करके तुम्हारे गमनोत्साह को परम आश्चर्य से देखेंगी। इस प्रकार उनके देखने से तुम्हारा गमनोत्साह और अधिक बढ़ जायेगा। तब तुम मार्ग में दिग्गजों के शुण्ड दण्डों के प्रहारों से बचते हुए, इस गीले स्थल बेतसों वाले स्थान से उत्तर की ओर आकाश में उड़ जाना।

मेघदूत के प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ ने इस श्लोक की अन्तिम दो पंक्तियों में एक निम्नलिखित अन्य अर्थ की अभिव्यक्ति भी दिखलाई है—

इस अर्थ की अभिव्यक्ति में दो पद ही मुख्य हैं, 'निचुल और दिङ् नाग'। इन दो पदों के आधार पर मल्लिनाथ की कल्पना है कि एक रसिक निचुल नामक महाकवि कालिदास का सहपाठी था और दिङ्नाग नामक आचार्य कालिदास के प्रतिपक्षी थे जो कि कालिदास की रचनाओं के अनेक दोषों को हाथ रख कर बतलाते थे और अनेक काव्य दोषों के लिए उन पर आक्षेप करते थे, किन्तु सहपाठी होने के नाते निचुल महाकवि

दिङ्नागाचार्य द्वारा प्रदर्शित सभी दोषों का परिहर्ता था अर्थात् उन दोषों को दोष न मानकर उनकी काव्यानुकूल व्याख्या करने वाला था इस बात को मन में रखकर मल्लिनाथ ने इन पंक्तियों का अर्थ इस प्रकार किया है—

NOTES

यक्ष मेघ से कहता है कि इस स्थान से जहाँ कि कालिदास के दोषों का परिहर्ता रसिक निचुल नामक कवि कहता है, तुम कालिदास के काव्यों के निर्दोष होने के कारण गर्व उन्नत मुख होकर सारस्वत मार्ग पर, दिङ्नागाचार्य द्वारा कालिदास की रचनाओं पर हाथ उठा उठाकर किये गये आक्षेपों को दूर करते हुए, 'खमुत्पत' अर्थात् अपने को और कालिदास कृत प्रबन्धों को आकाशवत् सर्वश्रेष्ठ एवं उन्नत बनाओ।

पर मल्लिनाथ द्वारा कल्पित यह ध्वन्यर्थ तभी ठीक माना जा सकता है जबकि कालिदास का स्थितिकाल ईशवीय पञ्चम शतक माना जाय, क्योंकि दिङ्नागाचार्य का स्थिति काल पञ्चम शतक ही माना गया है। यदि कालिदास का स्थिति काल भारतीय परम्परानुसार ईशवीय प्रथम शतक माना जायेगा तब इस अर्थ की कल्पना असम्भव हो जायेगी। श्रीकर्मरकर महोदय ने यद्यपि कालिदास के समसामयिक एक अन्य दिङ्नाग की कल्पना भी की है पर वह अभीष्ट प्रमाणित नहीं हो सकी है। अन्य भी कई टीकाकारों ने मल्लिनाथ के उक्त अर्थ पर विशेष ध्यान नहीं दिया है, फिर भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि कालिदास की रचनायें प्रायः व्यञ्जना प्रधान हैं, अतः यदि ऐसा भी अर्थ रहा हो तो कोई अनुपपत्ति न होनी चाहिए।

संस्कृत व्याख्या—पवनः वायुः अद्रेः रामगिरिनामकस्य पर्वतस्य शृङ्गम् शिखरम् हरति आकाशमार्गेण नयति, किंस्वित् इति वितर्के अर्थात् अनया शङ्कया उन्मुखीभिः ऊर्ध्वाननाभिः, मुग्धाश्च ताः सिद्धानामङ्गनाः ताभिः मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः मुग्धदेवनिताभिः चकितचकितम् साश्चर्यं यथा स्यात्तथा दृष्टोत्साहः समवलोकितगमनोद्योगः सन, सरसाः जलार्द्राः पल्लवपुष्पफलान्विताश्च निचुलो हिञ्जलाख्यास्तरवो यत्र तस्मात्सरसनिचुलात् (निचुलस्तु निचोलेस्याद्विञ्जलाख्यमहीरुहे 'इति मेदिनीकारः, अस्मात् आर्द्रस्थलवेतसात् स्थानात् प्रदेशात् पथि आकाशमार्गे दिङ्नागानाम् दिग्गजानाम् स्थूलाश्च ते हस्तास्तेषामवलेषास्तान्-स्थूलहस्तावलेपान् पीवरकराक्षेपान् परिहरन् दूरी कुर्वन् उदङ्मुखः उत्तरदिग्विभागाभिमुखः सन् खम् आकाशम् उत्पत उड्डीयस्व।

प्रसंग—मेघ को जाने के लिए प्रोत्साहित करता हुआ यक्ष कहता है कि जब तुम आगे बढ़ोगे तो पुरोदृश्यमान् इन्द्र धनुष के विविध रंगों से तुम्हारा वर्ण और भी सुन्दर लगेगा—

रत्नच्छायाव्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेतत्पुरस्ताद्

वल्मीकाग्रात् प्रभवति धनुः खण्डमाखण्डलस्य।

येन श्यामं वपुरतितरां कान्ति मापत्स्यते ते,

वर्हेणोव स्फुरितरुचिना गोपवेषस्य विष्णोः ॥ १५ ॥

अन्वय—रत्नच्छायाव्यतिकर इव प्रेक्ष्यम् आखण्डलस्य एतत् धनुः खण्डम् पुरस्तात् वल्मीकाग्रात् प्रभवति, येन ते श्यामम् वपुः स्फुरितरुचिना वर्हेण गोपवेषस्य विष्णोः (श्यामं वपुः) इव अतितराम् कान्तिम् आपत्स्यते।

शब्दार्थ—रत्नच्छायाव्यतिकरः इव = रत्नों की कान्तियों के मिश्रण के समान, अर्थात् मानो जिसमें अनेक रंगों के रत्नों की चमक मिली हुई हो। **प्रेक्ष्यम्** = देखने योग्य, **आखण्डलस्य** = इन्द्र का, **एतत्** = यह, **धनुः खण्डम्** = इन्द्र धनुष का टुकड़ा, **पुरस्तात्** = सामने या आगे, **वल्मीकाग्रात्** = वामी के अग्रभाग से (वामी, उस मिट्टी के टीले को कहते हैं जो कि प्रायः चींटियों द्वारा बनाया जाता है और कालान्तर में वह बहुत बड़ा टीला हो जाता है और उसमें सर्प आदि रहने लगते हैं, **प्रभवति** = प्रकट हो रहा है। **येन** = जिससे अर्थात् इन्द्र धनुष के खण्ड से, **ते श्यामं वपुः** = तुम्हारा सांवला शरीर, **स्फुरितरुचिना** = चमकती हुई कान्ति वाले, **वर्हेण** = मयूर पंख से (पंख से यहाँ तात्पर्य है मोर पंख का अग्रभाग जो कि कुछ चौड़ा और कई रंगों से

चमकीला होता है), गोपवेषस्य विष्णोः = ग्वाले का रूप धारण करने वाले विष्णु अर्थात् श्रीकृष्ण का (भगवान् कृष्ण मयूर पंख के मुकुट को धारण करते थे और उनका शरीर भी श्यामवर्ण का मेघ जैसा ही था अतएव वे घनश्याम भी कहे जाते हैं।) (श्याम वपुः) श्याम वर्ण का शरीर, इव = समान, कान्तिम् = कान्ति, शोभा या चमक को, आपत्स्यते = प्राप्त करेगा, अतितराम = बहुत अधिक।

अनुवाद—रत्नों की कान्तियों (चमक) के सम्मिश्रण के समान, दर्शनीय, इन्द्र का यह (सामने दिखलाई पड़ने वाला) धनुष् खण्ड, वामी के अग्रभाग से सामने निकल रहा है, जिससे तुम्हारा सांवला शरीर, चमकती हुई कान्तियों वाले मोर पंख से गोपवेषधारी विष्णु अर्थात् श्रीकृष्ण के (श्याम शरीर) की भांति बहुत अधिक शोभा प्राप्त करेगा, अर्थात् जिस प्रकार मोर पंख के विविध रंगों की चमक से श्रीकृष्ण का श्याम शरीर और अधिक शोभा को प्राप्त करता है उसी प्रकार सप्तरंगी इन्द्र धनुष से तुम्हारा भी श्याम शरीर और अधिक शोभा को प्राप्त करेगा।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि हे मेघ ! तुम्हारे सामने जो यह वामी के अग्रभाग से इन्द्र धनुष निकल रहा है जिसकी चमक रत्नों की कान्तियों के मेल के समान दर्शनीय है इस इन्द्र धनुष से तुम्हारा श्याम शरीर उसी प्रकार और अधिक शोभा को प्राप्त करेगा जिस प्रकार श्रीकृष्ण का श्याम शरीर मोर पंखों की बहुविध चमक से और अधिक सुशोभित होता है।

विशेष—प्रस्तुत श्लोक में उपमालंकार है, जिसके सहारे कवि ने सुन्दर प्रकृति चित्र प्रस्तुत किया है, मन्दाक्रान्ता छन्द है।

संस्कृत व्याख्या—रत्नानाम् छायाः रत्नच्छायाः तासाम् व्यतिकरः रत्नच्छाया-व्यतिकरः (छाया सूर्य प्रिया कान्तिः इत्यमरः) पद्मरागवैदूर्यादिमणिकान्तिसम्मिश्रणम् इव यथा, प्रेक्ष्यम् दर्शनीयम् आखण्डलस्य इन्द्रस्य एतत् पुरोदृश्यमानम् धनुःखण्डम् इन्द्रचापशकलम् पुरस्तादग्रे वल्मीकाग्रात् वामलूरविवराग्रभागात् (वामलूरश्च नाकुश्च वल्मीकं पुनपुंकम् इत्यमरः) प्रभवति आविर्भवति, येन धनुःखण्डेन ते श्यामं वपुः तव श्यामवर्ण शरीरम् रूपम् वा, स्फुरिता रुचिः यस्य तेन स्फुरितरुचिना देदीप्यमानदीप्तिकेन वर्हेण पिच्छेन (पिच्छवर्हे नपुंसके इत्यमरः) गोपस्य वेष इव वेषो यस्य तस्यगोपवेषस्य गोपवेषधारिणः विष्णोः वासुदेवस्य श्रीकृष्णस्य (श्यामं वपुः) इव अतितराम् अत्यधिकाम् कान्तिम् आपत्स्यते लप्स्यते।

प्रसंग—यक्ष मेघ से कहता है कि यहाँ से तुम उत्तर की ओर चलना पर माल क्षेत्र पर पहुँचकर कुछ पश्चिम की ओर जाकर फिर उत्तर की ओर चलते जाना।

त्वय्यायत्तं कृषि-फलमिति भू विलासानाभिज्ञैः

प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनैः पीयमानः।

सद्यः सीरोत्कषणसुरभि क्षेत्रमारुह्य मालं,

किञ्चित् पश्चात् ब्रज लघुगतिर्भूय एवोत्तरेण ॥ 16 ॥

अन्वय—कृषिफलम् त्वयि आयत्तम् इति भूविलासनभिज्ञैः प्रीतिस्निग्धैः जनपदवधूलोचनैः पीयमानः सन् मालम् सद्यः सीरोत्कषणसुरभि (यथा स्यात्तथा) आरुह्य किञ्चित् पश्चात् ब्रज, भूयः लघुगतिः (सन्) उत्तरेण एव ब्रज।

शब्दार्थ—कृषिफलम् = कृषि का फल अन्नादि, त्वयिआयत्तम् = तुम्हारे आधीन तुम पर आश्रित, इति = इस कारण से, भूविलासानाभिज्ञैः = भूविकारों को न जानने वाले अर्थात् कटाक्ष-पात में अकुशल प्रीतिस्निग्धैः = प्रेमभाव से सरस-आर्द्र, जनपद-वधूलोचनैः = ग्रामीण नायिकाओं के नेत्रों द्वारा पीयमानः =

NOTES

पिये जाते हुए अर्थात् संतृष्ण नेत्रों से प्रेमपूर्वक देखे जाते हुए (होकर) **मालम् क्षेत्रम्** = माल नामक प्रदेश पर सद्यः **सीरोत्कषणसुरभि** = शीघ्र ही हल चलाने से जिस प्रकार वह सुगन्धित हो जाये उस प्रकार, **आरुह्य** = चढ़कर या पहुँचकर, **किञ्चित् पश्चात् ब्रज** = कुछ पश्चिम की ओर जाना, **भूयः** = फिर, **लघुगतिः** = तेज चलने वाले (होकर), **उत्तरेण एव ब्रज** = उत्तर दिशा की ओर ही जाना।

अनुवाद—कृषि फल तुम्हारे पर ही निर्भर है, इस कारण से भू-विलासों (कटाक्षपातों) को न समझने वाले तथापि प्रेमभाव से सरस ग्रामीण स्त्रियों की आँखों से संतृष्ण एवं साभिलाष देखे जाते हुये (होकर) माल नामक प्रदेश पर इस प्रकार कि वह हाल ही में हल के चलाने से सुगन्धित हो जाये, कुछ पश्चिम की ओर मुड़ जाना और (बरस जाने के कारण) तेज गति वाले (होकर) उत्तर दिशा की ओर जाना।

भावार्थ—यह जानकर कि खेती का फल तुम्हारे अधीन है, कटाक्षपात के ज्ञान से रहित तथापि प्रेमाद्र ग्रामीण स्त्रियाँ तुमको संतृष्ण देखेंगी और तब तुम माल प्रदेश पर इस प्रकार वर्षा करके जिससे कि वह हल चलाने से सुगन्धित हो जाय, पहले तो कुछ पश्चिम की ओर जाना और फिर बरस जाने के कारण तीव्रगति वाले होकर उत्तर की ओर से चले जाना। अर्थात् वहाँ रुकना नहीं और न उत्तर दिशा को ही छोड़ना।

संस्कृत व्याख्या—कृषेः हलकर्मणः फलं सस्यं—कृषिफलम्, त्वयि मेघे आयत्तम् अधीनम् (अधीनो निध न आयत्त इत्यमरः) इति अस्मात् कारणात्, भू-विलासानाभिज्ञैः कटाक्षपातादि भू-विकारापरिचितैः प्रीतिस्निग्धैः प्रेमाद्रैः जनपदानां वध्यस्तासां लोचनानि तैः—जनपदवधूलोचनैः ग्रामीणस्त्रीजनाक्षिभिः पीयमानः संतृष्णं साभिलाषाञ्च वीक्ष्यमाणः (सन्) मालं क्षेत्रम् मालाख्योन्नतप्रदेशं सद्यः सीरैः उत्कषणेन सुरभि—सद्यः सीरोत्कषणसुरभि तत्कालहलोत्खननसुगन्धितं यथा स्यात्तथा आरुह्य अभिवृष्येत्यर्थः, किञ्चित् पश्चात् ब्रज किञ्चित् पश्चिमदिग्विभागं गच्छ, भूयः पुनरपि लघुगतिः आशुगमनः सन् उत्तरेण एव उत्तरमार्गेण एव गच्छ।

प्रसंग—यक्ष कहता है कि पुनः उत्तर की ओर जाते हुए तुमको आम्रकूट नामक पर्वत मिलेगा—

‘त्वामासारप्रशमितवनोपप्लवं साधु मूर्ध्ना,

वक्ष्यत्यध्वश्रमपरिगतं सानुमानाम्रकूटः।

न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय,

प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किं पुनर्यस्तथोच्चैः॥१७॥

अन्वय—आसारप्रशमितवनोपप्लवम् अध्वश्रमपरिगतम् त्वाम् आम्रकूटः सानुमान् साधु मूर्ध्ना वक्ष्यति, क्षुद्रः अपि संश्रयाय मित्रे प्राप्ते प्रथमसुकृतापेक्षया विमुखः न भवति यः तथा उच्चैः (सः) किं पुनः।

शब्दार्थ—आसारप्रशमितवनोपप्लवम् = मूसलाधार वर्षा से वन की अग्नि (दावानल) को शान्त कर चुकने वाले, अध्वश्रमपरिगतम् = मार्ग की थकान से युक्त अर्थात् यात्रा से थके हुए, त्वाम् = तुम (मेघ) को, आम्रकूटः सानुमान् = आम्रकूट नाम का पर्वत (एक आम्रकूट नाम का पर्वत जिसके शिखरों पर आम्र के वृक्ष प्रायः देखे जाते हैं, इसी को कुछ विद्वानों ने अमरकण्टक बतलाया है) साधु = भली प्रकार, मूर्ध्ना वक्ष्यति = शिर से अर्थात् अपने शिखरों पर धारण करेगा। क्षुद्रः अपि = तुच्छ भी व्यक्ति, संश्रयाय = आश्रय प्राप्त करने के लिए, मित्रे प्राप्ते = मित्र के आने पर, प्रथमसुकृतापेक्षया = पहले किये गये सत्कर्म (उपकार) की अपेक्षा से अर्थात् प्रथम किये गये उपकार के विचार से, विमुखः = मुख मोड़ लेने वाला या विपरीत, न भवति = नहीं होता है, यः तथा उच्चैः = जो वैसा अर्थात् पर्वत के समान ऊँचा या श्रेष्ठ जन (हो), सः किं पुनः = उसके विषय में तो कहना ही क्या ?

अनुवाद—मूसलाधार वर्षा से वन की अग्नि को अर्थात् दावानल को शान्त कर चुकने वाले (एवं) मार्ग की थकान से युक्त अर्थात् शान्त—थके हुए, तुमको आम्रकूट नामक पर्वत अपने शिखरों पर भली-भाँति धारण करेगा। (आपको सिर पर धारण करेगा) अर्थात् अपने शिखरों पर आपको विश्राम देगा, क्योंकि तुच्छ व्यक्ति भी (अपने पास) आश्रय के लिए आये हुए मित्र के आने पर (उसके द्वारा अपने साथ) पहले किये गए उपकार की अपेक्षा या विचार से, विमुख नहीं होता अर्थात् उसका अतिथि सत्कार अवश्य करता है। फिर उस व्यक्ति के विषय में तो कहना ही क्या, जो कि पर्वत के साथ उच्च अर्थात् श्रेष्ठ समृद्धिमान् है।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि उत्तर की ओर जाते हुए जब आपकी मूसलाधार वर्षा से वनाग्नि शान्त हो जाएगी और यात्रा की थकान से थके हुए जब आप आम्रकूट पर्वत पर पहुँचेंगे तब वह आपके पूर्वकृत वनाग्निशमन रूप उपकार के विचार से आपका अवश्य अतिथि सत्कार करेगा और आपको विश्राम देगा, क्योंकि जबकि एक दरिद्र एवं नीच पुरुष भी आश्रय के लिए मित्र के आने पर विमुख नहीं होता तो फिर पर्वत के समान उच्च श्रेष्ठ एवं समृद्धिशाली व्यक्ति सेवा कार्य से कैसे विमुख हो सकता है, अर्थात् कदापि नहीं। वह तुम्हारी अवश्य सेवा करेगा।

विशेष—प्रस्तुत श्लोक में पूर्वार्धगत विशेष तथ्य का, उत्तरार्धगत लोक-सामान्य तथ्य से समर्थन किया गया है, अतः यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है तथा 'किं पुनर्यस्तथोच्चैः, में अर्थापत्ति अलंकार है। मन्दाकान्ता नामक छन्द है।

संस्कृत व्याख्या—आसारेण प्रशमितः वनस्य उपप्लवः येन सः तम्—आसार-प्रशमितवनोपप्लवम् & आसारसम्पातविनाशितदावानलम् (धारासम्पात आसारः इत्यमरः) (एवम्) अध्वनः श्रमस्तेन परिगतस्तम्—अध्वश्रमपरिगतम् मार्गश्रमश्रान्तम् त्वाम् मेघम्, आम्रकूटः सानुमान् एतन्नामकः पर्वतः साधु, सम्यक् मूर्ध्ना शिरसा वक्ष्यति धारयिष्यति, (तथा हि) क्षुद्रः दरिद्रः नीचस्वभावोऽपि (जन्तुः) संश्रयाय आश्रयप्राप्तये मित्रे सुहृदि प्राप्ते समागते (सति) प्रथमं यत् सुकृतं तस्य अपेक्षा तथा प्रथमसुकृतापेक्षया पूर्वकृतोपकारविचारदृष्ट्या विमुखः पराङ्मुखः सेवाविमुखो वा न भवति न जायते, यः तथा तेनप्रकारेण उच्चैः उन्नतः श्रेष्ठ समृद्धिमान् वा (स आम्रकूट) किं पुनः विमुखो भविष्यतीति न वक्तव्यमित्यर्थः।

प्रसंग—यक्ष, मेघ से कहता है कि जब तुम आम्रकूट पर्वत पर पहुँचोगे तब उसकी विशेष प्रकार की शोभा होगी—

छन्नोपान्तः परिणतफलद्योतिभिः काननाग्नैः—

स्त्वय्यारुढे शिखरमचलः स्निग्धवेणीसवर्णे।

नूनं यास्यत्यमरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्थां

मध्ये श्यामः स्तन इव भुवः शेषविस्तारपाण्डुः ॥१८॥

अन्वय—परिणतफलद्योतिभिः काननाग्नैः छन्नोपान्तः, अचलः स्निग्धवेणीसवर्णे त्वयि शिखरम् आरुढे (सति) मध्ये श्यामः शेषविस्तारपाण्डुः भुवःस्तनः इव अमर-मिथुनप्रेक्षणीयाम् अवस्थाम् नूनम् यास्यति।

शब्दार्थ—परिणतफलद्योतिभिः = पके हुए फलों से सुशाभित होने वाले, काननाग्नैः = वन के आम्र वृक्षों के द्वारा, छन्नोपान्तः = ढके हुए आसपास के भागों वाला अर्थात् आम्रवृक्षों से जिसका आसपास का भाग ढक गया है। अचलः = (ऐसा यह) आम्रकूट नामक पर्वत, स्निग्ध वेणीसवर्णे = चिकनी वेणी (चोटी या केशपाश) के समान रंग वाले अर्थात् चिकने काले वर्ण वाले, त्वयि = तुम्हारे अर्थात् मेघ के, शिखरम् = चोटी

NOTES

पर अर्थात् आम्रकूट पर्वत के शिखर पर, आरुढे = चढ़ जाने पर अर्थात् जब तुम आम्रकूट पर्वत की चोटी पर चढ़ जाओगे तब वह पर्वत, मध्ये श्यामः = बीच में काले रंग का, शेषविस्तारपाण्डुः = अवशिष्ट विस्तार में पीले वर्ण के अर्थात् मध्य भाग को छोड़कर शेष बचे हुए चारों ओर के भाग में पीले वर्ण वाले, भुवः स्तनः इव = पृथ्वी के स्तन के समान, अमरमिथुनप्रेक्षणीयाम् अवस्थाम् = देवताओं के जोड़ों के द्वारा देखने योग्य दशा को, अर्थात् देव दम्पतियों द्वारा देखने योग्य शोभा को, नूनम् = निश्चय ही, यास्यसि = प्राप्त होगा।

(पाण्डु शब्द का अर्थ है, श्वेत रंग से मिला हुआ पीला वर्ण)

अनुवाद—(यक्ष कहता है कि हे मेघ !) पके हुए फलों से सुशोभित होने वाले, वन के आम्र वृक्षों से, ढके हुए पार्श्व भागों वाला (वह) आम्रकूट पर्वत, चिकने केशपाश के समान रंग वाले अर्थात् कृष्ण वर्ण वाले, तुम्हारे (मेघ के) शिखर पर, चढ़ जाने पर अर्थात् पर्वत चोटी पर छा जाने पर, बीच में कृष्ण वर्ण के और अवशिष्ट आसपास के भाग में पीले वर्ण के, पृथिवी के स्तन की भाँति, निश्चय ही, देव दम्पतियों के द्वारा दर्शनीय शोभा को प्राप्त करेगा।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि हे मेघ ! चिकने केशपाश के समान काले वर्ण के तुम जब उस आम्रकूट पर्वत की चोटी पर छा जाओगे, जिसका कि आसपास का भाग पके हुए फलों से चमकते हुए वन के आम्रवृक्षों से ढका हुआ है, तब तुम पृथिवी के उस स्तन की भाँति दिखलाई पड़ोगे जो कि स्वभावतः बीच में काला और आस पास के फैलाव में पीले वर्ण का होता है। उस समय पृथिवी के स्तन की भाँति दिखलाई पड़ने वाले उस आम्रकूट पर्वत की शोभा देवताओं के जोड़ों के द्वारा देखने ही योग्य होगी अर्थात् देवता इस शोभा को बड़े चाव से देखेंगे।

संस्कृत-व्याख्या—परिणतानि च यानि फलानि तैः द्योतन्त इति तैः—परिणत-फलद्योतिभिः परिपक्वाम्रफलशोभिभिः, काननाम्रैः—वनरसालवृक्षैः छन्नोपान्तः समाच्छादितपार्श्वभागः अचलः आम्रकूटपर्वतः स्निग्धा चासौ वेणी तथा समानः वर्णः यस्य तस्मिन्—स्निग्धवेणीसवर्णे चिककणकेशवन्ध सवर्णे कृष्णवर्ण इति यावत् त्वयि मेघे शिखरम् पर्वत शृङ्गम् आरुढे आरुह्य स्थिते सति, मध्ये मध्यभागे श्यामः कृष्णवर्णः शेषश्चासां विस्तारः तस्मिन् पाण्डुः शेषविस्तारपाण्डुः अवशिष्टविस्तारपाण्डवर्णः भुवः पृथिव्याः, स्तनः कुचः इव अमराणां मिथुनानि तैः प्रेक्षणीयाताम् अमरमिथुन प्रेक्षणीयाम् देवदम्पतिदर्शनीयाम् अवस्थाम् शोभामिति यावत् नूनम् निश्चयेन यास्यति प्राप्स्यति।

प्रसंग—यक्ष मेघ से कहता है कि जब तुम आम्रकूट पर्वत से आगे बढ़ोगे तब तुम नर्मदा नदी को देखोगे—

“स्थित्वा तस्मिन् वनचरवधूभुक्तकुञ्जे मुहूर्तं,

तोयोत्सर्गदु ततरगतिस्तत्परं वर्त्म तीर्णः।

रेवां द्रक्ष्यस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णो,

भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमङ्गे गजस्य” ॥१९॥

अन्वय—वनचरवधूभुक्तकुञ्जे तस्मिन् मुहूर्तम् स्थित्वा तीयोत्सर्गदुततरगतिः (सन्) तत्परम् वर्त्म तीर्णः (त्वम्) उपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णाम् रेवाम् गजस्य अङ्गे भक्तिच्छेदैः विरचिताम् भूतिम् इव द्रक्ष्यसि।

शब्दार्थ—वनचरवधूभुक्तकुञ्जे = वनचरों के वधूजनों द्वारा जिसके कुञ्जों का उपभोग किया गया है (ऐसे), तस्मिन् = उस आम्रकूट पर्वत पर, मुहूर्तम् = दो घड़ी तक (लगभग ४८ मिनट) स्थित्वा = ठहरकर, तोयोत्सर्गदुततरगतिः = जल बरसने से और अधिक तेज चाल वाले (होकर) तत्परम् = उसके बाद अर्थात्

आगे के, वर्त्म = मार्ग को, तीर्णः = पार कर के, (तुम) उपलविषमे = पत्थरों के कारण ऊँचे नीचे, विन्ध्यपादे = विन्ध्याचल की तलहटी में, विशीर्णाम् = फैली हुई, रेवाम् = रेवा अर्थात् नर्मदा नदी को, गजस्य अङ्गे = हाथी के शरीर पर, भक्तिच्छेदैः = रेखाओं की विचित्र बनावटों से, विरचिताम् = बनाई गई अर्थात् की गई, भूतिम् = सजावट, इव = के समान, द्रक्ष्यसि = देखोगे।

मेघदूतम् (पूर्वमेघः)

NOTES

अनुवाद—वनचरों की स्त्रियों के द्वारा जिसके कुञ्जों का उपभोग किया गया है, (ऐसे) उस आम्रकूट नामक पर्वत पर दो घड़ी तक ठहरकर, (तथा वहाँ) जल वर्षा करने से और अधिक (हल्के होने से) तेज चाल वाले होकर (तुम) उस पर्वत के आगे का मार्ग पार करके, पत्थरों के कारण ऊँची-नीची विन्ध्याचल की तलहटी में फैली हुई रेवा नदी को, हाथी के शरीर पर रचनाओं की विचित्र रेखाओं द्वारा बनाई गई सजावट के समान देखोगे।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि हे मेघ ! तुम उस आम्रकूट पर्वत के कुञ्जों में थोड़ी देर तक विश्राम करना और फिर वहाँ जल बरसाना जिससे कि तुम हल्के हो जाओगे, तदनु तुम उस पर्वत के आगे के मार्ग को पार करके विन्ध्याचल की तलहटी में चारों ओर बहती हुई रेवा नदी को देखोगे, यह नदी तुम्हें उस समय इस प्रकार की दिखाई पड़ेगी मानो हाथी के शरीर पर सजावट की विचित्र-विचित्र रंग-बिरंगी रेखायें बनाई गई हों। (यहाँ पर विन्ध्याचल की ऊँची-नीची, ऊबड़-खाबड़ तलहटी में विचित्र धाराओं में विभक्त होकर बहती हुई रेवा नदी की, हाथी के शरीर पर बनाई गई, सजावट के लिए विचित्र रंग-बिरंगी रेखाओं से बड़ी सुन्दर उपमा दी गई है।)

संस्कृत व्याख्या—वनचराणां वधूभिः भुक्ता कुञ्जा यस्य तस्मिन्-वनचरवधू-भुक्तकुञ्जे वनवासिस्त्री-जनपरिभुक्तलतागृहे, तस्मिन् आम्रकूटनामके पर्वते मुहूर्त घटिकाद्वयं यावत् स्थित्वा विश्रम्य, तोयस्य उत्सर्गेण द्रुततरा गतिः यस्य सः—तोयोत्सर्गद्रुततरगतिः जलवर्षणतीव्रतरगमनशीलः (सन्) तत्परम् आम्रकूटपर्वतादग्रयामि वर्त्म मार्गम् तीर्णः समतिक्रान्तः (त्वम्) उपलविषमे प्रस्तरबुल्लङ्घ्ये विन्ध्यपादे विन्ध्ययाचल प्रत्यन्तपर्वते विशीर्णाम् विविधधाराभिः समन्ततः प्रवहन्तीम् रेवाम् नर्मदाख्यां नदीम् गजस्य हस्तिनः अङ्गे शरीरे, भक्तिच्छेदैः रचनाविशेषरेखाभिः विरचिताम् विनिर्मिताम् भूतिम् शृङ्गारविशेषम् इव यथा द्रक्ष्यसि अवलोकयिष्यसि।

प्रसंग—यक्ष, मेघ से कहता है कि जलवर्षण के बाद जब तुम रिक्त हो जाओ तब नर्मदा से पुनः जल भर लेना, जिससे कि तुम भारी हो जाओ और वायु तुम्हें इधर-उधर न उड़ा सके और तुम अपने निश्चित मार्ग पर चलते हुए आगे बढ़ते जाओ—

“तस्यास्तित्तैर्वनगजमदैर्वासितं वान्तवृष्टि-

जम्बूकुञ्जप्रतिहरतरयं तोयमादाय गच्छेः।

अन्तःसारं घन तुलयितुं नानिलः शक्ष्यति त्वां,

रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय” ॥ २० ॥

अन्वय—वान्तवृष्टिः (त्वम्) तित्तैः वनगजमदैः वासितम् जम्बू कुञ्जप्रतिहरतरयम् तस्याः तोयम् आदाय गच्छेः, घन ! अनिलः अन्तः सारम् त्वाम् तुलयितुम् न शक्ष्यति, हि रिक्तः सर्वः लघुः भवति, पूर्णता गौरवाय (भवति)।

शब्दार्थ—वान्तवृष्टिः = वर्षा कर चुकने वाले, (वान्त का अर्थ है उगला वृष्टि-वर्षा = वर्षा को उगल देने वाले, अर्थात् वर्षा कर चुकने वाले, तित्तः = सुगन्धित और तीक्ष्ण, वनगजमदैः = जंगली हाथियों के मदों

NOTES

से, वासितम् = सुगन्धित किये हुए, जम्बू कुञ्जप्रतिहतरयम् = जामुन के कुञ्जों में रुके हुए वेग वाले, तस्याः = उस रेवा के, तोयम् = जल कौं, आदाय = लेकर, गच्छेः = जाना, घन = हे मेघ ! अनिलः = वायु, अन्तःसारम् = अपने भीतर जलरूप बल को धारण करने वाले, त्वाम् = तुमको (मेघ को) तुलयितुम् = तोलने के लिए अर्थात् इधर-उधर उड़ाकर ले जाने के लिए, न शक्यति = न समर्थ होगा, हि = क्योंकि, रिक्तः सर्वः = खाली सब कोई लघुः भवति = हल्का होता है, पूर्णता = पूर्ण या भरा हुआ होना, गौरवाय भवति = भारीपन के लिए होता है।

अनुवाद—वर्षा कर चुकने वाले (तुम) तीक्ष्ण और सुगन्धित, वन्य गजों के मदों के द्वारा सुगन्धित किये गये। (तथा) जामुन के कुञ्जों में रुके हुए वेग वाले, उस रेवा के जल को लेकर (भरकर) जाना (जिससे कि) हे मेघ ! वायु (अपने) भीतर जलरूप बल धारण करने वाले तुमको (इधर-उधर) उड़ाने के लिए समर्थ न होगा, क्योंकि खाली सब कोई हल्का होता है (किन्तु) पूर्ण होना भारीपन के लिए होता है।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि हे मेघ ! वर्षा करने के बाद तुम खाली (हल्के) हो जाओगे अतः तुम वन्यगजों के मदजल से सुगन्धित किये गए रेवा के उस जल को जो कि जामुन के कुञ्जों में रुका हुआ होगा, अपने में पुनः भरकर आगे चलना, जिससे कि वायु तुमको इधर-उधर उड़ाकर अपने मार्ग से अलग न कर दे, क्योंकि प्रत्येक पदार्थ जो खाली होता है, हल्का होता है, पर भरा हुआ होना उसे भारी बना देता है।

विशेष—प्रस्तुत श्लोक में अर्थान्तरन्यास अलंकार है जिससे कवि ने “रिक्तः सर्वो भवतीत्यादि” पंक्ति द्वारा एक लोक सामान्य तथ्य का निर्देश किया है। वह मेघ से कहता है कि तुम खाली होने पर रेवा से जल अवश्य भरकर और भारी बनकर आगे चलना अन्यथा खाली होने से हल्के होने के कारण वायु तुमको इधर-उधर उड़ाकर पथभ्रष्ट कर देगा। खाली पदार्थ या व्यक्ति को कोई भी उठा सकता या उड़ा सकता है तथा उसे अपने लक्ष्य से भ्रष्ट कर सकता है, किन्तु भारी भरकम व्यक्ति को कोई आसानी से इधर-उधर नहीं ले जा सकता। अतः भारी या सम्पन्न होना कार्यसिद्धि के लिए आवश्यक है। दीन-हीन व्यक्ति के साथ कोई भी कैसा भी व्यवहार कर सकता है पर सम्पन्न व्यक्ति के साथ उसे सोच समझ कर ही व्यवहार करना पड़ेगा।

संस्कृत व्याख्या—वान्ता दृष्टिर्येन स वान्तवृष्टिः उद्गीर्णवर्षः (त्वम्) तित्तैः सुगन्धिभिः तित्तरसवद्भिश्च, बनगजानां मदैः—वनगजमदैः वन्यहस्तिमदजलैः वासितम् सुरभितम् (तथा) जम्बूना कुञ्जैः प्रतिहतः रयः यस्य तत्—जम्बूकुञ्जप्रतिहतरयम् जम्बूपादपसमूहस्खलितबेगम् तस्याः रेवायाः तोयम् जलम् आदाय गृहीत्वा गच्छेः यायाः, हे घन जलद ! अनिलः वायुः अन्तः सारम् अन्तर्नीरवलम् त्वाम् मेघम् तेलयितुम् उत्थाप्य इतस्ततश्चालयितुम् न शक्यति नहि समर्थः भविष्यति, हि यतः रिक्तः अन्तः सारहीनः सर्वः एव लघुः लाघवयुक्तः भवति जायते, पूर्णता पूर्णत्वं गौरवाय गरिम्णे (भवति)।

प्रसंग—यक्ष कहता है कि हे जलद ! जब तुम आगे बढ़ोगे तब सारङ्ग तुम्हारे मार्ग को सूचित करेंगे।

“नीपं दृष्ट्वा हरितकपिशं केसरैरर्धरूढै

राविर्भूतप्रथममुकुलाः कन्दलीशचानुकच्छम्।

जग्ध्वारण्येष्वधिकसुरभिं गन्धमाघ्राय चोर्व्याः,

सारङ्गास्ते जललवमुचः सूचयिष्यन्ति मार्गम्” ॥ २१ ॥

अन्वय—अर्धरूढैः केसरैः हरितकपिशम् नीपम् दृष्ट्वा अनुकच्छम् आविर्भूतप्रथममुकुलाः कन्दलीः च जग्ध्वा, अरण्येषु उर्व्याः अधिकसुरभिम् गन्धम् आघ्राय च, सारङ्गा जललवमुचः ते मार्गम् सूचयिष्यन्ति।

NOTES

शब्दार्थ—अर्धरूढैः = आधे उगे हुए या विकसित हुए, **केसरैः** = पुष्पों के तन्तुओं या रेशों के द्वारा, **हरितकपिशम्** = हरित एवं धूसर वर्ण वाले (कपिश रंग-काला और पीला अथवा काला और लाल, इन दो रंगों के मिलने से बनता है, अतः इस रंग को धूसर कहा जाता है), **नीपम्** = कदम्ब पुष्प को, **दृष्ट्वा** = देखकर, **अनुकच्छम्** = उथले जल वाले प्रदेश में, **आविर्भूतप्रथममुकुलाः** = जिनमें पहली कलियाँ निकली हुई हैं, **कन्दलीः** = केलियों को, **जग्ध्वा** = खा करके, **अरण्येषु** = वनों में, **उर्व्या** = पृथिवी की, **अधिक सुरभिम्** = अधिक सुगन्धित गन्ध को, **आघ्राय—सूँघ करके**, **सारङ्ग** = भ्रमर, हरिण, गज, चातक, मयूर आदि, **जललवमुच** = जलकण बरसाने वाले, **ते** = तुम्हारे, **मार्गम्** = मार्ग को, **सूचयिष्यन्ति** = सूचित करेंगे अर्थात् दिखलायेंगे।

अनुवाद—अर्धोद्गत पुष्परेणों के द्वारा हरित और धूसर रंग वाले स्थल कदम्ब पुष्प को देखकर, उथले जल वाले प्रदेश में उन केलियों को जिनमें प्रथम बार कलियाँ निकली हैं, खाकर, वनों में पृथिवी की अधिक सुगन्धित गन्ध को सूँघ करके सारङ्ग अर्थात् भ्रमर, हरिण और गज, जलकणों की वर्षा करने वाले तुम्हारे मार्ग को सूचित करेंगे।

भावार्थ—यक्ष, मेघ से कहता है कि जब तुम आगे चलो, तब सारङ्ग (भ्रमर, हरिण, गज) क्रमशः अधिक विकसित केसरों के कारण हरित और कपिश वर्ण के स्थल कदम्ब पुष्प को देखकर, उथले प्रदेशों में प्रथम बार मुकुलित हुई केलियों को, खा कर और वनों में पृथिवी की सुगन्धित गन्ध को सूँघकर जल वर्षणशील तुम्हारे मार्ग को दिखलायेंगे।

संस्कृत व्याख्या—अर्धरूढैः एकभागोद्भूतैः केसरैः किञ्जल्कैः हरितकपिशम् कृष्णलोहितं वा नीपम् स्थलकदम्बपुष्पं दृष्ट्वा संप्रेक्ष्य, अनुकच्छम् कच्छप्रदेशसमीपे आविर्भूतप्रथममुकुलाः समुद्गतप्रथमकलिकाः कन्दलीः भूकदलीः जग्ध्वा भक्षयित्वा, अरण्येषु वनेषु उर्व्याः पृथिव्या अधिक सुरभिं गन्धम् आघ्राय घ्रात्वा व सारङ्गा भ्रमराः हरिणाः गजाश्च जललवमुचः जलकणवर्षणशीलस्य ते तव मेघस्य मार्गम् वर्त्म सूचयिष्यन्ति अनुमापयिष्यन्ति।

प्रसंग—यक्ष कहता है कि हे जलद ! तुम्हारी गर्जना से सिद्धजन अपनी प्रियाओं के सकम्प आलिङ्गनों को प्राप्त कर तुम्हारे प्रति कृतज्ञता प्रकट करेंगे—

“अम्भोबिन्दुग्रहणचतुरांश्चातकान् वीक्षमाणाः

श्रेणीभूताः परिगणनया निर्दिशन्तो बलाकः।

त्वामासाद्य स्तनितसमये मानयिष्यन्ति सिद्धाः

• सोत्कम्पानि प्रियसहचरीसम्भ्रमालिङ्गितानि॥ २२॥

अन्वय—अम्भोबिन्दुग्रहणचतुरान् चातकान् वीक्षमाणाः, श्रेणीभूताः, बलाकाः परिगणनया निर्दिशन्तः सिद्धाः स्तनितसमये सोत्कम्पानि प्रियसहचरीसम्भ्रमालिङ्गितानि आसाद्य त्वाम् मानयिष्यन्ति।

शब्दार्थ—अम्भोबिन्दुग्रहणचतुरान् = (वर्षा के) जल की बूँदों को ग्रहण करने में कुशल, चातकान् = चातक पक्षियों को, वीक्षमाणाः = देखते हुए (तथा) श्रेणीभूता = पंक्ति-बद्धाः लाइन बाँधे हुए। बलाकाः = बगुलों को, परिगणनया = गणना के द्वारा निर्दिशन्तः = (हाथ से) दिखलाते हुए, सिद्धाः = सिद्ध जन (देव विशेष) स्तनितसमय = (तुम्हारे) गर्जन के समय, सोत्कम्पानि = कम्पन के साथ (भयवश काँपते हुए) प्रियसहचरीसम्भ्रमालिङ्गितानि = अपनी प्रियाओं के द्वारा घबराहट के साथ किये गये आलिङ्गनों को, आसाद्य = प्राप्त करके, त्वाम् = तुम मेघ को, मानयिष्यन्ति = मानेंगे अर्थात् कृतज्ञता प्रकट करेंगे।

NOTES

अनुवाद—(वर्षा के) जल-बिन्दुओं को ग्रहण करने में चतुर चातक पक्षियों को देखते हुए (तथा) पंक्तिबद्ध बगुलों को गणना द्वारा (हाथ के संकेत से) दिखलाते हुए सिद्धजन तुम्हारे गर्जन के समय (भयवश) कम्पन के साथ अपनी प्रियाओं के द्वारा घबराहट के साथ किये गये आलिङ्गनों को प्राप्त करके तुमको मानेंगे अर्थात् तुम्हारे प्रति कृतज्ञता प्रकट करेंगे।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि हे जलद ! जल-बिन्दुओं को ग्रहण करने में चतुर चातकों को देखते हुए तथा पंक्तिबद्ध बलाकाओं को गिन-गिनकर दिखलाते हुए सिद्धजन, तुम्हारी गर्जना से भयवश सोत्कम्प प्रियालिङ्गनों को प्राप्त कर तुम्हारे प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करेंगे। तात्पर्य यह है कि पुरुष तो स्वभावतः प्रियालिङ्गनों के लिए उत्सुक रहता है, पर जबकि मेघ गर्जना से डरकर स्त्रियाँ स्वयं सिद्धजनों का आलिङ्गन करने लगेंगी तो सिद्ध स्वयं तुम्हारे प्रति कृतज्ञ होंगे।

संस्कृत व्याख्या—अम्भसा बिन्दूनां ग्रहणे चतुरास्तान्-अम्भोविन्दुग्रहणचतुरान् वर्षोदकविन्दादानकुशलान् चातकान् वीक्षमाणाः कौतुकवशात् पश्यन्तः (एवम्) श्रेणीभूताः बद्धपंक्तीः परिगणनया (एका द्वे तिस्रः इति प्रोच्य सणनया-हस्तसंकेतेन निर्दिशन्तः दर्शयन्तः सिद्धा सिद्धपुरुषाः स्तनित समये त्वद्गर्जनकाले सोत्कम्पानि उत्कम्पकाणि, प्रियसहचरीणां सम्भ्रमेण आलिङ्गितानि प्रियसहचरीसम्भ्रमालिङ्गितानि स्ववल्लभस्त्रीविभ्रमालिङ्गनानि आसाद्य प्राप्य त्वाम् मेघम् मानयिष्यन्ति त्वां प्रति स्वकृतज्ञतां प्रकटीकरिष्यन्ति)।

प्रसंग—यक्ष कहता है कि हे मेघ ! यद्यपि तुम्हारे मार्ग में अनेक विलम्ब के कारण उपस्थित होंगे, तथापि तुम्हें अपने मार्ग पर आगे ही बढ़ते जाना है, विलम्ब नहीं करना है—

“उत्पश्यामि द्रुतमपि सखे मत्प्रियार्थं यियासोः

कालक्षेपं ककुभसुरभौ पर्वते पर्वते ते।

शुक्लापाङ्गैः सजलनयनैः स्वागतीकृत्य केकाः

प्रत्युद्यातः कथमपि भवान् गन्तुमाशु व्यवस्येत्” ॥ २३ ॥

अन्वय—हे सखे मत्प्रियार्थं द्रुतम् अपि ते ककुभसुरभौ पर्वते पर्वते कालक्षेपम् उत्पश्यामि, सजलनयनैः शुक्लापाङ्गैः केकाः स्वागतीकृत्य प्रत्युद्यातः भवान् कथम् अपि आशु गन्तुम् व्यवस्येत्।

शब्दार्थ—सखे = हे मित्र। मत्प्रियार्थम् = मेरे प्रिय कार्य की सिद्धि के लिये, द्रुतम् अपि = शीघ्र भी, यियासोः = जाने की इच्छा रखने वाले, ते = तुम्हारे, ककुभसुरभौ = कुटज पुष्पों से सुगन्धित (कुटज—पर्वतीय चमेली) पर्वते पर्वते = प्रत्येक पर्वत पर, कालक्षेपम् = विलम्ब को, उत्पश्यामि = अनुमान कर रहा हूँ। सजलनयनैः = (आनन्दवश) अश्रुपूरित नेत्रों वाले, शुक्लापाङ्गैः = मयूरों के द्वारा (शुक्ल अपाङ्ग = सफेद आँखों की कोरों वाले, मयूर ही शुक्लापाङ्ग कहे जाते हैं), केकाः = मयूरों की बोलियों को (मयूर की बोली को ‘केका’ कहा जाता है) स्वागतीकृत्य = स्वागत करके (अर्थात् उनकी केका ध्वनियों को अपने स्वागत वचन के रूप में मान करके) प्रत्युद्यातः = (उनके द्वारा) स्वागत से सत्कृत होकर, कथमपि = किसी भी प्रकार, आशु = शीघ्र ही, गन्तु व्यवस्येत् = जाने के लिए प्रयत्न करना।

अनुवाद—यक्ष कहता है कि हे मित्र ! मेरे प्रियकार्य हेतु शीघ्र जाने के लिए इच्छुक भी तुम्हारे, कुटज पुष्पों से सुगन्धित प्रत्येक पर्वत पर विलम्ब का अनुमान कर रहा हूँ (अर्थात् सुगन्धित पर्वतों पर तुम्हें देर हो सकती है) (फिर भी तुमसे मेरी यह प्रार्थना है कि तुम्हें देखकर आनन्द से) अश्रुपूरित नेत्रों वाले मयूरों के द्वारा, अपनी केका ध्वनियों को तुम्हारे स्वागत वचन बनाकर उनके द्वारा स्वागत से सत्कृत हुए आप किसी प्रकार शीघ्र जाने के लिए प्रयत्न करना।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि हे मित्र ! यद्यपि तुम मेरे कार्य के लिए शीघ्र जाने को इच्छुक हो तथापि मैं यह अनुमान करता हूँ कि तुमको सुगन्धित पर्वतों पर विलम्ब हो सकता है, किन्तु मेरी प्रार्थना है कि जब तुम्हें देखकर आनन्दित हुए मयूर अपनी केका ध्वनियों से तुम्हारा स्वागत करें तो उसे अपने स्वागत सत्कार के रूप में ग्रहण कर शीघ्र ही आगे बढ़ने का प्रयास करना, अर्थात् पर्वतीय सुगन्धि और मयूरों के स्वागत सत्कार के लोभ में विलम्ब मत करना।

विशेष—प्रस्तुत श्लोक में मयूर वाणी केका पर स्वागत वचन का आरोप किया है और फिर उस आरोप्यमाण स्वागत वचन का प्रकृत प्रत्युद्-गमन में उपयोग किया गया है, इस आरोप्यमाण के प्रकृतोपयोगी होने से यहाँ परिणामालंकार है। “आरोप्यमाणस्य प्रकृतोपयोगित्वे परिणामः”।

संस्कृत व्याख्या—हे सखे मेघ ! मत्प्रियार्थम् मम प्रियकार्यं सिद्धयर्थम् द्रुतम् क्षिप्रम् (लघु क्षिप्रमरंद्रुतम्—अमरकोशः) यियासोः गन्तुमिच्छोः अपि ते तव ककुरभसुरभौ कुटजकुसुमसुगन्धिनि पर्वते पर्वते प्रतिपर्वतम् कालक्षेपम् समयविलम्बम् उत्पश्यामि सम्भावयामि (अपि च) सजलनयनैः सानन्दाश्रुपूरितनेत्रैः शुक्लापाङ्गै मयूरो वर्हिणो वर्हो शुक्लापाङ्ग शिखावलः इति कोषः) केकाः मयूरवाणीः (केका वाणी मयूरस्य—कोषः) स्वागतीकृत्य स्वागतवचनीकृत्य प्रत्युदयातः सत्कृतः भवान् मेघः कथमपि येन केनापि विधिना आशु सत्वरम् गन्तुम् यातुम् व्यवस्येत् प्रयतेत।

प्रसंग—इसके बाद मेघ के दशार्ण जनपद पहुँचने पर राजहंस वहाँ कुछ ही दिन और ठहरेंगे।

“पाण्डुच्छायोपवनवृत्तयः केतकैः सूचिभिन्नैः—

नीडारम्भैर्गृहवलिभुजा माकुलग्रामचैत्याः।

त्वय्यासन्ने परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः

सम्पत्स्यन्ते कतिपयदिनस्थायिहंसाः दशार्णाः” ॥ २४ ॥

अन्वय—त्वयि आसन्ने दशार्णाः सूचिभिन्नैः केतकैः पाण्डुच्छायोपवनवृत्तयः, गृहवलिभुजाम् नीडारम्भैः आकुलग्रामचैत्याः, परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः, कतिपय दिनस्थायिहंसाः (च) सम्पत्स्यन्ते।

शब्दार्थ—त्वयि = तुम्हारे अर्थात् मेघ के, आसन्ने = समीपवर्ती होने पर, दशार्णाः = दशार्ण जनपद (प्रदेश) सूचिभिन्नैः = कलियों के अग्रभागों पर खिले हुए, केतकैः = केतकी के पुष्पों से, पाण्डुच्छायोपवनवृत्तयः = पीली सी कान्ति वाली उपवनों की वाड़ों वाला (बाढ़ अथवा वृत्ति उन काँटेदार झाड़ियों या आवरणों को कहते हैं जो कि उपवनों के चारों ओर रक्षा की दृष्टि से लगाई जाती हैं इन वाड़ों की कान्ति कुछ-कुछ पीले रंग की थी) गृहवलिभुजाम् = गृह की बलि को खाने वाले काक चील आदि पक्षियों के, नीडारम्भैः = घोंसले बनाने के कार्यों से, आकुलग्रामचैत्याः = भरे हुए (व्याप्त) ग्राम-मन्दिरों वाला, परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः = पके हुए फलों से श्यामले जामुन के वनों से रमणीय, कतिपयदिनस्थायिहंसा = कुछ ही दिनों हंसों द्वारा निवास किये जाने वाला (अर्थात् जहाँ कुछ ही दिन हंस निवास करेंगे) सम्पत्स्यन्ते = हो जायेगा।

(यहाँ ‘दशार्ण’ शब्द जनपद या प्रदेश का वाचक है। संस्कृत में जनपद या प्रदेश वाची शब्दों का प्रयोग प्रायः बहुवचन में ही होता है, इस श्लोक के ‘दशार्णाः’ इस बहुवचनान्त प्रयोग के कारण ही उसके सभी विशेषण बहुवचनान्त हैं और ‘सम्पत्स्यन्ते’ यह क्रियापद भी बहुवचनान्त है, किन्तु दशार्ण एक प्रदेश का नाम है, अतः इसके अनुवाद में एकवचन की दृष्टि से ही अर्थ किया गया है)।

NOTES

अनुवाद—तुम्हारे समीपवर्ती होने पर दर्शार्ण प्रदेश कलियों के अग्रभागों पर खिले हुए केतकी के पुष्पों से, पीली सी कान्ति वाली उपवनों की वाड़ों वाला, घर की वलि (पूजा-सामग्री) को खाने वाले काक चील आदि पक्षियों के घोंसले बनाने के कार्यों से, व्याप्त ग्राम मन्दिरों वाला, पके हुए फलों से श्यामले जामुन के वनों से रमणीय तथा कुछ ही दिनों तक हंसों द्वारा निवास किये जाने वाला हो जायेगा।

भावार्थ—यक्ष मेघ से कहता है कि जब दशार्ण प्रदेश के समीप पहुँचोगे तब तुम वहाँ के उपवनों की वाड़ों को अग्रभाग पर खिले हुए केतकी के पुष्पों से पीली कान्ति वाली (देखोगे) वहाँ के ग्राम मन्दिर काक, चील आदि पक्षियों के घोंसलों से व्याप्त होंगे और पके हुए फलों से श्याम वर्ण के जामुन वन रमणीक होंगे। तथा अब हंस वहाँ कुछ ही दिन ठहरने वाले होंगे। तात्पर्य यह है कि तुम्हारे वहाँ पहुँचने पर वर्षा काल का आरम्भ जानकर वहाँ की स्थिति बदल जायेगी, केतकी के पुष्प खिल उठेंगे, काकादि पक्षी ग्राम मन्दिर में अपने घोंसले बनाने लगेंगे और फलों के पकने से जामुन वन रमणीक हो जायेंगे तथा हंस भी वर्षाकाल जानकर मान सरोवर जाने के लिए प्रस्तुत हो जायेंगे।

संस्कृत व्याख्या—त्वयि मेघे आसन्ने समीपवर्तिनि सति, दशार्णाः एतन्नामक जनपदाः सूचिभिर्नैः मुकुलाग्रभाग-विकसितैः केतकैः केतकीकुसुमैः, पाण्डुच्छाया उपवनानां वृतयो येषु ते—पाण्डुच्छायोपवनवृतयः पीतवर्णोद्यानकण्टकशाखावरणाः, गृहवभुजाम् काकादिपक्षिणाम् नीडारम्भैः कुलायनिर्माणैः आकुलग्रामचैत्याः व्याप्तग्राममन्दिराः, परिणतैः फलैः श्यामानि यानि जम्बूवनानि तैः अन्ताः रमणीयाः—परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः पक्वफलश्यामजम्बूवृक्षसमूहरभणीयाः, कतिपयानि च यानि दिनांनि तेषु तिष्ठान्तीति कतिपयदिनस्यायिनः ते च ते हंसाश्च—कतिपयदिनस्थायिहंसाः कतिपयदिवसनिवासिहंसाः सम्पत्स्यन्ते भविष्यन्ति।

प्रसंग—यक्ष कहता है कि दशार्ण प्रदेश की राजधानी विदिशा में पहुँचकर तुम वहाँ की वेत्रवती नदी का पान करोगे—

“तेषां दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणां राजधानीं,

गत्वा सद्यः फलमविकलं कामुकत्वस्य लब्ध्वा।

तीरोपान्तस्तनितसुभगं पास्यसि स्वादु यस्मात्,

सभ्रू भङ्ग मुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोर्मि” ॥२५॥

अन्वय—दिक्षुप्रथितविदिशालक्षणम् तेषाम् राजधानीम् गत्वा सद्यः कामुकत्वस्य अविकलम् फलम् लब्ध्वा, यस्मात् वेत्रवत्याः स्वादु खलोर्मि पयः (त्वम्) सभ्रूभङ्गम् मुखम् इव तीरोपान्तस्तनितसुभगम् (यथा स्यात् तथा) पास्यसि।

शब्दार्थ—दिक्षु—दिशाओं अर्थात् सर्वत्र, प्रथितविदिशालक्षणम् = प्रसिद्ध विदिशा नामवाली, तेषाम् = उस दशार्ण जनपद की, राजधानीं गत्वा = राजधानी में जाकर, कामुकत्वस्य = कामी होने का, अर्थात् स्त्रियों के उपभोग की कामना करने वाले होने का, अविकलम् फलम् = सम्पूर्ण फल को, (तुम) सद्यः = तुरन्त, लब्ध्वा = प्राप्त करोगे, यस्मात् = क्योंकि (वहाँ तुम) स्वादु = स्वादिष्ट मधुर, चलोर्मि = चञ्चल लहरों वाले, वेत्रवत्याः = वेत्रवती नदी के, पयः = जल को, सभ्रूभङ्गम् मुखम् इव = नायिका के भ्रूविलास से युक्त मुख के समान, तीरोपान्तस्तनितसुभगम् = किनारों के समीप गर्जन करने से सुन्दरतापूर्वक, पास्यसि = पिओगे।

अनुवाद—दिशाओं में सर्वत्र प्रसिद्ध विदिशा नामक उस दशार्ण की राजधानी में जाकर कामुकता का सम्पूर्ण फल (तुमको) तुरन्त प्राप्त होगा, क्योंकि (तुम वहाँ) स्वादिष्ट एवं तरंगित वेत्रवती नदी के जल को, भू विलास युक्त (नायिका के) मुख की भाँति, तटों के समीप गर्जन से सुन्दरतापूर्वक, पान करोगे।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि दशार्ण की राजधानी विदिशा में पहुँचकर तुमको वहाँ कामुकता का अर्थात् नायिका की उपभोग कामना का सम्पूर्ण फल प्राप्त होगा, क्योंकि तुम वहाँ स्वादिष्ट एवं तरंगित वेत्रवती नदी के जल को उसी भाँति पान करोगे जैसे कि कोई कामुक नायिका के भू विलास युक्त मुख अर्थात् अधर का पान करता है और तुम्हारा इस प्रकार से पान करना तटप्रदेश पर गर्जन करने से सुन्दर लगेगा।

विशेष—प्रस्तुत श्लोक में मेघ पर नायक के व्यवहार का और वेत्रवती नदी पर नायिका के व्यवहार का समापरोपण किया गया है, अतः यहाँ समासोक्ति अलंकार है। वेत्रवती के तरंगित जल को नायिका के भूभङ्गयुक्त मुख से उत्प्रेक्षित किया गया है अतः उत्प्रेक्षालंकार भी है। इस प्रकार इन दोनों अलंकारों में परस्पर अंगान्गीभाव होने से संकर अलंकार है। 'तीरोपान्तस्तनित सुभगम्' यह पद क्रियाविशेषण है। इससे कवि ने कामुक नायक की भणति विशेष की ओर भी संकेत किया है।

कामीजनों के लिए अधरपान सुरत से भी अधिक सुखकर होता है और यही सुरत का सम्पूर्ण फल भी है "कामिनामधरस्वादः सुरतादतिरिच्यते।"

संस्कृत व्याख्या—दिक्षु सर्वासु दिशासु, प्रथितं विदिशा इति लक्षणं यस्याः सांताम्—प्रथितविदिशालक्षणाम् प्रसिद्धविदिशानामधेयाम् लक्षणं नाम्नि चिन्हे च—कोषः तेषाम् दशार्णजनपदानाम् राजधानीम् प्रधाननगरीम् (प्रधान नगरी राज्ञां राजधानीति कथ्यते) गत्वा प्राप्य सद्यः सत्वरमेव कामुकत्वस्य कामुकतायाः अविकलम् सम्पूर्णम् फलम् लब्ध्वा लप्स्यते। यस्मात् यतः (त्वम् तत्र) वेत्रवत्याः नद्योः स्वादु स्वादिष्टम् मधुरमिति यावत् चलोर्मि चञ्चलतरङ्गयुक्तम् पयः जलम् सभूभङ्गयुक्तम् मुखमाननं, अधरमित्यर्थः इव, तीरोपान्ते यत् स्तनितम् तेन सुभगम् तथा स्यात्तथा पास्यसि।

प्रसंग—यक्ष कहता है कि विदिशा के समीप नीचैः नामक पर्वत पर तुम विश्राम कर लेना।

“नीचैराख्यं गिरिमधिवसेस्तत्र विश्रामहेतोः,

स्त्वत्संपर्कात् पुलकितमिव प्रौढपुष्पैः कदम्बैः।

यः पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिर्नागराणां—

मुद्दामानि प्रथयति शिलावेश्मभिः यौवनानि ॥ २६ ॥

अन्वय—तत्र विश्रामहेतोः प्रौढपुष्पैः कदम्बैः त्वत्संपर्कात् पुलकितम् इव नीचैराख्यम् गिरिम् अधिवसेः, यः पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिः शिलावेश्मभिः नागराणाम् मुद्दामानि यौवनानि प्रथयति।

शब्दार्थ—तत्र = वहाँ पर अर्थात् विदिशा के समीप, विश्रामहेतोः = विश्राम के लिए, प्रौढपुष्पैः = पूर्णतया विकसित फूलों वाले, कदम्बैः = कदम्ब वृक्षों से, त्वत्संपर्कात् = तुम्हारे अर्थात् मेघ के संसर्ग से, पुलकितम् इव = मानो रोमांचित हुए, नीचैराख्यम् = 'नीचैः' इस नाम वाले, गिरिम् = पर्वत पर, अधिवसेः = ठहर जाना, यः = जो नीचैः नामक पर्वत, पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिः = वेश्याओं की रतिक्रीड़ा में (उत्पन्न) गन्ध को प्रकट करने वाले, शिलावेश्मभिः = शिलागृहों द्वारा अर्थात् कन्दराओं द्वारा, नागराणाम् = रसिक नागरिक जनों के, मुद्दामानि = उत्कट, यौवनानि = यौवनकाल की (क्रीड़ाओं को), प्रथयति = प्रकट करता है।

NOTES

अनुवाद—वहाँ (विदिशा के पास) विश्राम के लिए (तुम) पूर्णतया विकसित पुष्पों वाले कदम्ब वृक्षों से, तुम्हारे संसर्ग में रोमांचित जैसे प्रतीत होने वाले नीचैः नामक पर्वत पर ठहर जाना जो कि पर्वत वेश्याओं की रति क्रीड़ा में (उत्पन्न) गन्ध को प्रकट करने वाले शिलागृहों के द्वारा रसिक नागरिक जनों के उत्कट यौवन (की क्रीड़ाओं को) प्रकट करता है।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि हे मेघ तुम विदिशा के समीप विश्राम के लिए नीचैः नामक पर्वत पर ठहर जाना, यह पर्वत उस समय तुम्हारे सम्पर्क को प्राप्त कर, अपने पूर्ण विकसित कदम्ब वृक्षों से पुलकित जैसा प्रतीत होगा। यह पर्वत वेश्याओं की रतिक्रीड़ा के समय उत्पन्न गन्ध को प्रकट करने वाले शिलागृहों के द्वारा सरस नागरिकों के उत्कट यौवन को प्रकट करता है।

विशेष—प्रस्तुत श्लोक में 'त्वत्संपर्कात् पुलकितमिव' में उत्प्रेक्षाकांकार है, क्योंकि मेघ के सम्पर्क से अपने कदम्ब वृक्षों के विकसित हो जाने से मानो वह रोमाञ्चित जैसा स्थित हो जायेगा। कदम्ब का पुष्प भी रोमाञ्चित जैसा देखने में आता है।

संस्कृत व्याख्या—तत्र विदिशासमीपे विश्रामहेतोः श्रमापनयनार्थम्, प्रौढपुष्पैः पूर्णविकसितैः कदम्बैः नीपवृक्षैः त्वत्संपर्कात् तव संसर्गात् पुलकितम् रोमाञ्चितम् इव यथा (स्थितम्) नीचैराख्यम् नीचैरिति नामकम् गिरिम् अचलम् अधिवसेः अधितिष्ठेः, यः नीचैराख्याचलः, पण्याश्च ताः स्त्रियः तासाम् रतिषु यः परिमलः तम् उद्गिरन्ति तैः—पण्यस्त्रीरतिपरिमोदगारिभिः पण्याः क्रेयाः याः स्त्रियः पण्यस्त्रियः वेश्या इत्यर्थः (वारस्त्री गणिका वेश्या पण्यस्त्री रूपजीविनी—कोषः) तासां रतिषु यः विमर्दोत्थः परिमलः (विमर्दोत्थे परिमलो गन्धे जनमनोहरे—इत्यमरः) तं गन्धविशेषमु (गिरन्ति आविष्कुर्वन्ति तैः—पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिः वेश्यारतिक्रीडाविमर्दोत्थगन्धविशेषाविष्कुर्वन्ति शिलावेशमभिः पाषाणगृहैः कन्दरैरिति यावत् नागराणाम् रसिक नागरिकजनानाम् उद्दामानि बन्धरहितानि उत्कटानि यौवनानि, तारुण्यानि प्रथयति प्रख्यापयति।

प्रसंग—यक्ष कहता है कि तुम नीचैः गिरि पर विश्राम करके फिर अपने जल कणों से तत्रत्य जुही की कलियों को सींचते हुए पुष्पालावी स्त्रियों से परिचित होकर आगे जाना—

विश्रान्तः सन् व्रज वननदीतीरजातानि सिञ्च-

नुद्यानानां नवजलकणैर्यूथिकाजालकानि।

गण्डस्वेदापनयनरुजा क्लान्तकर्णोत्पलानां

छायादानात् क्षणपरिचितः पुष्पलावीमुखानाम् ॥ २७ ॥

अन्वय—विश्रान्तः सन् वननदीतीरजातानि उद्यानानाम् यूथिजालकानि नवजलकणैः सिञ्चन्, गण्डस्वेदापनयनरुजा क्लान्तकर्णोत्पलानाम् पुष्पलावीमुखानाम् छायादानात् क्षण परिचितः (सन्) व्रज।

शब्दार्थ—विश्रान्तः सन् = आराम करके अर्थात् नीचैः गिरि पर विश्राम करके, वननदीतीरजातानि = वन की नदियों के किनारों पर स्वयं उगी हुई, उद्यानानाम् = उपवनों की, यूथिकाजालकानि = जुही की कलियों को, नवजलकणैः = नये जल की बूँदों से, सिञ्चन् = सींचते हुए अर्थात् उन पर बरसते हुए, गण्डस्वेदापनयनरुजा क्लान्तकर्णोत्पलानाम् = कपोलों के पसीने को पोंछने (से उत्पन्न) पीड़ा से मुझाये हुए कर्णोत्पलों वाले (कर्णोत्पल = कान में आभूषण के रूप में पहने गये कमल), पुष्पलावीमुखानाम् = पुष्प चुनने वाली अर्थात् मालिनी स्त्रियों के मुखों को, छायादानात् = छाया देने से, क्षणपरिचितः = क्षण भर परिचित होकर, व्रज = जाना।

अनुवाद—(हे मेघ नीचैः गिरि पर) विश्राम करके, वन की नदियों के किनारों पर स्वयं उगी हुई, उपवनों की, जुही की कलियों को नये जल बिन्दुओं से सींचते हुए, (तथा) कपोलों के पसीने को पोंछने से (उत्पन्न) पीड़ा से मुझाये हुए कर्णोत्पलों वाले, पुष्प चयन करने वाली मालिनों के मुखों को छायादान से क्षणभर परिचित होकर (आगे) चले जाना।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि हे मेघ ! नीचैः गिरि पर विश्राम करने के बाद तुम वन नदियों के किनारे स्वयंजात, उपवनों की जुही की कलियों पर अपने नूतन जल बिन्दुओं से वर्षा करना, तदनु वहाँ जो मालिने, फूल चुन रही होंगी और धूप के कारण आने वाले पसीने को अपने कपोलों से पोंछ रही होंगी, जिससे कि उनके कर्णोत्पल मुझाये गये होंगे ऐसी मालिनों के मुखों पर छाया करके और इस प्रकार उनके क्षण-भर परिचित होकर पुनः अपने मार्ग पर चल देना।

संस्कृत व्याख्या—विश्रान्तः सन् नीचैः गिरौ अपतश्रमः सन् वननदीतीरजातानि काननसरितीरोद्गतानि अकृत्रिमाणीति यावत्, उद्यानानाम् उपवनानाम् यूथिकाजालकानि मागधोकुसुममुकुलानि (जालिकेत्यस्य कलिकेत्यर्थकोरक जालक कलिका कुडमलमुकुलानि तुल्यानि-कोषः) नवजलकणैः नवोदकबिन्दुभिः सिञ्चन् आद्रीकुर्वन्, (तथा) गण्डयोः स्वेदस्यापनयनेन या रुजा तथा क्लान्तानि कर्णयो रूतपलानि येषां तेषाम्—गण्डस्वेदापनयनरूप क्लान्तकणोत्पलानाम् कपोलस्वेदापनयनपीडाम्लानश्रूतिकलानाम् पुष्पाणि लुनन्ति इतिपुष्पलाव्ये, तासौ मुखानि तेषाम् पुष्पलावीमुखानाम् पुष्पावचायिकाननानाम् छायादानात् अनाताघटानाल क्लान्तिदानाद्वा (छाया सूर्यप्रिया कान्तिः) प्रतिबिम्बमनातप इत्यमरः) कामुकवर्धनान् कामिनीनां स्वभावतो मुखविकासो जायते। क्षणपरिचितः क्षणमात्रं संवृष्ट मद (न तु चिरन्) ब्रज गच्छ।

प्रसंग—यक्ष मेघ से कहता है कि उत्तर की ओर चलते हुए तुमको यद्यपि कुछ टेढ़ा चलना पड़ेगा तथापि तुम उज्जयिनी से विमुख मत होना।

“वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां,
सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखो मा स्म भूरुज्जयिन्याः।
विद्युद्दामस्फुरितचकितैस्तत्र पौराङ्गनानां,
लोलापाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोऽसि” ॥ २८ ॥

अन्वय—यदपि उत्तराशाम् प्रस्थितस्य भवतः पन्थाः वक्रः (तदपि) उज्जयिन्याः सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखः मा स्म भूः। तत्र यदि पौराङ्गनानाम् विद्युद्दामस्फुरित चकितैः लोलापाङ्गैः लौचनैः न रमसे, “वञ्चितः असि।”

शब्दार्थ—यदपि = यद्यपि, उत्तराशाम् = उत्तर दिशा की ओर, प्रस्थितस्य भवतः = चले हुए आपका, पन्थाः = मार्ग, वक्रः = टेढ़ा (पड़ेगा तथापि), उज्जयिन्याः = उज्जयिनी नाम नगरी के, सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखः = प्रासादों की अट्टालिकाओं के परिचय से पराङ्मुख, मा स्म भूः = मत होना, यदि = अगर, तत्र = वहाँ उज्जयिनी में, पौराङ्गनानाम्—नगर सुन्दरियों के, विद्युद्दामस्फुरित चकितैः—बिजली की रेखा के चमकने से विस्मित, लोलापाङ्गैः = चञ्चल कटाक्षों वाले, लोचनैः = नयनों से, न रमसे = आनन्द नहीं लेते (तो) वञ्चितोऽसि = वञ्चित ही रहोगे।

अनुवाद—यद्यपि उत्तर दिशा की ओर चले हुए आपका मार्ग टेढ़ा (पड़ेगा तथापि) उज्जयिनी नगरी के प्रासादों की अट्टालिकाओं के परिचय से विमुख मत होना यदि (तुम) वहाँ नगरी की सुन्दरी स्त्रियों के, विद्युल्लता की रेखा की चमक से चकित चञ्चल कटाक्षों वाले नयनों से आनन्द नहीं लेते (तो) वञ्चित ही रहोगे अर्थात् जीवन ही व्यर्थ होगा।

NOTES

भावार्थ—यक्ष कहता है कि हे मेघ ! उत्तर दिशा को जाते हुए तुम्हारा मार्ग यद्यपि टेढ़ा पड़ेगा, तथापि तुम उज्जयिनी के प्रासादों की अट्टालिकाओं के परिचय से पराङ्मुख मत होना, अर्थात् तुम उन्हें अवश्य देखना और यदि तुम वहाँ की सुन्दरी स्त्रियों के, बिजली की चमक से चौंधियाये या चकाचौंध हुए चञ्चल कटाक्षपातों वाले नेत्रों से आनन्द प्राप्त नहीं करते तो अपने को वञ्चित ही समझना।

संस्कृत व्याख्या—यद्यपि यद्यपि उत्तराशाम् उत्तरदिशम् प्रस्थितस्य गतवतः भवतः मेघस्य पन्थाः मार्गः वक्रः तिर्यक् (भविष्यति) (तदपि) उज्जयिन्याः अवन्तिकायाः सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखः सौधानामुत्सङ्गेषु यः प्रणयस्तस्माद् विमुखः प्रसादाट्टालिकापरिचयपराङ्मुखः (प्रणयः स्यात् परिचये याज्यां सौहृदेऽपि च-कोषः) मा स्म भूः न भव, तत्र उज्जयिन्याम् यदि पौराङ्गनानाम् नागरनारीकाम्, विद्युद्दामस्फुरितचकितैः विद्युद्दाम्नः स्फुरितेभ्यः चकितैः विद्युल्लातास्फुरणचमत्कृतैः लोलापाङ्गै चञ्चलकटाक्षः लोचनैः नयनैः न रमसे न क्रीडसि नानन्दमनुभवसीत्यर्थः, वञ्चितः प्रतारितः असि, जीवनलाभविरहितः असि इत्यर्थः।

प्रसंग—यक्ष कहता है कि उज्जयिनी जाते हुए तुम निर्विन्ध्या नदी पर पहुँच कर रसानुभव प्राप्त करोगे।

“वीचिक्षोभस्तनितविहागश्रेणिकाञ्चीगुणायाः,

संसर्पन्त्याः स्खलितसुभगं दर्शितावर्तनाभेः।

निर्विन्ध्याया पथि भव रसाभ्यन्तर संनिपत्य,

स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु” ॥ २९ ॥

अन्वय—वीचिक्षोभस्तनितविहागश्रेणिकाञ्चीगुणायाः स्खलितसुभगं संसर्पन्त्याः दर्शितावर्तनाभेः निर्विन्ध्यायाः पथि संनिपत्य रसाभ्यन्तरः भव, हि स्त्रीणाम् प्रियेषु विभ्रमः आद्यम् प्रणयवचनम्।

शब्दार्थ—वीचिक्षोभस्तनितविहागश्रेणिकाञ्चीगुणायाः = तरंगों के क्षोभ अर्थात् लहरों की हलचल के कारण शब्द करने वाले (बोलने वाले) पक्षियों की पंक्ति रूपी करधनी की लड़ी वाली, (वीचि = तरंगों, क्षोभ = उठना गिरना, स्तनित = कूजन, विहागश्रेणि = पक्षियों की पंक्ति, काञ्ची = करधनी, गुण = लड़ी) स्खलितसुभगम् संसर्पन्त्याः = स्खलित अर्थात् स्खलन = लड़खड़ाते के कारण सुन्दरतापूर्वक या सुन्दर रूप में (ढालू और पथरीले ऊँचे नीचे बहाव के कारण लड़खड़ाती हुई गति से सुन्दर रूप में या मस्त चाल में झूमती हुई, संसर्पन्त्याः = बहती हुई, दर्शितावर्तनाभेः = भँवर रूप नाभि दिखलाने वाली, निर्विन्ध्याः = निर्विन्ध्या नाम की नदी के, पथि = मार्ग में या जल प्रवाह में, संनिपत्य = पड़कर या चाव से मिलकर, रसाभ्यन्तरः = अपने भीतर जल रखने वाला अथवा आनन्दानुभव करने वाले, भव = बनो, हि = क्योंकि, स्त्रीणाम् = कामिनियों का, प्रियेषु = प्रियजनों के विषयों में, विभ्रमः = विलास या हाव भव प्रदर्शन, आद्यं प्रणयवचनम् = प्रथम प्रीति वचन अथवा रति प्रार्थना वचन (होता) है।

अनुवाद—लहरों की हलचल से शब्द करने वाले पक्षियों की पंक्ति रूपी करधनी की लड़ी वाली (अर्थात् जो निर्विन्ध्या रूपिणी नायिका तरंगों के विक्षोभ के कारण शब्दायमान पक्षिपंक्ति रूपी करधनी की लड़ी को धारण किये हुए है) चाल के लड़खड़ाने के कारण सुन्दरतापूर्वक बहती हुई (अर्थात् ढालू और पथरीले ऊँचे-नीचे बहाव के कारण निर्विन्ध्या नदी सुन्दरतापूर्वक बह रही थी जैसे कोई नायिका मद वश धीरे-धीरे मस्त चाल में झूमती हुई चलती है) और भँवर रूप नाभि दिखलाने वाली (अर्थात् मानो निर्विन्ध्या नायिका भँवररूप अपनी नाभि को रतिकामनावश दिखला रही हो) निर्विन्ध्या नदी के मार्ग में अर्थात् जल प्रवाह में पड़कर अर्थात् उससे बड़े चाव से मिलकर अपने में जल भर लेने वाले अर्थात् आनन्द रस का अनुभव करने वाले बनो, क्योंकि नायिकाओं का अपने प्रियजनों के प्रति हाव भाव प्रदर्शन ही प्रथम रति प्रार्थना वाक्य होता है।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि जब तुम निर्विन्ध्या नदी के पास पहुँचोगे तो तुम्हें वहाँ उससे मिलकर नायिकोपभोग जैसा रतिसुख प्राप्त होगा, क्योंकि उस समय निर्विन्ध्या नायिका तरंग विक्षोभ के कारण शब्दायमान पक्षि पंक्ति रूप करधनी की लड़ी को धारण किये होगी और स्खलित प्रवाह के कारण सुन्दरतापूर्वक उसी प्रकार बह रही होगी जैसे मदवश कोई कामिनी मस्त चाल से झूमती हुई धीरे-धीरे चलती है। नदी में उठने वाले भँवर ही उस समय निर्विन्ध्या नायिका का रतिकामनावश अपना नाभि प्रदर्शन होगा, ऐसी निर्विन्ध्या नदी के जल प्रवाह में पड़कर तुम आगे के लिए जल भर लेना, जैसे कोई नायक, रतिकामनावश मस्त चाल से चलने वाली एवं अपने नाभि आदि सुन्दर अंगों का प्रदर्शन करने वाली नायिका से बड़े चाव से मिलकर रतिसुख को प्राप्त करता है और इस सुखानुभूति के समय तुम यह न सोचना कि नायिका द्वारा बिना मुख से प्रणय निवेदन किये, यह आनन्द प्राप्ति कैसे होगी ? क्योंकि कामिनियों का अपने प्रियतम के प्रति हाव भावों का प्रदर्शन ही उनका प्रथम रति प्रार्थना वाक्य होता है।

विशेष—प्रस्तुत श्लोक में कवि ने मेघ को नायक और निर्विन्ध्या नदी को नायिका के रूप में वर्णित किया है। तरंग विक्षोभवश शब्दायमान पक्षि ही उसकी बजती हुई करधनी है। स्खलित प्रवाह ही उसका मस्त चाल से चलना है और भँवरों का ही उठना ही उसका नाभि प्रदर्शन है। इस प्रकार के हाव भावों का प्रदर्शन कर वह मानो रति प्रार्थना कर रही है। अतः मेघ से कहा जा रहा है कि अपने अंग प्रदर्शनादि द्वारा हाव भाव दिखलाने वाली उस निर्विन्ध्या नायिका से मिलकर तुम रति सुख लाभ करना। हाव भाव प्रदर्शन ही स्त्रियों का रतिप्रार्थना वचन होता है वे मुख से नहीं कहतीं। रस शब्द का अर्थ, जल एवं शृंगार रस है, अतः यक्ष मेघ से जल भरने को तथा शृंगार रसानुभव के लिए कहता है।

इस प्रकार यहाँ एक देश विवर्ति सांगरूपक अलंकार है, क्योंकि यहाँ पर विहगा-श्रेणि पर काञ्चीगुण, का और आवर्त पर नाभि का आरोप तो शब्दतः किया गया है पर निर्विन्ध्या पर नायिकात्व का आरोप अर्थतः किया गया है। रस शब्द श्लिष्ट है अतः श्लेष अलंकार भी है। स्त्रीमाणाद्यं प्रणयवचनम् इत्यादि पंक्ति में वर्णित एक लोक सामान्य सिद्धान्त से पूर्व की तीन पंक्तियों में वर्णित विशेष तथ्य का समर्थन किया गया है अतः अर्थान्तरन्यास अलंकार भी है, और इन तीनों का परस्पर अंगाङ्गीभाव होने से संकर अलंकार है।

संस्कृत व्याख्या—वीचीनां क्षोभेण स्तनिता ये विहगाः तेषां श्रेणिः एव काञ्चीगुणः यस्यास्तस्यः— वीचिक्षोभस्तनितविहागश्रेणिकाञ्चीगुणायाः तरंगसंचलनमुखरहंस-पंक्तिमेखलागुणायः स्खलितसुभगं संसर्पन्त्याः स्खलनसुन्दर यथास्यात्तथा प्रवहन्त्याः गच्छन्त्याश्च, दर्शितः आवर्त एव नाभिर्यया सा तस्याः—दर्शितावर्तनाभेः प्रकटितसलिलभ्र-मनाभेः निर्विन्ध्यायाः एतन्नामिकायाः विन्ध्योद्भवायाः सरितः पथि मार्गे जलप्रवाहे इत्यर्थं संनिपत्य संगम्य रसाभ्यन्तरः जलाभ्यन्तुरः अन्यत्र शृङ्गाररसाभ्यन्तरङ्ग भव तस्याः निर्विन्ध्यानायिकायाः रस-मनुभवेत्यर्थः। हि यतः स्त्रीणाम् कामिनीनाम् प्रियेषु स्वाप्रियतमविषये विभग्नः विलास एवं आद्यम् प्रथमम् प्रणयवचनम् रतिप्रार्थनावक्यम् (भवति) कामिन्यः स्वभावादेव विलासैरेव स्वरागप्रकाशनं कुर्वन्ति नतु कण्ठतः कथ-यन्ति इतिभावः।

प्रसंग—यक्ष मेघ से कहता है कि वह उस विरहिणी निर्विन्ध्या की विरहजन्य कृशता एवं पीलिमा को दूर करे—

“वेणीभूतप्रतनुसलिलाऽसावनीतस्य सिन्धुः,

पाण्डुच्छाया तटरुहतरुभ्रं शिभिर्जीर्णपणैः।

सौभाग्यं ते सुभग विरहावस्थया व्यञ्जयन्ती,,

कार्श्यं येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्यः” ॥ ३० ॥

अन्वय—सुभग ! वेणीभूत प्रतनुसलिला तटरुभ्रं शिभिः जीर्णपर्णैः पाण्डुच्छाया विरहावस्थया अतीतस्य ते सौभाग्यं व्यञ्जयन्ती असौ सिन्धुः येन विधिना काश्यम् त्यजति स त्वया एव उपपाद्यः।

NOTES

शब्दार्थ—हे सुभग = सौभाग्य-शालिन् मेघ ! (स खलु सुभगो यमङ्गनाः कामयन्ते—वह पुरुष, जिसकी प्राप्ति के लिए कामपरवशा कामिनी इच्छा करें, सुभग या सौभाग्यशाली कहा जाता है वस्तुतः उसे सुभग ही कहना चाहिए जिसके विरह में उसकी प्रेमिका तड़पती हो) **वेणीभूतप्रतनुसलिला =** वेणी (चोटी) के आकार की बनी हुई पतली जल (धार) वाली, **तटरुहतरुभ्रंशिभिः =** किनारे पर उगे हुए वृक्षों से गिरने वाले, **जीर्णपर्णैः =** पुराने (सूखे एवं पीले) पत्तों से, **पाण्डुच्छाया =** पीली कान्ति वाली, **विरहावस्थया =** विरह की दशा से अर्थात् उक्त प्रकार की कृशता एवं पीली कान्ति रूप विरहावस्था से, **अतीतस्य ते =** उसे छोड़कर इतने दिनों से गए हुए अर्थात् प्रोषित हुए तुम्हारे, **सौभाग्यम् =** सौभाग्य को अर्थात् तुम्हारे सुभग होने को (सुभग वही होगा जिसकी प्रेमिका उसके विरह में तड़पती हो) **व्यञ्जयन्ती =** प्रकट करती हुई, **असौ सिन्धुः =** यह पूर्वोक्त पदी निर्विन्ध्या, **येन विधिना =** जिस विधि या प्रकार से, **काश्यम् त्यजति =** (विरहजन्य) कृशता छोड़ दे, **स—** वह विधि, **त्वया एव =** तुम्हारे द्वारा ही, **उपपाद्यः =** की जानी चाहिए।

अनुवाद—हे सौभाग्यशालिन् मेघ चोटी के आकार की बनी हुई पतली जलधार वाली और किनारों पर उगे हुए वृक्षों से गिरने वाले जीर्ण (सूखे और पीले) पत्तों से पीली कान्ति वाली, (कृशता एवं पीली कान्ति, विरहावस्था के सूचक हैं) (इस प्रकार की अपनी) विरहदशा से, (बहुत दिनों से) प्रोषित हुए तुम्हारे सौभाग्य को (सुभग होने की विशेषता को) प्रकट करती हुई निर्विन्ध्या नदी जिस विधि से अपनी कृशता को छोड़ दे वह विधि तुम्हारे द्वारा ही की जानी चाहिए।

भावार्थ—यक्ष मेघ से कहता है कि तुम बड़े सौभाग्यशाली हो, क्योंकि तुम्हारे इतने दिनों तक दूर रहने के कारण जल की कमी से निर्विन्ध्या नदी की जलधार पतली पड़ गई है, और उसके किनारे पर उगे हुए वृक्षों से जो पुराने सूखे और पीले पत्ते उसमें गिरते हैं उनसे उसका रंग भी पीला पड़ गया है। इस प्रकार की निर्विन्ध्या नदी अब एक विरहिणी नायिका के समान, पतली एवं एक बँधी हुई चोटी वाली तथा पीली कान्ति वाली प्रतीत होती है (विरह की अवस्था में स्त्रियाँ केश नहीं काढ़ती अपितु सब केशों को एक साथ चोटी के रूप में बाँध लेती हैं, चिन्तावश वे दुबली और पीली भी हो जाती हैं।) अतः हे मेघ ! यह तुम्हारा सौभाग्य है कि निर्विन्ध्या नायिका तुम्हारे विरह से पीड़ित है। अतः अब तुम्हें वह विधि करनी चाहिए जिससे कि उसकी विरह कृशता दूर हो सके, अर्थात् तुम्हें जल बरसा कर नदी की कृशता को दूर कर देना चाहिए, तुम्हारे द्वारा जल बरसाने पर वृक्षों से सूखे पत्ते नहीं गिरेंगे अतः उसका पीलापन भी दूर हो जायेगा और निर्विन्ध्या नायिका की विरहजन्य कृशता को संयोग द्वारा दूर कर देना चाहिए, सम्भोग से सन्तुष्ट होने पर उसकी कान्ति बदल जायेगी।

विशेष—यहाँ लिङ्गसाम्य के माध्यम से निर्विन्ध्या पर नायिका के और मेघ पर नायक के व्यवहार का समारोपण होने से 'समासोक्ति' अलंकार है।

संस्कृत व्याख्या—हे सुभग सौभाग्यशालिन् मेघ ! वेणीभूतं प्रतनु सलिलं यस्याः सा वेणीभूतप्रतनुसलिला वेण्याकारंस्तोकजला, तटयो रुहा ये तरवस्तेभ्यो भ्रश्यन्तीति तटरुहतरुभ्रंशिभिः तैः—तटरुहतरुभ्रंशिभिः तीरजातपादपपातिभिः जीर्णपर्णैः शुष्कपीत-पत्रैः पाण्डुच्छाया पीतकान्तिमती विरहावस्थया वियोगदशया अतीतस्य एतावन्तं कालं प्रोषितस्य ते मेघस्य सौभाग्यम् सुभगत्वम् व्यञ्जयन्ती प्रकटयन्ती असौ पूर्वोक्ता सिन्धुः नदी निर्विन्ध्या या येन विधिना प्रकारेण काश्यम् कृशतां त्यजति अपनयति स विधिः त्वाया मेघेन एव उपपाद्यः करणीयः।

प्रसंग—यक्ष मेघ से कहता है कि तुम अवन्ति प्रदेश में पहुँचकर, स्वर्ग के एक खण्ड के समान शोभाशालिनी उज्जयिनी नगरी में जाना—

मेघदूतम् (पूर्वमेघः)

“प्राप्यावन्तीनुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान्,
पूर्वोद्दिष्टा-मनुसर पुरीं श्रीविशालां विशालाम्।
स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वरिणां गाँ गतानाम्
शेषैः पुण्यैर्हतमिव दिवः कान्तिमत्खण्डमेकम्” ॥३१॥

NOTES

अन्वय—उदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान् अवन्तीन् प्राप्य, पूर्वोद्दिष्टाम् श्रीविशालाम् विशालाम् पुरीम् अनुसर, (या) सुचरितफले स्वल्पीभूते (सति) ग्राम् गतानाम् स्वर्गिणाम् शेषैः पुण्यैः हतम् दिवः एकम् कान्तिमत् खण्डम् इव (अस्ति)।

शब्दार्थ—उदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान् = उदयन की कथाओं में प्रवीण ग्रामीण वृद्धजनों वाले, अवन्तीन् = अवन्ति प्रदेश में, प्राप्य = पहुँचकर, पूर्वोद्दिष्टाम् = पहले बताई गई, श्रीविशालाम् = सम्पत्तिपरिपूर्णा, विशालाम्, पुरीम् = उज्जयिनी नगरी को, अनुसर = जाना, (या जो कि नगरी) सुचरितफले = पुण्य के फल के, स्वल्पीभूते = कम हो जाने पर, गाम् = पृथिवी पर, गतानाम् = गये हुए, स्वर्गिणाम् = स्वर्गवासियों के, शेषैः पुण्यैः = शेष बचे हुए पुण्यों से, हतम् = (पृथ्वी पर) लाया गया, दिवः = स्वर्ग का, एकम् = एक, कान्तिमत् = उज्ज्वल, खण्डम् = अंश या भाग, इव = के समान (है)।

अनुवाद—उदयन की कथाओं में प्रवीण ग्रामवृद्धों वाले अवन्ति प्रदेश में पहुँचकर, पहले बताई गई सम्पत्ति-परिपूर्ण उज्जयिनी नगरी को जाना (जो कि नगरी मानो पुण्य फल के क्षीण होने पर पृथिवी पर गये स्वर्गवासीजनों के अवशिष्ट पुण्यों से (पृथिवी पर) लाया स्वर्ग का एक उज्ज्वल खण्ड के समान (है)।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि तुम उस अवन्ति प्रदेश में पहुँचकर जहाँ कि प्राचीन राजा उदयन की कथाओं के प्रवचन में चतुर ग्रामीण वृद्धजन रहते हैं, पूर्व चर्चित सम्पत्तिशालिनी उज्जयिनी नगरी में जाना, जो कि उज्जयिनी मानो स्वर्ग के उस एक उज्ज्वल अंश के समान है जिसे स्वर्गवासी जन अपने पुण्यों के भुक्तावशिष्ट भाग से पृथिवी पर ले आये हैं, अर्थात् वैभव की दृष्टि से उज्जयिनी एक स्वर्ग का ही भाग है।

विशेष—पृथिवी पर पुण्य करने वाले लोग मरने पर पुण्य फल भोगने के लिए स्वर्ग जाते हैं। वहाँ वे तब तक रहते हैं जब तक उनका पुण्य शेष रहता है। पुण्य क्षीण होने पर वे पुनः कुछ अवशिष्ट बचे हुए पुण्यों के बल से मर्त्य लोक में आकर सुख प्राप्त करते हैं। उज्जयिनी इतनी वैभवशालिनी है कि वह स्वर्ग का ही एक भाग प्रतीत होती है। अतः कवि उत्प्रेक्षा करता है कि मानो स्वर्गवासी जन अवशिष्ट पुण्यों के बल से पृथिवी पर लौटते समय मिलकर एक स्वर्ग का खण्ड ही पृथिवी पर लेते आये हैं इस प्रकार यहाँ उत्प्रेक्षालंकार है।

संस्कृत व्याख्या—उदयनस्य कथासु कोविदाः ग्रामवृद्धाः येषु तान्—उदयनकथा-कोविदग्रामवृद्धान् उदयनोपाख्यानप्रवीणग्रामवृद्धजनान् अवन्तीन् एतन्नामकान् जनपदान् प्राप्य आसाद्य पूर्वोद्दिष्टाम् श्रीविशालाम् समृद्धिमतीं विशालां पुरीम् उज्जयिनीं नगरी, अनुसार प्रयहि, (या नगर) सुचरितफले पुण्यफले स्वल्पीभूते अत्यल्पावशिष्टे (सति) गाम् पृथिवीम् गतानाम् प्रत्यागतानाम् स्वर्गिणाम् स्वर्गनिवासिजनानाम् शेषैः भुक्तावशिष्टैः पुण्यैः सुकृतैः हतम् समाहृत्यानीतम् दिवः स्वर्गस्य एकम् कान्तिमत् समुज्ज्वलम् खण्डम् शकलम् इव (अस्ति)।

प्रसंग—उज्जयिनी वर्णन प्रसंग में कवि शिप्रानदी के अंगानुकूल वायु का प्रार्थनाचाटुकार प्रियतम के रूप में वर्णन करता हुआ कहता है—

“दीर्घीकुर्वन् पटु मदकलं कूजितं सारसानाम्,

प्रत्यूषेषु स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः।

यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमङ्गानुकूलः,

शिप्रावात प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकार” ॥ ३२ ॥

NOTES

अन्वय—यत्र प्रत्यूषेषु सारसानाम् पटु मदकलम् कूजितम् दीर्घीकुर्वन्, स्फुटित-कमलामोदमैत्रीकषायः अङ्गानुकूलः शिप्रावातः प्रार्थनाचाटुकारः प्रियतम इव स्त्रीणाम् सुरतग्लानिम् हरति।

शब्दार्थ—यत्र = जहाँ पर अर्थात् उज्जयिनी में, प्रत्यूषेषु = प्रातःकाल, सारसानाम् = सारस नाम के पक्षियों के, पटु = प्रस्फुट या तीव्र, मदकलम् = मद से अव्यक्त और मधुर, कूजितम् = कूजन या ध्वनि को, दीर्घीकुर्वन् = और अधिक तीव्र करता हुआ, बढ़ाता हुआ, स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः = खिले हुए कमलों की सुगन्धि के संसर्ग से सुगन्धित, अङ्गानुकूलः = शरीरावयवों के लिए सुखकर, शिप्रावातः = शिप्रा नामक नदी का वायु, प्रार्थनाचाटुकारः प्रियतमः इव = पुनः रतियाचना के लिए चापलूसी करने वाले प्रियतम के समान, स्त्रीणाम् = स्त्रियों की, सुरतिग्लानिम् = रतिजन्य खिन्नता को, हरति = दूर करता है।

अनुवाद—जहाँ उज्जयिनी नगरी में प्रातःकाल सारसों के तीव्र एवं मद से अव्यक्त मधुर कूजन को और अधिक बढ़ाता हुआ खिले हुए कमलों की सुगन्धि के संसर्ग से सुगन्धित, शरीरावयवों को सुखकर शिप्रा नदी का वायु रति प्रार्थना में चापलूसी करने वाले प्रियतम की भाँति स्त्रियों की रतिजन्य खिन्नता को दूर करता है।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि उज्जयिनी नगरी में शिप्रा नदी का शीतल वायु जो कि कमलों की सुगन्धि के संसर्ग में सुगन्धित हो जाता है। अतएव शरीर के लिए सुखकर होता है। प्रातःकाल सारसों की अव्यक्त मधुर ध्वनि को और तीव्र करता हुआ रतियाचना में चाटुकर प्रियतम की भाँति, स्त्रियों की रतिजन्य खिन्नता को दूर करता है।

विशेष—प्रस्तुत श्लोक में शिप्रावात को प्रार्थना चाटुकार प्रियतम के रूप में सम्भावित किया गया है। अतः यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है।

संस्कृत व्याख्या—यत्र उज्जयिन्याम् प्रत्यूषेषु अहर्मुखेषु (प्रत्यूषोऽहर्मुखं कल्यम् इत्यमरः) पटु प्रस्फुटम् वा, मदेन कलम् मदकलम् मदाव्यक्त मधुरम् सारसानाम् एतन्नामकानाम् पक्षिविशेषाणाम् कूजितम् रुतम् कूजनम् वा दीर्घीकुर्वन् तीव्रतरं कुर्वन् विस्तारयन् वा, स्फुटितानां कमलानाम् आमोदेन सह या मैत्री तथा कषायः—स्फुटित-कमलामोदमैत्रीकषायः विकसितकमलपुष्पसुगन्धिसंपर्कसुरभिः (रागद्रव्यो कषायोऽस्त्री निर्यासे सौरभे रसे-इति कोषः) (अतएव) अङ्गानुकूलः शरीरावयवसुखकरः शिप्रावातः शिप्रेतिनामिकायाः तत्रत्यायाः कस्याश्चित् नद्याः वायुः प्रार्थनायां चाटुकरोतीति प्रार्थना-चाटुकारः सुरतयाचनाप्रियवचनप्रयोक्ता प्रियतमः बल्लभः इव यथा स्त्रीणाम् कामिनी-नाम् सुरतिग्लानिम् सम्भोगजन्य खिन्नताम् हरति अपनयति।

प्रसंग—उज्जयिनी की समृद्धि का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

“हारांस्तारांस्तरलगुटिकान् कोटिशः शङ्खवशुक्तीः,

शष्यश्यामान् मरकतमणीनुन्मयूरवप्ररोहान्” ॥

दृष्ट्वा यस्यां विपणिरचितान् विद्रुमाणञ्च भङ्गान्,

संलक्ष्यन्ते सलिलनिधयस्तोयमात्रावशेषाः” ॥ ३३ ॥

अन्वय—यस्याम् कोटिश विपणिरचितान् तरलगुटिकान् तारान् हारान् शङ्खशुक्तीः शष्पश्यामान् उन्मयूरवप्ररोहान् मरकतमणीन् विद्रुमाणाम् भङ्गान् च दृष्ट्वा सलिलनिधयः तोयमात्रावशेषाः संलक्ष्यन्ते ।

मेघदूतम् (पूर्वमेघ)

NOTES

शब्दार्थ—यस्याम् = जिस उज्जयिनी में, कोटिशः = करोड़ों की संख्या में, विपणिरचितान् = (बाजारों की) दुकानों पर सजाये हुए, तरलगुटिकान् = महारत्नों की मध्यमणि (सुमेरु) वाले, तारान् = शुद्ध चमकीले, हारान् = मोतियों के हारों को, शङ्खशुक्तीः = शंख और सीपियों को, शष्पश्यामान् = हरी छोटी घास के समान श्याम वर्ण के, उन्मयूरवप्ररोहान् = ऊपर निकलती हुई प्रकाश किरणों रूपी अंकुरों वाली, मरकतमणीन् = मरकत मणियों अर्थात् पत्तों को, विद्रुमाणाम् = भङ्गान् = मूँगों के टुकड़ों को। च = और, दृष्ट्वा = देखकर, सलिलनिधयः = जलकोष अर्थात् समुद्र, तोयमात्रावशेषाः = केवल जलमात्र से अवशिष्ट, संलक्ष्यन्ते = दिखाई देते हैं।

अनुवाद—जिस नगरी उज्जयिनी में करोड़ों की संख्या में बाजारों में सजाये गये महारत्नों की मध्यमणि वाले, शुद्ध मोतियों के हारों को, शंख और सीपियों को, हरी छोटी घास के समान श्यामवर्ण के, ऊपर उठती हुई प्रकाश किरणों रूपी अंकुरों वाली मरकत मणियों को और मूँगों के टुकड़ों को देखकर समुद्र केवल जलमात्रावशिष्ट दिखाई पड़ते हैं।

भावार्थ—उज्जयिनी के बाजारों में सजाये गये अनेक प्रकार के शुद्ध रत्नों जैसे—मोतियों के हार, शंख, सीपी, पत्ता, मूँगों आदि को देखकर ऐसा अनुमान होता है कि मानो समुद्रों में से ये सब रत्न निकाल लिये गये हैं। वस्तुतः रत्न समुद्रों में ही होते हैं अतः उसे रत्नाकर कहा जाता है, पर उज्जयिनी में इन सभी रत्नों को देखकर यह अनुमान होता है कि अब समुद्रों में केवल जलमात्र ही शेष रह गया है।

विशेष—यहाँ उज्जयिनी के अपार वैभव जैसा वर्णन होने से, उदात्तालंकार है।

संस्कृत व्याख्या—यस्यामुज्जयिन्याम् कोटिशः कोटिसंख्याकान् विपणिरचितान् पण्यवीथिकाप्रसारितान् विपणिः पण्यवीथिका इत्यमरः तरल-गुटिकान् मध्यमणीभूत-महारत्नात् (तरलो हारमध्यगः तथा पिण्डे मणौ महारत्ने गुटिका इति कोषः) तारान् शुद्धान् (तारो मुक्तादिसंशुद्धौ तरणे) शुद्धमौक्तिके—कोषः) तारान् मुक्तावलीः, शङ्खशुक्तीः कम्बुमुस्फोटान् (मुक्तस्फोटः स्त्रियांशुक्तिः शङ्खः स्यात् कम्बुरस्त्रियाम् (इत्यमरः) शष्पश्यामात् बालतृणहरितवर्णात् (शष्पं बालतृण घासः इत्यमरः) उन्मयूख-प्ररोहान् उद्गतरम्याङ्कुरान् मरकतमणीन् गारुडरत्नानि विद्रुमाणाम् प्रवालानाम् भङ्गान् खण्डान् च दृष्ट्वा अवलोक्य तोयनिधयः समुद्राः तोयमात्रावशेषाः अवशिष्ट-जलमात्राः संलक्ष्यन्ते अनुमीयन्ते। रत्नाकरादतिरिच्यते विशालारत्नसम्पत्तिरिति भावः।

प्रसंग—यक्ष कहता है कि विशाला में वहाँ के अभिज्ञ जन, आगन्तुकों को वहाँ की पूर्वघटित घटनाओं को बड़े चाव से सुनाते हैं—

“प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं वत्सराजोऽत्र जहे,

हैमं तालद्रुमेवनमभूदत्र तस्यैव राज्ञः।

अत्रोद्भ्रान्तः किल नलगिरिः स्तम्भमुत्पाद्य दर्पा

दित्यागन्तून् रमयति जनो यत्र बन्धून् अभिज्ञः” ॥३४॥

अन्वय—अत्र वत्सराजः प्रद्योतस्य प्रियदुहितरम् जहे, अत्र तस्य एव राज्ञः हैमम् तालद्रुमेवनम् अभूत्। अत्र किल नलगिरिः दर्पात् स्तम्भम् उत्पाद्य उद्भ्रान्तः इति यत्र अभिज्ञः जनः आगन्तून् बन्धून् रमयति।

NOTES

शब्दार्थ—अत्र = यहाँ इस स्थान पर, वत्सराज = वत्स प्रदेश के राजा उदयन ने, प्रद्योतस्य = विशाला के राजा प्रद्योत की, प्रियदुहितरम् = प्रिय पुत्री वासवदत्ता को, जह्ने = हरण किया था, अत्र = इस स्थान पर, तस्यैवराज्ञः = उसी राजा अर्थात् प्रद्योत का, हैमम् = स्वर्णम्, तालद्रुमवनम् = ताड़ के वृक्षों का वन, अभूत् = था। किल = सुना जाता है कि, नलगिरि = इस नाम का एक मस्त हाथी, दर्पात् = मद से, स्तम्भम् = आलान को, के बाँधने का खम्भा, उत्पाट्य = उखाड़कर, उद्भ्रान्तः = उद्धत होकर इधर-उधर घूमा था, इति = इस प्रकार से, अभिज्ञः = जानकर, आगन्तून् = आगन्तुकों को, रमयति = प्रसन्न करता है।

अनुवाद—यहाँ इस स्थान पर वत्सराज उदयन ने प्रद्योत की प्रिय पुत्री का हरण किया था और इस स्थान पर उसी प्रद्योत राजा का स्वर्णम् ताड़ वृक्षों का वन था, सुना जाता है कि (इस स्थान पर) नलगिरि नामक हाथी मद से आलान को उखाड़कर उछल-उछल कर घूमा था, इस प्रकार से जानकार जन आगन्तुक बन्धुओं को प्रसन्न करता है, अर्थात् उदयन एवं प्रद्योत की कथाओं को कहकर आगन्तुकों का मनोविनोद करता है।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि विशाला के जानकार लोग, आने वाले बन्धुजनों को उदयन एवं प्रद्योत की इन पूर्वघटित घटनाओं को सुनाकर विनोदित करते हैं कि यहाँ वत्सराज ने वासवदत्ता का हरण किया था। यहीं राजा का ताड़ वन था और यहाँ पर नलगिरि मस्त होकर खम्भा उखाड़कर घूमा था।

विशेष—प्रस्तुत श्लोक में पूर्वघटित अदृष्ट घटनाओं का साक्षात् दृष्ट वत् वर्णन किया गया है अतः 'भाविक' अलंकार है—

संस्कृत व्याख्या—अत्र अस्मिन् स्थाने वत्सराजः वत्सदेशस्य राजा उदयनः प्रद्योतस्य एतन्नामकस्य प्राचीनकालिकस्य राज्ञः प्रियदुहितरम् प्रियां पुत्रीम् (वासवदत्ताम्) जह्ने जहार, अत्रास्मिन् स्थाने तस्यैव राज्ञः नृपस्य प्रद्योतस्य हैमम् सुवर्णमयम् तालद्रुमवनम् तालपादपोपवनम् अभूत् आसीत् अत्र अस्मिन् स्थाने नलगिरिः एतन्नामकः गजः दर्पात् मदात् स्तम्भम् आलानम् उत्पाट्य उद्धृत्य उद्भ्रान्तः उत्पत्य भ्रमणं कृतवान् (इत्थंभूताभिः कथामिः) यत्र विशालायाम् अभिज्ञः पूर्वोक्तकथाभिज्ञः जनः आगन्तून् देशदेशान्तरादागतान् बन्धून् प्रियजनान् रमयति विनोदयति।

प्रसंग—इसके बाद यक्ष, मेघ से, उज्जयिनी के प्रासादों पर मार्गश्रम दूर करने के लिए कहता है—

“जालोद्गीर्णैरुपचितवपुः केशसंस्कारधूपैः—

बन्धुप्रीत्या भवनशिखिभिर्दत्तनृत्योपहारः।

हर्म्येष्वस्याः कुसुमसुरभिष्वध्वखेदं नयेथाः

लक्ष्मी पश्यन्ललितवनितापादरागाङ्गितेषु” ॥ ३५ ॥

अन्वय—जालोद्गीर्णैः केशसंस्कारधूपैः उपचितवपुः बन्धुप्रीत्या भवनशिखिभिः दत्तनृत्योपहारः कुसुमसुरभिषु ललितवनितापादरागाङ्गितेषु अस्याः हर्म्येषु लक्ष्मीम् पश्यन् अध्वखेदम् नयेथाः।

शब्दार्थ—जालोद्गीर्णैः = गवाक्ष अथवा जालियों से निकले हुए, केशसंस्कारधूपैः = केशों के प्रशाधन के लिए प्रयुक्त धूपों से अर्थात् सुगन्धित द्रव्यों से, उपचितवपुः = बँड़े हुए अथवा पुष्ट शरीर वाले, बन्धुप्रीत्यः = मित्र के स्नेह से, भवनशिखिभिः = प्रासादों के (पालतू) मयूरों के द्वारा, दत्तनृत्योपहारः = दिये गये नृत्य रूपी उपहार (भेंट) वाले अर्थात् मयूरों ने जिसके सम्मान में नृत्य करके मानो उसे उपहार दिया है। (तुम) कुसुमसुरभिषु = फूलों से सुगन्धित, ललितवनितापादरागाङ्गितेषु = सुन्दरी स्त्रियों के पैरों के रंग

(लाक्षारस या महावर) से चिह्नित, अस्याः = विशाला के, हम्येषु = राज प्रासादों में, लक्ष्मीम् पश्यन् = शोभा को देखते हुए, अध्वखेदम् = मार्ग की थकावट को, नयेथाः = दूर करना।

अनुवाद—गवाक्षों से निकले हुए, केश प्रसाधनार्थ प्रयुक्त धूपों से परिपुष्ट शरीर वाले (तथा) मित्र स्नेह से प्रासादों के मयूरों द्वारा जिसे नृत्य रूपी उपहार दिया गया है (ऐसे तुम) पुष्पों से सुगन्धित (एवम्) सुन्दरी स्त्रियों के पैरों के रंगों से चिह्नित उस विशाला के राजप्रासादों पर शोभा को देखते हुए मार्ग की थकावट को दूर करना।

भावार्थ—यक्ष कहता है हे मेघ ! तुम उज्जयिनी के उन राजप्रासादों पर शोभा को देखते हुए अपना मार्गश्रम दूर करना जो कि पुष्पों से सुगन्धित एवं सुन्दरियों के पादराग से चिह्नित रहते हैं। साथ ही वहाँ पहुँचने पर भवन मयूर अपने नृत्य द्वारा तुम्हारा सम्मान करेंगे और जल वर्षण से दुबले हुए तुम्हारा शरीर भी वहाँ स्त्रियों के केश प्रसाधन के धूपों से पुष्ट हो जायेगा।

संस्कृत व्याख्या—जलोद्गीर्णैः गवाक्षपथानिर्गतैः (जालं गवाक्ष आनाये) केश-संस्कारधूपैः केशप्रसाधनप्रयुक्तसुगन्धद्रव्यधूपैः उपचितवपुः परिपुष्टदेहः (तथा) बन्धौ प्रीतिस्तया बन्धुप्रीत्या मित्रस्नेहेन, भवनशिखिभिः गृहमयूरैः दत्तः, नृत्यमेव उपहारः यस्मै स, दत्तनृत्योपहारः प्रदत्तनृत्योपायनः (उपायन मुपग्राह्य मुपहारस्तथोपदा' इत्यमरः) (त्वम्) कुसुमसुरभिषु कुसुमसुगन्धिषु ललिताश्च या वनिताः तासां पादानां रागेण अङ्कितेषु ललितवनितापादरागाङ्कितेषु सुन्दरकामिनीचरणलाक्षारसादिचिह्नितेषु अस्याः विशालाया हम्येषु धनिभवनेषु लक्ष्मीं शोभां पश्यन्नवलोकयन्, अध्वश्रमम् मार्गक्लेशम् नयेथाः अपनय।

प्रसंग—उज्जयिनी के महाकाल शिव के मन्दिर का उल्लेख कर यक्ष, मेघ से वहाँ जाने के लिए कहता है—

“भर्तुः कण्ठच्छविरिति गणैः सादरं वीक्ष्यमाणः

पुण्यं यायास्त्रिभुवनगुरोर्धाम चण्डीश्वरस्य।

धूतोद्य कुवलयरजोगन्धिभिर्गन्धवत्या—

स्तोयक्रीडानिरतयुवतिस्नानतिक्तैर्मरुद्भिः” ॥ ३६ ॥

अन्वय—भर्तुः कण्ठच्छविः इति गणैः सादरम् वीक्ष्यमाणः (सन्) त्रिभुवनगुरोः चण्डीश्वरस्य पुण्यम् धाम यायाः, (यत्) कुवलयरजोगन्धिभिः तोयक्रीडानिरतयुवती-स्नानतिक्तैः गन्धवत्याः मरुद्भिः धूतोद्यानम् (अस्ति)।

शब्दार्थ—भर्तुः = स्वामी के, कण्ठच्छविः = कण्ठ की क्रान्ति वाले, इति = इसलिये, गणैः = शिव सेवकों द्वारा, सादरम् = आदरपूर्वक, वीक्ष्यमाणः = देखे जाते हुए, (तुमको), त्रिभुवनगुरोः = त्रिलोक के स्वामी, चण्डीश्वरस्य = पार्वती पति महाकाल शिव के, पुण्यं धाम = पवित्र स्थान अर्थात् मन्दिर में, यायाः = जाना चाहिए, (यत्—जो कि मन्दिर) कुवलयरजोगन्धिभिः = कमलों के पराग की सुगन्धि वाले, तोयक्रीडानिरतयुवतीस्नानतिक्तैः = जलक्रीडा में संलग्न युवतियों के स्नान (के द्रव्यों से) सुगन्धित, गन्धवत्याः = गन्धवती नामक नदी के, मरुद्भिः = पवनों से, धूतोद्यानम् = हिलते हुए उपवनों वाला (अस्ति है)।

अनुवाद—(हमारे) स्वामी शिव भी कण्ठच्छवि के समान कान्ति वाले (तुम हो) ऐसा सोच करके (शिवजी के) गणों के द्वारा सादर देखे जाते हुए (तुमको) त्रिभुवन के अधिपति पार्वतीश्वर शिवजी के पवित्र मन्दिर में जाना चाहिए (जो कि मन्दिर) कमल पराग की सुगन्धि वाले (तथा) जलक्रीडा संलग्न युवतियों के स्नान (के सुगन्धित द्रव्यों से) सुगन्धित गन्धवती नामक नदी के पवनों द्वारा हिलते हुए उपवनों वाला (है)।

NOTES

NOTES

भावार्थ—यक्ष कहता है कि हे मेघ ! विशाला नगरी पहुँचने पर तुम वहाँ के त्रिभुवनाधिपति पार्वतीश्वर महाकालेश्वर के पवित्र मन्दिर में जाना जहाँ कि शिव सेवक गण तुमको अपने स्वामी शिव की कण्ठच्छवि के समान श्यामवर्ण देखकर तुम्हारा सम्मान करेंगे। वहाँ महाकालेश्वर मन्दिर का उद्यान गन्धवती नदी के कमल पराग से सुगन्धित एवं युवतियों के सुगन्धित स्नान द्रव्यों से सुरभित पवनों द्वारा सदा पवनान्दोलित रहता है।

विषय—प्रस्तुत श्लोक में प्रसिद्ध उपमान मेघ की उपमेय के रूप में कल्पना की गई है, अतः प्रतीपालंकार है।

संस्कृत व्याख्या—भर्तुः स्वस्वामिनः नीलकण्ठस्य शिवस्य कण्ठच्छविः कण्ठकान्तिः इति अस्मद्वेतोः गणैः प्रमथैः सादरम् ससम्मानम् वीक्ष्यमाणः निरीक्ष्यमाणः (सन्-त्वम्) त्रिभुवनगुरोः त्रैलोक्याधिपस्य चण्डीश्वरस्य महाकालस्य शिवस्य पुण्यं पवित्रं धाम स्थानम् मन्दिरमिति यावत् यायाः गच्छैः (यन्मन्दिरम्) कुवलयरजोगन्धिभिः कमलपरागसुगन्धिमद्भिः (तथा) तोये क्रीडासु निरता या युवतयः तासाम् स्नानेन तित्तैः तोयक्रीडानिरतयुवतीस्नानतित्तैः जलविहारासक्ततरुणीस्नानीयद्रव्यसुगन्धितैः गन्धवत्याः एकत्रामिकायाः तत्रत्यायाः कस्यश्चित्रद्याः मरूद्भिः वातैः धूतोद्यानम् आन्दोलितोपवनम् (अस्ति)।

प्रसंग—महाकालेश्वर मन्दिर में जाकर मेघ को क्या करना है, इसी बात को प्रस्तुत श्लोक में बतलाया गया है—

“अप्यन्यस्मिञ्जलधर महाकालमासाद्य काले,

स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदत्येति भानुः।

कुर्वन् संध्यावलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीया

मामन्द्राणां फलमविकलं लप्स्यसे गर्जितानाम्” ॥३७॥

अन्वय—जलधर = ! अन्यस्मिन् काले अपि महाकालम् आसाद्य ते स्थातव्यम् यावत् भानुः नयनविषयम् अत्येति। शूलिनः श्लाघनीयाम् संध्यावलिपटहताम् कुर्वन् आमन्द्राणाम् गर्जितानाम् अविकलम् फलम् लप्स्यसे।

शब्दार्थ—जलधर = हे मेघ !, अन्यस्मिन् काले अपि = दूसरे समय में भी अर्थात् संध्याकाल के अतिरिक्त अन्य समय में भी। महाकालम् आसाद्य = महाकाल नामक मन्दिर में पहुँचकर, ते = तुमको, स्थातव्यम् = ठहरना चाहिए, यावत् = जब तक कि, भानुः = सूर्य, नयनविषयम् = दृष्टिपथ या दृग्गोचरता को, अत्येति = पार करता है, अर्थात् जबकि सूर्य दृष्टिपथ से ओझल होता है अर्थात् सन्ध्याकाल तक, शूलिनः = शिवजी की, श्लाघनीयम् = प्रशंसनीय, संध्यावलिपटहताम् = संध्याकालीन पूजा में नगाड़े की क्रिया को, कुर्व = करते हुए, (तुम) आमन्द्राणाम् गर्जितानाम् = गम्भीर गर्जनों के, अविकलम् फलम् = सम्पूर्ण फल को, लप्स्यसे = प्राप्त करोगे।

अनुवाद—(संध्याकाल.से) अतिरिक्त समय में भी, महाकाल मन्दिर में पहुँचकर तुम्हें तब तक ठहरे रहना चाहिए जब तक कि सूर्य दृष्टिपथ से ओझल होता है, अर्थात् अस्त होता है (क्योंकि संध्याकाल) शिवजी की प्रशंसनीय, संध्याकालीन पूजा में नगाड़े की ध्वनि क्रिया को करते हुए (तुम अपने गम्भीर गर्जनों के सम्पूर्ण फल को प्राप्त करोगे)।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि तुम कदाचित् संध्याकाल से अतिरिक्त अन्य किसी समय महाकाल मन्दिर में पहुँचो तो तुम वहाँ तब तक ठहरे रहना जब तक कि सूर्यास्त न हो जाये। इस प्रकार शिवजी की संध्याकालीन पूजा में तुम नगाड़े की ध्वनि क्रिया को करके अपने गम्भीर गर्जनों का सम्पूर्ण फल पा जाओगे। अर्थात् यदि तुम

संध्याकालीन आरती के समय नगाड़े की ध्वनि का काम करोगे तो तुम्हें अपने गम्भीर गर्जनों का पूर्ण फल प्राप्त होगा।

मेघदूतम् (पूर्वमेघः)

NOTES

विशेष—यहाँ यह बतलाया गया है कि शिवजी की संध्याकालीन आरती के समय मेघ का गर्जन नगाड़े की ध्वनि की पूर्ति कर सकेगा। फलतः मेघ का गर्जना सार्थक होगा। इस प्रकार यहाँ पूर्वार्ध वाक्य के प्रति उत्तरार्ध वाक्य को कारण माना गया है, फलतः यहाँ वाक्यार्थ हेतुक 'काव्यलिङ्ग अलंकार' है।

संस्कृत व्याख्या—जलधर ! हे मेघ ! अन्यस्मिन् संध्यातिरिक्ते अपि काले समये महाकालम् महाकालेश्वरमन्दिरम् आसाद्य प्राप्य ते त्वयेत्यर्थः (तावत्) स्थातव्यम् यावत् यावता कालेन भानुः सूर्यः नयनविषयम् दृष्टिपथम् अत्येति अतिक्रामति अर्थात् सूर्योऽस्तं याति, संध्याकालपर्यन्तं स्थातव्यमित्याशयः। (यत) शूलिनः शिवस्य श्लाघनीयां प्रशस्यां संध्यावलिपटहताम् संध्याकालीनपूजावटहध्वनिक्रियाम् कुर्वन् सम्पादयन् (त्वम्) आमन्द्राणाम् गम्भीराणाम् गर्जितानाम् गर्जनानाम् अविकलम् सम्पूर्णम् फलम् लप्स्यसे अवाप्स्यसि।

प्रसंग—यक्ष कहता है कि न केवल महाकालेश्वर से ही तुम्हें गर्जन का फल प्राप्त होगा, अपितु तुम्हें अन्य फल भी प्राप्त होगा—

“पादन्यासः क्वणितरशनास्तत्र लीलावधूतं—

रत्नच्छायाखचितवलिभिश्चामरैः क्लान्तहस्ताः।

वेश्यास्त्वत्तो नखपदसुखान् प्राप्य वर्षाग्रबिन्दू—

नामोक्ष्यन्ते त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान् कटाक्षान् ॥३८॥

अन्वय—तत्र पादन्यासैः क्वणितरशनाः लीलावधूतैः रत्नच्छायाखचितवलिभिः चामरैः क्लान्तहस्ताः वेश्याः त्वत्तः नखपदसुखान् वर्षाग्रबिन्दून् प्राप्य त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान् कटाक्षान् आमोक्ष्यन्ते।

शब्दार्थ—तत्र = वहाँ, संध्या के समय, पादन्यासैः = पैरों के रखने से, क्वणितरशनाः = बजती हुई करधनियों वाली, लीलावधूतैः = विलासपूर्वक हिलाये जाते हुए, रत्नच्छायाखचितवलिभिः = रत्नों की कान्ति से प्रकाशित दण्डों वाले, चामरैः = चैवरों से, क्लान्तहस्ताः = थके हुए हाथों वाली, वेश्याः = वेश्यायें, त्वत्तः = तुमसे अर्थात् मेघ से, नखपदसुखान् = नखक्षतों को सुख देने वाली; वर्षाग्रबिन्दून् = वर्षा की प्रथम बूँदों को, प्राप्य = पाकर, त्वयि = तुम्हारे ऊपर, मधुकरश्रेणिदीर्घान् = भ्रमरों की पंक्ति के समान लम्बे, कटाक्षान् = कटाक्षों को, आमोक्ष्यन्ते = छोड़ेंगी।

अनुवाद—वहाँ संध्या के समय, पैरों के रखने से बजती हुई करधनियों वाली (तथा) विलासपूर्वक हिलाए जाते हुए रत्नों की कान्ति से प्रकाशित दण्डों वाले चैवरों से थके हुए हाथों वाली वेश्यायें तुमसे नखक्षतों को आराम देने वाले वर्षा की प्रथम बूँदों को प्राप्त करके तुम्हारे ऊपर भ्रमर पंक्ति के समान लम्बे कटाक्षों को छोड़ेंगी।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि संध्यासमय वहाँ (महाकाल की सेवा में संलग्न) पैरों के रखने से जिनकी करधनी बजने लगती हैं और रत्नों की चमक से चमकते हुए दण्डों वाले चैवरों के हिलाने से जिनके हाथ शिथिल पड़ गये हैं, ऐसी वेश्यायें इस समय तुमसे वर्षा की प्रथम बूँदों को प्राप्त कर जब उन्हें अपने शरीर के नखक्षतों को आराम प्राप्त होगा तब वे अति प्रसन्न होकर तुमको कटाक्षपूर्ण नेत्रों से देखेंगी। इस प्रकार तुम्हें प्रथमकृत शिवोपासना का तुरन्त फल मिल जायेगा। वेश्यायें तुम्हारे उपकार का तुरन्त बदला चुका देंगी।

विशेष—‘मधुकरश्रेणिदीर्घान् कटाक्षान्’ में उपमालंकार है।

NOTES

संस्कृत व्याख्या—तत्र संध्याकाले पादन्यासैः (नृत्यावसरे) चरणनिक्षेपैः क्वणितरशनाः शब्दायमानमेखलाः लीलावधूतैः विलासप्रकम्पितैः रत्नच्छायाखचितवलिभिः कङ्कणमणिकान्तिप्रकाशितचामरदण्डैः (वलिश्चामरदण्डे च) चामरैः वालव्यजनैः क्लान्तहस्ताः, श्रान्तकराः (एतेन देशिकं नृत्यं सूचितम् देशिकं च नृत्यं खड्गचामरकन्दुकादीन् धृत्वा क्रियते) वेश्याः पण्यस्त्रियः (अत्र वेश्याशब्देन देवदासीग्रहणमुचितम्) त्वत्तः मेघसकाशात् नखपदसुखान् नखक्षतसुखकरान् अथवा नखपदसुखकरान् वर्षाग्रविन्दून् वर्षाप्रथमजलविन्दून् प्राप्य त्वयि मेघे मधुकरश्रेणिदीर्घान् भ्रमरपंकिलम्बायमानान् श्यामानित्यर्थः कटाक्षान् अपाङ्गान् आमोक्षयन्ते पातयिष्यन्ति ।

प्रसंग—महाकाल मन्दिर में मेघ के अन्य कार्य को बतलाता हुआ यक्ष कहता है—

“पश्चादुच्चैर्भुजतरुवनं मण्डलेनाभिलीनः,

सांध्यं तेजः प्रतिनवजपापुष्परक्तं दधानः ।

नृत्तारम्भे हर पशुपतेरार्द्रनागाजिनेच्छां

शान्तोद्वेगास्तिमितनयनं दृष्टभक्तिर्भवान्या” ॥39॥

अन्वय—पश्चात् प्रतिनवजपापुष्परक्तम् सांध्यम् तेजः दधानः उच्चैः भुजतरुवनम् मण्डलेन अभिलीनः (सन्) भवान्या शान्तोद्वेगास्तिमितनयनं दृष्टभक्तिः (त्वम्) नृत्तारम्भे पशुपतेः आर्द्रनागाजिनेच्छाम् हर ।

शब्दार्थ—पश्चात् = बाद में अर्थात् संध्याकालीन पूजा के उपरान्त, प्रतिनवजपापुष्परक्तम्—प्रत्यग्र (अति नवीन) जपा पुष्प के समान लाल वर्ण के, सांध्यम् = संध्याकालीन, तेजः = कान्ति को, दधानः = धारण करते हुए, (तथा) उच्चैः भुजतरुवनम् = ऊँची भुजाओं रूपी वृक्षों के वन को, मण्डलेन = मण्डलाकार रूप में, अविलीनः = व्याप्त किये हुए (होकर), भवान्या = पार्वती के द्वारा, शान्तोद्वेगास्तिमितनयनम् = उद्वेग (घबराहट) अर्थात् गजाजिन (हस्ति चर्म) आदि देखने से उत्पन्न घबराहट के शान्त होने जाने से निश्चल नेत्रपूर्वक, दृष्टभक्तिः = देखी गई भक्ति वाले अर्थात् जिस तुम्हारी शिवभक्ति को देखा गया है (ऐसे तुम) नृत्तारम्भे = ताण्डवनृत्य के आरम्भ काल में, पशुपतेः = शिवजी की, आर्द्रनागाजिनेच्छाम् = गीले अर्थात् रक्त से गीले गज चर्म को (धारण करने की) इच्छा को, हर = दूर करना ।

अनुवाद—संध्याकालीन शिव पूजा के उपरान्त जपा के प्रत्यग्र पुष्प के समान लाल वर्ण के संध्याकालीन तेज को धारण करते हुए, (तथा शिवजी की) उन्नत (ऊपर को उठाई गई) भुजाओं रूपी वृक्षों के वन को मण्डलाकार रूप में आवृत करते हुए (और फलतः) पार्वती के द्वारा, (गजाजिनादि दर्शन जन्य) घबराहट के शान्त होने से निश्चल दृष्टिपूर्वक जिस तुम्हारी भक्ति को देखा गया है (ऐसे तुम) ताण्डव नृत्य के आरम्भ काल में शिवजी की (रक्त से) गीले गजचर्म (के धारण करने की) इच्छा को दूर करना ।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि महाकालेश्वर की संध्याकालीन पूजा की समाप्ति के बाद, जब शिवजी अपनी भुजाओं को ऊपर उठाकर एवं रक्त से आर्द्र गज चर्म को धारण कर ताण्डव नृत्य करते हों उस समय तुम वृक्षों के वन सदृश उनकी ऊँची भुजाओं को मण्डलाकार रूप में ढक लेना, जिससे कि तुम्हारे द्वारा भुजाओं के ऊपर से आच्छादित हो जाने से उन्हें रक्त रंजित गज चर्म के ओढ़ने की आवश्यकता न पड़े। तुम्हारे इस प्रकार के कार्य को देखकर पार्वती जी की जो कि रक्त से गीले गज चर्म से डरती थीं घबराहट दूर हो जायेगी और शिव के प्रति तुम्हारी इस प्रकार की भक्ति को देखकर प्रसन्न होकर वे तुम्हें निश्चल अथवा एक टक दृष्टि से देखने लगेंगी। इस प्रकार तुम शिवजी की गजचर्म धारण करने की इच्छा को भी दूर कर सकोगे और पार्वती जी की कृपा दृष्टि भी तुम्हें प्राप्त होगी। (यहाँ रक्त से गीले गजचर्म की संध्याकालीन लाल वर्ण के तेज को धारण करने वाले श्यामले मेघ से तुलना की गई है और यह बतलाया गया है कि जब कि सदृश होने के कारण मेघ ही

गज चर्म का काम देने लगेगा तो शिवजी स्वतः गजचर्म धारण की इच्छा न करेंगे और पार्वती जी भी, गजचर्म के भय से दूर हो जाने से मेघ पर प्रसन्न होंगी)।

मेघदूतम् (पूर्वमेघः)

NOTES

विशेष—प्रस्तुत श्लोक में ‘प्रतिनवजपापुष्परक्तम्’ में उपमालंकार है और ‘भुजतरुवनम्’ में रूपकालंकार तथा संध्याकालीन तेज को मेघ द्वारा धारण करने की कल्पना में निदर्शनलंकार है। इस प्रकार यहाँ ये तीनों अलंकार परस्पर निरपेक्ष हैं। अतः संसृष्टि भी है।

संस्कृत व्याख्या—पश्चात्—सान्ध्यपूजनादनन्तरम् प्रतिनवजपापुष्परक्तम् प्रत्यग्रजपाकुसुमारुणम् सान्ध्यम् संध्याकालीनम् तेजः दधानः धारयन् उच्चैर्भुजतरुवनम् उन्नतबाहुवृक्षकाननम् मण्डलेन मण्डलाकारेण अभिलीनः अभिव्याप्तः सन् भवान्या पार्वत्या शान्तोद्देगस्तिमितनयनम् अपनीतभयनिश्चलनेत्रम् यथा स्यात्तथा दृष्टभक्तिः विलोकित सेवः (त्वम्) नृत्तारम्भे ताण्डवनृत्तारम्भायसरे पशुपतेः शिवस्य आर्द्रनागाजिनेच्छाम् रुद्धिपरावलिप्लहस्तिचर्मवाञ्छाम् हर दूरं नयं।

प्रसंग—उज्जयिनी में मेघ के अन्य कृत्यों का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

“गच्छन्तीनां रमणवसतिं योषितां तत्र नक्तं,
रुद्धालोके नरपतिपथे सूचिभेदैः तमोभिः।
सौदामिन्या कनकनिकषस्निग्धया दर्शयोर्वी,
तोयोत्सर्गस्तनितमुखरो मा स्म भूर्विक्लवास्ताः” ॥ 40 ॥

अन्वय—तत्र नक्तम् रमणवसतिम् गच्छन्तीनाम् योषिताम् सूचिभेदैः तमोभिः रुद्धालोके नरपतिपथे कनकनिकषस्निग्धया सौदामिन्या उर्वीम् दर्शय, तोयोत्सर्गस्तनितमुखरः मा स्म भूः, ताः विक्लवाः (भवन्ति)।

शब्दार्थ—तत्र = वहाँ उज्जयिनी में, नक्तम् = रात्रि में, रमणवसतिम् = प्रिय के निवास स्थान को, गच्छन्तीनाम् = जाती हुई, योषिताम् = अभिसारिकाओं को, सूचिभेदैः = सुई द्वारा भेदन करने योग्य अर्थात् अत्यन्त सघन, तमोभिः = अन्धकारों से, रुद्धालोके = अवरुद्ध प्रकाश वाले, नरपतिपथे = राज मार्ग पर, कनकनिकषस्निग्धया = कसौटी पर स्वर्ण रेखा के समान कान्ति वाली, सौदामिन्या = बिजली (विद्युत्) से, उर्वीम् = पृथिवी को, दर्शय = दिखा देना, तोयोत्सर्गस्तनितमुखरः = जल बरसाने और गर्जन से (शब्दायमान) मा स्म भूः = मत होना, (क्योंकि) ताः = वे अभिसारिकायें, विक्लवाः = भय से कातर स्वभाव वाली (होती हैं)।

अनुवाद—वहाँ उज्जयिनी में रात को, प्रिय के निवास स्थान को जाती हुई अभिसारिकाओं को, सूचिभेद्य सघन अन्धकारों द्वारा अवरुद्ध प्रकाश वाले राज मार्ग पर (तुम अपनी) कसौटी पर कनक रेखा के समान कान्ति वाली बिजली से पृथिवी को दिखा देना (किन्तु) जल वर्षण और गर्जन से शब्दायमान न होना (क्योंकि) वे (स्वभावतः) भयकातर होती हैं।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि हे मेघ ! उज्जयिनी में रात के समय, जब अभिसारिकाएँ अपने प्रियतम के निवास स्थान को जा रहीं होंगी और राजमार्ग पर सूचिभेद्य अन्धकार छाया हुआ होगा, तब तुम अपनी कसौटी पर स्वर्ण रेखा के समान बिजली से उनको पृथिवी दिखा देना। किन्तु न जल बरसाना और न गर्जना करना क्योंकि वे स्वभाव से भयकातर होती हैं।

विशेष—यहाँ ‘कनकनिकषस्निग्धया’ में उपमा, अन्तिम पंक्ति में काव्यलिङ्ग अलंकार है। दोनों परस्पर निरपेक्ष हैं अतः संसृष्टि है।

NOTES

संस्कृत व्याख्या—तत्र उज्जयिन्याम् नक्तंसत्रौ रमणवसतिम् प्रियभवनम् गच्छन्तीनाम् प्रयान्तीनाम् योषिणाम् स्त्रीणाम् अभिसारिकाणामित्यर्थे सूचिभेदैः सूचिभेदनयोग्यैः तमोभिः अन्धकारैः रुद्धालोको अवरुद्धदृष्टिप्रसरे नरपतिपथे राजमार्गे कनकनिकष स्निग्धया निकषोपलगतस्वर्णरेखाकान्त्या सौदामिन्या विद्युता उर्वीम् मार्गभूमिम् दर्शय, तोयस्य उत्सर्गः स च स्तनितं च ताभ्यां मुखरः तोयोत्सर्गस्तनितमुखरः जलवर्षणगर्जन शब्दायमानः मा स्म भूः नव भव, (यतः) ताः अभिसारिकाः विक्त्वाः भीरवः (भवन्ति)।

प्रसंग—यक्ष मेघ से कहता है कि इस प्रकार वह उज्जयिनी में रात्रि व्यतीत कर प्रातःकाल फिर आगे को प्रस्थान करे—

“तां कस्याञ्चिद् भवनवलभौ सुप्तपारावतायां
नीत्वा रात्रिं चिरविलसनात् खिन्नविद्युत्कलत्रं।
दृष्टे सूर्ये पुनरपि भवान् वाहयेदध्वशेषं
मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्या” ॥ 41 ॥

अन्वय—चिरविलसनात् खिन्नविद्युत्कलत्रः, भवान् सुप्तपारावतायाम् कस्याञ्चिद् भवनवलभौ तां रात्रिम् नीत्वा सूर्ये दृष्टे पुनः अपि अध्वशेषम् वाहयेत्, सुहृदात् अभ्युपेतार्थकृत्याः न मन्दायन्ते खलु।

शब्दार्थ—चिरविलसनात् = देर तक चमकने के कारण और विलास करने के कारण, खिन्नविद्युत्कलत्रः = थकी हुई बिजली रूपी पत्नी वाले, भवान् = आप, सुप्तपारावतायाम् = सोये हुये कबूतरों वाली, कस्याञ्चिद् = किसी, भवनवलभौ = प्रासाद की अट्टालिका पर, ताम् रात्रिम् नीत्वा = उस रात्रि को बिताकर, सूर्ये दृष्टे = सूर्य के दिखाई देने पर, पुनरपि = फिर भी, अध्वशेषम् = मार्ग के शेष भाग को, वाहयेत् = पूरा करना, खलु = निश्चय ही, सुहृदाम् = मित्रों के, अभ्युपेतार्थकृत्याः = प्रयोजन सिद्धि के कार्यभार को स्वीकार कर लेने वाले पुरुष, न मन्दायन्ते = सुस्त नहीं पड़ते।

अनुवाद—देर तक चमकने के कारण या विलास करने के कारण, थकी हुई बिजली रूपी पत्नी वाले आप, सोये हुये कबूतरों वाली किसी प्रासाद की अट्टालिका पर उस रात्रि को व्यतीत कर, सूर्य के दिखाई देने पर फिर भी मार्ग के शेष भाग को पूरा करना निश्चय ही मित्रों की प्रयोजन सिद्धि के कार्य भार को स्वीकार कर लेने वाले जन सुस्त नहीं पड़ते अर्थात् स्वीकृत कार्य को अवश्य पूरा करते हैं।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि हे मेघ ! देर तक चमकने और विलास करने के कारण अब तक तुम्हारी बिजली रूपी पत्नी थक गई होगी इसलिए उस नगरी में किसी शून्य जन संचार रहित अट्टालिका पर विश्राम कर लेना और सूर्य निकलने पर पुनः अपने शेष मार्ग को पूरा करने को चल देना क्योंकि जो सज्जन अपने मित्रों के कार्य को पूरा करने के लिए स्वीकार कर लेते हैं वे कभी सुस्त नहीं होते। तुम मेरे मित्र हो अतः मुझे विश्वास है कि तुम मेरे कार्य को अवश्य पूरा करोगे।

विशेष—प्रस्तुत श्लोक के ‘चिरविलसनात् पद में विलसन पद श्लिष्ट है, इसके दो अर्थ हैं, बिजली के पक्ष में चमकना और बिजली रूपी पत्नी के पक्ष में विलास करना अतः श्लेष का चमत्कार है और ‘खिन्नविद्युत्कलत्र’ पद में रूपक अलंकार है तथा चतुर्थ पंक्ति में वर्णित लोक सामान्यार्थ से पूर्वगत विशेष तथ्य का समर्थन किया गया है अतः अर्थान्तरन्यास अलंकार भी है।

संस्कृत व्याख्या—चिरं विलसनं तस्मात् चिरविलसनात् चिरस्फुरणात् विलासाच्च, खिन्नं विद्युदेव कलत्रं यस्य स खिन्नविद्युत्कलत्रः परिश्रान्तविद्युत्पत्नीकः भवान् मेघः सुप्ताः पारावताः यस्यां तस्याम् सुप्तपारावताया

विविक्तायामित्यर्थः कस्याञ्चिद् भवनवलभौ भवनाट्टालिकोपरिभागे ताम् रात्रि निशाम् नीत्वा व्यतीतां कृत्वा सूर्ये भानौ दृष्टे दृष्टिपथमागते सति पुनरपि अध्वनः शेषस्तम् अध्वशेषम् मार्गवशिष्टभागम् वाहयेत् पारं कुर्यात् (यतः) खलु निश्चयतः सुहृदाम् मित्राणाम् अभ्युपेता अर्थस्य कृत्यानि यैस्ते अभ्युपेतार्थकृत्याः अङ्गीकृतप्रयोजनसिद्धक्रियाः (जनाः) न मन्दायन्ते नहि शिथिला भवन्ति।

मेघदूतम् (पूर्वमेघः)

NOTES

प्रसंग—यक्ष मेघ से कहता है कि जब वह प्रातः आगे बढ़े तो सूर्य के मार्ग का अवरोध न करे—

“तस्मिन् काले नयनसलिलं योषितां खण्डितानां
शान्तिं नेयं प्राणयिभिरतो वर्त्म भानोस्त्यजाशु।
प्रालेयास्त्रं कमलवदनात्, सोऽपि हर्तुं नलिन्याः
प्रत्यावृत्तस्त्वयि कररुधि स्यादनल्पाभ्यसूयः” ॥ 42 ॥

अन्वय—तस्मिन् काले प्रणयिभिः खण्डितानाम् योषिताम् नयनसलिलम् शान्तिम् नेयम् अतः भानो वर्त्म आशु त्यज, सः अपि नलिन्याः कमलवदनात् प्रालेयास्त्रम् हर्तुम् प्रत्यावृत्तः (अतः) त्वयि कररुधि (सति) अनल्पाभ्यसूयः स्यात्।

शब्दार्थ—तस्मिन् काले = उस समय प्रातःकाल, **प्रणयिभिः** = प्रेमियों द्वारा, **खण्डितानाम् योषिताम्** = खण्डिता नायिकाओं के, (खण्डिता उस वञ्चिता नायिका को कहा जाता है जिसका प्रिय रात में अन्य नायिका में अनुरक्त होकर नख ब्रणादि रति-चिह्नों को धारण कर प्रातः अपनी नायिका के पास आता है) **नयनसलिलम्** = नेत्र जल अर्थात् आँसुओं को **शान्तिम् नेयम्** = शान्त करना होता है, **अतः** = इसलिये, **भानोः** = सूर्य के, **वर्त्म** = मार्ग को, **आशु** = शीघ्र, **त्यज** = छोड़ देना, **सः अपि** = वह भी, **नलिन्याः** = कमलिनी के, **कमलवदनात्** = कमल मुख से, **प्रालेयास्त्रम्** = ओस रूपी आँसुओं को, **हर्तुम्** = दूर करने के लिए, **प्रत्यावृत्तः** = लौटा है, **त्वयि कररुधि** = तुम्हारे किरणों द्वारा अवरोध करने वाले होने पर, **अनल्पाभ्यसूयः** = अत्यधिक द्वेष से युक्त होगा।

अनुवाद—उस समय अर्थात् प्रातःकाल प्रेमी जनों को खण्डिता नायिकाओं के आँसू शान्त करने होते हैं इसलिए (तुम) सूर्य के मार्ग को शीघ्र छोड़ देना, क्योंकि वह भी (उस समय) कमलिनी के कमल मुख से ओस रूप आँसू को दूर करने के लिए लौटा (होगा) इसलिए तुम्हारे द्वारा (उसकी) किरणों के अवरोध करने पर (वह) अत्यधिक द्वेष युक्त हो जायेगा।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि सामान्यतः प्रेमीजन प्रातःकाल अपनी खण्डिता नायिकाओं के आँसू पोंछकर उन्हें प्रसन्न करते हैं, अतएव तुम सूर्य के मार्ग को छोड़ देना, क्योंकि वह भी उस समय अपनी खण्डिता नायिका कमलिनी के ओस रूपी आँसुओं को अपने किरण रूपी हाथों से पोंछने के लिये लौट रहा होगा। यदि तुम उसके मार्ग में पड़कर उसके किरण रूपी हाथों को रोक दोगे तो वह तुम पर बहुत क्रुद्ध होगा अतः तुम उसके मार्ग से हट जाना। अन्यथा तुम सूर्य की क्रोधाग्नि से नष्ट हो जाओगे और मेरा भी काम अधूरा ही रह जायेगा। अपनी इच्छा के विघात से कामियों को क्रुद्ध होना स्वाभाविक है। सूर्य रात में अन्यत्र चला जाता है अतः उसकी पत्नी कमलिनी मुझा जाती है और वह रात में ओस रूपी आँसू बहाकर सूर्य के वियोग में रोती रहती है। प्रातःकाल सूर्य अपनी उस खण्डिता नायिका कमलिनी के आँसू पोंछने आता है अतः तुम्हें उसमें अवरोध नहीं करना चाहिए।

विशेष—प्रस्तुत श्लोक में पूर्वार्धगत मार्गत्याग के प्रति उत्तरार्ध का वाक्यार्थ हेतु है अतः काव्यलिङ्ग अलंकार है। ‘प्रालेयास्त्रम्’ में प्रालेय पर अस्त्र का और ‘कमलवदनात्’ में कमल पर मुख का आरोप होने से

NOTES

साङ्ग रूपक अलंकार है। यहाँ यह एक देश विवर्ति सांग रूपक है क्योंकि नलिनी पर नायिकात्व का आरोप केवल आर्थ है। नलिनी और सूर्य पर क्रमशः नायिका और नायक के व्यवहार का समारोपण होने से समासोक्ति अलंकार है। 'कर' शब्द में श्लेष अलंकार है।

संस्कृत व्याख्या—तस्मिन् काले पूर्वोक्तसूर्योदयकाले प्रणयिभिः प्रियतमैः खण्डितानां योषिताम् वञ्चितानां कामिनीविशेषाणाम् (खण्डिता लक्षणं दशरूपके “ज्ञातेऽन्यासङ्गविकृते खण्डितेष्याकषायिता” साहित्यदर्पणे “पार्श्वमेति प्रियो यस्या, अन्यसम्भोगचिह्नितः। सा खण्डितेति कथितो धीरैरीर्ष्याकषायिता” अन्यत्रापि “निद्राकषायमुकुलीकृताग्रनेत्रो, नारीनखव्रणविशेषविचिताङ्गः। यस्याः कुतोऽपि गृहमेति पतिः प्रभाते, सा खण्डितेति कथिता कविभिः पुराणैः। नयन-सलिलम् नेत्रजलम् अश्रु इत्यर्थः, शान्ति नेयम् विरामं नेतव्यम् प्रक्षाल्य सम्मार्जनीयमित्यर्थः अतः अस्माद्वेतोः भानोर्वत्सं सूर्यमार्गम् आशु झटिति त्यज परिवर्ज्य तस्मात् दूरी भवेत्यर्थः, सः सूर्यः अपि, नलानि अम्बुजानि सन्त्यस्या इति नलिनी कमलिनी तस्याः नलिन्याः, कमलिन्याः (स्वकामिन्याः) कमल कमलपुष्पमेव बदन मुखं तस्मात् कमलवदनात् कमलपुष्पमुखात् प्रालेयं हिम-मेव अस्त्रं तत् प्रालेयास्त्रम् हिमाश्रु हर्तुम् शमयितुम् प्रत्यावृत्तः (अतः) त्वयि मेघे करानंशून् रुणद्धीति कररुत् तस्मिन् कररुधि किरणहस्तरोधिनि सति अनल्पाभ्यसूयः अत्यधिक विद्वेषः स्यात्।

प्रसंग—यक्ष, मेघ से आगे चलकर गम्भीरा नदी पर पहुँचने को कहता है—

“गम्भीरायाः पयसि सरितश्चेतसीव प्रसन्ने,
छायात्मापि प्रकृतिसुभगो लप्स्यते ते प्रवेशम्।
तस्मादस्याः कुमुदविशदान्यर्हसि त्वं न धैर्या-
न्मोधीकर्तुं चटुलशफरोद्वर्तनप्रेक्षितानि” ॥ 43 ॥

अन्वय—गम्भीरायाः सरितः प्रसन्ने चेतसि इव पयसि प्रकृतिसुभगः ते छायात्मा अपि प्रवेशम् लप्स्यते, तस्मात् त्वम् अस्याः कुमुदविशदानि चटुलशफरोद्वर्तनप्रेक्षितानि धैर्यात् मोधीकर्तुम् न अर्हसि।

शब्दार्थ—गम्भीरायाः सरितः = गम्भीरा नामक नदी के, प्रसन्नेचेतसि इव = प्रसन्न या निर्मल चित्त के समान, पयसि = जल में, प्रकृतिसुभगः = स्वभाव सुन्दर, ते = तुम्हारा, छायात्मा अपि = प्रतिबिम्ब रूप शरीर भी, प्रवेशम् लप्स्यते = प्रवेश प्राप्त करेगा, तस्मात् = इसलिये, त्वम् = मेघ, अस्याः = इस गम्भीरा नदी के, कुमुद-विशदानि = कुमुद पुष्पों के समान श्वेत वर्ण के, चटुलशफरोद्वर्तनप्रेक्षितानि = चंचल मछलियों के उद्वर्तन अर्थात् उछलने या फड़फड़ाने रूपी चितवनों को, धैर्यात् = धैर्य से, मोधीकर्तुम् न अर्हसि = व्यर्थ करने योग्य नहीं हो अर्थात् व्यर्थ करना न चाहिये।

अनुवाद—गम्भीरा नामक नदी के निर्मल चित्त के समान जल में स्वभावतः सुन्दर तुम्हारा प्रतिबिम्ब रूप शरीर भी प्रवेश पा लेगा, इसलिये तुम इस गम्भीरा नदी के कुमुद के समान श्वेत, चंचल, मछलियों की उछलन रूप चितवनों को धैर्य अर्थात् अपने संयम के कारण व्यर्थ करने योग्य नहीं हो, अर्थात् तुम्हें इनकी चितवनों को व्यर्थ करना उचित नहीं है।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि आगे बढ़कर जब तुम गम्भीरा नदी पर पहुँचोगे तब तुम्हें उसका जल निर्मल हृदय के समान दिखलाई पड़ेगा। अतः इसमें तुम्हारी छाया स्पष्ट रूप से पड़ जायेगी अर्थात् तुम उसके हृदय में प्रवेश पा सकोगे, उस समय वह नदी तुम्हारे प्रति अपने प्रेम को अपने स्वच्छ जल उछलती हुई मछलियों की चंचल दृष्टियों के रूप में प्रकट करेगी, अतः तुम्हें यही उचित होगा कि तुम इसका उपभोग कर उसके प्रेम को सफल बनाओ, न कि संयम का अवलम्बन कर उसके इस प्रणय व्यापार को व्यर्थ कर दो।

विशेष—प्रस्तुत श्लोक में ‘चेतसीव प्रसन्ने एवं कुमुदविशदानि’ में यद्यपि शब्द रूप में उपमा अलंकार है पर फिर भी गम्भीरा नदी का नायिका के साथ सादृश्य निर्देश करने में दोनों के बीच यह सादृश्य गम्य या अर्थतः ही प्रतीत होता है अतः यहाँ एक देश विवर्तिनी उपमा ही माननी चाहिये, ‘चटुलशफरोद्वर्तनप्रेक्षितानि’ में रूपक अलंकार है

संस्कृत व्याख्या—गम्भीरायाः सरितः एतन्नामिकाया नद्यः प्रसन्ने चेतसि निर्मले हृदये इव पयसि जले प्रकृत्या सुभगः प्रकृतिसुभगः स्वभावसुन्दरः ते तव मेघस्य छाया चासौ आत्मा छायात्मा प्रतिबिम्बशरीरम् अपि

प्रवेशं लप्स्यते अवाप्स्यते, तस्मात् हेतोः त्वं मेघः अस्याः गम्भीरायाः कुमुदविशदानि कुमुदवद्धवलानि चटुलशफरोद् प्रेक्षितानि चञ्चलमीनोल्लुण्ठनावलोकानि धैर्यात् संयमात् मोघीकर्तुम् नार्हसि न योग्योऽसि।

मेघदूतम् (पूर्वमेघः)

प्रसंग—यक्ष कहता है कि हे मेघ ! गम्भीरा नदी पर पहुँचकर फिर तुम्हारा वहाँ से उसे छोड़कर चलना कठिन ही होगा—

“तस्याः किञ्चित्करधृतमिव प्राप्तवानिरशाखं,
नीत्वा नीलं सलिलवसनं मुक्तरोधोनितम्बम्।
प्रस्थानं ते कथमपि सखे लम्बमानस्य भावि,
ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः”।। 44।

NOTES

अन्वय—सखे प्राप्तवानिरशाखम् किञ्चित् करधृतम् इव मुक्तरोधोनितम्बम् तस्याः नीलम् सलिलवसनम् नीत्वा लम्बमानस्य ते प्रस्थानम् कथमपि भावि ज्ञातास्वादः कः विवृतजघनाम् विहातुम् समर्थः।

शब्दार्थ—सखे = मित्र मेघ ! **प्राप्तवानिरशाखम्** = बेंत की शाखाओं द्वारा छुए जाने वाले अर्थात् बेंत की शाखाओं ने जिसको गृहीत किया है, (अतएव) **किञ्चित् करधृतम्**, **इव** = मानो हाथ से कुछ पकड़े हुए। **मुक्तरोधोनितम्बम्** = तट रूपी नितम्ब को छोड़े हुए, **तस्याः नीलम् सलिलवसनम्** = उसके (नदी के) नीले जलरूपी वस्त्र को, **नीत्वा** = हटाकर, **लम्बमानस्य** = लम्बे लटके हुए या ऊपर झुके हुए, **ते** = तुम्हारा, **प्रस्थानम्** = चलना, **कथमपि** = किसी भी प्रकार कठिनता से ही, **भावि** = हो सकेगा, (क्योंकि) **ज्ञातास्वादः** = आस्वाद को जान चुकने वाला अर्थात् कामिनी के रति सुख का आनन्द ले चुकने वाला; **कः** = कौन व्यक्ति, **विवृतजघनाम्** = खुले हुये या नग्न जघनस्थल वाली (कामिनी) को, **विहातुम्** = छोड़ने के लिए, **समर्थः** = समर्थ होगा।

अनुवाद—हे मित्र मेघ ! बेंत की शाखाओं द्वारा छुये गये (अतएव) मानो हाथ से कुछ कुछ पकड़े हुए (और) तटरूपी नितम्ब को छोड़े हुए अर्थात् नितम्ब स्थल से खिसके हुए, उसके (गम्भीरा नायिका के) नीले जलरूप वस्त्र को हटाकर (उतारकर) लम्बे ऊपर झुके हुए तुम्हारा चलना किसी भी प्रकार कठिनाई से ही हो सकेगा (क्योंकि) आस्वाद को जान लेने वाला कौन-सा व्यक्ति खुले हुए जघन स्थलों वाली (कामिनी) को छोड़ने में समर्थ हो सकेगा, अर्थात् कोई नहीं।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि हे मित्र ! गम्भीरा रूपी नायिका के वानिरशाखा रूपी हाथों से पकड़े गये, तटरूपी जघन स्थल से हटे हुए नीले जलरूपी वस्त्र को उतार कर उसके जलग्रहण रूप सम्भोग के लिये उस पर लम्बे झुके हुए तुम्हारा वहाँ से आगे जाना कठिन ही होगा, क्योंकि नायिका के सम्भोग सुख को जान चुकने वाला कौन-सा ऐसा व्यक्ति होगा जो कि नग्न जघन स्थलों वाली कामिनी को छोड़ सके अर्थात् कोई न होगा।

विशेष—प्रस्तुत श्लोक में किञ्चित् करधृतमिव में उत्प्रेक्षालंकार है, सलिलवसनम् और रोधोनितम्बम् में साङ्गुरूपक अलंकार है। यद्यपि इन दोनों स्थलों पर शाब्द आरोप है तथापि इनसे गम्भीरा पर नायिका आरोप अर्थ ही है। अतएव यह एक दशविर्वर्ति साङ्गुरूपक है। श्लोक की चतुर्थ पंक्ति में वर्णित सामान्य तथ्य से पूर्व पंक्तित्रयगत विशेष बात का समर्थन किया गया है अतः सामान्य से विशेष के समर्थन में यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार भी है।

संस्कृत व्याख्या—सखे मित्र मेघ ! प्राप्ता वानिराणां शाखाः येन तत्—प्राप्त वानिरशाखम् उपलब्धं त्वेति सशाखम् (अतएव ‘किञ्चित् ईषत् करधृतम् इव हस्तावलम्बितम्’ इव यथा (स्थितम्) मुक्तः रोध एव नितम्बः येन तत्—मुक्तरोधोनितम्बम् त्यक्ततटकटिप्रदेशम् (नितम्बः पश्चिमे श्रोणिभागेऽद्विकटे कटौ—कोशः) नीलम् नीलवर्णम् तस्याः गम्भीरायाः सलिलमेव वसनं—सलिलवसनम् जलवस्त्रम् नीत्वा अपनीय लम्बमानस्य अधोनतस्य ते तव मेघस्य प्रस्थानं गमनम् कथमपि कृच्छ्रेण भावि सम्भवं भविष्यति (यतः) ज्ञातास्वादः अनुभूतरसः कः पुमान् विवृतजघनाम् प्रकटीकृतकटिपूर्व भागाम् (जघनं स्यात् कटो पूर्वश्रोणि भागापरांशयोः—कोशः) विहातुम् त्यक्तुम् समर्थः, नकोऽपीत्यर्थः।

प्रसंग—मेघ के देवगिरि की ओर प्रस्थान का वर्णन करता हुआ कवि कहता है।

NOTES

अन्वय— त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसितवसुधागन्धसम्पर्करम्यः दन्तिभिः स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगम् पीयमानः काननोदुम्बराणाम् परिणमयिता शीतः वायुः देवपूर्वम् गिरिम् उपजिगमिषोः ते नीचैः वास्यति।

शब्दार्थ— त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसितवसुधागन्धसम्पर्करम्यः = तुम्हारे जलवर्षण से फूली हुई अर्थात् ऊपर को श्वास लेने वाली पृथिवी की गन्ध के संसर्ग से रमणीक (सुगन्धित) दन्तिभिः = हाथियों के द्वारा, स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगम् = नाक के (सूँड के) छेदों (नथुनों) में होने वाले शब्द से सुन्दरतापूर्वक या सुन्दर रूप में, पीयमानः = पिया जाता हुआ, काननोदुम्बराणाम् = वन के गूलरों का, परिणमयिता = पकाने वाला, देवपूर्वगिरिम् = ऐसा जिसके नाम के पूर्व में ‘देव’ शब्द है अर्थात् देवगिरि के, उपजिगमिषोः = पास जाने के इच्छुक, ते = तुम्हारे, शीतः वायु = शीतल वायु, नीचैः = नीचे, वास्यति = बहेगा।

अनुवाद— तुम्हारे जलवर्षण से श्वास लेने वाली पृथिवी की गन्ध के संसर्ग से सुगन्धित हाथियों द्वारा नाक के छिद्रों में होने वाले शब्द से सुन्दर रूप में पिया जाता हुआ (और) वन के गूलरों को पकाने वाला शीतल वायु देवगिरि के पास जाने के लिए इच्छुक तुम्हारे नीचे बहेगा।

भावार्थ— यक्ष कहता है कि मेघ ! जब तुम देवगिरि पर जा रहे होगे, उस समय शीतल वायु तुम्हारे नीचे बहेगी। यह वायु जलवर्षण से प्रश्वसित पृथ्वी की सुगन्धि से सुगन्धित होगा, इसे हाथी पी रहे होंगे, (हाथी सुगन्धित हवा का अपनी सूँड के छेदों से पान करते हैं और ऐसा करते समय उनके नाक के छेदों से ध्वनि निकलती है) यह वायु वन के गूलर के वृक्षों को पकाने वाला भी होता है।

संस्कृत व्याख्या— तव निष्यन्देन उच्छ्वसिताया वसुधायाः गन्धस्य सम्पर्केण रम्यः त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसितवसुधागन्धसम्पर्करम्यः त्वद्वर्षणो—पर्वं हितवसुन्धरासुगन्धिसंसर्गमनोहरः सुगन्धित इत्यर्थः दन्तिभिः गजैः, स्रोतसः रन्ध्रेषु ध्वनितेन सुभगं यथा स्यात् तथा—स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगम् नासिकाच्छिद्रध्वनिरमणीयम् यथा स्यात् तथा पीयमानः आघ्रायमाणः एतेन वातस्य मान्द्यम् ध्वनितम् काननोदुम्बराणाम् वन्यजन्तुफलानाम् (उदुम्बरो जन्तुफलो यज्ञाङ्गो हेमदुग्धकः इत्यमरः) परिणमयिता परिपाकयिता शीतः शीतलः वातः पवनः देवपूर्वं गिरिम् देवगिरिम् देवगिरिनामकं पर्वतम् उपजिगमिषोः गन्तुमिच्छोः ते तव मेघस्य नीचैः अधस्तात् वास्यति प्रवहन् भविष्यति त्वा वीजयिष्यतीत्यर्थः।

प्रसंग— यक्ष कहता है कि हे मेघ तुम देवगिरि पर पहुँचकर वहाँ स्थित स्कन्ददेव की गंगाजल से आर्द्र पुष्पों से पूजा करना—

“तत्र स्कन्दं नियतवसतिं पुष्पमेधीकृतात्मा,

पुष्पासारैः स्नपयतु भवाव्योमगंगाजलाद्रैः।

रक्षाहेतोर्नवशशिभृता वासवीनां चमूना

मत्यादित्यं हुतवहमुखे सम्भृतं तद्धि तेजः” ॥ ४६ ॥

अन्वय— तत्र नियतवसतिम् स्कन्दम् भवान् पुष्पमेधीकृतात्मा (सन्) व्योमगंगाजलाद्रैः पुष्पासारैः स्नपयतु, तत् हि वासवीनाम् चमूनाम् रक्षाहेतोः नवशशिभृता हुतवहमुखे सम्भृतम् अत्यादित्यम् तेजः (अस्ति)।

NOTES

शब्दार्थ—तत्र = वहाँ देवगिरि पर, नियतवसितम् = नित्य निवास करने वाले, स्कन्दम् = शिवपुत्र स्वामिकार्तिकेय को, भवान् = आप, पुष्पमेघीकृतात्मा = पुष्पों के मेघ का रूप बनाये हुए अर्थात् अपने को पुष्प मेघ बनाये हुए, व्योमगंगालाद्रेः = आकाशगंगा के जल से गीले, पुष्पासारैः = पुष्पों की धारा वृष्टियों से, स्नपयतु = स्नान कराइये, तत् हि—क्योंकि वह, वासवीनाम् चमूनाम् = इन्द्रसम्बन्धिनी सेनाओं की, रक्षाहेतोः = रक्षा के लिए, नवशशिभृता = नवीन चन्द्र को धारण करने वाले (शिवजी के) द्वारा, हुतवहमुखे = अग्नि के मुख में, सम्भृतम् = सञ्चित किया हुआ, अत्यादित्यम् = सूर्य से भी अत्युत्कृष्ट, तेजः = तेज (अस्ति-है)।

अनुवाद—वहाँ देवगिरि पर नित्य निवास करने वाले (शिवपुत्र) स्वामिकार्तिकेय को आप, पुष्पों के मेघ का रूप बनाये हुए आकाश गंगा के जल से गीले पुष्पों की धारावृष्टियों से स्नान कराइये, क्योंकि वह इन्द्र की सेनाओं की रक्षा के लिए नवीन चन्द्र को धारण करने वाले (शिवजी के) द्वारा अग्नि के मुख में सञ्चित किया हुआ सूर्य से भी अत्युत्कृष्ट तेज है।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि देवगिरि पर शिवपुत्र स्वामिकार्तिकेय नित्य निवास करते हैं, उन्हें शिवजी ने इन्द्र की सेनाओं की रक्षा के लिए अग्नि के मुख में अपने तेज को स्थापित कर सूर्य से भी अधिक तेजस्वी बनाया है। तुम उन्हें प्रसन्न करने के लिए अपने को पुष्पों के मेघ के रूप में बनाकर, आकाश गंगा के जल से गीली पुष्पवृष्टियों से उनको स्नान कराना।

संस्कृत व्याख्या—तत्र देवगिरौ नियतवसितम् नित्यसन्निहितम् स्कन्दम् स्वामिकार्तिकेयम् भवान् पुष्पमेघीकृतात्मा पुष्पवर्षणशीलमेघीकृतशरीरः कामरूपत्वादितिभावः व्योमगंगालाद्रेः आकाशगंगासलिलक्लिन्नैः पुष्पासारैः पुष्पधारासम्पातैः स्नपयतु अभिषिञ्चतु, (धारा सम्पात आसारः इत्यमरः) भवान् स्वयमेव स्नपयतु एतेन स्वयंकृतपूजाया उत्तमत्वं गम्यते। तत स्कन्दः हि, वासवस्य अमूः वासव्यः तासां वासवीनाम् इन्द्रसम्बन्धिनीनाम् चमूनाम् सेनानाम् रक्षाहेतोः रक्षायाः कारणात् नवशशिभृता नवचन्द्रधारिणा भगवता चन्द्रशेखरेण, वहतीति वहः हुतस्य वहः हुतवहः अग्निः तस्य मुखे हुतवहमुखे अग्निमुखे सम्भृतम् आदित्यमतिक्रान्तम् अत्यादित्यं सूर्यातिक्रमणकारि तेजः ओजः (अस्ति) तत्तेजः शिवस्यैव मूर्त्यन्तरमिति हेतोः पूज्यमित्याशयः।

प्रसंग—यक्ष, मेघ से कहता है कि तुम इसके बाद भगवान् स्कन्ददेव की प्रसन्नता के लिए उनके वाहन मयूर को अपनी गर्जनों से नचाना—

“ज्योतिर्लेखावलियगलितं यस्य वह्मं भवानी,
पुत्रप्रेम्णा कुवलयदलप्रापि कर्णे करोति।
धौतापाङ्गं हरशशिरुचा पावकेस्तन्मयूरं,
पश्चादद्रिग्रहणगुरुभिर्गर्जितैर्नर्तयेथाः” ॥४७॥

अन्वय—यस्य ज्योतिर्लेखावलियगलितम् वहम् भवानी पुत्रप्रेम्णा कुवलयदल प्रापि कर्णे करोति, हरशशिरुचा धौतापाङ्गम् पावकेः तम् मयूरम् पश्चात् आद्रिग्रहण गुरुभिः गर्जितैः नर्तयेथाः।

शब्दार्थ—यस्य = जिस स्कन्द के मयूर के, ज्योतिर्लेखावलयि = कान्ति की रेखाओं के मण्डल से युक्त, गलितम् = गिरे हुए, वहम् = मयूर पंख को, भवानी = पार्वती, पुत्रप्रेम्णा = पुत्र के प्रेम से, कुवलयदलप्रापि = कमल पत्र का संयोग कराने के रूप में अथवा कमलपत्र के धारण करने योग्य, कर्णे = कान पर, करोति = धारण करती हैं, हरशशिरुचा = (शिवजी के सिर पर स्थित) चन्द्र की कान्ति से, धौतापाङ्गम् = धुले हुए (उज्ज्वल) नेत्रों की कोर वाले, पावकेः = स्कन्द देव के, तम् = उस कार्तिकेय के वाहन, मयूरम् = मयूर को, पश्चात् = बाद में अर्थात् स्कन्ददेव पर पुष्पवर्षा के बाद, गुरुभिः आद्रिग्रहण =

NOTES

अनुवाद—जिस स्कन्ददेव के मयूर के, कान्तिरेखाओं के मण्डल से युक्त गिरे हुए मयूरपंख को, पार्वती, पुत्रप्रेम के कारण, कमलपत्र धारण करने योग्य (अपने) कान पर धारण करती है, शिवजी के (मस्तक पर स्थित) चन्द्र की कान्ति से उज्ज्वल नेत्रों की कोर वाले स्कन्ददेव के उस मयूर को, स्कन्ददेव पर पुष्पवर्षा के बाद, पर्वतीय गुफाओं में प्रविष्ट होने के कारण बढ़े हुए (अपने) गर्जनों से नचाना।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि देवगिरि पर स्कन्ददेव भगवान् शिव और पार्वती के साथ रहते हैं। स्कन्ददेव के वाहन मयूर का जब पंख गिर पड़ता है तब पार्वती जी उसे पुत्रप्रेम के कारण, कमलपत्र पहनने योग्य भी अपने कान पर उसे धारण कर लेती हैं मयूर मेघ गर्जन से स्वभावतः प्रसन्न होकर नाचने लगते हैं। इसलिए तुम स्कन्ददेव पर अपनी भक्तिभावना प्रकट करने के लिए वहाँ भी घोर गर्जना कर उनके मयूर को नचाना। तुम्हारी गर्जना पर्वतीय गुफाओं में भरकर और तेज हो जायेगी जिससे वह मयूर और अधिक नाचेगा। वहाँ मयूर के नेत्रकोर शिवजी के मस्तक पर स्थित चन्द्र की कान्ति से उज्ज्वल बने रहते हैं, इस प्रकार तुम स्कन्ददेव की सेवा करना।

संस्कृत व्याख्या—यस्य स्कन्दमयूरस्य, ज्योतिषां लेखानां वलयं यस्यास्तीति—ज्योतिर्लेखावल्यि तेजोराजिमण्डलयुक्तम् गलितं पतितम् वर्हम् मयूरपिच्छम् भवानी पार्वती पुत्रप्रेम्णा सुतस्नेहेन कुवलयदलप्रापि कमलपत्रभाजि अथवा कमलदलधारणार्हे कर्णे श्रवणे करोति धारयति, **हरशशिरूचा**—शिवशिरःस्थितचन्द्रकान्त्या धौतापाङ्गम् धवलितनेत्रान्तम् (अपाङ्गौ नेत्रयोरन्तौ इत्यमरः) पावकस्यापत्यं पावकिः तस्य पावकेः स्कन्दस्य तम् वाहनभूतम् मयूरम् वर्हिणम् पश्चात्, पुष्पवर्षणादनन्तरम् अद्रिग्रहणगुरुभिः देवगिरिगुहासं क्रमणमहत्तरैः गर्जितैः गर्जनैः नर्तयेथाः नृत्यं कारय।

प्रसंग—यक्ष कहता है कि तुम इस प्रकार स्कन्ददेव की सेवा करके आगे चर्मण्वती (चम्बल) नदी पर पहुँचना—

“आराध्यैनं शरवणभवम् देवमुल्लङ्घिताध्वा,

सिद्धद्वन्द्वैर्जलकणभयाद् वीणिभिर्मुक्तमार्गः।

व्यालम्बेथाः सुरभितनयालम्भजां मानयिष्यन्

स्रोतोमूर्त्या भुवि परिणतां रन्तिदेवस्य कीर्तिम्॥४८॥

अन्वय—एनम् शरवणभवम् देवम् आराध्य, वीणिभिः सिद्धद्वन्द्वैः जलकणभयात् मुक्तमार्गः उल्लङ्घिताध्वा वा सुरभितनयालम्भजाम् भुवि स्रोतोमूर्त्या परिणताम् रन्तिदेवस्य कीर्तिम् मानयिष्यन् व्यालम्बेथाः।

शब्दार्थ—एनम् = इन, शरवणभवम् = शरकण्डों के वन में उत्पन्न होने वाले, देवम् = देव स्कन्द की, आराध्य = सेवा करके, वीणिभिः = वीणाधारी, सिद्धद्वन्द्वैः = सिद्धों के जोड़ों द्वारा, जलकणभयात् = जल के कणों के भय से, मुक्तमार्गः = छोड़े गये मार्ग वाले, उल्लङ्घिताध्वा = मार्ग को पारकर चुकने वाले, (तुम) सुरभितनयालम्भजाम् = सुरभितनया—गौ, गायों, के आलम्भ (बलि) से उत्पन्न हुई, भुवि = पृथिवी पर, स्रोतोमूर्त्या = जल प्रवाह के रूप में अर्थात् नदी के रूप में, परिणताम् = परिवर्तित हुई, रन्तिदेवस्य = इस नाम के एक प्राचीन राजा की, कीर्तिम् = कीर्ति को, मानयिष्यन् = सम्मानित करते हुए, व्यालम्बेथाः = झुक जाना या नीचे को लटक जाना।

अनुवाद—शरकण्डों के वन में उत्पन्न होने वाले इन (पूर्वोक्त) देव अर्थात् स्वामिकार्तिकेय की आराधना करके, वीणाधारी सिद्धों के जोड़ों द्वारा जल के कणों के भय से जिस तुम्हारा मार्ग छोड़ दिया गया है, और जिस (तुमने) कुछ मार्ग तय कर लिया है (ऐसे तुम) गायों के बलि से उत्पन्न, (और) पृथिवी पर जलप्रवाह अर्थात् नदी के रूप में, परिणत हुई, राजा रन्तिदेव की कीर्ति को, सम्मानित करते हुए, (उसके प्रति) झुक जाना।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि हे मेघ ! भगवान् स्कन्द देव की आराधना करके तुम आगे बढ़ना, उस समय सिद्धयुगल अपनी वीणाओं के, तुम्हारी वर्षा से भीगने के डर से तुम्हारा मार्ग छोड़ देंगे और तुम आगे बढ़ते जाना, किन्तु इस बीच तुमको चर्मण्वती नदी का सम्मान करने के लिए भी ठहरना है, यह नदी पृथिवी पर गवालम्भ यज्ञ से उत्पन्न हुई है और राजा रन्तिदेव की कीर्तिस्वरूप है।

देवताओं की विविध योनियों में एक सिद्ध योनि भी है ये सिद्ध वीणावादन में कुशल होते हैं और प्रायः युगल रूप में रहते हैं। प्राचीन समय में रन्तिदेव नाम के एक राजा हुए थे उन्होंने गवालम्भ नामक यज्ञ किया था, पौराणिक कथाओं के अनुसार इस यज्ञ में इतनी गायों का आलम्भन किया गया था कि उनके चर्म से निकलने वाले रक्त से एक नदी बह निकली थी जो कि चर्मण्वती नाम से प्रसिद्ध हुई, इसे आज 'चम्बल' कहा जाता है। कवि की कल्पना है कि गवालम्भन से राजा रन्तिदेव की जो कीर्ति उत्पन्न हुई वही मानो नदी के रूप में प्रवाहित होने लगी है अर्थात् उनकी कीर्ति ही नदी बन गई है और वह आज भी प्रवाहित है। स्कन्ददेव की उत्पत्ति शरकण्डों के वन से भी हुई थी जैसा कि पहले बताया गया है, अतः इन्हें 'शरवणभव' कहा गया है।

विशेष—प्रस्तुत श्लोक में कीर्ति और नदी में यद्यपि कोई सम्बन्ध नहीं है तथापि दोनों में अभेद की कल्पना की गई है अतः यहाँ अतिशयोक्ति अलंकार है।

संस्कृत व्याख्या—एनम् पूर्वोक्तम् शरदणभवम् बालतृणवनोदृभवम् (शरोवाणे वाणतृणे-कोशः) शरजन्मा षडाननः इत्यमरः देवम् स्कन्दम् आराध्य उपास्य वीणिभिः वीणावदिभिः सिद्धद्वन्द्वैः सिद्धमिथुनैः जलकणभयात् जलकण त्रासात् मुक्तमार्गः त्यक्तवर्त्मा सन् उल्लङ्घिताध्वः अतिक्रान्तमार्गः सुरभितनयालम्भजाम् गोसंज्ञपनजाताम् भुवि भूमौ स्रोतोमूर्त्या प्रवाहरूपेण परिणताम् रूपविशेषमापन्नाम् रन्तिदेवस्य एतन्नमकस्य प्राचीनस्य दशपुरपतेः महाराजस्य कीर्तिम् चर्मण्वत्याख्यां नदीमित्यर्थः मानयिष्यन् सत्कारयिष्यन् व्यालम्बेथाः आनतो भव।

प्रसंग—यक्ष कहता है कि जब तुम चर्मण्वती नदी से जल ग्रहण कर रहे होगे तब तुम उसकी स्वच्छ पतली धारा में प्रतिबिम्बित होकर मुक्तामाला के मध्य में स्थूल नीलमणि जैसे दिखलाई पड़ोगे—

“त्वय्यादातुं जलमवनते शार्ङ्गिणो वर्णचौरे,

तस्याः सिन्धोः पृथुमपि तनुं दूरभावात् प्रवाहम्।

प्रेक्षिष्यन्ते गगनगतयो नूनमावर्ज्यं दृष्टी—

रेकं मुक्तागुणमिव भुवः स्थूलमध्येन्द्रनीलम्” ॥४९॥

अन्वय—शार्ङ्गिणः वर्णचौरे त्वयि जलम् आदातुम् अवनते पृथुम् अपि दूरभावात् तनुम् तस्याः सिन्धोः प्रवाहम् गगनगतयः नूनम् दृष्टीः आवर्ज्य एकम् स्थूलमध्येन्द्रनीलम् भुवः मुक्तागुणम् इव प्रेक्षिष्यन्ते।

शब्दार्थ—शार्ङ्गिणः = भगवान् कृष्ण के, वर्णचौरे = रंग को चुराने वाले अर्थात् उनके समान वर्ण वाले, त्वयि = तुम्हारे, जलम् आदातुम् = जल ग्रहण करने के लिए, अवनते = झुकने पर, पृथुम् अपि = स्थूल एवं विस्तृत भी, दूरभावात् = दूर होने के कारण, तनुम् = सूक्ष्म या पतले, तस्याः सिन्धोः = उसी नदी के, प्रवाहम् = प्रवाह को, गगनगतयः = आकाश में विचरण करने वाले देव आदि, नूनम् = निश्चय ही,

NOTES

दृष्टी: आवर्ज्य = दृष्टियों को संयत कर या बाँधकर, टकटकी लगाकर, स्थूलमध्येन्द्रनीलम् = स्थूल मध्यगतनीलमणि वाले, भुवः = पृथिवी के, मुक्तागुणम् इव = मोतियों के हार के समान, प्रेक्षिष्यन्ते = देखेंगे।

अनुवाद—भगवान् कृष्ण के वर्ण को चुराने वाले अर्थात् उनके समान श्याम वर्ण वाले तुम्हारे जल ग्रहण करने के लिए (नदी पर) झुकने पर, स्थूल एवं विस्तृत भी, दूर होने के कारण सूक्ष्म एवं पतले उस चर्मण्वती नदी के प्रवाह को, आकाश में विचरण करने वाले देवादि, निश्चयतः अपनी दृष्टियों को बाँधकर, मध्यभाग में स्थूल नीलमणि वाले, पृथिवी के मुक्ताहार के समान देखेंगे।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि हे मेघ तुम श्याम वर्ण के हो, अतः जब तुम चर्मण्वती नदी पर जो कि दूरी के कारण पतली धार वाली दिखलाई पड़ रही होगी, जल लेने को झुकोगे तब आकाशचारी देवता दृष्टि बाँधकर तुमको पृथिवी के मुक्ताहार के बीच की स्थूल नीलमणि के समान देखेंगे।

विशेष—यहाँ नीलमेघसंगत चर्मण्वती नदी के प्रवाह की पृथिवी की मुक्तामाला से उत्प्रेक्षा की गई है अतः उत्प्रेक्षालंकार है। 'शार्ङ्गिणः वर्णचौरे' में निदर्शनालंकार है।

संस्कृत व्याख्या—शार्ङ्गधनुः यस्य तस्य शार्ङ्गिणः शार्ङ्गधनुर्धरस्य विष्णोः वर्णस्य चौरस्तस्मिन् वर्णचौरे वर्णापहारके तत्तुल्यवर्णे श्यामे वा त्वयि मेघे जलम् चर्मण्वत्याः सलिलम् आदातुम् गृहीतम् अवनते आनते सति पृथुमपि स्थूलं विस्तृतं वापि दूरभावात् दूरत्वात् तनुम् सूक्ष्मतया प्रतीयमानम् तस्याः सिन्धोः पूर्वोक्ताया दद्याः चर्मण्वत्याः प्रवाहम् जलप्रवाहम् गगने गति र्येषान्ते गगनगतयः खेचराः सिद्धगन्धर्वादयः नूनम् निश्चयतः दृष्टीः आवर्ज्य संयम्य एकम् एकयष्टिकम्, स्थूलः महान् मध्यः मध्यमणीभूतः इन्द्रनीलो यस्य तम् स्थूलमध्येन्द्रनीलम् भुवः भूमेः मुक्तागुणम् मुक्ताहारम् इव प्रेक्षिष्यन्ते अवलोकयिष्यन्ति।

प्रसंग—यक्ष यह कहता है कि चर्मण्वती को पारकर हे मेघ ! तुम दशपुर में पहुँचना।

“तामुत्तीर्य व्रज परिचितभ्रूलताविभ्रमाणाम्,

पक्ष्मोत्क्षेपादुपरिविलसतकृष्णशारप्रभाणाम्।

कुन्दक्षेपानुगमधुकरश्रीमुषामात्मविम्बं

पात्रीकुर्वन् दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम्” ॥५०॥

अन्वय—ताम् उत्तीर्य आत्मविम्बन् परिचितभ्रूलताविभ्रमाणाम् पक्ष्मोक्षेपान् उपरिविलसतकृष्णशारप्रभाणाम् कुन्दक्षेपानुगमधुकरश्रीमुषाम् दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम् पात्रीकुर्वन् व्रज।

शब्दार्थ—ताम् = उस चर्मण्वती नदी को, उत्तीर्य = पार करके, आत्मविम्बम् = अपने स्वरूप को, परिचितभ्रूलताविभ्रमाणाम् = भौंहरूपी लताओं के विलासों के परिचय से युक्त, पक्ष्मोत्क्षेपात् = पलकों को ऊपर उठाने से, उपरिविलसतकृष्णशारप्रभाणाम् = ऊपर को चमकती हुई काली और रंग-बिरंगी कान्तियों वाले, कुन्दक्षेपानुगमधुकरश्रीमुषाम् = कुन्द पुष्पों के हिलने-डुलने के अनुगामी भ्रमरों की शोभा को चुराने वाले, दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम् = दशपुर की वधुओं के नेत्रों के कौतूहलों का अर्थात् उनके कौतूहल पूर्ण नेत्रों का, पात्रीकुर्वन् = पात्र बनाते हुए, व्रज = आगे जाना।

अनुवाद—उस चर्मण्वती नदी को पार करके अपने स्वरूप को अर्थात् अपने को, भौंहरूपी लताओं के विलास के परिचय में युक्त, पलकों को ऊपर उठाने के कारण ऊपर को चमकती हुई काली और रंग-बिरंगी कान्तियों वाले, (तथा) कुन्द पुष्पों के हिलने-डुलने के अनुगामी भ्रमरों की शोभा को चुराने वाले, दशपुर की वधुओं के कौतूहल पूर्ण नेत्रों का, पात्र बनाते हुए आगे बढ़ना।

भावार्थ—यक्ष मेघ से कहता है कि तुम चम्बल को पार करके दशपुर में पहुँचना। वहाँ पर स्त्रियाँ तुम्हें बड़े चाव से, साभिलाष, साश्चर्य एवं सविलास नेत्रों से देखेंगी। इस प्रकार तुम अपने को उन स्त्रियों के दृष्टिगोचर बनाते हुए आगे जाना। देखते समय उन स्त्रियों की भौहें लताओं के समान विलासपूर्ण होंगी और पलकों के ऊपर उठने से उनकी काली तथा रंग-बिरंगी कान्तियाँ निकल रही होंगी और वे भौरों की शोभा से भी बढ़कर होंगी अर्थात् उनकी आँखें काली सफेद नेत्रान्त वाली होंगी।

विशेष—‘कुन्दक्षेपेत्यादि पद में बतलाया गया है कि नेत्र मधुकरों की शोभा को चुराने वाले। किन्तु यह असम्बद्ध कथन। मधुकरों की शोभा को नेत्र नहीं चुरा सकते, अतः यह अभवद्वस्तुसम्बन्धउपमापरिकल्पक हो जायेगा जिससे यहाँ निदर्शनालंकार होगा, साक्षात् उपमालंकार नहीं। भूलता में उपमा भी है।

संस्कृत व्याख्या—ताम् पूर्वोक्ताम् चर्मण्वतीं नदीम् उत्तीर्य पारंगत्वा आत्मविम्बम् स्वरूपम् आत्मानं वा, परिचिताः भूलतानां विभ्रमा येषाम् तेषाम् परिचितभूलताविभ्रमाणाम् अभ्यस्तभूवल्लीविलासानाम्, पक्ष्मणामुत्क्षेपस्तस्मात् नेत्रलोमोन्नमनात्, उपरिविलसन्त्यः कृष्णाः शाराश्च प्रभाः येषां तेषाम् उपरिविलसत्कृष्णशारप्रभाणाम् उपरिस्फुरत्कृष्णशवलः। कान्तीनाम् (कृष्णरक्त सितः शाराः—कोशः) शारशब्दादेव सिद्धे कृष्णशब्दस्य पृथगुपादानं कृष्णवर्ण प्रधान्यद्योतनार्थम्। कुन्दक्षेपानुगा ये मधुकरास्तत्तेषां श्रियं मुष्णन्ति इति तेषाम्—कुन्दक्षेपानुगमधुकरश्रीमुषाम् कुन्दकुसुमसंचालनानुगामि। मधुपशोभापहारिणाम्, दशपुरनिवासिवधे—जननयनाभिलाषाणाम् पात्रीकुर्वन् विषयी। कुर्वन् व्रज गच्छ। दशपुरवधूनां सकौतुकदृष्टीनामात्मानं विषयीकुर्वन् व्रजेति भावः।

प्रसंग—यक्ष कहता है कि हे मेघ ! इसके बाद तुम ब्रह्मावर्त जनपद में कुरुक्षेत्र नाम के प्रसिद्ध स्थान पर पहुँचना।

“ब्रह्मावर्त जनपदमच्छायया गाहमानः,
क्षेत्रं क्षत्रप्रधनपिशुनं कौरवं तद् भजेथाः
राजन्यानां शितशरशतैर्यत्र गाण्डीवधन्वा,
धारापातैस्त्वमिव कमलान्यभ्यवर्षन् मुखानि” ॥ ५१ ॥

अन्वय—अथ ब्रह्मावर्त जनपदम् छायाया गाहमानः क्षत्रप्रधनपिशुनम् तत् कौरवम् क्षेत्रम् भजेथाः यत्र गाण्डीवधन्वा शितशरशतैः राजन्यानाम् मुखानि, धारापातैः कमलानि त्वम् इव अभ्यवर्षत्।

शब्दार्थ—अथ = इसके बाद, ब्रह्मावर्तम् जनपदम् = ब्रह्मावर्त नामक प्रदेश में, छायाया = (अपनी) छाया के द्वारा गाहमानः = प्रवेश करते हुए, क्षत्रप्रधानपिशुनम् = क्षत्रियों के युद्ध के सूचक, तत् कौरवम् क्षेत्रम् = उस (प्रसिद्ध) कुरुक्षेत्र को, भजेथाः = प्राप्त करना, यत्र = जहाँ पर, गाण्डीवधन्वा = गाण्डीव नामक धनुष को धारण करने वाले अर्थात् अर्जुन ने, शितशरशतैः = सैकड़ों तीक्ष्ण वाणों से राजन्यानाम्, मुखानि = क्षत्रिय राजाओं के मुखों पर, धारापातैः = जलधाराओं की वर्षा से, कमलों पर, त्वम् इव = तुम्हारे समान, अभ्यवर्षत् = वर्षा की थी।

अनुवाद—इसके बाद (तुम) ब्रह्मावर्त जनपद में अपनी छाया के द्वारा प्रवेश करते हुए, क्षत्रियों के युद्ध के सूचक उस कुरुक्षेत्र को प्राप्त करना अर्थात् वहाँ पहुँचना, जहाँ गाण्डीवधारी अर्जुन ने सैकड़ों तीक्ष्णवाणों से क्षत्रिय राजाओं के मुखों पर उसी प्रकार वर्षा की थी जैसे तुम अपनी जलधाराओं द्वारा कमलों पर वर्षा करते हो।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि इसके बाद तुम ब्रह्मावर्त नामक प्रदेश में स्थित कुरुक्षेत्र में पहुँचना जहाँ पर क्षत्रियों-कौरव और पाण्डवों का—युद्ध हुआ था और जहाँ अर्जुन ने अपने वाणों से शत्रुओं पर उसी प्रकार वर्षा की थी जैसे तुम अपनी जलधाराओं से कमलों पर करते हो।

NOTES

संस्कृत व्याख्या—अथ एतदनन्तरम् ब्रह्मावर्तम् एतन्नामकं जनपदम् प्रदेशम् छायाया स्वानातपेन गाहमानः प्रविशन्, क्षत्राणां प्रधानस्या पिशुनम् छत्रप्रधनपिशुनम् कुरुपाण्डवक्षत्रिययुद्धसूचकम् (युद्धमायोधनं जन्यं प्रधानं प्रविदारणम्—इत्यमरः) तत् प्रसिद्धम् कुरुणामिदं कौरवम् क्षेत्रम् कुरुक्षेत्रमित्यर्थः भजेथाः गच्छेत्यर्थः) यत्र कुरुक्षेत्रे, गाण्डी आस्यास्तीति गाण्डीवं तद्धनुर्यस्य स गाण्डीवधन्वा गाण्डीवनामक धनुर्धारी अर्जुनः शितशरशतैः निशितवाणसहस्रैः राजन्यानाम् क्षत्रियनृपतीनाम् मुखानि, आननानि, धाराणां पातैः धारापातैः जलधारावृष्टिभिः कमलानि त्वम् मेघः इव यथा अभ्यवर्षत् वृष्टवान्।

प्रसंग—यक्ष कहता है कि तुम कुरुक्षेत्र में पहुँचकर सरस्वती नदी का जल पीना जिससे कि तुम अन्तः शुद्ध हो सको।

“हित्वा हालामभिमतरसां रेवतीलोचनाङ्गां

बन्धुप्रीत्या समरविमुखो लाङ्गली याः सिषेवे।

कृत्वा तासामधि गममपां सौम्य सारस्वतीना—

मन्तः शुद्धस्त्वमपि भविता वर्णमात्रेण कृष्णः” ॥ ५२ ॥

अन्वय—बन्धुप्रीत्या समरविमुखः लाङ्गली, अभिमतरसाम् रेवतीलोचनाङ्गाम् हालाम् हित्वा याः सिषेवे, तासाम् सारस्वतीनाम् अपाम् अधिगमम् कृत्वा, सौम्य ! त्वम् अन्तः शुद्धः भविता, वर्णमात्रेण कृष्णः (स्थास्यसि)।

शब्दार्थ—बन्धुप्रीत्या = बन्धुओं—कौरवों—पाण्डवों—के स्नेह से, समर-विमुखः = युद्ध से पराङ्मुख (होकर), लाङ्गली = हल को धारण करने वाले अर्थात् बलराम जी, अभिमतरसाम् = अभीष्ट स्वाद वाली, रेवतीलोचनाङ्गाम् = रेवती के नेत्रों के चिह्न (प्रतिबिम्ब) वाली, हालाम् = मदिरा को, हित्वा = छोड़कर, या = जिन जलों का, सिषेवे = सेवन किया था, तासाम् सारस्वतीनाम् अपाम् = उन सरस्वती नदी के जलों का, अधिगमम् कृत्वा = सेवन या प्राप्ति करके, सौम्य = हे सौम्य ! त्वम् अपि = तुम भी, अन्तःशुद्धः = अन्तःकरण से शुद्ध, भविता = हो जाओगे, वर्णमात्रेण = केवल रंग मात्र से, कृष्णः = कृष्ण वर्ण के (रहोगे)।

अनुवाद—बन्धुजनों के स्नेह के कारण युद्ध से विमुख (होकर) हल को अस्त्र रूप में धारण करने वाले बलराम जी ने, अभीष्ट स्वाद वाली (तथा) रेवती के नेत्रों के चिह्न से युक्त, मदिरा को छोड़कर जिन जलों का सेवन किया था उन सरस्वती नदी के जलों को प्राप्त कर या सेवन कर, हे सौम्य ! तुम भी अन्तःकरण से शुद्ध हो जाओगे, केवल अपने रंग मात्र से काले रहोगे।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि हे मेघ ! कुरुक्षेत्र में पहुँचकर तुम वहाँ पर बहने वाली सरस्वती के जलों का सेवन करना जिससे कि तुम्हारा अन्तःकरण शुद्ध हो सके, भले ही तुम ऊपर से रंग से काले बने रहो, यह वही पवित्र सरस्वती नदी है जिसके जल का सेवन, युद्ध से विमुख होकर और अभिमत हाला को भी छोड़कर बलराम ने किया था।

संस्कृत व्याख्या—बन्धूनां प्रीतिस्तया बन्धुप्रीत्या कुरुपाण्डवबन्धुप्रेम्णा समरात् विमुखः समरविसुखः युद्धपराङ्मुखः लाङ्गली लाङ्गलास्त्रधारी बलरामः अभिमतरसाम् अभीष्टस्वादाम् रेवतीलोचनाङ्गाम् रेवतीनेत्रचिह्नम् हालाम् मदिराम् हित्वा परित्यज्य याः अपः सिषेवे सेवितवान् पीतवानित्यर्थः तासाम् सारस्वतीनाम् सरस्वतीसम्बन्धिनीनाम् अपाम् जलानाम् अधिगमं कृत्वा सेवनं विधाय पीत्वेत्यर्थः सौम्य हे सुभग ! त्वमपि

मेघोऽपि अन्तःशुद्धः पूतान्तःकरणः भविता भविष्यसीत्यर्थः वर्णमात्रेण केवलं वर्णेनैव कृष्णः श्यामः न तु पापेनेत्यर्थः (स्थास्यसि)।

मेघदूतम् (पूर्वमेघः)

प्रसंग—यक्ष कहता है कि हे मेघ ! इसके बाद तुम कनखल में पहुँचना, वहाँ तुमको गंगा नदी मिलेगी—

NOTES

“तस्माद् गच्छेरनुकनखलं शैलराजावतीर्णा,
जह्नोः कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपानपंक्तिम्।
गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचनां या विहस्येव फेनैः,
शम्भोः केशग्रहणमकरोदिन्दुलग्नोर्मिहस्ता” ॥ ५३ ॥

अन्वय—तस्मात् अनु कनखलम् शैलराजावतीर्णाम् सगरतनयस्वर्ग सोपान पंक्तिम् जह्नोः कन्याम् गच्छेः,
या गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचनाम् फेनैः विहस इव इन्दुलग्नोर्मिहस्ता (सती) शम्भोः केशग्रहणम् अकरोत्।

शब्दार्थ—तस्मात् = वहाँ से अर्थात् कुरुक्षेत्र से, अनुकनखलम् = कनखल के समीप, शैलराजावतीर्णाम् = पर्वतराज हिमालय से उतरी हुई, सगरतनयस्वर्गसोपान पंक्तिम् = सगर के पुत्रों के लिए स्वर्ग की सीढ़ी, जह्नो कन्याम् = जह्नु, नामक राजर्षि की पुत्री अर्थात् जान्हवी गंगा पर, गच्छेः = पहुँचना, या = जिस जाह्नवी ने, गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचनाम् = पार्वती के मुख पर (सापत्य क्रोधवश होने वाले) भ्रूभङ्ग को, फेनैः = झागों के द्वारा, विहस्य इव = मानो उपहास करके, इन्दुलग्नोर्मिहस्ता = चन्द्र में संसक्त तरंगरूपी हाथों वाली (होकर) शम्भोः = शिवजी के, केशग्रहणम् = केश का ग्रहण, अकरोत् = किया था।

अनुवाद—कुरुक्षेत्र से कनखल के समीप पर्वतराज हिमालय से उतरी हुई (और) सगर के पुत्रों के लिए स्वर्ग की सीढ़ी, जह्नु की पुत्री जाह्नवी (गंगा) पर पहुँचना, जिस जाह्नवी ने पार्वती के मुख पर (सापत्य रोषवश होने वाले) भ्रूभङ्ग का मानो अपने झागों से उपहास कर (शिवशिरः स्थित) चन्द्र संसक्त तरंगरूपी हाथों वाली होकर शिवजी के केशों का ग्रहण किया था।

भावार्थ—यक्ष मेघ से कहता है कि कुरुक्षेत्र से आगे बढ़कर तुम कनखल (हरिद्वार के समीप एक तीर्थस्थान) के समीप हिमालय से उतरी हुई और सगर पुत्रों के लिए स्वर्ग की सीढ़ी जाह्नवी पर पहुँचना, इस जाह्नवी ने सापत्य रोषवश होने वाले पार्वती के भ्रूभङ्ग का अपने झागों द्वारा उपहास कर अपने तरंगरूपी हाथों से शिवजी के केशों का ग्रहण किया था अर्थात् पार्वती की सपत्नी बनकर शिवजी की जटाओं में वास करने लगी हैं।

विशेष—प्रस्तुत श्लोक में यह बताया गया है कि जाह्नवी ने मानो अपने झागों से उपहास कर तरंगरूपी हाथों से शिवजी का केश ग्रहण किया था। अतः क्रमशः उत्प्रेक्षा और रूपक अलंकार हैं। दोनों परस्पर निरपेक्ष हैं अतः संसृष्टि है।

संस्कृत व्याख्या—तस्मात् कुरुक्षेत्रात्, अनुकनखलम् कनखलनामकतीर्थ समीपम् शैलराजावतीर्णाम् नगाधि-
राजहिमालयावरूढाम् सगरतनयानां स्वर्गाय सोपानानां पंक्तिताम्—सगरतनयस्वर्गसोपानपंक्तिम्
सगरपुत्रस्वर्गारोहणनिश्रेणीम् स्वर्गप्राप्तिसाधनभूतातित्यर्थः जह्नोः एतन्नामकस्य राजर्षेः कन्यां पुत्रीं जाह्नवीमित्यर्थः
गच्छे व्रजेः, या जाह्नवी गौरीवक्त्रे या भ्रुकुटिरचना ताम्—गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचनाम् पार्वतीमुखभ्रूभङ्गम् फेनैः
डिण्डीरैः विहस्य अवहस्य इव इन्दौ लग्ना ऊर्मय एव हस्ता यस्याः सा—इन्दुलग्नोर्मिहस्ता चन्द्रसंसक्ततरंगकरा
(सती) शम्भोः शिवस्य केशग्रहणम् कचग्रहम्—अकरोत् कृतवती (यथा काचित्प्रौढा नायिका स्वसपत्नीमसहामाना
स्वभर्तारं केशेष्व्वा कर्षति तद्वदितिभावः।

प्रसंग—मेघ से संगत गंगा की शोभा का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

“तस्याः पातुं सुरगज इव व्योम्नि पश्चार्धलम्बी,
त्वञ्चेदच्छस्फटिकविशदं तर्कयेस्तिर्यग्गम्भः।

संसर्पन्त्या सपदि भवत स्रोतसि छायायासौ,

स्यादस्थानोपगतयमुनासंगमेवाभिरामा ॥ ५४ ॥”

NOTES

अन्वय—सुरगजः इव व्योम्नि पश्चार्धलम्बी त्वम् तस्याः अच्छस्फटिकविशदम् अम्भः तिर्यक् पातुम् तर्कयेः चेत् असौ सपदि स्रोतसि संसर्पन्त्या भवतः छायाया अस्थानोपगतयमुनासंगमा इव अभिरामा स्यात्।

शब्दार्थ—सुरगजः इव = देवगज अथवा किसी दिग्गज के समान, व्योम्नि = आकाश में, पश्चाध्लम्बी = पीछे को आधे लटके हुए, त्वम् = तुम मेघ, तस्यः = उस गंगा के, अच्छस्फटिकविशदम् = श्वेत स्फटिक मणि के समान स्वच्छ, अम्भः = जल को, तिर्यक् = टेढ़े होकर, पातुम् = पीने के लिये, तर्कये चेत् = अगर विचार करो (तो) असौ = यह गंगा सपदि = तुरन्त ही स्रोतसि = धारा अथवा प्रवाह में, संसर्पन्त्या = संक्रान्त होने वाली या पड़ती हुई, भवतः छायाया = आपकी छाया से, अस्थानोपगतयमुनासंगमा इव = संगम स्थान प्रयोग से भिन्न स्थान में यमुना के संगम को प्राप्त करने वाली के समान, अभिरामा स्यात् = सुन्दर हो जायेगी।

अनुवाद—देवगज अथवा किसी दिग्गज के समान, आकाश में, पीछे को आधे लटके हुए तुम यदि उस गंगा के श्वेत स्फटिक मणि के समान स्वच्छ जल को टेढ़े होकर पीने के लिए विचार करो, तो यह गंगा शीघ्र ही (अपने) प्रवाह में पड़ती हुई आपकी छाया से, संगम स्थान प्रयोग से भिन्न स्थान में यमुना के संगम को प्राप्त करने वाली के समान सुन्दर हो जायेगी।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि यदि तुम गंगा के श्वेत जल का पान करने के लिए उस पर झुकोगे तो तुम्हारी छाया के उसके प्रवाह में पड़ने से ऐसा प्रतीत होगा कि मानो गंगा प्रयाग से भिन्न किसी अन्य स्थान पर यमुना से मिल रही है। श्वेतजला गंगा, नीलजला यमुना से मिलकर प्रयाग में जैसी सुशोभित होती है, तुम्हारी नीलछाया से निकलकर वह यहाँ भी वैसी ही सुशोभित होगी।

विशेष—यहाँ नीलमेघ की छाया के संक्रमण में गंगा ऐसी प्रतीत होती है मानो उसका यमुना से संगम हो गया है। इस कथन में उत्प्रेक्षालंकार है। ‘अच्छ स्फटिक विशदम्’ में उपमालंकार है। दोनों परस्पर निरपेक्ष हैं अतः संसृष्टि है।

संस्कृत व्याख्या—सुरगजः इव कश्चिदिदिग्गज इव वा व्योम्नि आकाशे, पञ्चादधम् पश्चार्धम् तेन लम्बत इति पश्चार्धलम्बी पश्चिमार्धभागलम्बी सन् पश्चार्धेन व्योम्नि स्थित्वा पूर्वाधेन जलप्रवाहोन्मुख इत्यर्थः, त्वम् मेघः तस्या गङ्गायाः अच्छं च तत् स्फटिक अच्छस्फटिकं तदिव विशदन् अच्छस्फटिकविशदम् निर्मलस्फटिकावदातम् अम्भः जलम् तिर्यक् तिरश्चीन यथा स्यात्तथा पातुम् जलमादातुम् तर्कयेः विचारयेः चेत् यदि, (तर्हि) असौ गङ्गा सपदि सत्वरमेव स्रोतसि प्रवाहे संसर्पन्त्या संक्रामन्त्या भवतः मेघस्य छायाया प्रतिमिवेन अस्थाने उपगतः संगमः यया स अस्थानोपगतयमुनासंगमा प्रयागभिन्नस्थानोपलब्धयमुनासंगमा इव अभिरामा मनोहरा स्यात् भवेत्।

प्रसंग—हिमालय पर आरूढ़ मेघ की शोभा का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

“आसीनानां सुरभितशिलं नाभिगन्धैर्मृगाणां,
तस्या एवं प्रभवमचलं प्राप्य गौरं तुषारैः ।
वक्ष्यस्यध्वश्रमविनयने तस्य शृङ्गे निषण्णः
शोभां शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपङ्कीपमेयाम्” ॥ ५५ ॥

मेघदूतम् (पूर्वमेघः)

NOTES

अन्वय — आसीनानाम् मृगाणाम् नाभिगन्धैः सुरभितशिलम् तस्या एव प्रभवम् तुषारैः गौरम् अचलम् प्राप्य अध्वद्यमविनयने तस्य शृङ्गे निषण्णः (त्वम्) शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपङ्कीपमेयाम् शोभाम् वक्ष्यसि ।

शब्दार्थ—आसीनानाम् मृगाणाम् = बैठे हुए मृगों की, नाभिगन्धैः = नाभियों की गन्धों से अर्थात् कस्तूरी की गन्धों से, सुरभितशिलम् = सुगन्धित शिलाओं वाले, तस्याः एवं = उस गंगा के ही, प्रभवम् = उद्गम स्थान, तुषारैः गौरम् = हिमों से श्वेत वर्ण वाले, अचलम् = पर्वत अर्थात् हिमालय को, प्राप्य = प्राप्त करके अर्थात् वहाँ पहुँचकर, अध्वश्रमविनयने = मार्गश्रम को दूर करने वाले, तस्य शृङ्गे = उसके शिखर पर, निषण्णः = स्थित (हुए, तुम) शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपङ्कीपमेयाम् = श्वेत वर्ण के, शिवजी के वृषभ के द्वारा (सींग से) उखाड़ी गई कीचड़ के साथ तुलना योग्य, शोभाम् वक्ष्यसि = शोभा को धारण करोगे ।

अनुवाद—बैठे हुए मृगों की (नाभि) कस्तूरी की गन्धों से सुगन्धित शिलाओं वाले, उस गंगा के ही उद्गम स्थान हिमों से श्वेत वर्ण के पर्वत अर्थात् हिमालय पर पहुँचकर, मार्गश्रम को दूर करने वाले उसके शिखर पर स्थित हुए तुम, शिवजी के श्वेत वृषभ के द्वारा (सींगों से) उखाड़ी हुई कीचड़ के साथ तुलना योग्य शोभा को धारणा करोगे ।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि जब तुम गंगा के उद्गम स्थान हिमालय पर जो कि बर्फ से श्वेत वर्ण का तथा कस्तूरी मृगों के बैठने से सुगन्धित शिलाओं वाला है, पहुँचोगे और मार्गश्रमापनोद करने वाले उसके शिखर पर बैठोगे तो उस समय तुम ऐसे प्रतीत होगे मानो शिवजी के श्वेत वृषभ द्वारा उखाड़ी गई कीचड़ उसके सींग पर रखी हो ।

विशेष—श्वेत वर्ण के हिमालय के शिखर पर स्थित श्याम वर्ण के मेघ की शोभा, शिवजी के श्वेत वृषभ के सींग पर लगी कीचड़ के समान होगी, इस कथन में उपमालंकार है ।

संस्कृत व्याख्या—आसीनानाम् उपविष्टानाम् मृगाणाम् हरिणानाम् कस्तूरिका-मृगाणामित्यर्थः नाभिगन्धैः कस्तूरिकागन्धैः (कस्तूरी, कस्तूरिक मृगनाभितः समुत्पद्यते, अतएव कस्तूरिकाया मृगनाभिसंज्ञा भवति) मृगनाभिमृगमदः कस्तूरी च इत्यमरः । सुरभिताः शिलाः यस्य तम् सुरभितशिलम् सुगन्धितप्रस्तरम् तस्या गङ्गायाः एव, प्रभवत्यस्मादिति प्रभवस्तम् प्रभवम् उद्गमस्थानम् तुषारैः हिमैः गौरम् सितम् (अवदातः सितो गौरः इत्यमरः) अचलम् पर्वतम् हिमालयमित्यर्थः प्राप्य आसाद्य अध्वश्रमविनयने मार्गश्रमापनोदने तस्य हिमालयस्य शृङ्गे शिखरे निषण्णः समुविष्टः सन् (त्वम्) शुभ्रः यः त्रिनयनस्य वृषः तेन उत्खातः स चासौ षड्ङ्क तेन उपमेया ताम् शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपङ्कीपमेयाम् श्वेतशम्भुवृषभविदारितकर्दमतुलनायोग्याम् शोभाम् कान्तिम् वक्ष्यसि धारयिष्यसि ।

प्रसंग—यक्ष कहता है कि तुम्हारे पहुँचने पर यदि वहाँ वनाग्नि लगी हो तो तुम वर्षा करके बुझा देना—

“तं चेद् वायौ सरति सरलस्कन्धसंघट्टजन्मा,
वाधेतोल्काक्षपितचमरीवालभारो दवाग्निः ।
अर्हस्येनं शमयितुमलं वारिधारासहस्रै-
रापन्नार्तिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम्” ॥ ५६ ॥

अन्वय—वायौ सरति, सरलस्कन्धसंघट्टजन्मा उल्काक्षपितचमरीवालभारः दवाग्निः तम् बाधेत् चेत्, एनम् वारिधारासहस्रैः अलम् शमयितुम् अर्हसि, हि उत्तमानाम् सम्पदः आपन्नार्तिप्रशमनफलाः (भवन्ति) ।

NOTES

शब्दार्थ—वायौ सरति = वायु के चलने पर, सरलस्कन्धसंघट्टजन्मा = चीड़ के वृक्षों के तनों के संघर्षण से उत्पन्न होने वाला, उल्काक्षपितचमरीवालभारः = ज्वालाओं से चमरी गायों के बाल समूह को जला देने वाला, दवाग्निः = वन की अग्नि अर्थात् दावानल, तम् = उस पर्वत को, बाधेत् = पीड़ित करे अर्थात् जलाये, चेत् = यदि (तो) एनम् = इसको अर्थात् वनाग्नि को, वारिधारासहस्रैः = असंख्य जलधाराओं से, अलम् = पर्याप्त रूप में, शमयितुम् = शान्त करने के लिए, अर्हसि = योग्य हो, हि = क्योंकि, उत्तमानाम् = उत्तम जनों की, सम्पदः = सम्पत्तियाँ, आपन्नार्तिप्रशमनफलाः = दुःखी जनों की पीड़ा को शान्त करने के फल वाली (होती हैं) अर्थात् श्रेष्ठ जनों की सम्पत्तियों का फल दुःखित जनों की शान्त करना ही होता है।

अनुवाद—वायु के चलने पर, चीड़ के वृक्षों के तनों के संघर्ष से उत्पन्न होने वाला (तथा) ज्वालाओं से चमरी गायों के बाल-समूह को जला देने वाला दावानल यदि उस हिमालय को पीड़ित करे (तो तुम) उस दावानल को असंख्य जल धाराओं से पर्याप्त रूप में शान्त करने के लिये योग्य हो क्योंकि उत्तम जनों की सम्पत्तियाँ दुःखी जनों के दुःख को शान्त करने के फल वाली (होती हैं) अर्थात् उत्तम जनों की सम्पत्तियों का फल दुःखी जनों की पीड़ा शान्त करना होता है।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि यदि उस समय हिमालय के वन में तेज वायु के चलने से चीड़ वृक्षों की रगड़ से आग लग गयी हो तो तुम अपनी तेज वर्षा से उसे बुझा देना क्योंकि ऐसा करना उत्तमजनों का कर्त्तव्य है।

विशेष—प्रस्तुत श्लोक की अन्तिम पंक्ति में वर्णित लोक सामान्य तथ्य से पूर्व वर्णित विशेष बात का समर्थन किया गया है अतः अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

संस्कृत व्याख्या—वायौ पवने सरति प्रवहति, सरलानां स्कन्धानाम् संघट्टेन जन्म यस्य स सरलस्कन्धसंघट्टजन्मा— देवदारुविशेषप्रकाण्डसंघर्षणोत्पन्नः (अस्त्रीः प्रकाण्डः स्कन्धः स्यान्मूलाच्छाखावधेस्तरोः इत्यमरः) । उल्काभिः क्षपित चमरीणां बालानां भारः येन स उल्काक्षपितचमरीवालभारः बह्विकणसमूहदग्ध गारण्यमृगीपुच्छकेशप्रचयः, दव एव अग्निः दवाग्निः वनवह्निः (वने च वनवह्नौ च दवो दाव इतीष्यते—कोशः तं हिमालयपर्वतम् बाधेत् पीडयेत् चेत् यदि (तर्हि त्वम्) एनम् दवाग्निम् वारिधारासहस्रैः असंख्यजलधाराभिः अलम् पर्याप्तरूपेण शमयितुम् निर्वापयितुम् अर्हसि योग्योऽसि हि—यतः उत्तमानाम् मयताम् सम्पदः सम्पत्तयः आपन्नानाम् आर्तेः प्रशमनमेव फलं यासां ताः आपन्नार्तिप्रशमनफलाः दुःखितजनपीडानिवारणप्रयोजनाः (भवन्ति) ।

प्रसंग—यक्ष कहता है कि यदि शरभ तुम्हारे मार्ग का उल्लंघन करें तो तुम ओलों की वृष्टि से उन्हें भगा देना।

“ये संरम्भोत्पतनरभसाः स्वाङ्गभङ्गाय तस्मिन्

मुक्ताध्वानं सपदि शरभा लङ्घयेयुर्भवन्तम्।

तान् कुर्वीथास्तुमुलकरकावृष्टिपातवकीर्णान्

के वा न स्युः परिभदपदं निष्फलारम्भयत्नाः” ॥ ५६ ॥

अन्वय—तस्मिन् संरम्भोत्पतनरभसाः ये शरभाः मुक्ताध्वानं भवन्तम् सपदि स्वाङ्गभङ्गाय लङ्घयेयुः, तान् तुमुलकरकावृष्टिपातवकीर्णान् कुर्वीथाः निष्फलारम्भयत्नाः के वा परिभवपदम् न स्युः।

शब्दार्थ—तस्मिन् = उस हिमालय पर्वत पर, **संरम्भोत्पतनरभसाः** = क्रोध के कारण उछलने में वेगयुक्त, **शरभाः** = पर्वतीय जन्तु विशेष, **मुक्ताध्वानम्** = मार्ग छोड़ चुकने वाले, **भवन्तम्** = आपको, **सपदि** = शीघ्र ही, **स्वाङ्गभङ्गाय** = अपने अंगों को तोड़ने के लिए, **लङ्घयेयुः** = उल्लंघन करें, **तान्** = उन शरभों को, **तुमुलकरकावृष्टि-पातावकीर्णान्** = घनघोर बीजों की वर्षा को गिराने से तितर-बितर, **कुर्वीथाः** = कर देना, **निष्फलारम्भयत्नाः** = निष्फल कर्मों में प्रयत्न करने वाले, **के वा** = अन्य कौन लोग, **परिभवपदम् न स्युः**—तिरस्कार का विषय या पद अथवा पात्र नहीं होते, अर्थात् अवश्य होते हैं।

अनुवाद—उस हिमालय पर्वत पर क्रोध के कारण उछलने में वेगयुक्त पर्वतीय जन्तु विशेष, मार्ग छोड़ चुकने वाले आपको (यदि) शीघ्र ही अपने अंगों को तोड़ने के लिए उल्लङ्घित करें (तो तुम) उनको घनघोर ओलों की वृष्टि गिराने से तितर-बितर कर देना। निष्फल कार्यों में प्रयत्न करने वाले कौन लोग तिरस्कार के पात्र नहीं होते, अर्थात् ऐसे सभी तिरस्कृत होते हैं।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि हिमालय पर यदि शरभ क्रोधवश ऊपर उछलते हुए तुम्हारे मार्ग में पहुँचकर तुम्हें उल्लंघित करें तो तुम घोर करका वृष्टि द्वारा उन्हें तितर-बितर कर देना, क्योंकि निरर्थक काम करने वाले लोगों को तिरस्कृत होना ही पड़ता है।

विशेष—यहाँ अन्तिम पंक्ति में वर्णित सामान्य तथ्य से पूर्वोक्त विशेष बात के समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

संस्कृत व्याख्या—तस्मिन् हिमाद्रौ, संरम्भेण उत्पतने रभसः येषान्तेसंरम्भोत्पतनरभसाः कोधोत्पलवनवेगाः (रभसो वेगहर्षयोः इत्यमरः) संरभ्यः संभ्रमे कोपे—कोशः ये शरभाः अष्टापदमृगविशेषाः (शरभः शलभे चाष्टापदे प्रोक्तो मृगान्तरे—कोशः) मुक्तः अध्वा येन तम्—मुक्ताध्वानम् परित्यक्तशरभोत्पतनमार्गम् भगवन्तम् मेघम् सपदि शीघ्रमेव स्वाङ्गभङ्गाय निजशरीरनाशाय (दूरतोऽपि स्थितस्य त्यक्ततन्मार्गस्यापि भवतो लंघनस्य स्वाङ्गभङ्गातिरिक्तस्य फलस्याभावादित्यर्थः) लङ्घयेयुः अतिक्रमेयुः (सम्भावनायामत्र लिङ्लकारः) तान् शरभान् तुमुलानां ककाणां वृष्टिः तस्याः पातेन अवकीर्णान्—तुमुलकरकावृष्टिपातावकीर्णान् संकुलवर्षोपलवृष्टिपातविक्षिप्तान् (वर्षोत्पलस्तु करका इत्यमरः—करकेति शब्दस्य पुल्लिङ्गे चापि पाठः “करकस्तु करङ्के स्यादाक्रोशे च कमण्डलौ, पक्षिभेदे करे चापि करका च धनोपले—इति विश्वप्रकाशवचनात् वर्षोपलस्तु कारका करकोऽपि च दृश्यते,” अतः करकाणाम् आसमन्तात् वृष्टि रिति विग्रहोऽपि सम्भवति।) कुर्वीथाः कुरुष्वेत्यर्थः (अत्र विध्यर्थे लिङ्, क्षुद्रोऽपि अधिकक्षेप्ता सद्य एव प्रति क्षेप्तव्यो भवतीति भावः) तथाहि आरभ्यन्ते इति आरम्भाः तेषु यत्नः स निष्फलः येषाम्—निष्फलारम्भयत्ना निरर्थककर्मोद्योगाः के वा जनाः परिभवपदम् तिरस्कारपात्रम् न स्युः न भवेयुः।

प्रसंग—यक्ष कहता है कि तुम वहाँ हिमालय की शिला पर व्यक्त शिव चरण-चिन्हों की प्रदक्षिणा करना।

“तत्र व्यक्तं दृषदि चरणन्यासमर्थेन्दुमौलेः,

शश्वत्सिद्धैरुपचितवलिं भक्तिनम्रः परीयाः।

यस्मिन् दृष्टे करणविगमादूर्ध्वमुद्धूतपापाः

संकल्पन्ते स्थिरगणपदप्राप्तये श्रद्धधानाः” ॥ ५८ ॥

अन्वय—तत्र दृषदि व्यक्तम् शश्वत् सिद्धैः उपचितवलिम् अर्थेन्दुमौलेः चरणन्यासम् भक्तिनम्रः परीयाः, यस्मिन् दृष्टे उद्धूतपापाः श्रद्धधानाः करणविगमादूर्ध्वम् स्थिरगणपदप्राप्तये संकल्पन्ते।

NOTES

शब्दार्थ—तत्र = हिमालय पर्वत पर, दृषदि = शिला पर, व्यक्तम् = प्रकट, शश्वत् = निरन्तर, सिद्धैः = योगियों द्वारा, उपचितवलिम् = वलि (पूजा) प्राप्त करने वाले, अर्धेन्दुमौलेः = मस्तक पर अर्धचन्द्र को धारण करने वाले अर्थात् शिवजी के, चरणन्यासम् = चरणों के चिह्न को, भक्तिनम्रः = भक्ति से अवनत होकर, परीयाः = प्रदक्षिणा करना, यस्मिन् दृष्टे = जिसके दर्शन करने पर, उद्धूतपापाः = नष्ट हुए पापों वाले, श्रद्धाधनाः = श्रद्धालु जन, करणविगमात् = शरीरत्याग के, ऊर्ध्वम् = उपरान्त, स्थिरगणपदप्राप्तये = गणों के शाश्वत पद की प्राप्ति के लिए, संकल्पन्ते = समर्थ होते हैं।

अनुवाद—वहाँ हिमालय पर, शिला पर प्रकट, निरन्तर योगियों द्वारा पूजा प्राप्त करने वाले, अर्धचन्द्रधारी शिवजी के चरण चिह्न को, भक्ति से अवनत होकर प्रदक्षिणा करना, जिसके दर्शन करने पर, नष्ट हुए पापों वाले श्रद्धालु जन शरीर त्याग के उपरान्त गणों के शाश्वत पद की प्राप्ति के लिए समर्थ होते हैं।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि हिमालय की शिला पर शिवजी के चरण चिह्न विद्यमान हैं। योगी सदा इनकी पूजा करते हैं, अतः तुम भी भक्ति-भावना से उनकी प्रदक्षिणा करना, उनके दर्शन करने से निष्पाप श्रद्धालु जन मरने के बाद शिवजी के गणों के पद को प्राप्त करने में समर्थ होते हैं।

संस्कृत व्याख्या—तत्र हिमालये दृषदि (कस्याञ्चित्) शिलायाम् व्यक्तम् प्रकटम्, शश्वत् निरन्तरम् सिद्धैः योगिभिः (सिद्धिर्निष्पत्तियोगयोः कोशः) उपचितवलिम् रचितपूजाविधिम् (वलिः पूजोपहारयोः—कोशः) अर्धश्चासौ इन्दुः अर्धेन्दुः स मौलौ यस्य तस्य—अर्धेन्दुमौलेः चन्द्रार्धधारिणः शिवस्य चरणन्यासम् पादविन्यासम् भक्तिनम्रः पूज्यानुरागावनतः सन् परीयाः प्रदक्षिणां कुरु, यस्मिन् चरणन्यासे दृष्टे अवलोकिते सति, उद्धूतपापाः निरस्तकल्मषाः श्रद्धाधनाः श्रद्धालवः जनाः करणस्य विगमः तस्मात्—करणविगमात् शरीरत्यागात् ऊर्ध्वम् अनन्तरम् (करणं साधकतमं क्षेत्रगात्रेन्द्रियेष्वपि—इत्यमरः) स्थिरं गणानां पदस्य प्राप्तिः तस्यै—स्थिरगणपदप्राप्तये शाश्वतप्रमथादिगणपदोपलब्धये (गणाः प्रमथसंख्यौधाः—कोशः) संकल्पन्ते—समर्थाः भवन्ति।

प्रसंग—यक्ष कहता है कि वहाँ तुम्हारा गर्जन शिव संगीत का पूरक बन जायेगा।

“शब्दायन्ते मधुरमनिलैः, कीचिकाः पूर्यमाणाः,
संरक्ताभिस्त्रिपुरविजयो गीयते किन्नरीभिः।
निर्हादस्ते मुरज इव चेत् कन्दरेषु ध्वनि स्यात्,
संगीतार्थो ननु पशुपतेस्तत्र भावी समग्रः” ॥ ५६ ॥

अन्वय—अनिलैः पूर्यमाणाः कीचिकाः मधुरम् शब्दायन्ते, संरक्ताभिः किन्नरीभिः त्रिपुरविजयः गीयते, कन्दरेषु ते निर्हादः चेत् मुरजे ध्वनिः इव स्यात् तत्र पशुपतेः संगीतार्थः ननु समग्रः भावी।

शब्दार्थ—अनिलैः = हवाओं से, पूर्यमाणाः = भरे जाते हुए, कीचिकाः = कीचक नामक विशेष प्रकार के बाँस (कीचक वे बाँस कहे जाते हैं जो वायु से भरकर बजते हैं) मधुरम् = मधुरतापूर्वक, शब्दायन्ते = शब्द करते हैं। संरक्ताभिः = अनुरक्तः, किन्नरीभिः = किन्नरियों के द्वारा (किन्नर देवताओं का ही एक भेद है, किन्नरों की स्त्रियाँ किन्नरी कही जाती हैं, किन्नर और गन्धर्व संगीत में विशेष निपुण माने जाते हैं) त्रिपुरविजयः = त्रिपुर पर शिव विजय का वृत्तान्त, गीयते = गाया जाता है, कन्दरेषु = कन्दराओं में, ते = तुम्हारा, निर्हादः = गर्जन, चेत् = यदि, मुरजे ध्वनिः इव स्यात् = नगाड़े पर ध्वनि के समान हो, (तो) तत्र = वहाँ (चरणन्यास के पास), पशुपतेः = शिवजी का, संगीतार्थः = संगीत सामग्री, ननु = निश्चयत, समग्र = पूरी, भावी = हो जायेगी।

अनुवाद—हवाओं से पूरित होते हुए कीचक मधुर शब्द करते हैं (और) अनुरक्त हुई किन्नरियों के द्वारा त्रिपुर पर शिव विजय का वृत्तान्त गाया जाता है, (ऐसे अवसर पर) कन्दराओं में तुम्हारा गर्जन यदि नगाड़े पर ध्वनि के समान हो जाये (तो) वहाँ चरणन्यास के समीप, शिवजी की संगीत सामग्री निश्चयतः पूरी हो जायेगी।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि वहाँ पर वायु पूरित कीचक मधुर ध्वनि करते हैं और रसलीन किन्नरियाँ त्रिपुर विजय के गीत गाती हैं, यदि ऐसे अवसर पर वहाँ कन्दराओं में तुम्हारा गर्जन नगाड़े की ध्वनि का काम करे तो निश्चय ही वहाँ शिवजी की संगीत सामग्री पूरी हो जायेगी, अर्थात् संगीत के पूरे साज-सज जायेंगे, अतः तुम वहाँ पर गम्भीर गर्जन कर शिवजी की यह सेवा करना।

विशेष—यहाँ 'मुरज इव' में उपमालंकार है।

संस्कृत व्याख्या—अनिलैः वायुभिः पूर्यमाणाः पूरिताः क्रियमाणाः कीचकाः वेणविशेषाः (वेणवः कीचकास्ते स्युर्ये स्वनन्यनिलोद्धताः—कोशः, कीचको दैत्य-भेदे स्याच्छुष्कवंशे द्रुमान्तरे-इत्यपि) मधुरम् श्रुतिसुखं यथास्यातथा शब्दायन्ते शब्द कुर्वन्ति स्वनन्तीत्यर्थः, अनेन संगीते वेणुपाद्यवादनमुक्तम्) संरक्ताभिः अनुरक्ताभिः सरक्तकण्ठीभिरित्याषयः किन्नरस्त्रीभिः त्रिपुरविजयः त्रिपुरस्य विजयगानं गीयते, कन्दरेषु दरीषु (दरी तु कन्दरो वास्त्री इत्यमरः) ते तव मेघस्य निर्हाद निर्घोषा मुरजे वाद्यविशेष ध्वनिः शब्दः इव मुरजध्वनि-रिवेत्यर्थः स्यात् भवेत् चेत् यदि (तर्हि) तत्र चरणन्यास समीपे पशुपतेः शिवस्य, संगीतम् सम्यग्गीतम् तदेवार्थः संगीतार्थः संगीतसामग्री ननु निश्चितरूपेण समग्रः सम्पूर्ण भावी भविष्यति।

प्रसंग—यक्ष कहता है कि तुम इसके बाद क्रौञ्चरन्ध्र से पुनः उत्तर दिशा को जाना—

“प्रालेयाद्रेरुपतटमतिक्रम्य तांस्तान् विशेषान्,

हंसद्वारं भृगुपतियशोवर्त्म यत्क्रौञ्चरन्ध्रम्।

तेनोदीचीं दिशमनुसरेस्तिर्यगामशोभी,

श्यामः पादो बलिनियमनाभ्युद्यतस्येव विष्णोः” ॥ ६० ॥

अन्वय—प्रालेयाद्रेः उपतटम् तान् तान् विशेषान् अतिक्रम्य हंसद्वारम् भृगुपतियशोवर्त्म यत् क्रौञ्चरन्ध्रम् (अस्ति) तेन, बलिनियमनाभ्युद्यतस्य विष्णोः श्यामः पादः इव तिर्यगायामशोभी (त्वम्) उदीचीम् दिशम् अनुसरेः।

शब्दार्थ—प्रालेयाद्रेः = हिमालय पर्वत के, उपतटम् = तट के समीप, तान् तान् विशेषान् = उन उन दर्शनीय वस्तुओं को, अतिक्रम्य = पार करके, हंसद्वारम् = हंस द्वार—मान सरोवर को जाने के लिये हंसों का प्रवेश द्वार, भृगुपति यशोवर्त्म = भृगुकुल के अधिपति परशुराम की कीर्ति का मार्ग भूत, यत् = जो, क्रौञ्चरन्ध्रम् = क्रौञ्च पर्वत का छिद्र, तेन = उससे, बलिनियमनाभ्युद्यतस्य विष्णोः = बलि के बाँधने में प्रवृत्त हुए विष्णु भगवान के, श्यामः पादः इव = श्यामल चरण के समान, तिर्यगायामशोभी = तिरछी लम्बाई से सुशोभित (तुम) उदीचीम् दिशम् अनुसरेः = उत्तर दिशा को जाना।

अनुवाद—हिमालय पर्वत के समीप उन-उन (प्रसिद्ध) दर्शनीय (वस्तुओं) दृश्यों को (देखते हुए) पार करके (मानसरोवर को जाने के लिये) हंसों के प्रवेश द्वार (तथा) भृगुपति परशुराम की कीर्ति का मार्गभूत जो क्रौञ्च पर्वत का छिद्र (है) उससे बलि बन्धन में प्रवृत्त विष्णु भगवान् के श्यामले चरण के समान, तिरछी लम्बाई से शोभित (तुम) उत्तर दिशा को जाना।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि हे मेघ ! तुम हिमालय के सुन्दर-सुन्दर दृश्यों को देखते हुए पार करके क्रौञ्चरन्ध्र से निकलकर उत्तर दिशा को जाना, यह, क्रौञ्चरन्ध्र से निकलकर उत्तर दिशा को जाना, यह

क्रौञ्चरन्ध्र परशुराम जी कीर्ति का मार्ग अर्थात् ख्यापक है और यह मान सरोवर को जाने के लिए हंसों का प्रवेश द्वार भी है। इससे निकलकर जाते हुए श्याम वर्ण के तुम वलि बन्धन के समय तिरछे फैलाये गये विष्णु के श्यामले चरण की भाँति दिखलाई पड़ोगे।

NOTES

विशेष—प्रस्तुत श्लोक में ‘क्रौञ्चरन्ध्र’ पर यशोवर्त्म का आरोप होने से रूपक तथा श्यामः पाद इव में उपमालंकार है दोनों अलंकारों की स्वतन्त्र स्थिति होने से संसृष्टि है।

संस्कृत व्याख्या—प्रालेयाद्रेः हिमाद्रेः उपपटम तटसमीपम् तान् तान् दर्शनार्हान् पदार्थान् अतिक्राम्य समुल्लङ्घ्य हंसानां द्वारम् हंसद्वारम् मानसरोवरयायिनां हंसानां प्रवेश द्वारम्, भृगुपतेः यशसः वर्त्म—भृगुपतियशोवर्त्म परशुरामकीर्तिमार्गभूतम् यत् क्रौञ्चरन्ध्रम् क्रौञ्चाख्यपर्वतविशेष छिद्रम् (अस्ति) तेन क्रौञ्चविलेन, वलेर्नियमने अभ्युद्यतः वलिर्नियमनाभ्युद्यतस्य बलिबन्धनप्रवृत्तस्य विष्णोः व्यापकस्य त्रिविक्रमस्य श्यामः कृष्णवर्णः पादः चरणः इव, तिर्यक् चासौ आयामस्तेन शोभते इति तिर्यगायामशोभी तिरश्चीनदैर्घ्यशोभितः (सन् त्वम्) उदीचीम् उत्तराम् दिशम् आशाम् अनुसरेः अनुगच्छेः।

प्रसंग—यक्ष कहता है कि इसके बाद तुम कैलास पर्वत पर पहुँचना—

“गत्वां चोर्ध्वं दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः,

कैलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्यातिथिः स्याः।

शृङ्गोच्छ्रायैः कुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थितः खम्,

राशीभूतः प्रतिदिनमिव त्र्यम्बकस्यादृहासः” ॥ ६१ ॥

अन्वय—ऊर्ध्वं च गत्वा दशमुख भुजोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः त्रिदशवनितादर्पणस्य कैलासस्य अतिथिः स्याः, यः कुमुदविशदैः शृङ्गोच्छ्रायैः खम् वितत्य प्रतिदिनम् राशीभूतः त्र्यम्बकस्य अदृहासः इव स्थितः।

शब्दार्थ—ऊर्ध्वं च गत्वा = और ऊपर को आकर अर्थात् क्रौञ्चविल से निकलने के बाद ऊपर की ओर जाकर, दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः = रावण की भुजाओं द्वारा ढीले कर दिये गये शिखरों के जोड़ वाले, त्रिदशवनितादर्पणस्य = देवों की स्त्रियों के दर्पण रूप, कैलासस्य = कैलास पर्वत के, अतिथिः स्याः = (तुम) अतिथि होना, यः = जो कि पर्वत, कुमुदविशदैः = कुमुदों के समान स्वच्छ श्वेत, शृङ्गोच्छ्रायैः = शिखरों की ऊँचाइयों से, खम् = आकाश को, वितत्य = व्याप्त करके, प्रतिदिनम् = प्रतिदिन, राशीभूतः = एकत्रित हुआ, त्र्यम्बकस्य = शिव जी का, अदृहासः इव = अदृहास के समान, स्थितः = स्थित हैं।

अनुवाद—(क्रौञ्चविल से निकलकर) ऊपर को जाकर, रावण की भुजाओं द्वारा ढीले किये गये शिखरों के जोड़ों वाले (एवं) देवों की स्त्रियों के दर्पण रूप कैलास पर्वत के अतिथि होना, जो कि पर्वत (अपने) कुमुदों के समान श्वेत शिखरों की ऊँचाइयों से आकाश को व्याप्त कर (इस प्रकार) स्थित है कि मानो वह प्रतिदिन एकत्रित हुआ शिवजी का अदृहास हो।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि तुम क्रौञ्चविल को पार करने के बाद ऊपर की ओर जाकर कैलास पर्वत के अतिथि बनना। इस पर्वत की शिखर सन्धियों को रावण की भुजाओं ने ढीला कर दिया था और यह (अपनी स्वच्छता के कारण) देवाङ्गनाओं का दर्पण रूप है। आकाश में व्याप्त करके इसके श्वेत शिखर ऐसे ज्ञात होते हैं कि मानो वह शिवजी का राशीभूत अदृहास हो।

विशेष—काव्य में हास्य का रंग श्वेत माना जाता है। श्वेत ऊँचे फँसे हुए पर्वतीय शिखर ऐसे प्रतीत होते हैं कि मानो वे शिवजी के अट्टहास हों। इस प्रकार यहाँ उत्प्रेक्षालंकार है, 'कुमुदविशदैः' में उपमालंकार है, इन दोनों अलंकारों का परस्पर अङ्गाङ्गीभाव होने से यहाँ संकर है।

संस्कृत व्याख्या—ऊर्ध्व-उपरि च गत्वा, दशमुखस्य भुजैः उच्छ्वासिताः प्रस्थानां सन्धयः यस्य तस्य-दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः रावणबाहुविश्लेषितशिखर-सन्धेः, त्रिदशानां वनिताः तासां दर्पणस्य-त्रिदशवनितादर्पणस्य देवाङ्गनादर्पणभूतस्य (हिमाद्रेः स्फटिकमयत्वाद् विम्बग्राहित्वेनेयमुक्तिः) कैलासस्य शिवनिवाः स्थानभूतस्य एतन्नामकस्य पर्वतस्य अतिथिः स्याः भवेः, यः कैलासः कुमुदानीव विशदैः कुमुदविशदैः कुमुदपुष्पधवलैः शृङ्गानामुच्छ्रयैः शृङ्गाच्छ्रयायैः शिखरोन्नतैः खम् आकाशम् वितत्य व्याप्य, प्रतिदिनम् दिने दिने राशीभूतः पुञ्जीभूतः त्र्यम्बकस्य त्रिलोचनस्य शिवस्य अट्टहासः अतिहास इव स्थितः सुशोभमानः अस्ति।

प्रसंग—मेघ से संयुक्त कैलास पर्वत की शोभा का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

“उत्पश्यामि त्वयि तटगते स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे,
सद्यः कृत्तद्विरददशनच्छेदगौरस्य तस्य।
शोभाभद्रे स्तिमितनयनप्रेक्षणीयां भवित्री—
मंसन्यस्ते सति हलभृतो मेचके वाससीव” ॥ ६२ ॥

अन्वय—स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे त्वयि तटगते (सति) सद्यः कृत्तद्विरददशनच्छेद गौरस्य तस्य अद्रेः मेचके वाससि अंसन्यस्ते सति हलभृतः इव स्तिमितनयनप्रेक्षणीयाम् शोभाम् भवित्रीम् उत्पश्यामि।

शब्दार्थ—स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे = चिकने (स्निग्ध) पिसे हुए (भिन्न) काजल (अञ्जन) के समान कान्ति (आभा) वाले, त्वयि तटगते सति = तुम्हारे शिखर पर पहुँचने पर, सद्यः कृत्तद्विरददशनच्छेदगौरस्य = तुरन्त (सद्यः) काटे गये (कृत्त) हाथी के दाँत (द्विरद दशन) के टुकड़े (छेद) के समान श्वेत वर्ण के, तस्य = उस, अद्रेः = कैलास पर्वत की, मेचके वाससि अंसन्यस्ते सति = नीले (मेचक) वस्त्र के (वासस्) कन्धे पर धारण कर लेने पर (अंसन्यस्ते), हलभृतः = हलधर बलराम जी की, स्तिमित नयनप्रेक्षणीयाम् = निश्चल (स्तिमित) नेत्रों से देखने योग्य, शोभाम् = शोभा को, भवित्रीम् = होने वाली उत्पश्यामि = सम्भावित करता हूँ।

अनुवाद—चिकने पिसे हुए काजल के समान कान्ति वाले, तुम मेघ के शिखरारूढ़ होने पर तुरन्त काटे गये हाथी के दाँत के, टुकड़े के समान श्वेत वर्ण के उस कैलास पर्वत की, नीलवस्त्र को कन्धे पर रख लेने पर हलधर बलराम के समान निश्चल नेत्रों से देखने योग्य शोभा को होने वाली सम्भावित करता हूँ।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि हे मेघ ! तुम्हारा रंग चिकने पिसे हुए काजल के समान है और कैलास पर्वत का रंग हाथी दाँत के समान श्वेत है, अतः जब तुम उसके श्वेत शिखर पर बैठ जाओगे तब तुम्हारी वैसी ही शोभा होगी जैसी कि गौर वर्ण के बलराम की शोभा उस समय होती है जबकि वे अपने कन्धे पर नील वस्त्र डाल लेते हैं, बलराम जी गौराङ्ग एवं नीलाम्बरधारी माने गये हैं, जबकि भगवान् कृष्ण श्यामाङ्ग एवं पीताम्बरधारी हैं।

विशेष—प्रस्तुत श्लोक में श्रोती पूर्णोपमा है।

संस्कृत व्याख्या—स्निग्धं भिन्नं च यत् अञ्जनं तस्य आभा इव आभा यस्य तस्मिन्-स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे मसृणमर्दितकज्जलकान्तिमति त्वयि मेघे तटगते शिखरारूढे सति, सद्यः कृत्तस्य द्विरदस्य दशनस्य यः छेदः तद्वत्

NOTES

NOTES

गौरः तस्य सद्यः कृत्तद्विरदशनच्छेद गौरस्य तत्कालच्छिन्नगजदन्तशकलधवलस्य तस्य अद्रेः पर्वतस्य कैलासस्येत्यर्थः, मेचके नीले (कृष्णो नीलासितश्यामकालश्यामलमेचका इत्यमरः) वर्षांसि वस्त्रे अंसन्यस्ते स्कन्धधृते सति, हलभृतः हलधरस्य बलरामस्य इव स्तिमिताभ्यां नयनाभ्यां प्रेक्षणीया ताम्—स्तिमितनयनप्रेक्षणीयाम् निश्चलनेत्रदर्शनीयाम् शोभाम् कान्तिम् भवित्रीम् भाविनीम् उत्पश्यामि सम्भावयामि, तादृश्येव शोभा भविष्यतीत्युत्प्रेक्षे।

प्रसंग—कैलाश पर्वत पर पहुँचकर तुम शिव पार्वती की किस प्रकार सेवा करोगे, इसका वर्णन करता हुआ यक्ष मेघ से कहता है—

“हित्वा तस्मिन् भुजगवलयं शम्भुना दत्तहस्ता,
क्रीडाशैले यदि च विचरेत् पादचारेण गौरी।
भङ्गीभक्त्या विरचितवपुः स्तम्भितान्तर्जलौघः,
सोपानत्वं कुरु मणितटारोहणायाग्रयायी” ॥ ६३ ॥

अन्वय—यदि च तस्मिन् क्रीडाशैले भुजगवलयम् हित्वा शम्भुना दत्तहस्त गौरी पादचारेण विचरेत् (तर्हि) स्तम्भितान्तर्जलौघः भङ्गीभक्त्या विरचितवपुः अग्रयायी (सन्) मणितटारोहणाय सोपानत्वम् कुरु।

शब्दार्थ—यदि च = और यदि, तस्मिन् क्रीडाशैले = उस क्रीडा पर्वत पर, भुजगवलयं हित्वा = सर्प रूपी कंकण को छोड़कर, शम्भुना = शिवजी के द्वारा, दत्तहस्ता = दिये हुए अथवा पकड़े हुए हाथ वाली, गौरी = पार्वती, पादचारेण = पैदल, विचरेत् = विचरण करें, तर्हि = तो, स्तम्भितान्तर्जलौघः = अन्दर ही रोके हुए जल समूह वाले, भङ्गीभक्त्या = पर्व या पैड़ी की रचना द्वारा, विरचितवपुः = शरीर बनाये हुए, अग्रयायी = पुरोगामी होकर, मणितटारोहणाय = मणि तट पर चढ़ने के लिए, सोपानत्वम् कुरु = सीढ़ी का काम करना।

अनुवाद—और यदि उस क्रीडा पर्वत पर, सर्प रूपी कंकड़ को छोड़कर शिव जी के द्वारा गृहीतहस्ता पार्वती पैदल विचरण करें, तो अन्दर ही रोके हुए जल समूह वाले तथा पैड़ी की रचना द्वारा शरीर को बनाये पुरोगामी होकर (तुम) मणि तट पर चढ़ने के लिए सीढ़ी का काम करना।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि हे मेघ ! तुम वहाँ शिव पार्वती की इस प्रकार सेवा करना। यदि वहाँ क्रीडाशैल पर पार्वती जी शिवजी का हाथ पकड़े हुए पैदल घूम रही हों तो तुम अपने जल-समूह को अन्दर ही रोक लेना और पैड़ी के रूप में अपने शरीर को बदलकर आगे आकर उनके मणि तट पर चढ़ने के लिए सीढ़ी बन जाना। (मेघ इच्छानुसार शरीर) धारण करने की क्षमता रखता है अतः उसे सीढ़ी बन जाने में कोई कठिनाई न होगी।

विशेष—प्रस्तुत श्लोक के ‘भुजगवलयम्’ में रूपक अलंकार है।

संस्कृत व्याख्या—यदि च तस्मिन् पूर्वोक्ते क्रीडाशैले क्रीडापर्वते कैलासे, भुजगवलयम् सर्परूपकंकणम् हित्वा परित्यज्य शम्भुना शिवेन दत्तहस्ता दत्त करावलम्बा सती गौरी पार्वती पादचारेण चरणसंचारेण विचरेत् (तर्हि त्वम्) स्तम्भितः अन्तर्जलस्य ओघः येन स, स्तम्भितान्तर्जलौघः अवरुद्धान्तस्योयप्रवाहः भङ्गीभक्त्या पर्वरचनया विरचितवपुः कल्पितशरीरः अग्रयायी पुरोगामी सन् मणितटारोहणाय मणितटानामकस्थलारोहणाय सोपानत्वम् सोपानकर्म कुरु विधेहि।

प्रसंग—यक्ष कहता है कि कैलास पर्वत पर देवाङ्गनायें तुम्हें यन्त्र-धारा गृह (फब्बारा) बना लेंगी, तो तुम उन्हें अपनी घोर गर्जनाओं से भयभीत कर आगे बढ़ जाना—

“तत्रावश्यं वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयं,

नेष्यन्ति त्वां सुरयुवतयो यन्त्रधारागृहत्वम्।

ताभ्यो मोक्षस्तव यदि सखे धर्मलब्धस्य न स्यात्

क्रीडालोलाः श्रवणपरुषैर्गर्जितैर्भाययेस्ताः” ॥ ६४ ॥

मेघदूतम् (पूर्वमेघः)

NOTES

अन्वय—तत्र अवश्यम् सुरयुवतयः वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयम् त्वाम् यन्त्रधारागृहत्वम् नेष्यन्ति, सखे यदि धर्मलब्धस्य तव ताभ्यः मोक्षः न स्यात् (तर्हि) क्रीडालोलाः ताः श्रवणपरुषैः गर्जितैः भाययेः।

शब्दार्थ—तत्र = वहाँ कैलास पर्वत पर, अवश्यम् = अवश्य ही, सुरयुवतयः = देवाङ्गनायें, वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयम् = कंकण रूपी वज्र की टक्करों से अथवा कंकणों के किनारों की चोटों से जल बरसाने वाले तुम (मेघ) को, यन्त्रधारागृहत्वम् नेष्यन्ति = कृत्रिम धारा गृह के रूप को प्राप्त करा देंगी अर्थात् तुम्हें स्नानागार का फब्बारा बना डालेंगी। सखे मित्र ! यदि धर्मलब्धस्य तव = यदि गर्मी में प्राप्त होने वाले तुम्हारा, ताभ्यः मोक्षः न स्यात् = उनसे छुटकारा न हो (तो) क्रीडालोलाः = क्रीडा-संलग्न, ताः = उनको, श्रवणपरुषैः = कानों की कठोर लगने वाले, गर्जितैः = गर्जनों से, भाययेः = डरा देना।

अनुवाद—वहाँ कैलास पर्वत पर देवाङ्गनायें तुमको कृत्रिम जलधारा-गृह बना डालेंगी अर्थात् वे तुम्हारा जल धारा गृह के रूप में उपयोग करेंगी। अतः हे मित्र यदि गर्मी के समय प्राप्त होने वाले तुम्हारा उनसे छुटकारा न हो सके तो तुम क्रीडासक्त उनको सुनने में कठोर अपने गर्जनों से भयभीत कर देना।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि हे मेघ ! कैलास पर्वत पर देवाङ्गनायें तुम्हें अपने स्नानागारों के लिये कृत्रिम जलधारा गृह (फब्बारा) बना लेंगी और तुमको वहाँ देर तक रोके रहेंगी। अतः यदि तुम्हें उनसे आसानी से छुटकारा न मिले तो तुम उन्हें अपने श्रुति कठोर गर्जनों से भयभीत कर देना और इस प्रकार उनसे छूटकर आगे बढ़ना।

संस्कृत व्याख्या—तत्र कैलासे अवश्यम् सर्वथा, सुराणां युवतयः सुरयुवतयः देवाङ्गनाः, वलयानां कुलिशैः उद्घट्टनानि तैः उद्गीर्ण तोयम् यस्य तम्—वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयम् कंकणकोटिप्रहारोत्सृष्टजलम् त्वाम् मेघम् यन्त्रधारागृहत्वम् कृत्रिमजलधारागृहत्वम् नेष्यन्ति प्रापयिष्यन्ति। सखे मित्र ! यदि धर्मलब्धस्य ग्रीष्म प्राप्तस्य तव मेघस्य ताम्यः देवाङ्गनाभ्यः मोक्षः मुक्तिः न स्यात् (तदा) क्रीडालोलाः क्रीडासक्ताः प्रमत्ता इत्यर्थः ताः सुरयुवतयः, श्रवणपरुषैः कर्णकटुभिः गर्जितैः गर्जनैः भाययेः त्रासयेः।

प्रसंग—यक्ष कहता है कि तुम कैलाश पर्वत का विविध प्रकार से उपभोग करना—

“हेमाम्भोजप्रसवि सलिलं मानस्याददानः,

कुर्वन् कामं क्षणमुखपटप्रीतिमैरावतस्य।

धुन्वन् कल्पद्रुमकिसलयान्यंशुकानीव वातै-

र्नानचेष्टैर्जलद ललितैर्निर्विशेस्तं नगेन्द्रम्” ॥ ६५ ॥

अन्वय—जलद ! हेमाम्भोजप्रसवि मानसस्य सलिलम् आददानः, ऐरावतस्य क्षणमुखपटप्रीतम् कुर्वन्, कल्पद्रुमकिसलयानि अंशुकानि इव वातैः धुन्वन्, नानाचेष्टैः ललितैः तम् नगेन्द्रम् निर्विशेः।

शब्दार्थ—जलद = मेघ, हेमाम्भोजप्रसवि = स्वर्ण कमलों को उत्पन्न करने वाले, मानसस्य = मानसरोवर के, सलिलम् = जल को, आददानः = ग्रहण करते हुए, ऐरावतस्य = एतन्नामक इन्द्र गजराज की, क्षणमुखपटप्रीतिम् = थोड़ी देर के लिए (जलग्रहण काल में) मुख पर वस्त्र (डालने से होने वाली) प्रसन्नता

NOTES

को, कुर्वन् = करते हुए, कल्पद्रुमकिसलयानि = कल्पवृक्ष की कोंपलों को, अंशुकानि इव = मानो सूक्ष्म वस्त्रों की भाँति, वातैः = हवाओं से, धुन्वन् = हिलाते हुए, नानाचेष्टैः = विविध क्रियाओं वाले, ललितैः = विलासों से, तं नगेन्द्रम् = उस कैलास पर्वत का, कामम् = स्वेच्छानुसार, निर्विशेः = उपभोग करना।

अनुवाद—हे मेघ ! स्वर्ण कमलों अर्थात् सुनहरी कमलों को उत्पन्न करने वाले मानसरोवर के जल को ग्रहण करते हुए अर्थात् पीते हुए, इन्द्रगज ऐरावत की क्षणमात्र के लिए मुख पर वस्त्राच्छादन की प्रसन्नता को करते हुए, (तथा) कल्पवृक्ष की कोंपलों को मानो सूक्ष्म पतले वस्त्रों के समान हवाओं से हिलाते हुए, विविध प्रकार की क्रियाओं वाले विलासों से उस कैलास पर्वत का यथेच्छ उपभोग करना।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि वहाँ स्वर्ण कमलों को उत्पन्न करने वाले मान-सरोवर के जल को पीना और अपने जल पीने के अवसर पर ऐरावत को कुछ देर तक मुख पर वस्त्राच्छादन की प्रसन्नता को देना और कल्पद्रुम के नवीन कोमल पत्तों को मानो वे सूक्ष्म वस्त्र हों, हवाओं से हिलाना, इस प्रकार विविध क्रियाओं से पूर्ण विलासों से तुम उस कैलास पर्वत का यथेच्छ उपभोग करना।

विशेष—यहाँ कल्पवृक्ष के किसलयों की सूक्ष्म वस्त्रों के रूप में सम्भावना होने से उत्प्रेक्षालंकार है।

संस्कृत व्याख्या—जलं ददातीति जलदः तत्सम्बोधने हे जलद ! अभ्यसि जातानि अभोजानि हेमनः अभोजानि अथवा हेमवर्णानि च तानि अभोजानि (मध्यमपदलोपिकर्मधारयः) हेमाम्भोजानि तानि प्रसुते इति हेमाम्भोजप्रसवि स्वर्णकमलोत्पादकम् मानसस्य मानसरोवरस्य सलिलम् जलम् आददानः गृहणन् पिवन् इत्यर्थः, ऐरावतस्य एतन्नामकस्येन्द्रगजराजस्य (कामचारित्वाद्वा शिवसेवार्थमिन्द्रागनाद्वा तत्रागतस्येति भावः मुखे पदेन या प्रीतिः मुखपटप्रीतिः क्षणे जलादानकाले मुखपटप्रीतिः ताम् क्षणमुखपटप्रीतिम् जलादानकालम् क्षणाननवस्त्रमोदम् कुर्वन् विदधन्, (तथा) कल्पद्रुमाणां किसलयानि कल्पद्रुमकिसलयानि कल्पवृक्षपल्लवानि अंशुकानि सूक्ष्मवस्त्राणि इय (अंशुकं वस्त्रमात्रे स्यात् परिधानोत्तरीययोः कोशः) वातैः मेघपवनैः, धुन्वन् प्रकम्पयन्, नानाचेष्टैः जलपानादिवहुविधक्रियैः ललितैः विलासैः तं नगेन्द्रम् पूर्वोक्तं पर्वतराजं कैलासम् कामम् यथेष्टम् निर्विशेः उपभुङ्क्व (निर्विशो भूतिभोगयोः—कोशः) मित्रगृहे यथेच्छं विहवेति भावः।

प्रसंग—यक्ष मेघ से अलकापुरी की पहचान बतलाता हुआ कहता है—

“तस्योत्सङ्गे प्रणयिन इव स्रस्तगङ्गादुकूलां,
न त्वं दृष्ट्वा न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारिन्।
या वः काले वहति, सलिलोद्गारमुच्चैर्विमाना,
मुक्ताजलग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम्” ॥ ६६ ॥

अन्वय—कामचारिन् प्रणयिनः इव तस्य उत्सङ्गे स्रस्तगङ्गादुकूलाम् अलकाम् दृष्ट्वा त्वम् पुनः न ज्ञास्यसे (इति न) उच्चैर्विमानाः या वः काले सलिलोद्गारम् अभ्रवृन्दम् कामिनो मुक्ताजलग्रथितम् अलकम् इव वहति।

शब्दार्थ—कामचारिन् = हे स्वच्छन्द विचरण करने वाले मेघ ! प्रणयिनः इव तस्य = प्रेमी के समान उसके, उत्सङ्गे = गोदी में, अथवा ऊर्ध्वभाग में, स्रस्तगङ्गादुकूलाम् = खिसके हुए गंगारूपी श्वेत रेशमी वस्त्र (दुपट्टा) वाली, अलकाम् = अलकापुरी को, दृष्ट्वा = देखकर, त्वम् = तुम मेघ, पुनः = फिर, न ज्ञास्यसे = न जानोगे, इति न = यह नहीं, अपितु ज्ञास्यसे एव = अपितु जान ही लोगे। उच्चैर्विमाना = ऊँचे सप्तमज्जल के भवनों वाली, अत्यन्त मान रहित, या = जो कि अलकापुरी, वः = तुम्हारे, काले = समय

में, सलिलोद्गारम् = जल बरसाने वाले, अभ्रवृन्दम् = मेघ समूह को, कामिनी = नायिका, मुक्ताजालग्रथितम् = मोतियों के गुच्छों से गुंथे हुए, अलकम् = केशपाश को, इव = की तरह, बहति = धारण करती है।

मेघदूतम् (पूर्वमेघः)

NOTES

अनुवाद—हे स्वेच्छानुसार विचरण करने वाले मेघ ! जिस प्रकार अपने प्रेमी की गोद में शिथिल हुए, गंगा के समान श्वेत दुपट्टे वाली कोई कामिनी होती है, उसी प्रकार कैलास पर्वत के ऊर्ध्वभाग में श्वेत दुपट्टे के समान प्रवहमान गंगा से युक्त अलकापुरी को देखकर तुम फिर उसे नहीं पहचान पाओगे। ऐसा नहीं अपितु अवश्य पहचान लोगे ऊँचे सप्त मञ्जिल भवनों वाली जो अलकापुरी तुम्हारे काल में अर्थात् वर्षाकाल में जल बरसाने वाले मेघ समूह को उसी प्रकार धारण करती है जिस प्रकार कोई निरभिमानी नायिका मोतियों के गुच्छों से गुंथे हुए केशपाश को धारण करती है।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि हे स्वेच्छाचारी मेघ ! उस कैलास पर्वत के कुछ ऊपरी भाग में अलकापुरी स्थित है और उसके कुछ नीचे समीप में श्वेतजला गंगा बहती है, अतः वह अलका ऐसी जान पड़ती है जैसे कि कोई नायिका विवस्त्र होकर अपने प्रेमी की गोद में लेटी है। गंगा ही उस अलका नायिका का श्वेत दुपट्टा है जो कि प्रेमवश शिथिल होकर प्रेमी की गोद में गिर पड़ा है अतएव वह विवस्त्रा हो गई है। इस प्रकार की अलका को देखकर तुम उसे अवश्य ही पहचान लोगे। इस अलका के ऊँचे-ऊँचे सप्त मञ्जिल भवन हैं। यह अलकापुरी वर्षा काल में बरसने वाले मेघों को उसी प्रकार धारण करती है जैसे कि कोई निरभिमानी मानरहिता नायिका मोतियों से गुंथे हुए केशपाश को धारण करती है। तात्पर्य यह है कि जब वर्षाकाल में श्यामले श्वेत बिन्दुओं में बरसते हुए मेघ अलका पर छा जाते हैं तब ऐसा मालूम पड़ता है कि जैसे कोई मानरहिता नायिका मोतियों से गुंथे हुए केशपाश को धारण किए हुए है। मेघ श्यामले हैं और केशपाश भी, मेघों से बरसने वाली जल की बूँदें श्वेत हैं जो कि नायिका के केशपाश में गुंथे हुए मोती हैं।

संस्कृत व्याख्या—कामचारिन् यथेच्छविचरणशील मेघ ! प्रणयिनः प्रियतमस्य इव तस्य कैलासपर्वतस्य उत्सङ्गे ऊर्ध्वभागे कामिनीपक्षे 'अङ्के' (उत्सङ्गे मुक्तसंयोगे सकथ्यन्यूर्ध्वतलेऽपि च कोशः) स्तस्तगङ्गादुकूलाम् शिथिलितङ्गासूक्ष्मशुभ्रवस्त्राम् (दुकूलं सूक्ष्मवस्त्रेस्यादुत्तरीये सितांशुके-कोशः) अलकाम् एतन्नाम्नीम् कुवेरनगरीम् दृष्ट्वा अवलोक्य, त्वम् मेघः पुनः भूयः न ज्ञास्यसे अवगमिष्यसि इति न, अपितु अवश्यमेव ज्ञास्यसे उच्चैः उन्नतानि विमानानि यस्मां सा उच्चैर्विमाना उन्नतभूमिक भवना (विमानोऽस्त्री देवयाने सप्तभूमौ च सद्मनि-कोशः) कामिनी पक्षे अत्यन्तं मानरहिता निष्कोपा इत्यर्थः, या अलका व युष्माकम् काले मेघानाम् समये वर्षाकाले इत्यर्थः, सलिलोद्गारम् जलवर्षकम् स्रवत्सलिलधारमित्यर्थः अभ्रवृन्दम् मेघसमूहम् कामिनी नायिका मुक्ताजालग्रथितम् मौक्तिकसरगुम्फितम् (पुश्चल्यां मौक्तिके मुक्ता कोशः) अलकम् चूर्णकुन्तलम् इव (अकाश्चूर्णकुन्तलाः इत्यमरः) बहति धारयति।

सारांश :

इस इकाई में कवि कुलगुरु कालिदास के मेघदूत गीतिकाव्य के प्रथम भाग पूर्व मेघ की सम्पूर्ण व्याख्या दी गयी है। इस अंश में विरही यक्ष मेघ से याचना करता है कि वह अलकापुरी निवासिनी उसकी विरह व्याकुल यक्षिणी (पत्नी) को उसका कुशल समाचार पहुँचाने की कृपा करे ताकि उसकी विरहणी पत्नी को कुछ सान्त्वना प्राप्त हो। यक्ष रामगिरि पर्वत से अलकापुरी तक के मार्ग का वर्णन भी मेघ के समक्ष करता है ताकि मेघ को वहाँ पहुँचने में किसी प्रकार की कठिनाई न हो। पूर्व मेघ के इस भाग में बाह्य प्रकृति का रमणीय वर्णन हुआ है।

NOTES

(अ) निम्नलिखित श्लोकों की सप्रसंग हिन्दी-व्याख्या कीजिए : .

1. कर्तुं यच्च प्रभवति राजहंसाः सहायाः ।।11।।
2. त्वय्यायत्तं कृषि एवोत्तरेण ।।16।।
3. नीपं दृष्ट्वा सूचयिष्यन्ति मार्गम् ।।21।।
4. वेणीभूतप्रतनुसलिला सत्वयैवोपपाद्यः ।।30।।
5. तां कस्यांचिद् अभ्युपेतार्थकृत्या ।।41।।

(ब) निम्नलिखित श्लोकों की सप्रसंग संस्कृत-व्याख्या कीजिए :

1. तस्याः किञ्चित् को विहातुं समर्थः ।।44।।
2. तामुत्तीर्य ब्रज नेत्र कौतूहलानाम् ।।50।।
3. आसीनानां सुरभित पंकीपमेयाम् ।।55।।
4. गत्वां चोर्ध्व त्र्यम्बकस्याट्ट हासः ।।61।।
5. हेमाम्भोजप्रसवि निर्विशेस्तं नगेन्द्रम् ।।65।।

इकाई में सम्मिलित है :

- अध्ययन के उद्देश्य
- प्रस्तावना
- मेघदूतम् (उत्तरमेघः) : सम्पूर्ण व्याख्या
- अलकापुरी के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन
- अलकापुरीवासी यक्षों के उत्कर्ष का वर्णन
- अलकापुरी में स्थित यक्ष के भवन का वर्णन
- सारांश
- अभ्यास-प्रश्न

अध्ययन के उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई में कवि कालिदास के सुप्रसिद्ध गीतिकाव्य 'मेघदूतम्' के 'उत्तरमेघ' शीर्षक द्वितीय भाग की सम्पूर्ण व्याख्या दी गयी है। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त छात्र :

- कालिदास-कृत मेघदूत-गीतिकाव्य के उत्तरमेघ-भाग के कथाक्रम से अवगत हो सकेंगे।
- मेघदूतम् के उत्तरमेघ-भाग के समस्त पद्यों की सप्रसंग हिन्दी-व्याख्या कर सकेंगे।
- मेघदूतम् के उत्तरमेघ-भाग के समस्त पद्यों की सप्रसंग संस्कृत-व्याख्या कर सकेंगे।
- पठित अंश के आधार पर अलकापुरी के सौन्दर्य तथा समृद्धि से अवगत हो सकेंगे।
- पठित अंश के आधार पर यक्षों के समृद्ध जीवन की विविध गतिविधियों से परिचित हो सकेंगे।
- पठित अंश के आधार पर यक्ष की पत्नी की विरह-व्याकुलता से अवगत हो सकेंगे।

NOTES

‘मेघदूत’ कालिदास की सर्वोत्तम रचना है। इसमें कवि की काव्यकला मर्मज्ञता का स्पष्ट परिचय मिलता है। एक कुशल चित्रकार की भाँति कवि ने अत्यन्त अल्प शब्दों में रमणीय उदार भावों का चित्र कुशलता के साथ सुन्दर रूप में उतार दिया है।

एक सौ तीस श्लोकों में निबद्ध सम्पूर्ण काव्य ‘पूर्वमेघ’ एवं ‘उत्तरमेघ’ शीर्षक से दो भागों में विभक्त है। इसमें कुबेर के शाप से निर्वासित विरही यक्ष की विरह पीड़ा का मार्मिक एवं हृदयग्राही वर्णन किया गया है। मेघदूत के पूर्व भाग में यक्ष के द्वारा मेघ को रामगिरि से अलका तक के मार्ग का वर्णन किया गया है तथा उत्तरमेघ में वह यक्ष अलकापुरी, अपने भवन और पत्नी की विरहदशा का वर्णन कर अन्त में अपना सन्देश सुनाता है। मेघदूत का वर्ण्य विषय तो वियोग शृंगार की अबाध धारा में कथनीय सन्देश का अवतरण है, परन्तु कालिदास भारत भूमि के पुजारी हैं, भारतीय संस्कृति के उपासक हैं, इसलिए उन्होंने समाज से रिश्ता रखकर महाकाल मन्दिर की सन्ध्योपासना में धार्मिकता का, नभचारी वक्त्रपंक्ति की स्वच्छन्दता का, स्वभाव का, जीवन का, लोककथाओं का, नदियों के गमन में शृंगारिक वृत्तियों तथा भौगोलिक दशाओं का भी चित्रण किया है। अतः कहा जा सकता है कि मेघदूत किसी प्रणयी की वियोगजन्य प्रणय-कथा की मार्मिक अभिव्यक्ति ही नहीं, अपितु शृंगार की संवेदना भी है। पशु-पक्षी जगत् के हावभाव तथा नैसर्गिक क्रियायें, धर्म, पुराण, नीति लोककथा, भवन निर्माण आदि का आगम इस रचना में हुआ है।

मेघदूतम् में सर्वत्र विप्रलम्भ शृंगार का ही चित्रण हुआ है। विशेषकर उत्तरमेघ में यक्ष अपनी और अपनी पत्नी की विरहावस्था का वर्णन जिन श्लोकों में करता है, वे अत्यन्त करुणोत्पादक एवं मार्मिक हैं। सम्पूर्ण मेघदूतम् मन्दाक्रान्ता छन्द में प्रणीत है जो विरह की तीव्रतम अनुभूतियों के चित्रण में पूर्णतया सक्षम है।

मेघदूतम् (उत्तरमेघः)

प्रसंग—अलकापुरी का वर्णन करता हुआ यक्ष कहता है कि अलकापुरी के भवन उसकी (मेघ की) समानता करने में समर्थ होंगे—

विद्युत्वन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः,

संगीताय प्रहतमुरजा स्निग्धगम्भीरघोषम्।

अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुङ्गमभ्रंलिहाग्राः,

प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषः” ॥ १ ॥

अन्वय—यत्र ललितवनिताः सचित्राः संगीतायः प्रहरमुरजाः मणिमयभुवः अभ्रंलिहाग्राः प्रासादाः विद्युत्वन्तम् सेन्द्रचापम् स्निग्धगम्भीरघोषम् अन्तस्तोयम् तुङ्गम् त्वाम् तैः तैः विशेषैः तुलयितुम् अलम्।

शब्दार्थ—यत्र = जहाँ अर्थात् अलकापुरी में, ललितवनिता = सुन्दर स्त्रियों वाले, सचित्राः = चित्रों से युक्त, संगीताय = संगीत के लिए, प्रहतमुरजा = बजाए गए मृदङ्गों वाले, मणिमयभुवः = मणियों जटित फर्शों वाले, अभ्रंलिहाग्राः = आकाश को छूने वाली चोटियों या बुर्जों वाले, प्रासादाः = भवन, विद्युत्वन्तम् =

बिजली से युक्त, सेन्द्रचापम् = इन्द्र धनुष से युक्त, स्निग्धगम्भीरघोषम् = मधुर एवं गम्भीर गर्जन वाले, अन्तस्तोयम् = भीतर जल रखने वाले, तुङ्गम् = ऊँचे, त्वाम् = तुमसे, तैः तैः विशेषैः = उन उन विशेषताओं से, तुल्यितुम् = समानता करने के लिए, अलम् = समर्थ (हैं)।

NOTES

अनुवाद—जहाँ (अलकापुरी में) सुन्दर स्त्रियों वाले, चित्रों से युक्त संगीत के लिए बजाये गए मृदङ्गों वाले, मणि जटित फर्शों वाले, (तथा) गगनस्पर्शी शिखरों वाले, प्रासाद अर्थात् देवगृह, बिजली से युक्त इन्द्र धनुष से युक्त, मधुर एवं गम्भीर गर्जन वाले, भीतर जल धारण करने वाले (एवं) ऊँचे तुमसे, उन-उन (पहले बताई गई) विशेषताओं के कारण समता करने के लिए समर्थ हैं।

भावार्थ—यक्ष मेघ से कहता है कि अलकापुरी के उच्च प्रासाद तुम्हारी बराबरी करने में समर्थ हैं, क्योंकि तुम जो बिजली से चमकने वाले हो और प्रासाद तुम्हारी सुन्दरी चंचल सुरयुवतियों से जगमगाते रहते हैं। तुम इन्द्रधनुष से सप्तरंगी हो तो प्रासाद सुन्दर चित्रों से सुशोभित रहते हैं। तुम गम्भीर मधुर गर्जन करने वाले हो तो प्रासादों में नाच गाने में मृदङ्गों की गम्भीर मधुर ध्वनि होती रहती है। तुम्हारे अन्दर जल की बूँदें हैं जिनसे तुम स्वच्छ मोती जैसे चमकते हो तो प्रासादों के फर्श मणियों से जड़े हुए होने के कारण चमकते रहते हैं, तुम ऊँचे हो तो वे प्रासाद भी गगनचुम्बी हैं। इस प्रकार वे प्रासाद तुम्हारी समता तुम्हारी करने में पूर्णतया समर्थ हैं, और तुम भी उन्हें अपने जैसा ही देखकर निश्चय ही प्रसन्न होओगे।

प्रस्तुत श्लोक में 'प्रासादाः' पद के ललितवनिताः आदि पाँच प्रथमान्त विशेषण हैं और त्वाम् अर्थात् मेघम् के भी 'विद्युत्वन्तम्' आदि पाँच द्वितीयांत विशेषण हैं। अतः अलकापुरी के प्रासाद अपने उक्त पाँच विशेषणों से विशिष्ट मेघ की यथासंख्य से समता करते हैं।

विशेष—इस प्रकार यहाँ प्रासादों के ललितवनिता आदि पाँच धर्मों तथा मेघ के विद्युत्वन्तम् आदि पाँच धर्मों का यथासंख्य से परस्पर सादृश्य है और इन दोनों के इन धर्मों के परस्पर सादृश्य के कारण ही उपमेयभूत प्रासाद और मेघ में सादृश्य है, अतः यहाँ पूर्णोपमालंकार है।

संस्कृत व्याख्या—यत्र अलकानगर्याम् ललिताः वनिताः येषु ते ललितावनिताः रम्यस्त्रीकाः चित्रैः सह वर्तन्ते इति सचित्राः चित्रान्विता संगीताय तौर्यत्रिकाय प्रहतमुरजाः ताडितमृदङ्गाः मणिमयभुवयः रत्नमयभूमयः अभ्रंलिहन्तीति अभ्रंलिहानि, अग्राणि येषां ते अभ्रंलिहाग्राः आकाशस्पर्शिशिराः प्रासादा देवग्रहणि (प्रासादो देवभूभुजाम् इत्यमरः) विद्युतोऽस्य सन्तीति विद्युत्वान् तम् विद्युत्वन्तम् तडित्वन्तम् सेन्द्रचापम् इन्द्रधनुहः समन्वितम्, स्निग्धः गम्भीरश्च घोषः तम् स्निग्धगम्भीरघोषम् मधुरगम्भीरगर्जनम् अन्तस्तोयम् तुङ्गम् उन्नतम् त्वाम् मेघम् तैः तैः पूर्वोक्तैः विशेषैः धर्मैः तुल्यितुम् समीकर्तुम् अलम् पर्याप्ताः सन्ति।

प्रसंग—अलकापुरी की स्त्रियों के कुसुमालंकारों का वर्णन करता हुआ यक्ष कहता है—

“हस्ते लीलाकमलमलके वालकुन्दानुविद्ध

नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुता मामने श्रीः।

चूडापाशे नवकुवरकं चारु कर्णे शिरीषं

सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम्” ॥ २ ॥

अन्वय—यत्र वधूनाम् हस्ते लीलाकमलम्, अलके वालकुन्दानुविद्धम्, आनने लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुताम् नीता श्रीः, चूडापाशे नवकुवरकम् कर्णे चारु शिरीषम् सीमन्ते च त्वदुपगमजम् नीपम् (अस्ति)।

NOTES

शब्दार्थ—यत्र = जहाँ अलकापुरी में, वधूनाम् = विवाहित स्त्रियों के, हस्ते = हाथ में, लीलाकमलम् = क्रीड़ा के लिए (ग्रहण किया गया) कमल, अलके = सिर के बालों में, वालकुन्दानुविद्धम् = कुन्द के ताजे फूलों का गुम्फन (गूँथना) आनने = मुख पर, लोध्रप्रसवरजसा = लोध्र के फूलों की पराग से, पाण्डुताम् = धवलता को, नीता श्रीः = पहुँचाई गयी शोभा, चूडापाशे = जूड़े या केशपाश में, नवकुवरकम् = ताजा कुवरक पुष्प (कुवरक — बसन्त में खिलने वाला एक पुष्प वृक्ष) कर्णे = कान में, चारु = सुन्दर, शिरीषम् = शिरीष का पुष्प, सीमन्ते = माँग में, त्वदुपगमजम् = तुम्हारे आने से उत्पन्न होने वाला अर्थात् वर्षा काल में खिलने वाला, नीपम् = कदम्ब पुष्प है।

अनुवाद—जहाँ अलकापुरी में वधूजनों के हाथ में लीला कमल, सिरके, बालों में कुन्द के ताजे फूलों का गुम्फन, मुख पर, लोध्र के पुष्पों की पराग से धवलित शोभा, केशपाश में ताजे कुवरक पुष्प, कान में सुन्दर शिरीष कुसुम और माँग में तुम्हारे आगमन से उत्पन्न कदम्ब पुष्प (रहता है।)

भावार्थ—यक्ष कहता है कि अलकापुरी की स्त्रियाँ स्वभावतः शृंगार प्रसाधन करने वाली हैं, वे पुष्पाभरणों से सदा अपने को अलंकृत रखती हैं, उनके ये आभूषण प्राकृतिक ही हैं, वे हाथों में क्रीड़ा के लिए कमल रखती हैं, सिर के बालों में ताजे कुन्द पुष्प गूँथती हैं, मुख पर लोध्र पुष्पों के पराग का पाउडर के रूप में प्रयोग करती हैं, वेणी में कुवरक के ताजे पुष्प लगाती हैं, कान में शिरीष कुसुम पहनती हैं और माँग में नीप (कदम्ब) के पुष्प लगाती हैं, जो कि कदम्ब तुम्हारे आने पर अर्थात् वर्षा काल में खिलता है।

प्रस्तुत पद्य में अलकापुरी की स्त्रियों के पुष्पाभरणों से यह प्रकट होता है कि वहाँ सभी छः ऋतुएँ सदा साल भर बनी रहती हैं, अतएव विभिन्न ऋतुओं में खिलने वाले पुष्प वहाँ सदा उपलब्ध रहते हैं, जिन्हें वे अपने को अलंकृत करने के लिए सदा धारण करती हैं अर्थात् एक ही समय उन्हें सभी ऋतुओं के पुष्प प्राप्त हो जाते हैं। कमल शरद ऋतु में, कुन्द हेमन्त में, लोध्र शिशिर में, कुवरक बसन्त में शिरीष ग्रीष्म में और नीप वर्षा में खिलता है।

संस्कृत व्याख्या—यत्र अलकापुर्याम् वधूनाम् स्त्रीणाम् हस्ते करे लीलार्थं कमलम् लीलाकमलम् लीलारविन्दम् अलके कुन्तले (अत्र जातवेकवचनम् अलकेष्वित्यर्थः) वालानि च तानि कुन्दानि तैः अनुविद्धम् वालमुकुन्दानुविद्धम् प्रत्यग्रमाध्यपुष्प गुल्फनम् (माध्यं कुन्दम्—कुन्द पुष्पाणि हेमन्ते प्रादुर्भवन्ति शिशरे च प्रौढत्वमायान्ति अतएव माध्यानां शैशिरत्वमुच्चते) आनने मुखे लोध्रस्य प्रसवाः तेषां रजः तेन लोध्रप्रसवरजसा लोध्र पुष्परागेण पाण्डुताम् धवलतां नीता प्रापिता श्रीः शोभाः, (प्रसवस्तु फले पुष्पे वृक्षाणां गर्भमोचनेकोशः) चूडापाशे नवकुवरकम् बासन्तो नवपुष्पविशेषः कर्णे श्रवणे चारु सुन्दरम् शिरीषम् कुसुमविशेषः सीमन्ते शिरः केशवीथ्याम् च त्वदुपगमजम् मेघागमनकालोद्भवम् वार्षिकं कदम्बपुष्पम् (अस्ति)।

प्रसंग—अलकापुरी के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

‘यत्रोन्मत्तभ्रमरमुखराः पादपा नित्यपुष्पाः,

हंसश्रेणीरचितरशना नित्यपदमा नलिन्यः।

केकोत्कण्ठा भवनशिखिनो नित्यभास्वत्कलापाः,

नित्याज्योत्स्नाः प्रतिहततमोवृत्तिरम्याः प्रदोषोः’ ॥ ३ ॥

अन्वय—यत्र पादपाः नित्यपुष्पाः उन्मत्तभ्रमरमुखराः, नलिन्य नित्य पद्माः हंसश्रेणीरचितरशनाः, भवनशिखिनः नित्यभास्वत्कलापाः केकोत्कण्ठाः प्रदोषाः नित्यज्योत्स्नाः प्रतिहततमोवृत्तिरम्याः (सन्ति) ।

मेघदूतम् (उत्तरमेघः)

NOTES

शब्दार्थ—यत्र—जहाँ (अलकापुरी में) **पादपाः** = वृक्ष, **नित्यपुष्पाः** = सदा (सब ऋतुओं में) पुष्पों से युक्त, (अतएव) **उन्मत्तभ्रमरमुखराः** = मदमस्त भ्रमरों से गुञ्जायमान, (रहते हैं) **नलिन्यः** = कमलनियाँ, **नित्यपद्माः** = सदा कमल पुष्पों से युक्त, (अतएव) **हंसश्रेणीरचितरशनाः** = हंसों की पंक्तियों से बनी तगड़ियों (करधनी) वाली (रहती हैं), **भवनशिखिनः** = गृह मयूर, **नित्यभास्वत्कलापाः** = सदा चमकते हुए पंखों वाले (अतएव) **केकोत्कण्ठाः** = कूकने में उत्सुक अथवा ऊपर की ओर गर्दन उठाने वाले (मयूर गर्दन को ऊँची करके कूकते हैं) (रहते हैं), **प्रदोषाः** = रात्रियाँ, **नित्यज्योत्स्नाः** = सदा चाँदनी से युक्त, (अतएव) **प्रतिहततमोवृत्तिरम्याः** = नष्ट किये गये अन्धकार के प्रसार के कारण रमणीय (रहती हैं) ।

अनुवाद—जहाँ अलकापुरी में वृक्ष सदा पुष्पित अतएव मदमस्त भ्रमरों से गुञ्जायमान (रहते हैं) कमलनियाँ सदा कमल पुष्पों से युक्त (अतएव) हंसों की पंक्तियों से बनी हुई रशना (धारण) करने वाली (रहती हैं) गृह-मयूर सदा चमकते हुए पंखों में युक्त (अतएव) कूकने के लिए गर्दन को ऊपर (उठाये रहते हैं) रात्रियाँ सदा चाँदनी से युक्त (अतएव) नष्ट किये गये अन्धकार के प्रसार के कारण रमणीय (रहती हैं) ।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि अलकापुरी में पूरे वर्ष वृक्षों में फूल खिलते रहते हैं और उन पर मत्त भ्रमर गुञ्जार करते रहते हैं। कमलनियाँ (सरोवरों में) सदा कमल पुष्पों से युक्त रहती हैं अतएव व मानो सरोवरों में होने वाले हंसों रूपी करधनियों को धारण किये रहती हैं, घर के पालतू मयूरों के पंख सदा चमकते रहते हैं। अतएव वे प्रसन्न मुद्रा में कूकने के लिए अपनी गर्दन ऊपर उठाये रहते हैं। रात्रियाँ नित्य चन्द्र-चन्द्रिका से प्रकाशित रहती हैं अतएव वे अन्धकार के फैलाव से नष्ट हो जाने से सदा रमणीय रहती हैं ।

प्रस्तुत पद्य में वर्णित पादप, नलिनी, मयूर और रात्रियों में प्रथम एक विशेषता रहने के कारण सब में दूसरी-दूसरी विशेषता स्वतः उत्पन्न हो जाती है—यह दिखलाया गया है और सब ऋतुओं की स्थिति बतलाई गयी हैं, वर्षा काल में मयूरों के पंख अधिक चमकीले हो जाते हैं अतः वे कूकने के लिए उत्सुक रहते हैं ।

विशेष—प्रस्तुत पद्य के 'हंसश्रेणीरचितरशनाः' पद में नलिनियों में नायिकात्व सादृश्य के गम्य होने से एक देश विवर्ति रूपक अलंकार है ।

संस्कृत व्याख्या—यत्र अलकापुर्याम् पादपाः वृक्षाः नित्यानि पुष्पाणि येषान्ते नित्यपुष्पाः न तु ऋतुनि यमादिति भावः, (अतएव) उन्मत्ताश्च ये भ्रमराः तैः मुखराः उन्मत्तभ्रमरमुखराः मदमत्तमधुपशब्दायमानाः, नलिन्यः पद्मिन्यः नित्यपद्माः (अतएव) हंसानां श्रेणीभिः रचिताः रशनाः यासां ताः हंसश्रेणीरचितरशनाः हंसपङ्क्तिविहितमेखलाः नित्यं हंसपरिवेष्टिता इत्यर्थः भवनशिखिनः गृहमयूराः नित्यं भास्वतः कलापाः येषान्ते नित्यभास्वत्कलापाः नित्योज्ज्वलवर्हाः न तु केवलं वर्षास्वेवेत्यर्थः (अतएव) केकोत्कण्ठाः केकोद्ग्रीवाः, प्रदोषाः रात्रयः नित्यज्योत्स्नाः नित्यचन्द्रिकाः न केवलं शुक्लपक्ष एवेत्यर्थः (अतएव) प्रतिहता तमोवृत्तिः येषान्ते प्रतिहत तमोवृत्तयः ते च ते रम्याश्च प्रतिहततमोवृत्तिरम्याः विनिहतान्धकार, प्रसाररमणीयाः सन्तीति शेषः ।

प्रसंग—अलकावासी यक्षों के उत्कर्ष का वर्णन करता हुआ यक्ष कहता है—

NOTES

अन्वय—यत्र वित्तेशानाम् नयनसलिलम् आनन्दोत्थम्, अन्यैः निमित्तैः न, इष्टसंयोगसाध्यात् कुसुमशरजात् (तापात्) अन्यः तापः न, प्रणयकलहात् अन्यस्मात् विप्रयोगोपपत्तिः अपि न यौवनात् अन्यत् वयः च न अस्ति खलु ।

शब्दार्थ—वित्तेशानाम् = धन के स्वामियों अर्थात् यक्षों का, नयनसलिलम् = नेत्रों का जल अर्थात् आँसू, आनन्दोत्थम् = आनन्द से उत्पन्न, अन्यैः निमित्तैः न = अन्य कारणों से नहीं, इष्टसंयोगसाध्यात् = प्रिय मिलन से दूर होने योग्य, कुसुमशरजात् = कामजन्य (तापात् = ताप या तड़पन) न अन्यः तापः = अन्य ताप नहीं, प्रणयकलहात् = प्रेम कलह से, विप्रयोगोपपत्तिः वियोग की प्राप्ति, न अन्यस्मात् = अन्य किसी कारण से नहीं, यौवनात् अन्यत् वयः = यौवन से अन्य अवस्था, न अस्ति खलु = नहीं है ।

अनुवाद—जहाँ अलकापुरी में धनवान् यक्षों के आँसू आनन्द से ही उत्पन्न (होते हैं) अन्य कारणों से नहीं प्रियसमागम से दूर होने योग्य कामजन्य ताप से अन्य कोई ताप नहीं (होता) प्रणय कलह के अतिरिक्त अन्य किसी कारण से वियोग प्राप्ति नहीं (होती) और यौवन के अतिरिक्त अन्य कोई अवस्था भी नहीं होती ।

भावार्थ—यक्ष मेघ से कहता है अलकापुरी में न दुःख है, न संताप, न वियोग है, न वृद्धता और न मृत्यु अर्थात् वहाँ सदा सुख और यौवनोपभोग ही है, यदि कभी यक्ष आँसू बहाते हैं तो आनन्द विभोर होकर ही दुःख से नहीं, यदि कभी संताप होता है तो वह कामपीडा से ही जो कि प्रियमिलन से तुरन्त दूर हो जाता है, अन्य कोई आधि व्याधि उन्हें नहीं होती यदि कभी कलह से वियोग होता है तो वह प्रणय कलह से ही अन्य कारणों से नहीं, वे सदा युवक ही रहते हैं न बालक और न वृद्ध, अर्थात् वहाँ सदा यौवन और कामजन्य सुख साधन ही उपलब्ध रहते हैं ।

विशेष—प्रस्तुत पद में आँसू ताप वियोग आदि के अन्य कारणों से होने का निषेध कर क्रमशः आनन्द, काम, प्रणय आदि में उनको नियन्त्रित कर दिया गया है, अतः जहाँ पर एक का निषेध कर दूसरे में वस्तु को नियन्त्रित कर दिया जाता है, वहाँ 'परिसंख्या' नामक अलंकार होता है, जैसा कि उसका लक्षण है "परिसंख्या निषिध्यैकमन्यस्मिन् वस्तुयन्त्रणम्" अतः यहाँ परिसंख्यालंकार है ।

संस्कृत व्याख्या—यत्र अलकापुर्याम् वित्तेशानाम् धनाधिपानां यक्षाणाम् नयनसलिलम् नेत्रजलम् अश्रु इत्यर्थः, आनन्दोत्थम् हर्षजन्यम् अन्यैः शोकादिभिः निमित्तैः कारणैः न, इष्टस्य संयोगेन साध्यम् तस्मात्— इष्टसंयोगसाध्यात् प्रिय समागमनि वर्तनीयात् कुसुमशरजात् कामजन्यात् (तापात्) अन्यः तापः संतापः न, प्रणयकलहात् प्रेमकलहात् अन्यस्मात् इतरस्मात् कारणात् विप्रयोगोपपत्तिः वियोगप्राप्तिः अपि न यौवनात् तारुण्य अन्यत् इतरत् वयः अवस्था च न अस्ति खलु निश्चयतः नास्ति ।

प्रसंग—यक्षों के उपभोग का वर्णन करता हुआ यक्ष कहता है—

“यस्यां यक्षाः शितमणिमया न्येत्य हर्म्यस्थलानिः,
ज्योतिश्छायाकुसुमरचितान्युत्तमस्त्रीसहायाः।
आसेवन्ते मधु रतिफलं कल्पवृक्षप्रसूतं
त्वद्गम्भीरध्वनिषु शनकैः पुष्करेष्वाहतेषुः” ॥ ५ ॥

मेघदूतम् (उत्तरमेघः)

NOTES

अन्वय—यस्याम् यक्षाः उत्तमस्त्रीसहायाः शितमणिमयानि ज्योतिश्छाया कुसुमरचितानि हर्म्यस्थलानि एत्य त्वद्गम्भीरध्वनिषु पुष्करेषु शनकैः आहतेषु कल्पवृक्षम् रतिफलम् मधु आसेवन्ते।

शब्दार्थ—यस्याम् = जिस अलकापुरी में, यक्षाः—यक्ष, उत्तमस्त्रीसहायाः = सुन्दरी स्त्रियों के साथः, शितमणिमयानि—स्फटिक मणियों से जटित, ज्योतिश्छायाकुसुमरचितानि = तारागणों के प्रतिबिम्ब रूप पुष्पों से सुसज्जित, हर्म्यस्थलानि = भवनों की छतों पर, एत्य = आकर, त्वद्गम्भीरध्वनिषु = तुम्हारी ध्वनि के समान गम्भीर ध्वनि वाले, पुष्करेषु = पुष्कर नामक नगाड़ों के, शनकैः आहतेषु = धीरे-धीरे बजाये जाने पर, कल्पवृक्षप्रसूतम् = कल्पवृक्ष से उत्पन्न, रतिफलम् मधु = रतिफल नाम की मदिरा का अर्थात् जो मदिरा रतिमुख रूपी फल को देने वाली है। आसेवन्ते = पीते हैं।

अनुवाद—जिस अलकापुरी में यक्ष, सुन्दरी स्त्रियों के साथ, स्फटिक मणियों से जड़े हुए (और) तारागणों के प्रतिबिम्ब रूप पुष्पों से सजे हुए, भवनों की छतों पर आकर तुम्हारी ध्वनि के समान गम्भीर ध्वनि वाले पुष्कर नामक तबलों या नगाड़ों को धीरे-धीरे बजाये जाने पर कल्पवृक्ष से उत्पन्न रतिफल नामक मदिरा को पीते हैं।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि अलकापुरी में यक्षों के भवन स्फटिक मणियों से जटित हैं, जब उन पर चन्द्रादि नक्षत्रों के प्रतिबिम्ब पड़ते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि मानो उन पर पुष्प सजाये गये हैं, वहाँ संगीत होता रहता है उसमें जो नगाड़ों की मधुर ध्वनि उठती है, वह तुम्हारी ध्वनि के समान गम्भीर होती है, जब ये नगाड़े धीरे-धीरे बजाये जाते हैं, तब ये यक्ष सुन्दरी स्त्रियों के साथ भवनों की छतों पर आकर रतिफल नामक मदिरा का पान करते हैं, यह मदिरा कल्पवृक्ष से उत्पन्न होती है।

विशेष—प्रस्तुत श्लोक में ‘ज्योतिश्छायाकुसुमरचितानि’ पद में रूपक अलंकार है और ‘त्वद्गम्भीरध्वनिषु’ पद में लुप्तोपमा अलंकार है।

संस्कृत व्याख्या—यस्याम् अलकायाम् यक्षाः गुह्यकाः उत्तमाः स्त्रियः सहायाः येषान्ते उत्तमस्त्रीसहायाः ललिताङ्गनासहचराः सन्तः, शितमणिमयानि स्फटिकमणिमयानि चन्द्रकान्तमणिमयानि वा (अतएव) ज्योतिषां छाया एव कुसुमानि तैः रचितानि ज्योतिश्छायाकुसुमरचितानि तारक प्रतिबिम्बप्रसूनपरिष्कृतानि हर्म्यस्थलानि प्रासादशिखराणि एत्य प्राप्य त्वद्गम्भीरध्वनिषु त्वत्सदृशगम्भीरध्वनिवत्सु पुष्करेषु वाद्यभाण्डमुखेषु शनकैः मन्दं मन्दं आहतेषु ताडितेषु सत्सु कल्पवृक्षप्रसूतम् कल्पवृक्षोत्पन्नम् रतिफलम् एतन्नामकं मधु मद्यम् आसेवन्ते पिवन्ति।

प्रसंग—अलका की कन्याओं की क्रीड़ा का वर्णन करता हुआ यक्ष कहता है।

“मन्दाकिन्याः सलिलशिशिरैः सेव्यमानाः मरुद्भिः—

मन्दाराणामनुतटरुहां छायाया वारितोष्णाः।

अन्वेष्टव्यैः कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपगूढैः

संकीडन्ते मणिभिरमरप्रार्थिता यत्र कन्याः” ॥ ६ ॥

अन्वय—यत्र मन्दाकिन्याः सलिलशिशिरैः भरुद्भिः सेव्यमानाः, अनुतटरुहाम् मन्दाराणाम् छायाया वारितोष्णाः, अमरप्रार्थिताः कन्याः कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपगूढैः अन्वेष्टव्यैः मणिभिः संक्रीडन्ते ।

NOTES

शब्दार्थ—यत्र = जहाँ अलकापुरी में, मन्दाकिन्याः = गङ्गा के, सलिलशिशिरैः = जल से शीतल, भरुद्भिः = हवाओं द्वारा, सेव्यमानाः = सेवित, अनुतटरुहाम् = किनारों पर उत्पन्न हुए, मन्दाराणाम् = मन्दार वृक्षों की, छायाया = छाया से, वारितोष्णाः = रोकी गयी धूप वाली अर्थात् धूप से रक्षित, अमरप्रार्थिताः = देवता द्वारा अभिलषितः कन्या = कन्यायें, कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपगूढैः = सोने की बालू अर्थात् स्वर्ण के चूर्ण में मुट्टियों से रखकर छिपाई गयी, (अतएव) अन्वेष्टव्यैः = खोजने योग्य, मणिभिः = मणियों से, संक्रीडन्ते = खेलती हैं।

अनुवाद—जहाँ अलकापुरी में, गंगा के जल से शीतल हवाओं द्वारा सेवित तथा किनारों पर उगे हुए मन्दार वृक्षों की छाया से धूप से रक्षित, देवों से अभिलषित यक्ष कन्यायें स्वर्ण चूर्ण में मुट्टियों में रखकर छिपाई गयी (अतएव) खोजने योग्य मणियों से खेलती हैं।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि वहाँ अलकापुरी में गंगा के जल से शीतल हवायें बहती हैं और उसके किनारों पर उगे मन्दार के वृक्षों की छाया से वहाँ धूप दूर कर दी जाती है, अर्थात् तेज धूप वहाँ नहीं हो पाती ऐसे सुखद वातावरण में वहाँ की यक्ष कन्यायें सोने की धूल में मणियों को छिपाने एवं पुनः उन्हें खोजने के खेल खेलती रहती हैं, ये अति सुन्दरी होने के कारण देवताओं द्वारा भी अभिलषित रहती हैं।

संस्कृत व्याख्या—यत्र अलकापुर्याम् मन्दाकिन्याः गङ्गायाः सलिलशिशिरैः जलशीतलैः भरुद्भिः वायुभिः सेव्यमानाः परिचर्ममाणाः सत्यः अनुतटरुहाम् तटोत्पन्नानाम् मन्दारवृक्षाणाम् छायाया अनातपेन वारितोष्णाः निवारितधर्माः अमरप्रार्थिताः देवजनाभिलाषिताः सुन्दर्यः इत्यर्थः कन्याः यक्ष कुमार्यः कनकसिकतासु मुष्टिभिः निक्षेपेण गूढैः कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपगूढैः स्वर्णवालुकामुष्टि स्थापनसम्बृतैः (अतएव) अन्वेष्टव्यैः मृग्यैः मणिभिः रत्नैः संकीडन्ते । गुप्तमणिसंज्ञया दैशिकक्रीडया सम्यक् क्रीडन्तीत्यर्थः ।

प्रसंग—अलका निवासियों की काम क्रीड़ा का वर्णन करता हुआ यक्ष कहता है—

“नीवीवन्धोच्छ्वसितशिथिलं यत्र विम्बाधराणां

क्षौमं रागादनिभृतकरेष्वक्षिपत्सु प्रियेषु।

अर्चिस्तुगङ्गविमुखपमि प्राप्य रत्न प्रदीपान्

ह्रीमूढानां भवति विफलप्रेरणा चूर्णमुष्टिः” ॥ ७ ॥

अन्वय—यत्र अनिभृतकरेषु प्रियेषु नीवीवन्धोच्छ्वसितशिथिलम् क्षौमम् रागात् आक्षिप्तस्तु सत्सु ह्रीमूढानाम् विम्बाधराणाम् चूर्णमुष्टिः अर्चिस्तुङ्गान् रत्नप्रदीपान् अभिमुखम् प्राप्य अपि विफलप्रेरणा भवति ।

शब्दार्थ—यत्र = जहाँ, अनिभृतकरेषु प्रियेषु = चञ्चल हाथों वाले प्रियतमों के, नीवीवन्धोच्छ्वसितशिथिलम् = अधोवस्त्र (साड़ी, पेटीकोट आदि नाभि के नीचे के वस्त्र) की गाँठ (बन्ध) खुले जाने से ढीले हुए, क्षौमम् = रेशमी वस्त्र को, रागात् = कामोत्तेजना से, आक्षिपत्सु = हटा देने या खींच लेने पर, ह्रीमूढानाम् = लज्जा से पराभूत अथवा किंकर्तव्य विमूढ़ हुई, विम्बाधराणाम् = बिम्ब के समान अधरों वाली स्त्रियों की, चूर्णमुष्टिः—मुट्ठी भरकर फेंकी गयी केसर आदि की धूल, अर्चिस्तुङ्गान् = किरणों से

ऊँचे प्रकाशित, रत्नप्रदीपान् = रत्नों रूपी दीपकों के, अभिमुखम् प्राप्य अपि = सामने पहुँचकर भी, विफलप्रेरणा भवति = निष्फल प्रक्षेप वाली हो जाती है।

मेघदूतम् (उत्तरमेघः)

NOTES

अनुवाद—जहाँ अलकापुरी में चञ्चल हाथों वाले प्रियतमों के, अधो वस्त्र की गाँठ खुल जाने से ढीले हुए रेशमी वस्त्र के कामोत्तेजनावश खींचने पर लज्जा से किंकर्तव्यविमूढ विम्बोष्ठी नायिकाओं की मुट्ठी (भरकर प्रक्षिप्त केसर आदि की) धूलि किरणों से ऊँचे प्रकाशित रत्नरूपी दीपकों के सामने पहुँचकर के भी निष्फल प्रक्षेप वाली हो जाती है।

भावार्थ—अलकापुरी के नायक-नायिकाओं की काम क्रीड़ा का निर्देश करता हुआ यक्ष मेघ से कहता है कि वहाँ प्रायः प्रेमी प्रेमिका रति क्रीड़ा में निमग्न रहते हैं, फलतः जब रागाधिक्यवश प्रेमिकाओं के अधोवस्त्रों के बन्ध ढीले हो जाते हैं और प्रेमियों के चञ्चल हाथ जब उनके रेशमी वस्त्र को काम की उत्तेजनावश खींच लेते हैं तब अपने को विवृत जघना देखकर प्रेमिकायें अति लज्जित हो जाती हैं और इस लज्जा के आवरण के लिए जब वे ऊँचे प्रज्वलित रत्नदीपों को बुझाने के लिए उन पर मुट्ठी भरकर केसर आदि की धूलि फेंकती हैं, तो उनका यह प्रयास भी निष्फल हो जाता है क्योंकि रत्नरूपी दीपक जो बिना तेल बत्ती के ही जलते हैं, धूलि से नहीं बुझाये जा सकते हैं, अतः प्रेमियों को वहाँ रत्नदीप प्रकाश में ही रति सुख प्राप्त होता है।

विशेष—प्रस्तुत पद्य में 'रत्नदीपान्' को बुझाने में हेतुभूत चूर्णमुष्टि के होते हुए भी, दीपकों का न बुझना' इस कथन में विशेषोक्ति अलंकार है और विम्बाधराणां पद में लुप्तोपमालंकार है।

संस्कृत व्याख्या—यत्र अलकायाम् अनिभूतकरेषु चञ्चलहस्तेषु प्रियेषु प्रियतमेषु वा, नीवी एव बन्धः नीवीबन्धः तस्य उल्लवसितेन शिथिलम् नीवीबन्धोच्छ्वसितशिथिलम् वसनग्रन्थिवन्धवृत्तितल्लथम् (नीवी परिषणो ग्रन्थौ स्त्रीणां जघनवाससि-कोशः) (यद्यप्यत्र नीवीशब्दस्यैव वसनिग्रन्थिरित्यर्थः तथापि बन्धशब्दस्य प्रयोगे न पौनरुक्त्यं शङ्क्यम् यतो ह्यत्रास्य प्रयोग आम्रवृक्षवत् अवगन्तव्यः) क्षौमम् कौशेयम् अधोवस्त्रम् रागात् कामवशात् आक्षिपत्सु सत्सु आहरत्सु ह्रीमूढानाम् लज्जाविधुराम् विम्बाधराम् विम्बोष्ठीनाम् चूर्णमुष्टिः मुष्टिपरिमितं कुङ्कुमादिपदार्थचूर्णम् अर्चिस्तुणामङ्गान् मयूखोन्नतान् रत्नदीपान् मणिदीपान् अभिमुखम् सम्मुखम् एत्य आसाद्य अपि विफलप्रेरङ्गा निष्फल प्रक्षेपणा भवति जायते।

प्रसंग—अलका में मेघों का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

“नेत्राः नीताः सततगतिना यद्विमानाग्रभूमी—

रालेख्यानां स्वजलकणिका दोषमुत्पाद्य सद्यः।

शङ्काष्पृष्टा इव जलमुचस्त्वादृशाः जालमार्गैः।

धूमोद्गारानुकृतनिपुणा जर्जरा निष्पतन्ति” ॥ ८ ॥

अन्वय—नेत्रा सततगतिना यद्विमानाग्रभूमी नीताः त्वादृशाः जलमुचः आलेख्यानाम् स्वजलकणिका दोषम् उत्पाद्य सद्यः शङ्कास्पृष्टाः इव धूमोद्गारा नुकृतिनिपुणा जर्जराः जलमार्गैः निष्पतन्ति।

शब्दार्थ—नेत्रा = ले जाने वाले अर्थात् प्रेरक, सततगतिना = निरन्तर गतिशील अर्थात् वायु के द्वारा, यद्विमानाग्रभूमीः = जिस (अलका) के सात मञ्जिल वाले भवनों के ऊपरी भागों में, नीताः = ले जाए गए अथवा पहुँचाए गये, स्वादृशाः = तुम्हारे जैसे जलमुचः = मेघ, आलेख्यानाम्—चित्रों में,

NOTES

स्वजलकणिकादोषमुत्पाद्य = अपने जवकणों से दोष (खराबी) को उत्पन्न करके, सद्यः = शीघ्र ही, शङ्कापृष्ठा इव = सशङ्कित या भयभीत से (होकर) धूमोद्गारानुकृति निपुणाः—धुएँ के निकलने के अनुकरण को करने में कुशल, जर्जराः = छिन्न-भिन्न होकर, जलमार्गैः = गवाक्ष या झरोखों के छिद्रों से, निष्पतन्ति = निकल जाते हैं।

अनुवाद—ले जाने वाला अथवा प्रेरक निरन्तर गतिशील वायु के द्वारा जिस (अलका) के साप्त भूमिक (सात मञ्जिले) भवनों के ऊपरी भागों में पहुँचाए गए तुम्हारे जैसे मेघ (भवनों के) चित्रों में अपने जलकणों से दोष उत्पन्न करके शीघ्र ही भयभीत से होकर धुएँ के निकलने में कुशल (अतएव) छिन्न-भिन्न होकर झरोखों के छिद्रों में निकल जाते हैं।

मल्लिनाथ के अनुसार मेघों के उक्त वर्णन से यह ध्वनित होता है कि जैसे अन्तपुर में निरन्तर आने जाने वाले किसी दूत के द्वारा गोपनीय संकेत स्थल में पहुँचाए गए जार पुरुष वहाँ की स्त्रियों में व्यभिचार दोष उत्पन्न कर शीघ्र ही भयभीत से होकर वेष बदलकर टेढ़े-मेढ़े होकर पतले से गुप्त मार्गों से निकल जाते हैं, उसी प्रकार की क्रियायें अलकापुरी में मेघ भी करते हैं।

विशेष—प्रस्तुत पद्य के 'शङ्कापृष्ठा इव' में उत्प्रेक्षालंकार है।

संस्कृत व्याख्या—नेत्रा प्रेरकेण सततगतिना सदागतिना वायुना (मातरिश्वा सदागतिः इत्यमरः) यस्याः विभानानाम् अग्रभूमयः ताः यद्विवमानाग्रभूमीः यत्साप्तभूमिक भवनोपरिभूमीः नीताः प्रापिताः त्वादृशाः त्वत्सदृशाः जलमुचः मेघाः आलेख्यानाम् गृहचित्राणाम् स्वजलकणिकादोषम् स्वसलिलकणदोषम् उत्पाद्य जनयित्वा सद्यः शीघ्रम् शङ्कापृष्ठा इव भयाविष्टा इव चित्रविनाशमुदवीक्ष्यास्मान् कोऽपि गृहीष्यतीति शङ्कमाना इत्यर्थः ६ धूमोद्गारानुकृतिनिपुणाः धूमनिर्गमानुकरणकुशला जर्जराः विशीर्णाः सन्तः जलमार्गैः गवाक्षछिद्रैः निष्पतन्ति निर्गच्छन्ति।

प्रसंग—यक्ष कहता है कि अलकापुरी में स्त्रियों की रतिजन्य थकावट को चन्द्रकान्त मणियाँ दूर करती रहती हैं—

“यत्र स्त्रीणां प्रियतम भुजालिङ्गनोच्छ्वासिताना—

मङ्गलानि सुरतजनितां तन्तुजालावलम्बा।

त्वत्संरोधापगमविशदैश्चन्द्रपादैर्निशीथे

व्यालुम्पन्ति स्फुटजललवस्यन्दिनश्चन्द्रकान्ताः” ॥ ९ ॥

अन्वय—यत्र निशीथे त्वत्संरोधापगमविशदैः चन्द्रपादैः स्फुटजललवस्यन्दिनः तन्तुजालावलम्बाः चन्द्रकान्ताः प्रियतमभुजालिङ्गनोच्छ्वासितानाम् स्त्रीणाम् सुरतजनिताम् अङ्गलानिम् व्यालुम्पन्ति।

शब्दार्थ—यत्र = जहाँ अलकापुरी में, नशीथे = अर्ध रात्रि के समय, त्वत्संरोधापगमविशदैः = तुम्हारे संरोध (घेरा या आवरण) के हट जाने से निर्मल, चन्द्रपादैः = चन्द्रमा की किरणों से, स्फुटजललवस्यन्दिनः = जल की स्फुट (मोटी) बूँदों को टपकाने वाली, तन्तुजालावलम्बाः = झालरों से लटकने वाली, चन्द्रकान्ताः = चन्द्रकान्त नामक मणियाँ, प्रियतमभुजालिङ्गनोच्छ्वासितानाम् = प्रियतमों की भुजाओं द्वारा (किये गये) आलिङ्गनों से प्रशिथिल हुई, स्त्रीणाम् = स्त्रियों की, सुरतजनिताम् = रति क्रीड़ा से उत्पन्न, अङ्गलानिम् = शरीर की थकान को, व्यालुम्पन्ति = दूर करती हैं।

अनुवाद—जहाँ अलकापुरी में अर्धरात्रि के समय, तुम्हारे आवरण के हट जाने से निर्मल चन्द्र किरणों द्वारा अर्थात् चन्द्र किरणों से सम्पर्क से, मोटी-मोटी जल की बूँदों को टपकाने वाली और झालरों से लटकने वाली चन्द्रकान्त मणियाँ, प्रियतमों की भुजाओं द्वारा (किये गये) आलिङ्गनों से प्रशिथिलित हुई स्त्रियों के रतिक्रीड़ा से उत्पन्न, शरीर की थकान को दूर करती हैं।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि अलकापुरी के भवनों की छतों से झालरों से चन्द्रकान्त मणियाँ लटकती रहती हैं। जब मेघ के आवरण से मुक्त होकर चन्द्र किरणें मणियों पर पड़ती हैं। तब उनसे पानी की बूँदें टपकने लगती हैं, ये बूँदें ही वहाँ की स्त्रियों की रतिजन्य थकान को दूर करती हैं। ऐसी प्रसिद्धि है कि चन्द्र किरण सम्पर्क प्राप्त कर चन्द्रकान्त मणियों से जलस्राव होने लगता है।

संस्कृत व्याख्या—यत्र अलकायां निशीथे अर्धरात्रे, तब संरोधस्य अपगमेन विशदैः— त्वत्संरोधापगमविशदैः मेघावरणाभावनर्मलैः चन्द्रपादैः चन्द्रकिरणैः स्फुटाश्च ये जललवास्तान् स्यन्दन्त इति स्फुटजललवस्यन्दिनः व्यक्ताम्बुकणस्त्रिाविणः, तन्तुजालम् अवलम्बः येषान्ते तन्तुजालावलम्बाः सूत्रजलावलम्बिनः चन्द्रकान्ताः चन्द्रकान्तमणयः प्रियतमानां भुजैः आलिङ्गनेषु उच्छ्वासिताः तासाम् प्रियतम- भुजालिङ्गनीच्छ्वासितानाम् प्रियतमबाहुपाशप्रशिथिलीकृतानाम् स्त्रीणाम् कामिनीनाम् रतिक्रीडोत्पन्नम् अङ्गलानिम् शरीरखिन्नताम् व्यालुम्पन्ति व्यपनयन्ति।

प्रसंग—यक्ष कहता है कि अलकापुरी में कामुक जन बाह्य उद्यानों का उपभोग करते हैं।

अक्षय्यान्तर्भवननिधयः प्रत्यहं रक्तकण्ठै

रुदनायदिभर्धनपतियसः किन्नरैर्यत्र सार्धम्।

वैभ्राजाख्यं विवुधवनितावारमुख्यासहाया

वद्भालापाः वहिरुपवनं कामिनो निर्विशन्ति''॥१०॥

अन्वय—यत्र अक्षय्यान्तर्भवननिधयः विवुधवनितावारमुख्यासहायाः वद्भालापाः कामिनः प्रत्यहम् रक्तकण्ठैः धनपतियशः उद्गायदिभः किन्नरैः सार्धम् वैभ्राजाख्यम् वहिरुपवनम् निर्विशन्ति।

शब्दार्थ—यत्र = जहाँ अलकापुरी में, अक्षय्यान्तर्भवननिधयः = भवनों के भीतर अपरिमित निधि (धनराशि) रखने वाले, विवुधवनितावारमुख्यासहायाः = अप्सरा रूपी वेश्याओं को साथ रखने वाले, वद्भालापाः = वार्तालाप करने वाले, कामिनः = कामुक जन यक्ष, प्रत्यहम् = प्रतिदिन, रक्तकण्ठैः = मधुर स्वर वाले, धनपतियशः = कुबेर की कीर्ति को, उद्गायदिभः = ऊँचे स्वर से गाते हुए, किन्नरैः सार्धम् = किन्नरों के साथ, वैभ्राजाख्याम् = वैभ्राज नाम वाले, अर्थात् चैत्ररथ, नामक वहिरुपवनम् = बाहरी उद्यान का, निर्विशन्ति = उपभोग करते हैं।

अनुवाद—जहाँ अलकापुरी में, भवनों के अन्दर अपरिमित धनराशि को रखने वाले (तथा) अप्सरा रूपी वेश्याओं को साथ रखने वाले, वार्तालाप करते हुए कामुक यक्ष प्रतिदिन, मधुर स्वरों वाले (तथा) कुबेर के यश को ऊँचे स्वरों में गाने वाले किन्नरों के साथ, चैत्ररथ नामक बाहरी उद्यान का उपभोग करते हैं।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि अलकापुरी के भवनों में अपार धनराशि रहती है। यहाँ वैभ्राज नामक कुबेर का बाह्य उद्यान है। इसी उद्यान में कलकण्ठ किन्नर, कुबेर के यश का गान करते हैं। अलकापुरी के कामुक यक्ष इसी बाहरी उद्यान में अप्सराओं के साथ बातचीत करते हुए आकर सुखोपभोग करते हैं।

NOTES

संस्कृत व्याख्या—यत्र अलकायाम् अक्षय्या अन्तर्भवनेषु निधयः येषां ते—अक्षय्यान्तर्भवनिधयः अपरिमेयभवनाभ्यन्तरधनराशयः, विबुधवनिता एव वारमुख्याः ता एव सहायाः येषाम् ते—विबुधवनितावारमुख्यासहायाः अप्सरो वेश्यासहचराः (वारस्त्री गणिका वेश्या रूपाजीवाऽथ सा जनैः, सत्कृता वारमुख्या स्यात्—इत्यमरः) वद्धालापाः संवर्धितसंलापाः कामिनः कामुकाः यक्षाः प्रत्यहम् अहन्यहनि रक्तकण्ठैः मधुरकण्ठध्वनिभिः (रक्त शब्दस्य मधुरेत्यर्थः कण्ठस्य च कण्ठध्वनि रित्यर्थः) धनपतियशः कुवेरकीर्तिम् उद्गायद्भिः उच्चैर्गाद्भिः किन्नरैः एतन्नामकैर्गायकैर्देवयोनिविशेषैः सार्धम् सह वैभ्राजाख्याम् वैभ्राजनामकम् वहिरुपवनम् बाह्योद्यानम् निर्विशन्ति उपभुञ्जते।

प्रसंग—अलकापुरी में अभिसारिकाओं के रात्रि मार्ग का वर्णन करता हुआ यक्ष कहता है—

“गत्युत्कम्पादलकपतितैर्यत्र मन्दारपुष्पैः

पत्रच्छेदैः कनककमलैः कर्णविभ्रं शिभिश्च।

मुक्ताजालैः स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैश्च हारैः—

नैशैः मार्गः सवितुरुदये सूच्यते कामिनीनाम्” ॥ ११ ॥

अन्वय—यत्र कामिनीनाम् नैशः मार्गः सवितुः उदये (सति) गत्युत्कम्पात् अलकपतितैः मन्दारपुष्पैः, कर्णविभ्रंशिभिः पत्रच्छेदैः, कनककमलैः, स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैः मुक्ताजालैः, हारैः च सूच्यते।

शब्दार्थ—यत्र = जिस अलका में, कामिनीनाम् = अभिसारिकाओं का, नैशः मार्ग = रात्रि का मार्ग, सवितुः उदये = सूर्य के उदय होने पर, गत्युत्कम्पात् = गमन के कारण हिलने से, अलकपतितैः = केशों से गिरे हुए, मन्दारपुष्पैः = मन्दार वृक्ष के फूलों से, कर्णविभ्रंशिभिः = कानों से गिरने वाले, पत्रच्छेदैः = पत्तों के टुकड़ों से, कनककमलैः = स्वर्ण कमलों से, स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैः = स्तन प्रदेश पर टूटे हुए धागों वाले, मुक्ताजालैः = मोतियों की मालाओं से, हारैः = पुष्पादि के हारों से, सूच्यते = सूचित होता है।

अनुवाद—जहाँ अलकापुरी में अभिसारिकाओं का रात का मार्ग, सूर्य के उदय होने पर गमन के कारण हिलने से, केशों से गिरे हुए मन्दार के पुष्पों से, कानों से गिरने वाले पत्तों के टुकड़ों से और स्वर्ण कमलों से तथा स्तन प्रदेश पर टूटे हुए धागों वाले मोतियों से एवं पुष्पादि हारों से सूचित होता है।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि अलकापुरी में प्रातः सूर्योदय होने पर मार्ग में पड़े हुए मन्दार के पुष्पों, पत्तों के टुकड़े, स्वर्ण कमलों, मोतियों की लड़ियों एवं पुष्पहारों को देखकर लोग जान लेते हैं कि रात को इसी मार्ग से अभिसारिकायें गयी होंगी।

विशेष—प्रस्तुत पद्य में मन्दार पुष्पादि देखने से रात्रिमार्ग का अनुमान किया गया है, अतः अनुमानालंकार और मार्गसूचक अनेक साधनों के समुच्चय से समुच्चयालंकार भी है।

संस्कृत व्याख्या—यत्र अलकायाम् कामिनीनाम् अभिसारिकाणाम् निशि भवः नैशः रात्रिकालीनः मार्गः पन्थाः सवितुः सूर्यस्य उदये (सति) गत्या उत्कम्पस्तस्मात्, गत्युत्कम्पात्, तीव्रगमनहेतुकसञ्चलनाद्वेतोः अलकपतितैः केशभ्रष्टैः मन्दारपुष्पैः सुरतरकुसुमैः, कर्णविभ्रंशिभिः, श्रवणपतितैः पत्रच्छेदैः पत्रलताखण्डैः, कनककमलैः, स्वर्णकमलैः च, स्तनयोः परिसरः तत्र छिन्नानि सूत्राणि येषान्ते स्तनपरिसरच्छिन्नं सूत्रैः, कुचप्रदेशत्रुटिततन्तुभिः मुक्ताजालैः, मौक्तिकसरैः हारैः पुष्पमालाभिश्च सूच्यते ज्ञाप्यते।

प्रसंग—यक्ष कहता है कि अलकापुरी में स्त्रियों के लिए समस्त शृङ्गार प्रसाधनों में कल्पवृक्ष ही होता है—

मेघदूतम् (उत्तरमेघः)

“वासश्चित्रं मधु नयनयोविभ्रमादेशदक्षं,
पुष्पोद्भेदं सह किसलयैर्भूषणानां विकल्पान्।
लाक्षारागं चरण कमलन्यासयोग्यं च यस्या—
मेकः सूते सकलमवलामण्डनं कल्पवृक्षः” ॥ १२ ॥

NOTES

अन्वय—यस्याम् चित्रम् वासः, नयनयोः विभ्रमादेशदक्षम् मधु, किसलयैः सह पुष्पोद्भेदम्, भूषणानाम् विकल्पान् चरणकमलन्यासयोग्यम् लाक्षारागम् च सकलम् अवलामण्डनम् एकः कल्पवृक्षः सूते।

शब्दार्थ—यस्याम् = जिस अलकापुरी में, चित्रम् = विविध वर्ण के, वासः = वस्त्र को, नयनयोः = नेत्रों को, विभ्रमादेशदक्षम्—हाव-भाव सिखाने में कुशल (उपयोगी) मधु = मदिरा को, किसलयैः सह = नव पल्लवों के साथ, पुष्पोद्भेदम् = फूलों के विकास को, भूषणानां विकल्पान् = आभूषणों के विविध प्रकारों को, चरणकमलन्यासयोग्यम् = चरण कमलों पर लगाने योग्य, लाक्षारागम् = महावर को, सकलम् = सम्पूर्ण अवलामण्डनम् = स्त्रियों की प्रसाधन सामग्री को, एकः = अकेला, कल्पवृक्ष एव = कल्पवृक्ष ही, सूते = उत्पन्न करता है।

अनुवाद—जिस अलकापुरी में विविध वर्णों के वस्त्र को नेत्रों को विलास सिखाने में उपयोगी मदिरा को, नवपल्लवों के साथ पुष्पों के विकास को, आभूषणों के विविध प्रकारों को, तथा चरण कमलों में लगाने योग्य महावर को, (इस प्रकार) स्त्रियों की सम्पूर्ण प्रसाधन सामग्री को अकेला कल्पवृक्ष ही उत्पन्न करता है।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि अलकापुरी की स्त्रियों को अपनी शृङ्गार प्रसाधन सामग्री की प्राप्ति के लिए इधर-उधर भटकना नहीं पड़ता, क्योंकि अकेला कल्पवृक्ष ही इस समस्त सामग्री को प्रस्तुत कर देता है, अतएव वे विविध रंग के वस्त्रों को पहनती हैं, नेत्रों के हाव-भाव प्रदर्शन के लिए उपयोगी मधु को पीती हैं, पल्लव सहित पुष्पाभरणों को एवं सभी प्रकार के आभूषणों को धारण करती हैं एवं पैरों में महावर लगाती हैं, यह सामग्री उन्हें कल्पवृक्ष देता है।

विशेष—प्रस्तुत पद्य में ‘वासश्चित्रम्’ आदि अनेक प्रस्तुतों के वाचक पद, केवल एक ‘सूते’ क्रिया के कर्म हैं अतः अनेक प्रस्तुतों के एक क्रिया से सम्बद्ध होने से ‘तुल्ययोगितालंकार’ है, चरण कमलेत्यादि पद में ‘रूपक’ है।

संस्कृत व्याख्या—यस्याम् अलकायाम्, चित्रम्-विविधवर्णम्, वासः-वस्त्रम् नयनयोः नेत्रयो विभ्रमादेशदक्षम् विलासोपदेशक्षमम् मधु मद्यम् किसलयैः नवपल्लवैः सह पुष्पोद्भेदम् पुष्पविकासम्, भूषणानाम् आभूषणानाम् विकल्पान् विविधप्रकारान् भेदान् वा, चरणकमलन्यासयोग्यम् चरणारविन्दप्रयोगक्षमम् लाक्षारसम् आलक्तकम् च सकलम् सम्पूर्णम् अवलामण्डनम् अङ्गनालंकरणम् एवः एकाकी एक कल्पवृक्षः सूते जनयति।

प्रसंग—अलका की युद्ध साधनता का वर्णन करता हुआ यक्ष कहता है—

“पत्रश्यामा दिनकरह्यस्पर्धिनी यत्र वाहाः,
शैलोदन्नास्त्वमिव करिणो वृष्टिमन्तः प्रभेदात्।

NOTES

अन्वय—यत्र वाहाः पत्रश्यामाः दिनकरहयस्पर्धिनः, शैलोदग्राः करिणः प्रभेदात् त्वम् इव वृष्टिमन्तः, योधाग्रण्याः संयुगे प्रतिदशमुखम् तस्थिवांसः, चन्द्रहासव्रणाङ्कैः प्रत्यादिष्टाभरणरुचयः (सन्ति)।

शब्दार्थ—यत्र = जहाँ अलकापुरी में, वाहाः = अश्व, पत्रश्यामाः = पत्तों के समान श्याम वर्ण के, दिनकरहयस्पर्धिनः = (रंग और वेग में) सूर्य के अश्वों से स्पर्धा (होड़) करने वाले, शैलोदग्राः = पर्वतों के समान ऊँचे, करिणः = गज, प्रभेदात् = मद के स्त्राव से, स्वमिव = तुम्हारे समान, वृष्टिमन्तः = वर्षा करने वाले, योद्धाग्रण्याः = योद्धाओं में अग्रणी, संयुगे = युद्ध में, प्रतिदशमुखम् = रावण के सामने, तस्थिवांस = टिक चुकने वाले, (अतएव) चन्द्रहासव्रणाङ्कैः = रावण की चन्द्रहास नामक तलवार के घावों के चिन्हों के कारण, प्रत्यादिष्टाभरणरुचयः = आभूषणों की रुचि को छोड़ देने वाले।

अनुवाद—जहाँ अलकापुरी में अश्व, पत्तों के समान नीलवर्ण के (अतएव रंग और वेग में) सूर्य के अश्वों से होड़ करने वाले हैं, पर्वतों के समान ऊँचे गज, मदस्त्राव के कारण तुम्हारे समान वर्षा करने वाले हैं, श्रेष्ठ योद्धा संग्राम में रावण के सामने टिक चुकने वाले, (अतएव) उसकी चन्द्रहास तलवार के घावों के चिन्हों के कारण आभरणों (के धारण की) रुचि को त्याग देने वाले हैं।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि अलकापुरी में हरित वर्ण के वेगशाली अश्व हैं जो कि रंग और वेग में सूर्य के अश्वों से भी स्पर्धा करने वाले हैं, ऊँचे विशाल मदशाली गज हैं जो कि उच्चता और वर्णशीलता में मेघों के समान हैं, श्रेष्ठ योद्धा संग्राम में रावण के सामने टिक सकने वाले हैं, अतएव वे अपने शरीर पर तलवारों के घावों के चिन्हों को आभूषण रूप में धारण करते हैं, असिब्रण ही वीरों का आभूषण है अतः वे सामान्य आभूषणों की इच्छा नहीं करते।

विशेष—प्रस्तुत पद्य में उपमालंकार है। ऐसी मान्यता है कि कभी रावण और कुवेर में युद्ध हुआ था अतएव यहाँ के योद्धा रावण की चन्द्रहास असि के व्रणों के चिन्हों को धारण करते हैं।

संस्कृत व्याख्या—यत्र अलकायाम् वाहाः अश्वाः पत्रश्यामाः पलाशहरित वर्णाः, दिनकरहयस्पर्धिनः वर्णतो वेगतश्च सूर्याश्वकल्पाः (सन्ति) शैलोदग्राः पर्वतोन्नताः करिणः गजाः प्रभेदात् मदस्त्रावाद्धेतोः त्वम् मेघ इव वृष्टिमन्तः वर्षणशीलाः (सन्ति) योद्धाग्रण्याः भटश्रेष्ठाः संयुगे संग्रामे प्रतिदशमुखम् अभिरावणम् तस्थिवांसः स्थितवन्ताः (अतएव) चन्द्रहासव्रणाङ्कैः रावणासिक्तचिन्हैः प्रत्यादिष्टाभरणरुचयः प्रतिश्रद्धाभूषण रुचयः (सन्ति)।

प्रसंग—यक्ष कहता है कि अलकापुरी में कामिनियों के भूभङ्ग—युक्त विलास ही कामवाणों का काम देते हैं, अतः कामदेव को अपने वाण चलाने की यहाँ आवश्यकता ही नहीं होती—

“मत्वा देवं धनपतिसखं यत्र साक्षाद् वसन्तम्,

प्रालश्चापं न वहति भयान्मन्मथः षट्पदज्यम्।

सभूभधहितनयनैः काभिलक्ष्येष्वोघैः—

स्तस्यारम्भश्चतुरवनिताविभ्रमैरेव सिद्धः” ॥ १४ ॥

अन्वय—यत्र मन्मथः धनपतिसखम् देवम् साक्षात् वसन्तम् मत्वा भयात् षट्पदज्यम् चापम् प्रायः न वहति, तस्य आरम्भः सभ्रूभङ्गप्रहितनयनैः कामिलक्ष्येषु अमोघैः चतुरवनिताविभ्रमैः एव सिद्धः।

NOTES

शब्दार्थ—यत्र = अलकापुरी में, मन्मथः = कामदेव, धनपतिसखम् देवम् = कुबेर के मित्र महादेव को, साक्षात् वसन्तम् = साक्षात् रूप से निवास करता हुआ, मत्वा = मानकर, भयात् = भयवश। षट्पदज्यम् = भ्रमरों की प्रत्यञ्चा वाले, चापम् = धनुष को, प्रायः न वहति = प्रायः धारण नहीं करता है (किन्तु फिर भी), तस्य आरम्भः = उसका कार्य अर्थात् धनुष से कामीजनों को जीतने का व्यापार, सभ्रू भङ्गप्रहितनयनैः = टेढ़ी भौंहों के साथ प्रयुक्त नेत्रों वाले, कामिलक्ष्येषु = कामिजन रूपी लक्ष्यों पर, अमोघैः = अचूक, चतुरवनिताविभ्रमैः = चतुर कामिनियों के विलासों (हाव भाव आदि) से, एव = ही, सिद्ध = सिद्ध हो जाता है या पूरा हो जाता है।

अनुवाद—जहाँ अलकापुरी में कामदेव, कुबेर के मित्र महादेव जी को साक्षात् रूप में निवास करता हुआ मानकर भय के कारण भ्रमरों की प्रत्यञ्चा वाले (अपने) धनुष को प्रायः धारण नहीं करता है, (किन्तु फिर भी) उसका यह कार्य अर्थात् धनुष से कामीजनों पर विजय प्राप्त करना, कामीजन रूपी लक्ष्यों पर, न चूकने वाले चतुर स्त्रियों के विलासों अर्थात् उन हाव भावों से ही सिद्ध हो जाता है जिनमें टेढ़ी भौंहों के साथ नेत्रों का प्रयोग किया जाता है।

भावार्थ—यह कहता है कि अलकापुरी में शिवजी निवास करते हैं अतः उनके डर से कामदेव यहाँ पर किसी पर शर सन्धान नहीं कर सकता फिर भी यहाँ की कामिनियाँ अपने अमोघ कटाक्ष वाणों से ही कामियों को पराजित कर कामदेव के कार्य को पूरा कर देती हैं।

विशेष—इस पद्य में काम के धनुर्धारण का सम्बन्ध होते हुए भी उसके असम्बन्ध का कथन है, अर्थात् सम्बन्ध में असम्बन्ध का कथन है अतः सम्बन्धे असम्बन्ध लक्षणा “अतिशयोक्ति” है और “कामिलक्ष्येषु” पद में रूपकालंकार है।

संस्कृत व्याख्या—यत्र अलकायाम मन्मथः कामदेवः धनपते सखातम् धनपतिसखम् कुबेरमित्रम् देवम् महादेवम् शिवम् साक्षात् प्रत्यक्षतः वसन्तम् सखिस्नेहान्मित्ररूपेण वर्तमानम् मत्वा ज्ञात्वा भयात् भीतिवशात् षट्पदज्यम् भ्रमरप्रत्यञ्चायुक्तम् चापम् धनुः प्रायः प्राचुर्येण न वहति न धारयति। तस्य मन्मथस्य आरम्भः कामिजनवजयव्यापारः सभ्रूभङ्गम् प्रहितानि नयनानि येषु तैः सभ्रूभङ्गप्रहितनयनैः भ्रूभङ्गसहित प्रयुक्तनेत्रैः कामिन एव लक्ष्याणि तेषु कामिलक्ष्येषु कामिजनशरव्येषु अमोघैः अव्यर्थैः चतुराश्च ताः वनिताश्च तासां विभ्रमैः चतुरवनिताविभ्रमैः विदग्धकामिनीविलासैः एव सिद्धः निष्पन्न भवतीति शेषः

प्रसंग—यक्ष मेघ को अलका में अपने घर की पहचान बतलाता है जिसके चिह्न तोरण और मन्दारवृक्ष हैं—

“तत्रागारं धन-पतिगृहानुत्तरेणास्मदीयं

दूराल्लक्ष्यं सुरपतिधनुश्चारुणा तोरणेन।

यस्योपान्ते कृतकतनयः कान्तया वर्धितो मे

हस्तप्राप्यस्तवकनमिस्तो वालमन्दारवृक्षः” ॥ १५ ॥

अन्वय—तत्र धनपतिगृहान् उत्तरेण अस्मदीयम् अगारम् (अथवा आगारम्) विद्यादगारमागारम् सुरपतिधनुश्चारुणा तोरणेन दूरात् लक्ष्यम्, यस्य उपान्ते मे कान्तया वर्धितः कृतकतनयः हस्तप्राप्यस्तवकनमितः वालमन्दारवृक्षः (अस्ति) ।

NOTES

शब्दार्थ—तत्र = वहाँ अलकापुरी में, धनपतिगृहानि उत्तरेण = कुबेर के गृह में उत्तर दिशा की ओर, अस्मदीयम् आगारम् = हमारा घर, सुर-पतिधनुश्चारुणा = इन्द्र धनुष के समान सुन्दर, तोरणेन = बाहरी द्वार से, दूरात् लक्ष्यम् = दूर से ही पहचानने योग्य (है) यस्य उपान्ते = जिसके पास में, मे कान्तया वर्धितः = मेरी पत्नी के द्वारा पालित पोषित, कृतकतनयः = पुत्र के रूप में माना हुआ, हस्तप्राप्यस्तवकनमितः = हाथों से प्राप्त करने योग्य पुष्प गुच्छों द्वारा झुकाया गया, वालमन्दारवृक्षः = मन्दारवृक्ष का पौधा है।

अनुवाद—वहाँ अलकापुरी में कुबेर के गृह से उत्तर की ओर हमारा गृह इन्द्र धनुष के समान सुन्दर बाहरी द्वार से दूर से ही देखने योग्य है, अर्थात् देखा जा सकता है, जिसके पास ही मेरी पत्नी के द्वारा पालित पोषित पुत्र रूप से माना हुआ हाथों से प्राप्त करने योग्य पुष्प गुच्छों द्वारा झुकाया गया, मन्दार वृक्ष का पौधा है।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि अलकापुरी में कुबेर के घर से उत्तर की ओर मेरा घर है, जो कि इन्द्र धनुष के समान बाहरी द्वार से दूर से ही देख जा सकता है। और मेरे घर की दूसरी पहचान यह है कि वहाँ एक मन्दार वृक्ष का पौधा है जो कि पुत्र के समान मान कर मेरी पत्नी द्वारा पोषित हुआ है और वह अपने पुष्प गुच्छों के भार से झुका हुआ है।

विशेष—प्रस्तुत पद के सुरपतिधनुश्चारुणा में उपमालंकार है।

संस्कृत व्याख्या—तत्र अलकायाम् धनपतिगृहानि कुबेर भवनानि उत्तरेण उत्तरस्मिन् अर्थात् अदूरप्रदेशे, अस्मदीयम् आगारम् गृहम् सुरपतिधनुश्चारुणा इन्द्रचापसुन्दरेण (मणिमयत्वादभ्रं कषत्वाच्चेत्यर्थः तोरणेन वहिद्वारेण दूरात् लक्ष्यम् अभिज्ञेयम् (अस्ति) यस्य ममागारस्य उपान्ते पार्श्वदेशे मे मम कान्तया पत्न्या वर्धितः पोषितः कृतकतनयः कृत्रिमसुतः पुत्रत्वेनाभिमान इत्यर्थः हस्तप्राप्यस्तवकनमितः करावचेयगुच्छनमितः वालमन्दारवृक्षः बालकल्पवृक्षः (अस्ति) ।

प्रसंग—अन्य गृहाभिज्ञानों का वर्णन करता हुआ यक्ष प्रस्तुत पद्य में इसके घर की बावड़ी का वर्णन करता है।

“वापी चास्मिन् मरकतशिलावद्धसोपानमार्गा,

हेमैश्छन्ना विकचकमलैः स्निग्धवैदूर्यनालैः ।

यस्यास्तोये कृतवसतयो मानसं सन्निकृष्टं

नाध्यास्यन्ति व्यपगतशुचस्त्वामिप प्रेक्ष्य हंसाः” ॥१६॥

अन्वय—अस्मिन् मरकतशिलावद्धसोपानमार्गा स्निग्धवैदूर्यनालैः हेमैः विकचकमलैः छन्ना वापी च, (अस्ति) यस्याः तोये कृतवसतयः व्यपगतशुचः हंसाः त्वाम् प्रेक्ष्य अपि सन्निकृष्टम् मानसम् न अध्यास्यन्ति ।

शब्दार्थ—अस्मिन् = इस मेरे गृह में, मरकतशिलावद्धसोपानमार्गा = मरकत (पन्ना) मणि की शिलाओं से बने हुए सीढ़ियों के मार्ग वाली, स्निग्धवैदूर्यनालैः = चिकनी वैदूर्य (नीलम) मणि के (बने हुए) नाल दण्डों वाले, हेमैः = सुवर्णमय, विकचकमलैः = खिले हुए कमलों से, छन्ना = आच्छादित, वापी =

बावड़ी (अस्ति—है) तस्याः तोये = जिसके जल में, कृतवसतयः = निवास करने वाले, व्यपगतशुचः = शोक से रहित अर्थात् निश्चिन्त, हंसाः = हंस, त्वाम् प्रेक्ष्य अपि = तुमको (मेघ को) देखकर भी, सन्निकृष्टम् = समीपवर्ती, मानसम् = मानसरोवर को, न अध्यास्यन्ति = उत्सुकता से स्मरण करेंगे।

NOTES

अनुवाद—इस मेरे गृह में मरकतमणि की शिलाओं से बने हुए सीढ़ियों के मार्ग वाली, (तथा) चिकने बैदूर्यमणि के नाल दण्डों वाले, स्वर्णमय विकसित कमलों से आच्छादित बावड़ी (है) जिसके जल में निवास करने वाले निश्चिन्त हुए हंस तुम्हें (मेघ को) देखकर भी, समीपवर्ती मानसरोवर का भी उत्सुकतापूर्वक स्मरण नहीं करेंगे।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि मेरे घर में एक बावड़ी है जिसकी सीढ़ियाँ मरकत मणियों से बनी हुई हैं और जो बैदूर्यमणि के नालदण्डों वाले स्वर्णमय विकसित कमलों से आच्छादित रहती है। इसके जल में रहने वाले हंस वर्षा ऋतु आ जाने पर भी समीपस्थ भी मानसरोवर को जाने का विचार नहीं करते अर्थात् यह हंसों के लिए वर्षाकाल में मानसरोवर से भी बढ़कर सुखकर है।

विशेष—प्रस्तुत पद्य में वर्षा रूप कारण के विद्यमान रहने पर भी हंसों का मानसरोवर गमन रूप कार्य नहीं होता अतः 'विशेषोक्ति' अलंकार है।

संस्कृत व्याख्या—अस्मिन् अस्मदीये भवने, मरकतशिलाभिः वद्धः सोपानानां मार्गः यस्याः सा—मरकतशिलावद्धसोपानमार्गा मरकतशिलानिर्मित सोपानमार्गा स्निग्धानि वैदूर्याणि नालानि येषां तैः स्निग्ध वैदूर्यनालैः चिक्कणवैदूर्यरत्ननालदण्डैः हेमनः इमानि तैः हेमैः सुवर्णमयैः विकचकमलैः विकसितपङ्कजैः छात्रा परिवृता वापी दीर्घिका च (अस्ति) यस्याः वाप्याः तोये जले कृता वसतिर्येस्ते कृतवसतयः विहित-निवासा, व्यपगतशुचः वीत शोकाः मरालाः त्वाम् मेघम् प्रेक्ष्य समुपस्थितमवलोक्य अपि सन्नि कृष्टम्समीपवर्तिनम् मानसम् मानसरोवरम् न अध्यास्यन्ति, औत्सुक्येन न स्मरिष्यन्ति।

प्रसंग—वापी के किनारे क्रीडा पर्वत का वर्णन करता हुआ यक्ष कहता है—

“तस्यास्तीरे रचितशिखरः पेशलैरिन्द्रनीलैः-

क्रीडाशैलः कनककदलीवेष्टनप्रेक्षणीयः।

मद्गेहिन्याः प्रिय इति सखे! चेतसा कातरेण

प्रेक्ष्योपान्तस्फुरिततडितं त्वां तमेव स्मरामि” ॥ १७ ॥

अन्वय—तस्याः तीरे पेशलैः इन्द्रनीलैः रचितशिखरः कनककदलीवेष्टनप्रेक्षणीयः क्रीडाशैलः (अस्ति) सखे! उपान्तस्फुरिततडितम् त्वाम् प्रेक्ष्य, मद्गेहिन्याः प्रियः इति कातरेण चेतसा तम् एव स्मरामि।

शब्दार्थ—तस्याः = उस बावड़ी के, तीरे = किनारे पर, पेशलैः = सुन्दर, इन्द्रनीलैः = नीलम मणियों से रचितशिखरः = बने हुए शिखरों वाला, कनककदली-वेष्टनप्रेक्षणीयः = सुनहरी केलियों की बाढ़ से दर्शनीय, क्रीडाशैलः = क्रीडा पर्वत (अस्ति—है) सखे! = हे मित्र! उपान्तस्फुरिततडितम् = किनारों पर चमकती हुई बिजलियों वाले, त्वाम् = तुम (मेघ) को, प्रेक्ष्य = देखकर, मद्गेहिन्याः = मेरी पत्नी का, प्रिय इति = प्रिय है, इसलिए, कातरेण चेतसा = अधीर मन से, तम् एवस्मरामि = उसे ही स्मरण करता हूँ।

NOTES

अनुवाद—उस बावड़ी के किनारे पर सुन्दर नील मणियों से बने हुए शिखरों वाला (तथा) सुनहरी कदलियों की बाढ़ से दर्शनीय क्रीडा पर्वत है, हे मित्र ! किनारों पर चमकती हुई बिजलियों वाले तुमको देखकर यह मेरी पत्नी को प्रिय है इसलिए अधीर चित्त से उसी का स्मरण करता रहता हूँ, अर्थात् तुम्हें देखकर उस क्रीडा पर्वत की याद आ रही है।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि उस बावड़ी के किनारे पर नील मणियों से निर्मित शिखरों वाला क्रीडा पर्वत है, जिसके चारों ओर सुनहरी केलियों की बाढ़ लगी हुई है। यह क्रीडा पर्वत मेरी पत्नी को प्रिय है। जब तुम्हारे किनारों पर बिजलियाँ चमकती हैं उस समय तुम्हें देखकर मुझे उस क्रीडाशील की याद आती है और बड़ा अधीर हो उठता हूँ।

विशेष—सदृश वस्तु के दर्शन या अनुभव से अपनी प्रिय वस्तु का स्मरण होना स्वाभाविक है, यहाँ मेघ को देखकर यक्ष को अपने क्रीडा पर्वत का स्मरण हो रहा है, अतः यहाँ स्मरणालंकार है।

संस्कृत व्याख्या—तस्याः वाप्याः तीरे तटे पेशलैः सुन्दरैः इन्द्रनीलैः नीलमणिभिः रचितशिखरः निर्मितकूटः कनककदलीवेष्टनप्रेक्षणीयः सुवर्णकदली परिधिदर्शनीयः क्रीडा शैलः क्रीडापर्वतः अस्तीति शेषः। सखे हे सुहृत् ! उपान्तेषु प्रान्तभागेषु स्फुरिताः तडितः यस्य तम्—उपान्तस्फुरिततडितम् प्रान्तभागविलसितविद्युतम्—अनेन विशेषणेन कदली साम्यं दर्शितम्, इन्द्र नीलसाम्यन्तु मेघस्य स्वाभाविक मेघत्वाम् मेघम् प्रेक्ष्य निरीक्ष्य, मद्गृहिण्याः मद्गृहिण्याः प्रियः इति अस्माद्धेतोः—तस्य क्रीडाशैलस्य मद्गृहिणी प्रियत्वद्धेतोरित्यर्थः कातरेण भययुक्तेन चेतसा मनसा तम् एव क्रीडाशैलमेव स्मरामि भावयामि।

प्रसंग—उस क्रीडा पर्वत पर उगे हुए वृक्षों का वर्णन करता हुआ यक्ष कहता है।

“रक्ताशोकश्चलकिसलयः केसरश्चात्र कान्तः,

प्रत्यासन्नौ कुवरकवृतेः माधवीमण्डपस्य।

एकः सख्यास्तव सह मया वामपादाभिलाषी,

काङ्क्षन्त्यन्यो वदनमदिरां दोहदच्छद्मनांऽस्याः॥ १८ ॥

अन्वय—अत्र कुवरकवृतेः माधवीमण्डपस्य प्रत्यासन्नौ चलकिसलयः रक्ता शोकः कान्तः केसरः च (स्तः) एकः मया सह तव सख्याः वामपादाभिलाषी, अन्यः दोहदच्छद्मना अस्याः वदनमदिराम् काङ्क्षति।

शब्दार्थ—अत्र = यहाँ क्रीडाशैल पर, कुवरकवृतेः = कुवरक की बाढ़ वाले (बसन्त में रंग-बिरंगे फूलों से खिलने वाला एक वृक्ष विशेष कुवरक कहलाता है) माधवीमण्डपस्य = माधवीलता के कुञ्ज के, प्रत्यासन्नौ = समीपवर्ती, चलकिसलयः = चञ्चल किसलयों वाला; रक्ताशोकः = लाल वर्ण का अशोक वृक्ष, कान्तः = सुन्दर, केरः = वकुल या मौलसिरी का वृक्ष, (है) एकः = उनमें से एक तो, मया सह = मेरे साथ, तव सख्या = तुम्हारी सखी भ्रातृ जाया के, वामपादाभिलाषी = बायें पैर के (प्रहार का) इच्छुक, अन्यः = और दूसरा, दोहदच्छद्मना = (वृक्ष के फूलने का कारण)—दोहद के बहाने से, अस्याः = इस तुम्हारी भ्रातृजाया की, वदनमदिराम् = मुख की मदिरा को अर्थात् पान की गई मदिरा के गण्डूष या कुल्ला को, काङ्क्षति = चाहता है।

अनुवाद—यहाँ क्रीडाशैल पर कुवरक की बाढ़ वाले माधवीलता के कुञ्ज के समीपवर्ती चञ्चल किसलयों वाला लाल वर्ण का अशोक वृक्ष और सुन्दर वकुल वृक्ष हैं, इनमें से एक अर्थात् रक्ताशोक तो मेरे साथ

तुम्हारी भ्रातृजाया के बायें पैर (के आघात का) इच्छुक है तथा दूसरा अर्थात् वकुल वृक्ष के दोहद के बहाने से इस भ्रातृजाया के मुख की मदिरा (के गण्डूष) को चाहता है।

मेघदूतम् (उत्तरमेघः)

NOTES

भावार्थ—यक्ष कहता है कि इस क्रीडाशैल पर पर कुरवक की बाढ़ से घिरे हुए माधवी कुञ्ज के समीप ही रक्ताशोक और केसर वृक्ष खड़े हैं, रक्ताशोक तो अपने दोहद की पूर्ति के लिए मेरी पत्नी के वामपाद प्रहार की इच्छा करता है और केसर वृक्ष अपने दोहद के लिए प्रिया के मुख गण्डूष मद्य का अभिलाषी है।

संस्कृत व्याख्या—अत्र क्रीडाशैले कुवरका एव वृत्तिः यस्य तस्य कुवरकवृत्तेः कुरवकावरणस्य मधौ भवा माधव्यस्तासां मण्डपः तस्य माधवीमण्डपस्य वासन्तिकातिमुक्तलतागृहस्य (अतिमूक्तः पुण्ड्रकः स्याद् वासन्ती माधवीलता) प्रत्यासन्न सन्निकृष्टौ, चलानि किसलयानि यस्य सः चलकिसलयः चञ्चलपल्लवः (विशेषणेनानेन रक्ताशोकस्य पादताडनेषु प्राञ्जलित्वं ध्वन्यते) रक्तश्चासौ अशोकः रक्ताशोकः रक्तवर्णाशोक वृक्षः (स्मरोद्वीपकत्वात्रातोकस्य रक्तविशेषणम्) कान्तः कमनीयः केसरः वकुलवृक्षश्च स्तः इति शेषः। एकः तयोरन्यतरः प्राथमिकत्वात् अशोक इत्यर्थं मया यक्षेण सह सार्धम् तव मेघस्य सख्याः भ्रातृजायाः मत्प्रियायाः इत्यर्थः (दोहदच्छादना) वामश्चासौ पादः तमभिलपतीति वामपादाभिलाषी दोहदरूपेण वामचरणताडनेच्छुकः अन्यः इतरः वकुल वृक्ष इत्यर्थः, दोहदस्य छद्म तेन दोहदव्याजेन (कपटोऽस्त्री व्याजदम्भोपधयच्छद्मकैतवे) अस्यः तब सख्याः (मया सह) वदनमदिराम् गण्डूषमद्यम् काङ्क्षति अभिलषति।

प्रसंग—वृक्षों के बीच पक्षियों के बैठने के लिए बनायी गयी छतरी का वर्णन करता हुआ यक्ष कहता है—

“तन्मध्ये च स्फटिकफलका काञ्चनी वासयष्टि—

मूले बद्धा मणिभि-रनतिप्रौढवंशप्रकाशैः।

तालैः शिञ्जावलयसुभगैर्नर्तितः कान्तया मे

यामध्यास्ते दिवसविगमे नीलकण्ठः सुहृद्वः”॥१९॥

अन्वय—तन्मध्ये च अनतिप्रौढवंशप्रकाशैः मणिभिः मूले वृद्धा स्फटिकफलका वासयष्टिः (अस्ति) याम् मे कान्तया शिञ्जावलयसुभगैः -तालैः नर्तितः वः सुहृत् नीलकण्ठः दिवसविगमे अध्यास्ते।

शब्दार्थ—तन्मध्ये च = और उन वृक्षों के बीच में, अनतिप्रौढवंशप्रकाशैः = अनति कठोर अर्थात् कोमल नये बाँसों के समान चमकीली, मणिभिः = मणियों द्वारा मूले वृद्धा = जड़ में बँधी गयी, स्फटिकफलका = स्फटिक मणियों के फलक (तख्ता या पट्टा वाली, काञ्चनी = सुवर्णमयी, वासयष्टिः = निवास करने की छतरी या दण्ड, (अस्ति—है,) याम् = जिस पर, मे कान्तया = मेरी पत्नी द्वारा शिञ्जावलयसुभगैः = झनझन ध्वनि करने वाले कंगनों से रमणीय, तालैः = तालियों से, नर्तितः = नचाया गया, वः सुहृत् = आपका मित्र, नीलकण्ठः = नीलकण्ठ नामक नीले गल वाला पक्षी अर्थात् मयूर, दिवसविगमे = दिन बीतने पर अर्थात् सायंकाल, अध्यास्ते = बैठता है।

अनुवाद—और उन वृक्षों के बीच में कोमल नये बाँसों के समान चमकीली नील मणियों से मूल में बँधी हुई (और) स्फटिक मणियों के तख्ते वाली वासयष्टि (निवास दण्ड अर्थात् छतरी) है जिस पर मेरी पत्नी द्वारा झनझन ध्वनि वाले कंगनों से रमणीय तालों द्वारा नचाया गया आपका मित्र मयूर सायंकाल बैठता है।

NOTES

भावार्थ—यक्ष कहता है कि इन अशोक और केसर वृक्षों के बीच एक पक्षियों के बैठने के लिए वासयष्टि बनी हुई, जो कि हरे नये बाँसों से बनी है और जिसके दण्ड की जड़ को नीलमणियों से स्थिर किया गया है तथा जिसे स्फटिक के तख्ते पर खड़ा किया गया है मेरी पत्नी अपनी तालों से एक मयूर को नचाती है और जब मयूर नाच कर थक जाता है तब सायं इसी पर बैठ जाता है।

विशेष—इस पद्य में 'अनतिप्रौढवंश प्रकाशैः' पद में उपमालंकार है।

संस्कृत-व्याख्या—तन्मध्ये च—एवं तयोः पूर्वोक्तयोः अशोककेसरवृक्षयोर्मध्यभागे अनतिप्रौढवंशानाम् प्रकाश एव प्रकाशो येषां तैः अनतिप्रौढवंशप्रकाशैः तरुणहरितवेणुकान्तिभिः मणिभिः मरकतशिलाभिः मूले वद्धा स्थिरीकृता वद्धमूला कृतवेदिकेत्यर्थः स्फटिकं फलकं यस्या सा स्फटिक फलका स्फटिकमय पीठा काञ्चनस्य विकारः काञ्चनी सौवर्णी वासयष्टिः निवासदण्डः अस्तीति शेषः। याम् वासयष्टिम् मे मम कान्तया पत्न्या शिञ्जाप्राधानानि बलय नि तैः सुभगाः तैः शिञ्जावलयसुभगैः भूषणध्वनि-युक्तकङ्कण-रमणीयैः (शिञ्जाभूषणध्वनि-भूषणानान्तु शिञ्जितम् इत्यमरः) तालैः करतलवादनैः मर्तित कारितनृत्यः वः युष्माकम् (अदरार्थ बहुवचन) सुहृत् सखा नीलकण्ठः मयूरः (मयूरो वर्हिणो वर्ही नीलकण्ठो भजङ्गभुक् इत्यमरः) दिवसविगमे सायंकाले अध्यास्ते अधितिष्ठति।

प्रसंग—यक्ष कहता है कि मेघ। तुम इन्हीं मेरे बताये हुए चिन्हों से मेरे घर को पहचान लेना—

‘एभिः साधो हृदयनिहितैर्लक्षणैर्लक्षयेथा

द्वारोपान्ते लिखितवपुषौ शङ्खपद्मौ च दृष्ट्वा ।

क्षामच्छायं भवनमधुना मद्वियोगेन नूनम्,

सूर्यापाये न खलु कमलं पुष्यति स्वामभिख्याम्’ ॥ २० ॥

अन्वय—साधो ! हृदयनिहितैः एभिः लक्षणैः द्वारोपान्ते लिखितवपुषौ शङ्ख पद्मौ च दृष्ट्वा अधुना मद्वियोगेन नूनम् क्षामच्छायम् भवनम् लक्षयेयाः सूर्यापाये कमलम् स्वाम् अभिख्याम् न पुष्यति खलु।

शब्दार्थ—साधौ = हे निपुण ! हृदयनिहितैः = ध्यान में रखे गये अर्थात् बार-बार स्मृति में आने वाले, एभिः = इन पूर्वोक्त, लक्षणैः = चिन्हों से, च = और, द्वारोपान्ते = द्वार के पास (बगलों में) लिखितवपुषौ = चित्रित आकृति वाले, शङ्खपद्मौ = शङ्ख एवं पद्म नामक निधियों को, दृष्ट्वा = देखकर के, अधुना = इस समय, मद्वियोगेन = मेरे वियोग से, नूनम् = निश्चय ही, क्षामच्छायम् = क्षीण कान्ति वाले, भवनम् = (मेरे) घर को, लक्षयेथाः = पहचान लेना, सूर्यापाये = सूर्य के अस्त होने पर, कमलम् = कमलः स्वाम् अभिख्याम् = अपनी शोभा को, न पुष्यति खलु, निश्चय ही नहीं बनाये रख सकता है।

अनुवाद—हे निपुण मेघ ! कभी विस्मृत न होने वाले इन (मेरे द्वारा पहले बताये गये) चिन्हों से और द्वार के पास (बगलों में) चित्रित आकृति वाले शङ्ख और पद्म नामक विधियों को देख करके, इस समय मेरे वियोग से निश्चय ही क्षीण कान्ति वाले (मेरे) घर को पहचान लेना। सूर्य के अस्त होने पर कमल अपनी शोभा को निश्चय ही नहीं बनाये रख सकता।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि हे भद्र मेघ ! अब तुम मेरे द्वारा बतलाये गये तोरण, वापी, रक्ताशोक, वासयष्टि आदि चिन्हों से मेरे घर को पहचान लो, मेरे घर के द्वार पर बगलों में शंख और पद्म नामक निधियाँ

चित्रित हैं। किन्तु अब वह मेरा घर मेरे प्रवास के कारण क्षीणकान्ति वाला हो रहा होगा क्योंकि जैसे सूर्यास्त होने पर कमल अपनी शोभा को नहीं रख सकता है उसी प्रकार मुझसे हीन वह मेरा घर भी शोभा रहित हो गया होगा।

मेघदूतम् (उत्तरमेघः)

नौ निधियाँ मानी गयी हैं, इनमें से यहाँ शंख और पद्म नामक दो निधियों का उल्लेख है।

NOTES

विशेष—प्रस्तुत पद्य की तृतीय पंक्ति में वर्णित तथ्य और चतुर्थ पंक्ति में वर्णित तथ्य में परस्पर बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव होने से यहाँ दृष्टान्त अलंकार है।

संस्कृत व्याख्या—साधो हे निपुण! (साधुः समर्थो निपुणो वा) हृदयनिहितैः मनः स्थितैः अविस्मृतैरित्यर्थः एभिः पूर्वोक्तैः लक्षणैः तोरणादिचिन्हैः द्वारोपान्ते द्वार-पार्श्वयोः (एकवचनमत्राविवक्षितम्) लिखितवपुषौ चित्रताकृते शङ्खपद्मौ एतन्नामकौ निधि विशेषौ (निधर्ना शेवधि भेदाः शङ्ख पद्मादयो निधेः इत्यमरः) च दृष्ट्वा अवलोक्य, अधुना इदानीम् नूनम्-निश्चयतः मद्द्वियोगेन मम प्रवासेन क्षामा छाया यस्य तत् क्षामाच्छायम् क्षीणशोभम् (मम) भवनम् गृहम् लक्ष्येथाः निश्चिनुयाः, सूर्यापाये सूर्यविरहै सति कमलम् सरोजम् स्वाम् आत्मीयाम् अभिख्याम् शोभाम् (अभिख्या नामशोभयोः इत्यमरः, (न पुष्यति न उपचिनोति खलु। सूर्यविरहतं कमलमिव पतविरहितं गृहं न शोभत इति भावः)।

प्रसंग—यक्ष कहता है कि तुम मेरे घर पर पहुँचकर क्रीडाशैल पर स्थित होकर अपनी बिजली की चमक रूपी दृष्टि को मेरे घर पर डालना—

“गत्वा सद्यः कलभतनुतां शीघ्रसंपातहेतोः,

क्रीडाशैले प्रथमकथिते रम्यसानौ निषण्णः।

अर्हस्यन्तर्मवनपतितां कर्तुं मल्पाल्प भास,

खद्योतालीविलसितनिभां विद्युदुन्मेषदृष्टिम्” ॥ २१॥

अन्वय—शीघ्रसंपातहेतोः सद्यः कलभतनुताम् गत्वा प्रथमकथिते रम्यसानौ क्रीडाशैले निषण्णः (त्वम्) अल्पाल्पभासम् खद्योतालीविलसितनिभाम् विद्युदुन्मेषदृष्टिम् अन्तर्भवनपतिताम् कर्तुम् अर्हसि।

शब्दार्थ—शीघ्रसंपातहेतो = (मेरे घर में) शीघ्र ही प्रवेश करने के लिए, सद्यः = शीघ्र ही, कलभतनुताम् गत्वा = हाथी के बच्चे के समान लघु आकार को प्राप्त करके, प्रथमकथिते = पहले बतलाये गये, रम्यसानौ = सुन्दर शिखरों वाले, क्रीडाशैले = क्रीड़ा पर्वत पर, निषण्णः = बैठे हुए (तुम), अल्पाल्पभासम्—थोड़ी से थोड़ी चमक वाली, खद्योतालीविलसितनिभाम् = जुगनुओं की पंक्ति की चमक के समान, विद्युदुन्मेषदृष्टिम् = बिजली की चमक रूपी दृष्टि की, अन्तर्भवनपतिताम् = घर के भीतर पड़ने वाली, कर्तुम् अर्हसि = करने योग्य हो।

अनुवाद—(मेरे घर में) शीघ्र प्रविष्ट होने के लिए तुरन्त ही हाथी के बच्चे के समान लघु आकार की प्राप्ति करके, पूर्वकथित, रमणीयक शिखरों वाले क्रीडा पर्वत पर बैठकर, (तुम्हें) थोड़ी से थोड़ी चमक वाली, जुगनुओं की पंक्ति की चमक के समान बिजली की चमक रूपी (अपनी) दृष्टि को घर के भीतर डालना उचित है, अर्थात् तुम्हें मेरे घर के भीतर अपनी बिजली का हल्का सा प्रकाश डालना चाहिए।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि मेरे घर पर पहुँचकर उसमें शीघ्र प्रविष्ट होने के लिए तुम तुरन्त अपने शरीर को हाथी के बच्चे के समान छोटा बना लेना और उस पूर्वोक्त क्रीडा शैल पर बैठ जाना और फिर वहीं से

मन्द-मन्द चमकती हुई अपनी बिजली का प्रकाश मेरे घर पर डालना, इस प्रकार तुम अपनी अल्पाल्प बिजली की चमक रूपी दृष्टि से मेरे सम्पूर्ण घर को देख सकोगे।

NOTES

विशेष—प्रस्तुत पद्य के कलभतनुताम् और खद्योतालीविलसितनिभाम् पदों में उपमालंकार है तथा 'विद्युदुन्मेषदृष्टिम्' में रूपक अलंकार है, इन दोनों में परस्पर अङ्गाङ्गि भाव होने से यहाँ संकर है।

संस्कृत व्याख्या—शीघ्रसंपातहेतोः शीघ्रप्रवेशार्थं मित्यर्थः (सम्पतः पतानं वेगे प्रवेशवेदसविदे) सद्यः झटित्येव कलभस्य तनुरिव तनुः यस्य स कलभतनुः तस्य भावस्ताम् कलभतनुताम् करिपोतशररीताम् गत्वा प्राप्य प्रथमकथिते पूर्वोक्ते रम्यसानौ रमणीयशिखरे निषीदनयोग्य इत्यर्थः क्रीडाशैले क्रीडा पर्वते निषण्णः सन्, अल्पप्रकाराः भाः यस्यास्ताम् अल्पाल्पभासम् अल्पाल्पप्रकाशाम् खद्योतानामाली तस्याः विलसितेन निभाम् खद्योताली विलसितनिभाम् खद्योतपङ्क्तिस्फरणसमानाम् विद्युत उन्मेष एव दृष्टिस्ताम् विद्युदुन्मेषदृष्टिम् तडित्प्रकाशदृष्टिम् भवनस्यान्तः अन्त-र्भवनम् तत्र पतिता ताम् अन्तर्भवन पतितान् कर्तुम् विधातुम् अर्हसि योग्योऽसि।

प्रसंग—मेघ की पहचान के लिए, अपनी पत्नी का वर्णन करता हुआ यक्ष कहता है—

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वविम्बाधरोष्ठी,

मध्येक्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः।

श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां,

या तत्र स्याद् युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः॥ २२ ॥

अन्वय—तत्र तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वविम्बाधरोष्ठी मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः श्रोणीभारात् अलसगमना स्तनाभ्याम् स्तोकनम्रा युवतिविषये धातुः आद्या सृष्टि इव या स्यात्। (ताम् मे द्वितीय जीवितम् जानीथाः—इस अग्रिम श्लोक से सम्बन्ध है)।

शब्दार्थ—तत्र = वहाँ मेरे घर के भीतर, तन्वी = पतले शरीर वाली, श्यामा युवती (श्याम शब्द के कई अर्थ हो सकते हैं; जैसे—अप्रसूती स्त्री, षोडश वर्षीया, श्यामवर्णा तथा मधुरभाषिणी अतः प्रकरणानुसार यहाँ श्यामा का अर्थ—गोरे छरहरे बदन की युवती स्त्री है। क्योंकि सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार अतिदीर्घ अतिह्रस्व, अतिस्थूला, अतिकृश, अतिगौर एवं अतिकृष्ण वदन की स्त्री वर्जित है, शिखरिदशना = नुकीले स्वच्छ दाँतों वाली (शिखर नाम की एक अनार के दानों के समान मणि भी होती है), पक्वविम्बाधरोष्ठी = पके विम्बाफल के समान नीचे के ओष्ठ वाली, मध्ये क्षामा = कटिप्रदेश में क्षीण पतली, चकितहरिणीप्रेक्षणा = चकित त्रस्त या भयभीत हरिणी के समान नेत्र अथवा दृष्टि वाली, निम्ननाभिः = गहरी नाभि वाली, श्रोणीभारात् = नितम्बों के भार के कारण, अलसगमना = मन्दगति वाली, स्तनाभ्याम् स्तोकनम्रा = स्तनों के कारण कुछ-कुछ झुकी हुई, युवतिविषये = युवतियों के क्षेत्र में, धातुः आद्या सृष्टिः इव = ब्रह्मा की प्रथम रचना मानो, यास्यात् = जो हो।

अनुवाद—वहाँ (मेरे घर के भीतर) पतली, छरहरे गोरे बदन वाली युवती नुकीले स्वच्छ दाँतों वाली, पके हुए विम्बाफल के समान अधरोष्ठ वाली, कटिप्रदेश में पतली, चकित हरिणी के समान चितवन वाली, गहरी नाभि वाली, नितम्बों के भार से मन्द चाल चलने वाली, स्तनों के कारण कुछ-कुछ झुकी हुई, स्त्रियों के क्षेत्र में विधाता की मानो प्रथम रचना के समान जो (स्त्री वहाँ) हो (उसे ही तुम) मेरा दूसरा प्राण या जीवन अर्थात् मेरी प्रिया समझना—यह अग्रिम श्लोक से सम्बन्ध रखता है)।

विशेष—प्रस्तुत पद्य के 'पक्वविम्वाधरोष्ठी तथा चकितहरिणीप्रेक्षणा' पदों में उपमा एवं 'सृष्टिराद्येव धातु' में उत्प्रेक्षा अलंकार हैं, दोनों के परस्पर निरपेक्ष होने से यहाँ 'संसृष्टि' है।

मेघदूतम् (उत्तरमेघः)

NOTES

संस्कृत व्याख्या—तत्र मम गृहस्यान्तः तन्वी कृशाङ्गी श्यामा युवतिः शिखरिदशना कोटिमत्स्वच्छदन्ता पक्वविम्वाधरोष्ठी परिणतविम्बिकाफलाधरा, मध्ये कटिप्रदेश क्षामा कृशा कृशोदरीत्यर्थः चकितहरिणीप्रेक्षणा त्रस्तमुग्धमृगीविलोचना निम्ननाभिः गम्भीरनाभिः श्रोणीभारात् नितम्बस्थलभारात् अलसगमना मन्दगामिनी स्तनाभ्याम् उरोजाभ्याम् स्तोकनम्रा ईषदवनता युवतिविषये युवतिक्षेत्रे धातुः विधातुः आद्या प्रथमां सृष्टिः कृतिः इव (स्थिता) या (स्त्री) स्यात् भवेत् (तां मे द्वितीयं जीवितं जानीथाः इत्युत्तरेण श्लोकेन सम्बन्धः)।

प्रसंग—अपनी वियोगिनी प्रिया का वर्णन करता हुआ यक्ष कहता है—

तां जानीथाः परिमितकथां जीवितं मे द्वितीयं

दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिवैकाम्।

गाढोत्कण्ठां गुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु बालां

जातां मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनीं वान्यरूपाम्' ॥२३॥

अन्वय—मयि सहचरे दूरीभूते चक्रवाकीम् इव परिमितकथाम् एकाम् ताम् मे द्वितीयं जीवितम् जानीथाः गुरुषु एषु दिवसेषु गच्छत्सु गाढोत्कण्ठाम् बालाम् शिशिरमथिताम्—पाल से पीड़ित पद्मिनीम् वा अन्यरूपाम् जाताम् मन्ये।

शब्दार्थ—मयि सहचरे = मुझ साथी के, दूरीभूते = दूर हो जाने पर अर्थात् वियुक्त हो जाने पर, चक्रवाकीम् इव = चकवी के समान, परिमितकथाम् = अल्पभाषिणी, एकाम् = अकेली, ताम् = इस पूर्ववर्णित मेरी पत्नी को, (तुम) मे द्वितीय जीवितम् = मेरा दूसरा जीवन—(प्राण) जानीथाः = समझना, (मैं) गुरुषु एषु दिवसेषु गच्छत्सु = (विरह के कारण) लम्बे और दुःखद इन दिनों के बीतने पर, गाढोत्कण्ठाम् = प्रबल विरह वेदना वश मिलनोत्कण्ठा वाली, बालाम् = युवती को, शिशिरमथिताम् = जाड़े अर्थात् पाले से पीड़ित मारी या मुरझायी हुई, पद्मिनीम् वा = कमलिनी के समान, अन्यरूपाम् जाताम् = अन्य रूप वाली हुई अर्थात् पहले से विपरीत आकृति वाली हुई, मन्ये = मानता हूँ।

अनुवाद—मुझ (यक्षः साथी के वियुक्त हो जाने पर चकवी के समान अल्पभाषिणी अकेली इस मेरी पत्नी को (तुम) मेरा दूसरा प्राण ही समझना। (मैं) (विरह वश) लम्बे एवं दुःखद इन दिनों के बीतने पर प्रबल विरह वेदना वाली (उस) युवती को पाले से मारे गयी कमलिनी के समान विपरीत आकार वाली हुई मानता हूँ। (वा-अव्यय का प्रयोग यहाँ 'इव' के अर्थ में हुआ है)।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि इस समय, मेरे दूर चले जाने पर विरह से पीड़ित वह मेरी पत्नी अकेली रहती होगी और कम बोलती होगी, तुम उसे मेरा दूसरा प्राण ही समझना, इस समय वह चकवी के समान विरह सन्तप्त एवं पाले से मारी गयी कमलिनी के समान कुछ परिवर्तित आकृति वाली सी ही गयी होगी।

विशेष—प्रस्तुत श्लोक की प्रथम पंक्ति—तां जानीथाः परिमितकथां जीवितं मे द्वितीयम् में अतिशयोक्ति अलंकार है, तथा 'चक्रवाकीम् इव एवं 'पद्मिनी वान्यरूपाम्' में उपमालंकार है, दोनों की स्वतन्त्र स्थिति होने से यहाँ 'संसृष्टि' है।

NOTES

नूनं तस्या प्रबलरुदितोच्छूननेत्रं प्रियाया

निःश्वासानामशिशिरतया भिन्नवर्णाधरोष्ठम्।

हस्तन्यस्तं मुखं मसकलव्यक्तिं लम्बालकत्वात्—

दिन्दो दैन्यं त्वदनुसरणक्लिष्टकान्ते बिभर्ति॥२४॥

अन्वय—प्रबलरुदितोच्छूननेत्रम् निःश्वासानाम् अशिशिरतया भिन्नावर्णा-धरोष्ठम् हस्तन्यस्तम् लम्बालकत्वात् असकलव्यक्ति तस्याः प्रियायाः मुखम् नूनम् त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेः इन्दोः दैन्यम् बिभर्ति।

शब्दार्थ—प्रबलरुदितोच्छूननेत्रम् = अत्यधिक रोने के कारण सूजी हुई आँखों वाला, निःश्वासानाम् = लम्बी-लम्बी श्वासों की, अशिशिरतया = गर्मी के कारण, भिन्नवर्णाधरोष्ठम् = फीके रंग के अधरोष्ठ वाला, हस्तन्यस्तम् = हाथ पर रखा हुआ, लम्बालकत्वात् = लम्बी लटकती अलकों के कारण, असकलव्यक्ति = पूर्ण रूप से दिखाई न देने वाला, तस्या प्रियायाः = उस वियोगिनी प्रिया का, मुखम् = मुख, नूनम् = निश्चय ही, त्वदनुसरण-क्लिष्टकान्तेः = तुम्हारे अर्थात् मेघ के अनुसरण अर्थात् आच्छादन या आवरण के कारणों क्षीण प्रकाश वाले, इन्दोः = चन्द्रमा के, दैन्यम् = मलिनता फीका-पन या मन्द प्रकार की, बिभर्ति = धारण करता है।

अनुवाद—अत्यधिक रुदन के कारण सूजी हुई आँखों वाला, लम्बी-लम्बी श्वासों की गर्मी के कारण कान्तिहीन अधरोष्ठ वाला, हाथ पर रखा हुआ (तथा) लम्बी लटकती अलकों के कारण पूर्ण रूप से न दिखाई पड़ने वाला उस (मेरी वियोगिनी) प्रिय का मुख निश्चय ही, तुम्हारे आच्छादन के कारण कान्तिहीन चन्द्रमा की मलिनता या दुःखावस्था को धारण करता है।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि इस समय विरहवश अत्यधिक रोने के कारण मेरी प्रिय के नेत्र सूज गये होंगे, लम्बी-लम्बी सांसों की गर्मी के कारण उसके अधरोष्ठ का रंग फीका पड़ गया होगा, वह अपने मुख को उदासीनतावश अपनी हथेली पर रखे होगी, केश संस्कार न करने के कारण उसकी अलकें उसके मुख को ढक रही होंगी जिससे उसका मुख पूर्णरूप से दिखाई न पड़ रहा होगा, इस प्रकार इस समय उसका मुख वैसा ही कान्तिहीन ज्ञात होता होगा जैसा कि तुम्हारे आवरण के कारण क्षीणकान्ति वाला चन्द्रमा का प्रकाश होता है।

संस्कृत व्याख्या—प्रबलेन रुदितेन उच्छूने नेत्रे यस्य तत् प्रबलरुदितोच्छूननेत्रम् अत्यधिक रुदनोच्छ्वसितनयनम् विशेषणनानेनात्र विषादो व्यज्यते, निःश्वासानाम् मुखवायूनाम् अशिशिरतया उष्णतया भिन्नवर्णो अधरोष्ठो यस्य तत् भिन्नवर्णा धरोष्ठम् हस्तन्यस्तम् करनिहितम् एतेन चिन्ता ध्वन्यते, लम्बालकत्वात् केशसंस्काराभावाल्लम्बमानकुन्तलत्वात् असकलव्यक्ति असम्पूर्णदर्शनम् तस्याः वियोगिन्याः प्रियायाः मत्प्रेयस्याः मुखम् आननम् नूनम् निश्चयतः त्वदनुसरणेन क्लिष्टा कान्ति रस्य तस्य त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेः त्वदुपरोषक्षीणकान्तेः इन्दोः चन्द्रस्यः दैन्यम् कान्तिहीनत्वम् बिभर्ति धारयति।

प्रसंग—विरहावस्था का ही वर्णन करता हुआ यक्ष कहता है—

आलोके ते निपतति पुरा वलिव्याकुला वा,

मत्सादृश्यं विरहतनु वा भावगम्यं लिखन्ती।

NOTES

अन्वय—बलिव्याकुल वा, विरहतनु भावगम्यम् मत्सादृश्यम् लिखन्ती वा मधुरवचनाम् रसिके ! भर्तुः स्मरसि कच्चित्, हि त्वम् तस्य प्रिया' इति पृच्छन्ति वा साते आलोके पुरा निपतति ।

शब्दार्थ—बलिव्याकुला = देव पूजा में व्यस्त, वा = अथवा, विरहतनु = वियोग से कृश, भावगम्यम् = विचारमात्र से अनुमान योग्य, मत्सादृश्यम् = मेरे चित्र को, लिखन्ती = बनाती हुई, वा = अथवा मधुरवचनाम् = मधुर बोलने वाली, पञ्जरस्थाम् = पिंजड़े में बन्द, सारिकाम् = मैना से, रसिके = हे रसीली अर्थात् सरस ध्वनि वाली मैना, भर्तुः = (अपने) स्वामी का, स्मरसि = स्मरण करती हो, कच्चित् = क्या कभी, हि = क्योंकि, त्वम् = सारिका, तस्य, उस मेरे पति की, प्रिया = प्यारी (थी) इति = यह, पृच्छन्ती = पूजती हुई, सा = वह मेरी प्रिया, ते = तुम्हारी, आलोके = दृष्टि में पुरा = शीघ्र ही, निपतति = पड़ेगी ।

अनुवाद—देवाराधन में लगी हुई, अथवा वियोग से कृश, (और) विचार मात्र से अनुमान योग्य मेरे चित्र को बनाती हुई अथवा मधुर बोलने वाली, पिंजड़े से बन्द सारिका से, हे रसिके ! क्या कभी तुम अपने स्वामी का स्मरण करती हो क्योंकि तुम उनकी प्रिया थीं यह कह कर पूछती हुई, मेरी प्रिया तुम्हारी दृष्टि में शीघ्र ही पड़ेगी ।

भावार्थ—यक्ष मेघ से कहता है कि जब तुम मेरी प्रिया को देखोगे तब या तो वह देवाराधन में लगी हुई होगी अथवा मेरे चित्र को जो कि विरह के कारण कृश हो जाने से केवल विचार मात्र से अनुमान करने योग्य ही होगा, बना कर अपना मन बहला रही होगी अथवा सारिका से यह पूछ रही होगी कि क्या तुम अपने स्वामी का कभी स्मरण करती हो ? क्योंकि तुम जो उन्हें बड़ी प्रिय थीं । (वियोगिनी स्त्रियाँ प्रायः ऐसे ही कार्यों द्वारा वियोग के दिन बिताती हैं) ।

संस्कृत व्याख्या—बलिषु व्याकुल बलिव्याकुला देवाराधनव्यापृता वा अथवा विरहतनु वियोगकृशम् भावगम्यम् सम्भावनयोत्प्रेक्ष्यम् मत्सादृश्यम् मदाका रसाम्यम् मदाकारचित्रमित्यर्थः (आलेख्येऽपि च सादृश्यम्) लिखन्ती फलकादौ विन्यस्यन्ती (चित्रालेखनस्य विरहिणीनां विनोदोपायत्वात्) वा अथवा मधुरवचनाम् मञ्जुभाषिणीम् (अतएव) पञ्जरगताम् सारिकाम् एतन्नीम्नीस्त्रीपक्षि विशेषाम् “हे रसिके सरसे भर्तुः स्वामिन स्मरसि स्मरणं करोषि कच्चित् किम् हि यस्मात् त्वम् तस्य स्वामिनः प्रिया वल्लभः इति इत्थम् पृच्छन्ती प्रश्नं कुर्वन्ति वस मत्प्रिया ते तव मेघस्य आलोके दृष्टिपथे पुरा त्वरितम् निपतति निपतिष्यती व्यर्थः ।

प्रसंग—यक्षिणी की विरहदशा का वर्णन करता हुआ यक्ष कहता है—

उत्सङ्गे वा मलिनवसने सौम्य निक्षिप्य वीणां,
मद्गोत्राङ्गं विरचितपदं गेयमुद्गातुकामा ।
तन्त्री मार्या नयनसलिलैः सारयित्वा कथञ्चिद्
भूयो भूयः स्वयमपि कृतां मूर्च्छनानां विस्मरन्ती ।।२६।।

अन्वय—सौम्य ! मलिनवसने उत्सङ्गे वीणाम् निक्षिप्य मद्गोत्राङ्गम् विरचितपदम् गेयम् उद्गातुकामा नयनसलिलैः आर्द्राम् तन्त्रीम् कथञ्चित् सारयित्वा स्वयं कृताम् अपि मूर्च्छनाम् भूयो भूयः विस्मरन्ती वा (सा ते आलोके पुरा निपतति इति पूर्वोक्तान्वयः) ।

NOTES

शब्दार्थ—सौम्य = भद्र, मलिनवसने = मलिन वस्त्र वाले, उत्संगे = अंक या गोद में, वीणाम् = तन्त्री को, निक्षिप्य = रखकर, मद्गोत्राङ्गम् = मेरे नाम से युक्त, विरचिपदम् = रचित दोनों पदों वाले, गेयम् = गाने योग्य गीत को, उद्गातुकामा = गाने की इच्छुका, नयनसलिलैः = नेत्र जलों अर्थात् आँसुओं से, आद्राम् तन्त्रीम् = भीगी हुई वीणा को, कथञ्चित् = जैसे तैसे किसी प्रकार, सारयित्वा = पोंछकर, स्वयम् = अपने आप, कृताम् = बनाई हुई, अपि = भी, विस्मरन्ती = भूलती हुई (वह तुम्हारे दृष्टिपथ में आयेगी)।

अनुवाद—हे भद्र मेघ! अथवा (वह मेरी प्रिया) मलिन वस्त्र वाली (अपनी) गोद में वीणा को रखकर, मेरे नाम से युक्त, रचित पदों वाले गाने योग्य गीत को गाने की इच्छुक (होकर) आँसुओं से गीली वीणा को किसी भी प्रकार पोंछकर अपने द्वारा बनाये गये भी स्वरों के उतार-चढ़ाव के क्रम को बार-बार भूलती हुई (तुम्हारे दृष्टि पथ से पड़ेगी)।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि अथवा तुम उस मेरी प्रिया को, विरहवश मलिन वस्त्र वाली अपनी गोद में वीणा को रखकर मेरे नाम से युक्त रचित पदों वाले गीत को गाने की इच्छा करती हुई देखोगे और जब विरहवश उसके आँसुओं से उसकी वीणा भीग जाती होगी तब वह किसी प्रकार उसे पोंछकर फिर स्वरों के उतार-चढ़ाव के क्रम को सन्धान को भूल जाती होगी।

संस्कृत व्याख्या—सौम्य हे साधो मलिनवसन मलिनवस्त्रे ('प्रोषिते मलिना कृशा' इत्युक्तेः) उत्सङ्गे क्रोडे वीणाम् तन्त्रीम् निक्षिप्य स्थापयित्वा मम गोत्रं मद्गोत्रम् तदेव अङ्कः चिह्नं यस्मिन् तत् मद्गोत्राङ्गम् मन्त्रमाङ्गम् यथा स्तयत्तथा (गोत्रं नाम्नि कुलेऽपि च इत्यमरः) विरचितपदम् निर्मितपदम् गेयम् गातुं योग्यं गीतम् उद्गातुं कामा उच्चैर्गातुमिच्छन्ती, नयनसलिलैः नेत्रजलैः प्रियतमस्मृतिजनितैरश्रुभिरित्यर्थः आद्राम् क्लिन्नाम् तन्त्रीम् वीणाम् कथञ्चित् कृच्छ्रेण सारयित्वा करेण प्रमृज्य वादनयोग्यां विधाय स्वयम् आत्मना कृताम् आविष्कृताम् अपि मूर्च्छनाम् स्वरारोहावरोहक्रमम् भूमोभूयः पुनः पुनः विस्मरन्ती कुर्वन्ती (सा ते आलोके पुरा निपतीत पूर्वणान्वयः)।

प्रसंग—यक्षिणी की विरह दशा का वर्णन करता हुआ यक्ष कहता है—

“शेषान्मासान् विरहदिवसस्थापितस्यावधे वा

विन्यस्यन्ती भुवि गणनया देहलीदत्तपुष्पैः।

सम्भोगं वा हृदयनिहितारम्भमास्वादयन्ती,

प्रायेणैते रमणविरहेष्वङ्गनानां विनोदाः” ॥२७॥

अन्वय—विरहदिवसस्थापितस्य अवधेः शेषान् मासान् देहलीदत्तपुष्पैः गणनया भुवि विन्यस्यन्ती वा हृदयनिहितारम्भम् सम्भोगम् आस्वादयन्ती वा (“सा ते आलोके पुरा निपतीत” पूर्वश्लोकेनान्वयः) प्रायेण अङ्गनानाम् रमणविरहेषु एते विनोदाः (भवन्ति)।

शब्दार्थ—विरहदिवसस्थापितस्य = वियोग के दिन से निश्चित की गयी, अवधः = सीमा के, शेषान् मासान् = अवशिष्ट महीनों को, देहलीदत्तपुष्पैः = देहली पर रखे हुए फूलों के द्वारा, गणनया = गणना से, भुवि = भूतल पर, विन्यस्यती = बनाती या प्रगट करती हुई अर्थात् पृथिवी पर फूलों को रख-रखकर महीनों को गिनती हुई, वा = अथवा, हृदयनिहितारम्भम् = मन में कल्पित उपक्रम या चुम्बनादि क्रिया व्यापार वाले, सम्भोगम् = सम्भोग का आस्वादन करती हुई (वह तुम्हारे दृष्टि पथ में पड़ेगी) रमणविरहेषु = प्रियतम के

वियोग के अवसरों पर, अङ्गनानाम् = स्त्रियों के, प्रायेण = प्रायः, एतेविनोदाः = ये विनोद अर्थात् मन बहलाव के उपाय (होते हैं)।

मेघदूतम् (उत्तरमेघः)

NOTES

अनुवाद—अथवा वियोग के दिन से निश्चित की गयी अवधि के अवशिष्ट महीनों को, देहली पर रखे गये फूलों के द्वारा गिनती से पृथिवी पर प्रकट करती हुई अर्थात् पृथिवी पर फूलों को गिनती से रख-रखकर शेष महीनों को गिनती हुई अथवा हृदय में कल्पित (संयोगकालीन) उपक्रम या क्रिया व्यापारों वाले सम्भोग का आस्वादन करती हुई (वह तुम्हारे दृष्टि पथ में आयेगी) प्रियतम के विरह के अवसरों पर स्त्रियों के प्रायः ऐसे ही मनोविनोद के उपाय होते हैं।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि या तो वह मेरी प्रिया, देहली पर रखे गये फूलों को भूमि पर रख-रखकर, विरह के दिन निश्चित की गयी अवधि के शेष महीनों को गिन रही होगी अथवा मेरे साथ किये गये सम्भोग को मनः कल्पित कर अनुभव कर रही होगी क्योंकि वियोग के दिनों में स्त्रियों के प्रायः ऐसे ही मनोविनोद के उपाय होते हैं।

विशेष—प्रस्तुत श्लोक में चतुर्थ पंक्ति में वर्णित तथ्य से पूर्वोक्त कथन का समर्थन किया गया है अतः यहाँ अर्थान्तरन्यासालंकार है।

संस्कृत व्याख्या—वा अथवा विरहस्य दिवसात् स्थापितस्य विरहदिवसस्थापितस्य वियोगदिनादाभ्य निश्चितस्य अवधेः अन्तस्य शेषान् गतावशिष्टाम् मासान् देहल्यां दन्तानि यानि पुष्पाणि तैः देहलीदत्तपुष्पैः गृहावग्रणीनिहितकुसुमैः (ग्रहावग्रहणी देहली इत्यमरः) गणनया संख्यानेन भुवि पृथिव्याम् विन्यस्यती एको द्वावित्यादिगणनया विन्यस्यन्ती संख्यानेन पुष्पविन्यासैः शेषान् मासान् गणयन्तीत्यर्थः हृदये निहितः आरम्भः यस्य तम्। हृदयनिहितारम्भम् मनःसंकल्पितोपक्रमम् सम्भोगम् मत्सम्भोगरतिम् आस्वादयन्ती अनुभवन्ती वा “सा ते आलोके पुरा निपतति” (इतिपूर्वश्लोकेन सम्बन्धः) प्रायेण बाहुल्येन अङ्गनानाम् रमणीनाम् रमणविरहेषु प्रियतमवियोगावसरेषु एते पूर्वोक्ता विनोदाः कालयापनोपायाः भवन्तीति शेषः।

प्रसंग—अपनी वियोगिनी प्रेयसी को सन्देश देने के लिए उचित समय तथा स्थान का निर्देश करता हुआ यक्ष कहता है—

सव्यापारामहनि न तथा पीडयेद् विप्रयोगः,

शङ् के रात्रौ गुरुतरशुचं निर्विनोदां सखीं ते।

मत्सन्देशैः सुखयितुमलंपश्य साध्वीं निशीथे,

तामुन्निद्रामवनिशयनां सौधवातायनस्थः ॥ २८ ॥

अन्वय—अहनि सव्यापाराम् ते सखीम् विप्रयोगः तथा न पीडयेत्, रात्रौ निर्विनोदाम् गुरुतरशुचम् शङ्के, निशीथे उन्निद्राम् अवनिशयनाम् साध्वीम् ताम् मत्सन्देशैः अलम् सुखयितुम् (त्वम्) सौधवातायनस्थः पश्य।

शब्दार्थ—अहनि = दिन में, सव्यापराम् = काम में लगी हुई, ते = तुम्हारी, सखीम् = सखी को अर्थात् भ्रातृजाया को, विप्रयोगः = (मेरा) वियोग, तथा = उतना, न पीडयेत् = दुःख नहीं देता होगा, (किन्तु) रात्रौ = रात्रि में, निर्विनोदाम् = मनोविनोद से रहित अर्थात् बिना किसी काम की खाली बैठी हुई, गुरुतरशुचम्

NOTES

= अत्यधिक शोक सन्तप्त हुई, शङ्के = आशंका करता हूँ (अतः) निशीथे = अर्धरात्रि के समय, उन्निद्राम् = खुली हुई नींद वाली अर्थात् जागती हुई, अवनिशयनाम् = भूमि पर लेटी हुई, साध्वीम् = पतिव्रता, ताम् = उस मेरी पत्नी को, मत्सन्देशैः = मेरी सन्देशवार्ताओं से, अलम् = पर्याप्त रूप से, सुखयितुम् = आनन्दित करने के लिये (त्वम्-तुम्), सौधावातायनस्थः = प्रासाद के झरोखे में बैठे हुए होकर, पश्य = देखना।

अनुवाद—दिन में काम में लगी हुई (होने के कारण) उस तुम्हारी भ्रातृजाया अर्थात् मेरी पत्नी को, (मेरा) वियोग उतना न सताता होगा (जितना कि) रात्रि में विनोद रहित अर्थात् बिना किसी के काम के खाली बैठी हुई (उसको) और अत्यधिक शोक सन्तप्त (होने की, मैं) आशंका करता हूँ, (अतः) अर्धरात्रि के समय निद्रा रहित (एवम्) भूमि पर लेटी हुई, (तथा) पतिव्रता उस मेरी पत्नी को (तुम्) मेरी सन्देश वार्ताओं द्वारा, पर्याप्त रूप से आनन्दित करने के लिये भवन के झरोखे में बैठे हुए (होकर) देखना।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि दिन में काम में लगी रहने के कारण मेरी पत्नी को मेरा वियोग उतना नहीं सताता होगा किन्तु रात में बिना काम खाली बैठी हुई उसे मेरा वियोग अत्यधिक सन्तप्त करता होगा। मैं ऐसा समझता हूँ। अतः अर्धरात्रि के समय निद्रा रहित एवं भूमि पर लेटी हुई, पतिव्रता उस मेरी पत्नी को तुम् मेरे सन्देशों से सुखी बनाने के लिए, महल के झरोखे में बैठकर उसे देखना।

संस्कृत व्याख्या—अहनि दिने सव्यापारम् पूर्वोक्तबलिचित्रलेखनादि कार्यव्यापृताम् ते तव मेघस्य सखीम् भ्रातृजायाम् मत्प्रियामित्यर्थः विप्रयोगः मद्विरहः तथा तेन प्रकारेण न पीडयेत् दुःखिनीं कुर्यात्, (किन्तु) रात्रौ निशि निर्विनोदाम् निर्व्यापाराम् ते सखीम् (अहम्) गुरुतरशुचम् अतिदुर्भरं दुःखाम् शङ्के तर्कयामि, (अतः) निशीथे अर्ध-रात्रि उन्निद्राम् उत्सृष्टनिद्राम् अवनिरेव शयनं यस्यास्ताम् अवनिशयनाम् नियमार्थं स्थण्डिलशायिनीम् साध्वीम् पतिव्रताम् (साध्वी पतिव्रता इत्यमरः) ताम् मत्प्रियाम् (त्वम्) मत्सन्देशैः मत्सन्देशवार्ताभिः अलम् पर्याप्तरूपेण सुखयितुम् आनन्दयितुम् सौधावातायनस्थः भवनवातायनस्थितः सन् पश्य विलोकय।

प्रसंग—यक्षिणी की विरहदशा का वर्णन करता हुआ यक्ष कहता है—

आधिक्षामां विरहशयने सन्निषण्णैकपाश्वर्वा

प्राचीमूले तनुमिव कलामात्रशेषां हिमांशोः।

नीता रात्रिः क्षण इव मया सार्धं मिच्छारतैर्या

तामेवोज्जैर्विरहमहतीमश्रुभिर्यापयन्तीम्॥ २९.१।

अन्वय—आधिक्षामाम् विरहशयने सन्निषण्णैकपाश्वर्वाम् प्राचीमूले कलामात्रशेषाम् हिमांशोः तनुम् इव (स्थिताम्) या रात्रिः मयासार्धम् इच्छारतैः क्षणः इव नीता ताम् एव विरहमहतीम् उज्जैः अश्रुभिः यापयन्तीम् (तां साध्वीं पश्येति पूर्वश्लोकेन सम्बन्धः)।

शब्दार्थ—आधिक्षामाम् = मनोव्यथा के कारण दुबली, विरहशयने = वियोग (के उपयुक्त) शयन पर, सन्निषण्णैकपाश्वर्वाम् = रखे हुए एक बगल या शरीर के एक भाग वाली, अर्थात् शरीर के एक भाग से लेटी हुई, (अतएव) प्राचीमूले = पूर्व दिशा के आरम्भ में (पहुँच जाने के कारण) कलामात्रशेषाम् = केवल एक अंश में बची हुई, हिमांशोः = चन्द्रमा की, तनुम् इव = मूर्ति या स्वरूप के समान, या = जो, रात्रिः = रात, मया सार्धम् = मेरे साथ, इच्छारतैः = इच्छानुसार रमण क्रिया के द्वारा, क्षणः इव = एक क्षण के समान, नीता = व्यतीत की थी अर्थात् जो रात्रि मेरे साथ भोग विलासों में एक पल के समान व्यतीत की जाया करती

थी), **विरहमहतीम्** = विरह के कारण लम्बी प्रतीत होने वाली, **ताम् इव** = उसी रात को, **उष्णैः अश्रुभिः** = गरम-गरम आँसुओं से, **यापयन्तीम्** = व्यतीत करती हुई, (तां साध्वीं पश्य = उस पतिव्रता मेरी पत्नी को देखना)।

मेघदूतम् (उत्तरमेघः)

NOTES

अनुवाद = मनोव्यथा के कारण क्षीण, विरह (के उपयुक्त पल्लवादि से बने) शयन पर, रखे हुए शरीर के एक भाग वाली अर्थात् शरीर के एक भाग (बगल) से लेटी हुई (अतएव) पूर्व दिशा के आरम्भ प्रदेश में (पहुँचे हुए) केवल एक कला से अवशिष्ट बचे हुए चन्द्रमा के स्वरूप (मूर्ति) के समान (स्थित) और जो रात (कभी) मेरे साथ यथेष्ट रति-क्रियाओं के द्वारा एक पल के समान व्यतीत की थी, विरह के कारण लम्बी प्रतीत होने वाली उसी रात को गरम आँसुओं से व्यतीत करती हुई (उस पतिव्रता पत्नी को देखना)।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि वह मेरी प्रिया इस समय मनोव्यथा से दुर्बल हो गई होगी तथा विरहोपयुक्त पल्लवादि की शय्या पर शरीर के एक भाग से लेटी हुई होगी, इस दशा में वह उसी प्रकार दिखलाई पड़ रही होगी जिस प्रकार पूर्व दिशा के मूल में पहुँच जाने पर एक कलामात्र से अवशिष्ट चन्द्रमा की मूर्ति होती है। इतना ही नहीं, इस समय वह उस रात्रि को जिसकी कि उसने कभी मेरे साथ यथेष्ट भोग-विलासों में एक पल के समान व्यतीत किया था, गरम-गरम आँसुओं के द्वारा बिता रही होगी और अब विरह से वह रात्रि अत्यधिक लम्बी प्रतीत होने वाली होगी।

विशेष—प्रस्तुत पद्य में 'हिमांशोः तनुमिव' में उपमालंकार है।

संस्कृत व्याख्या—आधिना क्षामा ताम् आधिक्षामाम् मनोव्यथाकृशाम्, (पुंस्याधिर्मेनसी व्यथा इत्यमरः) विरहे शयनं तस्मिन् विरहशयने विरहकालोपयुक्त पल्लवादिरचितशय्यायाम् सन्निषण्णम् एकं पार्श्वयस्याः ताम् सन्निषण्णैकपार्श्वाम् संस्था-पितैकशरीरभागाम् (अतएव) प्राचीमूले पूर्वदिशारम्भप्रदेशे उदयगिरिप्रान्त इत्यर्थः, कलामात्रं शेषः यस्याः ताम् कलामात्रशेषाम् अवशिष्टैककलाम् हिमांशोः चन्द्रस्य तनुम् स्वरूपम् इव यथा (स्थिताम्) (तथा) या रात्रिः निशा (कदाचित् सम्भोगकाले) मया यक्षेण सार्धं सह, इच्छया कृतानि रतानि तैः इच्छारतैः यथाभिलाषितरमणैः क्षण इव कालसूक्ष्मभाग इव नीता यापिता ताम् एव तज्जातीयामेय विरहमहतीम् वियोगदीर्घाम् रात्रिम् उष्णैः अशिशिरैः अश्रुभिः नेत्रसलिलैः यापयन्तीम् नयन्तीम् (तां साध्वीं पश्य)।

प्रसंग—यक्षिणी की विरह दशा के प्रसंग में ही यक्ष कहता है—

पादानिन्दोरमृतशिशिराञ्जालमार्गप्रविष्टा

न्यूर्वप्रीत्या गतमभिमुखं सन्निवृत्तं तथैव।

चक्षुःखेदात् सलिलगुरुभिः पक्ष्मभिश्छादयन्तीं,

साभ्रेऽह्नीव स्थलकमलिनीं न प्रबुद्धां न सुप्ताम्॥३०॥

अन्वय—जालमार्गप्रविष्टान् अमृतशिशिरान् इन्दोः पादान् पूर्वप्रीत्या अभिमुखं गतम् तथा एव सन्निवृत्तम् चक्षुः खेदात् सलिलगुरुभिः पक्ष्मभिः छादयन्तीम् साभ्रेऽह्नि न प्रबुद्धाम् न सुप्ताम् स्थलकमलिनीम् इव (तां साध्वीं पश्येति पूर्वेणान्वयः)।

शब्दार्थ—जालमार्गप्रविष्टान् = झरोखों के मार्ग से प्रविष्ट हुई, **अमृतशिशिरान्** = अमृत तुल्य शीतल, **इन्दोः** = चन्द्रमा की, **पादान्** = किरणों को, **पूर्वप्रीत्या** = प्रथम प्रीति के कारण, **अभिमुखं गतम्** = सामने गये हुए, **तथा एव** = उसी प्रकार से, **सन्निवृत्तम्** = लोटे हुए, **चक्षुः** = नेत्र को, **खेदात्** = खिन्नता के

NOTES

कारण, सलिलगुरुभिः = आँसुओं से भारी, पक्ष्मभिः = पलकों से, छादयन्तीम् = ढकती हुई, साध्रे अन्हि = मेघाच्छन्न दुर्दिन में, नप्रबुद्धाम् = अविकसित (न खिली हुई परन्तु), नसुप्तान् = न मुकुलित अर्थात् न तो पूर्णतया खिली हुई ही और न पूर्णतया संकुचित कली के रूप में ही अपितु अर्ध विकसित, स्थलकमलिनीम् इव = पृथिवी पर उत्पन्न कमलिनी के समान (उस पतिव्रता को देखना)।

अनुवाद—झरोखों के मार्ग से प्रविष्ट हुई अमृततुल्य शीतल चन्द्र की किरणों को प्रथम प्रीति के सामने गये हुए (और फिर) उसी प्रकार से लौटे हुए नेत्र को खिन्नता के कारण आँसुओं से भारी पलकों से ढकती हुई, मेघाच्छन्न दुर्दिन में न (पूर्णतया) विकसित और न पूर्णतया अविकसित अर्थात् अर्धविकसित स्थलोत्पन्न कमलिनी के समान (उस पतिव्रता मेरी पत्नी को देखना)।

भावार्थ—यह कहता है कि उस समय तुम्हें मेरी पत्नी, झरोखों से प्रविष्ट चन्द्र किरणों का पूर्वप्रीतिवश देखकर भी अपनी आँखों को खिन्नतावश बन्द करती हुई दिखलाई पड़ेगी। अतः वह उस कमलिनी के समान दीख पड़ेगी जो दुर्दिन में अर्धविकसित होकर रह गई हो।

विशेष—प्रस्तुत पद्य में 'अमृतशिशिरान्' में उपमालंकार है।

संस्कृत व्याख्या—जालानां मार्गेभ्यः प्रविष्टास्तान् जालमार्गप्रविष्टान् गवाक्षविवरगतान्, अमृतमिच्छा शिशिरास्तान् अमृतशिशिरान् सुधाशीतलान् इन्दोः चन्द्रस्य पादान् रश्मीन् पूर्वप्रीत्या पूर्वस्नेहेन अभिमुखम् सम्मुख यथा स्यात्तथा गतम् प्रवृत्तम् तथा एव तथैव झटिति सन्निवृत्तम् प्रतिनिवृत्तम् चक्षुः नेत्रम् दृष्टिमित्यर्थः खेदात् दुःखात् सलिलगुरुभिः अश्रुदुर्भैर पक्ष्मभिः नेत्रावरणैः आच्छादयन्तीम् आवृतम् कुर्वतीम्, (अतएव) साध्रे मेघाच्छन्ने दुर्दिने अहि दिवसे न प्रबुद्धाम् मेघोपरोधकारणात् अविकसिताम् न सुप्ताम् दिनमिति अमुकुलिताम् अर्धविकसितामित्यर्थः स्थलकमलिनीम् स्थलोत्पन्नकमलिनीम् इव (स्थिताम्) (तां साध्वीं पश्येति पूर्वेण श्लोकेन सम्बन्धः)।

प्रसंग—यक्षिणी की विरहावस्था का वर्णन करता हुआ यक्ष कहता है—

निःश्वासेनाधरकिसलयक्लेशिना विक्षिपन्तीं

शुद्धस्नानात् परुषमलकं नूनमागण्डलम्बम्।

मत्सम्भोगः कथमुपनयेत् स्वप्नजोऽपीति निद्रा-

माकाङ्क्षन्ती नयनसलिलोत्पीडरुद्धावकाशाम्॥ ३१ ॥

अन्वय—शुद्धस्नानात् परुषम् नूनम् आगण्डलम्बम् अलकम् अधरकिसलय-क्लेशिना निःश्वासेन विक्षिपन्तीम् स्वप्नजः अपि मत्सम्भोगः कथम् उपनयेत् इति नयन-सलिलोत्पीडरुद्धावकाशाम् निद्राम् आकाङ्क्षन्तीम् (तां साध्वीं पश्य इति पूर्वेणान्वयः)।

शब्दार्थ—शुद्धस्नानात् = (वियोगिनी होने के कारण तैल मर्दनादि से रहित अतएव) शुष्क शुद्धस्नान के कारण, परुषम् = रूखे, कठोर, नूनम् = निश्चयतः आगण्डलम्बम् = कणेलों पर लटकने वाले, अलकम् = केशों को, अधरकिसलयक्लेशिना = कोमलसदृश अधरोष्ठ को झुरझा देने वाले या पीड़ित करने वाले, निःश्वासेन = विरह ताप वश लम्बे और गरम श्वास से, विक्षिपन्तीम् = हिलाती हुई, (और) स्वप्नजः अपि = स्वप्न में प्राप्त होने वाला भी, मत्सम्भोगः = मेरे साथ रति सुख, कथम् उनयेत् = किसी प्रकार प्राप्त हो

जाय, इति = इस कारण, नयनसलिलोत्पीडरुद्धावकाशाम् = नेत्र जलों (आसुओं) के प्रबल प्रवाह से रोके गये अवसर वाली, निद्राम् = नींद को, आकाङ्क्षन्तीम् = चाहती हुई (उस साध्वी को तुम देखना)।

मेघदूतम् (उत्तरमेघः)

NOTES

अनुवाद—(वियोगावस्थावश तैलमर्दनादि से रहित अतएव) शुष्क स्नान के कारण रूखे (और) निश्चयतः कपोलों पर लटकने वाले केशों को, कोपल सदृश अधरोष्ठ को सुरक्षा देने वाले (विरहतापवश लम्बे और उष्ण) निःश्वास के द्वारा हिली हुई (तथा) स्वप्न में प्राप्त होने वाली भी मेरे साथ रतिसुख किसी प्रकार प्राप्त हो जाये इस कारण आँसुओं के प्रवाह से अवरुद्ध अवकाश वाली निद्रा को चाहती हुई (उस साध्वी को तुम देखना।)

भावार्थ—यक्ष कहता है कि इस समय वियोग व्यथा के कारण मेरी पत्नी के शुष्क और खुले हुए केश उसके कपोल स्थलों पर लटक रहे होंगे जिन्हें विरह सन्ताप-वश उष्ण निःश्वास उसके अधरोष्ठ को पीड़ित करता हुआ इधर-उधर उड़ा रहा होगा, स्वप्न में भी मेरे संयोग को प्राप्त करने के लिए वह सो जाना चाहती होगी, पर विरह के आँसुओं के प्रवाह से उसे नींद भी न आ रही होगी। जाग्रत अवस्था में तो उसे मेरा संयोग प्राप्त है ही नहीं, अतः स्वप्न में ही वह प्राप्त करना चाहती होगी, पर अश्रुप्रवाह नींद नहीं आने देते होंगे। इस प्रकार कवि ने उसके आँसुओं के प्रवाह का वर्णन कर उसके 'लज्जा त्याग' की अभिव्यक्ति की है।

विशेष—यहाँ 'अधर किसलय' में उपमालंकार है।

संस्कृत व्याख्या—शुद्धस्नानात् तैलादिरहितस्नानात् परुषम् कठिनस्पर्शम् वा नूनम् निश्चयेन आगण्डलम्बम् कपोलस्पर्शि अलकम् चूर्णकुन्तलान् (जातावेकवचनम्) अधरकिसलयक्लेशिना अधरपल्लवग्लपनकारिणा उष्णस्वप्नज अपि स्वप्नावस्थाजन्यः अपि (साक्षात्सम्भोगासम्भवादिति भावः) सम्भोगः मया सह रतिसुखम् कथम् केनापि प्रकारेण उपनयेत् आगच्छेत् प्राप्तो भवेदित्यर्थः इति इत्याशयेन नयनयोः सलिलस्य उत्पीडेन रुद्धः अवकाशः यस्यास्ताम् नयनसलिलोत्पीडरुद्धावकाशाम् अश्रुप्रवृत्तिप्रत्याहतप्रसराम् दुर्लभमित्यर्थः निद्राम् आकाङ्क्षन्तीम् अभिलषन्तीम् (तां साध्वीं पश्येति पूर्वश्लोकेन सम्बन्धः।)

प्रसंग—यक्षिणी की विरहदशा का वर्णन करता हुआ यक्ष कहता है—

आद्ये वद्धा विरहदिवसे या शिखा दाम हित्वा,
शापस्यान्ते विगलितशुचा तं मयोद्वेष्टनीयाम्।
स्पर्शक्लिष्टामयमितनखेनासकृत सारयन्तीं
गण्डाभोगात् कठिनविषमामेकवेणीं करेण ॥ ३२ ॥

अन्वय—आद्ये विरहदिवसे दाम हित्वा या शिखा वद्धा शापस्य अन्ते विगलित-शुचा मया उद्वेष्टनीयाम् स्पर्शक्लिष्टाम् कठिनविषमाम् एकवेणीम् ताम् अयमितनखेन करेण गण्डाभोगात् असकृत सारयन्तीम् (तां साध्वीं पश्य इति पूर्वश्लोकेनान्वयः)।

शब्दार्थ—आद्ये विरहदिवसे = प्रथम विरह के दिन अर्थात् विरह के प्रथम दिन, दाम = पुष्पादि की माला को, हित्वा = छोड़कर, या शिखा वद्धा—जो चोटी बाँधी गई थी, शापस्य अन्ते = शाप के अन्त में, विगलितशुच मया = शोक से रहित हुए मेरे द्वारा, उद्वेष्टनीयाम् = खोली जाने योग्य, स्पर्शक्लिष्टाम् = स्पर्श में कठोर रुक्ष, कठिनविषमाम् = कठोर और छलकी हुई, एकवेणीम् = एक ही वेणी के रूप में बनाई

NOTES

गई, अर्थात् जिसे एक लट के रूप में ही बाँधकर रखा गया था, ताम् = ऐसी उस शिखा को, अयमितनखेन करेण = बिना कटे हुए नाखूनों वाले हाथ से, गण्डाभोगात् = कपोल प्रदेश से, असकृत् = बार-बार, सारयन्तीम् = हटाती हुई, (उस साध्वी को देखना)।

अनुवाद—विरह के प्रथम दिन पुष्पादि की माला को छोड़कर जो चोटी बाँधी गई थी, शाप की समाप्ति पर शोक से रहित हुए मेरे द्वारा खोली जाने योग्य, छूने पर कठोर और रुक्ष तथा कठोर और उलझी हुई एक लट के रूप में स्थित उस चोटी को, बिना कटे हुए नाखूनों वाले हाथ से कपोल स्थल से बार-बार हटाती हुई (उस साध्वी को देखना)।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि हे मेघ! इस समय यह मेरी प्रिया, विरह के प्रथम दिन पुष्पादि की माला के बिना ही जो चोटी गूँथी गई थी, जो कि स्पर्शतः कठोर एवं उलझी हुई एक लट के रूप में लटक रही थी और जिसे शाप की समाप्ति पर मुझे ही खोलना है, वह चोटी जब उसके कपोलों पर आ जाती होगी, तब वह उसे अपने हाथ से बार-बार हटा रही होगी। इस स्थिति में तुम उसे देखकर मेरे प्रिय समाचार से सान्त्वना देना।

संस्कृत व्याख्या—आद्ये प्रथमे विरहदिवसे वियोगदिने दाम पुष्पादिमा लाभ् हित्वा परिहाय या शिखा वद्धा ग्रथिता, शापस्य अन्ते समाप्तौ विगलितशुचा वीतशोकेन मया यक्षेण उद्वेष्टनीयाम् मोचनीयाम् स्पर्शक्लिष्टाम् स्पर्शदुःखदाम् स्पर्शे सति मूलकेशेषु सव्यथामित्यर्थः कठिनविषमाम् कठोराम् निम्नोन्नताम् एकवेणीम् एकीभूतवेणीम् तां शिखाम् अयमितनखेन अकर्तितोपान्तकरजेन करेण हस्तेन गण्डाभोगात् कपोलविस्तारात् कपोलस्थलादित्यर्थः, असकृत् पुनः-पुनः सारयन्तीम् वा (तां साध्वी पश्येति पूर्वणान्वयः)।

प्रसंग—यक्ष कहता है कि तुम मेरी प्रिया की विरह दशा से उत्पन्न दयनीय दशा को देखकर रोने लगोगे—

सा संन्यस्ताभरणमवला पेशलं धारयन्ती,

शय्योत्सङ्गे निहितमसकृद् दुःखदुःखेन गात्रम्।

त्वामप्यस्त्रं नवजलमयं मोचयिष्यत्यवश्यं

प्रायः सर्वो भवति करुणावृत्तिराद्रान्तरात्मा ॥ ३३ ॥

अन्वय—संन्यस्ताभरणम् असकृद् दुःखदुःखेन शय्योत्सङ्गे निहितम् पेशलमगात्रम् धारयन्ती अवला सा त्वाम् अपि नवजलमयम् अस्त्रम् अवश्यम् मोचयिष्यति, प्रायः आद्रान्तरात्मा सर्वः करुणावृत्तिः भवति।

शब्दार्थ—संन्यस्ताभरणम् = परित्यक्त आभूषणों वाले अर्थात् आभूषणों से रहित, असकृत् = बार बार, दुःख दुःखेन = बड़े दुःख से, शय्योत्सङ्गे = बिस्तर के बीच या बिस्तर पर, निहितम् = डाले गये, पेशलम् गात्रम् = कोमल शरीर को, धारयन्ती, धारण करती हुई, अवला सा = विवशा दुर्बला वह मेरी प्रिया त्वाम् अपि = तुम मेघ को भी, नवजलमयम् = नवीन जल के रूप में, अस्त्रम् = आँसू को, अवश्यम् = अवश्य ही मोचयिष्यति = बहवा देगी अर्थात् बहाने के लिए विवश कर देगी। प्रायः = प्रायेण आद्रान्तरात्मा = कोमल हृदय वाला, सर्वः = सब ही, करुण वृत्तिः = करुण स्वभाव वाला, भवति = होता है।

अनुवाद—आभूषणरहित, बार-बार बड़े दुःख से शय्या के बीच डाले गये, कोमल शरीर को धारण करती हुई विवशा दुर्बला वह मेरी प्रिया तुम्हारा भी नवजल के रूप में आँसू अवश्य छुड़ा देगी अर्थात् तुम्हें भी नवजलवर्षण के रूप में रुला देगी। प्रायः कोमल अन्तरात्मा वाला प्रत्येक जन करुण स्वभाव वाला होता है।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि अब मेरी प्रिया ने विरह-व्यथाजन्य कृशतावश आभूषण पहनना छोड़ दिया होगा और वह बार-बार उठ-उठकर पुनः-पुनः महान् दुःख से अपने कोमल शरीर को शय्या पर डाल देती होगी और उसे किसी न किसी प्रकार धारण करती होगी। उसकी ऐसी दशा को देखकर तुम भी रो पड़ोगे, क्योंकि तुम स्वभावतः द्रवरूप अन्तः शरीर वाले हो। कोमल हृदय का व्यक्ति स्वभावतः करुणावृत्ति वाला होता है।

विशेष—प्रस्तुत पद्य की चतुर्थ पंक्ति में वर्णित तथ्य से पूर्व वर्णित तथ्य का समर्थन होने से यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

संस्कृत व्याख्या—संन्यस्ताभरणम् परित्यक्ताभूषणम् विरहव्यथाजन्यकृशतावशादित्यर्थः, असकृत् अनेकशः दुःखदुःखेन दुःखप्रकारेण महता दुःखेनेत्यर्थः शय्योत्सङ्गे पर्यङ्कमध्यभागे निहितम् निक्षिप्तम् पेशलं कोमलं गात्रं शरीरम् धारयन्ती वहन्ती, अवला दुर्बला विवशेत्यर्थः सा मत्प्रिया (अनेन तस्या अत्यन्ताशक्त्या मूर्च्छावस्था सूच्यते)। त्वाम् मेघम् अपि नवजलमयम् नूतनाम्बुरूपम् अश्रु अवश्यम् सर्वथा मोचयिष्यति विसर्जयिष्यति प्रायः प्रायेण आर्द्रान्तरात्मा मृदुलहृदयः द्रवान्तःशरीरः वा सर्वः जनः करुणावृत्तिः करुणस्वभावः भवति।

प्रसंग—यक्ष कहता है कि अब तक मैंने अपनी प्रिया की दशा के विषय में जो कुछ कहा है उसे तुम स्वयं देख सकोगे—

जाने सख्यास्तव भयि मनः सम्भृतस्नेहमस्मा—

दित्यंभूतां प्रथमविरहे तामहं तर्कयामि।

वाचालं मां न खलु सुभगमन्यभावः करोति

प्रत्यक्षं ते निखिलमचिराद् भ्रातरुक्तं मया यत्॥ ३४ ॥

अन्वय—तत्त्व सख्याः मन मयि सम्भृतस्नेहम् जाने, अस्मात् अहम् प्रथमविरहे ताम् इत्थंभूताम् तर्कयामि, सुभगमन्यभावः माम् वाचालम् न करोति खलु। मया यत् उक्तम् तत् निखिलम् अचिरात् ते प्रत्यक्षम् (भविष्यति)।

शब्दार्थ—तव सख्याः = तुम्हारी सखी का, अर्थात् अपनी पत्नी का, मनः = मन, मयि = मेरे ऊपर, स्नेहसम्भृतम् = प्रेम से परिपूर्ण, जाने = (मैं) जानता हूँ कि मेरी पत्नी का मन मेरे प्रति स्नेह से परिपूर्ण है। अस्मात् = इस कारण से, प्रथमविरहे = पहली बार के वियोग में, अहम् (मैं) ताम् = उसको, इत्थंभूताम् तर्कयामि = इस प्रकार की दशा को प्राप्ति हुई समझता हूँ। सुभगमन्यभावः = अपने आप को सुन्दर मानने की भावना, माम् = मुझको, वाचालम् न करोति = मुखर नहीं बना रही है। (अपितु) हे भ्रातः = हे भाई! यत् मया उक्तम् = जो कुछ मैंने कहा है, (वह) निखिलम् = सब कुछ अचिरात् = शीघ्र ही, ते प्रत्यक्षम् = तुम्हें प्रत्यक्ष (भविष्यति हो जायेगा)।

अनुवाद—तुम्हारी सखी अर्थात् मेरी पत्नी का मन मुझ पर प्रेम परिपूर्ण है (ऐसा) मैं जानता हूँ, इस कारण से ही मैं उसे प्रथम विरह में इस प्रकार की दशा को प्राप्त हुई समझता हूँ। निश्चय ही अपने को सुन्दर मानने का भाव मुझे मुखर नहीं बना रहा है। जो कुछ मैंने कहा है हे भाई उसे तुम शीघ्र ही प्रत्यक्ष देखोगे।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि मेरी पत्नी का मन मेरे प्रति प्रेम परिपूर्ण है, ऐसा मैं जानता हूँ और यही कारण है कि मैंने उसके प्रथम वियोग के इस अवसर पर उसे इस प्रकार की दयनीय दशा को प्राप्त हुई समझा है। इसका मतलब यह कदापि नहीं कि मैं अपने को बड़ा सुन्दर समझता हूँ इसलिए मैं अपने से वियुक्त अपनी पत्नी की दशा का ऐसा अनुमान कर आपसे इस प्रकार कह रहा हूँ। इसका प्रमाण यह है कि मैंने अभी तक

NOTES

NOTES

विशेष—प्रस्तुत श्लोक के चतुर्थ पाद में जो कुछ कहा गया है वह तृतीय पाद में कथित बात का हेतु है अतः यहाँ काव्यलिङ्ग अलंकार है।

संस्कृत व्याख्या—तव मेघस्य सख्याः भ्रातृजायायाः मत्प्रियाया इत्यर्थः मनः हृदयम् मयि माम् प्रति सम्भृतेस्नेहम् संचितानुरागम् (अस्ति इत्यहम्) जाने अवगच्छामि अस्मात् तस्याः मयि पूर्णानुरागज्ञानकारणात् ताम् तव सखीम् प्रथमविरहे प्रथमवियोग-काले (अहम्) इत्थंभूताम् पूर्वोक्तदयनीय-दशामापन्नान् तर्कयामि सम्भावयामि। सुभग-मात्मानं मन्यते इति सुभगमन्यः तस्य भावः सुभगमन्यभावः सुभगभानित्वम् माम् यक्षम् वाचालम् बहुभाषिणम् न करोति न विदधाति। खलु निश्चयेन सौन्दर्यभिमानितां न प्रकटयतीति भावः स्याज्जल्पाकस्तु वाचालो वाचाटो बहुगर्ह्य-भाक् इत्यमरः (किन्तु) हे भ्रातः हे बन्धो! मया यक्षेण यत् उक्तम् तस्याः विरहदशां वर्णयता कथितम् तत् निखिलम् सम्पूर्णमेव अचिरात् शीघ्रमेव-ते तव प्रत्यक्षम् दृग्गोचरम् (भविष्यति)।

प्रसंग—यक्ष कहता है कि जब तुम यक्षिणी के पास पहुँचोगे और वह तुम्हें देखेगी, तब उसके नेत्र की शोभा चञ्चल कमल के समान होगी—

“रुद्धापाङ्गप्रसरमलकैरञ्जनस्नेहशून्यं

प्रत्यादेशादपि च मधुनो विस्मृतभ्रू विलासम्।

त्वय्यासन्ने नयनमुपरिस्पन्दि शङ् के मृगाक्ष्या

मीनक्षोभाच्चलकुवलयश्रीतुलामेष्यतीति ॥ ३५ ॥

अन्वय—अलकैः रुद्धापाङ्गप्रसरम् अञ्जनस्नेहशून्यम् अपि तु मधुनः प्रत्यादेशात् विस्मृतभ्रूविलासम् त्वयि आसन्ने उपरिस्पन्दि मृगाक्ष्याः नयनम् मीनाक्षोभात् चलकुवलय-श्रीतुलाम् एष्यति, इति शङ्के।

शब्दार्थ—अलकैः = केशों के द्वारा, रुद्धापाङ्गप्रसरम् = रोके गये नेत्र प्रान्तों की गति वाले अर्थात् जिसके अपाङ्गों—नेत्रकोरों की गति को रोक दिया गया है। अञ्जनस्नेहशून्यम् = अञ्जन (काजल) से चिकनाई से रहित अपि च = और, मधुना = मदिरा के, प्रत्यादेशात् = त्याग कर देने से, विस्मृतभ्रू विलासम् = भ्रू संचालन को भूले हुए, त्वयि = तुम्हारे अर्थात् मेघ के, प्रत्यासन्ने = समीप पहुँचने पर, उपरिस्पन्दि = ऊपर के भाग में फड़कने वाले, मृगाक्ष्याः = मृगनयनी का, नयनम् = नेत्र, मीनक्षोभात् = मछलियों की हलचल से, चलकुवलयश्रीतुलाम् = चञ्चल कमल की शोभा की समानता को, एष्यति = प्राप्त होगा, इति (अहम्) शङ्के = मैं ऐसी सम्भावना करता हूँ।

अनुवाद—केशों के द्वारा रोके गये नेत्र प्रान्तों की गति वाला, अञ्जन की चिकनाहट से रहित और मदिरा के त्याग देने से भ्रूसंचालन को भूल जाने वाला, तुम्हारे समीपवर्ती होने पर ऊपर के भाग में फड़कने वाला मृगनयनी का नेत्र मछलियों की हलचल से चञ्चल कमल की शोभा की समानता को प्राप्त होगा, मैं ऐसी सम्भावना करता हूँ।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि विराहणा यक्षिणी के नेत्र इस समय वियोग के कारण अञ्जन की स्निग्धता से रहित अतएव रुक्ष होंगे। बिखरे हुए उसके केशों से आच्छादित होने के कारण उसके नेत्रों के अपाङ्ग भी नहीं

चल रहे होंगे और वियोगवश मदिरा के परित्याग के कारण उसके नेत्र भ्रूसंचालन की आकर्षक क्रिया को भी भूल गये होंगे। जब तुम उसके समीप पहुँचोगे तब उसके नेत्र तुम्हें देखने के लिए अपने ऊपरी भाग में फड़कने लगेंगे। मैं समझता हूँ कि इस स्थिति को प्राप्त उसके नेत्र, मछलियों के हलचल से चंचल हुए कमल की शोभा की समानता को प्राप्त होंगे अर्थात् मछलियों की टक्कर से हिलते हुए कमल की जैसी शोभा होती है, वैसी ही इस समय तुम्हें देखने के लिए फड़कते हुए उसके नेत्रों की भी शोभा होगी।

संस्कृत व्याख्या—अलकैः केशैः रुद्धः अपाङ्गयोः प्रसरः यस्य तत् रुद्धापाङ्ग-प्रसरम्, प्रतिषिद्धनेत्रकोरकप्रसरणम्, अञ्जनस्य स्नेहेन शून्यम् अञ्जनस्नेहशून्यम् कज्जल-स्नेग्ध्यविरहितम्, अपि च-किञ्च, मधुनः मद्यस्य प्रत्यादेशात् निराकरणात् परित्यागा-दित्यर्थः (प्रत्यादेशो निराकृतिः इत्यमरः) विस्मृतः भ्रुवोः विलासः येन तत् विस्मृतभ्रू-विलासम् परित्यक्तभ्रू भङ्गम् त्वयि सन्देश-शंसिनि मेघे आसन्ने सति समीपवर्तिनी सति उपरि स्पन्दते इति उपरिस्पन्दि ऊर्ध्वभागस्फुरणशीलम् नयनम् नेत्रम् वामनयनमित्यर्थः मीनक्षोभात् मत्स्य संचलनात्, चलं च यत् कुवलयं तस्य या श्रीः तस्याः तुलाम् चल-कुवलश्रीतुलाम् चञ्चलकमलशोभासादृश्यम् एष्यति प्राप्स्यति इति इत्थम् (अहम्) शङ्के तर्कयामि।

प्रसंग—यक्ष कहता है कि तुम्हारे यक्षिणी के समीप पहुँचने पर उसकी वाम जंघा फड़कने लगेगी।

“वामश्चास्याः कररुहपदैर्मुच्यमानो मदीयै—

मुक्ताजालं चिरपरिचितं त्याजितो दैवगत्या,

सम्भोगान्ते मम समुचितो हस्तसंवाहनानां

यास्यत्यूरुः सरसकदलीस्तम्भगौरश्चलत्वम्” ॥ ३६ ॥

अन्वय—मदीयैः कररुहपदैः मुच्यमानः चिरपरिचितं मुक्ताजालम् दैवगत्या त्याजितः सम्भोगान्ते मम हस्तसंवाहनानाम् समुचितः सरसकदलीस्तम्भगौरः अस्या वामः ऊरुः च चलत्वम् यास्यति।

शब्दार्थ—मदीयैः = मेरे, कररुहपदैः = नखों के चिन्हों से अर्थात् मेरे द्वारा किये गए नखक्षतों से, मुच्यमानः = छोड़ा गया, रहित अथवा वञ्चित, चिरपरिचितम् = चिरकाल से अभ्यस्त, मुक्ताजालम् = मोतियों की लड़ी, अर्थात् मोतियों की लड़ी का कटिभूषण, दैवगत्या = दैवगति से अर्थात् भाग्य चक्र से, त्याजितः = छोड़ाई हुई, अर्थात् मौक्तिक कटिभूषण से रहित, सम्भोगान्ते = विषयोपभोग के उपरान्त, मम = मेरे, हस्तसंवाहनानाम् समुचित = हाथों से दबाने या सहलाने योग्य, सरसकदली-स्तम्भगौरः = सरस केले के खम्भ के समान गौरवर्ण वाला, अस्याः = इसका अर्थात् मेरी पत्नी का, वामः = बायाँ, ऊरुः च = और चलत्वम् यास्यति = फड़कने को प्राप्त होगी अर्थात् फड़कने लगेगी।

अनुवाद—मेरे नखक्षतों से वञ्चित, चिरपरिचित मोतियों की लड़ी रूप कटि-भूषण से, दैवगति से छोड़ाई गई अर्थात् वञ्चित की गई, (और) सम्भोग के अन्त में मेरे हाथों से सहलाने के योग्य, सरस केले के खम्भ के समान गौरवर्ण वाली इस मेरी पत्नी की बायीं जङ्घा फड़कने लगेगी।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि हे मेघ! तुम्हारे वहाँ पहुँचने पर मेरी प्रिया की सरस कदली स्तम्भ के समान गौरवर्ण की वाम जङ्घा जो कि इस समय वियोगावश मेरे नखक्षतों से तथा मौक्तिक कटिभूषण से वञ्चित होगी और सम्भोगान्त में मेरे संवाहन से भी वञ्चित होगी, फड़कने लगेगी।

NOTES

संस्कृत व्याख्या—मदीयैः मामकैः यक्षसम्बन्धिभिः कररुहपदैः नखचिन्हैः नख-क्षतैरित्यर्थः मुच्यमानः परिहीयमाणः मदीयनखक्षतवज्जित इत्यर्थः चिरपरिचितम् चिराभ्यस्तम् मुक्ताजालम् मौक्तिकसरमयम् कटिभूषणम् दैवगत्या भाग्यवेशन त्याजितः परिहापितः, सम्भोगान्ते रतिक्रियासमाप्तौ मम यक्षस्य हस्तसंवाहनानाम् करमर्दनानाम् समुचित योग्यः सरसकदलीस्तम्भगौरः च रसयुक्तदलीस्तम्भपाण्डुरः च अस्याः मम प्रियायाः वामः ऊरुः जङ्घा चलत्वम् स्पन्दत्वं यास्यति प्राप्स्यति।

प्रसंग—यक्ष कहता है कि तुम्हारे पहुँचने पर वह तुम्हें सोती हुई मिले तो तुम उसे मेरा सन्देश सुनाने के लिए तब तक प्रतीक्षा करना जब तक कि वह स्वतः न जाग जाये—

“तस्मिन् काले यदि जलद सा लब्धनिद्रासुखा स्या-

दन्वास्यैनां स्तनितविमुखो याममात्रं सहस्व।

मा भूदस्याः प्रणयिनि मयि स्वप्नलब्धे कथञ्चित्

सद्यः कण्ठच्युतभुजलताग्रन्थि गाढोपगूढम्” ॥३७॥

अन्वय—जलद ! तस्मिन् काले यदि सा लब्धनिद्रासुखा स्यात्, एनाम् अन्वास्य स्तनितविमुख, याममात्रम् सहस्व, आस्याः मयि प्रणयिनि कथञ्चित् स्वप्नलब्धे सति गाढोपगूढम् सद्यः कण्ठच्युतभुजलताग्रन्थि मा भूत्।

शब्दार्थ—जलद = हे मेघ ! तस्मिन् काले = उस समय, यदि सा = यदि वह मेरी प्रिया यक्षिणी, लब्ध निद्रासुखा = निद्रा के सुख को प्राप्त कर लेने वाली, स्यात् = हो, (तो) एनाम् अन्वास्य = उसके पीछे स्थित होकर, स्तनितविमुखः = गर्जन से विमुख अर्थात् गर्जन से रहित होकर, याममात्रम् = एक प्रहर तक, सहस्व = प्रतीक्षा करना (जिससे) आस्याः = इस मेरी प्रिया का, मयि प्रणयिनि = मुझ प्रेमी के, कथञ्चित् = किसी भी प्रकार, स्वप्नलब्धेऽपि = स्वप्न में भी प्राप्त होने पर, गाढोपगूढम् = गाढालिङ्गन, सद्यः कण्ठच्युतभुजलताग्रन्थि = शीघ्र ही अर्थात् एकदम सहसा ही, कण्ठ से छूटी हुई भुजा रूपी लताओं के बन्धन वाला, मा भूत् = न हो जाये अर्थात् कण्ठ से एकदम ही भुजालता बन्धन न छूट जाये।

अनुवाद—हे मेघ ! उस समय यदि वह मेरी प्रिया निद्रा सुख प्राप्त करने वाली हो, (तो) इसके पीछे स्थित होकर (तुम) गर्जन से रहित होकर एक प्रहर तक प्रतीक्षा करना, (जिससे) कि इस मेरी प्रिया का, मुझ प्रेमी के किसी भी प्रकार स्वप्न में भी मिल जाने पर, गाढालिङ्गन, एकदम ही कण्ठ से छूटे हुए बन्धन वाला न हो जाये अर्थात् तुरन्त ही उसका भुजलता बन्धन कण्ठ से न छूट जाये।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि तुम्हारे पहुँचने पर उस समय यदि मेरी प्रिया निद्रा सुख प्राप्त कर रही हो, तो तुम चुपचाप उसके पीछे बैठकर एक प्रहर तक उसकी प्रतीक्षा करना, ऐसा न हो कि कहीं स्वप्न में मुझ प्रेमी को प्राप्त कर उसका गाढालिङ्गन, तुम्हारी सहसा गर्जना से कण्ठ से छूट न जाय। अतः तुम्हें प्रतीक्षा करनी चाहिए।

संस्कृत व्याख्या—हे जलद ! मेघ ! तस्मिन् काले त्वदुपसमर्पणसमये यदि सा मम प्रिया प्राप्तनिद्रानन्दा स्यात् भवेत् चेत्, एनां निद्राणां मत्प्रियाम् अन्वास्य पश्चाद् आसित्वा स्तनितविमुखः गर्जितपराङ्मुखः निःशब्द इत्यर्थः सन्-येन तस्या निद्राभङ्गो न स्यात् याममात्रम् प्रहरमात्रम् (द्वौ यामप्रहरौ समौ इत्यमरः) सहस्व प्रतीक्षस्त्र,

(येन) अस्याः मम प्रियायाः प्रणयिनि प्रेयसि मयि यक्षे केथञ्चित येन कनापि प्रकारेण कृच्छ्रेण स्वप्नलब्धे स्वप्नकालानुभूते स्वप्नसमयप्राप्ते वा सति गाढोपगूढम् गाढालिङ्गनम् सद्यः कण्ठच्युतभुजलताग्रन्थि तत्कालकण्ठप्रस्तबाहुलतापाशम् मा भूत् न स्यात्, कथञ्चिल्लब्धालिङ्गनस्य सद्यो विधातो मा भूत् इत्यर्थः।

प्रसंग—यक्ष कहता है कि बाद में अर्थात् एक प्रहर के बाद वह यक्षिणी को धीरे-धीरे जगाकर वार्तालाप करे—

तामुत्थाप्य स्वजलकणिकाशीतलेनानिलेन,
प्रत्याश्वस्तां सममभिवैर्जालकैर्मालितीनाम्।
विद्युद्गर्भः स्तिमितनयनां त्वत्सनाथे गवाक्षे
वक्तुं धीरः स्तनितवचनैर्मानिनी पक्रमेथाः॥३८॥

अन्वय—स्वजलकणिकाशीतलेन अनिलेन ताम् उत्थाप्य अभिनवैः मालतीनाम् जालकैः समम् प्रत्याश्वस्ताम् त्वत्सनाथे गवाक्षे स्तिमितनयनाम् मानिनीम् विद्युद्गर्भः धीरः सन्स्तनितवचनैः वक्तुम् प्रक्रमेथाः।

शब्दार्थ—स्वजलकणिकाशीतलेन अनिलेन = अपने जल कणों से शीतल वायु के द्वारा, ताम् = उस मेरी पत्नी को, उत्थाप्य = उठाकर, अभिनवैः = नवीन ताजे, मालतीनाम् = चमेली की, जालकैः = कलियों के, समम् = साथ, प्रत्याश्वस्ताम् = स्वस्थचित्त हुई, (तथा) त्वत्सनाथे गवाक्षे = तुमसे युक्त झरोखे में, स्तिमितनयनाम् = निश्चल नेत्रों वाली, मानिनीम् = (उस) मनस्विनी से, विद्युद्गर्भः = बिजली को अपने अन्दर धारण करने वाले (तुम) धीरः = धैर्यवान् होकर, स्तनितवचनैः = गर्जन रूपी वचनों से, वक्तुम् = बोलने के लिये, प्रक्रमेथाः = उद्यत होना, बात करना, प्रारम्भ करना।

अनुवाद—अपने जल बिन्दुओं से शीतल हवाओं द्वारा उस मेरी पत्नी को उठाकर नयी ताजी चमेली की कलियों के साथ स्वस्थ चित्त हुई, (तथा) तुमसे युक्त झरोखे पर निश्चल नेत्रों वाली (उस) स्वाभिमानिनी से, अपने अन्दर बिजली धारण करने वाले (तुम) धैर्यशील होकर गर्जन रूप वचनों से बोलने के लिये उद्यत होना अर्थात् बोलना प्रारम्भ करना।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि हे मेघ! एक प्रहर के बाद तुम उसे पहले अपनी जल बिन्दुओं से शीतल हवाओं से उठाना। उठने पर जब यह नयी ताजी चमेली की कलियों के साथ-साथ स्वस्थचित्त हो जाये अर्थात् जिस प्रकार नवीन जल कणों को प्राप्त कर चमेली की कलियाँ हरी भरी स्वस्थ चैतन्य हो जाती हैं; उसी प्रकार जब वह भी स्वस्थ या सावधानचित्त हो जाये और झरोखे में बैठे हुए तुम पर निश्चल दृष्टि से देखने लगे तब तुम इस मानिनी से धीरे-धीरे बात करना प्रारम्भ करना। तुम्हारी मन्द गर्जन ही तुम्हारे वचन होंगे और बिजली धारण करने से उसकी चमक के कारण वह तुम्हारे स्वरूप को देख न सकेगी अतः तुम बिजली को अपने अन्दर ही छिपाये रखना इस तरह तुम मेरा सन्देश सुनाना।

संस्कृत व्याख्या—स्वस्थ जलस्य कणिकाभिः शीतलेन स्वजलकणिकाशीतलेन आत्मसलिलबिन्दुशीतेन अनिलेन ताम् मत्प्रियाम् उत्थाप्य प्रवोध्य-एतेन तस्याः प्रभुत्वात् व्यजनानिलप्रवोधो गम्यते, अभिनवैः नूतनैः मालतीनाम् जातीनाम् (सुमना मालती जाति कोषः) जालकैः जातिकोरकैः (क्षारको जालकं क्लीबे कलिका कोरकः पुमान्-कोष) समम् यह (साकं सत्रा समं सह) प्रत्याश्वस्ताम् सुस्थिताम् वा शिशिरा- निलसम्पर्काल्लब्ध-चित्तनामित्यर्थः, एतेनास्याः कुसुमसौकुमार्यं गम्यते, त्वत्सनाथे त्वत्सहिते गवाक्षे जालके स्तिमितनयनाम् कोऽसाविति

NOTES

विस्मयान्निश्चलनेत्राम् मानिनीम् मनस्विनीम् अनौचित्यासहिष्णुयित्यर्थः विद्युद्गर्भः विद्युतगर्भः अन्तस्था यस्य य विद्युद्गर्भः अन्तर्लीनविद्यत्कः धीरः दृढः सन् वक्तुं मुखावलोकनप्रतिबन्धकत्वान्न विद्युता द्योतितव्यमिति भावः, स्तनितान्येवेजानि तैः स्तनितवचनैः वक्तुम् वार्तालाप कर्तुम् प्रक्रमेथाः उपक्रमस्व ।

प्रसंग—मेघ को यक्षिणी से सर्वप्रथम किस प्रकार क्या कहकर बात आरम्भ करनी चाहिये, इस बात को बतलाता हुआ यक्ष कहता है—

भर्तुर्मित्रं प्रियमविधवे विद्धि मामम्बुवाहं,
तत्सन्देशैर्हृदयनिहितैरागतं त्वत्समीपम् ।
यो वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यतां प्रोषितानां,
यन्द्रस्निग्धैर्ध्वनिभिरवलावेणिमोक्षोत्सुकानि ॥३६॥

अन्वय—अविधवे! माम् भर्तुं प्रियं मित्रम्, हृदयनिहितैः तत्सन्देशैः त्वत्समीपम् आगतम् अम्बुवाहम् विद्धि, यः मन्द्रस्निग्धैः ध्वनिभिः अवलावेणिमोक्षोत्सुकानि पथि श्राम्यताम् प्रोषितानाम् वृन्दानि त्वरयति ।

शब्दार्थ—अविधवे = सौभाग्यवती-सुहागिन! माम् = मुझे, भर्तुः प्रियम् मित्रम् = (अपने) पति का प्रियमित्र, हृदयनिहितैः तत्सन्देशैः = हृदय में रखे हुए उसके सन्देशों के साथ, त्वत्समीपम् आगतम् = तुम्हारे पास आया हुआ, अम्बुवाहम् विद्धि = मेघ जानो, यः = जो कि, मन्द्रस्निग्धैः ध्वनिभिः = गम्भीर और मधुर गर्जनों से, अवलावेणिमोक्षोत्सुकानि = स्त्रियों के वेणियों (चोटी की लटों को) को खोलने के लिये उत्सुक, पथि = मार्ग में, श्राम्यताम् = थके हुए, प्रोषितानाम् = प्रवासी यात्रियों के, वृन्दानि = समूहों को, त्वरयति = जल्दी जाने को प्रेरित करता है।

अनुवाद—हे सौभाग्यवती! मुझे (अपने) पति का प्रिय मित्र, हृदय में रखे हुए उसके सन्देशों के साथ तुम्हारे पास आया हुआ मेघ जानो, जो कि, अपनी गम्भीर मधुर गर्जनों से, स्त्रियों (वियोगिनी स्त्रियों) की वेणियाँ (चोटी की लटें) को खोलने के लिए उत्सुक, मार्ग में थके हुए, प्रवासी यात्रियों के समूहों को शीघ्रता से जाने को प्रेरित करता है।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि हे मेघ! सर्वप्रथम तुम उससे यह कहना कि मैं तुम्हारे पति का सन्देशवाहक प्रिय मित्र मेघ हूँ। वही मेघ जो कि अपनी वियोगिनी स्त्रियों की वेणियों को खोलने के लिए उत्सुक प्रवासी यात्रियों को शीघ्र ही अपने घर लौटने की प्रेरणा देता है। अतः वे मार्ग में थक कर भी बिना विश्राम किये हुए शीघ्र अपने घर लौट आते हैं।

विशेष—प्रस्तुत श्लोक में 'अविधवे' पद साभिप्राय प्रयुक्त हुआ है, जिससे कि यक्षिणी यह समझ सके कि उसका पति वियोग-सन्तप्त होकर भी अभी जीवित है, मरा नहीं है। इस प्रकार पद के साभिप्राय होने से यहाँ परिकर अलंकार है।

संस्कृत व्याख्या—हे अविधवे सौभाग्यवती सभर्तुके इत्यर्थः अनेक तस्याः पति जीवतीति सूचितम् । माम् भर्तुः तय पत्युः प्रियं मित्रम् प्रियं सुहृदम् (एवं) हृदयनिहितैः मनःस्थितैः तत्सन्देशैः तद्वार्ताभिः सह तव पत्युः सन्देशकथनार्थमित्यर्थः त्वत्समीपम् त्वदन्तिकम् आगतम् प्राप्तम् अम्बुवाहम् मेघम् विद्धि जानीहि, यः न केवलं वार्ताहरो मेघोऽपि तु यः मेघः मन्द्रस्निग्धैः गम्भीरमधुरैः ध्वनिभिः गर्जनैः करणैः अवलानां वेणयः तासां मोक्षे

उत्सुकानि तेषाम् अबलोवेणिमोक्षोत्सुकानि विरहिणीवेणिमोचनोत्कण्ठितानि पथि मार्गे श्राम्यताम् श्रान्तिमापन्नाम् प्रोषितानाम् प्रवासिनाम् वृन्दानि संघान् त्वरयति स्वगृहं प्रति त्वरया प्रत्यागमनाय प्रेरयति ।

मेघदूतम् (उत्तरमेघः)

प्रसंग—मेघ के उक्त कथन को सुनकर यक्षिणी की क्या स्थिति होगी, इसी बात को बतलाता हुआ यक्ष कहता है:—

NOTES

“इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा,
त्वामुत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया वीक्ष्य सम्भाव्य चैव ।
श्रोष्यत्यस्मात् परमविहिता सौम्य सीमन्तिनीनाम्,
कान्तोदन्तः सुहृदुपनतः संगमात् किञ्चिदूनः” ॥१४०॥

अन्वय—इति आख्याते (सति) पवनतनयम् मैथिली इव सा उन्मुखी उत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया (वाम् वीक्ष्य सम्भाव्य च अस्मात् परम् अवहिता (सती) श्रोष्यति एव, सौम्य! सीमन्तिनीनाम् सुहृदुपनतः कान्तोदन्तः संगमात् किञ्चित ऊनः (भवति) ।

शब्दार्थ—इति = इस प्रकार अर्थात् पूर्वोक्त “भर्तु मित्रं प्रियमविधवे” आदि प्रकार से, **आख्याते** = कहे जाने पर, **पवनतनयम् मैथिली इव** = पवन पुत्र हनुमान के प्रति सीता के समान, **सा** = वह मेरी प्रिया, **उन्मुखी** = ऊपर की ओर मुख करने वाली, (तथा) **उत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया** = उत्कण्ठा से विकसित (प्रसन्न) चित्त वाली, (होकर) **त्वाम् वीक्ष्य** = तुम्हें देखकर **सम्भाव्य च** = और सत्कार करके, **अस्मात् परम्** = इसके आगे, **अवहिता** = (सती) सावधान, सुस्थिर न होकर, **श्रोष्यति एव** = सुनेगी ही। हे सौम्य! **साधुजन!** **सीमन्तिनीनाम्** = स्त्रियों को, **सुहृदुपनतः** = (अपने पति) के मित्र द्वारा लाया गया, **कान्तोदन्तः** = पति का सन्देश, **संगमात्** = पति मिलन से, **किञ्चित् ऊनः** कुछ ही कम (होता है) अर्थात् वह लगभग पति मिलन के बराबर ही होता है।

अनुवाद—इस पूर्वोक्त प्रकार से कहे जाने पर पवन-पुत्र हनुमान के प्रति सीता के समान वह मेरी प्रिया ऊपर को मुख करने वाली (तथा) उत्कण्ठा से सुस्थित चित्त वाली (होकर) तुम्हें देखकर और सत्कृत कर, इसके आगे सावधान होकर (सब कुछ) सुनेगी ही (क्योंकि) हे भद्र! स्त्रियों के लिये (पति के) मित्र द्वारा लाया गया पति का समाचार पति मिलन से कुछ ही कम होता है, अर्थात् पति का समाचार लगभग पति मिलन के बराबर ही होता है।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि हे मेघ! जब तुम वहाँ जाकर सर्वप्रथम मेरी पत्नी से “भर्तु मित्रं प्रियमविधवे” आदि कहोगे तो वह ऊपर को मुख करके उत्कण्ठित होकर तुम्हें देखकर तुम्हारा सत्कार करेगी और फिर सुस्थित चित्त होकर सब कुछ सावधानी से ध्यानपूर्वक सुनेगी, क्योंकि स्त्रियों के लिए पति के मित्र द्वारा लाया गया पति का समाचार पति मिलन के लगभग बराबर ही होता है।

विशेष—इस श्लोक के “मैथिलीवोन्मुखी सा” में उपमालंकार है तथा अन्तिम पंक्ति में वर्णित तथ्य से पूर्वोक्त बात का समर्थन होने से यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार भी है।

संस्कृत-व्याख्या—इति एवं पूर्वोक्तप्रकारेण आख्याते कथिते सति पवनतनयम् वायुपुत्रम् हनूमन्तम् मैथिली सीता इव मत्प्रिया उन्मुखी ऊर्ध्वानना उत्कण्ठया उच्छ्वसितम् मदयं यस्याः सा उत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया

NOTES

औत्सुक्यविकसितचित्ता (सती) त्वाम् मेघाम् वीक्ष्य अवलोक्य सम्भाव्य सत्कृत्य च अस्मात् भर्तृ मैत्रीज्ञापनात् परम् अनन्तरीयं सर्वं वृत्तम् अवहिता अप्रमत्ता (सती) श्रोष्यति एव अवश्यमाकर्णयिष्यति। अत्र सीता-हनूमदुपमानात् यक्षिण्याः पातिव्रत्यं मेघस्य च दूतगुणसम्पन्नत्वं च सूचितम्। (यतो हि) हे सौम्य भद्र! सीमान्तिनीनाम् वधूनाम् (नारी सीमान्तिनी वधू-कोषः) सुहृदा उपनतः मित्रमुखोपनीतः कान्तोदन्तः पतिसन्देशः (वार्ता प्रवृत्तिवृत्तान्त उदन्त स्यात्:कोष) संगमात् पतिमिलनात् किञ्चित् ईषत् ऊनः हीनः (भवति)।

प्रसंग—यक्षिणी से कथनीय बातों की ओर संकेत करता हुआ यक्ष कहता है—

तामायुष्मन् मम च वचनादात्मनश्नचोपकर्तुम्

ब्रूया एवं तव सहचरो रामगिर्याश्रमस्थः।

अव्यापन्नः कुशलमवले पृच्छति त्वां वियुक्तः

पूर्वाभाष्यं सुलभविपदां प्राणिनामेतदेव॥४१॥

अन्वय—आयुष्मन्! मम वचनात् च आत्मनः उपकर्तुम् च ताम् एवम् ब्रूयाः, अवले तव सहचरः रामगिर्याश्रमस्थः, अव्यापन्नः, वियुक्तः त्वाम् कुशलम् पृच्छति, सुलभविपदाम् प्राणिनाम् एतत् एव पूर्वाभाष्यम्।

शब्दार्थ—आयुष्मन् = चरिञ्जीव! **मम वचनात् च** = मेरे कहने से और, **आत्मनः उपकर्तुम् च** = अपना उपकार करने के लिए भी, **ताम् एवम् ब्रूयाः** = उस मेरी प्रिया से इस प्रकार कहना—हे अवले = विवश स्त्री। **तव सहचरः** = तुम्हारा साथी (पति) **रामगिर्याश्रमस्थः** = राम गिरि के आश्रमों में रहता हुआ, **अव्यापन्नः** = जीवित (है) **वियुक्तः** = तुमसे बिछुड़ा हुआ वह, **त्वाम्-कुशलम् पृच्छति** = तुमसे कुशल पूछता है, **सुलभविपदाम् प्राणिनाम्** = विपत्तिग्रस्त जनों से अर्थात् ऐसे लोगों से जिन्हें अतिर्कित चाहे जब सहज ही विपत्तियाँ घेर लेती हैं, **एतदेव पूर्वाभाष्यम्** = यह ही सर्वप्रथम पूछने योग्य होता है अर्थात् ऐसे लोगों से सर्वप्रथम यही पूछना उचित होता है।

अनुवाद—हे चिरञ्जीव मेघ! मेरे कहने से और अपना उपकार करने के लिए भी (तुम) उस मेरी प्रिया से इस प्रकार कहना—हे अवले! तुम्हारा जीवन साथी (पति) रामगिरि के आश्रमों में रहने वाला जीवित (है) तुमसे बिछुड़ा हुआ वह तुमसे कुशल पूछ रहा है। (क्योंकि) ऐसे लोगों से, जिन्हें सहज ही विपत्तियाँ घेर लेती हैं, यह बात ही सर्वप्रथम पूछना उचित होता है।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि मेघ! वहाँ जाकर तुम मेरे कहने के अनुसार तथा स्वयं भी उस पर अपना उपकार करने की दृष्टि से उससे सर्वप्रथम यही कहना कि हे अवले तुम्हारा पति रामगिरि आश्रमों में रहता है और जीवित है, तुमसे बिछुड़कर वह तुम्हारी कुशलता जानना चाहता है, क्योंकि अतिर्कित विपत्तियों से घिरे हुए लोगों से पहले यही पूछना उचित होता है।

विशेष—प्रस्तुत श्लोक के चतुर्थ चरण में वर्णित बात से पूर्वोक्त बातों का समर्थन किया जाता है अतः यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

संस्कृत व्याख्या—आयुष्मन् चिरञ्जीव! मम. यक्षस्य वचनात् प्रार्थनावचनात् च आत्मनः स्वस्य च उपकर्तुम् परोपकारेणात्मानं कृतार्थयितुमित्यर्थः (परोपकारेण आत्मनोऽप्युपकारो जायते) ताम् पूर्वोक्ताम् एवम् प्रकारेणानेन ब्रूयाः कथयेः—हे अवले विवशतामापन्ने कामिनि! तव यक्षिण्याः जीवनसहचरः पतिरित्यर्थः राम-गिरेः आश्रमेषु तिष्ठतीति रामगिर्याश्रमस्थः रामगिरिनामकपर्वताश्रमस्थितः (सन्) अव्यापन्न जीवितः (अस्ति)

वियुक्तः त्वया विरहितः सन् त्वाम् यक्षिणीम् कुशलम् क्षेमम् पृच्छति तव कुशलक्षेमं विज्ञातुमिच्छतीत्यर्थः (यतो हि) सुलभविपदाम् अयत्न-सिद्धापदाम् प्रथमं प्रष्टव्यम् (भवति)।

मेघदूतम् (उत्तरमेघः)

प्रसंग—यक्ष कहता है कि मेघ! इसके बाद तुम यक्षिणी से यह कहना—

NOTES

अङ्गेनाङ्गं प्रतनु तनुना गाढतप्तेन तप्तं
सास्रेणास्रदुतमविरतोत्कण्ठमुत्कण्ठतेन।
उष्णोच्छ्वास समधिकतरोच्छ्वासिना दूरवर्ती
संकल्पैस्तैर्विशति विधिना वैरिणा रूद्धमार्गः ॥४२॥

अन्वय—दूरवर्ती वैरिणा विधिना रूद्धमार्गः (तव सहचरः) तनुना गाढतप्तेन सास्रेण उत्कण्ठतेन समधिकतरोच्छ्वासिना (स्वकीयेन) अङ्गेन प्रतनु तप्तम् अस्रदुतम् अविरतोत्कण्ठम् उष्णोच्छ्वासम् (त्वदीयम्) अङ्गम् तैः संकल्पैः विशतिः।

शब्दार्थ—दूरवर्ती = दूर स्थान स्थित, वैरिणा विधिना = विरोधी दैव के द्वारा, रूद्धमार्गः = अवरुद्ध मार्ग वाला (तुम्हारा सहचर), तनुना = दुर्बल, गाढतप्तेन = अत्यधिक संतप्त, सास्रेण = अश्रु सहित, समधिकतरोच्छ्वासिना = बहुत अधिक श्वास लेने वाला अर्थात् विरहवश लम्बी लम्बी आहें भरने वाला, (स्वकीयेन-अपने) अङ्गेन = शरीर से, प्रतनु = कृश, अस्रदुतम् = आँसुओं से भीगे हुए, अविरतोत्कण्ठम् = निरन्तर उत्कण्ठित, उष्णोच्छ्वासम् = तीव्र श्वास लेने वाले, तप्तम् = सन्तप्त, उत्कण्ठतेन = विरह वेदनायुक्त, (त्वदीयम्—तुम्हारे) अङ्गम् = शरीर में, तैः = उन अपने द्वारा संवेद्य, संकल्पैः = मनोरथों से, विशति = प्रवेश करता है।

अनुवाद—दूर देश स्थित (तथा) विरोधी दैव द्वारा जिसका मार्ग रोक दिया गया है (ऐसा यह तुम्हारा सहचर) दुर्बल अत्यधिक संतप्त, अश्रु सहित विरह वेदना युक्त, लम्बी-लम्बी साँसें भरने वाले (अपने) शरीर से, कृश, सन्तप्त, आँसुओं से भीगे, निरन्तर विरह वेदनायुक्त, तीव्र निःश्वास छोड़ने वाले (तुम्हारे) शरीर में उन (अपने द्वारा संवेद्य) मनोरथों से प्रवेश करता है अर्थात् तुम्हारे साथ एकीभाव को प्राप्त कर रहा है।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि मेघ! तुम मेरी प्रिया से यह कहना कि यद्यपि मैं तुमसे बहुत-दूर हूँ और दुर्दैव ने मेरे मार्ग को भी रोक रखा है, जिससे कि मैं सशरीर तुम्हारे पास नहीं आ सकता हूँ, तथापि मैं अपनी मानसिक कल्पनाओं से ही, अपने तुम से भी अधिक क्षीण, सन्तप्त, साश्रु, वेदनायुक्त तथा दीर्घ निःश्वास भरने वाले शरीर से, तुम्हारे कृश, तप्त, अश्रुओं से भीगे, विरह वेदना युक्त, तीव्र निःश्वास भरने वाले शरीर का आलिंगन करता रहता हूँ और इस प्रकार मैंने तुम्हारे साथ पूर्ण एकीभाव प्राप्त कर लिया है, भले ही शरीर से अलग रहूँ।

विशेष—प्रस्तुत श्लोक में सम अलंकार है, क्योंकि यहाँ दो परस्पर समान पदार्थों का औचित्यपूर्ण वर्णन किया गया है।

संस्कृत व्याख्या—दूरं वर्तते इति दूरवर्ती दूरस्थानस्थितः (अथ च) वैरिणा विधिना विरोधिना दैवेन रूद्धमार्गः प्रतिषिद्धवर्त्मा (तव सहचरः) तनुना कृशेन गाढ-तप्तेन अतिसन्तप्तेन अस्त्रैः सह वर्तते सास्रम् तेन उत्कण्ठतेन विरहवेदनायुक्तेन समधिकतरम् उच्छ्वसिति तेन समधिकतरोच्छ्वासिना दीर्घतरनिःश्वासिना अङ्गेन स्वकीयेन शरीरेण, प्रतनु कृशन् तप्तम् विरहपीडया सन्तप्तम् अस्रदुतम् अश्रुक्लिन्नम् (अश्रु नेत्राम्बु रोदनं चास्रमस्रु

चकोषः) अविरतोत्कण्ठम् अविच्छिन्नवेदनम् उष्णोच्छ्वासम् तीव्रनिःश्वासम् (तिग्मं तीक्ष्णं खरं तीव्रं चण्डमुष्णं पटु स्मृतम् कोषः) अङ्गम् त्वदीयं शरीरम् तैः स्वसंवेद्यैः संकल्पैः मनोरथैः विशति प्रविशति, स्वमानसिक कल्पनाभिः त्वया सह एकीभवतीति भावः।

NOTES

प्रसंग—यक्ष कहता है कि इसके बाद तुम यह कहना—

शब्दाख्येयं यदपि किल ते यः सखीनां पुरस्तात्,

कर्णे लोलः कथयितुमभूदानस्पर्शलोभात्।

सोऽतिक्रान्तः श्रवणविषयं लोचनाभ्यामदृश्य—

स्वामुत्कण्ठाविरचितपदं मन्मुखेनेदमाह।।43।।

अन्वय—यः ते सखीनाम् पुरस्ताम् शब्दाख्येयम् अपि यत् (तत्) आननस्पर्श-लोभात् कर्णे कथयितुम् लोलः अभूत् किल, श्रवणविषयम् अतिक्रान्तः लोचनाभ्याम् अदृश्यः सः त्वाम् उत्कण्ठाविरचितपदम् इदम् मन्मुखेन आह।

शब्दार्थ—यः जो, ते = तुम्हारी, सखीनाम् = सखियों के, पुरस्तात् = आगे या सामने, शब्दाख्येयम् = ऊँचे स्वर से अथवा स्पष्ट रूप से कहने योग्य, अपि = भी यत् (जो कुछ) होता था—तत् = (उसे भी) आननस्पर्शलोभात् = मुख के स्पर्श के लोभ से अर्थात् अधरपान के लोभ से, कर्णे कथयितुम् = कान में कहने के लिए, लोलः, अभूत् = लालायित रहता था, किल = निश्चित रूप से, श्रवणविषयम् अतिक्रान्तः = कानों की पहुँच से बाहर, लोचनाभ्याम् अदृश्यः = नेत्रों से न दिखने योग्य, सः = वह अर्थात् वह तुम्हारा प्रियतम, त्वाम् = तुम से, उत्कण्ठाविरचितपदम् = उत्कण्ठापूर्वक विरचित शब्दों वाला, इदम् = यह (सन्देश) मन्मुखेन = मेरे द्वारा, आह = कहता है।

अनुवाद—जो तुम्हारी सखियों के सामने ऊँचे स्वर से कहने योग्य भी जो कुछ (होता था उसे भी) मुख के स्पर्श के लोभ से कान में कहने के लिए लालायित रहता था, कानों की पहुँच से बाहर और नेत्रों द्वारा न देखने योग्य वह (तुम्हारा प्रियतम) तुमसे उत्कण्ठापूर्वक रचित पदों वाला यह (सन्देश) मेरे द्वारा कहला रहा है।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि हे मेघ तुम प्रिया से कहना कि जो तुम्हारा प्रियतम संयोग काल में तुम्हारी सखियों के सामने स्पष्ट शब्दों में कहने योग्य भी बात को मुख स्पर्श के लोभ से कान में कहने के लिए लालायित रहा करता था, वही अब तुम से इतनी दूर है कि न तो तुम अब उसकी बात सुन ही सकती हो और न देख ही सकती हो, अतः अब इस स्थिति में उसने बड़ी उत्कण्ठापूर्वक यह सन्देश, तुमसे मेरे द्वारा कहलाया है।

संस्कृत व्याख्या—यः यक्षः ते तब सखीनाम् सहचरीणाम् पुरस्तात् समक्षम् शब्दाख्येत् उच्चैर्वाक्यम् स्पष्टतः कथनीयम् अपि यत् तद् वचनमपि आननस्य स्पर्शस्य लोभस्तस्मात् आननस्पर्शलोभात् त्वन्मुखसंस्पर्शलोभात् अधरपानलोभादित्यर्थः कर्णे श्रवणे कथयितुं गदितुं गदितुम् लोलः लालसः अभूत् आसीत् किल (लोलुपो लोलुभो लोलो लालसो लम्पटोऽपि च-कोष) श्रवणविषयम् कर्णपथम् अतिक्रान्तः पारंगतः लोचनाभ्याम् नेत्राभ्याम् अदृश्यः अनवलोकनीयः सः तव प्रियतमः त्वाम् यक्षिणीम् उत्कण्ठया विरचितानि पदानि यस्य तत् उत्कण्ठाविरचितपदम् विरहवेदनानिर्मितवाक्यम् (पद शब्दे-च वाक्ये चकोषः) इदम् वक्ष्यमाणम् वचनम् मन्मुखेन मद्द्वारा आह-कथयति मद्वाक्ये धानेन स एवं ब्रू ते इत्यर्थः।

श्यामास्वङ्गं चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातं

वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां वर्हभारेषु केशान्।

उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रू विलासान्

हन्तैकस्मिन् क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति ।। 44 ।।

NOTES

अन्वय—श्यामासु अङ्गम् चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातम्, शशिनि वक्त्रच्छायाम् शिखिनाम् वर्हभारेषु केशान् प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रू विलासान् उत्पश्यामि, हन्त ? चण्डि क्वचित् अपि एकस्मिन् ते सादृश्यम् न अस्ति।

शब्दार्थ—श्यामासु = प्रियङ्गुलताओं में, (तेरे) अङ्गम् = शरीर की, चकित-हरिणीप्रेक्षणे = चकित (भयभीत) हरिणियों की चितवन में (तेरी) दृष्टिपातम् = चितवन की, शशिनि = चन्द्रमा में, (तेरे), वक्त्रच्छायाम् = मुख की कान्ति की, शिखिनाम् = मयूरों के, वर्हभारेषु = पङ्खों या पुच्छों के समूहों में, (तेरे), केशान् = केशों की, प्रतनुषु = सूक्ष्म या पतली, नदीवीचिषु = नदियों की तरंगों में, (तेरे) भ्रू विलासान् = भ्रू भङ्गों की, उत्पश्यामि = सम्भावना करता हूँ, हन्त = खेद की बात है कि, हे चण्डि = क्रोध करने वाली—कोपनशील। क्वचित् अपि = कहीं भी, एकस्मिन् = एकत्र या किसी एक पदार्थ में, ते = तेरी, सादृश्यम् = समानता, न अस्ति = नहीं है।

अनुवाद—(मैं) प्रियङ्गु लताओं पर (तेरे) शरीर की, चकित (भयभीत) हरिणियों की चितवन पर (तेरी) चितवन की, चन्द्रमा पर (तेरे) मुख की कान्ति की, मयूरों के पुच्छ समूहों पर (तेरे) केशों की (तथा) सूक्ष्म पतली नदियों की तरंगों पर (तेरे) भ्रू विलासों की सम्भावना करता हूँ (किन्तु) खेद की बात है कि हे कोपनशीले कहीं भी एक वस्तु में भी समानता नहीं है अर्थात् तेरी समानता नहीं देख पाता हूँ।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि हे मेघ! तुम मेरी प्रिया से यह कहना कि मैं तुम्हारे समान वस्तु को प्रकृति पदार्थों में खोजने का प्रयास करता हूँ जिससे कि कुछ मनोविनोद हो सके पर कहीं भी तुम्हारे समान कोई वस्तु नहीं दीख पड़ती, प्रियङ्गु लताओं पर तुम्हारे शारीरिक सौन्दर्य को, हरिणियों के नेत्रों में तुम्हारी चितवन को, चन्द्रमा पर तुम्हारी मुखच्छाया को, मयूर पुच्छों पर तुम्हारे भ्रू विलासों को खोजता हूँ, पर कहीं भी तुम्हारी समानता नहीं देख पाता हूँ। इन सबसे तुम्हारा सौन्दर्य भिन्न है। अपने प्रियजन के समान पदार्थों को देखने से विरही जनों का यद्यपि कुछ मनोविनोद होता है, तथापि यहाँ मेरे लिये यह भी सम्भव नहीं है। अर्थात् तुम्हारा सौन्दर्य अनुपम है।

संस्कृत व्याख्या—श्यामासु प्रियङ्गुलतासु (श्यामा महिलाद्वया लता गोवन्दनी गुन्द्रा प्रियङ्गुः फलिनी फली-कोशः) अङ्गम् (तव) शरीरम् चकितश्च ताः हरिण्यः तासाम् प्रेक्षणं तस्मिन् चकितहरिणीप्रेक्षणे भयवश चकितमृगीविलोकने (तव) दृष्टिपातम् दृष्टिक्षेपम् शशिनि चन्द्रमसि (तव) वक्त्रच्छायाम् आननच्छविम् शिखिनाम् मयूराणाम् वर्हभारेषु पुच्छसमूहेषु (तव) केशान् कुन्तलान्, प्रतनुषु स्वल्पासु नदीवीचिषु सरित्तरङ्गेषु (तव) भ्रूविलासान् भ्रूभङ्गान् उत्पश्यामि सम्भावयामि, हन्त विषादे (हन्त हर्षेऽनुकम्पायां वाक्यारम्भविषादयोः कोशः) चण्डि कोपनशीले क्वचित् अपि कुत्रापि एकस्मिन् वस्तुनि ते तव सादृश्यम् साम्यम् नास्ति न वर्तते।

प्रसंग—यक्ष अपनी प्रिया को सन्देश देता हुआ कहता है—

NOTES

अन्वय—प्रणयकुपिताम् त्वाम् धातुरागैः शिलायाम् आलिख्य यावत् आत्मानम् ते चरणपतितम् कर्तुम् इच्छामि तावत् मुहुः उपचितैः अस्रैः मे दृष्टिः आलुप्यते, क्रूर कृतान्तः तस्मिन् अपि नौ सङ्गमम् न सहते।

शब्दार्थ—प्रणयकुपिताम् = प्रणय कोप अर्थात् मान से कुपित या रूठी हुई, त्वाम् = तुमको धातुरागैः = पर्वतीय गेरू आदि के रंगों से, शिलायाम् = शिला पर आलिख्य चित्रित कर, यावत् = ज्यों ही, आत्मानम् = अपने को, ते चरणपतितम् = तुम्हारे चरणों पर गिरा हुआ, कर्तुम् इच्छामि = करना चाहता हूँ, तावत् = त्यों ही, मुहुः = बार बार, उपचितैः = बड़े हुए, अस्रैः = आसुओं से, मे दृष्टि आलुप्यते = मेरी दृष्टि लुप्त हो जाती है अर्थात् भर जाती है। क्रूरः कृतान्तः = निर्दय दैव, तस्मिन् = अपि उस चित्र में भी, नौ = हम दोनों का, सङ्गमम् = मिलना, न सहते = सहन नहीं करता अर्थात् चित्र द्वारा भी हम दोनों का मिलना उसे अच्छा नहीं लगता।

अनुवाद—मानवश कुपित हुई तुमको पर्वतीय गेरू आदि के रंगों से शिला पर चित्रित कर ज्यों ही मैं अपने को तुम्हारे चरणों पर (क्षमा याचना के लिये) गिराना चाहता हूँ, त्यों ही बार-बार उमड़े हुए आँसुओं से मेरी दृष्टि भर जाती है अर्थात् बन्द हो जाती है। निर्दय दैव उस चित्र में भी हम दोनों का मिलना सहन नहीं करता।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि मेघ! तुम मेरी प्रिया से कहना कि जब कभी तुमको मान से रूठी पाकर मैं शिला पर गेरू आदि के रंगों से तुम्हारा चित्र बनाकर तुम्हारे चरणों पर गिर कर क्षमा याचना करना चाहता हूँ, तब बार-बार उमड़ते हुए आँसुओं से मेरी दृष्टि बन्द हो जाती है इससे स्पष्ट होता है कि निर्दय दैव चित्र द्वारा भी हम लोगों का मिलना सहन नहीं करता अर्थात् वह यह भी नहीं चाहता कि चित्र द्वारा भी हम दोनों का मिलना हो सके।

विशेष—प्रस्तुत श्लोक के चतुर्थ चरण में अर्थान्तरन्यास अलंकार की ध्वनि है।

संस्कृत व्याख्या—प्रणकुपिताम् प्रेमातिशयेन कुपितावस्थायुक्ताम् त्वाम् यक्षिणीम् त्वप्रतिकृतिमित्यर्थः ६ धातुरागैः गैरिकाढिरञ्जकद्रव्यैः शिलायाम् शिलापट्टे आलिख्य चित्तितां कृत्वा यावत् आत्मानम् स्वम् स्वप्रतिकृतिम् वा ते तव चित्रगताया इत्यर्थः चरणपतितं कर्तुम् पादपतितं विधातुम् इच्छामि अभिलषामि तावत् मुहुः पुनः पुनः उपचितैः प्रवृद्धैः अस्रैः अश्रुभिः मे मम दृष्टि आलुप्यते आव्रियते (दृष्टिप्रतिबन्धा-दालेखनमवरुध्यते इत्यर्थः) (एवं) क्रूरः नृशंसः कृतान्तः दैवम् (नृशंसो धातुकः क्रूरः) तस्मिन्नपि चित्रेऽपि नौ आवयोः सङ्गमम् मिलनम् सहवासम् वा न सहते न अनुमन्यते (यद्दैवमावयोः सङ्गमलेखनमपि न सहते तत् साक्षात् सङ्गमम् न सहते इति किमु वक्तव्यम्।)

प्रसंग—उक्त प्रसंग में ही यक्ष कहता है—

मामाकाशप्रणिहित भुजं निर्दयाश्लेषहेतो—

लंस्थायास्ते कथमपि मया स्वप्नसंदर्शनेषु।

NOTES

अन्वय—स्वप्नसंदर्शनेषु मया कथमपि लब्धायाः ते निर्दयाश्लेषहेतोः आकाशप्रणिहितभुजम् माम् पश्यन्तीनाम् स्थलीदेवतानाम् मुक्तास्थूलाः अश्रुलेशाः तरुक्सलयेषु बहुशः न पतन्ति न खलु ।

शब्दार्थ—स्वप्नसंदर्शनेषु = स्वप्नों के अनुभवों में, मया = मुझ यक्ष के द्वारा, कथमपि = किसी भी प्रकार, लब्धायाः = प्राप्त की गई, ते = तुम्हारे, निर्दयाश्लेषहेतोः = गाढालिङ्गन के प्रयोजन से, आकाशप्रणिहितभुजम् = आकाश में (शून्य में) फैलाई गई भुजाओं वाले, माम् = मुझ यक्ष को, पश्यन्तीनाम् = देखती हुई, स्थलीदेवतानाम् = वनस्थली की देवियों के, मुक्तास्थूलाः = मोती के समान मोटे, अश्रुलेशाः = आँसुओं के कण, तरुक्सलयेषु = वृक्षों के पल्लवों पर, बहुशः = कई बार प्रायः, न पतन्ति = नहीं गिरती हैं, न खलु = ऐसा निश्चय ही नहीं है अर्थात् अवश्य गिरते हैं ।

अनुवाद—स्वप्नों के अनुभव (दिखने) में मेरे द्वारा किसी प्रकार प्राप्त हुई तुम्हारे गाढालिङ्गन के प्रयोजन से शून्य में फैलाई गई भुजाओं वाले मुझे देखती हुई वनस्थली की देवियों के मोतियों के समान स्थूल (बड़े) आकाश, वृक्षों के पल्लवों पर कई बार नहीं गिरते हैं । निश्चयतः ऐसा नहीं अपितु गिरते हैं ।

भावार्थ—यक्ष मेघ से कहता है कि तुम मेरी पत्नी से कहना कि जब कभी किसी भी प्रकार स्वप्न में मैं तुम्हें पा लेता हूँ और तुम्हारा गाढालिङ्गन करने के लिए अपनी भुजायें शून्य में फैला देता हूँ तब मेरी इस उन्मत्त जैसी दशा को देखकर वन देवियाँ भी रोने लगती हैं ।

प्रस्तुत पद्य में 'स्वप्न दर्शन' नामक तृतीय मनोविनोद का वर्णन किया गया है ।

विशेष—यहाँ 'मुक्तास्थूलाः' पद में उपमालंकार है ।

संस्कृत व्याख्या—स्वप्नसंदर्शनेषु स्वप्नगतानुभवेषु मया यक्षेण कथमपि ये न केनापि प्रकारेण लब्धायाः गृहीतायाः दृष्टाया, इत्यर्थः ते तव यक्षिण्याः निर्दयं यथा स्यात्तथा आश्लेषः निर्दयाश्लेषः स एव हेतुः तस्य निर्दयाश्लेषहेतोः गाढालिङ्गनकारणात् आकाशे प्रणिहितौ भुजौ येन तम् आकाशप्रणिहितभुजम् निर्विषयप्रसारितबाहुम् माम् यक्षम् पश्यन्तीनाम् विलोकयन्तीनाम् स्थलीदेवतानाम् वनस्थलीदेवीनाम् मुक्ता इव स्थूला मौक्तिकपरिमाणाः अश्रुलेशाः वाष्पविन्दवः तरुक्सलयेषु पादपपल्लवेषु बहुशः प्रायः न पतन्ति नहि निष्पतन्ति इति न खलु अपि तु अवश्यमेव पतन्ति ।

प्रसंग—उक्त प्रसंग में ही यक्ष कहता है—

भित्वा सद्यः किसलयपुटान् देवदारुद्रुमाणां

ये तत्क्षीरस्तु तिसुरभयो दक्षिणेन प्रवृत्ताः ।

आलिङ्ग्यन्ते गुणवति मया ते तुषारार्द्रावाताः

पूर्वं स्पृष्टं यदि किल भवेदङ्गमेभिस्तवेति ।। 47 ।।

अन्वय—गुणवति ! देवदारुद्रुमाणाम् किसलयपुटान् सद्यः भित्वा तत्क्षीरस्तु-रभयः ये दक्षिणेन प्रवृत्ताः मया ते तुषारार्द्रावाताः 'एभिः' यदि किल तव अङ्गम् पूर्वम् स्पृष्टम् भवेत्, इति आलिङ्ग्यन्ते ।

NOTES

शब्दार्थ—गुणवति = हे गुणशालिनी ! सुशीलतादि गुणों वाली । देवदारुद्रु माणाम् = देवदारु नामक वृक्षों के, किसलयपुटान् = नव पल्लवों के गुच्छों या उनकी परतों को, भित्वा = खोलकर के सद्यः = शीघ्र ही, तत्क्षीरसु तिसुरभयः = उनके दूध के प्रवाह से सुगन्धित, ये-जो, दक्षिणेन = दक्षिण दिशा की ओर प्रवृत्ताः = चलते हैं । मया = मेरे द्वारा, तुषारार्द्र वाताः = वे हिमालय पर्वत के पवन एभिः यदि किल तव अङ्गम् पूर्वम् स्पृष्ट भवेत्" इन के द्वारा सम्भवतः तुम्हारे शरीर का स्पर्श पहले ही कर ही लिया गया होगा, इति आलिङ्ग्यन्ते = इसलिये आलिङ्गित होते हैं ।

अनुवाद—हे गुणशालिनी, देवदारु नामक वृक्षों के नव पल्लवों को तत्काल भेद कर उनके दुग्ध के प्रवाह से सुगन्धित (होकर) जो दक्षिण दिशा की ओर चलते या बहते हैं मेरे द्वारा हिमालय पर्वत के वे पवन "इनके द्वारा सम्भवतः पहले तुम्हारे शरीर का स्पर्श कर ही लिया गया होगा" इसलिये आलिङ्गित किये जाते हैं, अर्थात् इनका इसलिये आलिङ्गन करता हूँ क्योंकि ये पहले तुम्हारे शरीर से जरूर स्पृष्ट हो चुके होंगे ।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि तुम मेरी प्रिया से यह कहना कि जो पवन देवदारु के वृक्षों के नव पल्लवों के गुच्छों को भेद कर और उनकी सुगन्धि को ग्रहण कर दक्षिण दिशा की ओर बहते हैं मैं उनका इसलिये आलिङ्गन करता हूँ क्योंकि ये पहले तुम्हारे शरीर का पहले स्पर्श करके यहाँ होंगे ।

प्रस्तुत पद्य में 'प्रियजन द्वारा स्पृष्ट वस्तु का स्पर्श करना' नामक चतुर्थ मनोविनोद का वर्णन किया गया है ।

संस्कृत व्याख्या—गुणाः सौशील्यसौकुमार्यादयः अस्याः सन्तीति गुणवती तत्सम्बोधने हे गुणवति गुणशालिनी ! देवदारुद्रुमाणाम् देवदारुवृक्षाणाम् किसलय-पुटाननवपल्लपुटान् सद्यः तत्क्षणमैव भित्वा विदार्य, तेषां क्षीरस्य स्त्रुतयः ताभिः सुरभयः तत्क्षीरसुतिसुरभयः देवदारुद्रुमदुग्धनिष्यन्दसुगन्धिताः ये वाताः दक्षिणेन दक्षिणवर्त्मना प्रवृत्ताः चलिताः, मया यक्षेण ते तुषारार्द्रवाताः हिमालयपर्वतपवनाः "एभिः वातैः यदि किल सम्भवतः तत् यक्षिभ्याः अङ्गम् शरीरम् पूर्व प्रथमम् स्पृष्टम् परामृष्टम् भवेत् स्यात्" इति अस्माद्धेतोः आलिङ्ग्यन्ते आलिङ्गिता भवन्ति ।

प्रसंग—अपनी प्रिया को सन्देश देता हुआ यक्ष कहता है—

संक्षिप्येत क्षण इव कथं दीर्घयामा त्रियामा,

सर्वावस्थास्वहरपि कथं मन्दमन्दातपं स्यात् ।

इत्थं चेतश्चटुलनयने दुर्लभप्रार्थनं मे

गाढोष्माभिः कृतमशरणं त्वद्वियोगव्यथाभिः ॥ 48 ॥

अन्वय—दीर्घयामा त्रियात्मा क्षणः इव कथम् संक्षिप्येत, अहः अपिसर्वावस्थासु मन्दमन्दातपम् कथम् स्यात्, चटुलनयने इत्थम् दुर्लभप्रार्थनम् मे चेतः गाढोष्माभिः त्वद्वियोग व्यथाभिः अशरणम् ।

शब्दार्थ—दीर्घयामा = लम्बे-लम्बे प्रहरों वाली, त्रियामा = रात्रि, क्षणः इव = क्षण के समान— एक क्षण के बराबर, कथम् = किसी प्रकार, संक्षिप्येत = छोटी हो जाये, अहः अपि = दिन भी, सर्वावस्थासु = सभी स्थितियों में या सब कालों या ऋतुओं में, कथम् = किसी प्रकार, मन्दमन्दातपम् स्यात् = अत्यन्त कम धूप वाला अथवा अत्यन्त कम दुःख देने वाला हो जाये, चटुलनयने = हे चञ्चल नेत्रों वाली । इत्थम् = इस प्रकार, दुर्लभप्रार्थनम् = दुष्प्राप्य मनोरथों वाला, मे.चेतः = मेरे चित्त को, गाढोष्माभिः = तीव्र ताप देने वाली, त्वद्वियोगव्यथाभिः = तुम्हारे वियोग की व्यथाओं ने, अशरणम् कृतम् = असहाय या अनाथ बना डाला है ।

अनुवाद—लम्बे-लम्बे प्रहरों वाली रात्रि किस प्रकार एक क्षण के बराबर छोटी हो जाय, (और) दिन भी सभी कालों में किस प्रकार अत्यन्त कम ताप देने वाला हो जाय। हे चञ्चल नेत्रों वाली प्रिये, इस प्रकार दुष्प्राप्य मनोरथों वाले मेरे चित्त को, तीव्र ताप देने वाली तुम्हारे वियोग की व्यथाओं ने अनाथ बना डाला है।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि हे मेघ तुम मेरी प्रिया से कहना कि “मैं तीव्र तापदायिनी तुम्हारे वियोग की व्यथाओं से अत्यन्त सन्तप्त रहता हूँ। अतएव मैं यही चाहता रहता हूँ कि किसी भी प्रकार ये लम्बी रात्रियाँ एक क्षण के बराबर हो जायें और दिन भी सभी कालों में अत्यल्प तापदायक बन जाये, हे चञ्चल नेत्रों वाली प्रिये मैं सदा इसी प्रकार की असम्भव कल्पनायें किया करता हूँ।

संस्कृत व्याख्या—दीर्घाः यामाः यस्यां सा दीर्घयामा लम्बायमानप्रहरा विरह-वेदनया तथा प्रतीयमानेत्यर्थः त्रियामा रात्रिः क्षणः लवः निमेषो वा इव यथा कथम् केनापि प्रकारेण संक्षिप्येत लघू-क्रियेत। अहः दिनम् अपि सर्वावस्थासु सर्वेस्थितिषु सर्वकालेष्वित्यर्थः कथम् केनापि प्रकारेण मन्दमन्दातपम् स्यात् अत्यल्पसन्तापम् भवेत्। चटुलनयने चञ्चलाक्षि। इत्थम् अनेन प्रकारेण दुर्लभा प्रार्थना यस्य तत् दुर्लभप्रार्थनम् दुष्प्राप्यमनोरथम् मे मम चेतः चित्तम् गाढा उष्मा यासां ताभिः गाढोष्माभिः अतितीक्ष्णतापाभिः त्वद्वियोगव्यथाभिः त्वद्विरहपीडाभिः अशरणम् असहायम् कृतम् विहितम्।

संस्कृत सरलार्थ—यक्षः कथयति—हे जलद ! त्वमतिप्रियामेवं व्रूयाः विरह-रात्रीणां दीर्घप्रहरत्वात् दिनानामपि प्रगाढातपत्वात् तीव्रतापाभिः त्वद्वियोगपीडाभिः व्यथितम् अत एव दुष्प्राप्यकल्पनापरं मम चेतः असहायं जातम्।

समासादि—दीर्घा यामाः यस्यां सा दीर्घयामा, त्रयः वामाः यस्यां सा त्रियामा, सर्वाश्च ताः अवस्थाः तासु सर्वावस्थासु, मन्द प्रकारः मन्दमन्दः, आतपः यस्मिन् तत् मन्दमन्दातपम् चटुलानि नयनानि यस्याः सा तत्सम्बोधने चटुलनयने दुर्लभा यस्या तत् दुर्लभप्रार्थनम्, गाढः ऊष्मा यासां ताभिः गाढोष्माभिः तव वियोगः तस्य व्यथाः ताभिः त्वद्वियोगव्यथाभिः न विद्यते शरणं यस्य तत् अशरणम्।

व्याकरणादि—संक्षिप्येत सम्+क्षिप् धातोः भाव कर्म में आत्मने पद में विधिलिङ्, प्र. पु. एकवचन, स्यात्-अस्-धातोः विधिलिङ्, प्र. पु. एकवचन, इत्थम्-इदम् शब्द से थम् (थम्) प्रत्यय इदम् को इत् आदेश, मन्दमन्दः मन्द प्रकारः मन्दमन्दः अत्र 'प्रकारे गुण वचनस्येति द्वित्वम्' कर्मधारयवदुत्तरेषु इति कर्मधारय-वद्भावात् सुपो लुक्। अहः अहन् शब्दस्य प्रथमैकवचने रूपम्।

टिप्पणी—सामान्यतः चार प्रहर रात्रि में और चार ही दिन में होते हैं, प्रहरों का परिणाम समान ही रहता है, पर विरह काल में पीड़ा वश रात्रियाँ लम्बी प्रतीत होने लगती हैं। अतः 'दीर्घयामा' कहा गया है, त्रियामा-यद्यपि रात्रि में भी चार प्रहर होते हैं तथापि आदि और अन्त के आधे-आधे प्रहर की गणना दिन में की जाती है अतः यहाँ रात्रि को त्रियामा कहा गया है।

प्रसंग—अपनी प्रिया को सन्देश देता हुआ यक्ष कहता है—

नन्वात्मानं बहु विगणयन्नात्मनैवावलम्बे,
तत्कल्याणि! त्वमपि नितरां मां गमः कातरत्वम्।
कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण॥४९॥

अन्वय—ननु बहु विगणयन् आत्मना एव आत्मानम् अवलम्बे; तत् कल्याणि! त्वम् अपि नितरां कातरत्वम् मां गमः, अत्यन्तं सुखं वा एकान्ततः दुःखं कस्य उपनतम्, दशा चक्रनेमिक्रमणे नीचैः उपरि च गच्छति।

NOTES

शब्दार्थ—ननु = सम्बोधनार्थ प्रयुक्त अव्यय है अतः हे प्रिये! बहु = बहुत कुछ, विगणयन् = विचार करता हुआ, आत्मना एव = अपने से ही, आत्मानम् = अपने को, अवलम्बे = सहारा दे रहा हूँ, तत् = इसलिए, कल्याणि! = हे कल्याण कारिणी सुभगे! त्वम् अपि = तुम भी, नितराम् = अत्यन्त, कातरत्वम् = अधीरता को, मा गमः = मत प्राप्त करो, अत्यन्तम् सुखम् = अत्यन्त सुख अर्थात् नित्य स्थायी सुख, वा = अथवा, एकान्ततः दुःखम् = नित्य नियमतः स्थायी दुःख, कस्य उपनतम् = किसको प्राप्त होता है, दशा = अवस्था, चक्रनेमिक्रमेण = पहिये की परिधि सी, नीचैः उपरि च = नीचे और ऊपर, गच्छति = जाती है।

अनुवाद—हे प्रिये, बहुत कुछ विचार करता हुआ मैं अपने से ही अपने को, सहारा दे रहा हूँ इसलिए हे सुभगे, तुम भी अत्यधिक अधीरता को मत प्राप्त करो, अत्यन्त सुख अथवा ही दुःख किस को मिला है अर्थात् किसी को नहीं। (प्राणियों की) दशा, पहिये की परिधि के ढंग के नीचे और ऊपर आती जाती रहती है अर्थात् सुख और दुःख वारी-वारी से आते जाते रहते हैं। दोनों में से चिर-स्थायी कोई भी नहीं होता ?

भावार्थ—यक्ष कहता है कि हे मेघ! तुम मेरी प्रिया से यह कहना कि मैं तो बहुत कुछ सोच विचार कर अपने आप ही जीवित रखे हुए हूँ, अतः हे सुभगे तुम्हें इसी प्रकार धीरज रखना चाहिये, अधिक घबड़ाना न चाहिये, क्योंकि संसार में किसको सदा ही सुख या सदा ही दुःख मिला है अर्थात् किसी को नहीं। मनुष्य की सुखात्मक एवं दुःखात्मक अवस्था चक्रनेभि के परिवर्तन की भाँति सदा परिवर्तित होती रहती हैं। हम लोग कभी पूर्णतः सुखी थे, तो अब दुःखी हैं, पर इस दुःख के बाद दोनों मिलकर फिर भी सुखी होंगे।

विशेष—प्रस्तुत श्लोक में चतुर्थ चरण में वर्णित लोक सामान्य तथ्य से पूर्व वर्णित तथ्य का समर्थन किया गया है अतः अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

संस्कृत व्याख्या—ननु प्रिये! प्रश्नावधारणानुनयामन्त्रणे ननु इत्यमरः बहु पूर्वापरं सर्वन् विगणयन् शापान्ते सत्येवं करिष्यामि-इदानीं सर्वं सोढव्यम् इत्यादिक विचारयन् (अहम् यक्षः) आत्मना एव स्वेनैव आत्मानं स्वम् अवलम्बेधारयामि यथा कथञ्जीवामीत्यर्थः। तत् तस्मात् एव स्वेनैव आत्मानं स्वम् अवलम्बेधारयामि यथा कथञ्जीवामीत्यर्थः। तत् तस्मात् कल्याणि हे सुभगे! त्वम् अपि नितराम् अत्यन्तम् कातरत्वम् अधीरताम् भीरुत्वं वा मा गमः न गच्छ। अत्यन्तम् नितराम् सुखम् एकान्ततः नियमेन दुःखम् वा कस्य जनस्य उपगतम् प्राप्तम् न कस्यापीत्यर्थः (किन्तु) दशा लोकानामवस्था चक्रनेभिक्रमेण रथाङ्गपरिधिपरिपाट्या चक्र रथाङ्गं तस्यान्ते नेभिः स्त्री प्रधि पुमान्। क्रमः शक्तौ परिपाट्याम् कोशः नीचैः अधः उपरि ऊर्ध्वम् च गच्छति प्रवर्तते। 'जतस्य सुखदुःखे सदैव परिवर्तते इत्यर्थः।

प्रसंग—यक्ष अपनी प्रिया की शापावधि का निर्देश करता हुआ कहता है—

शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ

शेषाद् मासान् गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा।

पश्चादावां विरहगणितं तं तमात्माभिलाषं

निर्वेक्ष्यावः परिणतशरच्चन्द्रिकासु।।50।।

अन्वय—शार्ङ्गपाणौ भुजगशयनात् उत्थिते (सशि), मे शापान्तः (भविष्यति) शेषान् चतुरः मासान् लोचने मीलयित्वा गमय, पश्चात् आवाभ विरहगणितम् तम् तम् आत्माभिलाषम् परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु निर्वेक्ष्यावः।

शब्दार्थ—शार्ङ्गपाणौ—भगवान् विष्णु के, भुजगशयनात् = शेषशय्या से, उत्थिते सति = उठ जाने पर, मे = मेरे, शापान्तः = शाप का अन्त (होगा) शेषान् चतुरः मासान् = अवशिष्ट चार महीनों को, लोचने

मीलयित्वा = नेत्रों को बन्द करके, गमय = व्यतीत करो, पश्चात् = उसके बाद, आवाम् = हम दोनों
विरहगणितम् = विरहकाल में सोची गई, तम् तम् आत्माभिलाषम् = उन उन अपनी अभिलाषाओं का,
परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु = शरद् ऋतु की पूर्णचन्द्र ज्योत्स्ना वाली रात्रियों में, निर्वेक्ष्यावः = उपभोग
करेंगे।

अनुवाद—भगवान् विष्णु के शेषशयन से उठ जाने पर मेरे शाप का अन्त होगा अतः अवशिष्ट चार
महीनों को आँखें बन्द करके बिता दो, इसके बाद हम दोनों विरह-काल में सोची गई अभिलाषाओं का शरद् ऋतु
की पूर्णचन्द्र ज्योत्स्ना वाली रात्रियों में उपभोग करेंगे।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि हे मेघ! तुम मेरी प्रिया से इस प्रकार कहना कि मेरा शाप देवोत्थान
एकादशी को समाप्त हो जायेगा अतः तुम शेष चार महीनों को आँखें बन्द करके और बिता दो। इसके बाद फिर
हम दोनों ने अब तक विरह के दिनों में जो-जो अभिलाषायें की हैं उन्हें शापावसान पर शरद् ऋतु की परिपक्व
ज्योत्स्ना वाली रात्रियों में प्राप्त करेंगे।

संस्कृत व्याख्या—शार्ङ्गम् एतन्नामकं धनुः पाणौ यस्य स तस्मिन् शार्ङ्गं पाणौ भगवति विष्णौ, भुजगः
एव शयनं तस्मात् भुजगशयनात् शेषशय्यात् उत्थिते कृतोत्थाने सति, मे मम यक्षस्य शापान्तः शापसमाप्तिः भविष्यतीति
शेषः। (अतः) शेषान् भक्तावशिष्टान् चतुरः चतुःसंख्यकान् मासान् लोचने नेत्रे मीलयित्वा निमील्य गमय नय ध
र्येणातिवाहयेत्यर्थः पश्चात् अनन्तरम् आवाम् च अहम्-च विरहगणितम् वियोगकाल सुविचारितम् तम् तम्
आत्माभिलाषम् स्वस्वमनोरथम् शरदः चन्द्रिकाः शरच्चन्द्रिकाः यासु तासु परिणतशरच्चन्द्रिकासु
परिपक्वशरज्योत्स्नासु क्षपासु रात्रिषु निर्वेक्ष्यावः भोक्ष्यावहे।

प्रसंग—यक्ष, मेघ द्वारा अपनी प्रिया से एक रहस्य की बात को अभिज्ञान के रूप में कहला रहा है—

भूयश्चाह त्वमपि शयने कण्ठलग्ना पुरा मे,
निद्रां गत्वा किमपि रुदति सस्वनं विप्रबुद्धा।
सान्त्वांसं कथिमसकृत् पृच्छतश्च त्वया मे
दृष्टः स्वप्ने कितव! रमयन् कामपि त्वं मयेति।।51।।

अन्वय—भूयः च आह, शयने मे कण्ठलग्ना अपि त्वम् निद्राम् गत्वा किमपि सस्वनम् रुदती विप्रबुद्धा,
असकृत् पृच्छतः च मे 'कितव! मया स्वप्ने त्वम् काम् अपि रमयन् दृष्टः' इति त्वया सान्त्वांसम् कथितम्।

शब्दार्थ—भूयः च आह = और फिर आगे कहता है, पुरा = गत समय, पहले, शयने = शय्या पर,
मे कण्ठलग्ना अपि = मेरे गले से लगी हुई भी, त्वम् निद्राम् गत्वा = तुम नींद को प्राप्त कर-सोकर, किमपि
सस्वनं रुदती = किसी कारण शब्द सहित अर्थात् उच्च स्वर से रोती हुई, विप्रबुद्धा = जाग गई थीं, असकृत्
= बार-बार। पृच्छतः च मे = पूछते हुए मुझसे, 'हे कितव = धूर्त, मया स्वप्ने त्वम् = मेरे द्वारा स्वप्न में तुम,
काम् अपि रमयन् दृष्टः = किसी (स्त्री) के साथ रमण करते हुए देखे गये थे, इति त्वया सान्त्वांसम्
कथितम् = यह तुमने मन्दहास के साथ कहा था।

अनुवाद—(मेघ यक्ष—पत्नी से कहता है कि उसके पति ने) और फिर आगे यह (भी) कहा है—
पहले कभी शय्या पर मेरे कण्ठ से लगी हुई भी तुम नींद को प्राप्त कर किसी कारणवश उच्च स्वर से रोती हुई
जाग गई थीं, और बार-बार (रोने का कारण) पूछते हुए, मुझसे तुमने मन्दहास के साथ यह कहा था कि हे धूर्त
मैंने तुमको स्वप्न में किसी (स्त्री) के साथ रमण करते हुए देखा था।

NOTES

भावार्थ—मेघ, यक्षपत्नी से कहता है कि तुम्हारे पति ने साथ ही यह भी कहा है कि एक बार तुम शय्या पर मेरे गले से लगी हुई सो रही थीं और सहसा रोती हुई जाग पड़ी थीं, उस समय मैंने तुमसे रोने का कारण साग्रह पूछा था तब तुमने कहा था कि मैंने तुमको किसी स्त्री के साथ रमण करते देखा था, इसीलिये स्वप्न में रोई थी। इस सन्देश से यक्ष का आशय उसे यह बताना था कि मैं अभी जीवित हूँ और तुम्हारे साथ की घटनाओं की याद करता हूँ। वस्तुतः यह इसके लिये एक अभिज्ञान था।

संस्कृत व्याख्या—(त्वत्पतिः) भूयः पुनरपि च (एवम्) आह—कथयति, मन्मुखेन त्वामेव माह' इत्यर्थः पुरा पूर्वम् पुराशब्दोऽत्र चिरातीतकालेऽर्थे वर्तते, शयने शय्योपरि मे मम कण्ठलग्ना कण्ठाश्लिष्टा सती अपि, येन कण्ठे वद्धस्य मे कथमपि कुत्रापि गमनं न सम्भवेदिति भावः त्वं यक्षिणी निद्रां गत्वा प्राप्य किमपि केनापि कारणमेनेत्यर्थः सस्वनम् शब्दम् उच्चैरित्यर्थः रुदती रोदन् कुर्वती सती विप्रबुद्धा जागृता (आसीरिति शेषः) (तदनु) असकृत बहुशः पृच्छतः रोदन हेतु जिज्ञासमानस्य मे मम “कितव हे धूर्त! मया यक्षिण्या स्वप्ने त्वं यक्ष काम् अपि रमणीम् रमयन् रमणं कुर्वन् दृष्टः समवलोकति” इति इत्थम् त्वया मम प्रियया सान्तरासम् समन्दहासं यथा स्यात्तथा कथितम् उक्तम्।

प्रसंग—अपनी प्रिया को सन्देश देता हुआ यक्ष कहता है—

एतस्मान्मां कुशलिनमभिज्ञानदानाद् विदित्वा,

मा कौलीनादसितनयने मय्यविश्वासिनीः भूः।

स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगा—

दिष्टे वस्तुन्युपचित्रसाः प्रेमराशीभवन्ति ॥ ५२ ॥

अन्वय—असितनयने एतस्माद् अभिज्ञानदानात् माम् कुशलिनम् विदित्वा कौलीनात् मयि अविश्वासिनी मा भूः, स्नेहान् विरहे ध्वंसिनः किमपि आहुः, ते तु अभोगाद् इष्टे वस्तुनि उपचित्रसाः प्रेमराशी भवन्ति।

शब्दार्थ—असितनयने = हे कृष्ण वर्ण की आँखों वाली, एतस्मात् अभिज्ञानदानात् = इस पहचान के देने से, माम् = मुझ यक्ष को, कुशलिनम् = सकुशल, विदित्वा = जान कर, कौलीनात् = लोकप्रवाद के कारण, मयि = मुझ यक्ष के विषय में, अविश्वासिनी = विश्वास न करने वाली अर्थात् मेरे मरण का विश्वास करने वाली मा भूः = मत होना, स्नेहान् = प्रीतियों को, विरहे = विरह काल में, ध्वंसिनः = नष्ट हो जाने वाली, किमपि आहुः = व्यर्थ ही लोग कहते हैं, (वस्तुतः) ते तु = वे स्नेह तो, अभोगात् = भोगाभाव के कारण, इष्टे वस्तुनि = प्रिय वस्तु के विषय में, उपचित्रसाः = संचित वर्धित रस-प्रेम-लालसा वाले, प्रेम राशीभवन्ति—प्रेमराशी-घनी भूत प्रेम वाले हो जाते हैं।

अनुवाद—हे असित नेत्रों वाली! इस पहचान के देने से मुझ यक्ष को तुम सकुशल जानकर लोकप्रवाद के कारण मेरे विषय में अविश्वासिनी मत होना। प्रीतियों को विरहकाल में नष्ट हो जाने वाली व्यर्थ हो जाने वाली व्यर्थ ही लोग कहते हैं। वस्तुतः प्रेम तो प्रियजन के विषय में भोग के अभाव में संचित रस वाले होकर और अधिक घनीभूत प्रेम वाले हो जाते हैं, अर्थात् वियोग काल में पारस्परिक स्नेह संचित होकर और अधिक बढ़ ही जाता है, कम कभी नहीं होता और न वह कभी पूर्णतया नष्ट ही होता है।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि हे मेघ! तुम मेरी प्रिया से यह बात अर्थात् रहस्य की बात कहते हुए उससे यह कहना कि इस पहचान को प्राप्त कर तुम मुझे सकुशल जानना और इस लोक प्रवाद वश, कि मैं मर गया हूँ या अन्य किसी रमणी से प्रेम करने लगा हूँ, तुम मुझ पर अविश्वास न करना और इस तथ्य को भली भाँति मनोनीत करना कि पारस्परिक प्रेम वियोग काल में दूर रहने पर भी बढ़ता ही है, वह कभी कम नहीं होता और न पूर्णतया नष्ट ही होता है।

विशेष—श्लोक के अन्तिम चरणों में एक लोक-विश्रुत सुन्दर सामान्य तथ्य का उल्लेख किया गया है कि वियोग काल में प्रेम कम नहीं होता अपितु वह और अधिक बढ़ता ही है और इस तथ्य के द्वारा उपर्युक्त बात का समर्थन किया गया है अतः यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

मेघदूतम् (उत्तरमेघः)

संस्कृत व्याख्या—असितनयने श्यामाक्षि! एतस्मात् पूर्वोक्तात् अभिज्ञायतेऽनेनेत्यभिज्ञानं तस्य दानं तस्मात् अभिज्ञानदानात् एतत्परिचयप्रापणात् माम् स्वभर्तारं यक्षम् कुशलिनम् जीवितं नान्यासक्तं वा विदित्वा ज्ञात्वा, कुले जन समूहे भवम् कौलीनं तस्मात् कौलीनात् लोकप्रवादात्, एतावता कालेन परासुर्नो चेदागच्छेत् अथवा अन्यासक्तो नो चेदागच्छेद्वेति जनप्रवादात् (स्यात् कौलीनं लोकवादे कोषः) मयि स्वभर्तारं यक्षे अविश्वासिनी मरणशङ्किनी अन्यासक्तशङ्किनी वा मा भूः न भव। स्नेहान् प्रीतिः विरहे वियोगकाले ध्वंसिनः विनश्वरान् किमपि अकारणमेव व्यर्थ मेव वा आहुः कथयन्ति लोका इति शेषः, ते स्नेहाः तु किन्तु अभोगात् विरहे भोगाभावाद्धैतोः इष्टे वस्तुनि प्रियपदार्थविषये उपचिन्तितस्वादाः प्रवृद्धतृष्णा इत्यर्थः प्रेमराशी भवन्ति वियोगासहिष्णुत्वमापद्यन्त इत्यर्थः।

NOTES

प्रसंग—यक्ष मेघ से कहता है कि तुम मेरे सन्देश को सुनाकर मेरी प्रिया को आश्वस्त करने के बाद उसके भी कुशल समाचार से मुझे भी सन्तुष्ट करना—

आश्वस्यैवं प्रथमविरहोदग्रशोकां सखीं ते,
शैलादाशु त्रिनयनवृषोत्खातकूटान्निवृत्तः।
साभिज्ञानप्रहितकुशलैस्तद्वचोभिर्ममपि,
प्रातः कुन्दप्रसवशिथिलं जीवितं धारयेथा ॥ ५३ ॥

अन्वय—प्रथमविरहोदग्रशोकाम् ते सखीम् एवम् आश्वस्य त्रिनयनवृषोत्खात कूटात् शैलात् आशु निवृत्तः (सन् त्वम्) साभिज्ञानप्रहितकुशलैः तद्वचोभिः प्रातः कुन्द-प्रसवशिथिलम् मम अपि जीवितम् धारयेथा—

शब्दार्थ—प्रथमविरहोदग्रशोकाम् = प्रथम विरह के कारण अति तीव्र शोक वाली, ते सखीम् = अपनी सखी और भ्रातृजा या मेरी पत्नी को, एवम् = पूर्वोक्त प्रकार से, आश्वस्य = सान्त्वना देकर, त्रिनयनवृषोत्खातकूटात् = शिवजी के वृषभ के द्वारा उखाड़े गये शिखरों वाले, शैलात् = पर्वत से, आशु = शीघ्र ही, निवृत्तः = लौटे हुए (तुम) साभिज्ञानप्रहितकुशलैः = पहचान के साथ भेजे गये कुशल से युक्त, तद्वचोभिः = उसके वचनों से, प्रातः कुन्दप्रसवशिथिलम् = प्रातःकालीन कुन्द पुष्प के समान शिथिल हुए, मम अपि जीवितम् = मेरे भी जीवन को, धारयेथाः = धारण करना।

अनुवाद—प्रथम विरह के कारण अति तीव्र शोक वाली अपनी सखी अर्थात् मेरी प्रिया को पूर्वोक्त प्रकार से सान्त्वना देकर शिवजी के वृषभ से उखाड़े गये शिखरों वाले पर्वत (कैलास) से शीघ्र लौटकर (तुम) अभिज्ञान (परिचायक चिह्न) के साथ भेजे गये कुशल समाचार से युक्त उसके (मेरी प्रिया के) वचनों द्वारा प्रातःकालीन कुन्द पुष्प के समान शिथिल हुए मेरे जीवन को भी धारण करना अर्थात् स्थिर रखना।

भावार्थ—यक्ष कहता है कि मेरी प्रिया को यह पहली बार ही वियोग हुआ है अतः वह बड़ी शोक मग्ना होगी, तुम इस प्रकार मेरे सन्देश से उसे सान्त्वना देना और फिर कैलाश पर्वत से शीघ्र लौटकर मेरी प्रिया के अभिज्ञान सहित सन्देश को लाकर मुझे भी सान्त्वना देना जिससे कि मैं जीवित रह सकूँ।

विशेष—इस श्लोक में 'प्रातः कुन्दप्रसवशिथिलम्' में उपमालंकार है।

NOTES

संस्कृत व्याख्या—प्रथमाश्चासौ विरहः तेन उदग्रः शोक यस्यास्ताम्, प्रथम विरोहोदग्रशोकाम् प्रथमवियोगतीव्रदुःखाम् ते मय मेघस्य सखीम् भ्रातृजायाम्, मत्प्रियामित्यर्थः एवम् पूर्वोक्तप्रकारेण आश्वास्य उपजीव्य, त्रिनयनस्य वृषेण उत्खाताः कूटाः यस्य तस्मात् त्रिनयनवृषोत्खातकूटात् त्र्यम्बकवृषभावदारित शिखरात् (कूटोऽस्त्री शिखरं शृङ्गम्-कोश) शैलात् पर्वतात् कैलाशादित्यर्थः आशु शीघ्रम् निवृत्तः प्रत्यावृत्तः सन् (त्वम्) साभिज्ञानं यथास्यात्तथा प्रहितं कुशलं येषु तैः साभिज्ञानप्रहितकुशलैः सलक्षणप्रेषितकुशलसमाचारैः तद्वचोभिः यत्प्रियावचनैः मम यक्षस्य अपि प्रातः कुन्दस्य प्रसवमिवं शिथिलम् कुन्दप्रसवशिथिलम् कुन्दपुष्पवद् दुर्बलम् जीवितम् जीवनम् धारयेथाः स्थापय।

प्रसंग—यक्ष मेघ से कहता है कि तुम अवश्य ही मेरे सन्देश को मेरी प्रिया के पास पहुँचा दोगे।

कच्चित् सौम्य व्यवसितमिदं बन्धुकृत्यं त्वया मे,

प्रत्यादेशान्न खलु भवतो धीरतां कल्पयामि।

निःशब्दोऽपि प्रदिशसि जलं याचितः चातकेभ्यः

प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीसितार्थयैव ।। ५४ ।।

अन्वय—सौम्य! त्वया मे इदम् बन्धुकृत्यम् व्यवसितं कच्चित् प्रत्यादेशात् भवतः धीरताम् न कल्पयामि खलु, याचितः (त्वम्) निःशब्दः अपि चातकेभ्यः जलम् प्रदिशसि, हि सप्ताम् प्रणयिषु ईप्सितार्थक्रिया एव प्रत्युक्तम्।

शब्दार्थ—सौम्य = भद्र! त्वया = तुम मेघ ने, इदम् मे बन्धुकृत्यम् = इस मेरे मित्र के काम को अथवा मित्र द्वारा किये जाने योग्य कार्य को, व्यवसितम् = करने का निश्चय कर लिया है, कच्चित् = क्या?, प्रत्यादेशात् = हाँ मैं उत्तर देने से अर्थात् स्वीकृतिरूप में उत्तर देने से, (मैं) भवतः = आपकी, धीरताम् = गम्भीरता को अर्थात् कार्य करने के निश्चय को, न कल्पयामि = नहीं समझता हूँ, खलु = निश्चय रूप से, याचितः = प्रार्थित हुआ या माँगा गया अर्थात् माँगे जाने पर, (त्वम्—तुम) चातकेभ्यः = चातक नामक पक्षियों को, निःशब्द अपि = बिना गर्जन के चुपचाप, जलम् प्रदिशसि = जल देते हो। हि = क्योंकि, सताम् = सज्जनों का प्रणयिषु प्रार्थीजनों के विषय में 'ईप्सितार्थक्रिया = अभीष्ट कार्य का सम्पादन, एव = हो, प्रत्युक्तम् = उत्तर।

अनुवाद—हे भद्रजन! क्या तुमने, इस मेरे मित्र द्वारा करणीय कार्य को करने का निश्चय कर लिया है ? निश्चयतः, स्वीकृति रूप में उत्तर देने से मैं आपकी गम्भीरता अर्थात् काम करने के निश्चय को नहीं मानता हूँ, क्योंकि प्रार्थित होने पर तुम शब्द रहित होकर अर्थात् बिना स्वीकृति उत्तर दिये हो, चातकों को जल देते हो, (अतः यह ठीक ही कहा जाता है कि) सज्जनों का प्रार्थीजनों के विषय में अभीष्ट कार्य का सम्पादन ही उत्तर होता है अर्थात् सज्जन बिना ही स्वीकृति वचन कहे कार्य की पूर्ति कर देते हैं। कार्य का सम्पादन ही उनका उत्तर होता है।

भावार्थ—यक्ष मेघ से पूछता है कि क्या उसने मित्र द्वारा करणीय मेरे कार्य को करने का निश्चय कर लिया है ? पर अचेतन मेघ से कुछ उत्तर न मिलने पर वह स्वयं कहता है कि इस विषय में आपके स्वीकृति में उत्तर न देने से मैं यह कदापि नहीं समझता कि आप मेरे इस कार्य को नहीं करेंगे। अपितु इससे यह दृढ़ निश्चय होता है कि आप मेरा कार्य अवश्य ही करेंगे, क्योंकि आप तो उन सत्पुरुषों में हैं जो कि चातकों द्वारा प्रार्थित होकर बिना ही कुछ कहे अर्थात् बिना ही स्वीकृति में उत्तर दिये उनको जल देते हैं। यह ठीक ही कहा गया है कि सज्जनों का परकार्य। सम्पादन ही उत्तर होता है अर्थात् सज्जन स्वीकृति में अपने प्रार्थियों को उत्तर नहीं देते अपितु उनका कार्य पूरा करा कर देते हैं। कार्य सम्पादन ही उनका उत्तर होता है।

विशेष—यहाँ अन्तिम पंक्ति में वर्णित सामान्य तथ्य से पूर्ववर्णित बात का समर्थन किया गया है, अतः यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

मेघदूतम् .(उत्तरमेघः)

NOTES

संस्कृत व्याख्या—सौम्य हे साधो! त्वया मेघेन मम यक्षस्य इदम् पूर्वोक्तम् बन्धुना कृत्यम् बन्धुकृत्यम् सन्देशवहनरूपमित्रकार्यम् व्यवसितम् अवश्यं करिष्यामीति निश्चितम् किम् ? प्रत्यादेशात् करिष्यामीति प्रतिवचनात् भवतः तव मेघस्य धीरताम् गाम्भीर्यम् न कल्पयामि न खलु समर्थये, याचितः प्रार्थितः सन् निःशब्दः गर्जनरहितः अप्रतिजानानोऽपीत्यर्थः चातकेभ्यः सारङ्गेभ्यः जलं सलिलम् प्रदिशसि ददासि हि यतः सताम् सज्जनाम् प्रणयिषु याचकेषु प्रार्थिजनेषु वा ईप्सितार्थक्रिया अपेक्षितार्थसम्पादनम् एव प्रतिवचनं भवतीति शेषः।

प्रसंग—अन्त में यक्ष मेघ से अपने कार्य के लिए प्रार्थना कर उसे जाने के लिए कहता है।

एतत्कृत्वा प्रियमनुचिमप्रार्थनावर्तिनो मे

सौहार्दाद् वा विधुर इति वा मय्यनुक्रोशबुद्ध्या ।

इष्टान् देशान् जलद! विचार प्रावृषा सम्भृतश्री

र्मा भूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगः ।। ५५ ।।

अन्वय—जलद! सौहार्दात् वा विधुर इति मयि अनुक्रोशबुद्ध्या वा अनुचित-प्रार्थनावर्तिनः मे एतत् प्रियं कृत्वा प्रावृषा सम्भृतश्रीः (सन् त्वम्) इष्टान् देशान् विचार, एवम् क्षणम् अपि ते विद्युता विप्रयोगः मा भूत च ।

शब्दार्थ—जलद = मेघ! सौहार्दात् = प्रेमभाव से, वा = अथवा, विधुरः इति = यह वियोगी है इस कारण से मयि = मेरे ऊपर अनुक्रोशबुद्ध्या = दया भाव से, अनुचितप्रार्थनावर्तिनः = अनुचित प्रार्थना करने वाले, मे = मेरे, एतत् प्रियम् = इस अभीष्ट को करके, प्रावृषाः = वर्षा ऋतु से, सम्भृतश्री = बढ़ी हुई शोभा वाले (होकर तुम) इष्टान् देशान् विचार = अपने अभीष्ट देशों में विचरण करो, एवम् = इस प्रकार अर्थात् मेरे ही समान, क्षणम् अपि = क्षण मात्र को भी, ते = तुम्हारा, विद्युता = बिजली से, विप्रयोगः = वियोग, मा भूत् = न हो।

अनुवाद—हे मेघ! प्रेमभाव से अथवा यह वियोगी है, इस कारण से, मुझ पर दया भाव से, अनुचित याचना करने वाले मेरे इस अभीष्ट कार्य को करके वर्षा ऋतु से बढ़ी हुई शोभा वाले (होकर तुम) अपने अभीष्ट प्रदेशों में विचरण करो और इस प्रकार अर्थात् मेरे समान, क्षण मात्र को भी तुम्हारा बिजली से वियोग न हो।

भावार्थ—यक्ष अन्त में मेघ से कहता है कि चाहे तो मुझ पर प्रेमभाव अथवा यह जानकर कि यह बेचारा वियोगी है, मुझ पर दया भाव या सहानुभूति से मेरे इस सन्देश वहन रूप प्रिय कार्य को आप सम्पादित करें। यद्यपि आपसे यह मेरी याचना अनुचित है, यह कार्य आपके करने योग्य नहीं है। इसके बाद वर्षा ऋतु से शोभाशाली बनकर आप चाहे जहाँ विचरण करें। अन्त में यह आपके लिए मेरी मंगल कामना है कि आपका अपनी पत्नी बिजली से क्षण मात्र के लिए भी कभी वियोग न हो।

संस्कृत व्याख्या—जलद हे मेघ! सौहार्दात् सुहृद्भावात् वा विधुरः वियुक्तः इति हेतोर्वा मयि यक्षे अनुक्रोशबुद्ध्या करुणाबुद्ध्या वा अनुचिता चासौ प्रार्थना तत्र वर्तते इति तस्य अनुचितप्रार्थनावर्तिनः अननुरूपयाचनानिबन्धपरस्य मे मम यक्षस्य एतत् प्रियम् मत्प्रियां प्रति सन्देशवहनरूपं प्रियं कार्यं कृत्वा सम्पाद्य प्रावृषा वर्षाभिः सम्भृतश्रीः उपचितशोभः (सन् त्वम्) इष्टान् देशान् स्वाभिलषितान् प्रदेशान् विचार विचरणं कुरु, एवम् मद्वियोग इव क्षणम् स्वल्पकालम् अपि ते तव मेघस्य विद्युता तडिता स्वपत्न्या इत्यर्थः विप्रयोगः वियोगः मा भूत् न स्यात्।

NOTES

प्रस्तुत इकाई में कालिदास-कृत 'मेघदूतम्' के उत्तरमेघ-भाग के समस्त श्लोकों की व्याख्या दी गयी है। पूर्व मेघ-भाग में यक्ष मेघ को रामगिरि पर्वत से अलकापुरी तक के मार्ग का निर्देश कर चुका है। 'उत्तरमेघ' शीर्षक वाले इस भाग में यक्ष मेघ को अलकापुरी की विशेषताओं से अवगत करा रहा है। इस क्रम में वह अलकापुरी के प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रोपम वर्णन करता है। वह मेघ को यह भी बताता है कि अलकापुरी में दुःख, संताप, वृद्धावस्था तथा मृत्यु का अस्तित्व नहीं है। इस नगरी के निवासी चिरयुवा रहते हैं। अलकापुरी के भवन, मंदिर, उद्यान आदि का भी मनोरम वर्णन इस अंश में दर्शनीय है। यक्ष अलकापुरी निवासी यक्षों के विलासितापूर्ण जीवन का भी विशद वर्णन करता है। तत्पश्चात् यक्ष मेघ को अपने घर को पहचानने हेतु कुछ विशिष्ट चिन्हों का वर्णन करता है। वह मेघ से प्रार्थना करता है कि वह उसके घर पहुँचकर उसकी विरह-व्याकुल पत्नी को सांत्वना दे। इस क्रम में यक्ष अपनी पत्नी की विरहावस्था का मार्मिक वर्णन करता है। वह मेघ से प्रार्थना करता है कि यदि उसकी पत्नी उसे किसी अन्य कार्य में व्यस्त मिले तो वह यक्ष के संदेश को देने हेतु थोड़ी प्रतीक्षा भी करे। अंत में यक्ष अपने मार्मिक संदेश का वर्णन करता है। वह अपने संदेशवाहक मेघ को अपना संदेश पहुँचाने हेतु आभार व्यक्त करता है और मेघ के लिए यह मंगल कामना भी करता है कि उस मेघ का अपनी प्रिया बिजली से कभी क्षणमात्र का भी वियोग न हो।

अभ्यास-प्रश्न

(अ) निम्नलिखित पद्यों की सप्रसंग हिन्दी व्याख्या कीजिए :

1. यत्रोन्मत्तभ्रमरमुखराः वृत्तिरम्याः प्रदोषो ॥ 13 ॥
2. यत्रस्त्रीणां प्रियतम चन्द्रकान्ताः ॥ 19 ॥
3. मत्वा देवं धनपतिसखं विभ्रमैरेव सिद्धः ॥ 14 ॥
4. एभिः साधो हृदयनिहितै पुष्यति स्वामिभिर्युग्मम् ॥ 20 ॥
5. आलोके ते निपतति त्वं हि तस्य प्रियेति ॥ 25 ॥

(ब) निम्नलिखित पद्यों की सप्रसंग संस्कृत व्याख्या कीजिए :

1. जाने सख्यास्तव भ्रातरुक्तं मया यत् ॥ 34 ॥
2. इत्याख्याते पवनतनयं संगमात् किञ्चिदूनः ॥ 40 ॥
3. त्वामालिख्य प्रणय कुपितां संगम नौ कृतान्तः ॥ 42 ॥
4. शापान्तो मे भुजग शरच्चन्द्रिकासु ॥ 50 ॥
5. एतत्कृत्वा प्रियम् विद्युता विप्रयोगः ॥ 55 ॥

3

नैषधीयचरितम् (श्रीहर्ष)

NOTES

इकाई में सम्मिलित है :

- अध्ययन के उद्देश्य
- प्रस्तावना
- श्रीहर्ष का व्यक्तित्व एवं कृतित्व
- श्रीहर्ष की काव्य शैली की विशिष्टता
- महाकाव्यों में नैषधीय चरितम् का स्थान
- नैषधीयचरितम् की काव्यगत विशेषताएँ
- नैषधीयचरितम् प्रथम सर्ग का कथासार
- नैषधीयचरितम् प्रथम सर्ग की सप्रसंग व्याख्या
- सारांश
- अभ्यास-प्रश्न

अध्ययन के उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई में श्रीहर्षकृत 'नैषधीयचरितम्' महाकाव्य का समालोचनात्मक अध्ययन 'आलोचना भाग' में किया गया है तथा इस महाकाव्य के प्रथम सर्ग के समस्त पद्यों की सप्रसंग व्याख्या 'व्याख्या भाग' में दी गयी है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् छात्र :

- श्रीहर्ष के जीवन एवं उनकी कृतियों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- श्रीहर्ष के स्थितिकाल एवं उनकी काव्यकला से अवगत हो सकेंगे।
- श्रीहर्ष के नैषधीयचरितम् के महाकाव्यत्व की समीक्षा कर सकेंगे।
- श्रीहर्ष के नैषधीयचरितम् के अलंकार सौन्दर्य से अवगत हो सकेंगे।
- श्रीहर्ष के नैषधीयचरितम् के भाव-पक्ष एवं कला-पक्ष से परिचित हो सकेंगे।
- श्रीहर्ष के नैषधीयचरितम् के प्रथम सर्ग के कथानक से अवगत हो सकेंगे।
- नैषधीयचरितम् के प्रथम सर्ग के समस्त पद्यों की हिन्दी एवं संस्कृत व्याख्या कर सकेंगे।

NOTES

नैषधीयचरितम् का नाम महाकाव्यों की वृहत्तयों में आता है। वैसे पद-विन्यास और छन्द कौशल में तो यह महाकाव्य अद्वितीय है। प्रकृति-चित्रण में पक्षियों की स्वाभाविक चेष्टाओं का सुन्दर वर्णन इसी महाकाव्य में मिलता है। मनोभावों के दिग्दर्शन में भी श्रीहर्ष ने सिद्धहस्तता का परिचय दिया है। शब्दों के प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष विपर्यय से इस महाकाव्य की कविता का प्रभाव द्विगुणित हो गया है। शृंगार की विभिन्न दशाओं के चित्रण में श्रीहर्ष की कवित्व-प्रतिभा चरम सीमा को स्पर्श करती है। उनके काव्ययश का अवलोकन कुछ संकुचित दृष्टि के आलोचकों से न हो सका है। इसी प्रकार उनकी उत्कट शृंगार भावना को लक्ष्य करके कुछ विद्वानों ने उसमें अश्लीलता का दोषारोपण किया है, परन्तु उनके काव्य को पढ़कर उन पर लगायी गयी ये आपत्तियाँ निरर्थक प्रतीत होती हैं।

पण्डित समाज में नैषध काव्य का विद्वत्ता की दृष्टि से बहुत सम्मान रहा है। उन्होंने इसके पद लालित्य की बड़ी प्रशंसा की है—‘नैषधे पदलालित्यम्।’ यह पद लालित्य अधिकांश स्थानों पर मिलता है। कुछ विद्वानों ने तो “उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारिवः” कहकर इन्हें माघ तथा भारवि से भी बढ़-चढ़कर बतला दिया है। यह गाढ़बन्धता व क्लिष्टता के कारण ही “नैषध विद्वदौषधम्” कहा जाने लगा। यद्यपि श्रीहर्ष ने इसे वैदर्भी रीति-काव्य बतलाया है, लेकिन यह गौड़ी अथवा पाञ्चाली रीति का महाकाव्य है।

नैषधीयचरितम् (आलोचना भाग)

श्री हर्ष का संक्षिप्त परिचय:

संस्कृत के अधिकांश कवियों का जीवन परिचय एवं स्थितिकाल अन्धकार की गुहा में स्थित है। अधिकतर कवि अपने विषय में मौन रहे हैं। अन्तःसाक्ष्यों के आधार पर ही उनका परिचय मिल पाया है, किन्तु श्रीहर्ष के काव्य में निर्दिष्ट कतिपय प्रमाणों के आधार पर उनके जीवन और स्थितिकाल के विषय में वास्तविकता का ज्ञान होता है। तदनुसार श्रीहर्ष के पूज्य पिता का नाम श्रीहरि तथा माताश्री का नाम मामल्ल देवी था। कहा जाता है कि आप कन्नौज के राजा जयचन्द से सम्मान में प्रतिदिन दो बीड़े पान प्राप्त किया करते थे। परम्परागत किंवदन्ती के अनुसार श्रीहर्ष की प्रतिभा से प्रभावित होकर जयचन्द ने श्रीहर्ष को अपना राजकवि नियुक्त कर लिया और उन्हीं की प्रेरणा से श्रीहर्ष ने ‘नैषधीयचरितम्’ की रचना की। वैसे श्रीहर्ष द्वारा विरचित अनेक ग्रन्थ बताए जाते हैं लेकिन उनमें केवल दो ही उपलब्ध होते हैं। वे हैं—(क) खण्डनखण्डखाद्य, (ख) नैषधीयचरितम् खण्डनखण्डखाद्य की रचना करके आपने न्याय सिद्धान्तों का खण्डन किया और अद्वैत वेदान्त के महत्व की स्थापना की। इस ग्रन्थ के अध्ययन से उनके पाण्डित्य और समस्त दार्शनिक सम्प्रदायों का ज्ञाता होने का प्रमाण इस रूप में मिल जाता है।

श्रीहर्ष ने अनेक ग्रन्थ लिखे, जिनकी सूचना उन्होंने नैषधीयचरितम् के सर्गों के अन्त में दी है।

श्रीहर्ष कविराजराजिमुकुटालंकार हरीः सुतं,
श्री हरीः सुषुवे जितेन्द्रिय चयं मामल्लदेवी च यम्।
तच्चितामणि मन्त्रचिन्तनफले शृंगारभंग्या महा
काव्ये चारुणि नैषधीय चरिते सर्गोऽमादिर्गतः ॥

श्रीहर्ष रचित 'नैषधीयचरितम्' में नैषध देश के राजा नल के जीवन का वर्णन है। नल और दमयन्ती के परस्पर प्रेम तथा विवाह की संक्षिप्त कथा को कल्पना शक्ति के सहारे श्रीहर्ष ने २२ सर्गों में पूर्ण किया है। उनके प्रेम में हंस तथा देवता महत्वपूर्ण योगदान करते हैं। नैषधीयचरितम् में श्रीहर्ष ने अपने प्रौढ़ पाण्डित्य का इतना अधिक प्रदर्शन किया है कि यह शास्त्र-काव्य बन गया है। साधारण संस्कृतज्ञ इसके साथ खिलवाड़ नहीं कर सकते हैं। विद्वानों के गर्व को दूर करने के लिए यह औषधि माना गया है—नैषधं विद्वदौषधम् ! इस महाकाव्य को भारति और माघ के काव्यों से भी उत्कृष्ट कहा गया है—

तावद् भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः ।

उदिते तु नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः ॥

श्रीहर्ष के काव्य में कृत्रिमता एवं आडम्बरप्रियता के अतिरिक्त मानव जीवन की समग्रता का अंकन नहीं मिलता है। चरित्र-चित्रण तथा कथानक की कलात्मक सृष्टि के नाते भी श्रीहर्ष निपुण नहीं दिखाई देते। इनमें मौलिक भावों का अभाव है, अतः एक ही भाव भिन्न शब्दों में अनेक बार दुहराया गया है। सर्वत्र दूरारूढ़ कल्पना एवं अत्युक्ति की ही प्रबलता है और कृत्रिमता के कारण यह काव्य जटिल हो गया है। इसमें कहीं-कहीं अश्लीलता भी आ गयी है, फिर भी समीक्षा के कुछ बिन्दुओं को संक्षेप में इस प्रकार रखा जा सकता है—

(१) कुछ विद्वानों के अनुसार २२ सर्गात्मक इस महाकाव्य को अधूरा माना गया है।

(२) कथावस्तु की दृष्टि से श्रीहर्ष में भारवि तथा माघ से अधिक कृत्रिमता है।

(३) श्रीहर्ष मूलतः शृंगार कला के कवि हैं, इसीलिए शृंगार के सम्भोग पक्ष पर ही इन्होंने लेखनी चलाई है। इनका शृंगार प्रायः मर्यादा का उल्लंघन करके अश्लील हो जाता है। इसी कारण डॉ. भोलाशंकर व्यास ने श्रीहर्ष को घोर विलासी कहने में भी संकोच नहीं किया है।

(४) श्रीहर्ष ने प्रकृति के उद्दीपन रूप को अधिक आकर्षक बनाया है।

(५) श्रीहर्ष की भाषा दुर्बोध है। उनके काव्यरूपी गहन वन में छिपे शब्द रूपी कण्टकों और अलंकार रूपी झाड़-झंखाड़ों से होकर जाना किसी भी सामान्य रसिक पथिक के लिए बिना किसी निर्देशन के पार असम्भव है।

(६) श्रीहर्ष पदलालित्य के पण्डित हैं।

(७) श्लेष अलंकार पर तो उनका पूर्ण अधिकार है। जैसे दमयन्ती का एक कथन—'चेतो न लंकामयते' अर्थात् मेरा मन लंका की ओर नहीं जाता अपितु 'नलं कामयते' अर्थात् नल को चाहता है।

अतः श्रीहर्ष का 'नैषधीयचरितम्' कृत्रिम तथा अलंकृत शैली का महाकाव्य कहा जाता है। इनकी काव्य-कला विचित्रता की चरम सीमा को छूती है।

नैषधीयचरितम् का अधूरापन—डॉ. उमाशंकर शर्मा ऋषि के अनुसार अनेक विद्वानों ने इस महाकाव्य को अधूरा कहा है। तदनुसार आगे के सर्ग या तो लिखे नहीं जा सके या लुप्त हो गये। सत्रहवें सर्ग में कवि ने नल को राजाच्युत और दमयन्ती से पृथक् करने की प्रतिज्ञा की है, किन्तु इन घटनाओं को इस महाकाव्य में नहीं दिखाया गया है। इसी आधार पर बहुत से लोगों ने नैषधीयचरितम् की अपूर्णता की कल्पना की है, किन्तु यह

बात असंगत है। श्रीहर्ष ने नायक के संकटों को न दिखाकर उसे शृंगार प्रधान बनाने का कार्यक्रम रखा था। करुण रस इसमें बाधक होता। इसके टीकाकार नारायण ने भी सूचना दी है कि २२ सर्गों का नैषधीयचरितम् पूर्ण महाकाव्य है—

NOTES

इदानीं काव्यसमाप्तिं चिकीर्षुः श्रीहर्षो नायकमुखेनाशिषमाशास्ते।

नैषधीयचरितम् की प्राचीनतम प्रति विद्याधर की है। उसमें भी २२ सर्ग ही हैं। सभी पाण्डुलिपियों में २२ सर्ग तक ही पाठ हैं। ग्रन्थ समाप्ति की सूचना कवि ने २२वें सर्ग के अन्त में देते हुए मंगल श्लोक लिखे हैं। फिर भी कुछ लोगों ने महाकाव्य के शीर्षक के आधार पर महाभारत में दिये गये नलोपाख्यान के आधार पर तथा काव्य प्रकाश के टीकाकार अच्युताचार्य के द्वारा इसमें १०० सर्गों के होने से निर्देश के कारण इस महाकाव्य को अधूरा कहा है। कीथ ने ऐसे लोगों का उपहास किया है जो इस आशा में हैं कि कभी इसकी आगे की पाण्डुलिपि मिल जायेगी।

श्रीहर्ष रचित ग्रन्थ खण्डनखण्डखाद्य—‘नैषधीयचरितम्’ में ‘खण्डनखण्डखाद्य’ तथा खण्डनखण्डखाद्य में ‘नैषधीयचरितम्’ का उल्लेख होने से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उन दोनों ग्रन्थों की रचना श्रीहर्ष ने साथ-साथ की होगी। ‘नैषधीयचरितम्’ महाकाव्य पर २३ व्याख्याओं के अस्तित्व का उल्लेख औक्टियेक्ट (AUTREACT) ने संस्कृत ग्रन्थों की विशाल सूची में किया है। चाण्डू पण्डित की नैषध दीपिका टीका १२९६ ईस्वी में रची गयी थी। इस टीकाकार ने अपने पूर्ववर्ती विद्याधर नाम के विद्वान के द्वारा लिखी हुई टीका का उल्लेख किया है। इससे इस महाकाव्य ‘नैषधीयचरितम्’ के प्रति टीकाकारों का आकर्षण उनके रचना काल से ही प्रकट है। इसकी टीकाओं में नारायण पण्डित द्वारा रचित नैषधीय प्रकाश है जो निर्णय सागर प्रेस मुम्बई से प्रकाशित है। इसकी अन्य टीका जैनराज कृत सुखावबोध है तथा मल्लिनाथ की टीका जीवतु है। इन दोनों को चौखाआ संस्कृत सीरिज के अन्तर्गत प्रकाशित किया गया है। चौखाआ ने इसकी हिन्दी टीका का प्रकाशन सन् १९५३ में किया है। नैषधीयचरितम् वर्धन की तिलक, हरि दीपिका, विद्याधर द्वारा रचित साहित्य टीका की विशेष प्रसिद्धि है। इस प्रकार टीकाओं की दृष्टि से नैषधीयचरितम् अत्यधिक लोकप्रिय महाकाव्य सिद्ध होता है। टीकाओं की अधिकता का एक कारण इसकी भाषा की क्लिष्टता भी है।

श्रीहर्ष का स्थिति-काल

नैषधीयचरितम् की रचना ११६३ ई. से ११७४ ई. के बीच हुई मानी जाती है। इस प्रकार श्रीहर्ष का समय निर्विवाद रूप से १२वीं शताब्दी ई. का उत्तरार्द्ध मानना चाहिए।

श्रीहर्ष के स्थिति काल के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद हैं। डॉ. वूलर ने श्रीहर्ष को १२वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध से पूर्व मानने वाले विद्वानों के मतों का सतर्क एवं सप्रमाण खण्डन किया है। श्रीहर्ष ने स्वयं उल्लेख किया है कि वे कान्यकुब्ज (कन्नौज) के राजा जयचन्द्र के आश्रित थे और उन्हें राजदरबार में दो पान और आसन मिलता था।

कवि श्रीहर्ष के विषय में जो भी अन्तःसाक्ष्य मिलते हैं, उनके आधार पर मात्र अनुमान लगाया जा सकता है—

अन्तःसाक्ष्य—

(१) कवि श्रीहर्ष ने अपने ‘नैषधीयचरितम्’ महाकाव्य में स्वयं को कान्यकुब्ज (कन्नौज) की राजसभा से सम्बन्धित बताया है—

(कन्नौज के राजा से दो पान और आसन प्राप्त करता था।)

NOTES

कान्यकुब्जेश्वर किसी व्यक्ति का नहीं, अपितु कन्नौज राज्य के राजा का नाम है। कन्नौज राज्य के बहुत से राजा हुए हैं। कान्यकुब्जेश्वर नाम नहीं, विशेषण है। अधिकांश विद्वानों का मत है कि ये कान्यकुब्जेश्वर इतिहास-प्रसिद्ध जयन्तचन्द्र अथवा जयचन्द्र थे। यदि इस बात को स्वीकार कर लिया जाये तो कवि श्रीहर्ष का स्थिति-काल निश्चित करना सरल हो जायेगा। जयन्तचन्द्र (जयचन्द्र) का शासन कान्यकुब्ज (कन्नौज) के साथ-साथ वाराणसी पर भी था। ये गहरवार वंश के अन्तिम शासक थे। सन् १२९५ में इनका शहाबुद्दीन गौरी के साथ युद्ध हुआ था, जिसमें ये पराजित ही नहीं हुए, अपितु मारे भी गये थे।

(२) कवि राजशेखर ने १३४८ ई. में 'प्रबन्ध-कोश' की रचना की। इसमें कविवर श्रीहर्ष को वाराणसी-नरेश जयन्तचन्द्र का सभा-पण्डित बताया गया है।

(३) श्री काशीनाथ त्र्यम्बक तैलंग ने श्रीहर्ष के समय के विषय में विस्तार से विवेचन किया है। उनकी मान्यता के आधार निम्नलिखित हैं—

(अ) 'प्रबन्ध-कोश' के रचयिता राजशेखर का कथन विश्वास करने योग्य नहीं है, क्योंकि उन्होंने जयन्तचन्द्र अथवा जयचन्द्र का पुत्र बताया है। जयन्तचन्द्र अथवा जयचन्द्र से सम्बन्धित जो दानपात्र मिले हैं, उनमें उन्हें विजयचन्द्र का पुत्र बताया गया है।

(ब) संस्कृत-साहित्य में चारों वेदों पर भाष्य की रचना करने वाले आचार्य सायण का एवं आयुर्वेद के ग्रन्थ 'माधव-निदान' के रचयिता माधव का आदरपूर्ण स्थान है। आचार्य सायण ने 'शंकर-विजय' काव्य की रचना की है। श्रीहर्ष कवि आचार्य शंकर के समकालीन थे। इसी प्रसंग में आचार्य सायण ने अपने काव्य 'शंकर-विजय' में आचार्य शंकर द्वारा 'खण्डनखण्डखाद्य' नामक दार्शनिक ग्रन्थ के रचयिता कवि श्रीहर्ष को शास्त्रार्थ में पराजित करने का उल्लेख किया है। आचार्य शंकर आठवीं शताब्दी में हुए हैं। इस आधार पर श्रीहर्ष का स्थिति-काल आठवीं शताब्दी निश्चित होता है।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि कवि श्रीहर्ष का स्थिति-काल इतना प्राचीन नहीं रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्य सायण ने आचार्य शंकर को महत्ता प्रदान करने के लिए यह उल्लेख किया है।

(स) श्री काशीनाथ त्र्यम्बक तैलंग ने यह भी लिखा है कि 'कुसुमांजलि' के रचयिता उदयनाचार्य ने शास्त्रार्थ में श्रीहर्ष के पिता हीर को पराजित कर दिया था। श्रीहर्ष के पिता हीर अपनी पराजय से बहुत दुःखी हुए। उन्होंने अपने पुत्र श्रीहर्ष से इस अपमान का बदला लेने का वचन लेकर प्राण-त्याग किया। उदयनाचार्य के सिद्धान्तों का खण्डन श्रीहर्ष कवि ने अपने ग्रन्थ 'खण्डनखण्डखाद्य' में किया है। इस ग्रन्थ में न्याय-दर्शन के सिद्धान्तों का खण्डन और वेदान्त-दर्शन के सिद्धान्तों का मण्डन है। प्रसिद्ध दार्शनिक आचार्य वाचस्पति मिश्र ने श्रीहर्ष के ग्रन्थ 'खण्डनखण्डखाद्य' का समर्थन करते हुए 'खण्डनोद्धार' ग्रन्थ की रचना की है। इसके आधार पर कवि श्रीहर्ष का समय ग्यारहवीं शताब्दी सिद्ध होता है।

(४) प्रो. व्हूलर ने श्रीहर्ष का स्थिति-काल बारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध निश्चित किया है। प्रो. व्हूलर ने 'प्रबन्ध-कोश' के रचनाकार राजशेखर के मत का सहारा लिया है। राजशेखर ने अपने 'प्रबन्ध-कोश' में यह भी

NOTES

लिखा है कि महाराज वीरधवल के राज्यकाल में हरिहर सर्वप्रथम गुजरात में 'नैषध' महाकाव्य की हस्तलिखित प्रति लाये थे। मन्त्री वास्तुपाल ने उसकी अनेक प्रतिलिपियाँ कराकर 'नैषधीयचरितम्' का प्रचार किया। प्रो. हूलर ने दूसरे विद्वानों के मत का निराकरण करते हुए राजा भोज द्वारा विरचित ग्रन्थ 'सरस्वती कंठाभरण' का भी विरोध किया है। 'सरस्वती कंठाभरण' में 'नैषधीयचरितम्' के अनेक श्लोक उद्धृत किये गये हैं। प्रो. हूलर ने लिखा है कि मूल प्रति से पूर्णतः मिलान करने पर 'नैषधीयचरितम्' का एक श्लोक 'सरस्वती कंठाभरण' में प्राप्त नहीं होता है। श्री तैलंग के साथ-साथ फिट्ज एडवर्ड को भी इस विषय में भ्रम हुआ है। इस प्रकार स्पष्ट है कि राजा भोज द्वारा विरचित ग्रन्थ 'सरस्वती कंठाभरण' कवि श्रीहर्ष का समय निर्धारित करने में सहायता नहीं कर सकता। इसके आधार पर कवि श्रीहर्ष के विषय में जो निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है, वह सर्वथा भ्रान्त है। उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता।

(५) प्रो. ग्राड्स का मत—प्रो. हूलर के मत का खण्डन प्रो. ग्राड्स ने किया है। उनके अनुसार कन्नौज के राजा जयचन्द्र दिल्ली-नरेश पृथ्वीराज चौहान के समकालीन थे। पृथ्वीराज चौहान के राजकवि चन्दवरदायी थे, जिन्होंने 'पृथ्वीराज रासो' की रचना की है। उसमें श्रीहर्ष कवि का नाम कालिदास से भी पूर्व उल्लिखित है। 'पृथ्वीराज रासो' का वह अंश इस प्रकार है—

नररूप पंचम्म श्रीहर्षसारं, नलै रायकठं दिनेपद्म हारं।

छठं कालिदासं सुभाषा सुबद्धं, जिनै बागबानी सुबानी सुबद्धं।

कियो कालिका मुख वासं सुसद्धं, जिनै सेतु बंध्यो सु भोजप्रबंधम्।

इसके आधार पर श्रीहर्ष का समय महाकवि कालिदास से भी पूर्व सिद्ध होता है। इस क्रम पर विश्वास नहीं किया जा सकता, क्योंकि कालिदास का समय ईसा से पूर्व का माना जाता है।

कालिदास और श्रीहर्ष काव्य-रचना की दृष्टि से दो सर्वथा विरुद्ध बिन्दु हैं। कालिदास सरल काव्य-भाषा और रस-प्रधान रचना के लिए प्रसिद्ध हैं। उन्होंने कलापक्ष में अलंकारों पर ध्यान दिया है। उनके अलंकार अर्थालंकार अधिक हैं। शब्दालंकारों का प्रयोग उन्होंने अर्थालंकारों की अपेक्षा कम किया है। कालिदास ने कविता के भावपक्ष पर अधिक ध्यान दिया है।

इसके विपरीत श्रीहर्ष का समय भाषा-चमत्कार में विश्वास रखता था। उस समय के कवि क्लिष्ट भाषा का अत्यधिक प्रयोग करते थे। 'वृहत्त्रयी' के तीन महाकाव्यों भारवि का 'किरातार्जुनीयम्', माघ का 'शिशुपाल वध' और श्रीहर्ष का 'नैषधीयचरितम्' में 'नैषधीयचरितम्' ही सबसे अधिक चमत्कारपूर्ण है। इसके पंचनली प्रकरण में एक श्लोक के पाँच-पाँच अर्थ होते हैं।

वे. वरदाचार्य ने श्रीहर्ष का स्थिति-काल बारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध स्वीकार किया है। अपना यह मत उन्होंने 'संस्कृत-साहित्य का इतिहास' में पृष्ठ १२७ पर व्यक्त किया है। इसी प्रकार डॉ. सत्यनारायण पाण्डेय ने भी अपने ग्रन्थ 'संस्कृत साहित्य की आलोचना' नामक इतिहास में इसी प्रकार का मत व्यक्त किया है। आचार्य बल्देव उपाध्याय ने भी अपने 'संस्कृत का इतिहास' में जयचन्द्र के पिता विजयचन्द्र से जयचन्द्र तक का शासन-काल सन् ११५६ ई. से ११९३ ई. स्वीकार किया है। महाकवि श्रीहर्ष जयन्तचन्द्र अथवा जयचन्द्र के सभापण्डित थे, अतः उनका स्थिति-काल ईसा की बारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध ही मानना उचित है।

एक लोकतान्त्रिक का सिद्धान्त है, “अल्पमत की अपेक्षा बहुमत मान्य होता है।” अधिकांश विचारकों ने श्रीहर्ष का स्थिति-काल बारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना है, अतः श्रीहर्ष का स्थिति-काल सन् ११५० ई. से १२०० के मध्य स्वीकार करना ही उचित है।

श्रीहर्ष की काव्य-कला:

श्रीहर्ष का संस्कृत महाकाव्य परम्परा में आविर्भाव एक चमत्कार था। श्रीहर्ष केवल कवि ही नहीं, अपितु काव्य-कला मर्मज्ञ, प्रकृष्ट दार्शनिक, ज्योतिष, राजनीति, धर्मनीति, सामुद्रिक शास्त्र, आयुर्वेद, धनुर्वेद, नाटक, संगीत, मन्त्र-तन्त्र, अलंकार माणिक्य, चित्रकला, पाककला, रत्नशास्त्र आदि विविध विद्याओं में विशारद थे। यद्यपि उनके काव्य में कलात्मकता का भाव ही दृष्टिगोचर होता है, फिर भी वे उच्चकोटि के कवि थे। अपने अनुपम वर्णना तथा विविध ज्ञान के संवलन के कारण उनका नैषध काव्य विद्वानों की औषधि बन गया—‘नैषधविद्वदौषधम्’। इस कथन की पूर्णतः सार्थकता इस बात से स्पष्ट होती है कि उन्होंने सामान्य मति वालों के लिए इस काव्य का सृजन नहीं किया। रचना करते समय उनका यही उद्देश्य रहा कि यह कृति विद्वानों के लिए आदर्श सिद्ध हो। काव्य-कला के क्षेत्र में उनकी कतिपय विशेषताओं का उल्लेख इस प्रकार है—

अलंकार निरूपण—श्रीहर्ष की भाषा सालंकार है। इसमें पद-पद पर अश्रम साध्य अलंकार मिलते हैं। स्वाभाविक रूप से अलंकारों के प्रयोग के कारण उनकी तुलना कालिदास से की जा सकती है। अलंकारों में श्रीहर्ष की श्लेष, यमक तथा अनुप्रास के प्रयोग की विशेष रुचि रही है। श्लेष की पराकाष्ठा वहाँ दिखती है, जहाँ एक ही पद्य में पञ्चनली का पृथक् वर्णन एकाकार शब्दावली में हुआ है। उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति अलंकार कवि को अति प्रिय हैं। अन्य अलंकारों में उपमा, रूपक, व्यतिरेक, विभावना, समासोक्ति, अर्थान्तरन्यास आदि का प्रयोग किया गया है।

रस-परिपाक—श्रीहर्ष मूलतः शृंगार रस के कवि हैं, इसीलिए नैषध महाकाव्य शृंगार के मनोरम वर्णनों पूरित होने के कारण शृंगारामृत शीतगुः कहा जाता है। कवि ने स्त्री सौन्दर्य वर्णन में अपनी विलक्षण विद्वता एवं सहृदयता का परिचय दिया है।

श्रीहर्ष के काव्य में संयोग तथा वियोग शृंगार के दोनों पक्षों का सुन्दर चित्रण मिलता है। संयोग शृंगार के समान ही विप्रलम्भ शृंगार के वर्णन भी आकर्षक हैं। प्रथम तथा द्वितीय सर्ग में दमयन्ती तथा नल के पूर्वाग का वर्णन वियोग बिम्बों से प्रभावित है। चतुर्थ सर्ग में दमयन्ती का विरह वर्णन भी सजीव है। कामरूपी अग्नि से संतप्त दमयन्ती के शरीर को शीतलता प्रदान करने के लिए सखियाँ कमल के ताजा पुष्प लेकर आती हैं, परन्तु उसके पास पहुँचने से पूर्व ही वे उसके निःश्वास से मर्मर ध्वनि वाले हो जाते हैं अर्थात् सूख जाते हैं।

छन्द-योजना—श्रीहर्ष ने नैषध महाकाव्य में १९ छन्दों का यथास्थान प्रयोग किया है। सात सर्गों में उपजाति छन्द के प्रयोग से प्रतीत होता है कि यह छन्द उनका प्रिय छन्द है। छन्द प्रयोग में दक्ष होने के कारण कवि ने छोटे छन्दों के समान ही हरिणी, शार्दूल विक्रीडित, मन्दाक्रान्ता, स्मग्धरा आदि बड़े-बड़े छन्दों के प्रयोग में सफलता प्राप्त की है। अतः छन्द योजना की दृष्टि से नैषध सफल महाकाव्य है।

भाषा-शैली का प्रयोग—इनकी भाषा प्रौढ़ तथा परिष्कृत है। कवि का भाषा पर असाधारण अधिकार है। श्रीहर्ष में भावों को सरल रूप में प्रकट करने की असाधारण क्षमता है। भाषा प्राञ्जल, सरस, प्रवाहयुक्त,

NOTES

NOTES

भाषा के साथ-साथ कवि का शैली पर भी पूर्ण अधिकार है। कवि की शैली अलंकृत है। इसका उदात्त रूप नैषध महाकाव्य में देखने को मिलता है। श्रीहर्ष की कल्पना शक्ति विलक्षण है। वे भावों के उचित निर्वाह एवं संयोजन तथा उपयुक्त एवं सुन्दर शब्द विन्यास, कल्पना की ऊँची उड़ान और प्राकृतिक रमणीय दृश्यों के चित्रण में वे अपनी तुलना नहीं रखते हैं। अलंकृत शैली के उद्भावक महाकवि भारवि का प्रकाश तभी तक सहृदयों के हृदय को रंजित करने वाला रहा, जब तक माघ का उदय नहीं हुआ। माघ भारवि को बहुत पीछे छोड़कर अपने अनुपम काव्य वैभव से सहृदयों को प्रभावित कर सके, किन्तु नैषध के उदित होने पर भारवि तथा माघ दोनों ही प्रभावहीन हो गये। श्रीहर्ष के अपूर्व प्रभाव के समक्ष भारवि तथा माघ का कोई स्थान नहीं रहा। इसीलिए समालोचक ने कह दिया, “उदिते नैषधे क्व माघः क्व च भारविः।”

प्रकृति चित्रण—प्रकृति वर्णन में भी श्रीहर्ष का प्रेम अप्रस्तुत विधान की ओर अधिक है। फिर भी कवि ने प्रकृति वर्णन अत्यन्त सूक्ष्मता से किया है। अनेक स्थलों पर तो उन्होंने प्रकृति का मानवीकरण कर दिया है। जैसे—

फलानि पुष्पाणि च पल्लवे करे वयोतिपातोद्गतवातवेपिते।
स्थितैः समादाय महर्षिवर्धकाद् वने तदातिथ्यमशिक्षि शाखिभिः ॥

प्रस्तुत छन्द में वृक्षों द्वारा महर्षियों से आतिथ्य सत्कार की शिक्षा ग्रहण करने के मानवीकरण को चित्रित किया गया है।

कवि ने प्रातः, सन्ध्या, वन, उपवन, सूर्य, चन्द्र, नदी, नद, समुद्र, सरोवर आदि प्रकृति के विभिन्न रूपों का वर्णन किया है, परन्तु उनके प्रकृति वर्णन पर अप्रस्तुत विधान का प्राधान्य है।

सूर्यास्त के पश्चात् रात्रि के समय आकाश में उगे हुए तारों के लिए यह कल्पना करना कि काल ने सूर्यरूपी अनार को खाकर जो बीज थूक दिये थे, वे ही तारों के रूप में आसमान में दिखलाई दे रहे हैं। श्रीहर्ष की इस अनूठी कल्पना का चित्रण इस प्रकार है—

पचेलिमं दाडिममर्कबिम्बमुत्तार्य सन्ध्या त्वगिवोज्झितास्य।
तारामयं बीजमुजादसीयं कालेन निष्ठ्यूतमिवास्थियूथम् ॥

इस प्रकार कहा जा सकता है कि नैषधीयचरितम् महाकाव्य में काव्य तत्वों का पूर्ण सामंजस्य है। काव्य-कला की दृष्टि से यह अति उदात्त श्रेणी का काव्य है। नैषध सर्वथा दोषरहित काव्य की श्रेणी में परिगणित नहीं किया जा सकता है। अर्थ की क्लिष्टता, अलंकारों की जटिलता, समासों की विकटबन्धता, वासनापूर्ण वर्णन, अश्लीलता, पाण्डित्यजन्य दुरुहता आदि कई दोष हैं, फिर भी चन्द्रमा के कलंक की भाँति इन सभी का तिरोभाव उनकी उत्कृष्ट काव्य-कला से ही हो जाता है।

नैषधीयचरितम् के महाकाव्यत्व की समीक्षा

संस्कृत भाषा के महाकाव्यों में प्रसिद्ध महाकाव्यों को लघुत्रयी और बृहत्त्रयी के रूप में विभाजित किया गया है। बृहत्त्रयी के अन्तर्गत निम्नलिखित तीन रचनाएँ आती हैं—

NOTES

महाकाव्यत्व की दृष्टि से 'नैषधीयचरितम्' की समीक्षा प्रस्तुत की है। अनेक आचार्यों ने महाकाव्य के लक्षणों पर विस्तृत विचार किया है। प्रो. विशम्भरनाथ द्विवेदी के अनुसार, "भारतीय काव्यशास्त्रियों के महाकाव्य के स्वरूप के अन्तर्गत उन विषयों का समावेश किया है, जिनका सम्बन्ध विशेष-रूप से महाकाव्य से ही होता है, काव्य की अन्य विधा से प्रायः नहीं होता है। यदि उनका सम्बन्ध प्रबन्ध काव्य की अन्य विधाओं से होता भी है तो उतने मात्र से वह महाकाव्य नहीं हो सकता। इस प्रकार अन्वय व्यतिरेक ये लक्षण केवल महाकाव्य में ही घटित होते हैं। यद्यपि आचार्य मम्मट के 'काव्यालंकारसूत्र' दण्डी के 'काव्यादर्श', रुद्रट के 'काव्यालंकार' तथा हेमचन्द्र के 'काव्यानुशासन' में महाकाव्य के स्वरूप को स्पष्ट करने वाले नियमों एवं उपदानों का पर्याप्त उल्लेख किया गया है, किन्तु उन सबका यथोचित एवं यथेष्ट समावेश आचार्य विश्वनाथ ने अपने 'साहित्य-दर्पण' में किया है। आधुनिक साहित्य-समीक्षकों ने साहित्य-दर्पणकार विश्वनाथ द्वारा स्थापित महाकाव्य के लक्षणों का सर्वाधिक आदर किया है।"

आचार्य विश्वनाथ के साहित्य-दर्पण के अनुसार महाकाव्य के लक्षण इस प्रकार हैं—

(१) महाकाव्य सर्गों में निबद्ध होता है। उसमें एक नायक होता है जो देवता अथवा उत्तम वंश का क्षत्रिय एवं धीरता आदि गुणों से युक्त पुरुष होता है।

(२) एक वंश के एवं उत्तम कुल के बहुत से राजा भी नायक हो सकते हैं। शृंगार, वीर और शान्त में से एक रस महाकाव्य में प्रधान होता है।

(३) अंग अथवा अप्रधान रूप में महाकाव्य में सभी रस रहते हैं। महाकाव्य में नाटक की सभी संधियों का निर्वाह होता है। महाकाव्य का कथानक इतिहास में वर्णित अथवा सज्जन पुरुषों से सम्बन्धित होता है।

(४) महाकाव्य में धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—चारों वर्गों का वर्णन होता है। इनमें एक वर्ग महाकाव्य का फल होता है। महाकाव्य के आरम्भ में नमन क्रिया, आशीर्वाद अथवा वस्तु-निर्देश रहता है।

(५) इसमें कहीं दुष्टों की निन्दा और कहीं सज्जनों के गुणों की प्रशंसा होती है। महाकाव्य की रचना एक छन्द वाले सर्गों से की जाती है। सर्ग के अन्त में छन्द का परिवर्तन होता है।

(६) महाकाव्य में न अधिक छोटे और न अधिक बड़े आठ से अधिक सर्ग होते हैं। कुछ महाकाव्यों में एक सर्ग अनेक छन्दों वाला भी दिखाई देता है।

(७) सर्ग के अन्त में अगले सर्ग की कथा की सूचना होती है। संध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, दिवस का वर्णन होता है।

(८) प्रातः, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, ऋतु और सागर का वर्णन भी महाकाव्य का विषय है। महाकाव्य में संयोग और वियोग दोनों का वर्णन होता है। इसके अतिरिक्त महाकाव्य में मुनिजन, स्वर्ग, नगर और यज्ञ का भी वर्णन किया जाता है।

(९) महाकाव्य में रण, युद्ध हेतु प्रयाण, विवाह, मन्त्र, पुत्र और उन्नति का यथायोग्य और अंगों सहित में वर्णन करना चाहिए।

(१०) महाकाव्य का नाम कवि, कथावस्तु, नायक अथवा अन्य प्रमुख पात्र के आधार पर रखा जाता है। सर्गों का नाम कथा के आधार पर रखा जाना चाहिए।

NOTES

आचार्य विश्वनाथ ने महाकाव्य के जो लक्षण बताये हैं, उनके अनुसार श्रीहर्ष के 'नैषधीयचरितम्' महाकाव्य का विवेचन इस प्रकार है—

(१) महाकाव्य का सम्पूर्ण कथानक सर्गों में विभाजित है। 'नैषधीयचरितम्' के कथानक को २२ सर्गों में विभक्त किया गया है।

(२) कोई कुलीन क्षत्रिय तथा देवता महाकाव्य का नायक होता है। कभी-कभी एक ही वंश के अनेक राजा भी महाकाव्य के नायक हो सकते हैं। वे सभी गुणों से युक्त होने चाहिए। 'नैषधीयचरितम्' का राजा उत्तम कुल में उत्पन्न क्षत्रिय नल है।

(३) शृंगार, वीर और शान्त रसों में से एक रस महाकाव्य में प्रधान होता है। 'नैषधीयचरितम्' का प्रधान रस शृंगार है। महाकाव्य में अन्य रस अप्रधान रूप में होने चाहिए। 'नैषधीयचरितम्' में अंग अर्थात् प्रधान रस के अतिरिक्त शेष सभी रसों का समावेश है।

(४) महाकाव्य में नाटक की सभी संधियों अर्थात् मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श एवं निर्वहण का प्रयोग किया जाता है। 'नैषधीयचरितम्' महाकाव्य में नाटक की इन पाँचों संधियों का प्रयोग हुआ है।

(५) महाकाव्य का कथानक इतिहास पर आधारित अथवा कवि की कल्पना से प्रसूत अथवा किसी प्राचीन आख्यान पर आधारित होता है। उसमें किसी सज्जन पुरुष के जीवन-चरित्र को भी कथानक बनाया जाता है। 'नैषधीयचरितम्' का कथानक महाभारत से लिया गया है। महाभारत में इस कथानक का नाम 'नैषधीयचरितम्' है। महाभारत में इसका वर्णन 'वन पर्व' के ५२वें से ७९वें अध्याय तक है। यह 'नलोपाख्यान' महाभारत में २८ सर्गों में फैला हुआ है। 'नैषधीय चरितम्' में महाभारत के प्रारम्भिक चार सर्गों का कथानक ही लिया गया है।

महाभारत से पूर्व 'नलोपाख्यान' बीज रूप में 'शतपथ ब्राह्मण' में प्राप्त होता है। कथा-सरित्-सागर, लिंग पुराण, वायु पुराण एवं हरिवंश पुराण में भी नल-चरित के कुछ अंश बिखरे हुए हैं। कवि श्रीहर्ष ने प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से उन सबसे भी प्रेरणा ग्रहण की है।

(६) महाकाव्य में साधारणतः धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का वर्णन होता है, परन्तु विशेष रूप से इनमें से किसी एक का सम्पूर्ण फल-प्राप्ति के रूप में वर्णन होना चाहिए। महाकवि श्रीहर्ष द्वारा रचित महाकाव्य 'नैषधीयचरितम्' में काम नामक वर्ग की प्रधानता एवं शेष तीन वर्गों की अप्रधानता है।

(७) महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग में एक ही प्रकार की छन्द-योजना रहती है। सर्ग के अन्त में छन्द को परिवर्तित कर दिया जाता है। सर्गों का आकार न अधिक बड़ा होता है और न अधिक छोटा होता है। महाकाव्य में इस प्रकार के आठ से अधिक सर्ग होते हैं। किसी एक सर्ग में एक से अधिक प्रकार के छन्दों का भी प्रयोग किया जाता है। 'नैषधीयचरितम्' में एक सर्ग में एक छन्द का ही प्रयोग किया गया है। प्रत्येक सर्ग के अन्त में छन्द का परिवर्तन है। इसके प्रथम सर्ग में वंशस्थ छन्द का प्रयोग किया गया है। अन्त में क्रमशः दोधक, वसन्ततिलका और शार्दूलवक्रोडित छन्दों से सर्ग समाप्त होता है। अनेक छन्दों का प्रयोग श्रीहर्ष कवि ने द्वादश सर्गों में किया है।

(८) महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग में आगामी सर्ग के कथानक की सूचना होती है। इस नियम का निर्वाह 'नैषधीयचरितम्' के प्रत्येक सर्ग में हुआ है।

(९) महाकाव्य के आरम्भ में मंगलाचरण किया जाता है जो नमस्कार, आशीर्वाद अथवा कथावस्तु का निर्देशक होता है। मंगलाचरण मुख्य कथा का मार्ग प्रशस्त करता है। श्रीहर्ष कवि ने अपने महाकाव्य 'नैषधीयचरितम्' में कथावस्तु का निर्देशात्मक मंगलाचरण किया है।

(१०) महाकाव्य में संध्या, सूर्योदय, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, दिवस, प्रातः, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, षट्-ऋतु, वन, सागर, नगर, युद्ध, यात्रा, अभ्युदय, विजय, जलक्रीड़ा, संयोग, वियोग, उद्यान-विहार, विवाह, मन्त्र, पुत्र, मुनि, स्वर्ग, यज्ञ आदिक विविध विषयों का वर्णन होता है। श्रीहर्ष कवि ने अपने महाकाव्य 'नैषधीयचरितम्' में इनमें से अधिकांश का वर्णन किया है। वन एवं सरोवर का वर्णन तो इसके प्रथम सर्ग में ही है। वन के अशोक वृक्ष का वर्णन उदाहरण के रूप में प्रस्तुत है—

अशोकमर्थान्वितनामताशया, गतान् शरण्यं गृहशोधिनीऽध्वरान् ॥

अमन्यतावन्तमिवैष पल्लवैः, प्रतीष्टकामज्वलदस्त्रजालकम् ॥

(उस विरही नल ने कोमल पत्तों के द्वारा कामदेव के जलते हुए से अस्त्र-समूह को अपने अंगों पर लेने वाले अशोक वृक्ष को, अर्थ के अनुरूप नाम वाला होने की आशा से शरण देने में समर्थ निकट आये हुए, पत्तियों के शोक से त्रस्त, वियोगी पथिकों की रक्षा करता हुआ-सा माना।)

(११) महाकाव्य का नामकरण उसके कथानक, नायक, कवि अथवा किसी अन्य व्यक्ति के नाम के आधार पर होता है, किन्तु सर्गों का नामकरण सर्गगत कथा के आधार पर ही होना चाहिए।

श्री हर्षकवि ने इस महाकाव्य का नाम राजा नल के नाम पर किया है जो इस महाकाव्य का नायक है। राजा नल निषध देश का राजा था। 'नैषध' शब्द का अर्थ है—निषध से सम्बन्धित, 'नैषधीय' शब्द का अर्थ है—नैषध का। इस प्रकार इस महाकाव्य का नाम 'नैषधीयचरितम्' राजा नल से सम्बन्धित है। महाकवि श्रीहर्ष ने अपने सर्गों को कोई नाम नहीं दिया है।

(१२) महाकाव्य का मुख्य उद्देश्य चतुर्वर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में से एक की प्राप्ति होना है। इसमें धर्म तथा न्याय की विजय और अन्याय का विनाश होना चाहिए। श्रीहर्ष कवि के महाकाव्य 'नैषधीयचरितम्' में काम की उपलब्धि वर्णित है। राजा नल को पत्नी के रूप में दमयन्ती प्राप्त होती है, जो उसकी प्रेयसी थी।

इन सभी लक्षणों के साथ-साथ कवि को इस बात पर विशेष ध्यान देना चाहिए कि वह अपने महाकाव्य की समाप्ति के द्वारा मानवों के लिए कोई आशापूर्ण सन्देश अवश्य दें। जो लक्षण आचार्य विश्वनाथ द्वारा 'साहित्य-दर्पण' में दिये गये हैं और ऊपर जिनका विवेचन किया गया है, वे लक्षण लगभग सभी महाकाव्यों में रहते हैं। जिन महाकाव्यों में कतिपय अन्य विशेषताएँ भी यदि समाविष्ट होती हैं, तो महाकाव्य के इन लक्षणों में ही समाविष्ट मानी जाती हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि 'नैषधीयचरितम्' शास्त्रीय लक्षणों से युक्त एवं सर्वांगपूर्ण महाकाव्य है। इसकी कथा महाभारत के वन-पर्व से ली गयी है, जिनका विस्तार कविवर श्रीहर्ष ने २२ सर्गों में किया है।

NOTES

महाकाव्य के सभी लक्षण 'नैषधीयचरितम्' में घटित होने के विषय में प्रो. विश्वनाथ द्विवेदी ने लिखा है—“इसके नायक नैषध-नरेश नल धीरोदात्त गुणों से समन्वित एक सद्वंशीय, गुणवान् श्रेष्ठ क्षत्रिय हैं। इस महाकाव्य का प्रधान रस शृंगार है। वीर, करुण, हास्य आदि रसों का समावेश इसमें गौण रूप से ही हुआ है। छन्द के विचार से प्रथम सर्ग पूर्ण रूप से एकवृत्तीय है तथा सर्गान्त में दोधक, वसन्ततिलका और शार्दूलविक्रीडित छन्दों में अन्तिम पद देकर 'अवसानेऽन्यवृत्तकः' नियम का पालन किया गया है। द्वादश सर्ग वंशस्थ छन्द प्रधान होते हुए भी अनेक छन्दों से युक्त है। कुल मिलाकर इस महाकाव्य में उन्नीस छन्दों का प्रयोग किया गया है। कथावस्तु पूर्णतया ऐतिहासिक है। महाराज नल को दमयन्ती की प्राप्ति इस महाकाव्य का फल है। प्रातःकाल, सायंकाल, रात्रि, चन्द्रमा, विवाह, समुद्र, सम्भोग आदि अनेक महाकाव्योपयोगी विषयों का वर्णन यथास्थान किया गया है। प्रारम्भ में वस्तु-निर्देश सूचक मंगलाचरण की भी प्रस्तुति है। महाकाव्य का नामकरण चरितनायक नैषध (नल) के नाम पर ही 'नैषधीयचरितम्' अथवा 'नैषधमहाकाव्यम्' किया गया है, जो यथानाम-तथागुण के अनुसार अपने नाम की गुणात्मक सार्थकता को स्पष्ट करता है।”

“नैषधं विद्वदौषधम्” की समीक्षा:

महाकवि श्रीहर्ष ने अनेक साहित्यिक, दार्शनिक, व्याकरण-सम्बन्धी तथा आलोचनात्मक ग्रन्थों की रचना की है, परन्तु उनके यश का राजमहल, 'नैषधीयचरितम्' महाकाव्य पर आधारित है। इस महाकाव्य को संक्षेप में 'नैषधम्' भी कहा जाता है। इस सूक्ति का अर्थ है—“श्रीहर्ष द्वारा रचित महाकाव्य 'नैषधीयचरितम्' विद्वानों के लिए औषधि है। तात्पर्य यह है कि विद्वान् ही उसका रसास्वादन कर सकते हैं।”

नैषध अथवा नैषधीयचरितम् की गणना बृहत्त्रयी (किरातार्जुनीयम्, शिशुपालवधम् और नैषधीयचरितम्) में की जाती है। इन तीनों को विशाल महाकाव्य स्वीकार किया जाता है।

श्रीहर्ष संस्कृत साहित्य के सर्वाधिक चमत्कारी कवि हैं। कालिदास की गणना सर्वश्रेष्ठ रसवादी कवियों में की जाती है तथा श्रीहर्ष सर्वश्रेष्ठ चमत्कारी कवि माने जाते हैं। कालिदास ने सरल भाषा में काव्य-रचना की है और रसानुभूति को प्रधानता दी है। संस्कृत भाषा का साधारण ज्ञान रखने वाला व्यक्ति भी कालिदास के महाकाव्यों—रघुवंश, कुमारसंभव का रसास्वादन कर सकता है। चमत्कारवादी कवि चमत्कार में विश्वास करते हैं। वे भाषा और भाव दोनों को इतना दुरूह बना देते हैं कि विद्वानों को भी उनका अर्थ समझने में परिश्रम करना पड़ता है। चमत्कारवादी कवियों की परम्परा भारवि कवि से आरम्भ होती है। भारवि ने रसानुभूति की अपेक्षा चमत्कार को प्रधानता दी है। भारवि के महाकाव्य 'किरातार्जुनीयम्' की अपेक्षा माघ द्वारा विरचित महाकाव्य 'शिशुपालवधम्' अधिक क्लिष्ट है। श्रीहर्ष कवि द्वारा विरचित महाकाव्य 'नैषधीयचरितम्' में तो चमत्कारवाद और क्लिष्टता चरम सीमा को भी पार कर गयी है।

नैषधीयचरितम् की क्लिष्टता का अनुमान इसी से लगाया जाता है कि इसका एक सर्ग पंचनली कहलाता है। दमयन्ती के स्वयंवर में नल के साथ ही इन्द्र, अग्नि, यम और वरुण भी गये। चारों देवताओं—इन्द्र, अग्नि, वरुण और यम को ज्ञात था कि दमयन्ती नल से प्रेम करती है और स्वयंवर में उसी का वरण करेगी, किन्तु वे चाहते थे कि दमयन्ती उन्हें पति-रूप में स्वीकार करे, इसलिए वे चारों देव भी नल का रूप बनाकर स्वयंवर में गये और नल के समीप जाकर बैठ गये। अब वहाँ पाँच नल उपस्थित थे। सभी राजाओं का परिचय सरस्वती देवी स्वयं दे रही थीं। जब वह इन पाँचों नलों के समीप आयीं तो उन्होंने इन्द्र का परिचय जिन श्लोकों में दिया, उनका अर्थ इन्द्र और नल दोनों के पक्ष में लगाया जा सकता था। इसी प्रकार अग्नि, वरुण और यम के परिचय

के श्लोक दोहरे अर्थ वाले हैं। उनका अर्थ इन देवों के साथ ही नल के पक्ष में भी लगाया जा सकता है। जब सरस्वती जी नल का परिचय देने लगीं तो उन्होंने जो श्लोक बोले उनका अर्थ पाँच प्रकार से किया जा सकता है। वे श्लोक नल के साथ-साथ इन्द्र, अग्नि, वरुण और यम पर भी घटित होते हैं। संस्कृत साहित्य में नैषधीयचरितम् का पंचनली प्रकरण एकमात्र ऐसा स्थल है, जिसमें एक श्लोक के पाँच अर्थ होते हैं।

इस प्रकार के महाकाव्य का आनन्द विद्वान् ही ले सकते हैं, साधारण पढ़ा-लिखा व्यक्ति नहीं ले सकता। डॉ. विश्वम्भर नाथ द्विवेदी ने श्रीहर्ष के महाकाव्य नैषधीयचरितम् अथवा नैषधम् को 'विद्वदौषधम्' सिद्ध करते हुए लिखा है—“भारतीय समालोचकों ने नैषधीयचरितम् महाकाव्य को ज्ञान के विशाल कोष के रूप में प्राप्त किया, जिसमें न केवल महाकाव्य की ही, अशेष विशेषताएँ समुपलब्ध होती हैं, अपितु विविध विधाओं, शास्त्रों, पुराणों, दर्शनों एवं मानवीय संवेदनाओं का भी यथेष्ट ज्ञान विद्यमान है। इससे महाकवि श्रीहर्ष के अगाध पाण्डित्य का अनुमान सहज ही लग जाता है।” प्रसिद्ध टीकाकार सुधी विद्याभर नैषध महाकाव्य के सत्रहवें सर्ग की समाप्ति पर श्रीहर्ष के वैदुष्य विषयक प्रशस्ति-पत्र को मुद्रांकित करते हुए लिखते हैं—

“अष्टौ व्याकरणानि तर्क-निवहः साहित्यसारो नयो,
वेदार्थावगतिः पुराणपठितिर्यस्यान्य शास्त्राण्यपि।
नित्यं स्युः स्फुरितार्थ दीपविहताज्ञाना-धकाराण्यसौ,
व्याख्यातुं प्रभवत्यमुं सुविषयं सर्गः सुखेः कोविदः।।”

डॉ. सुशील कुमार डे ने भी “नैषध को विद्वदौषधम्” सिद्ध करने के हेतु स्वीकार किया है—“इसे तो मानना ही पड़ेगा कि नैषधचरित केवल एक वैदुष्यपूर्ण काव्य ही नहीं है, अपितु अनेक प्रकार से परम्परागत ज्ञान का भण्डार है और किसी भी व्यक्ति को उस समस्त ज्ञान से पूर्ण सुसज्जित होकर ही इसमें (नैषध में) प्रवेश करना चाहिए।”

संस्कृत-साहित्य में दर्शन-शास्त्र को सबसे अधिक क्लिष्ट माना जाता है। महाकवि श्रीहर्ष एक अच्छे दार्शनिक भी थे और उन्होंने अपनी दार्शनिकता का समावेश अपने महाकाव्य ‘नैषध’ में किया है। इस विषय में डॉ. चण्डीप्रसाद शुक्ल ने लिखा है—“नैषध विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों के मार्मिक विषयोलेखों से भरा पड़ा है। श्रीहर्ष समस्त दर्शनों के अद्वितीय विद्वान् थे। उन्होंने दर्शनों का केवल ज्ञान ही नहीं प्राप्त किया था, अपितु श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन द्वारा दर्शन को अपने जीवन का ही अंग बना लिया था। उनकी अपने प्रति ‘समाधि में आनन्द सागर परब्रह्म का साक्षात्कार करना है (यः साक्षात् कुरुते समाधिषु परं ब्रह्म प्रमोदार्णवम्’। केवल गर्वोक्ति नहीं, तथ्योक्ति भी थी, क्योंकि ब्रह्म के सत्, चित् तथा आनन्द—तीनों प्रकार के स्वरूप का साक्षात्कार हुए बिना किसी मेधावी पुरुष से भी समस्त ज्ञान-कोष का ऐसा स्फुरण (प्रकाश) असम्भव था। अपने ‘खण्डनखण्डखाद्य’ में श्रीहर्ष ने अदृश्य तर्कों के बल से प्रति-तन्त्र सिद्धान्तों का उन्हीं की उक्तियों से खण्डन करते हुए वेदान्त-सम्मत अद्वैत ब्रह्म की स्थापना की है। नैषध में प्रायः सभी दर्शनों के विभिन्न सिद्धान्तों का उल्लेख पाया जाता है, जिससे ऐसा मालूम पड़ता है, मानो श्रीहर्ष नैषध को विभिन्न दार्शनिक-सिद्धान्तों का एक परिचय-ग्रन्थ बनाना चाहते थे।”

अपनी व्युत्पत्ति का चमत्कार कवि-श्रेष्ठ श्रीहर्ष ने ‘नैषधीयचरितम्’ महाकाव्य में पूर्णरूपेण प्रस्तुत किया है। इस सम्बन्ध में अनेक दन्तकथाएँ प्रचलित हैं। कुछ विद्वान् स्वीकार करते हैं कि कला और विद्या की देवी सरस्वती ने स्वयं आग्रह करके श्रीहर्ष को ऐसी काव्य-रचना की प्रेरणा दी थी जो उनके पाण्डित्य के पूर्ण प्रदर्शन

NOTES

का आधार प्रतीत न हो। माता सरस्वती का उद्देश्य यह था कि अन्य विद्वान् उसे समझने में समर्थ हो सकें। कारण यह भी था कि श्रीहर्ष ने वेदान्त दर्शन के जिस ग्रन्थ 'खण्डनखण्डखाद्य' की रचना की थी, उसे समझने में विद्वान् भी असमर्थ थे। इतना होने पर भी 'नैषधीयचरितम्' महाकाव्य कवि श्रीहर्ष के दुर्धर्ष पाण्डित्य का उदाहरण है। कवि श्रीहर्ष ने स्वयं स्वीकार किया है कि इसमें उन्होंने जान-बूझकर कुछ ऐसी ग्रन्थियों का निवेश किया है, जिससे अपने आपको पण्डित समझने वाले इसके साथ छेड़छाड़ करने का साहस न कर सकें। जिन लोगों ने श्रद्धा और सेवा का आधार लेकर गुरु की आराधना करते हुए विद्याध्ययन किया है, वे ही इस ग्रन्थ अर्थात् 'नैषधीयचरितम्' की ग्रन्थियों को शिथिल करके इसे समझ सकेंगे। सज्जन रसिक ही इसकी रस-धारा में अवगाहन करने में समर्थ होंगे। कवि श्रीहर्ष की यह स्वीकृति निम्नलिखित पद्य के रूप में है—

ग्रन्थग्रन्थिरिह क्वचित्क्वचिदपि न्यासिप्रयत्नान्मया।

प्राज्ञमन्यमना हठेन पठिती माऽस्मिन् खलः खेलतु॥

श्रद्धाऽऽरागुरु श्लथीकृत दृढग्रन्थिः समासादय-

त्वेतत्काव्य-रसोर्मि-मज्जन-सुखं व्यासज्जनं सज्जनः॥

डॉ. उमाशंकर शर्मा ऋषि के अनुसार, “राजशेखर सूरि के प्रबन्ध-कोश में श्रीहर्ष की एक उक्ति संकलित है, जिसमें उन्होंने कहा है कि मेरी वाणी सुकुमार प्रमेय वाले साहित्य के क्षेत्र में तथा दृढ़ न्यायशास्त्र की ग्रन्थियों से पूर्ण तर्क के क्षेत्र में समान क्रीड़ा करती है। वस्तुतः इस काव्य में भी कवि ने अपने इस वचन का निरन्तर पालन किया है, जिसमें नैषधीयचरितम् एक ओर रसात्मकता के प्रकर्ष पर है, तो दूसरी ओर वैदुष्य के शिखर पर भी विराजमान है। जिन विद्वानों को अपने पाण्डित्य के अभिमान के रूप में कोई रोग हो, तो उनका अहंकार-निवारण इस महाकाव्य के आनन्द के अनावरण के क्रम में अवश्य हो जायेगा।” ‘भागवत-पुराण’ के विषय में जिस प्रकार ‘विद्यावतां भागवते परीक्षा’ की उक्ति प्रचलित है, उसी प्रकार उक्त संदर्भ में ‘नैषधं विद्वदौषधम्’ यह उक्ति चल पड़ी। इस महाकाव्य में विशेष योग्यता पाना विविध शास्त्रों के अवगाहन का परिचायक है। इसमें व्याकरण, न्याय, सांख्य, वैशेषिक, योग, वेदान्त, मीमांसा, चार्वाक, जैन, बौद्ध आदि दर्शनों के कठिन सिद्धान्तों का यत्र-तत्र वर्णन है।”

कवि श्रीहर्ष ने महाकाव्य 'नैषधीयचरितम्' के विषय में कठोरता और कोमलता की जो बात कही है, वह उनके शब्दों में इस प्रकार है—

साहित्ये सुकुमार वस्तुनि दृढन्याये ग्रहग्रन्थिले।

तर्के वा मयि संविधातरि समं लीलायते भारती॥

‘नैषधीयचरितम्’ महाकाव्य के विषय में डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सैना का अभिमत इस प्रकार है, “इनके काव्य में कृत्रिमता एवं आडम्बरप्रियता के अतिरिक्त मानव-जीवन की समग्रता का अंकन नहीं मिलता। केवल शृंगार का एकदेशीय चित्रण अधिक है। चरित्र-चित्रण तथा कथानक की कलात्मक सृष्टि के नाते भी श्रीहर्ष निपुण नहीं दिखाई देते।”

श्रीहर्ष ने अपने महाकाव्य 'नैषधीयचरितम्' में वेद, व्याकरण, छन्द-शास्त्र, ज्योतिष, शिक्षा, सामुद्रिक-शास्त्र, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गांधर्वशास्त्र अर्थात् संगीत, नाटक, अलंकारशास्त्र, रत्न विज्ञान, कामशास्त्र, पाकशास्त्र, पुराणेतिहास, दर्शन, राजनीति आदि सभी विद्याओं का समावेश किया है। इस प्रकार के महाकाव्य का आनन्द लेने के लिए और समझने के लिए भी इन सभी विद्याओं का ज्ञान होना आवश्यक है। इन सब विद्याओं का ज्ञान रखने

वाला निश्चित रूप से विद्वान् कहलायेगा। एक तथ्य यह है कि 'नैषधीयचरितम्' के अध्ययन से प्रत्येक व्यक्ति (पण्डित और सामान्य ज्ञान युक्त दोनों) के ज्ञान में वृद्धि होगी। जिस प्रकार औषधि रोग का विनाश करके शक्ति बढ़ाती है, उसी प्रकार श्रीहर्ष द्वारा विरचित महाकाव्य 'नैषधम्' अथवा 'नैषधीयचरितम्' भी विद्वत्ता का विस्तार करने के कारण औषध सिद्ध होता है।

इस आधार पर स्वीकार किया जाना चाहिए—“नैषधं विद्वदौषधम्”।

महाकाव्यों में नैषध की स्थिति:

श्रीहर्ष चमत्कारवादी कवियों में अन्तिम ही नहीं, सर्वश्रेष्ठ भी माने जाते हैं। काव्य-रचना में रसानुभूति की अपेक्षा चमत्कार को प्रधानता देना भारवि कवि से आरम्भ हुआ। उन्होंने अपने महाकाव्य 'किरातार्जुनीय' में चमत्कार-प्रदर्शन आरम्भ किया। 'शिशुपालवध' महाकाव्य के रचयिता महाकवि माघ ने इसे आगे बढ़ाया। नैषधीयचरितम् महाकाव्य के रचयिता श्रीहर्ष तक पहुँचते-पहुँचते यह चमत्कार-प्रदर्शन इतना अधिक बढ़ गया कि काव्य की परिभाषा 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' अर्थात् रसात्मक वाक्य ही काव्य है, की सर्वथा उपेक्षा होने लगी। चमत्कार-प्रदर्शन और विद्वत्ता में श्रीहर्ष कवि इतने उत्कृष्ट हैं कि भारवि और माघ दोनों उनके सामने नहीं नहीं ठहरते। इसी को लक्ष्य करके किसी आलोचक ने निम्नलिखित सूक्ति की रचना की—

तावद् भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः,
उदिते तु नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः।

अर्थात् भारवि की शोभा तभी तक है, जब तक माघ का उदय नहीं हुआ और जब नैषध काव्य का उदय हो गया तो कहाँ माघ और कहाँ भारवि ?

तात्पर्य यह है कि जब माघ कवि के महाकाव्य 'शिशुपालवध' की रचना नहीं हुई थी, तब तक वह प्रकाश में नहीं आया था, तब तक भारवि को अपने चमत्कार-प्रदर्शन के लिए प्रशंसा प्राप्त होती रही थी। जिस प्रकार सूर्य की तीव्रता तभी तक रहती है, जब तक माघ का मास नहीं आ जाता। माघ मास के आते ही सूर्य की तीव्रता समाप्त हो जाती है, उसी प्रकार माघ कवि के 'शिशुपालवध' महाकाव्य के चमत्कार-प्रदर्शन को देखकर विद्वान् भारवि कवि द्वारा रचित महाकाव्य 'किरातार्जुनीय' की कलात्मकता को भूल गये। जब 'नैषधीयचरितम्' महाकाव्य विद्वानों के सामने आया तो उन्होंने 'किरातार्जुनीय' महाकाव्य के रचयिता भारवि और 'शिशुपालवध' महाकाव्य के रचयिता माघ कवि को भुला दिया। इस सूक्ति का तात्पर्य श्रीहर्ष कवि को भारवि और माघ से तथा नैषधीयचरितम् को किरातार्जुनीय और शिशुपालवध की अपेक्षा अत्यधिक श्रेष्ठ सिद्ध करना है। अतः यह वर्णन प्रस्तुत है—

(क) भारवि—महाकवि भारवि ने 'किरातार्जुनीय' महाकाव्य की रचना करके संस्कृत महाकाव्य को एक नयी दिशा दी। भारवि शब्द का अर्थ सूर्य की किरण है। भारवि वे पहले कवि हैं, जिन्होंने काव्य-रचना में रसानुभूति की अपेक्षा चमत्कार प्रदर्शन को प्रमुखता दी। इनके पूर्व के कवि कथावस्तु के विकास पर अधिक ध्यान देते थे, वर्णनों पर कम। भारवि ने कथानक से अधिक वर्णनों को महत्व दिया। भारवि अपने काव्य की सरलता के लिए नहीं, अर्थ-गौरव के लिए प्रसिद्ध हैं। सरसता तो कालिदास के काव्यों में है। भारवि के 'अर्थ-गौरव' के लिए किसी समालोचक अथवा आचार्य ने कहा है—

NOTES

(कालिदास की उपमा, भारवि का अर्थ-गौरव और दण्डी का पद-लालित्य प्रसिद्ध है। माघ कवि में अर्थात् उनके महाकाव्य 'शिशुपालवध' में ये तीनों गुण—उपमा, अर्थ-गौरव और पदलालित्य हैं। यह सूक्ति माघ कवि को भारवि की अपेक्षा श्रेष्ठ सिद्ध करती है, पर भारवि के काव्य में अर्थ-गौरव को भी स्वीकार करती है।)

भारवि के महाकाव्य 'किरातार्जुनीयम्' में अर्थ-गौरव के विषय में प्रो. विश्वम्भर नाथ द्विवेदी ने लिखा है—

“संसार के अंधकार का अपसारण करने में सर्वदा समर्थ रवि के समान भारवि भी अर्थ-गौरव के लिए संस्कृत जगत् में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। अर्थ-गौरव का अर्थ है—स्वल्प पदावली में ही विशद एवं गम्भीर भावों तथा विचारों को अभिव्यक्त कर देना। इस कला में भारवि परम-निपुण हैं। उनके अर्थ-गौरव को उदाहरण के रूप में हृदयंगम करें—

महौजसो मानधनाः धनार्चिता धनुर्भृतः संयति लब्धकीर्तयः।
न संहतास्तस्य न भिन्नवृत्तयः प्रियाणि वाञ्छन्त्यसुभिः समीहितुम् ॥

(महाबलशाली, स्वाभिमान के धनी, धन से सम्मानित, रणस्थल में कीर्ति को प्राप्त करने वाले, कभी स्वार्थवश एकत्र न होने वाले, अनुकूल आचरण करने वाले, धनुषधारी योद्धा लोग अपने प्राणों द्वारा भी उस दुर्योधन का प्रिय-कार्य करने की इच्छा करते हैं।) यहाँ भारवि का एक-एक पद विचार करने पर पूर्णतया अर्थ-गौरव से सम्पन्न दृष्टिगोचर होता है।”

(ख) माघ—माघ कवि द्वारा रचित महाकाव्य 'शिशुपालवधम्' में उपमा, अर्थ-गौरव और पदलालित्य-तीनों गुण स्वीकार किये गये हैं—“माघे सन्ति त्रयोगुणाः ।”

अर्थ-गौरव की दृष्टि से भारवि की अपेक्षा श्रीहर्ष बहुत आगे हैं। श्रीहर्ष के 'नैषधीयचरितम्' का पंचनली प्रकरण उन्हें अर्थ-गौरव में परम-प्रवीण सिद्ध करता है। इस प्रकरण में इस प्रकार के श्लोक तो हैं ही, जिनके दो-दो अर्थ होते हैं, इस प्रकार के श्लोक भी हैं, जिनके पाँच अर्थ होते हैं। माघ और श्रीहर्ष की तुलना करते हुए प्रो. विश्वम्भर नाथ द्विवेदी ने स्वीकार किया है—“माघ पण्डित कवि हैं तो श्रीहर्ष पण्डित होने के साथ-साथ कवि और प्रखर दार्शनिक भी हैं। अतएव 'साहित्ये सुकुमार वस्तुनि' इत्यादि कथन समुचित ही हैं।” पं. बलदेव उपाध्याय ने लिखा है—“माघ ने नाना शास्त्रों का उपयोग अपनी उपमा तथा उत्प्रेक्षा जमाने के लिए किया है तथा 'निहत्यनेकपदे स उदात्तः स्वरानिव'। परन्तु मेरे विचार से श्रीहर्ष ने नाना शास्त्रों का उपयोग इस चातुरी से किया है कि उनसे उनके वर्ण्य-विषय में चमत्कार और अर्थ-गाम्भीर्य ही न आ जावे, अपितु स्वयं तत्-तत् शास्त्रों का महत्व भी पाठक के मन पर अंकित हो जावे।”

(ग) श्रीहर्ष—समालोचक विद्वान यह स्वीकार करते हैं कि भारवि को राजनीतिशास्त्र का अच्छा ज्ञान था, जिसका प्रदर्शन उन्होंने अपने महाकाव्य 'किरातार्जुनीयम्' में किया है। माघ कवि को अपने दार्शनिक-ज्ञान और व्याकरण के वैदुष्य के हेतु सराहा गया है। श्रीहर्ष कवि की विद्वत्ता इन दोनों कवियों—भारवि और माघ की अपेक्षा उच्चकोटि की है। श्रीहर्ष ने 'नैषधीयचरितम्' महाकाव्य के साथ-साथ 'खण्डनखण्डखाद्य' नामक दार्शनिक

ग्रन्थ की रचना द्वारा स्वयं को दार्शनिक विद्वान् अद्वैतवादी के रूप में भी प्रतिष्ठित किया है। न्याय-शास्त्र की स्थापना करने वाले गौतम ऋषि के विषय में उन्होंने घोषित किया है—

नैषधीयचरितम् (श्रीहर्ष)

“मुक्तये यः शिलात्वाय शास्त्रमूचे सचेतसाम्।

गौतमं तमवेक्ष्यैव यथावित्थ तथैव सः।”

NOTES

श्रीहर्ष विद्वता की दृष्टि से अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। श्रीहर्ष का अपनी भाषा और शैली पर असाधारण अधिकार है। श्रीहर्ष की प्रमुख विशेषता यह है कि वे सुकुमार एवं मनोरम पर-रचना में पूर्ण समर्थ एवं दक्ष हैं। श्रीहर्ष अपने पद-लालित्य के लिए भी प्रसिद्ध हैं। यह कहने में किसी को कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि श्रीहर्ष की वैदर्भी रीति कालिदास की वैदर्भी रीति के समान प्रसाद गुण-युक्त प्रतीत नहीं होती है। इसके विपरीत कुछ ऐसे श्लोक भी ‘नैषधीयचरितम्’ में हैं जो भाषा की दृष्टि से कालिदास के छन्दों के समान कहे जा सकते हैं। ‘नैषधीयचरितम्’ के प्रथम सर्ग में हंस के विलास का जो प्रसंग है, वह वैदर्भी रीति का सुन्दर उदाहरण कहा जा सकता है। नैषध महाकाव्य में वैदर्भी रीति की प्रधानता का एक कारण इसके नायक नल की प्रेयसी दमयन्ती का विदर्भ राज्य की राजकुमारी अर्थात् ‘वैदर्भी’ होना है। श्रीहर्ष ने स्वीकार किया है—

धन्यासि वैदर्भि गुणैरुदारै-

र्यया समाकृष्यत नैषधोऽपि।

वैदर्भी रीति के अतिरिक्त कवि श्रीहर्ष ने ‘नैषधीयचरितम्’ महाकाव्य में गौडी रीति का भी यत्र-तत्र प्रयोग किया है।

डॉ. अखिलेश पाठक ने भी स्वीकार किया है—“कवि का भाषा पर असाधारण अधिकार है। उन्होंने अनुप्रास के प्रयोग द्वारा यह सिद्ध किया है। कवि की शैली अलंकृत शैली है। इसका उदात्त रूप नैषध में देखने को मिलता है। श्रीहर्ष की कल्पना-शक्ति विलक्षण है। वे भावों के उचित निर्वाह एवं संयोजन तथा उपयुक्त एवं सुन्दर शब्द-विन्यास, कल्पना की ऊँची उड़ान और प्राकृतिक रमणीय दृश्यों के चित्रण में अपनी तुलना नहीं रखते हैं। अलंकृत शैली के उद्भावक महाकवि भारवि का प्रकाश तभी तक सहृदयों को रंजित करने वाला रहा, जब तक माघ का उदय नहीं हुआ। माघ, भारवि को भी बहुत पीछे छोड़कर अपने अनुपम काव्य-वैभव से सहृदयों को प्रभावित कर सके, किन्तु नैषध के उदित होने पर भारवि तथा माघ दोनों ही प्रभावहीन हो गये।”

डॉ. उमाशंकर शर्मा ऋषि के अनुसार, “श्रीहर्ष के काव्यगत वैशिष्ट्य के अनेकानेक उपादानों में इनके पद-लालित्य का बहुत आदर है। प्रसाद गुण और माधुर्य भाव तो इनकी कृति में प्राचुर्य प्राप्त किये ही हुए हैं। अनुप्रास, श्रुति-मधुर पदावली का विन्यास पद-पद पर मिलता है, चाहे प्रथम पद्य को ही क्यों न रखें ? जैसे—

निपीय यस्य क्षितिरिक्षिणः कथाः,

तथाद्रियन्ते च बुधास्सुधामपि।

शृंगार तथा अन्य कमनीय रसों में भी यह महाकाव्य अनुस्यूत है।

‘नैषधीयचरितम्’ का अलंकार—सौन्दर्यः

श्रीहर्ष ने अलंकारों का प्रयोग अर्थ-पुष्टि के लिए किया है। शब्दालंकारों में उनको अनुप्रास और श्लेष सबसे अधिक प्रिय हैं। यमक का भी कहीं-कहीं छौटा मिलता है, पर बहुत कम। शब्दालंकारों को श्रीहर्ष ने अर्थ में सौन्दर्य बढ़ाने के लिए ही प्रयुक्त किया है।

नैषध में काकु-वक्रोक्ति तथा श्लेष-वक्रोक्ति दोनों का सुन्दर प्रयोग हुआ है। चतुर्थ सर्ग में विरहतप्त दमयन्ती और सखियों के संलाप में काकु तथा श्लेष की उभयजनित वक्रोक्ति दिखाई पड़ती है। यथा—

NOTES

“अकरुणादवसूनशरादसून् सहजयाऽऽपि धीरतयात्मनः।”

(नै. ४/१०२)

“व्रज धृतिं त्यज भीतिमहेतुकामयंचण्डमरीचिरुदञ्चति॥”

“ज्वलयति स्फुटमातपमुर्मैनुभवं वचसा सखि! लुम्पसि॥

(नै. ४/१०५, १०६, १०७, १०८, १०९)

सखी की उक्ति है—

“सुन्दरि, विपत्ति में अपनी सहज धीरता के द्वारा इस निष्करुण कुसुम-शर (काम) से अपने प्राणों को बचाओ।”

इस पर दमयन्ती उत्तर देती है—

“आज मेरे प्राण ही तो विरोधी हो रहे हैं, फिर सखि तुम (न जाने) क्यों मुझे इन ‘शत्रुओं की रक्षा’ करने को कहती हो।” यहाँ सखी दमयन्ती के जिन प्राणों का इष्ट पदार्थ के रूप में उल्लेख करती है, दमयन्ती अपने उपेक्षात्मक कण्ठस्वर के द्वारा उन्हें ही अपना शत्रु और उनकी रक्षा को आश्चर्य का विषय बताती है; फिर जब सखी कहती है—

“सुन्दरि, धैर्य-धारण करो। अकारण-भय छोड़ो यह शीतांशु उदय हो रहा है।”

इस पर दमयन्ती उत्तर देती है—

“यह आतपरूप चिन्तारियों से स्पष्ट जल रहा है। सखि, तू मेरे इस प्रत्यक्ष अनुभव को अपनी बात से उड़ा रही है।”

इसी प्रसंग में श्लेष-वक्रोक्ति का भी अतिमनोरम रूप देखने को मिलता है। यथा—

अमृतदीधितिरेष विदर्भजे ! भजसि तापममुष्यं किमंशुभिः।”

“यदि भवन्ति मृताः सखि ! चन्द्रिकाः शशभृतः क्व तदा परितप्यते॥”

(नै. ४/१०४)

सखी की उक्ति है—

“अरे वैदर्भी यह अमृतांशु (चन्द्र) है, इसकी किरणों से तुझे ताप क्यों हो रहा है ?”

दमयन्ती उत्तर देती है—

“सखि, इस शशांक की किरणें यदि मृत होतीं तो परिताप ही क्यों होता ?”

यहाँ अमृत का अर्थ सखी ने ‘सुधा’ रखा था, किन्तु दमयन्ती ने ‘न मरी हुई’ लिया।

श्लेष-काकु-उभय-प्रयुक्त वक्रोक्ति के कई चमत्कारपूर्ण उदाहरण सत्रहवें सर्ग में देव-कलि के वाक्कलह में मिलते हैं।

शब्दालंकारों में श्रीहर्ष को अनुप्रास अलंकार सबसे अधिक प्रिय है। अनुप्रास में भी उन्हें शब्द के अन्तिम वर्णों की क्षमता अधिक प्रिय है। जैसे—

“प्रथमचरमयोर्वा शब्दयोर्वर्णसख्ये
विलसति चरमेनुप्रासभासां विलासः ॥

(नैष. ३/५४)

“शब्दों में आदि तथा अन्त के वर्णों के समान होने पर भी अनुप्रास अलंकार अन्तिम वर्णों में अधिक प्रिय लगता है।” इसी श्लोकार्ध के प्रथम समस्त पद में ‘म’ छेकानुप्रास का तथा अन्तिम चरण में ‘स’ द्वारा वृत्यानुप्रास का सौन्दर्य है।

श्रीहर्ष ने यमक का भी अनेक स्थलों में प्रयोग किया है। यथा—

“अवलम्ब्य दिदृक्षयाम्बरे क्षणमाश्चर्यरसालसं गतम्।
स विलासवने वनीभृतः फलमैक्षिष्ट रसाल-संगतम् ॥”
“नभसः कलभैरुपासितं जलदैर्भूरितरं क्षुपं नगम्।
स ददर्श पतङ्ग-पुङ्गवो विटपच्छन्न-तरक्षु-पन्नगम् ॥”

श्रीहर्ष ने काव्य-चमत्कार के लिए श्लेष का अत्यधिक प्रयोग किया है। जहाँ कहीं भी उन्होंने अपनी कवित्व शक्ति का विलास दिखाना चाहा है, वहाँ श्लेष का प्रधान आश्रय लिया जाता है। श्लेष दो प्रकार का होता है—(१) शब्दगत, (२) अर्थगत। यथा—

“का नाम बाला द्विजराजपाणिग्रहाभिलाषं कथयेदलज्जा ॥”

(नै. ३/५९)

चैतो नलङ्कामयते मदीयं नान्यत्र कुत्रापि च साभिलाषम् ॥”

(नै. ३/६७)

यहाँ ‘द्विजराज-पाणिग्रह’ पद के—(१) द्विजराज (चन्द्रमा) को हाथ से पकड़ना, (२) हे द्विज (हंस) के विवाह, (३) हे द्विजराज (हंस) अपने विवाह, आदि अनेक अर्थ निकलते हैं। आगे हंस से दमयन्ती की ही उक्ति है—

“मेरा चित्त नल को चाहता है, इसे और कहीं अन्यत्र अभिलाषा नहीं है।”

यहाँ ‘नलङ्कामयते’ पद के—(१) नल को चाहता है, (२) लंका नहीं जाता, आदि अर्थ सभङ्ग श्लेष द्वारा निकलते हैं।

श्लेष का अत्यन्त प्रौढ़रूप स्वयंवर में बैठे पाँच नलों के परिचय में दिखाई पड़ता है। प्रत्येक के परिचय में अनेक श्लोक कहे गये हैं।

NOTES

NOTES

शब्दालङ्कारों के समान अर्थालङ्कारों की भी 'नैषधकाव्य' में अतुल समृद्धि है। श्रीहर्ष कल्पना के उत्कृष्ट कलाकार हैं। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति, सन्देह और अपहृति—जैसे अर्थालङ्कारों में श्रीहर्ष ने अपनी अनूठी कल्पनाओं को अभिव्यक्त किया है। इनमें अनेक कल्पनाएँ प्रायः शास्त्रों और पौराणिक कथाओं से गृहीत हैं।

श्रीहर्ष ने उत्प्रेक्षा को बड़ा महत्व दिया है या सम्पूर्ण नैषध उत्प्रेक्षा की सुषमा से जगमगा रहा है। कल्पना करने में प्रवीण कवियों को उन्होंने 'उत्प्रेक्षा कवि' की उपाधि दी है। यथा—

“प्रिये ! पश्योत्प्रेक्षाकविरभिधानाय सुशुकः ।

सुधामभ्युद्धर्तुम् धृतशशकनीलाशमचर्षकः ॥”

(नै. २२/१४४)

“प्रिय देखो ! उत्प्रेक्षा-कुशल-कवियों द्वारा यह कहना बड़ा सरल हो जाता है कि मानो विशाल मटके (चन्द्रमा) पर शशक नाम का नील मणियों का बना हुआ प्याला रखा हुआ है।”

प्रथम सर्ग में नल के घोड़े से सम्बन्धित उत्प्रेक्षा का सौन्दर्य हृदयंगम है—

“अजस्रभूमितटकुट्टनोगद ते रुपास्यमानं चरणेषु रेणुभिः ।

रयप्रकर्षाध्ययनार्थमागतैर्जनस्य चेतोभिरिवाणिमाङ्गते ॥”

(नै. १/५९)

निरन्तर भूमितल के ताडन से उठी हुई धूलियों से, मानो वेग के प्रकर्ष के अध्ययन के लिए न आये हुए, अनुपरिमाणयुक्त, लोगों के चित्तों से चरणों में सेवा किये जाते हुए नल के चरणों की ऊर्ध्व रेखा के प्रति श्रीहर्ष की उत्प्रेक्षा है। जैसे—

“अधोविधानात्कमलप्रवालयोः शिरःसु दानादखिलक्षमाभुजाम् ।

पुरेदमूर्ध्वं भवतीति वेधसा पदं किमस्याङ्गातिमध्वरिखया ॥”

(नै. १/१८)

“कमल तथा प्रवाल का तिरस्कार करने के कारण एवं समस्त नरेशों के सिर पर रखे जाने के कारण ये नल-चरण ऊर्ध्व-स्थान भागी होंगे। यह विचार मानो विधि ने पहले से ही कर लिया था, तभी तो नल के चरणों को ऊर्ध्व-रेखा से अंकित कर दिया था।”

यहाँ इतिपर्यन्त वाक्य में हेतुत्प्रेक्षा है जो किम् प्रयोग के कारण वाच्य हो गयी है।

नल के सम्मुख दमयन्ती की चरण-सुषमा का वर्णन करते हुए हँस कहता है—

“जलजे रविसेवयेव ये पदमेतत्पदतामवापतुः ।

ध्रुवमेत्यरुतः स हंसकीं कुरुतस्ते विधिपत्रदम्पती ॥”

“मानो जिन कमलों ने सूर्य की सेवा करने के कारण दमयन्ती के चरणों की पदवी प्राप्त की है, उन्हें विधि वाहन हँसों के दम्पती (जोड़ा) नूपुर रूप में आकर सुशोभित कर रहे हैं।”

यहाँ 'रविसेवयेव' में क्रिया की वाच्योत्प्रेक्षा है तथा 'ध्रुवं स हंसकीकुरुतः' में श्लेषोत्थापित वाच्योत्प्रेक्षा है, किन्तु सब स्थानों पर पाण्डित्य ही नहीं है। श्रीहर्ष की अनेक कल्पनाएँ मौलिकता और चमत्कार के साथ-साथ प्रसाद गुण से भी परिपूर्ण हैं। जब नल ने हंस को पकड़ लिया तो उसके साथी अन्य हंसों ने नाद किया। कवि

कल्पना करता है कि वह कलहंसनिनाद, मानो सुवर्ण-हंस के पकड़े जाने से रुष्ट होकर उस सर को छोड़कर जाती हुई लक्ष्मी के चरणों के नूपुरों की झंकार है। यथा—

नैपथीयचरितम् (श्रीहर्ष)

“पतत्रिणा तदुचिरेण वंचितं श्रियः प्रयान्त्याः प्रविहाय पल्लवम्।

चलत्पदाम्भोरुहनूपरोपमा चुकूज कूले कलहंस मण्डली ॥”

(१/२७)

NOTES

लोकव्यवहार पर आधारित अप्रस्तुत भी प्रायः सुन्दर बन पड़े हैं। अत्यन्त पुराने घर की लकड़ियों में घुन लगने से उसके गोलाकार छिद्र-द्वार दिखाई पड़ने लगते हैं तथा उनमें घुनी हुई लकड़ी की धूलि गिरने लगती है। कवि कल्पना करता है कि मानो यह लोकाश्रय-ब्रह्माण्ड अत्यन्त पुराना हो गया है जिसमें तारे मानो घुनों के गोलाकार छिद्र-द्वार हैं जो अपनी कान्ति को नीचे फैलाते हुए घुनी लकड़ी की धूलि को चारों ओर फैला रहे हैं—

“लोकाश्रयो मण्डपमादिसृष्ट ब्रह्माण्डमामात्यनुकाष्ठमस्य।

स्वकान्तिरेणूत्करवान्तिमन्ति घुणव्रण द्वारनिभानि भानि ॥”

(XXII, २५)

हेतूत्प्रेक्षाओं के रूप में कवि की कल्पनाएँ भी अनूठी हैं। चन्द्रमा के कलंक पर उनकी एक हेतूत्प्रेक्षा दृष्टव्य है—

“यदस्य यात्रासु बलोद्धतं रजः स्फुरत्प्रतापानलधूलमज्जिम।

तदेव गत्वा पतितं सुधाम्बुधौ दधाति पंकीभवदङ्कतां विधौ ॥”

(१/८)

“इस (नल) की (युद्ध) यात्राओं में जो धूलि, जिसकी शोभा जलते हुए प्रताप रूपी अग्नि के धुएँ के समान थी, सेनाओं से उठी, वही जाकर अमृतसागर में गिरकर कीचड़ बनती हुई चन्द्रमा में (मानो) कलंकता धारण करती है।”

इसी प्रकार ‘हरि’ के श्लिष्ट प्रयोग पर आधृत एक हेतूत्प्रेक्षा अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी है। घोड़े अपने अगले पैरों को आकाश की ओर उठाते हैं, सहसा उन्हें याद आ जाता है कि उनके ही साथ हरि (१. वामन रूप में कृष्ण, २. घोड़ा) ने आकाश को केवल एक पैर से नाप लिया था। ऐसा सोचकर मानो लज्जा से वे फिर अगले दोनों पैरों को पृथ्वी पर रख लेते हैं। यथा—

“हरेर्यदक्रामि पदैककेन खम् पदैश्चतुर्भिः क्रमणेऽपि तस्य नः।

त्रपा हरीणामिति नम्रिताननैरन्यवर्ति तैरधेनीभः कृतक्रमैः ॥

(१/७०)

“जिस आकाश को विष्णु के अकेले चरण ने लांघ दिया, उसका चार चरणों से लंघन करने पर भी हम अश्वों के लिए लज्जा की बात है—इस विचार से मानो, मुख झुकाए और आधे आकाश का लंघन कर चुके हुए वे लौट पड़े।”

हर्ष की उत्प्रेक्षा इस प्रकार के विभाव को उपस्थित करती है कि पाषाण हृदय से भी रस की धारा प्रवाहित होने लगती है। इनकी उत्प्रेक्षाओं में केवल निरर्थक कल्पना ही नहीं है वरन् उनमें रसानुकूल उद्दीपन विभाव को प्रस्तुत कर प्रकृति के मनोरम चित्र को रखने की अपूर्व क्षमता है। ऐसे स्थलों में कवि का माधुर्य गुण माधव के समान रस की वर्षा करता हुआ दिखाई देता है।

NOTES

उत्प्रेक्षा की कल्पनाएँ पौराणिक कथा को आँखों के सामने प्रस्तुत करती हुई कभी-कभी प्रकृति से इतना तादात्म्य स्थापित करा देती हैं कि पाठक रस-निमग्न हो जाता है। वास्तव में कवि ने अत्यधिक मौलिकता और अद्भुत चमत्कार प्रदर्शित किया है। अपने लिए संकेत की गयी 'उत्प्रेक्षा कवि की पदवी' उन्हें बिना हिचक दी जा सकती है।

नैषधकार श्रीहर्ष का पाण्डित्यः

हर्ष को अपने पाण्डित्य का गर्व था। अपने 'नैषधीयचरितम्' महाकाव्य में उन्होंने उसी का प्रदर्शन किया है। 'भागवत-पुराण' के विषय में जिस प्रकार 'विद्यावतां भागवते-परीक्षा' की उक्ति हुई है, उसी प्रकार उक्त सन्दर्भ में नैषध की क्लिष्टता की प्रतिभा है। इस महाकाव्य में विशेष योग्यता पाना विविध शास्त्रों के अवगाहन का परिचायक है।

इसमें व्याकरण, न्याय वैशेषिक, सांख्य, योग, वेदान्त, मीमांसा, चार्वाक, जैन, बौद्ध आदि दर्शनों के कठिन सिद्धान्तों का यत्र-तत्र वर्णन है। इन्हें जानने वाला पाठक ही इस महाकाव्य का आनन्द ले सकता है। कई शास्त्रों पर कवि ने जो व्यंग्य किया है उसे समझना परिश्रम साध्य है। पाश्चात्य समीक्षकों ने इसीलिए इस काव्य की निन्दा की है इसमें भाव-पक्ष दुर्बल है, कला-पक्ष प्रबल। सत्य यह है कि यह काव्य एक विशिष्ट वर्ग के पाठकों को रस की तरंगों में निमग्न करने का लक्ष्य रखकर लिखा गया है किन्तु इस प्रकार काव्य को क्लिष्ट करना तो श्रीहर्ष का प्रयोजन ही था। यथा—

“ग्रन्थग्रन्थिरिह क्वचित्क्वचिदपि न्यासि प्रयत्नान्मया

प्राज्ञमन्यमना हठेन पठिती मास्मिन्बलः खेलतु।

श्रद्धाराद्धगुरुश्लथीकृतदृढग्रन्थिः समासादय-

त्वेतत्काव्यरसोर्मिमज्जनं सुखव्यासज्जनं सज्जनं॥”

“पण्डित होने की दर्प करने वाला कोई दुःशील मनुष्य इस काव्य के मर्म का हठपूर्वक जानने का चापल्य न कर सके, इसलिए हमने जान-बूझकर कहीं-कहीं इस ग्रन्थ में ग्रन्थियाँ लगा दी हैं। जो सज्जन श्रद्धा-भक्तिपूर्वक गुरु को प्रसन्न करके इन गूढ़ ग्रन्थियों को सुलझा लेंगे, वे ही इस काव्य के रस की लहरों में हिलोरें ले सकेंगे।

श्रीहर्ष का प्रखर पाण्डित्य तथा सर्वतोमुखी प्रतिभा दृष्टव्य है।

व्याकरण—हंस नल की प्रशंसा करते हुए उसे प्रथम व्यक्ति कहता है; जिसमें स्वौजस (अपने बल, सु + औ + जस् विभक्तियाँ) के विलास से अनेक अनाम-पद (शत्रु-स्थानों को अभिभूत करने की क्षमता है; जैसे—प्रथमा विभक्ति 'सु औ जस्' इन तीनों विकारों से अनेक वाम-पदों (सुबन्त शब्दों) को सिद्ध करती है—

“क्रियेत चेत्साधु-विभक्ति चिन्ता, व्यक्तिस्तदा सा प्रथमाभिधेय।

या स्वौजसां साधयितुं विलासैस्तावत्क्षमा नामपदं बहु स्यात्॥”

यहाँ श्लेष द्वारा व्याकरणपरक अर्थ भी निर्दिष्ट है। अन्य स्थान पर पाणिनि के एक सूत्र 'अपवर्गे तृतीया' पर व्यंग्य करते हुए कहा है कि अपवर्ग (मोक्ष) के लिए तृतीया प्रकृति (स्त्री-प्रकृति और पुरुष-प्रकृति से भिन्न नपुंसक) ही उपयुक्त होती है, स्त्री-पुरुष तो काम-विषय में लगे रहते हैं—

“उभयी प्रकृतिः कामे सज्जेदिति मुनेर्मनः।

अपवर्गे तृतीयेति भणतः पाणिनेरपि ॥”

नैषधीयचरितम् (श्रीहर्ष)

NOTES

श्रीहर्ष महान् दार्शनिक भी थे। ‘नैषध’ का १६वाँ सर्ग दार्शनिकता से ओत-प्रोत है। वे अद्वैत-सिद्धान्त के अनुयायी थे। उनका मत है कि सब मतों में अद्वैत तत्त्व ही श्रेष्ठ है। अन्य मतों की सत्यता पर वे सन्देह नहीं करते, किन्तु उनके मतानुसार वेदान्त-प्रतिपादित अद्वैत-तत्त्व ही सत्यतर है।

अपने विषय में उनकी यह उक्ति है—

“ताम्बूलद्वयमासनञ्च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात्
यः साक्षात्कुरुते समाधिषु परं ब्रह्मप्रमोदार्णवम्।
यत्काव्यं मधुवर्षि घर्षितपरास्तर्केषु यस्योक्तयः
श्रीहर्षकवेः कृति कृतिमुदे तस्याभ्युदीयादियम् ॥”

हर्ष जीवन को अति हेय समझते हैं। इनका जीवन, दर्शन के सागरों का अवगाहन करने वाला प्रतीत होता है। नैषध में इन्होंने चार्वाक, बौद्ध, जैन, मीमांसा आदि दर्शनों का अच्छा समन्वय उपस्थित किया है। सरस्वती जिनकी जिह्वा पर रहती है। यथा—

“श्रद्धां दधे मतानामद्वैत तत्त्व इव सत्यतरेऽपि लोकः

कामिनीवर्गसंसर्गेन कः सक्रान्तपातकः ॥”

(नै. १७/४१)

इन्होंने छः वेदों का विधिवत् रूप से वर्णन किया है सामुद्रिक ज्ञान, कामशास्त्र, संगीत, गणित, आयुर्वेद, धनुर्वेदादि महाकाव्य और पुराणों के ज्ञान को देखकर इनके तपस्वी जीवन का सहज ज्ञान हो जाता है। समाधि में ब्रह्म का साक्षात्कार करने वाले हर्ष का गम्भीर जीवन नीरस नहीं है, लेकिन इस गम्भीरता में अद्वितीय सरसता है। व्यंग्य-विनोद इनके जीवन के साथ-साथ रहता है। उदाहरणार्थ—

“करेण मीनं निजकेतनं दधद्दुमालवालाम्बुनिवेशशंकया।

व्यर्तिक सर्वर्तुधने वने मधुं स मित्रमत्रानुसरनिन्वस्मरः ॥”

(नै. १/१०५)

न्याय—न्याय दर्शन के आचार्य गौतम पर व्यंग्य करते हुए उनके मुक्ति सिद्धान्त की निन्दा की गयी है। न्याय दर्शन में मुक्ति (अपवर्ग) का लक्षण है, “तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः, सकल विशेषगुणोच्छेदो मुक्तिः।” अर्थात् आत्मा के ज्ञान से इच्छा आदि सभी गुणों का नाश ही मोक्ष है। श्रीहर्ष चार्वाक द्वारा कहलवाते हैं कि यदि ऐसी बात है तो मोक्ष में आत्मा पाषाणवत् हो जाती है, यह शास्त्रकार की मूर्खता है, इसलिए न्यायसूत्रकार ‘गौतम’ (सबसे बड़े मूर्ख) कहे गये हैं—

“मुक्तये यः शिलात्वाय शास्त्रमूचे सचेतसाम्।

गौतमं तमवेतैव यथा वित्थ तथैव सः ॥”

अपनी कविता के लिए श्रीहर्ष ने ‘महाकाव्य निसर्गोज्ज्वल चारु नव्य’, ‘अतिनव्य’ इत्यादि पदों का प्रयोग किया है। अपने ‘नैषधीय’ को उन्होंने अतिशय रत्यादिष्ट अर्थों को उत्पन्न करने वाला, शरद्कालीन चन्द्रमा की चन्द्रिका के समान उज्ज्वल उक्तियों से भरा अत्यन्त सरस और अत्यन्त स्वादिष्ट, एक भी नवीन अर्थ या घटना को

NOTES

न छोड़ने वाला तथा 'अभूतपूर्व रसमयी उक्तियों से युक्त' कहा है। आत्मश्लाघा की पराकाष्ठा तो वहाँ हो गयी है, जहाँ श्रीहर्ष ने अपने को अमृत आदि चौदह रत्न उत्पन्न करने वाला क्षीरसागर बताया है और शेष सभी कवियों को दो-चार दिन में सूख जाने वाली नदियों को उत्पन्न करने वाले छोटे-छोटे पहाड़।

वैशेषिक—इस दर्शन में 'अन्धकार' का प्रकाशाभाव कहकर विवेचन किया गया है। श्रीहर्ष व्यंग्य करते हैं इसीलिए वैशेषिक दर्शन को वे औलूक दर्शन बताते हुए कहते हैं कि उलूक ही अन्धकार-तत्त्व का विवेचन कर सकता है—

“ध्वान्तस्य वामोरु ! विचारणाय, वैशेषिकं चारु मतं मतं मे।

औलूकमाहुः खलु दर्शनं तत् क्षमं तमस्तत्त्व-निरूपणाय।।”

वैशेषिक दर्शन के परमाणुवाद का प्रतिपादन करते हुए तृतीय सर्ग के अन्त में हंस कहता है कि हे दमयन्ति ! तुम्हारा और नल का मन मनसिज (कामदेव) के शरीर का निर्माण करने में उसी प्रकार तत्पर हो जायें जिस प्रकार दो परमाणु मिलकर द्वयणुक का निर्माण करते हैं—

“अन्योन्य-संगम-वशाद्धुना विभातां

तस्यापि तेऽपि मनसी विकसद् विलासे।

स्त्रष्टुं पुनर्मनसिजस्य तनुं प्रवृत्तं

मदाविव द्वयणुककृत् परमाणुयुग्मम्।।”

श्रीहर्ष ने लोक और वेदादि का सम्यक् अध्ययन किया था। उनकी व्युत्पत्ति या बहुज्ञता उनके काव्य के प्रत्येक छन्दों में अपना प्रभाव डालती रहती है। हर्ष ने श्रुति, स्मृति, दर्शन, इतिहास, पुराण क्या, सम्पूर्ण कलाओं और विद्याओं को अपनी काव्यमाला में मनमोहक सुरभित सुमनों, जैसा पिरोया है, जिसे देखकर विद्वान् आश्चर्यचकित हो जाते हैं।

श्रीहर्ष ने शिक्षा और व्याकरण के नियमों का भी सफल प्रयोग किया है स्थानिवद्भाव के प्रयोग का चमत्कार 'द्यु' आदि संज्ञा एवं अन्य नियमों का उन्होंने बहुधा प्रयोग किया है यथा—

‘द्युसंज्ञा। प्राक्संस्कारेण।।’

(नै. १९/६१)

ज्योतिषशास्त्र के परम पण्डित हर्ष ने नैषध में ज्योतिष की दिव्य ज्योति का अच्छी तरह से प्रयोग किया है। ज्योतिषियों की काल-गणना की भूल को बताती हुई दमयन्ती कहती है कि ज्योतिषियों की विरहिणियों और कामासक्त संयोगावस्था को प्राप्त युवक और युवतियों के भी काल का मूल्यांकन करना चाहिए—

“नरसुराब्जभुवामिव यावता भवति यस्य युगं यदनेहसा।

विरहिणामपि। तद्रतवद्युवक्षणमितं न कथं गणितागमे।।”

(नै. ४/४४)

अद्वैतवेदान्त—तेरहवें सर्ग में सरस्वती पञ्चार्थक पद्यों के द्वारा नल रूपधारी चार देवताओं (इन्द्र, अग्नि, यम, वरुण) और वास्तविक नल का भी वर्णन करती है। इसके अन्त में कहा गया है, दमयन्ती हेय चार पक्षों के समक्ष, वास्तविक नल के विषय में संशय होने के कारण, केवल पञ्चम कोटि (नल) पर उसी प्रकार श्रद्धा नहीं कर पा रही थी, जैसे विभिन्न (सांख्यादि) मतों के होने से लोग वास्तविक तथा सबसे अधिक सत्य अद्वैत-तत्त्व पर श्रद्धा नहीं रख पाते हैं। इसमें श्रीहर्ष अद्वैत का पक्ष लेते हैं—

“साप्तं प्रयच्छति न पक्ष-चतुष्टये तां
तल्लाभिर्शंसिनि न पञ्चमकोटिमात्रे।
श्रद्धां दधे निषधराड्-विमतौमताना
मद्वैततत्त्व इव सत्यतरेऽपि लोकः।।”

NOTES

इसी प्रकार “हंसा तनौ सन्निहितं चरन्तम्” इत्यादि श्लोक में कवि ने योग और वेदान्त दोनों का प्रयोग किया है।

सांख्य के सत्यकार्यवाद का नल के द्वारा प्रतिपादन कराकर कवि ने उनकी विद्याओं की उत्कृष्टता दिखायी है। योग में बताया गया है कि ध्यान में मन एक विषय का चिन्तन करता है। अन्य वस्तुओं की सत्ता ही नहीं रहती। दमयन्ती हृदय में स्थित नल के ध्यान में इतनी निमग्न है कि आँखों के सामने पड़ी हुई वस्तुएँ देखने में भी वह असमर्थ रहती है। यथा—

“नास्ति जन्यजनकव्यतिभेद सत्यमन्नजनितो जनदेहः।” (नै. ५/९४)
“तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्।।” (यो. सू. ३/२)
“मनसि सन्तमिव प्रियमीक्षितुं नयनयोः स्पृहयन्तिरुपेतयोः।
ग्रहणशक्तिरभूदिदमीययोरपि न सम्मुखवास्तुनि वस्तुनिः।।” (नै. ४/१२)

योग की सम्प्रजात समाधि में ध्यानमग्न होने वाले नल के चरित्र-माध्यम के द्वारा कवि ने सम्पूर्ण दर्शनों का सजीव चित्र दर्शाया है। वेदान्त दर्शन के तो ये परम उपासक थे। वेदान्त के प्रतिबिम्बवाद का तो उन्होंने अनेक स्थलों पर आलंकारिक वर्णन किया है—“मुक्ति प्राप्त होने पर केवल ब्रह्म ही शेष रह जाता है।” हर्ष का ये वर्णन सत्रहवें सर्ग में भी देखने को मिलता है। जिस ब्रह्म को मन से नहीं जाना जाता है उसे प्राप्त कर साधक परमानन्द को प्राप्त करता है। राजा नल से मुक्ति प्राप्त करने वाला हंस उसी आनन्द को प्राप्त करता है। उदाहरण—

“इत्युदीर्य स हरिं प्रति सम्प्रज्ञातवासिततमः समपादि।” (नै. २१/११२)
“स्वञ्च ब्रह्म च संसारे मुक्ती तु ब्रह्मकेवलम्।।” (नै. २१/२४)
“अधिगत्य जगत्यधीश्वरादथ मुक्तिं पुरुषोत्तमात्ततः।
वचसामपि गोचरो न यः स तमानन्दमविन्दति द्विजः।।” (नै. २/१)

नास्तिक मत—सरस्वती के स्वरूप का निरूपण करते हुए एक ही पद्य में कापालिक दर्शन, शून्यवाद, विज्ञानवाद और साकार-विज्ञान (सौत्रान्तिक) इन चारों सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है—

“या सोमसिद्धान्तमयाननेव, शून्यात्मतावादमयोददेव।
विज्ञानसामस्त्यमयान्तरेव, साकारता सिद्धिमयाखिलेव।।”

“जो सरस्वती मानो सोमसिद्धान्त (कापालिक मत, पूर्णचन्द्र) रूपी मुख वाली, शून्यतावाद-रूपी उदरवाली (क्षीण-उदरयुक्त) विज्ञान, सामस्त्य रूप चिन्तवाली (अर्थात् विशिष्ट ज्ञान से भरी) और साकार ज्ञान (सुन्दर आकृति) से भरी अवयवों वाली थी।”

नैषधकार ने चार्वाक, बौद्ध और जैन दर्शन के सिद्धान्तों का स्थल-स्थल पर प्रतिपादन किया है।

NOTES

पौराणिक कथाएँ तो इनके काव्य में इस प्रकार से सुशोभित हैं जिस प्रकार गगन में तारों का समूह है। 'हरिवंशपुराण' के वाणासुर की अग्नि परिवेष्टतपुरी में प्रद्युम्न में गुरुडा पर पहुँचना, 'मत्स्यपुराण' का मदन-दाह, 'भागवतपुराण' का राहु चन्द्र-ग्रसन, अगस्त्य का समुद्र-पान, 'महाभारत' की जरासन्धोत्पत्ति, चन्द्रमा की समुद्र से उत्पत्ति, शिव का विषपान आदि अनेक प्रकार की पौराणिक कथाओं का समन्वय देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि हर्ष ने 'नैषधकाव्य' में अठारह पुराणों, महाभारत और रामायण की कथा उसी प्रकार से अन्तर्भूत कर दी है जिस प्रकार से ब्रह्म के शरीर में सारा ब्रह्माण्ड था। यथा—

“यथोद्दह्यमानः खलु भोगभोजिना प्रसह्य वैरोचनिजस्य पतनम्।

विदर्भजायै मदनस्था मनोऽनलावरुद्धं वयसैव वेशितः।।” (नै. १/३२)

‘नैषधीयचरितम्’ का भावपक्ष एवं कलापक्षः

‘नैषध’ श्रीहर्ष की अमर रचना है। इसकी कथा महाभारत के वन-पर्व के प्रसिद्ध नोपाख्यान से ली गयी है। कवि ने आवश्यकतानुसार कथा में हेर-फेर भी किया है। अनेक स्थलों में कवि की कल्पना ने कथा को सरस तथा आदर्शोन्मुख बनाया है। महाभारत की छः अध्यायों की कथा को अपने २२ सर्गों में निबद्ध किया है।

‘नैषध’ के २२ (बाईस) सर्गों में नल-दमयन्ती के प्रेम और विवाह की कथा बड़ी ही सरस शैली में वर्णित है। उनकी प्रथम मिलन-रात्रि का रुचिर वर्णन कर ग्रन्थ समाप्त होता है। कालिदास आदि की भाँति श्रीहर्ष ने भी अपनी कविता का कथानक पौराणिक स्रोत से ही लिया है और उस पर प्रखर प्रतिभा की छाप बैठा दी है। ‘नैषध’ में वास्तविक काव्य-सौन्दर्य तथा शोभातिशायक अलंकारों का मणि-कांचन संयोग है। श्रीहर्ष की कविता संस्कृत-साहित्य की अनुपम निधि है।

शब्दों के सुन्दर विन्यास में, भावों के समुचित निर्वाह में, कल्पना की ऊँची उड़ान में तथा प्रकृति के सजीव चित्रण में यह महाकाव्य, काव्य-जगत् में अपनी सानी नहीं रखता। उनकी स्वभाव-मधुर कविता किस सहृदय के मन को नहीं हर लेती ? शब्द और अर्थ की नवीनता उसे वास्तव में ‘एकार्थमत्यजतो नवार्थघटनाम्’ बना देती है।

‘नैषध’ में एक ही विषय में कई श्लोकों का वर्णन मिलेगा, परन्तु सर्वत्र नवीन शब्दावली एवं अभिनय पदशय्या उपलब्ध होती है। शब्द और अर्थ का मनोहर सामंजस्य ‘नैषध’ में है। श्रीहर्ष की आलोक-सामान्य प्रतिभा से जाज्वल्यमान ‘नैषध’ रूपी हीरक के सामने ‘किरातार्जुनीय’ तथा ‘शिशुपालवध’ काव्यों की आभा फीकी पड़ जाती है—‘उदिते तु नैषधे काव्ये क्व माघ व क्व च भारविः।’ डॉ. उमाशंकर शर्मा ‘ऋषि’ के अनुसार—श्रीहर्ष के काव्यगत वैशिष्ट्य के अनेकानेक उपादानों में इनके पद-लालित्य का बहुत आदर है। प्रसाद गुण और माधुर्य भाव तो इनकी कृति में प्राचुर्य प्राप्त किये हुए हैं। अनुप्रास, श्रुति-मधुर पदावली का विन्यास पद-पद पर मिलता है, चाहे प्रथम पद्य को ही क्यों न रखें ? यथा—

“निपीय यस्य क्षितिरिक्षिणः कथास्तः तथाद्रियन्ते न बुधास्सुधामपि।”

शृंगार तथा अन्य कमनीय रसों में यह महाकाव्य अनुस्यूत है।

डॉ. देवनारायण मिश्र ने भारवि और माघ की अपेक्षा श्रीहर्ष की श्रेष्ठता के विषय में स्वीकार किया है—विविध विधि-विधायिनी संस्कृत काव्य-परम्परा सनातन से सन्तों एवं सदाशयों के हृदयों को रसवादिता एवं ज्ञान-आभा से आप्लावित करती रही है।

भावपक्ष—श्रीहर्ष ने अपने महाकाव्य को 'शृंगारामृतशीतगु' शृंगार-रूपी अमृत चन्द्रमा कहा है। रमणी-रूप के वर्णन में, शृंगार रस की मधुर व्यंजना में कवि ने विलक्षण सहृदयता का परिचय दिया है। दमयन्ती के अलौकिक सौन्दर्य का क्या ही अनोखा चित्रण है—

“हतसारमिवेन्दुमण्डलं दमयन्तीवदनाय वेधसा।

कृतमध्यबिलं विलोक्यते धृतगम्भीरखनीखनीलिमा।।”

(नै. २/२५)

NOTES

जान पड़ता है, दमयन्ती के मुख की रचना करने के लिए ब्रह्म ने चन्द्रमा को निचोड़कर उसका सार भाग खींच लिया है। इसी कारण बीच में छिद्र हो जाने से उसके उस पार आकाश की नीलिमा दिखाई पड़ती है। दमयन्ती के उरोजों के ऊपर क्या ही अच्छी कल्पना है—

“अपि तद्वपुषि प्रसर्पतोगर्मिते कान्तिझरेषुमाद्यताम्।

स्मरयौवनयोः खलु द्वयोः प्लवकुम्भौ भवतः कुचानुभौ।।”

दमयन्ती का शरीर कान्ति के झरनों से अथाह हो गया है, अतः उनमें चलने वालों को डूबने का भय सदा बना रहता है, पर दमयन्ती के अंग-प्रत्यंग में काम और यौवन का संचार है। वे दोनों अपने को डूबने से कैसे बचायें ? डूबते को तिनके का भी सहारा काफी है, इनको भी दो घड़े मिल गये हैं—ये ही दमयन्ती के दोनों उरोज हैं। इन्हीं के सहारे काम तथा यौवन उसके शरीर-रूपी सरोवर में स्वच्छन्द सन्तरण कर रहे हैं।

दमयन्ती नल को वरण करने की इच्छा को कैसे चमत्कारपूर्ण ढंग से व्यक्त करती है—

“मनस्तु यं नोज्झति जातु, यातु मनोरथः कण्ठपथं कथं सः।

का नाम बाला द्विजराजपाणिग्रहाऽभिलाषं कथयेदाभिज्ञा।।”

जिस मनोरथ को मन नहीं छोड़ता, जिसे मैंने हृदय में धारण कर रखा है, वह मनोरथ मेरे कण्ठपथ में कैसे आ सकता है। मन की बात वाणी से कैसे कही जाय। हे हंस ! कौन कुलांगना राजा (नल) से पाणिग्रहण होने की अभिलाषा स्वयं अपने मुख से व्यक्त करने की धृष्टता कर सकती है ? (या कौन विवेकवती बाला चन्द्रमा को हाथ से पकड़ने की अभिलाषा कर सकती है ?)

नल के विरह से व्याकुल दमयन्ती की मनोदशा का वर्णन कर विप्रलम्भ शृंगार का सुन्दर वर्णन किया गया है। अग्नि से उत्पन्न हुई दाहव्यथा कोई व्यथा नहीं, वियोगाग्नि से उत्पन्न हुई व्यथा ही उत्कट व्यथा है। नहीं तो स्त्रियाँ मृत पति के साथ प्रत्यक्ष अग्नि में क्यों भस्म हो जाती (४/४६) चन्द्रमा विरहिणी स्त्रियों का निर्दय घातक ही है—

“अयमयोगिवधूवधपातकैर्भ्रमिमवाप्य दिवः खलु पात्यते।

शितिनिशादृषदि स्फुटदुत्पतत् कणगणाऽधिकतारकिंताऽम्बरः।।”

इस चन्द्रमा ने अनेक निरपराध विरहिणी स्त्रियों को मारकर पाप कमाया है। इसी से यह घुमाकर रात्रि-रूपी चट्टान पर आकाश से पटका जाता है। पटके जाने के कारण खण्ड-खण्ड हो जाने पर इसके जो कण चारों ओर बिखर गये, वे ही मानो आकाश में तारों के रूप में चमक रहे हैं।

विद्याधर का यह कहना है—“काव्य सहृदय के मनोरंजन के लिए होता है और काव्य का यह व्यापार रस द्वारा सम्पन्न होता है। यह रस उपाख्यान के एक देश में कुछ मार्गों में भी सम्भव हो सकता है।” बहुत तर्कसंगत नहीं है, एक या कुछ ही श्लोक पूर्ण रस की अभिव्यक्ति कराने में समर्थ होते हैं तो क्या उन्हीं श्लोकों को काव्य मानकर संतोष किया जा सकता है। भावी वियोग के वर्णन में संयोग की परिपुष्टि हो सकती है। यथा—

“न विना विप्रयोगेन संयोगः पुष्टिमश्नुते।

कषायिते हि वस्त्रादौ भूयान् रागो विवर्धते।।”

इनकी कविता-कामिनी जब सामुद्रिक विद्या का रहस्य बताती है जब उसके सौन्दर्य के स्वर्ण में पुष्प खिल जाते हैं, जब संगीत की मधुर धारा प्रवाहित करती है उस क्षण सर्प भी मन्त्रमुग्ध से हो जाते हैं। जब धनुर्विधा के रहस्यों का उद्घाटन करती है तब इसके अपरिमित शक्तित्व का ध्यान आ जाता है, जब विविध प्रकार के अलंकरणों का परिधान धारण कर पाठक के समक्ष अनेक रूपों में अपने सौन्दर्य को बिखेरती है, तब यही प्रतीत होता है कि पूर्णिमा की चाँदनी तारों के गहनों से लदी हुई समुद्र के हृदय पर मनमोहक मधुर लास्य कर रही है।

इस सुन्दरी की राजनीति-विद्या देखकर यही प्रतीत होता है कि भारवि और माघ की राजनीति ‘नैषध’ में भी लुक-छिपकर विलास कर रही है।

‘नैषध’ के चतुर्थ सर्ग में वर्णित दमयन्ती की अयोगावस्थाजन्य विरह-वेदना अत्यन्त मार्मिक योजना है। कवि ने काम की अनेक अवस्थाओं का चित्रण बहुत ही सफलतापूर्वक पाठक के समक्ष रखा है। दमयन्ती के हृदय में कामदेव के द्वारा छोड़ा गया नल-रूपी बाण धँस गया है। जैसे—

“अथ नलस्य गुणं गुणमात्ममूः.....

तमिषुमाशु विधाय जिगाय तां।।”

(नै. ४/११)

उसे किसी भी प्रकार निकाला नहीं जा सकता है। इस बाण ने दमयन्ती के फूल से भी कोमल शरीर को अपनी विषम ज्वाला से इतना परितप्त कर दिया है कि शैवाल, कमल नाल और चन्दन के केलप स्पर्श मात्र से शुष्क हर्ष की प्रतिभा ने सम्भोग शृंगार की सेज को कुशल सखी की भाँति इतना आकर्षक ढंग से सजा दिया है कि सहृदय उस पर शयन करने के लिए व्याकुल हो जाता है। कपि की दृष्टि और सहृदय-हृदय को प्रमाण मानने पर हंस का विलाप करुण-रस का कारण सिद्ध होता है। कवि ने हंस की करुणा के लिए जिन विभावों को सामने रखा है, वे अत्यन्त करुणोत्पादक हैं। हर्ष ने पितृविहीन अनाथ बच्चों का बड़ा ही करुण-चित्र उपस्थित किया है। अन्न के बिना मरते हुए बच्चों को देखकर किस निष्ठुर का हृदय द्रवित नहीं हो जायेगा। यथा—

“दया समुद्रे स तदाशाऽतिथीचकार कारुण्यरसापगा गिरः।।”

(नै. १/३४)

“तदास्म दैवेन हतोऽपि हा हतः स्फुटं यतस्ते शिशवः परासवः।।

तथापि हाहा विरहात् सुधाकुलाः कुलायकूलेषु विलुण्ठतेषु ते।

चिरेण लब्धा बहुभिर्मनोरथैर्गता क्षणेनास्फुटितेक्षणा मम।।”

(नै. १/१४०-१४१)

कवि ने उद्दीपन विभाव के रूप में ही हंस विलाप को पाठक के समक्ष रखा है। हंस रोते-रोते मूर्च्छित हो जाता है। राजा नल अपने आँसुओं से सींचकर उसकी मूर्च्छा दूर करते हैं। जैसे—

NOTES

कवि ने नल को सहृदय के रूप में उपस्थित किया। नल की भाँति सहृदय पाठक का चित्त शोकाकुल हो जाता है। उसकी आँखों से भी अश्रु धारा प्रवाहित होने लगती है। जो उसके करुण रस के अनुभाव हैं। कवि ने स्वतः सिद्ध कर दिया है कि हंस-विलाप करुण रस का कारण है। पाठक इसे शोक से भिन्न न समझें, इसलिए कवि ने करुण के साथ-साथ ‘शोक’ का भी प्रयोग किया है—

“त्ययैव मातः सुतशोकसागरः ।”

(नै. १/१३६)

“प्राकृशोकनिर्गलित नेत्रपयः प्रवाहान् ।।”

(नै. १/१४४)

हर्ष ने अपने काव्य में शृंगार के उभय-पक्षों का जितना सहज चित्रण किया है, उतना अन्य रसों का नहीं। लेकिन इनके अन्य रसों के वर्णन को देखने से इसकी रसज्ञता पर आश्चर्य होता है। वे जिस किसी रस का परिपाक करते हैं वह अत्यन्त स्वाभाविक प्रतीत होता है।

उन्होंने स्वयंवर में भय का चित्रण किया है। देव और कलि के बीच संवाद के अवसर पर क्रोध को भी अभिव्यक्त किया है—

“ताद्विस्फुरत्फणविलोकनभूतभीतेः ।

कम्पं च वीक्ष्य पुलकं ततोऽनु तस्या ।।”

(नै. ११/२१)

“तिष्ठ भो तिष्ठ कण्ठोष्ठं कुण्ठयानि हठादयम् ।

अपठु पठतः पाठचमधिगोष्ठिं शठस्य ते ।।”

(नै. १७/९६)

नल की चार प्रकार की वीरता का भी इन्होंने अच्छा वर्णन किया है। नल हंस को छोड़ते हुए दयावीर रूप को प्रकट करते हैं—

“स्फुरद् धनुर्निस्वनतद्धनाशु प्रगल्भवृष्टिव्ययितस्य सङ्गरे ।

निजस्य तेजः शिखिनः परशशता वितेनुरिङ्गालमिवायशः परे ।।”

(नै. १/९)

“इत्थममुं विलयन्तममुञ्चदनीदयालुतयानिपालः ।।”

(नै. १/१४३)

श्रीहर्ष ने यद्यपि सभी रसों का वर्णन किया है लेकिन प्रमुखता शृंगार रस की है। शृंगार के दो पक्षों का उन्होंने अच्छा चित्र प्रस्तुत किया है।

शृंगार के प्रति इनका सहज अनुराग है।

कला-पक्ष—कालिदासोत्तर कलावादी कवियों में श्रीहर्ष सर्वोत्तम हैं, जिन्होंने सुकुमार-मार्ग की सरसता और विचित्र मार्ग की प्रौढ़ता का समन्वय करके एक अद्भुत महाकाव्य की रचना की है। दूरारूढ़ कल्पनाओं के साथ गम्भीर चिन्तन का, अलंकारों के साथ ध्वनि का एवं शास्त्रगत पाण्डित्य के साथ लोकानुभाव का समन्वय करने में श्रीहर्ष की प्रतिभा अद्वितीय है।

भारवि ने जिस महाकाव्य-पद्धति का प्रवर्तन किया और माघ ने जिसे आगे बढ़ाया, उसे आंशिक रूप से ही श्रीहर्ष ने स्वीकार किया। वर्णनों की विपुलता में श्रीहर्ष उन कवियों से आगे बढ़ गये। एक-एक विषय पर

NOTES

अपनी शैली को श्रीहर्ष ने प्रच्छन्न रूप से 'वैदर्भी' बताया है; नल या नैषध काव्य है और वैदर्भी रीति है जिसमें उदारता आदि सभी गुण हैं। 'नैषध' के आकर्षण का विषय यही वैदर्भी (दमयन्ती, रीति) है—

“धन्यासि वैदर्भी ! गुणैरुदारैर्यया समाकृष्यत नैषधोऽपि।

इतः स्तुतिः का खलु चन्द्रिकाया यदब्धिमप्युत्तरलीकरोति।।”

हे वैदर्भी ! तुम अपने उदार गुणों के कारण धन्य हो, क्योंकि तुमसे नैषध जैसा धीरोदात्त पुरुष आकृष्ट हो गया। इससे बढ़कर चन्द्रज्योत्सना की प्रशंसा क्या होगी कि विशाल सागर को वह अत्यन्त चंचल कर देती है।

गौडी शैली का भी आश्रय लेकर इन्होंने उसे अपनी कोमल पदशय्या पर बिठाकर अपनी सरस कविता-कामिनी का शृंगार किया है। पवन नल की सेवा कर रहा है। इस सेवा की गुरुता कवि के वर्णन से ही अनायास स्पष्ट हो जाती है। वनानिल है लेकिन सेवा-धर्मता नागर की है।

यथा—

“दीर्घः स मासो यस्यां सा गौडीरूपा दीधिति।”

(ध्वन्या. १/६१)

“तत्रावनीन्द्रचयचन्दनचन्दलेपने पश्य गन्धवह गन्धवह प्रवाहम्।

आलीभिरापतदन्तः शरानुसारो संरुध्य सौरभमगाहत भृङ्गवर्गः।।”

(नै. ११/५)

“लताऽबलालास्यकलागुरुस्तरुप्रसूनगन्धोत्करपश्यतोहरः।

असेवतामुं मधुगन्धवारिणि प्रणी तलीलाप्लवनो वनानिलः।।”

(नै. १/१०६)

अलंकारों का ऐसा स्वाभाविक निवेश इस महाकाव्य में किया गया है कि महाकाव्य ही अलंकारमय हो गया है। श्लेष तो सर्वत्र विद्यमान है। नारायणी टीका में विभिन्न अर्थों का स्फुरण किया गया है। अलंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, व्यतिरेक, विरोधाभास, विभावना, विशेषोक्ति आदि पूरे महाकाव्य में बिखरे पड़े हैं।

कवि पर वक्रोक्ति-सम्प्रदाय का विशेष प्रभाव है, क्योंकि वे 'वैदग्ध्य भङ्गीभणिति' का चमत्कार सर्वत्र दिखाते हैं। किसी वस्तु को व्यङ्ग्योक्तियों से वक्रतापूर्वक निरूपित करते हैं। १७वें सर्ग में कलि की उक्तियों में ब्राह्मण-धर्म, पौरोहित्य, पातिव्रत्य, पाखण्ड आदि पर निर्मम व्यंग्य किया गया है। उत्प्रेक्षालंकार को बड़े कौशल से परम्परागत अप्रस्तुत-योजना में भी नवीन रूप में यहाँ प्रस्तुत किया है—

“हतासारभिवेन्दुमण्डलं दमयन्तीवदनाय वेधसा।

कृतमध्यबिंलं विलोक्यते, धृतगम्भीर-खनी-ख-नीलिमा।।”

(नै. /२२५)

ब्रह्मा ने दमयन्ती के मुख के निर्माण के लिए चन्द्रमा का सार-भाग निकाल लिया है। इसलिए चन्द्रमा में छिद्र हो गया है और उसके मध्य से आकाश की नीलिमा दिखाई देती है, चन्द्रमा का वह कलंक नहीं है।

वक्रोक्ति से पूर्ण एक श्लोक में कवि कहते हैं कि आकाश में तारे कामदेव के बाण-जैसे लगते हैं जो देवताओं और अप्सराओं के लिए छोड़े गये हैं। कामदेव को 'पञ्चशर' (पाँच बाणों वाला) कहा गया है, उसे 'पञ्च' शब्द वस्तुतः 'प्रपञ्च' या विस्तार का वाचक है जैसा कि 'पञ्चानन' शब्द में है—

NOTES

अपनी शैली को श्रीहर्ष ने प्रच्छन्न रूप से 'वैदर्भी' बताया है; नल या नैषध काव्य है और वैदर्भी रीति है जिसमें उदारता आदि सभी गुण हैं। 'नैषध' के आकर्षण का विषय यही वैदर्भी (दमयन्ती, रीति) है—

“धन्यासि वैदर्भि ! गुणैरुदारैर्यया समाकृष्यत नैषधोऽपि।

इतः स्तुतिः का खलु चन्द्रिकाया यदब्धिमप्युत्तरलीकरोति।।”

हे वैदर्भि ! तुम अपने उदार गुणों के कारण धन्य हो, क्योंकि तुमसे नैषध जैसा धीरोदात्त पुरुष आकृष्ट हो गया। इससे बढ़कर चन्द्रज्योत्सना की प्रशंसा क्या होगी कि विशाल सागर को वह अत्यन्त चंचल कर देती है।

गौड़ी शैली का भी आश्रय लेकर इन्होंने उसे अपनी कोमल पदशय्या पर बिठाकर अपनी सरस कविता-कामिनी का शृंगार किया है। पवन नल की सेवा कर रहा है। इस सेवा की गुरुता कवि के वर्णन से ही अनायास स्पष्ट हो जाती है। वनानिल है लेकिन सेवा-धर्मता नागर की है।

यथा—

“दीर्घः स मासो यस्यां सा गौडीरूपा दीधिति।”

(धन्या. १/६१)

“तत्रावनीन्द्रचयचन्दनचन्दलेपने पश्य गन्धवह गन्धवह प्रवाहम्।

आलीभिरापतदन्तः शरानुसारो संरुध्य सौरभमगाहत भृङ्गवर्गः।।”

नै. ११/५)

“लताऽबलालास्यकलागुरुस्तरुप्रसूनगन्धोत्करपश्यतोहरः।

असेवतामुं मधुगन्धवारिणि प्रणी तलीलाप्लवनो वनानिलः।।”

(नै. १/१०६)

अलंकारों का ऐसा स्वाभाविक निवेश इस महाकाव्य में किया गया है कि महाकाव्य ही अलंकारमय हो गया है। श्लेष तो सर्वत्र विद्यमान है। नारायणी टीका में विभिन्न अर्थों का स्फुरण किया गया है। अलंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, व्यतिरेक, विरोधाभास, विभावना, विशेषोक्ति आदि पूरे महाकाव्य में बिखरे पड़े हैं।

कवि पर वक्रोक्ति-सम्प्रदाय का विशेष प्रभाव है, क्योंकि वे 'वैदग्ध्य भङ्गीभणिति' का चमत्कार सर्वत्र दिखाते हैं। किसी वस्तु को व्यङ्ग्योक्तियों से वक्रतापूर्वक निरूपित करते हैं। १७वें सर्ग में कलि की उक्तियों में ब्राह्मण-धर्म, पौरोहित्य, पातिव्रत्य, पाखण्ड आदि पर निर्मम व्यंग्य किया गया है। उत्प्रेक्षालंकार को बड़े कौशल से परम्परागत अप्रस्तुत-योजना में भी नवीन रूप में यहाँ प्रस्तुत किया है—

“हृतासारभिवेन्दुमण्डलं दमयन्तीवदनाय वेधसा।

कृतमध्यबिंल विलोक्यते, धृतगम्भीर-खनी-ख-नीलिमा।।”

(नै. १/२२५)

ब्रह्मा ने दमयन्ती के मुख के निर्माण के लिए चन्द्रमा का सार-भाग निकाल लिया है। इसलिए चन्द्रमा में छिद्र हो गया है और उसके मध्य से आकाश की नीलिमा दिखाई देती है, चन्द्रमा का वह कलंक नहीं है।

वक्रोक्ति से पूर्ण एक श्लोक में कवि कहते हैं कि आकाश में तारे कामदेव के बभ्रु-जैसे लगते हैं जो देवताओं और अप्सराओं के लिए छोड़े गये हैं। कामदेव को 'पञ्चशर' (पाँच बाणों वाला) कहा गया है, उसे 'पञ्च' शब्द वस्तुतः 'प्रपञ्च' या विस्तार का वाचक है जैसा कि 'पञ्चानन' शब्द में है—

“मोहाय देवाप्सरसां विमुक्तास्ताराः शराः पुष्पशरेण शङ्के ।
पञ्चास्यते पञ्चशरस्य नाग्निं प्रपञ्चवाची खलु पञ्चशब्दः ॥”

नैषधीयचरितम् (श्रीहर्ष)

NOTES

श्रीहर्ष ने अपने काव्य में अलंकारों का खूब प्रयोग किया है। शब्दालंकार में श्लेष इनका प्रिय अलंकार है। दमयन्ती के मुख से कवि ने श्लेष की संरचना की विशेषता स्वतः व्यक्त कर दी है। दमयन्ती सरस्वती की श्लेष रचना के विषय में अपने मन में कहती है कि इन्होंने किस प्रकार श्लेष द्वारा वर्णन कर देवताओं का आदर किया और विशेष रूप से मुझे नल का परिचय दे दिया।

हर्ष की वक्रोक्ति विरहिणी दमयन्ती के मुख से निकलकर उसकी विरहावस्था की असह्यता को बड़ी बारीकी से प्रकट करती है। काकु और श्लेष दोनों में वक्रोक्ति का अच्छा प्रयोग मिलता है। अनुप्रास की छटा तो पूरे काव्य में उसी प्रकार दिखाई देती है जैसे ओस की सुषमा श्यामल वसुधा पर दिखाई देती है। यथा—

“अकरुणादवसूनशरादसून् सहजयापदि धीरतायात्मनः

असव एव ममाद्य विरोधिनः कथमरीन्सखि रक्षितुमात्थ मास् ॥” (नै. ४/१०२)

“रुचिफलं सखि ! दृश्यत एव ।

तज्ज्वलयति त्वचमुल्लसत्यसून् ॥” (नै. ४/१०६)

“अमृतदीधिति.....यदि भवन्ति मृताः सखि ।

चन्द्रिकाः शशभृतः क्व तदापरितप्यते ॥” (नै. ४/१०४)

यमक का प्रयोग इन्होंने कम किया है। रस निष्पत्ति के लिए यमक का प्रयोग उचित भी नहीं होता। श्लेष का तो इन्होंने मेला लगा दिया है। सभङ्गश्लेष को यन्ती कहती है कि कौन-सी निर्लज्ज स्त्री द्विजराज-पाणिग्रहण की अभिलाषा करेगी। मेरा चित्त नल को ही चाहता है। तेरहवें सर्ग में देवताओं के परिचय में श्लेषालंकार की छटा देखते ही बनती है। यथा—

“ध्वन्यात्मभूते शृंगारे यमकादिनिबन्धम् ।

शक्तावपि प्रमादित्वं प्रिलम्भे विशेषतः ॥” (ध. ३/३८)

“का नाम वाला द्विजराजपाणिग्रहाभिलाषं कथयेदलज्जा ॥” (नै. ३/५९)

“चेतो नलङ्कमयते मदीयं नान्यत्र ।

कुत्रापि च साभिलाषम् ॥” (नै. ३/६७)

श्लेष का प्रयोग करके हर्ष बड़ी क्लिष्टता पैदा कर देते हैं। ‘नैषध’ की पंचनली प्रसिद्ध ही है। इस वर्णन में श्रीहर्ष ने अपनी अपूर्व श्लेष-चातुरी व्यक्त की है। प्रत्येक श्लोक से दमयन्ती को पाने की इच्छा से आये हुए देवता तथा राजा नल दोनों का अर्थ निकलता है। यथा—

“देवः पतिर्विदुषी नैषधराजगत्या निर्णीयते न किमु ना द्रियते भवत्या ।

नायं नलः खलु तवातिमहामलाभो यद्येनमुज्झसि वरः कतरः पुनस्ते ॥”

(नै. ३/३४)

नल के सम्मुख दमयन्ती खड़ी है। इस श्लोक में देवता और नल दोनों का अर्थ व्यञ्जित कर सरस्वती उसे मोह में डाल रही है—

NOTES

हे विदुषी ! यह तो देवता हैं, पृथ्वीपति नहीं। क्या तू इन्हें वरमाला नहीं पहनाना चाहती है ? मैं सच कहती हूँ यह तेरा नल नहीं किन्तु नल की आभा मात्र है। यदि तू इसे छोड़ देगी तो फिर और कौन तेरा वर होगा ? इसी शब्दावली में नल की भी ध्वनि निकलती है—हे विदुषी ! नैषधराज के वश में अपने पति इस राजा को तू क्यों नहीं पहचानती और क्या तू इसे जयमाला पहनाना नहीं चाहती। यदि तू इसे छोड़ देगी तो बड़ी हानि होगी, फिर और कौन तेरा वर होगा। जिस अर्थ-गौरव के लिए भारवि आदि प्रसिद्ध हैं उस क्षेत्र में भी श्रीहर्ष अग्रणी हैं। कुछ प्रसिद्ध वाक्य इस प्रकार हैं—

(१) “क्व भोगमाप्नोति न भाग्यभागजनः” (१/१०२)—भाग्यवान व्यक्ति को अपनी भोग-सामग्री कहाँ नहीं मिलती।

(२) “चकास्ति योग्येन हि योग्यसंगमः” (१/५६)—योग्य व्यक्ति से योग्य का मेल अच्छा लगता है।

(३) “कर्म कः स्वकृमत्र न भुङ्क्ते” (१/५६)—कौन व्यक्ति अपने किये कर्म का फल यहाँ नहीं भोगता।

(४) “प्रतीक्षते जातु न कालमर्ति” (३/११)—दुःख समय की प्रतीक्षा नहीं करता।

(५) “कार्यनिदानाद्धि गुणानधीते” (३/१७)—अपने कारण से ही कार्य को गुण प्राप्त होते हैं।

(६) “ब्रुवते हि फलेन साधवो, न तु कण्ठेन निजोपयोगिताम्” (२/४८)—सज्जन फल द्वारा अपनी उपयोगिता प्रकट करते हैं, कहकर नहीं।

किन्तु काव्य को क्लिष्ट करना तो श्रीहर्ष का प्रयोजन ही था—

“ग्रन्थग्रन्थिरिह क्वचित्क्वचिदपि न्यास प्रयत्नान्मया

प्राज्ञमन्यमना हठेन पठिती मस्मिन्खलः खेलतु।

श्रद्धाराद्धगुरुश्लथीकृतदृढग्रन्थिः समासादय-

त्वेतत्काव्यरसोर्मिमज्जनसुखव्यासज्जनं सज्जनः।।”

अर्थात् “पण्डित होने का दर्प करने वाला कोई दुःशील मनुष्य इस काव्य के मर्म का हठपूर्वक जानने का चापल्य न कर सके, इसलिए हमने कहीं-कहीं इस ग्रन्थ में ग्रन्थियाँ लगा दी हैं। जो सज्जन श्रद्धा-भक्तिपूर्वक गुरु को प्रसन्न करके इन गूढ़ ग्रन्थियों को सुलझा लेंगे। वे ही इस काव्य के रस की लहरों में हिलोरे ले सकेंगे।”

अर्थालंकार के प्रयोग में हर्ष सिद्ध कलाकार हैं। इनके अर्थालंकार अलंकार के रूप में ही उपस्थित होते हैं। अलंकार्य रूप में इनकी काव्य-वाटिका में कहीं उपमा का रसाल रस बरसता रहता है तो कहीं उत्प्रेक्षा की कोकिला हृदय में विरहमय रस का उद्रेक करती है। इस कोकिला की ध्वनि सुनकर कामदेव अपने पाँच बाणों का एक ही साथ सन्धान कर देता है। कहीं पर अपहृति के भ्रमर-गुञ्जार में विरही की वेदना सुनायी देती है। कहीं पर निदर्शना के विहगों का कामोद्दीपक कलरव मन को मोह लेता है। रूपक की रूपसी का सौन्दर्य तो देखा जा सकता है, किन्तु उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है।

हर्ष के इस उपवन में ब्याजस्तुतिरूपी मनमोहक पुष्पों की सुरभि से चित्त आनन्दित हो जाता है। हर्ष के अलंकारों में मौलिकता दिखाई देती है। सम और विषम अलंकारों के प्रयोग में कवि ने उपमानों के सामंजस्य का औचित्य प्रस्तुत किया है। यथा—

मुखरयस्व यशोनवडिण्डिमं जलनिधेः कुलमुज्ज्वलयाधुना ।

अपि गृहाण बधूषधपौरुषम् हरिणलाञ्छन मुञ्च कदर्थनाम् ।। (नै. ४/५३)

“निशा शशाङ्क शिवया गिरीशं श्रिया हरिं योजयतः प्रतीतः ।

विधेरपि स्वारसिकः प्रयासः परस्परं योग्यसमागमाय ।।” (नै. ३/४८)

NOTES

“अतिशयोक्ति के माध्यम से वस्तु की गम्भीरता व्यक्त करने में हर्ष की प्रतिभा बेजोड़ है। अर्थापत्ति अलंकार तो समुद्र में छिपे हुए रत्नों को निकालने में पूर्ण सक्षम हैं। दमयन्ती की वियोगावस्थाओं की उक्तियों में प्रयुक्त भ्रान्तिमान अलंकार उसकी उन्मादावस्था को बड़ी ही कुशलतापूर्वक अभिव्यक्त करते हैं। इस स्थल में अजंकार वास्तव में अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए ही प्रयुक्त है। अनुमान अलंकार में कवि ने न्याय के अनुमान की प्रक्रिया को रखने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है।”

हर्ष की उत्प्रेक्षाओं में तो स्वर्ग को वसुधा पर लाने की कल्पना की चारुता है। उत्प्रेक्षा में उपमानों की सत्ता में लोक में नहीं रहती है। नारायण ने हर्ष को भी ‘उत्प्रेक्षा कवि’ के रूप में स्वीकार किया है। हर्ष की उत्प्रेक्षाओं में उपमा का भ्रम तो होता ही नहीं। चन्द्रमा की कालिमा को सिद्ध करने के लिए कवियों ने बहुत-सी कल्पना की लेकिन हर्ष की कल्पना तो अनोखी है। यथा—

“प्रिये पश्योत्प्रेक्षाकविभिरभिधानाय स शुकः ।”

“विशिष्टसम्भावनाचतुरैः श्रीहर्षसिद्धिभिः ।।” (नारायणी टीका)

“यदस्य यात्रासु बलोद्धतं रजः स्फुरतप्रतापानलधूममज्जिम ।

तदेव गत्वा पतितं सुधाम्बुधौ दधाति पङ्कीभवदङ्कतां विधौ ।।” (नै. १/८)

हर्ष के नल ने दमयन्ती के मुख को चन्द्रमा के समान सुन्दर समझा था, क्योंकि दमयन्ती का मुख तो चन्द्रमा के तत्त्व को निकालकर बनाया गया था। तत्त्व के निकल जाने के कारण चन्द्र के गर्त से आकाश की नीलिमा दिखाई पड़ती है। नैषधकार की उत्प्रेक्षा उपमेय के उत्कर्ष को बताती हुई भावी घटनाओं की अभिव्यक्ति कराती है। दमयन्ती के हृदय में स्मर और नल प्रविष्ट हैं। कवि की दृष्टि में ये दोनों कामुक इन्द्र के द्वारा भेजे गये वैद्य अश्विनीकुमार हैं। कामुक इन्द्र दमयन्ती के सौन्दर्य पर मर रहा है, इसलिए उसने अपने यहाँ से ऐसे वैद्यों को भेजा है जो दमयन्ती को रोगमुक्त कर दें और उसे इन्द्र के अनुकूल कर दें अथवा उसके मन की सारी बात जान कर इन्द्र को सूचना दे दें। यथा—

“न खलु मोहवशेन तदाननं, नलमनः शशिकान्तमवोधि तत् ।।” (नै. ४/३६)

“किमु तदन्तरुभौ भिषजौ दिवः स्मरनलौ विशतः हि विगाहितुम् ।

तदधिकेन चिकित्सातुमाशु तां मखभुजामधि येन नियोजितौ ।।” (नै. ४/५)

हर्ष की उत्प्रेक्षा इस प्रकार के विभाव को उपस्थित करती है कि पाषाण हृदय में भी रस की धारा प्रवाहित होने लगती है। इनकी उत्प्रेक्षाओं में केवल निरर्थक कल्पना ही नहीं है वरन् उनमें रसानुकूल उद्दीपन विभाव को प्रस्तुत करने की शक्ति भी है। ऐसे स्थलों में कवि का माधुर्य गुण माधव के समान रस की वर्षा करता हुआ दिखाई पड़ता है। उत्प्रेक्षा की कल्पनाएँ पौराणिक-कथा को आँखों के सामने प्रस्तुत करती हुई कभी-कभी प्रकृति से इतना तादात्म्य स्थापित करा देती है कि पाठक रस निमग्न हो जाता है। यथा—

NOTES

नैषधकार श्रीहर्ष का प्रकृति-चित्रणः

संस्कृत-साहित्य में श्रीहर्ष के समय तक, दुर्भाग्य से, कवियों में वैदुष्य-प्रदर्शन की भावना इतनी प्रवल हो गयी थी कि प्राकृतिक वस्तुओं के साथ उनकी कोमल वृत्तियाँ रमती ही नहीं थीं।

प्रकृति-चित्रण में कवि का ध्यान अलंकारों को सजाने में और पाण्डित्य के प्रदर्शन में ही अधिक रहता है। नैषध के प्रथम, चतुर्थ, उन्नीसवें व बाइसवें सर्गों में प्रकृति-चित्रण मिलता है, जो उद्दीपन रूप में है। प्रथम सर्ग में नल के वियोग दुःख को उद्दीप्त करने वाली प्रकृति का चित्रण है और चतुर्थ सर्ग में दमयन्ती के वियोग-दुःख का। वास्तव में प्रकृति-चित्रण में श्रीहर्ष का मन गौण है। इसीलिए आलम्बन स्वाभाविक रूप में प्रकृति-चित्रण का अभाव है। अलंकृत शैली में उद्दीपन रूप में अधिक हैं, किन्तु इतना होते हुए भी प्रकृति के प्रति उनमें सहृदयता है। उसके वर्णन में भारतीय परम्परा की मर्यादा सुरक्षित है।

प्रकृति-चित्रण के लिए उठी हुई इनकी तूलिका में अनेक रंगों का सम्मिश्रण है जिससे बने हुए चित्र में जीवन की अनुभूतियाँ, मानव की संवेदनायें और भारतीय मर्यादाओं का प्रतिबिम्ब है। कवि की प्रतिभा से निर्मित प्रकृति में हृदय की तरलता है। कवि की आँखों में अनुराग है। प्रकृति और मानव-संवेदनाओं को परखने की अद्वितीय क्षमता है। प्रकृति केवल वर्णन मात्र ही नहीं है, वरन् यह तो जीवन की अनुभूतियों का प्रतीक है। नल जैसे कामानलदग्ध व्यक्तियों के लिए प्रकृति की शीतल छाया ही सुख प्रदान कर सकती है। उपवन-विहार के समय नल ने सरोवर के तट पर हंसियों के साथ आनन्दकेल कर रहे हुए स्वर्णिम हंस को प्रथम बार देखा। उपवन में सरोवर की कल्पना श्रीहर्ष की अपनी है, क्योंकि हंस एक ऐसा पक्षी है जो प्रायः जलाशय के पास ही चरता हुआ दिखाई पड़ता है। फिर एक चक्रवर्ती के उपवन में क्रीड़ा-सरोवर अवश्य होना चाहिए। वह राजोद्यान जैसा क्रीड़ा-सरोवर न हो ? महाभारत में सरोवर का उल्लेख नहीं है। वहाँ नल ने चरते हुए स्वर्णिम पंख वाले हंस को देखकर एक को पकड़ लिया। यथा—

“स ददर्श ततो हंसाज्जातरूपपरिष्कृतान्।

वने विचरतां तेषामेकं जग्राह पक्षिणम्।।”

(म. भा., व. प. ५३/१९)

नल के कर-पञ्जर में पड़े हंस का करुण-रोदन भी श्रीहर्ष की अपनी उद्भावना है। महाभारत में हंस ने नल से केवल इतनी ही प्रार्थना की थी—“राजन् ! मुझे न मारिए। मैं आपका प्रिय करूँगा। दमयन्ती के सम्मुख मैं आपका ऐसा वर्णन करूँगा कि वह कभी आपके अतिरिक्त अन्य पुरुष को मानेगी ही नहीं।” यथा—

“हन्तव्यो स्मि न ते राजन् करिष्यामि तव प्रियम्।

दमयन्तीसकाशे त्वां कथयिष्यामि नैषध।।

यथा त्वदन्य पुरुषं न सा मंस्यति कर्हिचित्।।”

(म. भा. व. प. ५३-२०-२१)

किन्तु नैषध में कवि ने उस घटना को स्वाभाविक रूप तथा रसमय बना दिया। हंस पहले तो राजा को इस निर्दय कार्य के लिए धिक्कारता है और ऐसी बातें करता है कि उनके हृदय में स्वभावतः आश्चर्य, लज्जा एवं करुणा उत्पन्न होती है और फिर अपने करुण विलापों से तो उनके हृदय को ही द्रवित कर देता है।

पूर्वराग में नल की विरहावस्था का वर्णन ही प्रकृति का उद्दीपन रूप है। राजा का हृदय उपवन-विहार से और भी भारी हो रहा था। इस समय नल की प्रिया-विरहावस्था चल रही है। विप्रलम्भ की खिन्नता में करुण का अवसाद (आलम्बन के भेद के) साथ और भी गम्भीर हो जाता है। राजा नल केतकी के फूल को देखकर झुँझला उठते हैं। उनकी दृष्टि में केतकी का पुष्प उनका शत्रु है, क्योंकि कामदेव अपने गीले हाथ को केतकी के पराग से सुखाकर उनके ऊपर शर-संधान कर रहा है। यथा—

“धनुर्मधुस्वित्चकरोऽपि भीमजापरंपरागैस्तव धूलिहस्तयन्।

प्रसूनधन्वा शरसात्करोति मामेति क्रुधाकुश्यत तेन केतकम्।।” (नै. १/८१)

वर्णन-शैली में कवि की कल्पना का इतना प्राधान्य है कि अलंकारों की जगमगाहट में प्रकृति की रूप माधुरी विलुप्त हो जाती है। कहीं-कहीं केवल चमत्कार के लिए प्रकृति का अवलम्बन किया गया है। उदाहरणार्थ—“कामदेव के बाणों को बार-बार पौराणिक-कथा के धनुष पर चढ़ाकर छोड़ना सरसता की हत्या करना है। कहीं-कहीं पर कामदेव का बाण-संधान उनकी कल्पनाओं को अद्वितीय बनाने में सफल सिद्ध हुआ है।”

कवि की दृष्टि की सूक्ष्मता सराहनीय है—

“गलत्परागं भ्रमिभङ्गिभिः प्रतप्तसक्तभृङ्गावलि नागकेसरम्।

स मारनाराचनिघर्षणस्खलज्ज्वलत्कणं शाणभिव व्यलोकयत्।।” (नै. १/१९२)

श्रीहर्ष के उपवन वर्णन में प्रकृति का चित्रण उद्दीपन रूप में हृदयग्राही है। नल को उपवन की प्रत्येक वस्तु प्रिया के वियोग के क्लेश को बढ़ाती ही है, घटाती नहीं। नल के वियोगी हृदय की प्रतिक्रियाओं का कवि को इतना अधिक ध्यान है कि उसने कहीं-कहीं अतिरम्य फूल-फल का चित्रण अत्यन्त जुगुप्सामय कर दिया है। यथा—

“स्मरार्धचन्द्रेषु निये कृशीयसां स्फुटं पलाशेऽध्वजुषां पलाशनात्।

स वृन्तमालोकत खण्डमन्वितं वियोगिहृत्खण्डिनि कालखण्डजम्।।” (नै. १/८४)

नल ने कामदेव के अर्द्धचन्द्राकार बाणों के समान, वियोगियों के हृदय को विदारने वाले तथा दुर्बल पथिकों का माँस-भक्षण करने के कारण (पलअश) यथार्थ नाम वाले वृक्ष में फूलों का गुच्छ देखे। मानो वह (वियोगियों के हृदय में सम्बद्ध) कालखण्ड (नाम उस काले मांस) से निकाला हो (जो दाहिने पार्श्व में रहता है)।

इस उपवन में समासोक्ति तथा उत्प्रेक्षा का खूब प्रयोग हुआ है। ‘वायु द्वारा चुम्बित, परागणों के रूप में रोमांचित, स्मित, कलिकाओं से सुशोभित ईषत् कम्पित’ ‘अभिनव लताओं’ को नल भय तथा आदर के साथ अपनी आँखों से पी रहे थे। यथा—

“नवा लता गन्धवेहन चुम्बिता करम्बिताङ्गी मकरन्दशीकरैः।

दृशा नृपेण स्मितशोभितकुड्मला दरादाभ्यां दरकम्पिनी पपे।।” (नै. १/85)

उपवन में कोकिल की कूक और भ्रमर की गुंजार भी सुनाई पड़ती है, पर अत्यन्त मधुर कल्पना के परिधान में समावृत। कोकिल अपनी कूक में मानो वियोगियों की करुण कथा कह रही थी और वन उस कोकिल से भ्रमरों के गुंजारों के रूप में हुँकारों को सुन रहा था तथा करुण-पुष्प करुण रस के समान विकास पा रहे थे। यथा—

NOTES

इनकी प्रकृति जड़ पुञ्ज नहीं है। उसमें चेतना है, सारी मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति का विलास है, मानवीय रागात्मक सम्बन्धों में तादात्म्य करने की क्षमता है। उसके प्रत्येक अवयव में जीवन संगीत का मधुर स्वर है जो सहृदय-संवेद्य है। श्रीहर्ष तो सरोवर में समुद्र की दिव्य झाँकी प्रस्तुत कर व्यष्टि में समष्टि की कल्पना को मूर्तरूप देने का प्रयास करते हैं। यथा—

“चलीकृता यत्र झ्रंगिणैरवालशैवाललतापरम्पराः।

ध्रुवं दधुर्वाड्वहव्यवाडवस्थिति प्ररोहत्तमभूमधूमताम्।।” (नै. १/११४)

उपवन में वाराङ्गना-कुचोपम पर्व के बिल्व-फल, मदन तूणीर-सदृश पाटल (गुलाब) पुष्प, इन्दुकलानुकारी अगस्त्य पुष्प, मदनशास्त्र-सदृश रक्त पत्तों वाले अशोक आदि का चमत्कारपूर्ण वर्णन हुआ है। कहीं-कहीं वर्णन अत्यन्त सरस भी हो गया है। वन-पवन का वर्णन करते हुए श्रीहर्ष कहते हैं—“लता-रमणी का नृत्य-कला-गुरु-पुष्प-सौरभ का चोर कुसुम-मकरन्द से सुवासित जल में सलील तैरने वाला वन-पवन नल की सेवा कर रहा था।” पवन के शैत्य, मन्द्य, सौगन्ध्य तीनों गुणों का कवि ने किस निपुणता से चित्रण किया है। यथा—

“लताबलालास्यकलागुरुस्तरुप्रसूनगन्धोकरपश्यतोहरः।

असेवतामुं मधुगन्धवारिणी प्रणीतलीलाप्लवनौ वनानिलः।।” (नै. १/१०६)

इसी उपवन में सरोवर का वर्णन है। श्रीहर्ष ने उसे सागर के समान बताया है। उत्प्रेक्षा, रूपक, अपहृति आदि के द्वारा सरोवर की प्रत्येक विशेषता सागर की किसी-न-किसी विशेषता से मिलती है।

उनके प्रकृति-चित्रण में निर्बल मुकुर में उनकी भक्ति-भावना का सुन्दर प्रतिबिम्ब दिखायी पड़ता है। सरोवर में कमल स्तम्भ इस प्रकार प्रतीत हो रहे हैं मानो लक्ष्मी सहित विष्णु भगवान् समुद्र में शयन कर रहे हों।

यथा— “रथाङ्गभाजा कमलानुषङ्गिणा शिलीमुखस्तोमसखेन शार्ङ्गिणा।

सरोजिनीस्तम्बकदम्बकैतवान्मृणालशेषाहिभुवान्ययायि यः।।” (नै. १/१११)

श्रीहर्ष ने प्रकृति के चित्रण में विभिन्न रूपों का वर्णन किया है। यद्यपि चन्द्रमा शीतल है, किन्तु वियोगावस्था में वह भी अग्नितुल्य हो जाता है। यथा—

“हृदि लुठन्ति कला नितरामभूर्विरहिणीवधपङ्ककलङ्कताः।

कुमुदसख्यकृतस्तु बहिष्कृताः सखि विलोक्य दुर्विनयं विधोः।।” (नै. ४/४७)

हर्ष को प्रकृति के उपकरणों से विशेष अनुराग है। उसके साथ उनका रागात्मक सम्बन्ध है, तादात्म्य है, किन्तु आलम्बन (प्रस्तुत) रूप में प्रकृति का स्वाभाविक चित्रण नहीं हुआ है। उसमें भी वे अपने पाण्डित्य का लोभ संवरण नहीं कर सके हैं। उनका अप्रस्तुत (उद्दीपन) वर्णन आलंकारिक छटा का प्रदर्शन मात्र बन जाता है। चन्द्रकला का विलास मलयानिल का चित्रण, कमल नाल शैवाल, मेघ वृष्टि, प्रभात वर्णन, संध्या वर्णन कोयल की मधुर कूक आदि का चित्रण इसी प्रकार है।

NOTES

प्रातःकालीन उषा के वर्णन में प्राची की मुस्कान तथा चन्द्रमा-सहित प्रतीची का खिन्नता पर कवि की कैसी भावपूर्ण कल्पना है—“उधर वरुण की भार्या दिशा को पाकर शीतांशु के रश्मि रूप वस्त्र धीरे-धीरे खिसकने लगे हैं—वे निरंकुश होते जा रहे हैं—और इधर इन्द्र की रानी प्राची पर-पुरुष का इस प्रकार परस्त्री-गमन देखकर, प्रकाश के बहाने मानो मुस्करा रही है।” यथा—

“वरुणगृहिणीमाशमासादयन्तममुं

रुचीनियसिचयाशांशभ्रंशक्रमेणनिरंशुकम्।

तुहिनमहसं पश्यन्तीव प्रसादभिषादसौ

निजमुखमितः स्मेरं धत्ते हरेर्महिषी हरित्।।”

(नै. १९/३)

प्रकृति के दृश्यों में जहाँ कहीं मानवीकरण (समासोक्ति अलंकार) हुआ है, वहाँ हृदय की कोमल वृत्तियों का और भी पता चलता है। कवि की दृष्टि में तारे, निशा और शशि का सम्बन्ध वैसा ही है जैसा एक कुल के लोगों का परस्पर होता है। प्रभाव वर्णन में कवि की दृष्टि भ्रमर, चक्रवाक, कुमुद, कमल की ओर विशेषतः जाती है। ये ही विशेष रूप से उसकी कल्पना के आधार बनते हैं।

चक्रवाक के विषय में कवि की उक्ति है—“रात्रि के समय चक्रवाक की अपनी प्रिया से वियुक्त होना पड़ा था। अब चन्द्रमा अपनी प्रिया रात्रि से वियुक्त हो रहा है। रात्रि में चक्रवाक के हृदय में ताप था, अब प्रभात होने पर वह ताप से सूर्य में चला गया। इस प्रकार अब चक्रवाक को न वियोग है, न ताप। विकल होकर वह अपनी प्रिया को अनेक बार नाम लेकर बुला रहा है।” यथा—

“विशति युवतित्यागे रात्रीमुचं मिहिकारुचं

दिनमणिर्मणि तापे चित्तान्निजाच्च यियासितः।

विरहतरलज्जिह्वां बह्वाहवयन्त्यतिविह्वलामिह

सहचरी नामग्राहं रथाङ्गविहङ्गमाः।।”

(नै. १९/३५)

सायंकाल का वर्णन—सायंकालीन प्रकृति-चित्रण में सूर्यास्त की आभा का चित्रण उत्प्रेक्षा अलंकार द्वारा एक परिजक के रूप में किया गया है।

पुनः रात्रि के अलंकार का काल-किरात के रूप में चित्रण करते हैं। यथा—

“कालः किरातः स्फुटपद्मकस्य बध्नं व्यधायस्य दिनद्विपस्य।

तस्येव सम्यग् चिराश्रुधारा ताराश्च कुम्भस्थलमौक्तिकानि।।”

कालरूपी किरात ने विकसित कमल रखने वाले दिवसरूपी (सूँड़ पर लाल बिन्दुओं को धारण करने) वाले हाथी को मार डाला है। यही कारण है कि सन्ध्या के रूप में उसकी रुचिर रुचिरधारा दीख पड़ती है तथा उसके मस्तिष्क के जो मोती बिखरे हैं, वही गगनमण्डल में उदित तारे हैं। कितना रमणीय रूपक है। यथा—

“आदाय दण्डं सकलासु दिक्षु योज्यं परिभ्राम्यति भानुभिक्षुः।

अब्धौ निमज्जन्निव तापसोज्यं सन्ध्याभ्रकाषामधत्त सायम्।।”

यह भानुरूपी भिक्षु (सन्ध्यासी) दण्ड लेकर सब दिशाओं में दिन-भर घूमता रहा है। अब सायंकाल को जलाशय में स्नान करने के लिए मानो वह सन्ध्या-काल के लाल गगनमण्डल-रूपी काषाय वस्त्र को ऊपर

(अपने शरीर के ऊपरी भाग पर) धारण कर रहा है। सूर्य के अस्त होने के समय का यह रक्त आकाश नहीं है, बल्कि किसी स्नानार्थी संन्यासी का रक्त काषाय रखा हुआ जान पड़ता है, कितनी मौलिक सूक्ति है।

NOTES

एक पद्य में कविवर श्रीहर्ष ने सन्ध्याकालीन रक्त आकाश का बड़ा विलक्षण कारण ढूँढ निकाला है। उनका कहना है कि अस्ताचलरूपी शवशाला के पास यामान्त की सूचना देने के लिए बाँग देने वाले मुर्गों के समूह के कारण पश्चिम दिशा उनकी शिखा की ललाई के कारण लाल हो रही है, किसे कैसे अनूठी सूझ है।

यथा—

“आस्ताद्विचूडालयपक्वकणालिच्छेकस्य किं कुक्कुट पेटकस्य।

यामान्तकूजोल्लसितैः शिखौधैर्दिग् वारुणी द्वागरुणीकृत्यम्।।”

अन्त में श्रीहर्ष ने प्रकृति के चित्रण में तन्मयता विभिन्न रूपों में अवश्य स्थापित की है किन्तु वह प्रस्तुत (आलम्बन) रूप में नहीं अपितु अप्रस्तुत (उद्दीपन) रूप में ही अधिक है। प्रकृति नदी को भी अपनी विद्वता के कारण अलंकारों से बोझिल कर दिया है और उसका स्वाभाविक सौन्दर्य नगण्य कर दिया है। संक्षेप में इतना कहा जा सकता है कि प्रकृति के प्रति उनका अगाध प्रेम था इसी कारण उसका अनेक रूपों में वर्णन किया है।

नैषधीयचरितम् के 'प्रथम सर्ग' का कथासार:

‘नैषधीयचरित’ शब्द का अर्थ है—नैषध का जीवन चरित्र अथवा नैषध के जीवन की विशेषताएँ। नैषध शब्द का निर्माण निषध शब्द से अण (अ) प्रत्यय होने से हुआ। अण् प्रत्यय में णकार की इत्संज्ञा है, इसलिए यह अण् प्रत्यय णिस् हुआ। यहाँ ‘अचोऽङ्गिति’ सूत्र से आदि वृद्धि होने के कारण निषध के इकार का ऐकार हो गया है। इस शब्द निरुक्ति के आधार पर नैषध शब्द का अर्थ हुआ—निषध देश से सम्बन्धित अथवा निषध देश का राजा। निषध देश का राजा नल भी जो इस महाकाव्य का नायक है। श्रीहर्ष कवि ने नमस्कारात्मक मंगलाचरण न करके वस्तु निर्देश रूपी मंगलाचरण से ‘नैषधीयचरितम्’ के प्रथम सर्ग का आरम्भ किया है। श्रीहर्ष कवि ने वस्तु अर्थात् कथानक के निर्देशक के रूप में राजा नल के गुणों का वर्णन आरम्भ किया है।

श्री रामेश्वर शास्त्री मुसलगाँवकर ने ‘नैषधीयचरित के प्रथम सर्ग का इतिवृत्त’ शीर्षक से लिखा है—

“प्रस्तुत काव्य का प्रथम सर्ग निषध देश के पुण्य श्लोक राजा नल के चरित्र, उनके अठारह विद्याओं के अध्ययन, धर्माचरण, प्रताप एवं उनकी दिनचर्या के विशद वर्णन से प्रारम्भ होता है। राजा नल का सौन्दर्य त्रैलोक्य में अनुपम था। इसकी प्रसिद्धि सर्वत्र थी। विदर्भ देश के राजा भीम की कन्या भी अनुपम सौन्दर्यशालिनी थी। भीम कन्या दमयन्ती ने भी राजा नल के सौन्दर्य तथा कीर्ति के विषय में बहुत कुछ सुना था। यौवन के साथ विदर्भ कुमारी दमयन्ती के मन में भी शनैः-शनैः युवा नल के प्रति अनुराग उत्पन्न होने लगा। उसने अपना मन राजा नल की ओर लगाया। वह बन्दीजनों द्वारा राजा नल चरित्र सुनकर अत्यन्त पुलकित हो जाती थी। उसी प्रकार राजा नल ने भी दमयन्ती के रूप और गुणों की प्रशंसा सुनी, फलतः उसका मदनानुराग भी जगा। कामदेव ने राजा नल के धैर्य को नष्ट कर दिया, किन्तु अत्यन्त मदन पीड़ित भी महामानी नल ने विदर्भराज से उनकी पुत्री दमयन्ती की याचना नहीं की। विवश होकर शान्ति प्राप्त करने की इच्छा से वे उपवन को गये। नल ने उस वन में एक विशाल तथा अत्यन्त रमणीय सरोवर देखा। उस सरोवर के किनारे सुरतक्लान्त एवं एक ही चरण पर स्थित रमणीय सरोवर देखा। उस सरोवर के किनारे सुरतक्लान्त एवं एक ही चरण पर स्थित विश्राम करते हुए एक अद्भुत स्वर्णिम हंस को देखा। राजा नल ने उसे पकड़ लिया। हंस ने करुण विलाप किया। विलाप करते-करते वह मूर्च्छित हो गया। इससे नल के भी करुण आँसू उमड़ पड़े। नल के आँसुओं से भीगकर हंस पुनः जग गया। चेतना

प्राप्त हंस को राजा नल ने यह कहा कि “हंस ! जिसके लिए तुम पकड़े गये थे, वह तुम्हारा रूप देख लिया। अब तुम जहाँ चाहो जा सकते हो, उसे छोड़ दिया।”

नैषधीयचरितम् (श्रीहर्ष)

NOTES

यह ‘नैषधीयचरितम्’ के प्रथम सर्ग का कथासार नहीं है। न इसमें राजा नल और राजकुमारी दमयन्ती के रूप सौन्दर्य तथा गुणों का पूरा वर्णन है और न राजा नल एवं हंस के वार्तालाप का उल्लेख है। ‘हर्षचरितम्’ के प्रथम सर्ग के छन्दों के आधार पर उसका सार प्रस्तुत है।

धरती की रक्षा करने वाले जिस राजा नल की कथा अमृत का भी अपमान करने वाली थी, उसने अपने कीर्तिमण्डल को श्वेत वर्ण का धन बना दिया था। राजा नल तेजों का समूह था। जिस नल की कथा रसों के कारण अमृत का अपमान करने वाली थी, वह नल गुणों का समूह था। पृथ्वी इस राजा नल की पत्नी थी। नल अद्भुत गुणों वाला था। इस कलियुग में स्मरण की गयी उस नल की कथा ऐसी लगती थी कि जल से धोये गये संसार को पवित्र करती है। राजा नल ने अध्ययन, अर्थज्ञान, आचरण और अध्यापन इन चार दशाओं से चौदह प्रकार की विद्याओं को चार दशाओं वाला बना दिया। राजा नल की विद्या उसकी जीभ के अग्र भाग पर नर्तन करने वाली थी। वे तीन वेदों में छः अंगों के समय अलग-अलग अठारह द्वीपों को जीतने वाली बन गयी थी। आठ दिशाओं का स्वामी राजा नल आठ दिशाओं के स्वामी आठ दिक्पालों के समान राजा नल अपनी विद्या रूपी आँख के कारण शिव के समान था। यात्राओं में राजा नल की सेनाओं द्वारा जो धूल उड़ाई जाती थी, वह सागर को पाट देती थी। राजा नल की कामदेव के समान शोभा को देखकर सुन्दरियों को दो कामदेवों के होने का भ्रम हो रहा था। ऐसी कोई सुन्दरी नहीं थी, जिसने राजा नल को स्वप्न में न देखा हो। राजा नल को देखकर सौन्दर्य के कारण मैं इसके योग्य हूँ, इस विचार से अपने मुख को देखने के लिए हाथ में लिया हुआ दर्पण दमयन्ती के अतिरिक्त दुःख और निःश्वास से सभी ने मलिन कर दिया। स्तुति पाठक दमयन्ती के पिता के सामने राजाओं की प्रशंसा करते थे। दमयन्ती अपने पिता की सभा में उपस्थित होकर नल के यशोगान से हर्षित होती थी। दमयन्ती निषध देश से आये, इन दूतों, ब्राह्मणों, स्तुति पाठों तथा भाटों से राजा नल के गुणों के विषय में पूछती थी तथा उसकी यशोगाथा सुनकर अनमनी बैठी रहती थी। दमयन्ती नल को स्वप्न में अपना पति बना चुकी थी। वह रात में स्वप्न में नल को देखती थी। काम पीड़िता दमयन्ती के कारण शीत ऋतु की रात्रियाँ तक ग्रीष्म ऋतु के दिन के समान हो गयी थीं। कामदेव ने दमयन्ती के माध्यम से राजा नल को जीतने की इच्छा की। राजा नल ने दमयन्ती के गुणों को सुना तो वह धैर्यशाली होने पर भी काम पीड़ित होने लगा। दुबली-पतली दमयन्ती ने लज्जा रूपी नदी को तैर कर पार किया। ऐसा वह अपने हृदय पर स्थित घटों के समान दो स्तनों के द्वारा ही कर सकी। समर्थ होते हुए भी राजा नल ने विदर्भ भीम से उसकी पुत्री दमयन्ती की याचना नहीं की। उसका कारण नल द्वारा याचना का त्याग था। सभी के सामने अपना काम विकार प्रकट हो जाने से नल ने लज्जा का अनुभव किया। विवेक आदि से उत्पन्न धैर्य आदि गुण। राजा नल चंचलता को नहीं रोक सके। अपने रूप सौन्दर्य से कामदेव को लज्जित करने वाले नल ने अपने मित्रों के साथ उद्यान में भ्रमण की इच्छा की। राजा नल अश्वों द्वारा खींचे जाने वाले रथ पर बैठकर उद्यान की ओर चले। अन्य अश्वारोही राजा नल के पीछे इस प्रकार चले, जिस प्रकार सूर्य के पीछे उसकी किरणें चलती हैं। राजा नल शीघ्र ही नगर से बाहर हो गये। राजा नल के आगे उसकी दो सेनाओं ने कृत्रिम युद्ध का प्रदर्शन किया। विहार स्थल पर पहुँचने के बाद राजा ने बनपालक के इशारे के आधार पर वन की शोभा देखी। वन के वृक्षों ने राजा नल का आतिथ्य सत्कार करने के लिए उस पर पुष्प वर्षा की। राजा नल ने उपवन में केतकी के पुष्प को इस कारण के साथ भरी दृष्टि से देखा कि फूलों के धनुष से टपकने के कारण जिस कामदेव के हाथ गीले हो जाते हैं, वे केतकी के पराग से अपने हाथ पोंछकर मुझ पर बाण चलाता है। राजा नल को उपवन में खड़े अनार के वृक्ष पर लटके फल दमयन्ती के स्तनों के समान जान पड़े। उपवन में राजा नल ने

NOTES

बेल के उस फल को दिखा जो वेश्या राजा नल के उपवन में पाटल पुष्पों के गुच्छों को भय के कारण तथा विवेक के अभाव में कामदेव के बाणों का तूणीर समझ लिया। विरही नल का मुख प्रत्यक्ष चन्द्रमा के समान था। कोयल बार-बार कुहू-कुहू शब्द बोलकर चन्द्रमा की शुभ अमावस की रात को बुला रही थी। कोयल यह देखकर क्रोधित थी कि मुख विरह की पीड़ा से म्लान क्यों नहीं हुआ ? राजा नल ने क्रीड़ा की वामी के तट से टकराने वाली तरंगों से वादन, कोयल और भौरों से गीत तथा मयूरों का नृत्य देखकर वन में भी मनोरंजन का सुख प्राप्त किया। भाग्यशाली मनुष्य को सर्वत्र सुख भोग प्राप्त होता है। निषध देश के नरेश नल ने समुद्र की शोभा का हरण करने वाले उस क्रीड़ा सरोवर में केलि करने वाली हंसियों के अव्यक्त मधुर स्वर के प्रति अपने निकट ही विचरण करते हुए अद्भुत सुनहरे आकर्षित न होने वाले तथा रंग के हंस को देखा। वह हंस रति क्रीड़ा में असमर्थ युवा अवस्थाओं वाली प्रियाओं के विषय में अपनी चोंच तथा दोनों चरणों से कामदेव द्वारा उत्पन्न किये हुए अनुराग रूपी वृक्ष के अंकुर को धारण करता हुआ जा पड़ा। उस विचित्र पक्षी को देखकर दमयन्ती के विरह की पीड़ा से व्याकुल हुए नल के मन में कुतूहल उत्पन्न हुआ। आश्चर्य पूर्ण कार्य करने वाले विधायनी इच्छा जिस ओर दौड़ती है, उस ओर मनुष्य का परतन्त्र चित्त भी तिनके के समान उड़कर चला जाता है। रति क्रीड़ा से थका हुआ वह हंस एक चरण में खड़ा होकर तथा गर्दन को तिरछी करके एक पैर के सहारे सो गया। राजा नल ने उस विचित्र हंस को देखकर सोचा—क्या यह मेरे मुख की कान्ति से पराजित होकर लज्जा के कारण मुँह छिपाये है। उस हंस को देखकर राजा नल ने घोड़े से उतर कर अपने दोनों चरणों में जूते पहने। जिस प्रकार भगवान विष्णु ने वामन बनकर राजा बलि के साथ छल किया था, उसी प्रकार राजा नल ने छल से चुपचाप आगे बढ़कर उस हंस को पकड़ लिया। हंस ने जब अपने आपको राजा नल के अधीन जाना तो हड़बड़ी में कई बार उड़ने का प्रयत्न किया। जब वह हंस उड़ नहीं सका तो दीन शब्द करता हुआ राजा नल के हाथों को काटने लगा। उस सुनहरे हंस को पकड़ा हुआ देखकर कलहंसों का समूह रुदन करने लगा। हंस ने राजा से कहा—हे राजन् ! जिस पृथ्वी का तुम्हारे समान मर्यादाहीन स्वामी है वह धरती रहने योग्य नहीं है। राजा नल ने जब बार-बार कहा कि मैंने सोने के पंखों वाला पक्षी अब तक नहीं देखा तो हंस राजा से कहने लगा कि आपके चंचल मन को धिक्कार है। धर्मशास्त्र में उस शत्रु की हिंसा की भी निन्दा की है जो विश्वास करता हो। पग-पग पर योद्धा पाये जाते हैं क्या उनसे युद्ध करके तुम्हारी हिंसा शान्त नहीं होती ? दया के पात्र दीन पक्षी पर किये गये तुम्हारे प्रहार को धिक्कार है। हंस के इन वचनों ने राजा नल के हृदय में करुणा उत्पन्न की। हंस बोला—“मैं अपनी माता का अकेला पुत्र हूँ। मेरी हंसिनी ने अभी पुत्र को जन्म दिया है। मैं उन दोनों का सहारा हूँ। तुम्हें मुझ पर दया क्यों नहीं आयी ? मेरा जीवन ऋषियों के समान है। मैं कमलों के फल और मूल से अपना जीवन निर्वाह करता हूँ।” हंस के इस प्रकार के वचनों को सुनकर राजा नल के मन में आश्चर्य, लज्जा और दया के भाव उत्पन्न हुए। हंस ने कहा—“मेरे दयालु मित्र क्षणभर संसार की निन्दा करते हुए शान्त हो जायेंगे। केवल मेरी माता ही शोक सागर में डूबी रहेगी। हे प्रिया ! जब तू मेरे मित्रों से मेरे वध का समाचार सुनेगी तो पता नहीं तेरी क्या दशा होगी ? हे विधाता ! तुमने जिस लेखनी से मेरी पत्नी के भाग्य में सन्ताप देने वाले कठोर अक्षर लिखे हैं। हे प्रिये ! यदि मेरी मृत्यु के शोक के कारण तेरा हृदय फट जयेगा और तेरी मृत्यु हो जायेगी तो मैं भाग्य का मारा हुआ मर जाऊँगा। उस स्थिति में हमारे बच्चे भी मर जायेंगे। राजहंस अत्यन्त दुःख से पीड़ित होकर कहने लगा—अनेक अभिलाषाओं और दीर्घकाल की प्रतीक्षा के बाद जो बालक उत्पन्न हुए हैं, जिन बच्चों की आँखें नहीं खुली हैं, वे मेरे और तुम्हारे अभाव में भूख से छटापटा कर मर जायेंगे। राजहंस की आँखों में आँसू भर आये। वह बोला—“हे बच्चो ! तुम चूँ-चूँ करते हुए चिरकाल तक किसे बुलाकर अपने मुखों को क्रियामात्र अवशेष बनाओगे। इसके इन वचनों ने राजा नल के मन को द्रवित कर दिया। राजा नल ने कहा, मैंने जिस इच्छा से तुम्हें पकड़ा था, वह पूर्ण हो गयी। इसके बाद राजा नल ने इस हंस को छोड़ दिया।”

निपीय यस्य क्षितिरक्षिणः कथाः,
तथाद्रियन्ते न बुधाः सुधामपि।
नलः सितच्छत्रित कीर्तिमण्डलः,
स राशिरासीन्महसां महोज्ज्वलः॥ १॥

अन्वय—यस्य क्षितिरक्षिणः कथाः निपीय बुधाः सुधाम् अपि तथा न आद्रियन्ते। सितच्छत्रित कीर्तिमण्डलः महोज्ज्वलः सः नलः महसां राशिः आसीत्।

शब्दार्थ—यस्य = जिसकी, राजा नल की। **क्षितिरक्षिणः** = धरती की रक्षा करने वाले की। **कथाः** = कथाओं को, सम्बन्धित कहानियों को। **निपीय** = पीकर, सुनकर, पान करके। **बुधाः** = देवगण, विद्वान्। **सुधाम् अपि** = अमृत को भी। **तथा** = उस प्रकार, उसके समान। **न आद्रियन्ते** = आदर नहीं देते हैं, आदर नहीं करते हैं। **सितच्छत्रित कीर्तिमण्डलः** = अपनी कीर्ति के मण्डल को, अपनी विशाल कीर्ति को श्वेत राजपत्र बना लिया है, जिसने। **महोज्ज्वलः** = उत्सवों से देदीप्यमान। **सः नलः** = वह नल। **महसाम्** = तेजों की। **राशिः** = ढेर, समूह। **आसीत्** = था।

प्रसंग-सन्दर्भ—प्रस्तु श्लोक महाकवि श्रीहर्ष प्रणीत नैषधमहाकाव्यम् के प्रथम सर्ग से उद्धृत है, जिसमें मङ्गलाचरण किया जा रहा है। काव्यपरम्परानुसार ग्रन्थ के प्रारम्भ में काव्य की निर्विघ्न परिसमाप्ति के निमित्त मङ्गलाचरण आदि का किया जाना आवश्यक माना जाता है। महाकवि ने “कर्कोटकस्य नागस्य दमयन्त्या नलस्य च। ऋतुपर्णस्य राजर्षेः कीर्तनं कलिनाशनम्।” उक्ति के अनुसार नल की कथा कीर्तन को कलिका नाशक होना प्रसिद्ध माना है। यहाँ पर शिष्टाचारानुसार किसी विशिष्ट देवतादि का नमस्कारादि रूप मङ्गल नहीं किया गया है किन्तु “कर्कोटकस्य नागस्य कलिनाशनम्” तथा “पुण्यश्लोको नलो राजा पुण्यश्लोको युधिष्ठिर।” पुण्यश्लोका व वैदेही पुण्यश्लोको जनार्दनः। वचनों के अनुसार नल-कथा के कीर्तन को ही विशिष्ट वस्तुनिर्देशात्मक मङ्गलाचरण रूप में महाकवि श्रीहर्ष ने माना है। महाकवि ने नलकथा को अमृत से भी अधिक श्रेष्ठ सिद्ध करते हुए उसे प्रस्तुत किया है।

हिन्दी अनुवाद—धरती की रक्षा करने वाले जिस नल की कथाओं को कानों से पीकर अर्थात् पूर्णरूप से सुनकर विद्वान् अथवा देवगण अमृत का भी आदर नहीं करते हैं, उस राजा नल ने अपनी उज्ज्वल कीर्ति को ही श्वेत राजछत्र बना लिया था। उत्सवों से देदीप्यमान वह नल तेजों की राशि अर्थात् महाप्रतापी था।

हिन्दी व्याख्या—राजा नल के विषय में अनेक कथाएँ प्रचलित थीं। उन्हें सुनकर धरती के विद्वान् और बुद्धिमान् पुरुष ही नहीं, स्वर्ग के देवता भी तृप्त होते थे। वे नल की कीर्ति-कथाओं के सामने अमृत का भी आदर नहीं करते थे। नल की यशोगाथाएँ सुनने में अमृतपान से भी अधिक आनन्द था, क्योंकि राजा नल की कथा का भलीभाँति अस्वादन करके व्यक्ति विशेष के कलियुग में उत्पन्न पापों का नाश हो जाता है अथवा जिस राजा नल

NOTES

की कथा का पान कर विद्वज्जन अथवा देवगण सुधामय अर्थात् चन्द्रमा का भी उतना आदर नहीं करते, जितना राजा नल की कथा का, जिसने अपने शुभ्र कीर्ति मण्डल को श्वेतपत्र बनाया, ऐसे अति तेजस्वी तथा उत्सवों से देदीप्यमान राजा नल हुए। वे राजा नल अपने चतुर्दिग्व्यापी कीर्तिसमूह से उज्ज्वल चरित्र वाले थे।

कवि का मानना है कि राजा नल की कथा अमृत की अपेक्षा कहीं अधिक मधुर थी, साथ ही अत्यधिक शृङ्गार रसमय थी, इसी कारण दमयन्ती ने इन्द्रादि देवताओं को त्यागकर नल को ही वरण करना अधिक उपयुक्त समझा होगा।

संस्कृत व्याख्या—यस्य = धारानरेशस्य नलस्य। क्षितिर्क्षिणः = पृथ्वीपालस्य, नलस्य। कथाः = यशोगाथाः, गुण कीर्तनानि। निपीय = निःशेषं पीत्वा, सादरं श्रुत्वा। बुधाः = देवाः, मतिमन्तः। सुधाम् अपि = अमृतम् अपि। तथा = तेन प्रकारेण। न आद्रियन्ते = आदरं नैव कुर्वन्ति। सितच्छत्रितकीर्तिमण्डलः = कीर्ति समूहेन सितच्छत्रवद् व्यापृतः। सः नलः = धारानरेशः। महोज्ज्वलः = उत्सवैः देदीप्यमानः। महसाम् = तेजसाम्। राशिः = समूहः। आसीत् = अभूत्।

रसैः कथा यस्य सुधावधीरिणी

नलः स भूजानिरभूद्गुणाद्भुतः।

सुवर्णदण्डैकसितातपत्रित-

ज्वलत्प्रतापावलिकीर्तिमण्डलः॥ २॥

अन्वय—यस्य कथा रसैः सुधावधीरिणी (अस्ति), सः नलः सुवर्णदण्डैकसितातपत्रितज्वलत्प्रतापावलिकीर्तिमण्डलः गुणाद्भुतः भूजानिः अभूत्।

शब्दार्थ—यस्य = जिसकी। कथा = कहानी। रसैः = शृङ्गारादि रसों के कारण। सुधावधीरिणी = सुधा + अवधीरिणी = अमृत का तिरस्कार करने वाली। अस्ति = है। सः = वह। नलः = राजा नल। सुवर्णदण्डैकसितातपत्रितज्वलत् प्रतापावलिकीर्तिमण्डलः = सुवर्ण दण्ड + एक + सित + आतपत्रित + ज्वलत् प्रताप + अवलि + कीर्तिमण्डलः = जलते हुए प्रताप समूह एवं कीर्तिमण्डल को स्वर्ण-दण्ड तथा श्वेत-छत्र बना देने वाला। गुणाद्भुतः = गुण + अद्भुतः = गुणों के कारण विचित्र। भूजानिः = भूमिपति, राजा। अभूत् = था।

प्रसंग-सन्दर्भ—प्रस्तुत श्लोक महाकवि श्रीहर्ष प्रणीत नैषधमहाकाव्यम् के प्रथम सर्ग से उद्धृत है, जिसमें कवि श्रीहर्ष राजा नल को प्रताप और यश के कारण अद्भुत बता रहे हैं।

हिन्दी अनुवाद—जिसकी कथा शृङ्गार आदि रसों की मधुरता के कारण अमृत का तिरस्कार करने वाली है, वह नल अपने जलते हुए प्रताप-पुंज एवं धवल यश को स्वर्ण-दण्ड और श्वेत-छत्र बना देने वाला तथा दया-दाक्षिण्य आदि गुणों के कारण अद्भुत राजा था।

हिन्दी व्याख्या—राजा नल की कथा शृङ्गार, वीर आदि रसों से इतनी अधिक मात्रा में व्याप्त है कि वह मधुर रस वाले अमृत का भी तिरस्कार करती है। राजा नल की कथा पढ़कर और सुनकर अमृत-पान करने से भी अधिक आनन्द की अनुभूति होती है। जलता हुआ प्रताप राजा नल के श्वेत-छत्र का दण्ड था और कीर्ति श्वेत आतपत्र थी। अन्य राजा स्वर्ण-दण्ड वाला एवं श्वेत रंग का छत्र धारण करते हैं। जलता हुआ प्रताप ही राजा नल

का स्वर्ण का छत्र-दण्ड था और सर्वत्र व्याप्त श्वेत वर्ण का यश ही आतपत्र अर्थात् छत्र था। राजा नल शूरवीरता, उदारता आदि अनेक गुणों से युक्त होने के कारण लोकोत्तर गौरवशाली था। इस प्रकार का नल भूमि का पति था।

नैषधीयचरितम् (श्रीहर्ष)

NOTES

संस्कृत व्याख्या—यस्य = राज्ञः नलस्य। कथा = गुण कीर्तनम्। रसैः = शृंगारादि नव रसानाम् अधिकतया, स्वादेन च। सुधावधीरणी = अमृतस्य तिरस्कारं करोति। अस्ति = वर्तते। सः = एवभूतः। नलः = निषधनरेशः। सुवर्णदण्डैक सितातपत्रित ज्वलत् प्रतापावलि कीर्ति मण्डलः = हेमदण्डारः द्वितीया श्वेतातपत्रित प्रतापावलि मण्डितः युक्तः आसीत्। ज्वलित प्रतापावलि कीर्ति मण्डलः = ज्वलित प्रताप पुंज एव तस्य राजछत्रस्य स्वर्ण दण्डः आसीत्। सितातपत्रितः = श्वेतवर्ण यशः एव तस्य आतपत्रम् आसीत्। गुणाद्भुतः = गुणानाम् अधिकतया विस्मयकारकः। भूजानिः = राजा। अभूत् = आसीत्।

पवित्रमत्रातनुते जगद्युगे
स्मृता रसक्षालनयेव तत्कथा।
कथं न सा मद्गिरमाविलामपि
स्वसेविनीमेव पवित्रयिष्यति।। ३।।

अन्वय—अत्र युगे स्मृता तत्कथा जगत् रसक्षालनया इव पवित्रम् आतनुते। सा आविलाम् अपि स्वसेविनीम् एव मद्गिरम् कथम् न पवित्रयिष्यति।

शब्दार्थ—अत्रयुगे = इस युग में। स्मृता = स्मरण की गयी। रसक्षालनया = जल प्रक्षालन अथवा शृंगारादिरसों की निष्पत्ति से। आतनुते = कर देती है। आविलामपि = दोष युक्त होने पर भी। स्वसेविनीमेव = उसका ही वर्णन करने में संलग्न। मद्गिरम् = मेरी वाणी को। पवित्रयिष्यति = पवित्र करेगी।

प्रसंग-सन्दर्भ—महाकवि श्रीहर्ष नैषधमहाकाव्यम् के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में कहते हैं कि समस्त संसार को पवित्र करने वाली नल की कथा मेरी वाणी को पवित्र करेगी ही, ऐसा मेरा विनम्र भाव है।

हिन्दी अनुवाद—इस कलियुग में स्मरण करने मात्र से ही राजा नल की कथा सम्पूर्ण संसार को जल से प्रक्षालन के समान पवित्र करती है। यह नल-कथा दोष उनका ही कीर्तन करने में संलग्न दोष युक्त भी मेरी वाणी को क्यों नहीं पवित्र करेगी अर्थात् अवश्य करेगी?

हिन्दी व्याख्या—जिस प्रकार जल से धोयी हुई कोई वस्तु स्वच्छ एवं दोषरहित हो जाया करती है, उसी प्रकार नवरससमन्वित राजा नल की कथा का सेवन करने से “कर्कोटकस्य नागस्य” इत्यादि वचनों के अनुसार सम्पूर्ण लोक भी निर्मल एवं दोषरहित हो जाया करता है। कहा गया है कि कर्कोटक नाग, दमयन्ती नल और राजर्षि ऋतुपर्ण, इनका कीर्तन करने से कलि का नाश हो जाता है अर्थात् नल की कथा के स्मरणमात्र से कलियुग में मनुष्य के समस्त पाप (दोष) नष्ट हो जाते हैं। तब नल की कथा का वर्णन करने वाली मलिन भी स्वसेविनी मेरी वाणी क्यों नहीं पवित्र हो जायेगी अर्थात् अवश्य पवित्र हो जायेगी, क्योंकि वह तो उसकी सेविका ही है। ऐसी गुणकारी राजा नल की कथा का मैं (महाकवि श्रीहर्ष) तो सरसता के साथ वर्णन कर रहा हूँ। अतः मुझे विश्वास है कि वह मेरी दोषयुक्त एवं मलिन वाणी को अवश्य ही पवित्र कर देगी। स्मरण मात्र से पवित्र करने वाली कथा निरन्तर वर्णन से तो अवश्य ही पवित्र करेगी। यही कारण है कि श्रीहर्ष अन्य कथाओं को छोड़कर नल की ही कथा का वर्णन करते हैं।

NOTES

संस्कृत व्याख्या—अत्र युगे = अस्मिन् कलियुगे। स्मृता = स्मर्यमाणा। तत् कथा = नलस्य गुणकीर्तनम्। जगत् = संसारम्। रसक्षालनया = जल प्रक्षालनेन, शृंगारादिरसानां निष्पत्त्या वा। इव = समानम्। पवित्रम् = पावनम्। आतनुते = करोति। सा = नलस्य कथा। आविलाम् अपि = दोष युक्ताम् अपि। स्वसेविनीम् = तस्य नलस्य सेवायां संलग्नाम्। मद्गिरम् = मम श्रीहर्षस्य वाणीम्। कथम् = केन कारणेन। न = नहि। पवित्रयिष्यति = पावनं करिष्यति।

अधीतिबोधाचरण प्रचारणैः

दर्शाश्चतस्रः प्रणयन्नुपाधिभिः।

चतुर्दशत्वं कृतवान् कुतः स्वयं

न वेदिम् विद्यासु चतुर्दशस्वयम्।। ४।।

अन्वय—अधीतिबोधाचरणप्रचारणैः उपाधिभिः (विद्यासु) चतस्रः दशाः प्रणयन् अयं चतुर्दशसु विद्यासु स्वयं चतुर्दशत्वं कुतः कृतवान् (इति अहं) न वेदिम्।

शब्दार्थ—अधीति = अध्ययन। बोध = अर्थज्ञान। आचरण = ज्ञानपूर्वक प्रयोग। प्रचारणैः = अध्यापन-कार्य के द्वारा। उपाधिभिः = विधियों के द्वारा। विद्यासु = विद्याओं में। चतस्रः = चार। दशाः = दशाओं को। प्रणयन् = प्रस्तुत करता हुआ। अयम् = यह राजा नल। चतुर्दशसु = चौदह में। विद्यासु = विद्याओं में। स्वयं = अपने आप। चतुर्दशत्वम् = चार दशाएँ होना और चौदह की संख्या होना। कुतः = किस प्रकार। कृतवान् = किया। इति = यह। न वेदिम् = मैं नहीं जानता हूँ।

प्रसंग-सन्दर्भ—महाकवि श्रीहर्ष प्रणीत नैषधमहाकाव्यम के प्रथम सर्ग से उद्धृत श्लोक में कवि श्रीहर्ष राजा नल के गुणों का वर्णन करने के पश्चात् उनके चौदह विद्याओं के ज्ञाता होने की बात कह रहे हैं।

हिन्दी अनुवाद—अध्ययन, अर्थ-ज्ञान आचरण एवं अध्यापन-कार्य, इन चार विधियों के द्वारा चार दशाओं को प्रस्तुत करते हुए इस राजा नल ने चौदह विद्याओं में स्वयं चौदह की संख्या होने और चार दशाएँ होने की स्थिति किस प्रकार समायोजित कर दी, यह मैं नहीं जानता।

हिन्दी व्याख्या—यह नल चौदह विद्याओं—चार वेद, छः वेदांग, न्याय, पुराण, मीमांसा, धर्मशास्त्र का न केवल ज्ञाता था, अपितु उसे इनका अर्थ-बोध भी था। इन विद्याओं को जानने और इनके अर्थ-बोध के साथ ही राजा नल ने अपने आचरण में भी इन चौदह विद्याओं का समावेश किया था। साथ ही राजा नल ने इन चौदह विद्याओं का अध्ययन भी किया था। इन चौदह विद्याओं में संख्या के कारण तो चतुर्दशत्व (चौदह) था। राजा ने इन विद्याओं की चार दशाओं—अध्ययन, अर्थ-बोध, आचरण और अध्यापन के कारण भी चार दशाओं का भाव उत्पन्न कर दिया था। कवि श्रीहर्ष इस बात पर आश्चर्य करते हैं कि उन्होंने विद्याओं में चौदह की संख्या होना और चार दशाएँ होना, ये दोनों विशेषताएँ किस प्रकार उत्पन्न कर दी थीं ?

संस्कृत व्याख्या—अधीतिः = अध्ययनेन। बोधाचरणप्रचारणैः = अर्थज्ञानेन तदनुसारं विद्याया अध्यापनकार्य द्वारा प्रचारं क्रियमाणैः। उपाधिभिः = विधिभिः। विद्यासु = चत्वारो वेदाः, षड् वेदांगानि, न्यायः, पुराणम्, मीमांसा, धर्मशास्त्रम् एतासु। चतस्रः = चत्वारि संख्याकाः। दशाः = स्थितयः। प्रणयन् = कुर्वन्। अयम् = राजा नलः। चतुर्दशसु = दशाधिकं चतसृषु। स्वयम् = सहायकाभावेन। चतुर्दशत्वम् = चतसृणां दशानां भावम्। कुतः = कस्मात् कारणात्। कृतवान् = अकरोत्। इति = इत्थम्। अहम् = श्रीहर्षः कविः। न = नहि वेदिम् = जानामि।

अमुष्य विद्या रसनाग्रनर्तकी,
त्रयीव नीतांगगुणेन विस्तरम्।
अगाहताष्टादशतां जिगीषया,
नवद्वयद्वीपपृथग्जयश्रियाम्॥ ५॥

नैषधीयचरितम् (श्रीहर्ष)

NOTES

अन्वय—अमुष्य रसनाग्रनर्तकी विद्या अंगगुणेन विस्तरं नीता त्रयी इव नवद्वयद्वीप पृथग् जयश्रियाम् जिगीषया (इव) अष्टादशताम् अगाहत।

शब्दार्थ—अमुष्य = इसकी, राजा नल की। रसनाग्रनर्तकी = जिह्वा के अग्रभाग पर नाचने वाली। विद्या = वेद विद्या। अंगगुणेन = वेदांगों-शिक्षा, कल्प आदि से गुणा किये जाने के कारण। विस्तरं नीता = विस्तार को प्राप्त। त्रयी इव = तीन वेदों-ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद के समान। नवद्वयद्वीप पृथग्जयश्रियाम् जिगीषया = अठारह द्वीपों की अलग-अलग विजयश्री को प्राप्त करने की इच्छा से। इव = मानो। अष्टादशताम् = अठारहपन को, अठारह की संख्या को। अगाहत = प्राप्त किया।

प्रसंग-सन्दर्भ—कविराज श्रीहर्ष प्रणीत नैषधमहाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में राजा नल की महती विशेषता का उल्लेख है। उसके पास लक्ष्मी और सरस्वती दोनों का एक साथ ही निवास था।

हिन्दी अनुवाद—इस राजा नल की जीभ के अगले भाग पर नृत्य करने वाली अर्थात् सदैव कंठस्थ रहने वाली वेद-विद्या अपने अंग से गुणा होने पर अर्थात् छः वेदांगों से गुणा करने पर (३ × ६ = १८) मानो अठारह द्वीपों को अलग-अलग विद्यमान विजय-लक्ष्मियों को जीतने की इच्छा से अठारह की संख्या को प्राप्त हुई थी।

हिन्दी व्याख्या—विद्या से तात्पर्य वेद-विद्या से है, क्योंकि भारतीय संस्कृति में वेदों को ही प्रधानता प्राप्त है। वेदांग छः हैं—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द तथा ज्योतिष। इस प्रकार तीनों वेदों के वेदांगों की संख्या अठारह हुई। दुग्ध, दधि, धान्य आदि द्वीपों की संख्या भी अठारह है। कविवर श्रीहर्ष ने यह उत्प्रेक्षा की है कि इन अठारह द्वीपों की राज्यलक्ष्मी को अलग-अलग जीतने की इच्छा से राजा नल की विद्याओं की संख्या अठारह हो गयी थी। ये विद्याएँ राजा नल को कंठस्थ थीं। इन्हें पुस्तक में देखने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। ये विद्याएँ राजा नल की जीभ पर नाचती थीं। कहने का अभिप्राय है कि नल परस्पर विरोधिनी लक्ष्मी और सरस्वती दोनों का आश्रय था।

संस्कृत व्याख्या—अमुष्य = राज्ञः नलस्य। रसनाग्रनर्तकी = जिह्वायाः अग्र भागे नर्तनशीला। विद्या = विविधा रूपविद्या। अंगगुणेन = षड् वेदांगानाम् आवृत्या। विस्तरं नीता = वृद्धि प्रापिता। त्रयी इव = ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद रूपा वेदानां त्रिसंख्या समम्। नवद्वयद्वीप पृथग् = अष्टादश संख्यानां द्वीपानां पृथक्-पृथक् इव। जयश्रियाम् = विजय लक्ष्मीनाम्। जिगीषया = जेतुम् इच्छया। अष्टादशताम् = अष्टादश संख्याम् ताम् अगाहत = प्राप्तवती अभवत्।

दिगीशवृन्दांशविभूतिरीशिता
दिशां च कामप्रसभावरोधिनीम्।
बभार शास्त्राणि दृशं द्वायाधिकां
निजत्रिनेत्रावतरत्वबोधिकाम्॥ ६॥

NOTES

शब्दार्थ—दिगीशवृन्दांशविभूतिः = दिशाओं के अधिपतियों अर्थात् इन्द्र आदि दिग्पालों के समूह के अंशों से उत्पन्न । दिशामीशिता = आठ दिशाओं के स्वामी । शास्त्राणि = शास्त्रों के रूप में । कामप्रसभावरोधिनी = इच्छा अथवा कामदेव को बलात् रोकने वाली । निजत्रिनेत्रावतरत्वबोधिकाम् = अपने को शिव का अवतार होने का ज्ञान कराने वाले । द्वयाधिकाम् = दो से अधिक । बभार = धारण किया ।

प्रसंग—श्रीहर्ष प्रणीत नैषधमहाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में नल की देवांशभूति तथा शास्त्रज्ञता का अलौकिक चित्रण कवि द्वारा किया गया है ।

हिन्दी अनुवाद—(इन्द्रादि) दिक्पाल-समूह के अंश से विभूति वाले तथा आठ दिशाओं के स्वामी उस नल ने काम की प्रबलता को रोकने वाले तथा अपने त्रिनेत्र शिव के अवतार का बोध कराने वाले दो से अधिक शास्त्ररूप तृतीय नेत्र को धारण किया ।

हिन्दी व्याख्या—राजा नल सम्पूर्ण आठों दिशाओं का शासक था और इन्द्रादि दिक्पाल एक-एक दिशा के स्वामी थे, अतएव इन्द्रादि में इस नल की विभूति थी, अथवा वचन के अनुसार राजा नल समस्त दिक्पालों के अंश से ऐश्वर्यवान् थे, ऐसे वे शास्त्ररूप तृतीय नेत्र को ग्रहण करके इच्छा की प्रबलता अर्थात् मन को शास्त्र विरुद्ध कार्य में प्रवृत्त होने से वैसे रोकते थे, जैसे त्रिनेत्र शङ्कर भगवान् ने तृतीय नेत्र से कामदेव की प्रबलता को रोका था । इस प्रकार नल शास्त्र-ज्ञान द्वारा कामप्राबल्य को रोककर अपने को शङ्कर का अवतार बतला रहे थे । नल शास्त्रज्ञ होने से शास्त्र विरुद्ध कार्य करने में कभी प्रवृत्त नहीं होते थे अर्थात् शास्त्र विरुद्ध कार्य करने से अपनी इच्छा को सर्वदा रोके रहते थे ।

संस्कृत व्याख्या—दिगीशवृन्दांशविभूतिः = दिगीशवृन्दं दिक्पालसमूहः तस्य अंशेभ्यः मात्राभ्यः विभूतिः, उद्भवः यस्य सः (शंकर-पक्षे-दिगीशवृन्दम् अंशविभूतिः यस्य सः अथवा दिगीशवृन्दे अंशेन विभूतिः ऐश्वर्य यस्य सः) दिशाम् = प्राच्यादिकाष्ठानाम् ईशिता = ईश्वरः सः = नलः शास्त्राणि-वेदादिशास्त्राणि (एव) काम प्रसभावरोधिनी = इच्छायाः कामदेवस्य वा बलाऽवरोधकारिणीं निजत्रिनेत्रावतारत्वबोधिकाम् = स्वशङ्करावतार ज्ञापिकाम्, द्वयाधिकां = द्वितयाऽतिरिक्तां तृतीयाम् इत्यर्थः दृशं नेत्रं वभार = धृतवान् ।

पदैश्चतुर्भिः सुकृते स्थिरीकृते

कृतेऽमुना के न तपः प्रपेदिरे ।

भुवं यदेकाग्रिकनिष्ठया स्पृशन्

दधावधर्मोऽपि कृशस्तपस्विताम् ॥ ७ ॥

अन्वय—अमुना कृते सुकृते चतुर्भिः पदैः स्थिरीकृते के तपः न प्रपेदिरे । यत् अधर्मः अपि एकाग्रिकनिष्ठया भुवं स्पृशन् (अतएव च) कृशः (सन्) तपस्वितां दधौ ।

शब्दार्थ—अमुना = इस राजा नल के द्वारा । कृते = सतयुग में । सुकृते = पुण्य के । चतुर्भिः पदैः = चार चरणों के द्वारा, शम, दम, तप, अस्तेय अथवा यज्ञ, दान, तप एवं ज्ञान के आधारों के द्वारा । स्थिरीकृते = स्थिर कर देने पर । के = कौन । न = नहीं । तपः प्रपेदिरे = तपस्या कर रहे थे । के न तपः प्रपेदिरे = सभी

तपस्या कर रहे थे। यत् = जो। अधर्मः अपि = अधर्म भी। एकांघ्रिक = एक + अंघ्रिक। एकांघ्रि कनिष्ठया = एक चरण की कनिष्ठिका अँगुली से। भुवम् = धरती को। स्पृशन् = स्पर्श करता हुआ। कृशः सन् = दुर्बल होकर। तपस्विताम् = तपस्वी होने के कारण को। दधौ = धारण कर रहा था।

NOTES

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में कवि श्री हर्ष राजा नल के शासनकाल में पूर्ण धार्मिकता का वर्णन कर रहे हैं।

हिन्दी अनुवाद—इस राजा नल के द्वारा सतयुग में धर्म को चार चरणों—शम, दम, सत्य, अस्तेय तथा यज्ञ, ज्ञान, तप, दान के द्वारा स्थिर कर देने पर कौन तपस्या को प्राप्त नहीं हो रहे थे अर्थात् सभी तपस्या कर रहे थे, क्योंकि अधर्म भी केवल पैर की कनिष्ठिका अँगुली से धरती का स्पर्श करता हुआ निर्बल हो गया था और तपस्वी की दशा धारण कर ली थी।

हिन्दी व्याख्या—राजा नल सतयुग में हुए थे। सतयुग में धर्म के चारों चरण थे। धर्म अपने चारों चरणों से धरती का स्पर्श कर रहा था। सतयुग में धर्म की प्रबलता तथा अधर्म की दुर्बलता थी। उस समय अधर्म केवल एक चरण की कनिष्ठिका अँगुली से धरती का स्पर्श कर रहा था। तात्पर्य यह है कि राजा नल के समय धरती पर अधर्म नाममात्र को था। धर्म के चार चरण मानने के विषय में मतभेद हैं। कुछ आचार्य धर्म के चार चरण—शम-दम-सत्य-अस्तेय मानते हैं और कुछ यज्ञ-दान-तप-ज्ञान मानते हैं। तात्पर्य यह है कि राजा नल के समय में लोगों में इस प्रकार की भावनाएँ एवं गुण थे। एक चरण से धरती का स्पर्श करके तपस्या की जाती है। राजा नल के समय में अधर्म भी तपस्या कर रहा था, फिर धार्मिक-जन तपस्यारत क्यों न होते ? अधर्म की दुर्बलता भी उसके तपस्वी होने का लक्षण है। तपस्या करने वाले लोग दुर्बल हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि राजा नल ने धर्म को चार चरणों से स्थिर करके अधर्म को क्षीण बना दिया था।

संस्कृत व्याख्या—अमुना = अनेन रात्रा नलेन। कृते = सतयुगे। सुकृते = पुण्य कर्मणि। चतुर्भिः = चतसृसंख्याकैः। पदैः = चरणैः। स्थिरीकृते = गतिहीनं क्रियमाणे। के = कति संख्याकाः। न = नहि। तपः = तपस्याम्। प्रपेदिरे = प्राप्तवन्तः। यत् = यस्मात् कारणात्। अधर्मः = धर्माभावः। अपि = मात्रम्। एकांघ्रिकनिष्ठया = एकचरणेन स्थित्या। भुवम् = धरित्रीम्। स्पृशन् = स्पर्श कुर्वन्। कृशः = दुर्बलः, स्थूलताया अभावं प्राप्तः। तपस्विताम् = तपस्विनो दशाम्। दधौ = धारितवान्।

यदस्य यात्रासु बलोद्धतं रजः

स्फुरत्प्रतापानलधूममज्जिम।

• तदेव गत्वा पतितं सुधाम्बुधौ

दधाति पङ्कीभवदङ्कतां विधौ ॥ ८ ॥

अन्वय—अस्य यात्रासु स्फुरत्-प्रतापानल-धूममज्जिम, यत् बलोद्धतं रजः (उदपतत्) तद् एव गत्वा सुधाम्बुधौ पतितं पङ्कीभवत् (च) विधौ अङ्कतां दधाति।

शब्दार्थ—अस्य = राजा नल की। यात्रासु = दिग्विजय सम्बन्धी यात्राओं में। स्फुरत् = देदीप्यमान, ऊपर उठता हुआ। प्रतापानल = प्रताप + अनल = प्रतापरूपी अग्नि के। धूममज्जिम = धुएँ की शोभा वाला। यत् = जो। बलोद्धतम् = बल + उद्धतम् = सेना द्वारा उड़ायी गयी। रजः = धूल। उदपतत् = उठी। तद् एव = वह ही। गत्वा = जाकर। सुधाम्बुधौ = सुधा + अम्बुधौ = अमृत सागर में। पतितम् = गिरी।

पंकीभवत् च = और कीचड़ बनती हुई। विधौ = चन्द्रमा में। अंकताम् = काले चिह्न का रूप। दधाति = धारण करती है।

NOTES

प्रसंग-सन्दर्भ—नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से अवतरित प्रस्तुत श्लोक में कवि श्रीहर्ष राजा नल की दिग्विजय यात्रा में सेना के चलने से उठी हुई धूल का वर्णन कर रहे हैं।

हिन्दी अनुवाद—इस राजा नल की दिग्विजय सम्बन्धी यात्राओं में इसके प्रखर प्रताप-रूपी अग्नि के धुएँ की शोभा वाली जो धूल सेना द्वारा उड़ायी गयी, वही जाकर अमृत के सागर में गिरी और कीचड़ बनकर चन्द्रमा में कलंक का रूप धारण कर गयी।

हिन्दी व्याख्या—राजा नल ने दिग्विजय के प्रसंग में अनेक यात्राएँ कीं। वह विशाल सेना लेकर दिग्विजय के लिए निकलता था। उसकी सेना चलती थी तो अधिक मात्रा में धूल उड़ती थी। वह धूल ऐसी जान पड़ती थी, मानो राजा नल की प्रतापरूपी अग्नि का धुआँ हो। राजा नल की दिग्विजय सम्बन्धी यात्राओं में उड़ी हुई धूल जाकर अमृत के सागर में गिरी और कीचड़ बन गयी। देवों और दानवों ने मिलकर जब सागर का मंथन किया तो उसमें से निकले रत्नों में चन्द्रमा भी था। चन्द्रमा में जो काला धब्बा है, वह राजा नल की सेनाओं के चलने से उड़ी धूल की कीचड़ लगी है। चन्द्रमा सागर में था। उसमें कीचड़ लगना स्वाभाविक है।

संस्कृत व्याख्या—अस्य = नृपनलस्य। यात्रासु = गमनप्रसंगेषु। स्फुरत् = ऊर्ध्वम् इत्थितम्। प्रतापानलधूमिज्जिम = प्रतापरुपिणः अग्नेः धूमस्य शोभा। बलोद्धतम् = सेनया उत्थापितम्। रजः = धूलिः। उदपतत् = ऊर्ध्वम् अगच्छत्। गत्वा = प्राप्य। सुधीम्बुधौ = अमृत-सागरे। पतितम् = अधोभूतम्। विधौ = चन्द्रमसि। अङ्कताम् = कालिमा रूपम्। दधाति = धारयति।

स्फुरद्भुनिस्वनतद्धनाशुग-

प्रगल्भवृष्टिव्ययितस्य सङ्गरे।

निजस्य तेजशिशिखिनः परशशता

वितेनुरङ्गारमिवायशः परे।। ९।।

अन्वय—सङ्गरे पर = पशशताः परे स्फुरद्भुनिस्वनतद्धनाशुगप्रगल्भवृष्टि व्ययितस्य निजस्य तेजशिशिखिनः अङ्गारमिव अयशः वितेनुः।

शब्दार्थ—सङ्गरे = युद्ध में। परशशताः = सैकड़ों। परे = शत्रु। आशुग = शीघ्र गमन करने वाले। प्रगल्भ वृष्टिव्ययितस्य = प्रबल वृष्टि से बुझे हुए। निजस्य = अपने। तेजशिशिखिनः = प्रतापाग्नि के। अङ्गारमिव = अङ्गार के सदृश। अयशः = अपयश को। वितेनुः = फैला दिया।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में राजा नल द्वारा अपने प्रताप और पराक्रम से फैलाई गयी कीर्ति का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद—युद्ध में सौ से भी अधिक शत्रु राजाओं ने प्रकाशमान धनुष के टङ्कार को विस्तृत करने वाले उस नल के अत्यधिक बाणों की असह्य वर्षा से बुझी हुई अपनी (शत्रुओं की) तेज रूपी अग्नि के अङ्गार के सदृश अपयश को फैला दिया।

NOTES

हिन्दी व्याख्या—राजा नल युद्ध में चमकती हुई धनुष की टङ्कार करते हुए मेघों में हुई वर्षा के समान बाणों को बरसाते थे। उस बाणवृष्टि से शताधिक नल-शत्रुओं की प्रतापाग्नि बुझ गयी और उनके काले-काले अंगारों के समान अपयश चारों ओर फैल गया। अत्यधिक वर्षा होने पर प्रज्ज्वलित अग्नि बुझ जाया करती है और उसके बुझे हुए काले-काले अंगार चारों ओर फैल जाया करते हैं। इसी प्रकार राजा नल के बाणों की वर्षा से शत्रु राजा पराजित हो गये तथा उनकी कीर्ति नष्ट हो गयी और उनका अपयश चारों ओर व्याप्त हो गया। कहने का आशय यह है कि नल ने शताधिक शत्रुओं को जीतकर उनकी प्रतापाग्नि को बुझा दिया था, शत्रुविहीन होकर निर्द्वन्द्वता के साथ राज्य का संचालन करते थे। इस प्रकार उनकी कीर्ति चारों ओर फैल गयी थी।

संस्कृत व्याख्या—संगरे = युद्धे। परशशताः = शताधिकाः। परे = शत्रवः। स्फुरद्धनुर्निस्वनतद्धनाशुगप्रगल्भवृष्टि व्ययितस्य = स्फुरन्तौ धनुश्च निःस्वनश्च यस्य स राजा नल एवं मेघः तस्य बहुमात्रं कृतथा वर्षया समाप्तस्य। निजस्य = स्वकीयस्य। तेजःशिरिवनः = प्रतापाग्नेः। अंगारमिव = अंगारतुल्यम्। अयशः = अपयशः। यशोऽभावम्। वितेनुः = विस्तारितवन्तः।

अनल्पदग्धारि पुरानलोज्ज्वलै

निजप्रतापैर्वलयं ज्वलद्भुवः।

• प्रदक्षिणीकृत्य जयाय सृष्टया

रराज नीराजनया स राजघः॥ १०॥

अन्वय—राजघः सः अनल्पदग्धारिपुरानलोज्ज्वलैः निजप्रतापैः ज्वलद्भुवः वलयं प्रदक्षिणीकृत्य जयाय सृष्टया नीराजनया रराज।

शब्दार्थ—राजघः = राजाओं का हनन करने वाला। सः = वह राजा नल। अनल्पदग्धारिपुर = अनल्प + दग्ध + अरि पुर = अधिक मात्रा में जलाये गये शत्रुओं के नगरों की। उज्ज्वलैः = जली हुई अग्नि से। निज प्रतापैः = अपने प्रतापों के द्वारा। ज्वलद्भुवः = जलती हुई भूमि का। वलयम् = घेरा। दधत् = बनती हुई। प्रदक्षिणीकृत्य = प्रदक्षिणा करके, चारों ओर घूमकर। जयाय = विजय के लिए, विजय के निमित्त। सृष्टया = रची गयी। नीराजनया = आरती के द्वारा। रराज = सुशोभित हुआ।

प्रसंग-सन्दर्भ—नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से अवतरित श्लोक में श्रीहर्ष कवि दिग्विजय के प्रसंग में राजा नल के द्वारा शत्रुनगरों को जलाने का वर्णन कर रहे हैं।

हिन्दी अनुवाद—शत्रु राजाओं का हनन करने वाला वह राजा नल अधिक मात्रा में जलाये गये शत्रुओं के नगरों की जलती हुई अग्नि से अत्यन्त उज्ज्वल अपने प्रतापों के द्वारा जलती हुई धरती की प्रदक्षिणा करके विजय के उपलक्ष्य में बनायी गयी आरती से सुशोभित हुआ।

हिन्दी व्याख्या—राजा नल ने अपनी दिग्विजय सम्बन्धी यात्राओं में अनेक राजाओं का वध किया तथा उनके बहुत से नगरों को जला दिया। शत्रुनगरों में लगी आग के समान ही राजा नल की प्रतापरूपी अग्नि थी। इस प्रकार शत्रु नगरों में लगी आग और अपनी प्रतापरूपी अग्नि से जलती हुई धरती की राजा नल ने प्रदक्षिणा की। दिग्विजय करके लौटे राजा नल के स्वागत में आरती सजायी गयी। राजा नल उस आरती से सुशोभित हुआ। यहाँ राजा को विष्णु का रूप माना गया है अतः लक्ष्मी के द्वारा आरती करना उचित है।

NOTES

संस्कृत व्याख्या—राजघः = शत्रुनृपाणां हन्ता। सः = राजा नलः। अनल्पदग्धारि पुरानलोज्ज्वलैः = अत्यधिकमात्रायां ज्वलितानां शत्रुनगराणाम् अग्निना प्रकाशमयैः। निजप्रतापैः = स्वकीयैः तेजोभिः। ज्वलद् = दग्धतां प्राप्नुवत्। भुवः वलयम् = धरायाः वर्तुलाकारम्। दधत् = धारयन्ती। प्रदक्षिणीकृत्य = प्रदक्षिणां कृत्वा। जयाय = विजयाय। सृष्टया = विरचितया। नीराजनया = आरार्तिव्या। रराज = शोभां प्राप्तवान्।

निवारितास्तेन महीतलेऽखिले

निरीतिभावं गमितेऽतिवृष्टयः।

न तत्यजुर्नूनमन्यसंश्रयाः

प्रतीपभूपालमृगीदृशां दृशः॥ ११॥

अन्वय—अखिले महीतले तेन निरीतिभावं गमिते निवारिताः अतिवृष्टय अनन्यसंश्रयाः प्रतीपभूपालमृगीदृशां दृशः न तत्यजुः नूनम्।

शब्दार्थ—अखिले महीतले = समस्त भूतल पर। निरीतिभावम् = ईतिशून्यता को। गमिते = प्राप्त करा दिये जाने पर। निवारिता = रोकी हुई। अतिवृष्टयः = अतिवृष्टियों ने। अनन्यसंश्रयाः = कहीं अन्यत्र आश्रय को प्राप्त न कर। प्रतीपभूपाल मृगीदृशाम् = शत्रु राजाओं की मृगी सदृश नेत्रों वाली सुन्दरियों के। दृशः = नेत्रों को। न तत्यजुः = नहीं छोड़ा।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से अवतरित प्रस्तुत श्लोक में व्याजोक्ति के माध्यम से नल का प्रभाव वर्णित है।

हिन्दी अनुवाद—अतिवृष्टि आदि छः ईतियों से रहित सम्पूर्ण भूतल पर उस नल के द्वारा रोकी गयी अतिवृष्टियों ने मानो अन्यत्र आश्रय नहीं पाकर शत्रुभूत राजाओं की मृगीसदृश नेत्रों वाली सुन्दरियों के नेत्रों को नहीं छोड़ा।

हिन्दी व्याख्या—राजा के प्रताप का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि राजा नल के राज्य में कहीं भी अतिवृष्टि आदि छः इतियाँ नहीं थीं अर्थात् नल के सम्पूर्ण राज्य में अतिवृष्टि आदि छः विपत्तियों का प्रवेश नहीं हो पाता था। अतः पृथ्वी पर कहीं आश्रय प्राप्त न कर सकने से वे ईतियाँ शत्रु राजाओं की रोती हुई स्त्रियों के नेत्रों में ही आश्रय ग्रहण किया करती थीं। कहने का तात्पर्य है कि राजा नल ने सभी शत्रुओं का पृथ्वी तल से विनाश कर दिया था। अतएव उन सभी की पत्नियाँ उनके शोक में निरन्तर रोया करती थीं। संसार में भी ऐसा देखा जाता है कि किसी के द्वारा निकाला गया व्यक्ति उसके शत्रु के घर में आश्रय प्राप्त करता है। अतः अतिवृष्टि आदि ईतियों का नल के शत्रुओं के यहाँ आश्रय प्राप्त करना उचित ही है।

संस्कृत व्याख्या—तेन = राजा नलेन। समस्ते भूतले निरीतिभावम् = अतिवृष्ट्यादीतिभावराहित्यं प्रापिते सति निवारिताः = स्वराष्ट्रात् निराकृताः, अतिवृष्टयः, अनन्यसंश्रयाः = न विद्यते अन्यः संश्रयः आश्रयः यासां तथाभूताः सत्याः, प्रतीपभूपालमृगीदृशम् = प्रतीपभूपालानाम् शत्रुनृपाणाम् या मृगीदृशः मृगनयनाः कान्ताः तासाम् नेत्राणि न तत्यजुः = त्यक्तवत्यः। नूनम् = इव।

सितांशुवर्णैर्वयति स्म तद्गुणै

महासिवेम्नः सहकृत्वरी बहूम्।

अन्वय—महासिवेम्नः सहकृत्वरी तदभटचातुरी तुरी रणाङ्गणे सितांशुवर्णैः तद्गुणैः दिगङ्गानाङ्गाभरणं बहु यशः पटं वयति स्म ।

शब्दार्थ—महासिवेम्नः = महान् तलवाररूपी करघे की । सहकृत्वरी = सहकारिणी । तदभटचातुरी = उस राजा नल के सैनिकों की चातुरी । सितांशुवर्णैः = चन्द्रमा के समान वर्ण वाले । तद्गुणैः = उस (राजा नल) के गुणों रूपी धागों से । दिगङ्गानाङ्गाभरणम् = दिशारूपी स्त्रियों के अङ्गों में धारण किये जाने योग्य आभूषण के समान । यशः पटम् = यशरूपी वस्त्र को । वयति स्म = बुनती थी ।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से अवतरित प्रस्तुत श्लोक में राजा के द्वारा अपनी वीरता और चतुरता से निरन्तर यश का विस्तार करने का वर्णन किया जा रहा है ।

हिन्दी अनुवाद—उस (नल) के योद्धाओं की चतुरतारूपिणी तथा विशाल तलवाररूपिणी करघे का साथ करने वाली तुरी युद्धक्षेत्र में चन्द्रमा के समान वर्ण वाले उस (नल) के गुणरूपी धागों से दिशारूपी स्त्रियों के अङ्गों में धारण किये जाने योग्य आभूषण के समान यशरूपी वस्त्र को बुनती थी ।

हिन्दी व्याख्या—जिस प्रकार करघे की सहकारिणी तुरी चन्द्रमा के समान सफेद धागे से रमणियों के पहनने के लिए सफेद वस्त्र बुनती है, उसी प्रकार राजा नल के योद्धाओं की चतुरता युद्धक्षेत्र में शत्रुओं का विनाश करके नल के गुणों से दिग्दिगन्त में फैलने वाले यश का निर्माण करती थी । कहने का अभिप्राय यह है कि नल के योद्धाओं की चतुरता से संग्राम में तलवारों के प्रहार से शत्रु मरते थे तो नल का यश दिगन्त तक फैलता था ।

संस्कृत व्याख्या—महासिवेम्नः = विशाल खड्गवायदण्डस्य सहकारिणी तस्य नलस्य । भटाः = सैनिकाः । तेषां चातुरी = नैपुण्यम् एव । तुरी = वेष्टनदण्डः । रणाङ्गणे = युद्धस्थले । सितांशुवर्णैः = चन्द्रसदृशगौरवर्णैः । शुभ्रैः = निर्मलैः वा इतिभावः । तद्गुणैः = तस्य नलस्य गुणैः शौर्यादिभिः तन्तुभिश्च दिगङ्गानाङ्गाभरणम् = दिशः ककुभाः एव अङ्गनाः कामिन्यः तासाम् अङ्गाभरणम् अङ्गाभूषणं । बहुम् = अधिकं । यशः पभूम् यश एवं पटः वसनं तम् वयतिस्म = ततान ।

प्रतीपभूपैरिव किं ततो भिया

विरुद्धधर्मैरपि भेत्तुतोज्झिता ।

अमित्रजिन्मित्रजिदोजसा स यद्

विचारदृक् चारदृग्यवर्तत ॥ १३ ॥

अन्वय—प्रतीपभूपैः इव विरुद्धधर्मैः अपि किम् ततः भिया भेत्तुता उज्झिता यत् सः ओजसा मित्रजित् (अपि) अमित्रजित्, चारदृक् अपि विचारदृक् अवर्तत ।

शब्दार्थ—प्रतीपभूपैः = विरोधी राजाओं के । इव = समान । विरुद्धधर्मैः = विपरीत भावों वाले पदार्थों ने । अपि = भी । किम् = क्या । भेत्तुता = विरोधी भाव, विरुद्धता । भिया = राजा नल के भय से । उज्झिता = त्याग दी । यत् = जो । ओजसा = प्रताप से । मित्रजित् = सूर्य मण्डल को जीतने वाला, सूर्य से अधिक तेजस्वी । अपि = भी । अमित्रजित् = शत्रुओं पर विजय पाने वाला । चारदृक् = गुप्तचरों-रूपी नयनों वाला,

NOTES

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषधमहाकाव्य के प्रथम सर्ग से संगृहीत प्रस्तुत श्लोक में विरोधाभास अलंकार के माध्यम से कवि श्रीहर्ष राजा नल की विशेषताओं का वर्णन कर रहे हैं।

हिन्दी व्याख्या—राजा नल के विरोधी राजाओं के समान विरोधी भावों ने भी क्या राजा नल के भय से भिन्नता त्याग दी है ? क्योंकि वह राजा नल अपने तेज से मित्र अर्थात् सूर्य को जीतने वाला होकर भी अमित्रजित अर्थात् शत्रुओं पर विजय पाने वाला था। इसी प्रकार वह चारदृक् अर्थात् गुप्तचरों द्वारा देखने वाला होकर भी विचारदृक् अर्थात् विचाररूपी नयनों वाला था।

हिन्दी अनुवाद—राजा नल की शक्ति से भयभीत होकर उसके विरोधी राजाओं ने विरोध का भाव त्याग दिया था। कोई भी राजा, नल का विरोधी नहीं रह गया था। कवि कल्पना करता है कि क्या राजा नल के विरोध में राजाओं के समान परस्पर विरुद्ध भावों ने भी विरोध त्याग दिया था। इसका कारण बताता हुआ कवि कहता है कि मित्रजित् और अमित्रजित् परस्पर विरोधी भाव हैं। जो मित्र को जीतने वाला होगा, वह मित्र को न जीतने वाला कैसे हो सकता है ? राजा नल मित्रजित् और अमित्रजित् दोनों था। तात्पर्य यह है कि उसने अपने तेज से सूर्य को और शत्रुओं को जीत लिया था। उसी प्रकार राजा नल में चारदृक् और विचारदृक् के भी विरोधी भाव थे। जो चारदृक् होगा, वह विचारदृक् कैसे हो सकता है ? पर राजा नल ऐसा था। वह चार अर्थात् गुप्तचररूपी दृष्टि वाला था। राजाओं के विषय में कहा गया है—“चारचक्षुषो राजानः।” इसके साथ ही राजा नल विचाररूपी दृष्टि वाला अर्थात् विचार करने के पश्चात् काम करने वाला था।

संस्कृत व्याख्या—प्रतीपभूपैः = विरोधिभिः नृपैः। इव = समानम्। विरुद्धधर्मैः = विपरीतभावानां पदार्थैः। किम् = कथम्। भेत्तृता = विरुद्धता। ततः = नृपस्य नलस्य। भिया = भयेन। उज्झिता = त्यक्ता। यत् = यस्मात् कारणात्। सः = राजा नलः। ओजस = तेजसा। मित्रजित् = सूर्यमण्डलस्य जेता। अमित्रजित् = शत्रूणां विजेता। चारदुक् = गुप्तचररूपिभिः नयनैः युक्तः। विचारदृक् = विचाररूपया दृष्ट्या युक्तः। अवर्तत = आसीत्।

तदोजसस्तद्यशसः स्थिताविमौ,
वृथेति चित्ते कुरुते यदा-यदा।
तनोति भानोः परिवेषकैतवात्,
तदा विधिः कुण्डलानां विधोरपि॥ १४॥

अन्वय—तदोजसः तद्यशसः स्थितौ इमौ वृथा इति विधिः यदा-यदा चित्ते कुरुते, तदा-तदा सः भानोः विधोः च अपि परिवेषकैतवान् कुण्डलानां तनोति।

शब्दार्थ—तदोजसः = उस राजा नल के तेज के। तद् यशसः = उस राजा नल के यश के। स्थितौ = होने पर। इमौ = सूर्य और चन्द्रमा दोनों। वृथा = व्यर्थ हैं। इति = इस प्रकार की भावना। विधिः = ब्रह्माजी। यदा-यदा = जब-जब। चित्ते कुरुते = मन में करते हैं, सोचते हैं। तदा-तदा = तब-तब। सः = ब्रह्माजी। भानोः = सूर्य के। विधोः = चन्द्रमा के। परिवेषकैतवात् = गोला बनाने के बहाने। कुण्डलानाम् तनोति = घेरा बना देते हैं।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष विरचित नैषधमहाकाव्य के प्रथम सर्ग से अवतरित प्रस्तुत श्लोक में कविराज श्रीहर्ष नल के तेज और यश का वर्णन कर रहे हैं।

नैपधीयचरितम् (श्रीहर्ष)

NOTES

हिन्दी अनुवाद—राजा नल के तेज के रहते हुए सूर्य व्यर्थ है और उसके यश के रहते हुए चन्द्रमा व्यर्थ है। इस प्रकार की बात ब्रह्माजी अपने मन में जब-जब सोचते हैं, तब-तब सूर्य और चन्द्र के चारों ओर मण्डल की आकृति बनाने के बहाने घेरा बना देते हैं।

हिन्दी व्याख्या—काव्यशास्त्रियों के अनुसार ओज अथवा तेज का प्रकाश उष्ण है और यश का प्रकाश शीतल है। आकाश में कभी-कभी सूर्य और चन्द्रमा के चारों ओर हल्के प्रकाश का घेरा-सा दिखाई देता है। श्रीहर्ष यह कल्पना करते हैं कि जब-जब ब्रह्माजी सोचते हैं कि राजा नल के तेज के होते हुए सूर्य व्यर्थ है। सूर्य का काम राजा नल का तेज कर रहा है। इसी प्रकार राजा नल के यश के होते हुए चन्द्रमा व्यर्थ है। चन्द्रमा का काम राजा नल का यश कर रहा है। ऐसा सोचकर ब्रह्माजी सूर्य और चन्द्रमा के चारों ओर गोला बना देते हैं। लोक में भी विद्वानों से जो शब्द व्यर्थ या अधिक लिख जाता है, उसके चारों ओर गोला बनाकर यह संकेत करते हैं कि यह शब्द व्यर्थ है।

संस्कृत व्याख्या—तदोजसः = राज्ञः नलस्य तेजसः। तद् यशसः = राज्ञः नलस्य कीर्तिः। स्थितौ = वर्तमानतायाम्। इमौ = सूर्य-चन्द्रौ द्वौ। वृथा इति = व्यर्थो इति। विधिः = विधाता, ब्रह्मा। यदा-यदा = यस्मिन्-यस्मिन् समये। चित्ते करोति = स्वमनसि विचारयति तदा-तदा = तस्मिन्-तस्मिन् समये। भानोः = सूर्यस्य। विधोः = चन्द्रस्य। परिवेश कैतवात् = परिधिमण्डल व्याजयात्। कुण्डलनाम् = निरर्थकता द्योतकम् वर्तुलरेखांकनम्। तनोति = विस्तारयति।

अयं दरिद्रो भवितेति वैधसीं

लिपिं ललाटेऽर्थिजनस्य जाग्रतीम्।

मृषा न चक्रऽल्पित कल्पपादपः

प्रणीय दारिद्र्य-दरिद्रतां नृपः ॥ १५ ॥

अन्वय—अल्पित कल्पपादपः नृपः अर्थिजनस्य ललाटे जाग्रतीम् 'अयं दरिद्रः भविता' इति वैधसीम् लिपिम् दारिद्र्यदरिद्रतां प्रणीय मृषा न चक्रे।

शब्दार्थ—अल्पित कल्पपादपः = कल्प वृक्ष को लघु करने वाला। नृपः = राजा नल। दारिद्र्य-दरिद्रताम् = दरिद्रता की दरिद्रता अर्थात् दरिद्रता का अभाव। प्रणीय = करके। अयम् = यह। दरिद्रः भविता = दरिद्र होने वाला है। इति = इस प्रकार की। अर्थिजनस्य = माँगने वाले लोगों के। ललाटे = माथे पर। जाग्रतीम् = जागती हुई, स्पष्ट प्रतीत होती हुई। वैधसीम् = ब्रह्माजी की। लिपिम् = लिखावट को। मृषा = असत्य। न चक्र = नहीं किया।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषधमहाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में राजा नल के यश और तेज का वर्णन करने के बाद अब उसकी दानवीरता का वर्णन किया जा रहा है।

हिन्दी अनुवाद—कल्प वृक्ष को छोटा बना देने वाला राजा (नल) ने याचकों के ललाट पर स्पष्ट दिखने वाली 'यह दरिद्र होगा' ऐसी ब्रह्मा की लिपि (लेख) को दरिद्रता की दरिद्रता रचकर झूठ नहीं किया अर्थात् मिथ्या नहीं किया।

NOTES

हिन्दी अनुवाद—राजा नल की दानवीरता का वर्णन है। राजा नल दरिद्र याचकों को इतना धन देते थे जितने की वे इच्छा भी नहीं करते थे। अतः अपनी दानशीलता से उन्होंने कल्पवृक्ष को भी तुच्छ बना दिया था, क्योंकि कल्पवृक्ष भी याचित धन ही प्रदान करता है। उनके दान से उन दरिद्र याचकों की निर्धनता दूर हो जाती थी, जिनके मस्तक पर ब्रह्माजी ने लिख दिया है कि 'यह दरिद्र होगा'। इस प्रकार नल ने दरिद्रता को ही दारिद्र्य बनाकर ब्रह्मा जी के लेख को झूठ नहीं होने दिया। इससे न तो नल के राज्य में कोई दरिद्र रहा और न ही ब्रह्मा का लेख ही झूठा हुआ।

राजा नल के राज्य में प्रत्येक व्यक्ति धन-धान्य से परिपूर्ण तथा सुखी था।

संस्कृत व्याख्या—अल्पित कल्पपादपः = स्वल्पीकृत कल्पवृक्षः (निर्जितः इति भावः) नृपः राजा नलः। दारिद्र्य-दारिद्र्यताम् = दारिद्र्यस्य अभावस्य धनाभावस्य वा (निर्धनस्य इत्यभिप्रायः) दरिद्रताम् अभावम् निर्धनतायाः अभावम्। प्रणीय = सम्पाद्य। अयम् = एषः मनुष्यः। दरिद्रो भविताः = निर्धनः भविष्यति। इति = एव प्रकारेण। अर्थिजनस्य = भिक्षुक समूहस्य। ललाटे = मस्तके। जाग्रतीम् = स्पष्टतया दीप्यमानम् लिपिम् = लेखम्। मृषा = मिथ्या। न = नहि। चक्रे = कृतवान्।

विभज्य मेरुं यदर्थिसात्कृतो

न सिन्धुः उत्सर्गजलव्ययैर्मरुः।

अमानि तत्तेन निजायशोयुगं

द्विफालबद्धाश्चिकुराः शिरस्थितम्॥ १६॥

अन्वय—यत् मेरुः विभज्य अर्थिसात् न कृतः, सिन्धुः उत्सर्गजलव्ययैः न मरुः, तत् तेन द्विफालबद्धाः चिकुराः शिरस्थितं निजायशोयुगम् अमानि।

शब्दार्थ—यत् = जो। मेरुः = सुमेरु पर्वत को। विभज्य विभक्त करके। अर्थिसात् = याचकों के अधीन। न कृतः = नहीं किया। सिन्धुः = समुद्र को। उत्सर्गजलव्ययैः = दान देते समय संकल्प जल से। मरुः = निर्जल अथवा मरुस्थल। न कृतः = नहीं बना दिया। द्विफालबद्धाः = दो भागों में विभक्त करके बँधे हुए। चिकुराः = अपने केश समूह को। शिरः स्थितम् = अपने सिर पर स्थित। निजायशोयुगम् = अपने दो अपयश। अमानि = समझा।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषधमहाकाव्य में प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में प्रकारान्तर से राजा नल की दानवीरता का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद—जो मैंने (नल ने) सुमेरु पर्वत को विभक्त करके याचकों के अधीन नहीं किया और दान देते समय संकल्प जल से समुद्र को निर्जल अथवा मरुस्थल नहीं बना दिया। इस प्रकार दो भागों में विभक्त करके बँधे हुए अपने केश समूह को सिर पर दो अपयश स्थित हैं, ऐसा राजा नल ने समझा।

हिन्दी व्याख्या—प्रकारान्तर से राजा नल की दानवीरता का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि याचकों को प्रभूत मात्रा में दान देने के बाद राजा नल अपने मन में सोच रहे हैं कि मैंने स्वर्णराशि के रूप में विद्यमान सुमेरु पर्वत को विभक्त करके याचकों के लिए दान में नहीं दे दिया और दान देते समय पुरोहित द्वारा संकल्प पढ़े जाने के अनन्तर छिड़के जाने वाले जल के रूप में मैंने समुद्र के जल को व्यय करके उसे मरुस्थल नहीं बना दिया। अतः उसके ये दो अपयश हैं जो सिर के दोनों ओर काले-काले बालों के रूप में बँधे हुए लटक रहे हैं।

संस्कृत व्याख्या—यत् = यस्मात् कारणात्। मेरुः = मेरुनामा पर्वतः। विभज्य = विभागं कृत्वा। अर्थिसात् = याचकेभ्यो देयः। न = नहि। कृतः = विहितः। सिन्धुः = सागरः। उत्सर्गजलव्ययैः = दान वारि प्रक्षेपैः। न = नहि। मरु = निर्जल देशः। तत् = तस्मात् कारणात्। तेन = राज्ञा नलेन। द्विफालवद्धा = द्वयो = शिरः पार्श्वयोः रक्षिताः, द्विधा विभक्ता इति भावः। चिकुराः = केशाः। शिरः स्थितम् = स्वमस्तकेधारितम्। निजायशो युगम् = स्वीकीयाऽकीर्ति युगम्। अमानि = विचारितम्।

अजस्रमभ्यासमुपेयुषा समं

मुदैव देवः कविना बुधेन च।

दधौ पटीयान् समयं नयन्नयं

दिनेश्वरश्रीरुदयं दिने दिने।। १७।।

अन्वय—दिनेश्वरश्रीः पटीयान् अयं देवः अजस्रेम् अभ्यासं उपेयुषा कविना बुधेन च समं मुदा एव समयं नयन् दिने दिने उदयं दधौ।

शब्दार्थ—दिनेश्वरश्रीः = सूर्य के समान शोभा वाले। पटीयान् = कार्यकुशल। देवः = राजा, सूर्य। अजस्रम् = निरन्तर। अभ्यासम् = सन्निकटता, अभ्यास। उपेयुषा = प्राप्त करने वाले अथवा प्राप्त किये हुए। कविना = काव्यशास्त्र को जानने वाले पण्डित, शुक्र नामक ग्रह। बुधेन = बुद्धिमान्, विद्वान्, बुध नामक ग्रह। मुदा एव = प्रसन्नता के साथ ही। उदयम् = उन्नति को। नयन् = बिताते हुए। दधौ = धारण करता था।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में राजा नल द्वारा अपना समय कवि और विद्वानों के साथ बिताये जाने का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद—बुद्धिमान्, सूर्य के समान तेजस्वी राजा नल निरन्तर अभ्यास करने वाले कवि तथा पण्डित (काव्य रचयिता तथा व्याकरणज्ञाता) के साथ हर्षपूर्वक समय को व्यतीत करते हुए प्रतिदिन समृद्धि को उस प्रकार प्राप्त कर रहे थे, जिस प्रकार निरन्तर समीप में स्थित शुक्र तथा बुध नामक ग्रहद्वय के साथ समय को व्यतीत करते हुए तेजस्वी सूर्य प्रतिदिन उदय को प्राप्त करते हैं।

हिन्दी व्याख्या—जिस प्रकार दिन में ईश्वर के सदृश कान्ति को धारण करने वाले अन्धकार को दूर करने में समर्थ सूर्यदेव निरन्तर समीप में रहने वाले शुक्र और बुध इन दो ग्रहों के साथ प्रतिदिन उदय को प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार सूर्य की कान्ति के समान कान्ति को धारण करने वाला अर्थात् तेजस्वी और अपने विरोधी अथवा विपक्षी राजाओं को नीचा दिखाने में पूर्णतया समर्थ राजा नल सदैव अपने-अपने विषय का अभ्यास करने वाले तथा समीप में विद्यमान रहने वाले काव्यशास्त्र के ज्ञाता विद्वानों के साथ प्रसन्नतापूर्वक समय को व्यतीत करते हुए प्रतिदिन उन्नति को धारण किया करते थे।

संस्कृत व्याख्या—दिनेश्वरश्रीः = दिनेश्वरस्येव श्रीर्यस्य, अन्यत्र दिने ईश्वरस्येवश्रीः। पटीयान् = बुद्धिमान् यद्वा तेजस्वी। अयम् = एषः, देवः = सूर्यः राजा वा, अजस्रम् = सततम् निरन्तर वा। अभ्यासम् = सान्निध्यम्। उपेयुषा = प्राप्तवता। कविना = काव्यशास्त्रविदापण्डितेन-शुक्रेण वा। बुधेन च = विदुषा-धर्मशास्त्रदिदर्शिना-इतिभावः। सौम्येन च समम् = सार्धम्। मुदा एव = आनन्देन एव-न तु दुःखेन-इति, एव, इत्यस्यार्थः। समयं नयन् अतिवाहयन्। दिने-दिने = प्रतिदिनम्। उदयम् = उन्नतिम् आविर्भावञ्च। दधौ = धृतवान्।

NOTES

अन्वय—कमलप्रवालयोः अधोविधानात् अखिलक्षमाभुजां शिरस्सु दानात् “इदं पुरा ऊर्ध्वं भविता” इति वेधसा अस्य पदं किं ऊर्ध्वरेखया अङ्कितम् ?

शब्दार्थ—कमलप्रवालयोः = कमल तथा प्रवाल को। अधोविधानात् = नीचा करने से या सौन्दर्य के द्वारा तिरस्कृत करने से। अखिलक्षमाभुजाम् = सम्पूर्ण राजाओं के। शिरस्सुदानात् = शिर पर रखे जाने से। इदं पुरा ऊर्ध्वं भवति = यह आगे चलकर ऊँचा होगा। वेधसा = ब्रह्मा ने। अस्य पदम् = राजा नल के चरण को। ऊर्ध्वरेखया = ऊर्ध्वगामिनी रेखा से। अङ्कितम् = चिह्नित कर दिया है।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से अवतरित प्रस्तुत श्लोक में नल के शारीरिक वर्णन के प्रसंग में सामुद्रिक शुभ लक्षणों का उल्लेख किया गया है।

हिन्दी अनुवाद—यह नल कमल तथा प्रवाल को नीचा करने से या सौन्दर्य के द्वारा तिरस्कृत करने से और समस्त राजाओं के शिर पर रखे जाने से यह आगे चलकर उन्नत होगा, ऐसा विचार कर ब्रह्माजी ने इस (राजा) के चरण को जन्मकाल से पहले ऊर्ध्वगामिनी रेखा से चिह्नित कर दिया है क्या ?

हिन्दी व्याख्या—महाकवि श्रीहर्ष द्वारा राजा नल के सामुद्रिक लक्षणों का वर्णन किया गया है, क्योंकि नल के चरण में सामुद्रिक लक्षण के अनुसार ऊपर की ओर गमन करने वाली शुभसूचक रेखाएँ थीं। सामुद्रिक शास्त्र में कहा गया है कि जिसके चरण में ऊर्ध्व रेखा हुआ करती है, वह सर्वोत्तम व्यक्ति हुआ करता है। राजा नल का पैर कमल से तथा मूँगे से भी अधिक लाल था, अतः उसने अपनी शोभा से इन दोनों को जीत लिया था। सभी राजा नल के चरणों में नतमस्तक होते थे। अतः इसका पैर सभी राजाओं के सिर पर होता था। मानो ब्रह्मा जी ने यह सोचकर कि इसका पैर सभी के ऊपर या सर्वोत्कृष्ट होगा, ऊर्ध्वरेखा से चिह्नित कर दिया था।

संस्कृत व्याख्या—कमल प्रवालयोः = पद्मपल्लवप्रवालयोः कर्मभूतयोः अधो-विधानात् = अधः करणात् न्यक्करणात् इति यावत् तथा अखिलानां सर्वेषां क्षमाभुजां प्रतिकूलवर्तिनां राज्ञां शिरःसुदानात् विधानात् इदम् अस्य नलस्य पदम् = चरणः ऊर्ध्वम् = उपरि उत्कृष्टं वा भवति = भविष्यतीत्यर्थः इति = इदं मत्वा इतिशेषः वेधसा = विधात्रा ब्रह्मणा अस्य नलस्य पदं = चरणम् ऊर्ध्वरेखया = अंकितं किं = चिह्नितं किम् ?

जगज्जयं तेन च कोशमक्षयं

प्रणीतवान् शैशवशेषवानयम्।

सखा रतीशस्य ऋतुर्यथा वनं

वपुस्तथाऽऽलिङ्गदथास्य यौवनम् ॥ १९ ॥

अन्वय—शैशवशेषवान् अयं जगज्जयं तेन च कोशम् अक्षयं प्रणीतवान्। अथ च यथा रतीशस्य सखा ऋतुः वनं तथा यौवनम् अस्य वपुः आलिङ्गत।

NOTES

शब्दार्थ—शैशवशेषवान् = बाल्यावस्था पूर्ण है जिसकी। अयम् = इस राजा नल। आदौ = प्रारम्भ में, पहले। जगज्जयम् = संसार की विजय। प्रणीतवान् = की। ततश्च = इसके बाद। तेन एव = उतने ही। कोशम् = खजाने की। अक्षयम् = समाप्त न होने वाला। प्रणीतवान् = बनाया। अथ च = और इसके बाद। यथा = जिस प्रकार। रतीशस्य = कामदेव का। सखा = मित्र। ऋतुः = बसन्त ऋतु। वनम् = वन को। तथा = उसी प्रकार। अस्य = इसके। वपुः = शरीर को। यौवनम् = यौवन ने। आलिङ्गत् = आलिङ्गन किया।

प्रसंग—सन्दर्भ—श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में नल की युवावस्था के आगमन का वर्णन किया जा रहा है।

हिन्दी अनुवाद—जिसकी कुछ बाल्यावस्था समाप्त हो गयी थी, ऐसे राजा नल ने सम्पूर्ण जगत् को जीत लिया और अपने कोश को समाप्त न होने वाला बना दिया। तदनन्तर जिस प्रकार कामदेव का मित्र वसन्त ऋतु वन का आलिङ्गन करता है, उसी प्रकार युवावस्था ने भी राजा नल के शरीर का आलिङ्गन किया।

हिन्दी व्याख्या—बाल्यावस्था पूरी होते-होते ही राजा नल ने संसार पर विजय प्राप्त करके अपने राज्य को शत्रुरहित बना दिया और उस विजय से अक्षय कोश स्थापित किया अर्थात् उसका कोश धन से परिपूर्ण हो गया। वस्तुतः विश्व-विजय करना ही नल का प्रधान उद्देश्य था। कोश की पूर्ति तो आनुषंगिक उद्देश्य था, क्योंकि उसकी दानवीरता और अक्षय कोश का वर्णन तो पहले ही किया जा चुका है। इसके बाद जिस प्रकार बसन्त ऋतु के आगमन से वन का सौन्दर्य अत्युत्तम रूप से प्रस्फुटित हो जाया करता है, उसी प्रकार यौवन के आगमन से नल का शरीर अतिशय सौन्दर्य से पूरित हो उठा।

संस्कृत व्याख्या—शैशवशेषवान् = समाप्त बाल-भावः। अयम् = असौ नलः। आदौ = प्रारम्भे। जगज्जयम् = विश्वविजयम्। प्रणीतवान् = कृतवान्। अथ च = तदनन्तरम्। यथा = येन प्रकारेण। रतीशस्य = कामदेवस्य। ऋतुः = वसन्त ऋतुः, वनम्। आलिङ्गति = आलिङ्गनम् करोति। तथा तेनैव प्रकारेण यौवनम् = तारुण्यम्। अस्य = नलस्य। वपुः = शरीरम्। आलिङ्गत् = आलिङ्गतवान्।

अधारि पद्मेषु तदङ्घ्रिणा घृणा,

क्व तच्छयच्छायलवोऽपि पल्लवे।

तदास्य दास्येऽपि गतोऽधिकारितां,

न शारदः पार्विकशर्वरीश्वरः॥ २०॥

अन्वय—तदङ्घ्रिणा पद्मेषु घृणा अधारि, पल्लवे तच्छयच्छाय लवः अपि विद्यते क्व ? शारदः पार्विकशर्वरीश्वरः तदास्य दास्ये अपि अधिकारितां न गतः।

शब्दार्थ—तदङ्घ्रिणा = उसके अर्थात् राजा नल के चरण ने। पद्मेषु = कमलों पर, कमलों के प्रति। घृणा = अवज्ञा। अधारि = धारण की। पल्लवे = नवीन किसलय में। तच्छयच्छाय लवः अपि = नल के हाथों की शोभा का अंश भी। विद्यते क्व = नहीं है। शारदः = शरद् ऋतु का। पार्विक शर्वरीश्वरः = पूर्णिमा का चन्द्रमा। तदास्य = राजा नल के मुख की। दास्येऽपि = सेवा में भी, सेवा की भी। अधिकारिताम् = अधिकार को। न गतः = प्राप्त नहीं कर सका।

प्रसंग—सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से अवतरित प्रस्तुत श्लोक में कविराज श्रीहर्ष राजा नल के चरण और हाथ की शोभा का वर्णन कर रहे हैं।

हिन्दी अनुवाद—उस राजा नल के चरणों ने कमलों के प्रति घृणा का भाव धारण किया। किसलयों में राजा नल के हाथ की सुन्दरता का अल्प अंश भी नहीं था। शरद् ऋतु की पूर्णिमा का चन्द्रमा राजा नल के मुख की सेवा का अधिकारी नहीं था।

NOTES

हिन्दी व्याख्या—चरणों की उपमा कमल से, हाथों की पल्लव से और मुख की चन्द्रमा से दी जाती है। शरद् ऋतु का चन्द्रमा सबसे अधिक प्रकाशवान् होता है। कवि श्रीहर्ष का तात्पर्य यह है कि राजा नल के चरण कमल से अधिक सुन्दर, हाथ नव पल्लव से अधिक कोमल और मुख शरद् ऋतु की पूर्णिमा के चन्द्रमा से भी कहीं अधिक आकर्षक था।

संस्कृत व्याख्या—तदंघ्रिणा = राज्ञः नलस्य चरणेन। पद्मेषु = कमलेषु। घृणा = जुगुप्सा। अधारिः = धारिता, कृता नल चरणापेक्षया कमलानां निकृष्टत्वादिति भावः। पल्लवे = किसलये। तच्छयच्छायलवः अपि = नलस्य करस्य कान्तेः अल्पांशः अपि। क्व अस्तिः नास्तीति भावः। शारदः = शरदि ऋतौ भवः, अतिशयेन निर्मलः। पार्विक शर्वरीश्वरः = पूर्णिमायाः रजन्याः स्वामी चन्द्रः। तदास्य = तस्य नलस्य मुखस्य। दास्ये अपि = सेवा कार्ये अपि। अधिकारिताम् = सेवा योग्यताम्। न गतः = न प्राप्तवान्।

किमस्य रोम्णां कपटेन कोटिभि

विधिर्न रेखाभिरजीगणद् गुणान्।

न रोमकूपौघमिषाज्जगत्कृता

कृताश्च किं दूषणशून्यविन्दवः॥ २१॥

अन्वय—किं विधिः अस्य रोम्णां कपटेन कोटिभिः रेखाभिः (अस्य) गुणान् न अजीगणत् ? किं च जगत्कृता रोमकूपौघमिषाद् (अत्र) दूषणशून्यविन्दवः न कृताः ?

शब्दार्थ—किम् = क्या। विधिः = ब्रह्माजी ने। अस्य = इस राजा नल के। रोम्णाम् = रोमों के। कपटेन = कपट से, बहाने से। कोटिभिः = करोड़ों। रेखाभिः = रेखाओं द्वारा। गुणान् = गुणों को। अजीगणत् = गिना है। किं च = और क्या। जगत्कृता = संसार को बनाने वाले ब्रह्माजी ने। रोमकूपौघमिषात् = रोमकूपों के बहाने। अत्र = यहाँ। दूषण शून्य विन्दवः = दोषरूपी शून्य की बिन्दियाँ। न कृता = नहीं बनायी हैं।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में राजा नल के गुणों की अगणितता तथा दोषों की शून्यता का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद—क्या ब्रह्माजी ने इस राजा नल के गुणों को रोमों के बहाने से करोड़ों रेखाओं द्वारा क्या बार-बार नहीं गिना है अर्थात् अवश्य गिना है और क्या संसार की रचना करने वाले ब्रह्मा जी ने राजा नल के करोड़ों रोमकूपों के बहाने दोषों के शून्य के बिन्दु नहीं लगाये हैं ?

हिन्दी व्याख्या—राजा नल के शरीर में करोड़ों रोम और रोमकूप हैं। रोम खड़े हुए पतले बाल होते हैं और रोमकूल छोटे गोल छिद्र होते हैं। प्राचीन काल में गणना करने वाले खड़ी रेखाएँ खींचते जाते थे। बाद में उनको गिन लेते थे। जो भाव या वस्तु नहीं होती थी, उसके लिए शून्य लगाते जाते थे। कवि ने कल्पना की है कि ब्रह्मा जी ने राजा नल के रोमों के रूप में खड़ी रेखाएँ बनाकर इसके गुणों की गणना की है और दोषों के अभाव का

संकेत करने के लिए रोमकूपरूपी शून्य बनाये हैं। तात्पर्य यह है कि राजा नल में करोड़ों गुण थे और एक भी दोष नहीं था।

नैपथीयचरितम् (श्रीहर्ष)

NOTES

संस्कृत व्याख्या—किम् विधिः = किं ब्रह्मा। अस्य = राज्ञः नलस्य। रोम्णाम् = लोम्णाम्। कपटेन = व्याजेन। कोटिभिः = कोटि-संख्याभिः। रेखाभिः = लेखाभिः। गुणान् शौर्यादीन्। न = नहि। अजीगणत् = पुनः पुनः गणनां कृतवान्। जगत्कृता = विश्वस्य रचयित्रा ह्यणा। रोमकूपौधमिषात् = लोम लघुछिद्राणां छलेन। दूषणशून्य बिन्दवः = दोषाणाम् अभावस्य ज्ञापक चिह्नीभूताः वर्तुल रेखाः। कृताः = विहिताः।

अमुष्य दोर्भ्यामरिदुर्गलुण्ठने

ध्रुवं गृहीतार्गलदीर्घपीनता।

उरः श्रिया तत्र च गोपुरस्फुरत्

कपाटदुर्धर्षतिरः प्रसारिता।। २२।।

अन्वय—अमुष्य दोर्भ्या अरिदुर्गलुण्ठने अर्गलदीर्घपीनता उरः श्रियः च तत्र गोपुरस्फुरत्कपाटदुर्धर्षतिरः प्रसारिता गृहीता ध्रुवम्।

शब्दार्थ—अमुष्य = इस (नल) की। दोर्भ्याम् = भुजाओं के द्वारा। अरिदुर्गलुण्ठने = शत्रु के किलों को लूटने में। अर्गलदीर्घपीनता = अर्गला की लम्बाई और मोटाई। उरः श्रियः = वक्षस्थल की शोभा ने। गृहीता ध्रुवम् = प्राप्त कर लिया।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में राजा नल की भुजाओं की लम्बाई तथा उनके वक्षस्थल की विशालता तथा कठोरता का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद—इस (राजा नल) की दोनों भुजाओं के द्वारा शत्रुओं के किलों को लूटने में मानो अर्गला (किवाड़ों को बन्द करने के बाद एक ओर से दूसरी ओर तक लगाई जाने वाली मोटी लकड़ी) की विशालता तथा स्थूलता को प्राप्त कर लिया गया तथा वक्षःस्थल की शोभा ने मानो नगर के द्वार पर स्फुटित होने वाले किवाड़ की कठोरता और विशालता को प्राप्त कर लिया।

हिन्दी व्याख्या—प्रस्तुत वर्णन से राजा नल का आजानुबाहु एवं विशाल वक्षःस्थल वाला होना ध्वनित हो रहा है, क्योंकि राजा नल की दोनों भुजाओं ने शत्रु के किलों को लूटने, तोड़ने में मानो अर्गला की विशालता तथा स्थूलता को प्राप्त कर लिया था। इतना ही नहीं, राजा नल के वक्षःस्थल की शोभा ने शत्रु-नगर द्वार पर लगे किवाड़ों की शोभा को भी हीन कर दिया था अर्थात् नल की छाती इतनी चौड़ी और कठोर थी जो शत्रु-नगर के द्वार पर लगे किवाड़ों जैसी प्रतीत हो रही थी।

संस्कृत व्याख्या—अमुष्य = राज्ञः नलस्य, दोर्भ्यां = बाहुभ्यां भुजाभ्याम्। वा अरिदुर्गलुण्ठने = शत्रुदुर्गभञ्जने, शत्रुदुर्गमस्थलबलात्कारग्रहणे। अर्गलदीर्घपीनता = अर्गलस्य कपाटविष्कम्भदारोः विशेषस्य। दीर्घं च पीनं च तयोः भावः दीर्घपीनता आयतपीवरत्वमित्यर्थः। उरसः वक्षसः श्रिया लक्ष्म्या च वत्र अरिदुर्गभञ्जने गोपुरेषु पुरद्वारेषु स्फुरतां राजतां कपाटानां दुर्धर्षता कठिनता तिरः प्रसारिता गृहीता = अवलम्बिता। ध्रुवम् = नु किं वेति भावः। राजा नलः दीर्घबाहुः कपाटवक्षाश्च आसीदिति भावः।

NOTES

अन्वय—स्वकेलिलेशस्मितनिर्जितेन्दुनः निजांशदृक्कर्तृजित पद्मसम्पदः। तन्मुखस्य प्रतिमा अतद्व्ययिजित्वरसुन्दरान्तरे चराचरे न।

शब्दार्थ—स्वकेलि लेशस्मितनिर्जितेन्दुनः = अपने क्रीड़ा-विलास की लेशमात्र मुस्कान से चन्द्रमा को तिरस्कृत करने वाले के। निजांशदृक्कर्तृजित पद्मसम्पदः = अपने एक अंग की सुन्दरतापूर्ण देखने की शैली से कमलों के पूर्ण शोभा समूह को तुच्छ सिद्ध कर देने वाले के। तन्मुखस्य = उस राजा नल के मुख की। अतद्व्ययिजित्वर = उन दोनों को पराजित करने में समर्थ सुन्दर पदार्थों के अभाव वाले। सुन्दरान्तरे = सुन्दरों के मध्य। चराचरे = चर और अचर विश्व में। प्रतिमा न = समानता नहीं है।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में नल के अनुपम मुख-सौन्दर्य का वर्णन किया जा रहा है।

हिन्दी अनुवाद—अपनी क्रीड़ा के लेशमात्र मन्दहास (मुस्कराहट) से चन्द्रमा को निन्दित करने वाले तथा अपने अवयव बने हुए नेत्र से कमल की शोभा को जीतने वाले नल के मुख की उपमा उन दोनों (कमल और चन्द्रमा) की शोभा को जीतने वाली किसी दूसरी वस्तु से शून्य संसार में नहीं थी।

हिन्दी व्याख्या—नल के उस मुख ने अपनी क्रीड़ापूर्वक मन्द मुस्कराहट से चन्द्रमा को जीत लिया था और उसके मुख के केवल एक अवयव नेत्र ने अपनी शोभा से कमल की शोभा को जीत लिया था। इस प्रकार नल के मुख ने चन्द्रमा और कमल दोनों की शोभा को जीत लिया था। अतः उसकी उपमा संसार-भर में कोई नहीं थी, क्योंकि संसार में चन्द्रमा और कमल सबसे सुन्दर पदार्थ हैं। इनसे सुन्दर संसार में दूसरी कोई वस्तु नहीं है जो चन्द्रमा और कमल पर विजय प्राप्त करने वाली हो। ये दोनों नल के मुख से पराजित हो चुके थे। अतः संसार में नल के मुख के उपमान का अभाव हो गया था। उपमेय की उपेक्षा उपमान के अधिक श्रेष्ठ होने पर ही उपमा दी जाती है। अतः नल का मुख अनुपम था।

संस्कृत व्याख्या—स्वकेलिलेशस्मित निन्दितेन्दुनः = निजक्रीडायाः लेशमात्रेण मन्दहासितेन पराभूतचन्द्रस्य। निजांशदृक्कर्तृजित पद्मसम्पदः = निजः स्वकीयः अंशः भागः तद्रूपे ये दृशौ नेत्रे ताभ्यां तर्जिता निर्भर्त्सिता पद्मानां कमलानां सम्पत् सौभाग्यं समूहो वा येन तादृशस्य तन्मुखस्य = तदाननस्य। अतद्व्ययि जित्वर सुन्दरान्तरे = सुन्दरवस्तुषु तौ जेतुम् असमर्थे। चराचरे = स्थावर जंगमात्मके संसारे। प्रतिमा = समानता कारकः। नास्ति = न विद्यते।

सरोरुहं तस्य दृशैव तर्जितं

जिताः स्मितेनैव विधोरपि श्रियः।

कुतः परं भव्यमहो महीयसी

तदाननस्योपमितौ दरिद्रता।। २४।।

अन्वय—तस्य दृशैव सरोरुहं निर्जितम्, स्मितेनैव विधोः श्रियः अपि जिताः। परं भव्यं कुतः? अहो तदाननस्य उपमितौ महीयसी दरिद्रता।

नैषधीयचरितम् (श्रीहर्ष)

NOTES

शब्दार्थ—तस्य = उसके, नल के। दृशैव = नेत्र के द्वारा ही। निर्जितम् = जीते हुए, पराजित। सरोरुहम् = कमल को। स्मितेनैव = मुस्कराहट से ही। विधोः = चन्द्रमा की। श्रियः = लक्ष्मी। जिताः = जीत ली गई हैं। परम् = इनसे बढ़कर। कुतः = कहाँ है। अहो = आश्चर्य है। तदाननस्य = उसके मुख की। उपमितौ = उपमा में। महीयसी = बड़ी। दरिद्रता = कमी।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से अवतरित प्रस्तुत श्लोक में भी मुख कमल की शोभा वर्णित है।

हिन्दी अनुवाद—उस नल के नेत्रों के द्वारा ही कमल जीत लिया गया है और उसके मन्दहास्य के द्वारा ही चन्द्रमा की शोभा भी जीत ली गयी है। इनसे अधिक और सुन्दर वस्तु कहाँ है ? आश्चर्य की बात है कि नल के मुख की उपमा का अत्यधिक अभाव है।

हिन्दी व्याख्या—राजा नल ने अपने नेत्रों से कमल को जीत लिया है अर्थात् नेत्र कमल से अधिक सुन्दर हैं। अपनी मुस्कराहट से चन्द्रमा की शोभा को जीत लिया है अर्थात् मुस्कराहट से जो दन्तांशु निकलती हैं, वे चन्द्रमा की किरणों से अधिक सुन्दर हैं। अतः चन्द्रमा भी उनके सामने तुच्छ है। इस प्रकार संसार की दोनों सुन्दर वस्तुएँ नल के मुख द्वारा जीत ली गयी हैं। अतः संसार में ऐसी कोई सुन्दर वस्तु नहीं है, जिससे नल के मुख की उपमा दी जा सके। यह कितने आश्चर्य की बात है कि ब्रह्मा की इतनी बड़ी सृष्टि में नल के मुख के उपमान का अभाव हो गया है।

संस्कृत व्याख्या—तस्य = नलमुखस्य। दृशैव = नेत्रेण एव। सरोरुहम् = कमलम्। तर्जितम् = निर्भत्सितम्। विधोः = चन्द्रस्य। श्रियः = शोभाः। स्मितेन = मन्दहास्येन। जिताः = विजिताः। आभ्याम् = सरोरुहबिभुभ्याम्। परम् = अन्यत्। भव्यम् = सुन्दरम्। कुतः कस्मात् उपलभ्येतेति शेषः। अहो = आश्चर्यम्। तदाननस्य = नलमुखस्य। उपमितौ = तुलनायाम्। महीयसी = अतिमहती। दरिद्रता = न्यूनता। सर्वथा निरुपमं नलमुखमिति भावः।

स्वबालभारस्य तदुत्तमाङ्गजैः

समं चमर्येव तुलाभिलाषिणः।

अनागसे शंसति बालचापलं

पुनः पुनः पुच्छविलोलनच्छलात्॥ २५॥

अन्वय—चमरी स्वयमेव तदुत्तमाङ्गजैः तुलाभिलाषिणः स्वबालभारस्य अनागसे पुनः पुनः पुच्छविलोलनच्छलात् बालचापलं शंसति।

शब्दार्थ—चमरी = चमरी नामक मृगी विशेष। स्वयमेव = अपने आप ही। तदुत्तमाङ्गजैः = उस (नल) के बालों के साथ। तुलाभिलाषिणः = तुलना की अभिलाषा करने वाले। स्वबालभारस्य = अपने बालों के समूह की। अनागसे = अपराधविहीनता बतलाने के लिए। पुच्छविलोलनच्छलात् = पूँछ हिलाने के बहाने से। बालचापलम् = बालों की चंचलता। शंसति = प्रकट करती है।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषधमहाकाव्य के प्रथम सर्ग से अवतरित प्रस्तुत श्लोक में चमरी के केशों से भी अधिक सुन्दर तथा कोमल राजा नल के बालों का वर्णन किया गया है।

NOTES

हिन्दी अनुवाद—चमरी नामक मृगी विशेष अपने आप ही उस राजा नल के केशों के साथ समानता करने की इच्छा रखने वाले अपने बालों के समूह की अपराधविहीनता बतलाने के लिए बार-बार पूँछ हिलाने के बहाने से बालों की सुलभ चंचलता को ही कहती है।

हिन्दी व्याख्या—चमरी नामक मृगी विशेष के बाल अर्थात् केश उस राजा नल के केशों के साथ समानता करना चाहते थे, किन्तु तुच्छ होकर श्रेष्ठ नल-शिरस्थ बाल के साथ समता करना उनका बड़ा अपराध है। इसलिए मृगी अपनी पूँछ को हिलाकर राजा नल से मानो कह रही है कि उनके बालों ने नल के केशों से समानता करने की इच्छा करके जो धृष्टता की है, वह उनकी शिशु-सुलभ चपलता ही है, उसे क्षमा कर दिया जाय। बाल सुलभ चपलता करने पर उसका अपराध नहीं मानना चाहिए। लोक में भी बच्चे के अपराध करने पर उसकी माता बच्चे की चपलता कहकर उसके अपराध को क्षमा करने के लिए प्रार्थना करती है। नल के मस्तक के केश चमरी नामक मृगी विशेष के केश-समूह से भी सुन्दर एवं कोमल थे। उनकी समानता में चमरी मृग के केश आते ही न थे।

संस्कृत व्याख्या—चमरी = मृगी विशेषाः, स्वयमेव। तदुत्तमाङ्गजैः = तस्य नलस्य उत्तमाङ्गजैः केशैः शिरोरुहैः वा तुलाभिलाषिणः = साम्यकामिनः। स्वबालभारस्य = स्वस्य आत्मनः बालाः केशाः तेषां भारः समूहः तस्य। अनागसे = अनपराधाय अपराधाभवाय भूयो भूयः। पुच्छविलोलनच्छलात् = पुच्छस्य लाङ्गलस्य विलोलनं विचालनम् एव छलं = व्याजः तस्मात्। बालचावलं = रोमचाञ्चल्यम् अथ च शिशुचापल्यं। शंसति = कथयति। बालचापल्यं सोढव्यमिति धियेति भावः।

महीभृतस्तस्य च मन्मथश्रिया

निजस्य चित्तस्य च तं प्रतीच्छया।

द्विधा नृपे तत्र जगत्त्रयीभुवां

नतभ्रुवां मन्मथ विभ्रमोऽभवत्॥ २६॥

अन्वय—तस्य महीभृतः मन्मथश्रिया तं प्रति निजस्य चित्तस्य इच्छया च तत्र नृपे जगत्त्रयीभुवां नतभ्रुवां द्विधा ॥ मन्मथविभ्रमः अभवत्।

शब्दार्थ—महीभृतः = राजा नल की। मन्मथश्रिया = कामदेव के समान कान्ति के कारण। तं प्रति = उसके विषय में। निजस्य चित्तस्य = अपने चित्त की। इच्छया = अभिलाषा के कारण। तत्र नृपे = उस राजा नल के विषय में। जगत्त्रयीभुवाम् = तीनों लोकों में उत्पन्न होने वाली। नतभ्रुवां = सुन्दरियों को। द्विधा = दो प्रकार का। मन्मथविभ्रमः = कामविभ्रम। अभवत् = हुआ।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में कामदेव के समान सुन्दर राजा नल को सुन्दरियों द्वारा चाहे जाने का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद—उस राजा नल की कामदेव के समान कान्ति के कारण उस नल के विषय में अपने चित्त की अभिलाषा होने के कारण तीनों लोकों में उत्पन्न होने वाली सुन्दरियों को दो प्रकार का विभ्रम (विशिष्ट भ्रान्ति, पक्षान्तर-विलास) हुआ।

हिन्दी व्याख्या—राजा नल कामदेव के समान सुन्दर थे। इसलिए तीनों लोकों में निवास करने वाली स्त्रियाँ राजा नल के प्रति आसक्ति रखती थीं। उनकी सुन्दरता देखकर उन स्त्रियों में दो प्रकार का विभ्रम हुआ—(१) यह कामदेव है, ऐसा विशिष्ट भ्रम हुआ तथा (२) उनके प्रति कामाभिलाषा होने से कटाक्षादिरूप विलास हुआ।

यहाँ यह आशंका होती है कि तीनों लोकों में पतिव्रता स्त्रियाँ नहीं थीं, क्योंकि पतिव्रताओं के हृदयों में कामाभिलाषा का उत्पन्न होना संभव नहीं है। अतः यह अर्थ कर देना समीचीन जान पड़ता है कि लोकत्रयोत्पन्न सुन्दरियों को कामदेवकान्ति से ही उस राजा नल में कामदेव का विशिष्ट भ्रम हुआ तथा पतिव्रताओं के अतिरिक्त स्त्रियों के चित्त में नल के प्रति कामाभिलाषा होने से विलास हुआ। ऐसा अर्थ कर देने से दोष का निराकरण करना चाहिए।

संस्कृत व्याख्या—तस्य = प्रसिद्धस्य। महीभूतः = राज्ञः नलस्य। मन्मथश्रिया = मन्मथस्य कामस्य सदृशा श्रीः कान्तिः तथा। तम् = नलम् प्रति। निजस्य चित्तस्य = स्वस्य मनसः इच्छया च = स्पृहया च। तत्र नृपे = तस्मिन् राजनि नले। जगत्त्रयीभुवाम् = त्रिलोक समुत्पन्नानां। नतभ्रुवां = सुन्दरीणाम् कामिनीनां द्विध = द्विप्रकारेण। मन्मथविभ्रमः = अयं ममश्च इति विशिष्टा भ्रान्ति = कामावेशश्च अभवत् जातः।

निमीलनभ्रंशजुषादृशा भृशं

निपीय तं यस्त्रिदशीभीरर्जितः।

अमूस्तमभ्यासभरं विवृण्वते।

निमेषनिःस्वैरधुनापि लोचनैः॥ २७॥

अन्वय—त्रिदशीभिः निमीलनभ्रंशजुषा दृशा तं भृशं निपीय यः अर्जितः, तम् अभ्यासभरम् अमूः अधुनापि निमेषनिःस्वैः लोचनैः विवृण्वते।

शब्दार्थ—त्रिदशीभिः = देवांगनाओं ने। निमीलनम् = निमेष। भ्रंश जुषा = निमीलनरहित से। दृशा = दृष्टि से, आँख से। तम् = उस नल को। भृशम् = अधिक मात्रा में। निपीय = पीकर, देखकर। अभ्यासभरः अर्जितः = पर्याप्त अभ्यास कर लिया था। अमूः = ये देवांगनाएँ। निमेष निःस्वै लोचनैः = निर्निमेष नयनों से। अधुना अपि = इस समय भी। अभ्यासभरम् = उस अधिक अभ्यास को। विवृण्वते = प्रकाशित करती है।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत इस श्लोक में राजा नल के रूपलावण्य से आकृष्ट देवकामिनियों का काम विभ्रम प्रस्तुत किया जा रहा है।

हिन्दी अनुवाद—देवताओं की स्त्रियों ने निमेष-रहित दृष्टि से उस (नल) को अच्छी तरह से तृष्णा के साथ देखकर जिस अतिशय अभ्यास को प्राप्त किया था, वे देवाङ्गनाएँ उस अभ्यासाधिक्य को आज भी (अपने) निमेष रहित नेत्रों से प्रकट करती हैं।

हिन्दी व्याख्या—देव-योनि में निमेष का अभाव माना जाता है। निमेष नेत्रों के पलकों के गिरने और उठने को कहते हैं। देवाङ्गनाओं में निर्निमेषता स्वभावसिद्ध है। कवि ने उसको प्रकारान्तर से कहा है। देवाङ्गनाएँ अतिप्रिय नल को निमेष-रहित दृष्टि से अतिकाल तक देखती रही हैं। इस कारण निर्निमेषता का उनका जो अभ्यास था, उस अभ्यासाधिक्य को ही अब भी वे अपने निमेष-रहित नेत्रों से प्रकट कर रही हैं। लोक में भी

किसी अतिप्रिय वस्तु को लोग बिना पलक गिराये अर्थात् निर्निमेष दृष्टि से देखते हैं और किसी कार्य का अधिक अभ्यास करने के बाद वह स्वभाव बन जाता है।

NOTES

संस्कृत व्याख्या—त्रिदशीभिः = देवांगनाभिः। निमीलनभ्रंशजुषा = पलसंकोचरहितेन नयनेन। तम् = राजानं नलम्। भृशम् = अतिमात्रम्। निपीय = सतृष्णं दृष्ट्वा। यः अभ्यासभरः = अधिकाभ्यासः। अर्जितः = प्राप्तः। तम् अभ्यासभरम् = अतिशय नेत्र निमीलनहीनताभ्यासम्। अम् = त्रिदश्यः = देव्यः। अधुनापि = इदानीमपि। निमेष निः स्वैः = निमीलनरहितैः। स्वैः = आत्मीयैः। लोचनैः नेत्रैः। प्रकटयन्ति विवृण्वते = प्रदर्शयन्ति अभ्यासातिशयम्।

अदस्तदाकर्णि फलाढ्यजीवितं

दृशोर्द्वयं नस्तदवीक्षि चाफलम्।

इति स्म चक्षुःश्रवसां प्रिया नले

स्तुवन्ति निन्दन्ति हृदा तदात्मनः ॥ २८ ॥

अन्वय—चक्षुःश्रवसां प्रियाः तदा आत्मनः हृदा नले अदः नः दृशोर्द्वयं तदाकर्णि फलाढ्य जीवितं च तदवीक्षि अफलम् इति स्तुवन्ति निन्दन्ति।

शब्दार्थ—चक्षुः श्रवसाम् = पातालवासी सर्पों की। प्रियाः = पत्नियाँ, नागिनें। अदः = यह। तद् आकर्णि = नल के सौन्दर्य को सुन चुकीं। नः = हमारा। दृशोः द्वयम् = आँखों का जोड़ा। फलाढ्य जीवितम् = सफल जीवन वाला है। तदवीक्षि = उस नल को न देखकर। अफलम् = निष्फल है। इति = इस प्रकार। तदा = उस समय। नले = नल के विषय में। आत्मनः = अपने। हृदः = मन को। स्तुवन्ति = प्रशंसा करती हैं। निन्दन्तिस्म = निन्दा करती थीं।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में नागाङ्गानाओं के द्वारा नल की सौन्दर्य-प्रशंसा का वर्णन किया जा रहा है।

हिन्दी अनुवाद—नागाङ्गनाएँ उस समय अपने हृदय से नल के विषय में “हम लोगों के दोनों नेत्र उस नल के चरित आदि को सुनकर सफल जीवन वाले हो गये, लेकिन उसको देखा नहीं, इसलिए असफल हैं।” इस प्रकार प्रशंसा और निन्दा करती थीं।

हिन्दी व्याख्या—पाताल लोक में रहने वाली नागपत्नियाँ मर्त्यलोकवासी नल के गुणों का श्रवण तो करती हैं, लेकिन उनका दर्शन नहीं कर पाती हैं। सर्पों के कान नहीं होते हैं। ये आँखों से ही देखते हैं और सुनते भी हैं। अतः नल के चरित्र को सुनकर नागपत्नियाँ अपने नेत्रों को सफल मानती हैं, परन्तु आँखों से देख न सकने के कारण उनको निष्फल भी मानती हैं। इस प्रकार वे अपने नेत्रों को धन्य समझती हैं और उनकी प्रशंसा करती हैं लेकिन स्वयं पाताल-लोक में निवास करने के कारण राजा नल का साक्षात् दर्शन नहीं कर पातीं, इसलिए नेत्रों को अधन्य मानती हैं तथा उनकी निन्दा भी करती हैं।”

संस्कृत व्याख्या—चक्षुःश्रवसाम् = नागानाम्। प्रियाः स्त्रियः, सर्पिण्यः। अदः इदम् नेत्रद्वयम्। तदाकर्णि = शृणोति। फलाढ्यजीवितम् = सफल जीवनम् वर्तते। असफलम् = फलरहितम्। इति = इति मत्वा। तदा = तस्मिन् काले। नले = नैषध विषये। आत्मनः = स्वकीयस्य। हृदः = हृदयम्। स्तुवन्ति = प्रशंसन्ति। निन्दन्ति = निन्दा कुर्वन्ति।

अन्वय—अजस्रभावना बलात् नेत्रनिमीलनेषु अपि अमुम् विलोकयन्तीभिः मर्त्याभिः अमुष्य दर्शने निमेषानिर्मितः विघ्नलेशः अपि न अलम्भि ।

शब्दार्थ—अजस्र = लगातार । भावना बलात् = चिन्तनवृत्ति के बल से । नेत्रनिमीलनेषु = आँखों को बन्द करने के क्षणों में । अपि = भी । अमुष्य = इस राजा नल को । विलोकयन्तीभिः = देखती हुई । दर्शने = देखने में । निमेषानिर्मितः = पलक झपकाने से उत्पन्न । विघ्नलेशः = व्यवधान का अंश । मर्त्याभिः = मानवी स्त्रियों ने । अपि = भी । न = नहीं । अलम्भि = डाला ।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से संगृहीत प्रस्तुत श्लोक में कवि श्रीहर्ष मानवियों द्वारा राजा नल के चिन्तन और दर्शन का वर्णन कर रहे हैं ।

हिन्दी अनुवाद—निरन्तर ध्यान-भावना के प्रभाव में आँख बन्द करके अर्थात् पलक झपकाने में भी इस राजा नल को देखती हुई मानवी स्त्रियों ने इस राजा नल को देखने में पलक झपकाने से निर्मित विघ्न का अल्प अंश भी प्राप्त नहीं किया ।

हिन्दी व्याख्या—मानवों और मानवियों का स्वभाव पलक झपकाने का है । इनके पलक बिना प्रयत्न के अपने आप झपकते रहते हैं । मानवियाँ लगातार राजा नल का ध्यान करती रहती थीं । इस कारण उनके मन में राजा नल का चित्र स्थित रहता था । इससे राजा नल को देखने वाली मानवियों के लिए पलक झपकाने अथवा आँखें बन्द करने से किसी प्रकार की बाधा नहीं आती थी । आँखें बन्द करते समय मानवियाँ अपने मन में स्थित राज्य नल का दर्शन करती थीं और आँखें खुली होने पर सामने स्थित नल को देखती थीं । कहने का अभिप्राय यह है कि मानवी-स्त्रियाँ प्रत्यक्ष रूप से देखे जाने योग्य नल का दर्शन तो अपनी दृष्टि से करती ही थीं तथा पलकों के मारने के समय बुद्धिस्थ रूप का दर्शन किया करती थीं ।

संस्कृत व्याख्या—अजस्रभावनाबलात् = निरन्तरचिन्तनप्रभावात् = नेत्रनिमीलनेषु = लोचनसंकोचेषुक्षणेषु । अमुम् = राजानं नलम् । विलोकयन्तीभिः = पश्यन्तीभिः । मर्त्याभिः = मानुषीभिः नारीभिः । अमुष्य = अस्य राज्ञः नलस्य । दर्शने = विलोकने । निमेषानिर्मितः = नयन निमीलन क्षणोत्पन्नः । विघ्नलेशः = प्रत्यूहस्याल्पभागः । न = नहि । अलम्भि = प्राप्तः ।

न का निशि स्वप्नगतं ददर्श तं,

जगाद गोत्रस्खलिते च का न तम् ।

तदात्मताध्यातधवा रते च का,

चकार वा न स्वमनोभवोद्भवम् ॥ ३० ॥

अन्वय—का निशि स्वप्नगतं तं न ददर्श । का च गोत्रस्खलिते तं न जगाद । रते तदात्मताध्यातधवा च का स्वमनोभवोद्भवम् न चकार ।

NOTES

शब्दार्थ—का = ऐसी कौन-सी स्त्री थी। निशि = रात में। स्वप्नगतम् = स्वप्न में पहुँच हुए को। न ददर्श = नहीं देखा। का च = और किसने। गोत्रस्खलिते = पति के नाम के स्थान पर। तम् = राजा नल को, राजा नल के नाम को। न जगाद = नहीं कहा। रते = संभोग-काल में, सुरत के समय। तदात्मताध्यातधवा = अपने पति में राजा नल की कल्पना करने वाली। स्वमनोभवोद्भवम् = अपने काम विकार की उत्पत्ति। न चकार = नहीं की।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से अवतरित प्रस्तुत श्लोक में कवि राजा नल के अतिशय सौन्दर्य को रेखांकित कर रहे हैं क्योंकि सभी सुन्दर स्त्रियों ने नल की पति के रूप में कामना की है।

हिन्दी अनुवाद—ऐसी कौन-सी स्त्री थी, जिसने राजा नल को स्वप्न में नहीं देखा। किस स्त्री ने भ्रम से अपने पति के नाम के स्थान पर नल का नाम नहीं लिया किस स्त्री ने संभोग-काल में अपने पति में राजा नल का ध्यान करके अपने मन में उत्पन्न काम-भावना को प्रकट नहीं किया अर्थात् सभी ने किया।

हिन्दी व्याख्या—राजा नल इतना अधिक सुन्दर था कि सभी स्त्रियाँ उसे स्वप्न में देखती थीं। सभी स्त्रियाँ प्रमादवश अपने पति के स्थान पर राजा नल के नाम का उच्चारण करती थीं। सभी स्त्रियाँ संभोग-काल में अपने पति में नल की कल्पना कर लेती थीं अर्थात् सभी प्रगल्भा अथवा प्रौढ़ नायिकाओं ने अपने पति को ही नल के रूप में समझते हुए उनके साथ रमण किया। कहने का तात्पर्य यह है कि पतिव्रता स्त्रियों को छोड़कर सभी मुग्धा, मध्या तथा प्रगल्भा स्त्रियों का राजा नल के प्रति अनन्य प्रेम था।

संस्कृत व्याख्या—का = कतमा नारी। निशि = रात्रौ। स्वप्नगतम् = स्वप्ने प्राप्तम्। तम् = राजानं नलम्। न ददर्श = न अवलोकितवती सर्वाभिः एव दृष्टः इत्यर्थः। गोत्र स्खलिते = नाम्ना विपरीत भावे। तम् = नलम्। न जगाद = न कथितवती। रते = संभोग-काले सुरतव्यापारे। तदात्मताध्यातधवा = स्वपतौ नलस्य कल्पनां कृत्वा। स्वमनाद् भवोद्भवम् = स्वकीयायाः काम वासनायाः उत्पत्तिम्। न चकार = न कृतवती। अपितु सर्वाभिः एव तथा चकार इत्यर्थः।

श्रियास्य योग्याहमिति स्वमीक्षितुं

करे तमालोक्य सुरूपया धृतः।

विहाय भैमीमपदर्पया कया

न दर्पणः श्वासमलीमसः कृतः॥ ३१॥

अन्वय—तम् आलोक्य श्रिया अं अस्य योग्या इति स्वं ईक्षितुं करे धृतः दर्पणः भैमी विहाय कया सुरूपया अपदर्पया श्वासमलीमसः न कृतः।

शब्दार्थ—आलोक्य = देखकर = श्रिया = सौन्दर्य से। योग्या = अनुरूप। स्वम् = अपने को। ईक्षितुम् = देखने के लिए। करे = हाथ में। धृतः = धारण किया गया। भैमीम् = भीम की पुत्री दमयन्ती को। विहाय = छोड़कर। कया सुरूपया = किस सुन्दर स्त्री के द्वारा। अपदर्पया = अभिमानरहित होकर। श्वासमलीमसः = श्वासवायु से मलिन। न कृतः = नहीं किया गया।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में नल को पति रूप में वरण करने योग्य दमयन्ती की क्षमता का उल्लेख है।

हिन्दी अनुवाद—उस राजा नल को (चित्र में) देखकर सौन्दर्य से मैं (इस नल के) योग्य हूँ (ऐसा मन में विचार कर) अपने आपको देखने के लिए हाथ में धारण किये गये दर्पण को भीम की पुत्री दमयन्ती को छोड़कर सौन्दर्य अभिमान रहित किस सुन्दर स्त्री के द्वारा श्वास वायु से मलिन नहीं कर दिया गया ? अर्थात् सभी ने कर दिया।

हिन्दी व्याख्या—यहाँ कवि अन्य सभी स्त्रियों को नल के अयोग्य बतलाते हुए दमयन्ती का प्रसंग उपस्थित करते हैं। अपने सौन्दर्य के अभिमान में चूर सुन्दरियों ने राजा नल को चित्र में देखकर “उनके योग्य मैं भी सुन्दर हूँ” ऐसा सोचकर अर्थात् निश्चय करके अपने हाथ में दर्पण ग्रहण किया, किन्तु दर्पण में अपने सौन्दर्य को नल के सौन्दर्य से तृच्छ मानकर उनका पूर्वाभिमान नष्ट हो गया तथा उन्होंने मान लिया कि दमयन्ती के अतिरिक्त उसे पाने के कोई योग्य नहीं है। इस निराशा से दुःखपूर्ण गहरी श्वास छोड़ती थीं। जिससे दर्पण भी मलिन हो जाता था। केवल दमयन्ती ही ऐसी थी जो अपने आपको नल के अनुरूप पाती थी।

संस्कृत व्याख्या—तम् = नलम्। आलोक्य = दृष्ट्वा। श्रिया = सौन्दर्येण। अहमस्य = नलस्य। योग्या = अनुरूपा। इति स्वम् = आत्मानम्, स्वावयवम् इत्यर्थः। ईक्षितुं = दृष्टुं। करे धृतः = गृहीतः। दर्पणः भैमी = भीमनन्दिनी, दमयन्तीमित्यर्थः। विहाय = विनेत्यर्थः। कया सुरूपया = सुन्दर्या शोभनरूपवती अहमित्यभिमानवत्या नार्या। अपदर्पया = दर्पशून्यया सत्या। श्वासेन = दुःखविश्वासेन। मलीमसः = मलदूषितः, मलिनः न कृतः = न विहितः = अपितु सर्वथा एव कृतः इत्यर्थः। सौन्दर्यगर्विताः सर्वाः एव भैमीव्यतिरिक्ताः = दमयन्ती विरहिताः कामिन्यः। तम् नलमवलोक्य = अहमेवास्य योग्य इति अभिमानात् करधृतदर्पणे आत्मानं विलोक्य नाहमस्य योग्या—इति निश्चयेन दुःखिताः सत्यः निःश्वासवातेन तं दर्पणं मलिनयन्ति स्म—इत्याभिप्रायः।

यथोह्यमानः खलु भोगभोजिना

प्रसह्य वैरोचनिजस्य पत्तनम्।

विदर्भजाया मदनस्तथा मनो-

ऽनलावरुद्धं वयसैव वेशितः॥ ३२॥

अन्वय—यथा भोगभोजिना वयसा एव उह्यमानः मदनः वैरोचनिजस्य अनलावरुद्धं पत्तनं प्रसह्य वेशितः खलु तथा (भोगभोजिना वयसा एव उह्यमानः मदनः) विदर्भजायाः (नलावरुद्धम्) मनः (प्रसह्य वेशितः)।

शब्दार्थ—यथा = जिस प्रकार। खलु = निश्चित रूप से। भोगभोजिना = सर्पभक्षी, सुख भोगने वाले। वयसा = गरुड़ के द्वारा, युवावस्था के द्वारा। उह्यमानः = ले जाया जाता हुआ। मदनः = कामदेव। वैरोचनिजस्य = बलि के पुत्र बाण के। अनलावरुद्धम् = अग्नि से घिरे हुए। पत्तनम् = नगर में। प्रसह्य = बलपूर्वक। वेशितः = प्रवेश कराया गया।

प्रसंग—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से अवतरित प्रस्तुत श्लोक में दमयन्ती के मन में राजा नल के प्रति स्नेह को उत्पन्न कराने का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद—जिस प्रकार निश्चित रूप से सर्प के शरीर को खाने वाले पक्षी गरुड़ के द्वारा ले जाया जाता हुआ प्रद्युम्न बलपूर्वक विरोचन-पौत्र अर्थात् बलिपुत्र = वाणासुर के अग्नि से व्याप्त (शोणितपुर नाम के) नगर में प्रविष्ट हुआ था, उसी प्रकार सुख का अनुभव कराने वाली युवा अवस्था ने ही सखीजनों से तर्कित कामदेव को नल की चिन्ता करने वाली दमयन्ती के मन में बलपूर्वक प्रवेश कराया।

NOTES

NOTES

हिन्दी व्याख्या—प्रस्तुत श्लोक में कवि नल में दमयन्ती के मनोभिलाष का वर्णन कर रहे हैं। जिस प्रकार से सर्प के शरीर को खाने वाले पक्षी (प्रद्युम्न ने) गरुड़ की सहायता से अग्नि से घिरी विरोचन-पौत्र अर्थात् बलिपुत्र वाणासुर की नगरी शोणितपुर में प्रवेश किया, उसी प्रकार भोग विलासकारी यौवन अवस्था से प्राप्त कामदेव-कथा प्रसंगों में तथा वन्दीचारणादि के मुख से सुने गये एवं चित्रादि में देखे गये नल से आक्रान्त अर्थात् नल के प्रति आकृष्ट हुई दमयन्ती के मन में नल प्रविष्ट हुआ।

संस्कृत व्याख्या—मदनः कामः प्रद्युम्न इति यावत् भोगभोजिना सर्पशरीराशिना वयसा पक्षिणा गरुडेनेत्यर्थः। उह्यमानः = प्राप्यमाणः, अनलावरुद्धम्-अग्निपरिवृतं वैरोचनजस्य = बाणाऽसुरस्य। पत्तनं = नगरं, शोणितपुरमिति भावः। प्रसह्य सहसा यथा वेशितः प्रवेशित एव। खलु = निश्चयेन तेन प्रकारेण, भोगभोजिना = भोगं सुखं। भुङ्क्ते। भोजयति वा तच्छीलेन, सुखभोगासक्तेन-इत्यर्थः। वयसा एव = यौवनेन एव। उह्यमानः = परैः तर्क्यमाणः। मदनः = कामः नलाऽवरुद्धं, नैषधसम्बद्धं। विदर्भजया = वैदर्भ्या, दमयन्त्या इति भावः। मनः = चित्तं। प्रसह्य = बलेन। वेशितः = प्रवेशितः। खलु = निश्चयेन, नलस्य गुणगण श्रवणोत्तरं दमयन्त्याः मनसि यौवनेनैव नलविषयकः कामावेशः प्रापितः इति भावः।

नृपेऽनुरूपे निजरूपसम्पदां

दिदेश तस्मिन् बहुशः श्रुतिं गते।

विशिष्य सा भीमनरेन्द्रनन्दना

मनोभवाज्ञैकवशंवदं मनः॥ ३३॥

अन्वय—सा भीमनरेन्द्रनन्दना निजरूपसम्पदां अनुरूपे बहुशः श्रुतिं गते तस्मिन् नृपे मनोभावैकवशंवदं मनः विशिष्य दिदेश।

शब्दार्थ—भीमनरेन्द्रनन्दना = भीम राजा की पुत्री। निजरूपसम्पदाम् = अपने सौन्दर्य के। अनुरूपे = योग्य। बहुशः = बहुत बार। श्रुतिं = श्रवण को। गते = प्राप्त करने पर। तस्मिन् नृपे = उस राजा नल के प्रति। मनोभवाज्ञैकवशंवदीम् = एक मात्र कामदेव की आज्ञा के वशीभूत। विशिष्य = अतिशय रूप से। दिदेश = लगा दिया।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में राजा भीम की पुत्री दमयन्ती के नल में आसक्त मन का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद—उस राजा भीम की पुत्री दमयन्ती ने अपने सौन्दर्य के योग्य (चारण आदि) अनेक व्यक्तियों से सुने गये उस राजा नल के प्रति एकमात्र कामदेव की आज्ञा के वशीभूत मन को अतिशय रूप से लगा दिया।

हिन्दी व्याख्या—राजाधिराज भीम की पुत्री दमयन्ती ने चारण बन्दी आदि जनों के मुखों से अनेक बार राजा नल के गुणों तथा प्रशंसा आदि को सुना था तथा अपनी रूप सम्पत्ति के योग्य उस राजा नल में मन को विशेष रूप से कामाज्ञा का वंशवद बना दिया अर्थात् जब दमयन्ती ने यह समझ लिया कि राजा नल सौन्दर्य आदि की दृष्टि से उसके पति के रूप में स्वीकार करने योग्य हैं, तब दमयन्ती का मन उक्त रूप वाले नल में काम के वशीभूत हो गया।

संस्कृत व्याख्या—भीमनरेन्द्रनन्दना = भीमभूपतनया दमयन्तीत्यर्थः। निजरूपसम्पदां = स्वसौन्दर्य सम्पत्तीनाम् अनुरूपे = योग्ये। तस्मिन् = पूर्वोक्ते नृपे राजनि नले इत्यर्थः। बहुशः अनेक बारं। श्रुतिम् = श्रवणगोचरं गते = प्राप्ते सति। विशिष्य = अतिशयेन मनोभवाज्ञैकवशंवदं = कामदेवादेशैकाधीनं। मनः = चित्तं। दिदेश = अर्पितवती, नलं प्रति चित्तं निदधविति भावः।

उपासनामेत्य पितुः स्म रज्यते

दिने दिने सावसरेषु वन्दिनाम्।

पठत्सु तेषु प्रतिभूपतीनलं

विनिद्रोमाजनि शृण्वती नलम्॥ ३४॥

अन्वय—सा दिन-दिने वन्दिनां अवसरेषु पितुः उपासनां एत्य तेषु भूपतीन् प्रति पठत्सु नलं शृण्वती अलं रज्यते स्म, विनिद्रोमा अजनि।

शब्दार्थ—दिने-दिन = प्रतिदिन। वन्दिनाम् = वन्दियों के। अवसरेषु = अवसरों पर। पितुः उपासनां = पिता की सेवा में। एत्य = आकर। भूपतीन् प्रति = उन राजाओं के प्रति। पठत्सु = गुणगान करने पर। शृण्वती = सुनती हुई। अलम् = पूर्णरूप से। रज्यते स्म = प्रसन्न होती थी। विनिद्रोमा = रोमाञ्चयुक्त। अजनि = हो जाती थी।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में राजा नल के गुणों को सुनकर दमयन्ती के श्रवणानुराग सात्विक भाव का चित्रण किया गया है।

हिन्दी अनुवाद—वह दमयन्ती पिता की सेवा में उपस्थित होकर प्रतिदिन बन्दियों के (नृपस्तुति के) अवसरों में अनुरक्त होती थीं। जब वे राजाओं का स्तुतिपाठ करते थे, उस समय नल के गुणों को सुनती हुई पूर्णरूप से प्रसन्न होती थी तथा रोमाञ्चयुक्त हो जाती थी।

हिन्दी व्याख्या—अब चार श्लोकों में श्रीहर्ष दमयन्ती के नल-विषयक श्रवणानुराग नामक सात्विक भाव का वर्णन करते हैं। जब चारण-भाट आदि राजा भीम के समीप आकर उपस्थित होते थे, तब वह दमयन्ती भी पिता के समीप आकर बैठ जाया करती थी। चारणादिबन्दिजनों द्वारा राजाओं के वर्णन किये जाने के अवसर पर बीच-बीच में नल सम्बन्धी प्रशंसापरक बातों को ध्यान से सुना करती थी। तब वह मन ही मन अत्यन्त हर्षित और रोमाञ्चयुक्त हो जाया करती थी।

संस्कृत व्याख्या—सा = दमयन्ती। दिने-दिने = प्रतिदिनम्। वन्दिनाम् = स्तुतिपाठकानाम्। अवसरेषु = समयेषु। पितुः = जनकस्य भीमस्य। उपासनाम् = सेवाम्। एत्य = प्राप्य। तेषु = बन्दिषु। भूपतीन् प्रति भूपतीनुद्दिश्य। पठत्सु = वदत्सु। नलम् = निषधपतिम्। शृण्वती = आकर्णयन्ती। अलं सृज्यते रज्यते स्म रक्ताभूत् इत्यर्थः। अतएव विनिद्रोमां = रोमाञ्चिता, अजनि = जाता, तस्याः रोमाञ्चतं नलगुणभ्रवणजन्यः रागः व्यक्तः अभूदिति भावः।

कथाप्रसङ्गेषु मिथः सखीमुखात्

तृणेऽपि तन्व्या नलनामनि श्रुते।

द्रुतं विधूयान्यदभूयतानया

मुदा तदाकर्णनसज्जकर्णया ॥ ३५ ॥

अन्वय—मिथः कथाप्रसङ्गेषु सखीमुखात् तृणे अपि नलनामनि श्रुते (सति) अनया तन्व्या द्रुतम् विधूय मुदा तदाकर्णनसज्जकर्णया अभूयत ।

NOTES

शब्दार्थ—मिथः प्रसंगेषु = परस्पर वार्तालाप के प्रसंगों में। सखीमुखात् = सखी के मुँह से। तृणे अपि = तिनका अर्थ वाले, तिनके के विषय में। नलनामनि = नल शब्द के। श्रुते = सुनने पर। अनया = इस दमयन्ती ने। तन्व्या = प्रिय नल के विरह में दुर्बल ने। द्रुतम् = शीघ्र। अन्यद् विधूय = अन्य काम छोड़कर। मुदा = प्रसन्नता से। तदाकर्णनसज्जकर्णया = नल के विषय में सुनने को कान प्रस्तुत करने वाली के द्वारा। अभूयत = हो जाती थी।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में कवि श्रीहर्ष राजा नल के प्रति दमयन्ती के अतिशय अनुराग का वर्णन कर रहे हैं।

हिन्दी अनुवाद—परस्पर वार्तालाप के प्रसंगों में सखियों के मुख से घास के तिनके के अर्थ वाले नल शब्द के सुनने पर भी राजा नल के वियोग के कारण यह दमयन्ती शेष सभी कार्य त्यागकर प्रसन्नतापूर्वक राजा नल के विषय में सुनने हेतु प्रस्तुत कानों वाली हो गयी।

हिन्दी व्याख्या—जो व्यक्ति सतत् किसी का ध्यान करता है, उसे सभी बातें अपने प्रिय से सम्बन्धित ही जान पड़ती हैं। दमयन्ती राजा नल से अत्यधिक प्रेम करती थी और सदैव उसका चिन्तन करती रहती थी। उसकी सखियाँ बातचीत करती हुई कभी घास के तिनके के अर्थ में नल शब्द का प्रयोग करती थीं तो दमयन्ती समझती थी कि ये मेरे प्रिय नल की चर्चा कर रही हैं। अपने प्रिय से सम्बन्धित बातें सुनने हेतु दमयन्ती अन्य कार्य त्यागकर प्रसन्नता से नल-सम्बन्धी बातें सुनने के लिए अपने कान प्रस्तुत कर देती थी।

संस्कृत व्याख्या—मिथः = परस्परम्। कथाप्रसंगेषु = वार्तालापेषु। सखीमुखात् = आलिङ्गनात्। तृणे अपि = तृणस्य अर्थे अपि। नलनामनि = निषधदेशस्य नरेशस्य संज्ञायाम्। श्रुते = श्रवणकृते। अनया = दमयन्त्या। तन्व्या = दुर्बलता दमयन्त्या। द्रुतम् = शीघ्रम्। अन्यद् विधूय = अन्यकार्यं त्यक्त्वा। मुदा = हर्षेण। तदाकर्णनसज्जकर्णया = नलस्य विषयिणी वार्ता श्रोतुम् उत्सुकया। अभूयत = बभूव।

स्मरात्परासोरनिमेष लोचनाद्

विभेमि तद्भिन्नमुदाहरेति सा।

जनेन यूनः स्तुवता तदास्पदे

निदर्शनं नैषधमभ्यषेचयत् ॥ ३६ ॥

अन्वय—परासोः अनिमेषलोचनात् स्मरात् विभेमि। तद्भिन्नम् उदाहर इति सा यूनः स्तुवता जनेन तदास्पदे निदर्शनं नैषधम् अभ्यषेचयत्।

शब्दार्थ—परासोः = प्राणों से रहित। अनिमेषलोचनात् = निमेषशून्य नयनों के कारण। स्मरात् = कामदेव से। विभेमि = डरती हूँ। तद्भिन्नम् = कामदेव से भिन्न अन्य जन को। उदाहर = उदाहरण के रूप में उपस्थित करो। इति = इस प्रकार। सा = दमयन्ती। यूनः स्तुवता = युवकों की प्रशंसा करती हुई। जनेन = सखियों के द्वारा। तदास्पदे = उस कामदेव के स्थान पर। नैषधम् = नल को। अभ्यषेचयत् = उपमान के पद पर प्रतिष्ठित किया।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में सौन्दर्यातिशय के कारण सखियों द्वारा कामदेव के स्थान पर नल को पुकारे जाने का वर्णन है।

नैषधीयचरितम् (श्रीहर्ष)

NOTES

हिन्दी अनुवाद—मरे हुए (अतएव) निमेषहीन नेत्रों वाले कामदेव से मैं डरती हूँ। (अतः) उससे भिन्न कोई दूसरा उदाहरण दो, ऐसा कहकर उस दमयन्ती ने युवकों की स्तुति करने वाले लोगों के द्वारा कामदेव के स्थान पर दृष्टान्त रूप में नल को अभिषिक्त कराया।

हिन्दी व्याख्या—कामदेव देव-योनि का होने के कारण निमेषहीन है। उसकी पलकों नहीं गिरती हैं। शंकरजी के द्वारा भस्म कर दिये जाने से वह मरा हुआ भी है। मरे हुए व्यक्ति की भी आँखें निमेषहीन होती हैं। अतः जब सखी या वन्दीजन युवकों की प्रशंसा करते समय कामदेव की उपमा देता है, तब दमयन्ती कहती है—“कामदेव की आँखें निमेषहीन हैं तथा वह मरा हुआ है, इसलिए मुझे डर लगता है। कामदेव के स्थान पर कोई दूसरा उदाहरण दो।” कामदेव के समान किसी दूसरे व्यक्ति के न होने से लोग नल की उपमा देते थे। इस प्रकार दमयन्ती ने लोक विश्रुत दृष्टान्त कामदेव के स्थान पर राजा नल को अभिषिक्त करा दिया। लोक में भी जब कोई व्यक्ति मर जाता है, तब उन्हीं गुणों से सम्पन्न किसी दूसरे व्यक्ति को उसका उत्तराधिकारी बनाया जाता है।

संस्कृत व्याख्या—परासोः = मृतक्त् प्राणहीनतत्वात्। अनिमेषलोचनाद् = निमेषरहित नेत्रात्। स्मरात् = कामदेवात्। बिभेमि = भयमनुभवामि। तद्भिन्नम् = स्मराद् भिन्नम्। उदाहर = पुरुषम् उदाहरणरूपेण प्रस्तुतं कुरु। इति = अनेन प्रकारेण। यूनः = युवकान्। स्तुवता = प्रशंसां कुर्वता। जनेन = सखी समुदायेन। तदास्पदे = स्मरस्य उपमान स्थाने। नैषधम् = निषधानां राजानं नलम्। निदर्शनम् = उदाहरणम्। अभ्यषेचत् = अभिषेकं कृतवती स्थापयामास।

नलस्य पृष्टा निषधागता गुणान्

मिषेण दूतद्विजवन्दिचारणाः।

निपीय तत्कीर्तिकथामथानया

चिराय तस्थे विमनायमानया ॥३७॥

अन्वय—निषधागता दूतद्विजवन्दिचारणाः मिषेण नलस्य गुणान् पृष्टाः अथ तत्कीर्तिकथां निपीय अनया चिराय विमनायमानया तस्थे।

शब्दार्थ—निषधागता—निषध देश से आये हुए। मिषेण = किसी बहाने से। नलस्य गुणान् = नल के गुणों को। पृष्टाः = पूछा। तत्कीर्तिकथाम् = उस राजा नल के यश सम्बन्धी वर्णन को। निपीय = भली-भाँति पान कर। विमनायमानया तस्थे = अन्यमनस्क रहा करती थी।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में दमयन्ती द्वारा नल के गुणों को निषधवासियों से पूछे जाने का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद—(दमयन्ती द्वारा) निषध देश से आये हुए दूतों, ब्राह्मणों, बन्दीजनों, भाटों, चारणों आदि से किसी बहाने से नल के गुणों को पूछा गया। तब वह उस राजा नल के यश सम्बन्धी वर्णन को भली-भाँति सुनकर अथवा पान कर अन्यमनस्क हो जाया करती थी।

NOTES

हिन्दी व्याख्या—जब निषध देश से कोई भी दूत, ब्राह्मण बन्दी तथा चारण आता था, तब वह दमयन्ती उससे किसी बहाने से अनेक प्रश्न उस देश का राजा कौन है ? प्रजा पालन कैसा करता है ? उसमें कौन-कौन से गुण हैं ? इत्यादि पूछती थी। इसके बाद उनके द्वारा सुनाये गये विशेष गुणों से प्रभावित होकर मन में सोचती थी कि ऐसे अत्यधिक सद्गुणों से युक्त राजा नल को मैं किस प्रकार प्राप्त कर सकूँगी ? इस भावना से चिरकाल तक उदास रहती थी अथवा ऐसे अत्यधिक सद्गुण सम्पन्न राजा नल के प्रति मेरा अनुराग हुआ है, अतएव उन्हें पाकर मैं कृतकृत्य हो जाऊँगी, इस भावना से चिरकाल तक आनन्दित होती थी।

संस्कृत व्याख्या—अनया दमयन्त्या निषधेभ्यः आगता दूता सन्देशहराः, द्विजाः ब्राह्मणाः, वन्दिनः स्तावकाः नटाः। मिषेण = व्याजेन। नलस्य गुणान् = सौन्दर्यशौर्यादीन्। पृष्टाः = जिज्ञासिताः। अथ = ततः। तत्कीर्तिं कथाम् = नलयशोगाथाम्। निपीय = पानं कृत्वा, समाकर्ण्य। चिराय = अतिकालं यावत्। विमनायमानया = अन्तर्मनायमानया सत्या। तस्थे = स्थितम्।

प्रियं प्रियां च त्रिजगज्जयिश्चिथौ

लिखाधिलीलागृहभित्तिकावपि।

इति स्म सा कारुतरेण लेखितं

नलस्य च स्वस्य च सख्यमीक्षते ॥३८॥

अन्वय—सा त्रिजगज्जयिश्चिथौ कौ अपि प्रियं प्रियां च अधिलीलागृहभित्ति लिखि इति कारुतरेण लेखितं नलस्य च स्वस्य च सख्यम् ईक्षते स्म।

शब्दार्थ—अधिलीलागृहभित्ति = विलासगृह की दीवार पर। त्रिजगज्जयिश्चिथौ = तीनों लोकों की सुन्दरता को जीतने वाले। कौ अपि = किन्हीं दो। प्रियम् प्रियाम् च = प्रेमी और प्रेयसी को। लिख = चित्र बनाओ। इति = इस प्रकार। कारुतरेण = श्रेष्ठ चित्रकार के द्वारा। लेखितम् = बनाये हुए। नलस्य = नल के। स्वस्य = अपने। सख्यम् = रूपसादृश्य का। ईक्षते = देखती थी।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से अवतरित प्रस्तुत श्लोक में महाकवि द्वारा चित्र एवं स्वप्न आदि में दर्शनजन्य दमयन्ती के अनुराग का वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

हिन्दी अनुवाद—वह दमयन्ती, “तीनों लोकों को जीतने वाली शोभा से युक्त किन्हीं दो प्रेमी और प्रेमिका के चित्र विलासगृह की दीवार पर बनाओ” ऐसा कहने पर चित्रकार द्वारा लिखे गये, अपने तथा नल के रूप-साम्य को देखा करती थी।

हिन्दी व्याख्या—प्रियतम के विषय में बातचीत करना, उनका चित्र देखना, उन्हें स्वप्न में देखना और स्वप्न की बातें करना विरहिणियों के मनोविनोद के उपाय होते हैं। अतः प्रियतम नल के चित्र-दर्शन द्वारा उत्कण्ठा दूर करने की इच्छा से वह दमयन्ती चित्रकारों से कहती थी—“लीलागृह की भित्ति पर संसार के सबसे सुन्दर किसी प्रेमी-प्रेमिका का चित्र बनाओ” तब चित्रकारों के द्वारा स्वाभाविक नल और दमयन्ती का चित्र बना दिया जाता था, क्योंकि ये दोनों ही संसार में सर्वाधिक सुन्दर थे, जिसे वह देखा करती थी और दोनों के सौन्दर्य की समानता को देखकर मुग्ध होती थी।

संस्कृत व्याख्या—अधिलीलागृहभित्ति = क्रीडागृहस्य भित्तौ विलास भवन कुड्ये वा। त्रिजगज्जयिश्चिथौ = त्रिलोकाभिभाविनी शोभायुक्तौ। कौ अपि = द्वौ। प्रियम् = पुरुषम्। प्रियाम् = प्रेयसीम्। लिख = चित्रीकुरु।

इति = एवं प्रकारेण आदिश्य । सा = दमयन्ती । कारुतरेण = कुशल चित्रकारेण । लेखितम् = चित्रितम् । स्वस्य = निजस्य । नलस्य = नैषधस्य । सख्यम् = सौन्दर्य-साम्यम् । ईक्षते स्म = अद्राक्षीत् पश्यति स्म वा ।

नैषधीयचरितम् (श्रीहर्ष)

मनोरथेन स्वपतीकृतं नलं

निशि क्व सा न स्वपती स्म पश्यति ।

अदृष्टमप्यर्थमदृष्टवैभवात्

करोति सुप्तिर्जनदर्शनाऽतिथिम् ॥ ३९ ॥

NOTES

अन्वय—स्वपती सा मनोरथेन स्वपतीकृतं नलं क्व निशि न पश्यति स्म ? सुप्तिः अदृष्टवैभवात् अदृष्टमपि अर्थं जनदर्शनाऽतिथिं करोति ।

शब्दार्थ—मनोरथेन = संकल्प के द्वारा । स्वपतीकृतं = अपने पति बनाये गये । स्वपती = सोती हुई । क्वनिशि = किस रात्रि में । न पश्यति स्म = नहीं देखती थी । सुप्तिः = स्वप्न । अदृष्टवैभवात् = पुरातन भाग्य के बल से । अदृष्टमपि अर्थम् = न देखे गये विषय को भी । जनदर्शनातिथिम् = जनों का दर्शनगोचर ।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से अवतरित प्रस्तुत श्लोक में दमयन्ती द्वारा अपने प्रारब्ध कर्मों के सुपरिणामस्वरूप नल को देखे जाने का वर्णन है ।

हिन्दी अनुवाद—सोती हुई वह दमयन्ती संकल्प के द्वारा अपने पति बनाये गये नल को किस रात्रि में नहीं देखती थी ? अर्थात् प्रत्येक रात में वह नल को स्वप्न में देखती थी, क्योंकि स्वप्न पुरातन भाग्य के बल से पूर्व में न देखे गये विषय को भी जनों का दर्शनगोचर बना देता है ।

हिन्दी व्याख्या—यद्यपि दमयन्ती ने नल को चित्रादि में देखा था, कभी साक्षात् नहीं देखा था, फिर भी चित्रादि के स्मरण से वह स्वप्न में नल को देख लेती थी, क्योंकि स्वप्न पहले कभी न देखे गये पदार्थ को भी पूर्वजन्मकृत भाग्य के बल से मनुष्य को अवश्य दिखला दिया करता है । चूँकि दमयन्ती को राजा नल के दर्शन भाग्य द्वारा कराये गये हैं, अतः विवाह नल के प्रति भाग्य द्वारा अनुमोदित प्रतीत होता है ।

संस्कृत व्याख्या—स्वपती = शयनं कुर्वती । सा = भैमी दमयन्ती । मनोरथेन = संकल्पेन अभिलाषेण वा । स्वपतीकृतं = स्वभर्तृकृतं स्वनाथकृतं वा । नलं = नैषधं । क्व = कुत्र । निशि = रात्रौ । न पश्यति स्म = स्वप्ने रात्रौ दृष्टवती । तथाहि सुप्तिः = स्वप्नः, अदृष्टवैभवात् = धर्माऽधर्मप्रभावात् प्राक्तनभाग्यबलात् वा । अर्थम् = वस्तु । जनदर्शनातिथिम् = लोकलोचनगोचरं करोति = विदधाति ।

निमीलितादक्षियुगाच्च निद्रया

हृदोऽपि बाह्येन्द्रियमौनमुद्रितात् ।

अदर्शि संगोप्य कदाप्यवीक्षितो

रहस्यमस्याः स महन्महीपतिः ॥ ४० ॥

अन्वय—निद्रया निमीलितात् अक्षियुगात् च बाह्येन्द्रियमौनमुद्रितात् हृदः अपि संगोप्य कदापि अवीक्षितः महत् रहस्यं स महीपतिः अस्याः अदर्शि ।

NOTES

शब्दार्थ—निद्रया = निद्रा ने। निमीलितात् = मूँदे गये। अक्षियुगात् = दो नेत्र से। बाह्येन्द्रियमौनमुद्रितात् = बाहरी इन्द्रिय के व्यापारभाव से निष्क्रिय। हृदः अपि = हृदय से भी। संगोप्य = छिपाकर। कदापि = कभी भी। अवीक्षितः = न देखे गये। महत् रहस्यम् = अत्यधिक रहस्य रूप। महीपतिः = राजा। अदर्शि = दिखला दिया।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से अवतरित प्रस्तुत श्लोक में निद्रा द्वारा दमयन्ती को नल के दर्शन कराये जाने का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद—निद्रा ने मूँदे गये दोनों नेत्रों से और बाह्य इन्द्रिय के व्यापार भाव से निष्क्रिय हृदय से भी छिपाकर कभी भी न देखे गये अत्यधिक रहस्यरूप उस राजा नल को इस दमयन्ती को दिखला दिया।

हिन्दी व्याख्या—जिस प्रकार कोई चतुर दूती किसी प्रियतम नायक को दूसरों से छिपाकर नायिका के लिए दिखला देती है, उसी प्रकार निद्रा ने भी कभी नहीं देखे गये एवं अतिशय रहस्य बने हुए इस प्रसिद्धतम नायक राजा नल को नायिका दमयन्ती को दिखला दिया। कहने का तात्पर्य यह है कि दमयन्ती ने नल को स्वप्न में देखा, किन्तु उसके नेत्रद्वय को तथा बाह्येन्द्रिय की क्रिया से रहित हृदय को भी इसका पता न लग सका।

संस्कृत व्याख्या—निद्रया-सुषुप्त्या, पक्षान्तरे, निद्राजन्याज्ञानेन। निमीलितात् = मुद्रितात्, पक्षान्तरे-तिरोहितात्। अक्षियुगात् = नेत्रयुगलात्, पक्षान्तरे कलियुगात् च बाह्येन्द्रि मौनमुद्रितात् = बाह्य इन्द्रियाणां चक्षुरादीनां मौनेन स्वविषयग्रहणाभावेन मुद्रितात् प्रति स्तब्धात् = मनसः बहिः-स्वातन्त्रयात्-इति भावः, हृदः अपि। = हृदयात् अपि। सङ्गोप्य गोपयित्वा इत्यर्थः। कदापि = कस्मिन्नपि काले। अवीक्षितः = अदृष्टः अस्याः = दमयन्त्याः। महत्त्वपूर्ण गोपनीय वस्तु, सः पूर्वोक्तः महीपतिः = राजा नलः इत्यर्थः। अदर्शि = दर्शयाञ्च = क्रे। यथा काचित् दासी कस्यैचित् कामिन्यै कञ्चन कान्तं संगोप्य दर्शयति तथैव निद्रा दमयन्त्यै नलं संगोप्य अदर्शयत्।

अहो अहोभिर्महिमा हिमागमे-

ऽप्यतिप्रपेदे प्रति तां स्मरार्दिताम्।

तपर्तुपूर्तावपि मेदसां भरा

विभावरीभिर्बिभरांबभूवरे ॥४१॥

अन्वय—अहो स्मरार्दिताम् तां प्रति हिमागमेऽपि अहोभिः महिमा अति प्रपेदे। तपर्तुपूर्तौ अपि विभावरीभिः मेदसां भरा विभरांबभूवरे।

शब्दार्थ—अहो = आश्चर्य है। अहोभिः = दिवसों ने। हिमागमे = हिम + आगमे = हेमन्त ऋतु के आगमन पर, शीत ऋतु में। अपि = भी। स्मरार्दिताम् = स्मर + आर्दिताम् = कामदेव के द्वारा पीडिता को। ताम् प्रति = उसके प्रति, दमयन्ती के प्रति। महिमा = वृद्धि, दीर्घता, बड़ा होना। अति प्रपेदे = अधिक मात्रा प्राप्त की गयी। विभावरीभिः = रात्रियों ने। तपर्तुपूर्तौ अपि = तप + ऋतु + पूर्तौ अपि = ग्रीष्म ऋतु की समाप्ति पर भी। मेदसां भराः = मज्जा की प्रचुरता, चर्बी की अधिकता। विभरांबभूवरे = धारण की गयी।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में नल के विरह में दमयन्ती के विरहभाव का चित्रण किया गया है।

हिन्दी अनुवाद—आश्चर्य की बात है कि काम-पीडित उस (विरहिणी) के लिए हेमन्त ऋतु के आ जाने पर भी दिनों ने दीर्घता को प्राप्त कर लिया तथा ग्रीष्म ऋतु की समाप्ति पर रात्रियों ने भी अतिशय स्थूलता अर्थात् दीर्घता धारण कर ली।

NOTES

हिन्दी व्याख्या—कष्ट के क्षण हमेशा बड़े होते हैं और विरहिणियों के लिए जो सद्यः पतिप्रणयिहृदया होती हैं, उनके लिए तो एक क्षण एक वर्ष के समान और एक दिन एक युग के समान लगता है अर्थात् अल्पकाल भी बहुत बड़ा प्रतीत होने लगता है। यही कारण है कि उस विरहिणी दमयन्ती के लिए हेमन्त ऋतु में भी दिन बड़े हो रहे थे और ग्रीष्म ऋतु में रातें बड़ी हो रही थीं, जबकि स्वाभाविकता इसके विपरीत होती है। ग्रीष्म में रातें और हेमन्त में दिन छोटे होते हैं, परन्तु नल की वियोगिनी दमयन्ती को हेमन्त ऋतु सम्बन्धी दिन तथा ग्रीष्मकालीन रात्रियाँ अत्यधिक लम्बी प्रतीत हो रही थीं।

संस्कृत व्याख्या—अहो = आश्चर्यम्, यत्। अहोभिः = दिनैः, हिमागमे अपि = शीतर्तोः आगमे अपि। स्मरार्दिताम् = ताम् कॉमपीडिताम्, दमयन्तीम् प्रति, महिमा = दीर्घता। अतिप्रपेदे = अतिमात्रं प्राप्ता, दिवसाः अति दीर्घाः बभूवुः इत्यर्थः विभावरीभिः अपि = रजनीभिः अपि। तपर्तुपूर्तौ अपि = ग्रीष्मर्तोः समाप्तौ अपि मेदसां भराः = मज्जायाः अधिकता, स्थूलता। विभरांबभूवुरे = बभ्रुरे।

स्वकान्तिकीर्तिव्रजमौक्तिकस्रजः

श्रयन्तमन्तर्घटनागुणश्रियम्।

कदाचिदस्या युवधैर्यस्रोपिनं

नलोऽपि लोकादशृणोद् गुणोत्करम् ॥४२॥

अन्वय—नलः अपि कदाचित् लोकात् स्वकान्तिकीर्तिव्रजमौक्तिकस्रजः अन्तर्घटनागुणश्रियं श्रयन्तं युवधैर्यलोपिनं अस्याः गुणोत्करं अशृणोत्।

शब्दार्थ—नलः अपि = नल ने भी। कदाचित् = किसी समय। लोकात् = लोगों से। स्वकान्तिकीर्तिव्रजमौक्तिकस्रजः = अपने सौन्दर्य सम्बन्धी यशः समूह रूप मोतियों की माला को। अन्तर्घटनागुणश्रियम् = अन्दर से गुँथने वाले सूत्र की शोभा को। श्रयन्तम् = धारण करते हुए। युवधैर्यलोपिनम् = युवकों के धैर्य को लुप्त करने वाले। गुणोत्करम् = गुण समूह को। अशृणोत् = सुना।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में नल का भी दमयन्ती के प्रति अनुराग सूचित हो रहा है।

हिन्दी अनुवाद—नल ने भी किसी समय लोगों से अपने सौन्दर्य सम्बन्धी यशः समूह रूप मोतियों की माला को अन्दर से गुँथने वाले सूत्र की शोभा को धारण करते हुए युवकों के धैर्य को लुप्त करने वाले इस दमयन्ती के सौन्दर्य सम्बन्धी गुण समूह को सुना।

हिन्दी व्याख्या—यहाँ तक कवि द्वारा नल के सौन्दर्यख्यान का उल्लेख किया गया, अब दमयन्ती के अप्रतिम सौन्दर्य का वर्णन है। दमयन्ती का सौन्दर्य युवकों के धैर्य को समाप्त करने वाला था। उसके सौन्दर्य से उत्पन्न कीर्ति समूह मोतियों की माला के समान थी और उसके गुण बीच में गुंथे हुए सूत्र के समान थे। दमयन्ती के इस गुण-समूह को किसी समय नल ने लोगों से सुना।

NOTES

• **संस्कृत व्याख्या**—नलः अपि = नैषधः अपि। कदाचित् = कस्मिंश्चित् समये। लोकात् = आगन्तुकजनात्, स्वकान्तिकीर्तिव्रजमौक्तिकम्रजः = स्वस्य निजस्य कान्त्या सौन्दर्येण याः कीर्तयः यशांसि तासां व्रजः पुञ्ज एव मौक्तिकम्रक् मुक्ताहारः तस्याः अन्तःअभ्यन्तरे घटनागुणश्रियं गुम्फनसूत्रलक्ष्मीम्-शोभाम् श्रयन्तं भजन्तम्। युवधेयैर्यलोपिनम् = तरुण-धीरत्वं नाशकम्, अस्याः दमयन्त्याः गुणोत्करम् = सौन्दर्यसन्दोहम्-सौन्दर्यं सौशील्यादिगुण समूहम्। अशृणोत् = श्रुतवान्।

तमेव लब्ध्वावसरं ततः स्मरः

शरीरशोभाजयजातमत्सरः।

अमोघशक्त्या निजयेव मूर्तया

तया विनिर्जेतुमियेष नैषधम्॥४३॥

अन्वय—ततः शरीरशोभाजयजातमत्सरः स्मरः तमेव अवसरं लब्ध्वा मूर्तया निजया अमोघशक्त्या इव तय नैषधं विनिर्जेतु इयेष।

शब्दार्थ—ततः = तब दमयन्ती के गुणों का (राजा नल द्वारा) श्रवण कर लिए जाने के पश्चात्। शरीर शोभाजय जात मत्सरः = शारीरिक सौन्दर्य के जीत लिये जाने से द्वेष मुक्त। स्मरः = कामदेव ने। तमेव = उसी। अवसरं लब्ध्वा = अवसर को पाकर। मूर्तया = शरीर धारिणी। निजया अमोघशक्त्या = अपनी सफल शक्ति के समान। तया = उस (दमयन्ती) के द्वारा। विनिर्जेतुं इयेष = जीतने की इच्छा की।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में दमयन्ती के प्रति नल का रागोदय भाव वर्णित है।

हिन्दी अनुवाद—दमयन्ती के गुणों का (राजा नल द्वारा) श्रवण कर लिये जाने के पश्चात् शारीरिक सौन्दर्य को जीत लिये जाने से द्वेषयुक्त कामदेव ने उसी अवसर को पाकर शरीरधारिणी अपनी अमोघशक्तिरूपिणी दमयन्ती के द्वारा राजा नल को जीतने की इच्छा की।

हिन्दी व्याख्या—संसार का सामान्य नियम है कि कोई व्यक्ति किसी प्रबल व्यक्ति से पराजित होकर उसके साथ द्वेष करता हुआ अवसर पाकर अपनी अमोघ शक्ति से उसे पराजित करने की इच्छा करता है। यही बात यहाँ कामदेव के साथ चरितार्थ हो रही है। कामदेव को अपने सौन्दर्य पर गर्व था, लेकिन समस्त ब्रह्माण्ड में सर्वाधिक सौन्दर्यशाली राजा नल ने सौन्दर्य में कामदेव को पराजित कर दिया था। इसे जानकर कि मैं राजा नल के द्वारा सौन्दर्य में पराजित कर दिया गया हूँ, उसके मन में राजा नल के प्रति मत्सरभाव उत्पन्न हो गया अर्थात् वह राजा नल का शत्रु बन गया, नल से बदला लेने का अवसर ढूँढने लगा। जब राजा नल के हृदय में दमयन्ती के प्रति अनुराग उत्पन्न हो गया, तब उचित अवसर जानकर नल से प्रतिकार लेने के इच्छुक कामदेव ने दमयन्ती के रूप में विद्यमान अपनी अमोघ शक्ति का प्रयोग राजा नल पर करने की इच्छा की।

संस्कृत व्याख्या—ततः = दमयन्त्याः गुणश्रवणानन्तरम्। शरीरशोभाजयजातमत्सरः = शरीरशोभायाः देहसौन्दर्यस्य जयेन जात् उत्पन्नः मत्सरः वैरः यस्य तादृशः। स्मरः = कामः। तमेव = नलकृतदमयन्ती गुणश्रवणात्मकम् एव। अवसरम् = प्रसङ्गः। लब्ध्वा = प्राप्य। मूर्तया = शरीरधारिण्या। निजया = स्वकीयया। आमोघशक्त्या इव = अकुण्ठसामर्थ्येन इव। तया = दमयन्त्या। नैषधं नलम् विनिर्जेतुम् = पराभवितुम्। इयेष = इच्छति स्म।

अकारि तेन श्रवणतिथिर्गुणः

क्षमाभुजा भीमनृपात्मजाश्रितः।

तदुच्चधैर्यव्ययसंहितेषुणा

स्मरेण च स्वात्मशरासनाश्रयः ॥४४॥

नैपथीयन्नरितम् (श्रीहर्ष)

NOTES

अन्वय—तेन क्षमाभुजा भीमनृपात्मजाश्रितः गुणः श्रवणातिथिः अकारि च तदुच्चधैर्यव्ययसंहितेषुणा स्मरेण स्वात्मशरासनाश्रयः (गुणः श्रवणातिथिः अकारि)।

शब्दार्थ—तेन = उसने। क्षमाभुजा = पृथ्वी के पालक राजा ने। भीमनृपात्मजाश्रितः = राजा भीम की कन्या (दमयन्ती) के अधीन रहने वाले। गुणः (सौन्दर्य और वैदुष्य आदि) गुणों को। श्रवणातिथिः = कान का अतिथि। अकारि = बनाया। तदुच्चधैर्यव्ययसंहितेषुणा = उस राजा नल के उत्कृष्ट धैर्य को नष्ट करने के लिए बाणों का संधान करने वाले। स्मरेण = कामदेव ने। स्वात्मशरासनाश्रयः = अपने धनुष पर आश्रित रहने वाली। गुणः = प्रत्यञ्चा को।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से अवतरित प्रस्तुत श्लोक में दमयन्ती के प्रति अनुरागी राजा नल के काम संतप्त मन का चित्रण किया गया है।

हिन्दी अनुवाद—उस राजा नल ने राजा भीम की कन्या दमयन्ती के अधीन रहने वाले सौन्दर्य और वैदुष्य आदि गुणों को कान का अतिथि बनाया अर्थात् कान तक पहुँचाया तथा उस (नल) के अत्यधिक धैर्य को नष्ट करने के लिए बाणों का सन्धान करने वाले कामदेव के द्वारा अपने धनुष पर आश्रित रहने वाली प्रत्यञ्चा को अपने धनुष पर चढ़ाया गया।

हिन्दी व्याख्या—जैसे ही राजा नल ने दमयन्ती के सौन्दर्य सम्बन्धी गुणों का श्रवण किया, वैसे ही कामपीडित नल का धैर्य नष्ट हो गया, क्योंकि नल दमयन्ती के प्रति अतिशय रूप से अनुरक्त हो गये थे। जैसे ही कामदेव ने दमयन्ती के गुणों को सुना, नल के अत्यधिक धैर्य को नष्ट करने के लिए बाण चढ़ाये हुए कामदेव ने अपने धनुष की डोरी को कान तक खींचा।

संस्कृत व्याख्या—तेन = राजा नलेन। भीमनृपात्मजायाः = दमयन्त्याः। श्रितः गणः = तदीयः सौन्दर्यादिः। श्रवणातिथिः = श्रोत्रविषयः। अकारि = कृतः श्रुत इत्यर्थः। ततः तदुच्चधैर्यव्ययसंहितेषुणा = तस्य नलस्य। उन्नत धैर्यनाशाय संहितेषुणा स्मरेण च स्वात्मनः शरासनाश्रयः = चापनिष्ठो। गुणो = मौर्वी। श्रवणातिथिरकारि। आकर्ण कृत इत्यर्थः।

अमुष्य धीरस्य जयाय साहसी

तदा खलु ज्यां विशिखैः सनाथयन्।

निमज्जयामास यशांसि संशये

स्मरस्त्रिलोकीविजयार्जितान्यपि ॥४५॥

अन्वय—तदा खलु अमुष्य धीरस्य जयाय विशिखैः ज्यां सनाथयन् साहसी स्मरः त्रिलोकीविजयार्जितानि यशांसि अपि संशये निमज्जयामास।

NOTES

शब्दार्थ—तदा = उस समय। खलु = निश्चय ही। अमुष्य = इसके। धीरस्य = धीर स्वभाव वाले नल के। जयाय = जीतने के लिए। विशिखैः = बाणों के द्वारा। ज्याम् = धनुष की डोरी को। सनाथयन् = संयुक्त करता हुआ। साहसी = साहस वाले। स्मरः = कामदेव ने। त्रिलोकी विजयार्जितानि = तीनों लोकों पर विजय करने के कारण प्राप्त। यशांसि = यशों को। संशये = सन्देह में। निमज्जयामास = डुबा दिया।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में कवि श्रीहर्ष नल के धैर्य-लोपरूपी कार्य को कामदेव के लिए दुष्कर बता रहे हैं।

हिन्दी अनुवाद—नल का धैर्य नष्ट करने हेतु कामदेव के संकल्प के समय इस स्थिर चित्त वाले राजा नल को जीतने के लिए बाणों से धनुष की डोरी को संयुक्त करते हुए साहसी कामदेव ने तीनों लोकों को जीतने से प्राप्त यशों को भी सन्देह में डुबा दिया था।

हिन्दी व्याख्या—राजा नल स्वभाव से अत्यधिक धीर थे। दमयन्ती के प्रेम और वियोग ने भी उनके स्वभाव को चंचल नहीं बनाया था। कामदेव ने यह निश्चय किया कि मैं राजा नल का धीर स्वभाव समाप्त करके इसे चंचल बना दूँगा। इस प्रकार मैं राजा नल पर विजय प्राप्त कर लूँगा। ऐसा निश्चय करके कामदेव ने अपने धनुष की डोरी पर बाणों को रखा। कामदेव नल को नहीं जीत सकेगा। इस प्रकार उसने अपने त्रिलोक-विजय के यश को संशय में डाल दिया। वह राजा नल को नहीं जीत सकेगा, इससे उसका त्रिलोक-विजय का यश नष्ट हो जायेगा।

संस्कृत व्याख्या—तदा = तस्मिन् समये। खलु = निश्चयेन। अमुष्य धीरस्य = धैर्य-शालिनः नृपस्य नलस्य। जयाय = विजयाय, = जेतुम्। विशिखैः = बाणैः। ज्याम् = प्रत्यज्वाम्। सनाथयन् = बाणयुक्तां कुर्वन्। साहसी = साहसपूर्णः। स्मरः = कामः। त्रिलोकीविजयार्जितानि = त्रिभुवनविजयेन प्राप्तानि। यशांसि = यशः समूहम्। संशये = सन्देहे। निमज्जयामास = पातयामास।

अनेन भैमीं घटयिष्यतस्तथा

विधेरबन्धेच्छतया व्यलासि तत्।

अभेदि तत्तादृगनङ्गमार्गणै

यदस्य पौष्पैरपि धैर्यकञ्चुकम् ॥ ४६ ॥

अन्वय—अस्य तत् तादृक् धैर्यकञ्चुकं पौष्पैः अपि अनङ्गमार्गणैः यत् अभेदि तत् तथा अनेन भैमीं घटयिष्यतः विधेः अवन्धेच्छतया व्यलासि।

शब्दार्थ—अस्य = इस नल का। तादृक् = उस प्रकार। धैर्यकञ्चुकम् = धैर्यरूपी कवच। पौष्पैरपि = कुसुमनिर्मित। अनङ्गमार्गणैः = कामदेव के बाणों से। अभेदि = विदीर्ण हो गया। अनेन = इस नल के साथ। भैमीम् = दमयन्ती का। घटयिष्यतः = संगम कराने वाले। विधेः = विधाता के। अवन्धेच्छतया = अमोघ संकल्प का ही। व्यलासि = विलास था।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में महान् एवं धीर व्यक्ति होते हुए नल के संयोगवश काम के वशीभूत हो जाने का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद—नल के साथ दमयन्ती का संगम कराने वाले विधाता (ब्रह्मा) के अमोघ संकल्प का ही विलास था कि कामदेव के वैसे कुसुम निर्मित वाणों से भी नल का धैर्यरूपी कवच भिन्न हो गया।

नैषधीयचरितम् (श्रीहर्ष)

NOTES

हिन्दी व्याख्या—यद्यपि साहसी कामदेव ने अपने बल से तीनों लोकों के लोगों पर विजय प्राप्त कर ली थी, इसलिए उसका यश चारों ओर फैल गया था, लेकिन जब उसने धैर्यशाली नल पर विजय प्राप्त करने की इच्छा की, तब अपने यश को सन्देह में डाल दिया, क्योंकि राजा नल महान् धैर्यशाली थे, उन्हें कामदेव के द्वारा जीत पाना एक दुष्कर कार्य था, फिर भी उसने नल से सामना करने का साहस किया। जिससे दुर्भेद्य इस नल का धैर्यरूपी कवच कामदेव के पुष्पमय अर्थात् अति कोमल वाणों से विदीर्ण हो गया, उस कारण उस नल के साथ उस प्रकार दमयन्ती का संगम कराने वाले भाग्य के सफल मनोरथ का ही वह विलास था।

संस्कृत व्याख्या—अनेन-नलेन सह। भैमीम् = दमयन्तीम्। घटयिष्यतः = संयोजयिष्यतः। विधेः = ब्रह्मणः अमोघसंकल्पत्वेन तत्। तथा = तेन प्रकारेण विलासितम्। चत् पौष्पैः अपि = पुष्पमयैः अपि न तु कठिनैरिति भावः। अनङ्गबाणैः, अस्य-नलस्य, तादृक = अतिकठोरम्। तत् = प्रसिद्धम्। धैर्यकञ्चुकम् = धैर्यरूपी कवचम्। अभेदि = भिन्नम्। दमयन्तीनलयोः दाम्पत्यघटनाय कामबाणैः नलधैर्यं कञ्चुकभेदनाद् विधातुः अमोघसंकल्पत्वं विज्ञायते इत्यर्थः, दैवानुकूल्ये किं दुष्करम् ? इति भावः।

किमन्यदद्यापि यदस्त्रतापितः

पितामहो वारिजमाश्रयत्यहो।

स्मरं तनुच्छायतया तमात्मना

शशाक शङ्के स न लङ्घितुं नलः ॥४७॥

अन्वय—किमन्यत् ? अहो, यदस्त्रतापितः पितामहः अद्यापि वारिजं आश्रयति। तं स्मरं स नलः आत्मनः तनुच्छायतया लङ्घितुं न शशाक (इति) शङ्के।

शब्दार्थ—किमन्यत् = और क्या कहा जाये। यदस्त्रतापितः = जिसके अस्त्र से संतप्त किये गये। पितामहः = ब्रह्मा। वारिजम् = कमल का। आश्रयन्ति = आश्रय लिए हुए हैं। तं स्मरम् = उस कामदेव को। आत्मनः = अपनी। तनुच्छायतया = परछाई होने के कारण। लङ्घितम् = लाँघने के लिए। न शशाक = समर्थ न हो सके। शङ्के = शङ्का करता हूँ।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से अवतरित प्रस्तुत श्लोक में धैर्य भङ्ग के कारण राजा नल द्वारा कामदेव को न लाँघे जाने का वर्णन किया जा रहा है।

हिन्दी अनुवाद—और क्या कहा जाय ? आश्चर्य है कि जिस कामदेव के अस्त्रों से ब्रह्मा आज भी कमल का आश्रय लिए हुए हैं, उस कामदेव को वह नल अपने शरीर की कान्ति से युक्त होने के कारण अतिक्रमण कर सकने में समर्थ न हो सके, ऐसा मैं मानता हूँ।

हिन्दी व्याख्या—कवि का मानना है कि जिस कामदेव ने अतिशय वृद्ध को या पिता के भी पिता ब्रह्मा जी को ऐसा संतप्त कर दिया कि बहुत समय के व्यतीत होने पर भी वे आज तक सन्ताप निवारक शीतल कमल पर निवास करते हैं, वह कामदेव अपने प्रबल प्रतिद्वन्द्वी नल को नहीं संतप्त करेगा, यह कैसे सम्भव है ?

NOTES

नल का शरीर अत्यन्त सुन्दर था अर्थात् वे कामदेव से भी अधिक सुन्दर थे। कामदेव को उनके शरीर की छाया (परछाई) ही माना गया था, अतएव नल अपने शरीर की परछाई रूप कामदेव को नहीं लांघ सके अर्थात् नहीं जीत सके। यह उचित ही है कि संसार में कोई प्रबलतम व्यक्ति भी अपने शरीर की परछाई को कदापि नहीं लांघ सकता। स्वशरीरच्छाया सबके लिए अनतिक्रमणीय ही हुआ करती है अथवा अपने से कम सौन्दर्य वाले काम को वह नल नहीं लांघ सके अर्थात् उससे जीत नहीं सके।

संस्कृत व्याख्या—अहो = आश्चर्यम्, अपरं किम् उच्यते। यदस्त्रतापितः = यस्य (स्मरस्य) आयुधः सन्तापितः। पितामहः = ब्रह्मा। अद्यापि = इदानीम् अपि। वारिजम् = जलजम्। आश्रयति = अवलम्बते। कामसन्तापानयार्थं कमलासनमधिवसतीतिभावः। तम् = स्मरं कामम्। सः = नलः। आत्मनः = स्वस्थ तनुच्छायतया = तनोः शरीरस्य छाया कान्तिः यस्य तस्य भावः तत् तया। लङ्घितुम् = अतिक्रमितुम्। न शशाक-न समर्थो वभूव, इति, शङ्के = इत्यहं मन्ये।

उरोभुवा कुम्भयुगेन जृम्भितं

नवोपहारेण वयस्कृतेन किम्।

त्रपासरिदुर्गमपि प्रतीर्य सा

नलस्य तन्वी हृदयं विवेश यत् ॥ ४८ ॥

अन्वय—सा तन्वी त्रपासरिदुर्गमपि अपि प्रतीर्य नलस्य हृदयं यत् विवेश (तत्) किं वयस्कृतेन नवोपहारेण उरोभुवा कुम्भयुगेन जृम्भितम्।

शब्दार्थ—सा तन्वी = उस कृशाङ्गी (दमयन्ती) ने। त्रपासरिदुर्गमपि = लज्जारूपिणी नदी एवं दुर्ग को भी। प्रतीर्य = पार करके। यत् विवेश = जो प्रवेश किया। वयस्कृतेन = युवावस्था द्वारा दिये गये। नवोपहारेण = नवीन उपहाररूप। उरोभुवा = छाती में उत्पन्न दो। कुम्भयुगेन = कुचकलशों ने। जृम्भितम् = विलास किया।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से अवतरित प्रस्तुत श्लोक में दमयन्ती का राजा नल के हृदय में प्रविष्ट होने का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद—उस कृशाङ्गी दमयन्ती ने लज्जारूपिणी नदी तथा दुर्ग को भी पार करके नल के हृदय में प्रवेश पा लिया, वह क्या युवावस्था द्वारा दिये गये उपहार रूपी छाती में उत्पन्न हुए दोनों स्तनरूपी कलशों का विलास था ?

हिन्दी व्याख्या—जिस प्रकार कोई सामान्य या दुर्बल व्यक्ति अपनी छाती पर रखे हुए दो घड़ों की सहायता से नदी को पारकर अभीष्ट स्थल पर पहुँच जाता है, उसी प्रकार मानो कृशाङ्गी दमयन्ती भी युवावस्था से सम्पादित नये उपहार रूप कलशाकार विशाल स्तनद्वय की सहायता से लज्जारूपिणी नदी के उच्चतम प्राकार को या लज्जारूपिणी नदी तथा दुर्ग को पार कर नल के हृदय में प्रवेश कर गयी।

संस्कृत व्याख्या—सा तन्वी = सा कृशाङ्गी दमयन्ती। त्रपासरिदुर्गमपि = त्रपा लज्जा एव सरित् नदी तस्याः दुर्गं नल सम्बन्धित तदपि, प्रतीर्य = तीर्त्वा नलस्य हृदयं = चित्तम्, यत्, विवेश = प्रविष्टवती, तत् प्रवेशनम्, किम् वयस्कृतेन = वयसा युवावस्थया कृतेन संपादितेन, नवोपहारेण = नूतनोपायेन, उरोभुवा = वक्षस्थलजातेन-वक्षः स्थलोत्पन्न, कुम्भयुगेन = कलशयुग्मेन, कुचयुगल-रूपेणेत्येषः विलसितम्।

अपह्वानस्य जनाय यन्निजाम्
अधीरतामस्य कृतं मनोभुवा ।
अबोधि तज्जागरदुःखसाक्षिणी
निशा च शय्या च शशाङ्गकोमला ॥४९॥

नैपथीयचरितम् (श्रीहर्ष)

NOTES

अन्वय—निजां अधीरतां जनाय अपह्वानस्य अस्य मनोभुवा यत् कृतं तत् जागरदुःखसाक्षिणी शशाङ्गकोमला शय्या च निशा च अबोधि ।

शब्दार्थ—निजाम् = अपनी । अधीरताम् = अधीरता को, व्याकुलता को । जनाय = लोगों से । अपह्वानस्य = छिपाते हुए । अस्य = इस राजा नल के साथ । मनोभुवा = कामदेव ने । जागरदुःखसाक्षिणी = जागरण के दुःख की साक्षी बनी हुई । शशाङ्गकोमला = मृगविशेष की गोद के समान कोमल । अबोधि = जाना ।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से अवतरित प्रस्तुत श्लोक में विरही राजा नल की अतिशय अधीरता का वर्णन है ।

हिन्दी अनुवाद—अपनी अधीरता को लोगों से छिपाते हुए इस राजा नल के साथ कामदेव ने जो किया था, उसे जागरण के दुःख की साक्षी बनी हुई मृगविशेष की गोद के समान कोमल बिस्तर और रात ने ही जाना ।

हिन्दी व्याख्या—दमयन्ती के वियोग में दुःखी नल अपनी व्याकुलता को लोगों से छिपाने का प्रयास करते रहे । इसीलिए नल की दमयन्ती-विरहजन्या अधीरता को दूसरे किसी ने नहीं पहचाना, वे रात भर जागते हुए कोमल शय्या पर लेटे रहते थे अर्थात् अपनी शय्या पर करवटें ही बदलते रहते थे और रातें व्यतीत करते रहते थे । अतः राजा नल की शारीरिक एवं मानसिक कष्टजन्य विकलता को प्रत्यक्ष रूप से देखने वाली मृगविशेष की गोद के समान अथवा चन्द्रमा के समान शुभ्र और कोमल शय्या ही थी अथवा रात्रि ही थी ।

संस्कृत व्याख्या—निजाम् = स्वकीयाम् । अधीरताम् = अधैर्यं चपलतामिति भावः । जनाय = लोकाय । अपह्वानस्य = गोपायतः दर्शनं न कारयतः, अस्य नलस्य । मनोभुवा = कामदेवेन यज्जागरणप्रलापादिकं कृतम् तत् सर्वं जागरणदुःखस्य साक्षिणी-अनिद्रापीडायाः साक्षाद्द्रष्टी, शशाङ्गकोमला = शशस्य मृगविशेषस्य अङ्ग उत्सङ्गं तद्वत् कोमला मृदुला । शय्या च = शयनीयं च । निशा च = रात्रिश्च, अबोधि = जानाति स्म ज्ञातवती वा । निशा शय्या च नलजागरदुःखसाक्षिणीति भावः ।

स्मरोपतप्तोऽपि भृशं न स प्रभु-
विदर्भराजं तनयामयाचत ।
त्यजन्त्यसूक्ष्मं च मानिनो वरम्
त्यजन्ति न त्वेकमयाचितव्रतम् ॥५०॥

अन्वय—भृशं स्मरोपतप्तोऽपि स प्रभुः विदर्भराजं तनयां न अयाचत । मानिनः असून् शर्म च वरं त्यजन्ति, तु एकम् अयाचितव्रतं न त्यजन्ति ।

शब्दार्थ—भृशम् = अत्यधिक । स्मरोपतप्तः = काम द्वारा संतप्त हो जाने पर । विदर्भराजम् = विदर्भ नरेश भीम से । तनयाम् = पुत्री दमयन्ती को । न अयाचत = नहीं माँगा । मानिनः = मनस्वी जन । असून् =

प्राणों को। शर्म च = और सुख को। वरम् = भले ही। त्यजन्ति = छोड़ दिया करते हैं। अयाचितव्रतम् = याचना न करने के नियम को।

NOTES

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से अवतरित प्रस्तुत श्लोक में अत्यधिक कामसंतप्त नल के द्वारा दमयन्ती को न माँगे जाने का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद—काम द्वारा अत्यधिक संतप्त किये जाने पर भी राजा नल ने विदर्भ नरेश भीम से उनकी पुत्री दमयन्ती को नहीं माँगा, क्योंकि मनस्वीजन प्राणों और सुख को भले ही छोड़ दिया करते हैं, लेकिन एक-मात्र याचना न करने के नियम का त्याग नहीं करते।

हिन्दी व्याख्या—चूँकि नल ने अपनी कान्ति से कामदेव को नीचा दिखा दिया था अर्थात् पराजित कर दिया था, इसलिए कामदेव सदैव नल से बदला लेने के लिए इच्छा रखता था। इसलिए उसने राजा नल के हृदय में दमयन्ती के प्रति अनुरागातिशय उत्पन्न कर दिया, जिससे वे संतप्त होकर रातें जागते हुए व्यतीत कर देते थे। ऐसी दशा को जानकर कामदेव चाहते थे कि यह राजा नल विदर्भ नरेश भीम से उनकी कन्या दमयन्ती की माँग करे, लेकिन स्वाभिमानी राजा नल ने कामसंतप्त होते हुए भी दमयन्ती की याचना नहीं की, क्योंकि मनस्वी जनों की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है कि वे अपने प्राणों और सुखों का त्याग सरलतापूर्वक कर सकते हैं, लेकिन किसी से न माँगने सम्बन्धी अपने नियम का कभी भी उल्लंघन नहीं किया करते।

संस्कृत व्याख्या—भृशम् = अधिकं गाढम्, स्मरोतप्ताः। अपि = कामसंतप्तः अपि, प्रभुः समर्थः सः नलः विदर्भराजं भीमनृपतिं तनयां दमयन्तीं। न अयाचत् = न याचितवान्। तथाहि-मानिनः अभिमानिनः मनास्विनः इत्यर्थः, असून् प्राणान्, शर्म च = सुखं च त्यजन्ति = जहति। वरं = प्राणसुखत्यागोऽपि मनाक् प्रियः। तु = किन्तु एकम् = अद्वितीयम्, अचायितव्रतम् = अयाचनानियमं तु न त्यजन्ति = नो जहति, मनस्विनां प्राणादित्यागदुःखादपि याचनादुःखं दुःसहं भवतीति भावः।

मृषाविषादाभिनयादयं क्वचित्

जुगोप निःश्वासततिं वियोगजाम्।

विलेपनस्याधिकचन्द्रभागता

विभावनाच्चापललाप पाण्डुताम् ॥५१॥

अन्वय—अयं वियोगजां विश्वासततिं क्वचित्, मृषाविषादाभिनयात् जुगोप, च पाण्डुतां विलेपनस्य अधिकचन्द्रभागताविभावनात् अपललाप।

शब्दार्थ—अयं = इस (राजा नल) ने। वियोगजाम् = विरह से उत्पन्न। निःश्वासतिम् = निःश्वास के समूह को। मृषाविषादाभिनयात् = झूठे दुःख के बहाने से। जुगोप = छिपाया। पाण्डुताम् = पीलेपन को। विलेपनस्य = चन्दन के लेप में। अधिक चन्द्रभागताविभावनात् = चन्दन में कर्पूर के अंश के अधिक होने की कल्पना से। अपललाप = छिपाया।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से अवतरित प्रस्तुत श्लोक में विरही नल के द्वारा निःश्वासों तथा पाण्डुता को छिपाये जाने का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद—इस राजा नल ने विरह से उत्पन्न निःश्वासों के समूह को अथवा आहों की परम्परा को किसी दूसरी वस्तु के विषय में झूठे दुःख के बहाने से छिपाया और पीलेपन को चन्दन में कर्पूर के अंश के अधिक होने की कल्पना से छिपाया।

NOTES

हिन्दी व्याख्या—नल की अतिशय विरही भावना को अभिव्यक्त करते हुए कवि कह रहे हैं कि राजा नल दमयन्ती के वियोग के कारण लम्बी-लम्बी साँसें लेकर आह भर रहे थे और उसी के वियोग में वह पीले पड़ गये थे। इन लक्षणों से किसी को प्रतीत न हो जाय कि वे दमयन्ती के विरह में संतप्त हैं, इसलिए राजा नल ने आहों की परम्परा को किसी दूसरी वस्तु का बहाना बनाकर छिपाया अर्थात् यह उजागर नहीं होने दिया कि वे कामसंतप्त हैं। इसी प्रकार मुख के पीलेपन को यह कहकर छिपाया कि चन्दन के लेप में कर्पूर का अंश अधिक हो गया है। इन्हीं कारणों से लोग नल की विकलता को नहीं जान पाते थे।

संस्कृत व्याख्या—अयम् = नलः। वियोगजाम् = दमयन्ती विरहजनिताम् निःश्वासपरम्परां मिथ्याखेदप्रकाशनात्। जुगोप = सर्वंवार गोपितवान् वा, च। पाण्डुताम् = विशदतां शरीरपाण्डिमानं च, चन्दनादि लेपन द्रव्यस्य, अधिकचन्द्रभागाविभावनात् = अधिकःचन्द्रभागःकर्पूरराशः यस्मिन् तस्यभावः तत्ता तस्याः विभावनात् ज्ञापनात् अपललाप = अपलपितवान् निहृते रस्म।

शशाक निहोतुमनेन तत्प्रियाम्

अयं बभाषे यदलीकवीक्षिताम्।

समाजः एवालपितासु वैणिकैः

मुमूर्च्छं यत्पञ्चममूर्च्छनासु च॥ ५२॥

अन्वय—अयं यत् अलीकवीक्षितां प्रियां बभाषे च यत् वैणिकैः पञ्चममूर्च्छनासु आलपितासु समाजे एव मुमूर्च्छं, अयं, तत् अनेन निहोतुं शशाक।

शब्दार्थ—अयम् = इस (राजा नल) ने। चत् = जो। अलीकवीक्षितां = मिथ्यारूप में देखी गयी। प्रियाम् = प्रिया (दमयन्ती) से। बभाषे = वार्तालाप किया। वैणिकैः = वीणावादकों द्वारा। पञ्चममूर्च्छनासु = पञ्चम स्वर की मूर्च्छनाओं के। आलपितासु = आलापों के अवसर पर। समाजे एव = सभा में ही। मुमूर्च्छं = मूर्च्छित हो गये। निहोतुं = छिपाने में। शशाक = समर्थ हो सके।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में दमयन्ती के साथ हुई वार्ता तथा विरह से उत्पन्न मूर्च्छा को नल द्वारा छिपाये जा सकने का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद—इस राजा नल ने जो मिथ्या रूप में देखी गयी प्रिया (दमयन्ती) से वार्तालाप किया और जो वीणावादकों द्वारा पञ्चम मूर्च्छना के आलाप किये जाने पर सभा में ही (वे) मूर्च्छित हों गये। भाग्य से वे उसे छिपा सकने में समर्थ हो सके।

हिन्दी व्याख्या—राजा नल का दमयन्ती के प्रति इतना अधिक अनुराग था कि उसे चारों ओर दमयन्ती ही दिखाई देती थी, इसलिए भावना के वशीभूत होकर मिथ्या रूप में देखी गयी प्रिया दमयन्ती से जो कहा तथा वीणा बजाने वालों के पञ्चम स्वर की मूर्च्छनाओं के अवसर पर जनसभा में ही जो मूर्च्छित हुए उसे भाग्य ही छिपा सका अर्थात् उक्त भाषण एवं स्वयं मूर्च्छित हो जाने सम्बन्धी दोनों बातों को भाग्य के बल पर लोग नहीं देख सके।

NOTES

संस्कृत व्याख्या—अयम् = राजा नलः। अलीकवीक्षितां = मिथ्याऽवलोकितां प्रियां-बल्लभां दमयन्तीमित्यर्थः। यत् बभाषे-भाषितवान्। निरन्तरध्यानवशात्पुरः सम्प्रातां विदित्वेति शेषः। वैणिकैः = वीणावादकैः वीणावादन-चतुरैर्वा। पञ्चममूर्च्छनासु = पञ्चमस्वरमूर्च्छासु। आलपितासु = पुनः पुनर्गीतासु सतीसु। समाजे एव = सभास्थितजनसमूहे एव च। यत् = यस्मात्कारणात्। मुमूर्च्छ = मूर्च्छाम् आप्नोत्, स्फुटतां न प्राप्नोति इति भावः। तत् = भाषणम्, अनेन प्रकारेण। निहनतुं = गोपायितुम् आच्छादयितुम् वा समर्थो बभूव।

अवाप सापत्रपतां स भूपति

धुरि जितेन्द्रियाणां कीर्तितस्थितिः।

असंवरे शम्बरवैरिविक्रमे

क्रमेण तत्र स्फुटतामुपेयुषि।। ५३।।

अन्वय—जितेन्द्रियाणाम् धुरि कीर्तितस्थितिः स भूपतिः तत्र असंवरे शम्बरवैरिविक्रमे क्रमेण स्फुटतां उपेयुषि (सति) सापत्रपतां अवाप।

शब्दार्थ—जितेन्द्रियाणाम् = जितेन्द्रिय पुरुषों में। धुरि = अग्रगण्य। कीर्तितस्थितिः = कीर्तिमान स्थापित करने वाले। भूपतिः = राजा नल। तत्र = समाज में। असंवरे = न छिपाये जा सकने वाले। शम्बरवैरिविक्रमे = शम्बर नामक असुर के शत्रु अर्थात् कामदेव के पराक्रम अर्थात् काम द्वारा उत्पन्न विकार के। स्फुटतां उपेयुषि = प्रकटता को प्राप्त हो जाने पर। सापत्रपतां = सलज्जता को। अवाप = प्राप्त हुए।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में राजा नल के कामजन्य विकारों को लोगों द्वारा जान लिये जाने का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद—जितेन्द्रिय पुरुषों में अग्रगण्य अपनी कीर्ति को स्थापित करने वाले वे राजा नल उस सभा (समाज) में न छिपाये जा सकने वाले काम द्वारा उत्पन्न विकार के क्रमशः प्रकट हो जाने पर अत्यधिक लज्जा को प्राप्त हुए।

हिन्दी व्याख्या—राजा नल अपने सौन्दर्य तथा इन्द्रियों पर संयम रखने में अग्रणी रहे थे, फिर भी दमयन्ती के प्रति आसक्त हो जाने के कारण अपने कामजन्य विकार-पाण्डुता, चपलता, मूर्च्छा आदि को नहीं छिपा सके अर्थात् जनसमुदाय में उनकी गोपनीयता के भङ्ग हो जाने के कारण वे लज्जित हो गये, क्योंकि काम विकार को गोपनीय नहीं बनाया जा सकता। अतः नल की ऐसी शारीरिक अवस्था हो जाने पर लोगों द्वारा वास्तविकता का समझ लिया जाना स्वाभाविक ही था।

संस्कृत व्याख्या—जितेन्द्रियाणाम् = वशीकृत-हृषीकाणांजनानाम्। धुरि = अग्रे। कीर्तितस्थितिः = स्तुतमर्यादः। स = प्रसिद्धः। भूपतिः = राजा नलः। तत्र = समाजे। असंवरे = निरोद्धुम् अशक्ये। शम्बरवैरिविक्रमे = मदनपराक्रमे, मदननानाविधविकार इति भावः। क्रमेण = परिपाद्या, स्फुटताम् = प्रकाशताम्, उपेयुषि = प्राप्तवति सति। साऽपत्रपताम् = अनेभ्यो लज्जितताम्, अवाप = प्राप, जनसमाजे कामविकारे व्यक्ते सति नलो लज्जितो बभूवेति भावः।

अलं नलं रोद्धुममी किलाभवन्

गुणा विवेकप्रभवा न चापलम्।

NOTES

अन्वय—अमी विवेकप्रभवाः गुणाः नलं चापलं रोद्धुम् अलं न अभवन्, अयम् ईदृशः सर्गनिसर्गः यत् स स्मरः रत्याम् अनिरुद्धम् एव सृजति ।

शब्दार्थ—अमी = ते। विवेकप्रभवाः = युक्तायुक्त ज्ञान से उत्पन्न। गुणाः = धैर्यादि गुण, विशेषताएँ। नलम् = नल की। चापलम् = चपलता को, चंचलता को। रोद्धुम् = रोकने के लिए, रोकने में। अलम् = पर्याप्त, समर्थ। न अभवन् = नहीं हुए। किल = निश्चय से। अयम् = यह। ईदृशः = इस प्रकार। सर्ग-निसर्गः = संसार का स्वभाव, सृष्टि की प्रकृति। यत् = कि। सः स्मरः = वह कामदेव। रत्याम् = अपनी पत्नी रति में होने पर। अनिरुद्धम् एव = अनिरुद्ध की हीन चंचलता को ही। सृजति = जन्म देता है, उत्पन्न करता है।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में नल के कामजन्य विकारों का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद—ये युक्तायुक्त ज्ञान से उत्पन्न गुण भी नल की चपलता को रोकने में समर्थ नहीं हुए। इस प्रकार प्रकृति का यह स्वभाव ही है कि वह कामदेव रति से अनिरुद्ध की हीन चंचलता को जन्म देता है अथवा अनुराग होने पर चञ्चलता को जन्म देता है।

हिन्दी व्याख्या—राजा नल त्याज्य और ग्राह्य आदि विवेक तथा धैर्य आदि गुणों से युक्त था, फिर भी कामदेव के प्रभाव से वह चञ्चल हो उठा अर्थात् उन्माद, मूर्च्छा आदि से युक्त हो गया। वस्तुतः यह सृष्टि का नियम है कि रति अर्थात् अनुराग होने पर कामदेव चञ्चलता को जन्म देता है अर्थात् कामदेव रति-कर्म में चञ्चलता को जन्म देता है अथवा कामदेव 'रति' नाम की अपनी प्रिया में अनिरुद्ध नामक अपने पुत्र को ही जन्म देता है। अनिरुद्ध कामदेव के पुत्र का नाम है। इस प्रकार विवेकादि गुण सम्पन्न होने पर भी नल दमयन्ती की विरहजन्य काम-पीड़ा से अतिशय चञ्चल हो उठा।

संस्कृत व्याख्या—अमीः एते, पूर्व वर्णिताः। विवेकप्रभवाः ज्ञानात् उत्पन्नाः। गुणाः = सद्गुणाः। नलम् = नैषधम्। चापलम् = चंचलताम्। रोद्धुम् = निवारयितुम्। अलम् = समर्थाः। न अभवन्। किल = निश्चयेन। अयम् = एषः। ईदृशः = एव विधिः। सर्गनिसर्गः एव = सृष्टैः स्वभावः एव। सः = प्रसिद्धः। स्मरः = कामः। रत्याम् = एतन्नामिकायाम् स्वपत्याम्, प्रीतौ वा। अनिरुद्धम् = एतन्नामकं कृष्णस्यनप्तारं चांचल्यं वा। सृजात = उत्पादयति।

अनङ्गचिह्नं स विना शशाक नो

यदासितुं संसदि यत्नवानपि।

क्षणं तदारामविहारकैतवान्

निषेवितुं देशमियेष निर्जनम् ।। ५५ ।।

अन्वय—यदा स यत्नवान् अपि अनङ्गचिह्नं विना संसदि क्षणं आसितुं न शशाक तदा आरामविहारकैतवात् निर्जनं देशं निषेवितुं इत्येष।

NOTES

शब्दार्थ—यदा सः = जब वह (नल)। **यत्नवान् अपि** = प्रयास करने पर भी। **अनङ्गचिह्नम्** = मूर्च्छा, प्रलाप आदि कामविकार के बिना। **संसदि** = सभा में। **आसितुम्** = बैठने के लिए। **न शशाक** = समर्थ नहीं हुए। **आरामविहारकैतवात्** = उद्यान भ्रमण के बहाने। **निर्जनम् देशम्** = निर्जन स्थान का। **निषेवितुम्** = सेवन करने के लिए। **इयेष** = इच्छा की।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से अवतरित प्रस्तुत श्लोक में नल द्वारा निर्जन उद्यान में भ्रमण की इच्छा किये जाने का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद—जब (राजा) नल प्रयत्न करने पर सभा में मूर्च्छा, प्रलाप आदि काम विकारों के बिना बैठने में समर्थ नहीं हुए, तब उन्होंने उद्यान-भ्रमण के बहाने निर्जन स्थान के सेवन करने के लिए इच्छा की।

हिन्दी व्याख्या—राजा की कुछ सीमाएँ, विशेषताएँ होती हैं। वे दमयन्ती के प्रति आसक्त थे, वे नहीं चाहते थे कि विरहजन्य विकारों—प्रलाप, मूर्च्छा, पाण्डुता, निःश्वास आदि से सभाजन परिचित हो जावें अर्थात् वे चाहते थे कि मेरी व्याकुलता का भान किसी जन को न लग जावे। इसलिए उन विकारों को शान्त करने के लिए प्रयत्न करते रहे, लेकिन जब वे शान्त नहीं हुए, तब उन्होंने सोचा कि लोगों के बीच में इस दशा में रहना मेरे लिए उचित नहीं है, तब उन्होंने अपने मन में अन्यत्र निर्जन स्थान में भ्रमण करने का विचार करके लोगों से कहा कि मैं भ्रमणादि करने का इच्छुक हूँ और इस बहाने से उन्होंने एतत्सम्बन्धी प्रबन्ध करने का आदेश दिया।

संस्कृत व्याख्या—यदा = यस्मिन् काले। सः = राजा नलः। यत्नवान् अपि = कृतप्रयत्नः अपि। अनङ्गचिह्नम् = मूर्च्छाप्रलापादिकामविकारम्। बिना = ऋते। संसदि = सभायाम्। यदा = यस्मिन् काले आसितुम् = स्थातुम् उपवेष्टुम् वा। क्षणम् = किञ्चित् कालमपि। न शशाक = न समर्थः अभूत्। तदा = तस्मिन् काले। आराम विहार कैतवात् = उपवनक्रीडाछलात्। निर्जनं देशम् = जनरहितं स्थानम्। निषेवितुम् = आश्रयितुम्। इयेष = ऐच्छत्। लजपरिहारार्थम् इति भावः।

अथ श्रिया भर्त्सितमत्स्यकेतनः

समं वयस्यैः स्वरहस्यवेदिभिः।

पुरोपकण्ठोपवनं किलेक्षिता

दिदेश यानाय निदेशकारिणः॥ ५६॥

अन्वय—अथ श्रिया भर्त्सितमत्स्यकेतनः स्वरहस्यवेदिभिः वयस्यै समं पुरोपकण्ठोपवनं किल ईक्षिता निदेशकारिणः यानाय दिदेश।

शब्दार्थ—अथ = इसके पश्चात्। श्रिया = कान्ति से, सौन्दर्य से। भर्त्सितमत्स्यकेतनः = कामदेव को तिरस्कृत करने वाले नल ने। स्व रहस्यवेदिभिः = अपना रहस्य जानने वाले। वयस्यैः समम् = मित्रों के साथ। पुरोपकण्ठोपवनम् = पुर + उपकण्ठ + उपवनम् = नगर के समीपवर्ती उपवन को। ईक्षिता = देखने का इच्छुक। इति = इस कारण। किल = निश्चित रूप से। निदेशकारिणः = आज्ञापालन करने वालों को, सेवकों को। यानाय = वाहन लाने के लिए। दिदेश = आदेश दिया।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में उद्यान विहार के इच्छुक राजा नल द्वारा सेवकों को आदेश दिये जाने का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद—तदनन्तर सौन्दर्य से कामदेव को तिरस्कृत करने वाले नल ने अपने रहस्य को जानने वाले मित्रों के साथ नगर के पास में स्थित उद्यान को देखने की इच्छा से सेवकों को वाहन लाने के लिए आदेश दिया।

हिन्दी व्याख्या—उद्यान-विहारार्थ इच्छा करने के बाद कामपीडित होकर भी अपनी शारीरिक शोभा से कामदेव को तिरस्कृत करने वाले राजा नल ने उन मित्रों के साथ नगर के निकट के उपवन में जाने की इच्छा से सेवकों को सवारी लाने के लिए आदेश दिया, जो मित्र यह जानते थे कि राजा नल विहार के लिए उद्यान नहीं जा रहे हैं, अपितु अपने अन्दर उत्पन्न हुए काम के चिह्नों को छिपाने के लिए जा रहे हैं।

संस्कृत व्याख्या—अथ = अनन्तरम्। श्रिया = कान्त्या, सौन्दर्येण। भर्त्सितमत्स्य केतनः = मीनकेतनस्य कामस्य तिरस्कारं कृतवान् सः नलः। स्वरहस्यवेदिभिः = निजस्य मर्म ज्ञातृभिः। वयस्यैः मित्रैः। समम् = सार्द्धम्। पुरोपकण्ठोपवनम् = नगरसमीपवर्तिनम् उद्यानम्। ईक्षिता = दृष्टम् इच्छुकः। इति = अनेन कारणेन। निदेशकारिणः = सेवकान्। यानाय = यानस्य आनयनाय। दिदेश = आज्ञापयामास।

अमी ततस्तस्य विभूषितं सितं

जवेऽपि मानेऽपि च पौरुषाधिकम्।

उपाहरन्ऽश्वमजस्रचञ्चलैः

खुराञ्चलैः क्षोदितमन्दुरोदरम्॥ ५७॥

अन्वय—ततः अमी तस्य विभूषितं सितं जवे अपि माने अपि पौरुषाधिकं अजस्रचञ्चलैः खुराञ्चलैः क्षोदितमन्दुरोदरं अश्वम् उपाहरन्।

शब्दार्थ—ततः = उसके बाद। अमी = वे सेवक। विभूषितम् = भलीभाँति सजे हुए। सितम् = सफेद। जवे अपि = वेग में भी। माने अपि = परिमाण में भी। पौरुषाधिकम् = पुरुष की अपेक्षा अधिक परिमाण वाले। अजस्रचञ्चलैः = निरन्तर चञ्चल। खुराञ्चलैः = खुरों के अग्रभागों से। क्षोदितमन्दुरोदरं = घुड़साल का फर्श खोदने वाले। अश्वम् = घोड़े को। उपाहरन् = ले आये।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में सेवकों द्वारा उत्तम घोड़े को नल के समीप लाये जाने का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद—उसके बाद वे सेवक भलीभाँति सजे हुए श्वेतवर्ण, वेग तथा ऊँचाई में भी पुरुष की अपेक्षा अधिक परिमाण वाले और निरन्तर चञ्चल खुरों के अग्रभागों से घुड़साल का फर्श खोदने वाले घोड़े को उस नल के लिए लाये।

हिन्दी व्याख्या—जब राजा नल उद्यान-भ्रमण करना चाहते थे, तब नल के आदेशानुसार उसके आज्ञाकारी सेवक उत्तम लक्षणों से सम्पन्न विविध अलंकारों से सुसज्जित श्वेत वर्ण वाले घोड़े को उसके समीप लाये। वह घोड़ा सामान्य घोड़ा नहीं था, बल्कि तीव्र गति वाला, ऊँचाई में पुरुष से भी अधिक परिमाण वाला था। वह निरन्तर अपनी चञ्चल टापों द्वारा घुड़साल के फर्श को खोदता रहता था।

संस्कृत व्याख्या—ततः = तदनन्तरम्। तस्य = नलस्य। अमी = निदेशकारिणः भृत्याः। विभूषितम् = अलंकृतम्। सितम् = श्वेतवर्णम् जवे अपि = वेगे अपि। माने अपि च = परीक्षणे अपि च। पौरुषाधिकम् =

पुरुषप्रमाणाधिकम् । अजस्रचञ्चलैः = निरन्तरचपलैः । खुराञ्चलैः = शफाग्रभागे । क्षोदितमन्दुरोदरम् = क्षोदितं चूर्णीकृतं मन्दुरायाः वाजिशालायाः उदरं मध्यभागं येन तादृशम् अश्वम् = घोटकम् हयम् वा उपाहरत् = उपानीतवन्तः ।

NOTES

अथान्तरेणावटुगामिनाध्वना

निशीथिनीनाथमहस्सहोदरैः ।

निगालगाद्देवमणेरिवोत्थितै

विराजितं केसरकेशरश्मिभिः ॥ ५८ ॥

अन्वय—अथ अन्तरेण अवटुगामिना अध्वना निगालगाद् देवमणेः उत्थितैः इव निशीथिनीनाथमहस्सहोदरैः केसरकेशरश्मिभिः विराजितम् ।

शब्दार्थ—अथ = घोड़े के आ जाने के अनन्तर । आन्तरेण = अन्दर की ओर से । अवटुगामिना = गर्दन के पिछले भाग की ओर जाने वाले । अध्वना = मार्ग से । निगालगात् = गलप्रदेश में विद्यमान । देवमणेः = देवमणि नामक भौरी से । उत्थितैः इव = मानो उठे हुए । निशीथिनीनाथमहस्सहोदरैः = चन्द्रमा की किरणों के समान । केसरकेशरश्मिभिः = केसर के बालों की किरणों से । विराजितम् = सुशोभित हुए (अश्व पर सवार हुए) ।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषधमहाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में उस घोड़े का वर्णन है ।

हिन्दी अनुवाद—घोड़े के आ जाने के अनन्तर गर्दन के पिछले भाग की ओर जाने वाले मार्ग से गलप्रदेश में विद्यमान देवमणि नामक शुभलक्षण सूचक चिह्न विशेष से मानो उठे हुए चन्द्रमा की किरणों के समान केसर रूप केशों की किरणों से शोभित (उस घोड़े के ऊपर राजा नल सवार हुए) ।

हिन्दी व्याख्या—राजा नल की सवारी के रूप में सेवकों द्वारा जो घोड़ा लाया गया, उसका वर्णन किया जा रहा है । उस घोड़े के पिछले भाग की ओर जाने वाले मार्ग से होकर गलप्रदेशस्थ देवमणि (दक्षिणावर्त घूमी हुई बालों की भौरी रूप देवमणि नामक शुभलक्षण सूचक चिह्न विशेष) से कण्ठ के बीच में स्थित गर्दन के ऊपरी प्रदेश की ओर जाते हुए मार्ग से निकले हुए तथा चन्द्रमा की किरणों के समान उज्ज्वल वर्ण वाले केसर के बालों की किरणों से शोभित या पक्षिराज गरुड के समान आचरण करने वाले घोड़े पर वे राजा नल सवार हुए ।

संस्कृत व्याख्या—अथ सप्तभिः कुलकमाह-अथ = आनयनान्तरम् सः नलः हयमारुरोह-अश्वोपहाराऽनन्तरं, निशीथिनीनाथ-महस्सहोदरैः = चन्द्रकिरणसदृशैः, शुक्लैरिति भावः । निगालगात् = गलोद्देशस्थात् । देवमणिः = देवमणिनामक दक्षिणावर्तात् । आन्तरेण = कण्ठमध्यवर्तिना । अवटुगामिना = कृकाटिकापर्यन्तगतेन । अध्वना = मार्गेण । उत्थितैः इव = उद्गतैः इव स्थितैरिति शेषः । निशीथिनीनाथमहस्सहोदरैः = निशीथिनी-रात्रिः तस्याः नाथः चन्द्रः, तस्य महांसि किरणाः, तेषां सहोदरैः सदृशैः-चन्द्रांशुसदृशैः । केसरकेशरश्मिभिः = स्कन्ध प्ररूढाः केसरकेशाः तेषां रश्मिभिः अथवा केसरकेश एवं रश्मयः तैः । विराजितम् = शोभितम् (अश्वम्) ।

अजस्रभूमीतटकुट्टनोद्गतै

रुपास्यमानं चरणेषु रेणुभिः ।

रयप्रकर्षाध्ययनार्थमागतै

र्जनस्य चेतोभिरिवाणिमाङ्कितैः ॥ ५९ ॥

अन्वय—अजस्रभूमीतटकुट्टनेत्थितैः रेणुभिः रयप्रकर्षाध्ययनार्थम् आगतैः अणिमाङ्कितैः जनस्य चेतोभिः इव चरणेषु उपास्यमानम्।

नैषधीयचरितम् (श्रीहर्ष)

NOTES

शब्दार्थ—अजस्रभूमीतटकुट्टनोद्गतैः = निरन्तर पृथ्वी तट के ताडन से उठी हुई। रेणुभिः = धूलियों से। रयप्रकर्षाध्ययनार्थम् = वेग के उत्कर्ष को सीखने के लिए। आगतैः = आये हुए। अणिमाङ्कितैः = अणु परिमाण से युक्त। चेतोभिः = मनो के द्वारा। उपास्यमानम् = सेवित होने वाले।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से अवतरित प्रस्तुत श्लोक में मनुष्य के मन की गति से भी तीव्र गति वाले अश्व का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद—निरन्तर पृथ्वीतल के ताडन से उठी हुई धूलियों से मानो तीव्र वेग को सीखने के निमित्त आये हुए अणु परिमाण से युक्त लोगों के अन्तःकरण के द्वारा सेवित होने वाले (अश्व पर नल सवार हुए)।

हिन्दी व्याख्या—तीव्र वेग को सीखने के लिए आये हुए, अणु परमाणु वाले लोगों के चित्तों के समान, लगातार पृथ्वीतल पर ताडन किए जाने से उठी हुई धूलियों के द्वारा उस घोड़े के चरण सेवित किये जा रहे थे, अर्थात् उस घोड़े का वेग मनुष्यों के मन से भी अधिक तीव्र था। अतः लोगों के मन तीव्र वेग की शिक्षा प्राप्त करने के निमित्त उस घोड़े के समीप आये हुए थे। जिस प्रकार अध्ययन के लिए शिष्य गुरु चरणों में उपासना करते हैं, वैसे ही अतिशय वेग के अध्ययन के लिए आये हुए अणु परमाणु मनुष्यों के मनो के समान धूलियों से चरणों में उपासना किये गये घोड़े पर राजा आरुढ़ हुए, ऐसा भाव है।

संस्कृत व्याख्या—अजस्रभूमीतटकुट्टनोद्गतैः = अजस्रं निरन्तरं भूमीतटकुट्टनं पृथ्वीतलचूर्णनं तेन उद्गतैः उत्थितैः। रेणुभिः = धूलिभिः। रयप्रकर्षाध्ययनार्थम् = रयप्रकर्षस्य वेगातिशयस्य अध्ययनार्थम् अभ्यासाय। आगतैः = आयातैः। अणिमाङ्कितैः = अणुत्वपरिमाण विशिष्टैः। जनस्य = लोकस्य चेतोभिः। इव = मनोभिः इव। चरणेषु = पादेषु उपास्यमानम् = सेव्यमानम् (हयमारुरोह)।

चलाचलप्रोथतया महीभृते

स्ववेगदर्पानिव वक्तुमुत्सुकम्।

अलं गिरा वेद किलायमाशयम्

स्वयं हयस्येति च मौनमास्थितम्॥ ६०॥

अन्वय—चलाचलप्रोथतया महीभृते स्ववेगदर्पान् वक्तुं उत्सुकम् इव, 'गिरा अलं अयं स्वयं हयस्य आशयं वेद किल' इति मौनं च आस्थितम्।

शब्दार्थ—चलाचलप्रोथतया = चञ्चल नथुनों के होने से। महीभृते = राजा नल से। स्ववेगदर्पान् = अपने वेग के गर्व को। वक्तुम् = कहने के लिए। उत्सुकम् इव = मानो उत्सुक। गिरा = वाणी से। हयस्य = घोड़े के। आशयम् = आशय को। वेद किल = जानते ही हैं। मौनम् आस्थितम् = मौनभाव को धारण किये हुए।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में घोड़े की चेष्टा तथा नल की अश्वलक्षणज्ञता का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद—अत्यधिक चलायमान नथुनों के होने से राजा नल से अपने वेग के सम्बन्ध में अभिमानयुक्त बातों को कहने के लिए उत्कण्ठित के समान परन्तु वाणी के द्वारा मत कहो, यह राजा नल अपने आप ही घोड़े के अभिप्राय को जानते ही हैं, इस कारण मौनभाव को धारण किये हुए (घोड़े पर राजा नल सवार हुए)।

NOTES

हिन्दी व्याख्या—अश्व की चञ्चलता उसके नथुनों अथवा ओष्ठ के फड़कने से स्पष्टतः झलकने लगती है, दूसरी ओर राजा नल लक्षणज्ञता के पारखी थे। जब अश्व अपने वेग सम्बन्धी दर्पयुक्त बातों को नल से कहना चाहता था, तब उसे भान हुआ कि इस नल से वाणी के द्वारा कुछ मत कहो, ये तो स्वयं ही घोड़े के वास्तविक अभिप्राय को जानने वाले हैं। इसी कारण बाद में घोड़े ने मौन धारण कर लिया। ऐसे मौन धारण करने वाले घोड़े पर राजा नल सवार हुए।

संस्कृत व्याख्या—चलाचलप्रोथतया = अतिचञ्चलनासिकत्वेन। महीभृते = राज्ञे नलायेत्यर्थः। स्ववेगदर्पान् = वेगातिरेकान्। वक्तुम् = कथयितुम्। उत्सुकमिव = उद्यतमिव। गिरा = वाण्या। अलम् = व्यर्थम्। अयम् = नलः, स्वयम् = आत्मना एव। हयस्य = अश्वस्य। आशयम् = अभिप्रायम्। वेद = जानाति। किल = निश्चयेन। इति = एवं विचार्य। मौनं = तूष्णीकत्वम् आस्थितं च = आश्रितं च (तं हयं क्षितिपाकशासनः स आरुरोह)।

महारथस्याध्वनि चक्रवर्तिनः,

परानपेक्षोद्वहनाद्यशःसितम्।

रदावदातांशु मिषादनीदृशां

हसन्तमन्तर्बलमर्वतां रवेः॥ ६१॥

अन्वय—महारथस्य चक्रवर्तिनः अध्वनि परानपेक्षोद्वहनाद् यशः सितम् रदावदातांशु मिषात् रवेः अनीदृशाम् अर्वताम् अन्तर्बलम् हसन्तम् (अयं नलः आरुरोह)।

शब्दार्थ—महारथस्य = महारथी के। चक्रवर्तिनः = चक्रवर्ती के अर्थात् नल के। अध्वनि = मार्ग में। परानपेक्षोद्वहनात् = पर + अनपेक्षा + उद्वहनात् = दूसरे की अपेक्षा अर्थात् सहायता के बिना रथ का उद्वहन करने से, रथ खींचने से, उत्पन्न अथवा प्राप्त। यशःसितम् = यश के कारण धवल। रदावदातांशुमिषात् = रद + अवदात + अंशु मिषात् = दाँतों की स्वच्छ किरणों के बहाने से। रवेः = सूर्य के। अनीदृशाम् = इस प्रकार की विशेषता से रहित। अर्वताम् = घोड़ों के। अन्तर्बलम् = बल को, बल के प्रति। हसन्तम् = हँसते हुए, हँसी उड़ाते हुए घोड़े पर। अयम् = यह। नलः = नल। आरुरोह = आरुढ़ हुआ, सवार हुआ।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत श्लोक में कविवर श्रीहर्ष राजा नल के घोड़े का वर्णन करते हुए कह रहे हैं—

हिन्दी अनुवाद—महारथी एवं चक्रवर्ती राजा नल को मार्ग में दूसरों की अपेक्षा अर्थात् सहायता के बिना ही वहन करने के कारण उत्पन्न यश से शुभ्र अर्थात् श्वेत रंग वाले तथा दाँतों की शुभ्र किरणों के बहाने इस प्रकार के यश से हीन सूर्य के घोड़ों के बल की मन ही मन हँसी उड़ाते हुए घोड़े पर राजा नल सवार हुए।

हिन्दी व्याख्या—राजा नल महारथी चक्रवर्ती थे। दस हजार धनुर्धारियों से अकेला युद्ध करने वाला महारथी कहलाता है। सार्वभौम शासक को चक्रवर्ती कहा जाता है। सूर्य के सात घोड़े आकाश मार्ग में रथ को खींचते हैं। तात्पर्य यह है कि उन्हें एक-दूसरे की सहायता की आवश्यकता होती है। राजा नल का घोड़ा उनके रथ

NOTES

को आकाश में अकेले ही खींचता था। सूर्य के रथ में एक पहिया है और राजा नल का रथ दो पहियों वाला था। सात घोड़े मिलकर एक पहिये वाला रथ खींचें, उनकी अपेक्षा दो पहियों वाला रथ अकेले खींचने वाला राजा नल का घोड़ा श्रेष्ठ एवं शक्तिशाली हुआ। सूर्य के घोड़े हरे रंग के हैं। नल का घोड़ा श्वेत रंग का था। ऐसा प्रतीत होता है कि यश के कारण ही उसका रंग श्वेत हो गया था। काव्यशास्त्र के अनुसार यश का रंग सफेद माना गया है। घोड़ों के दाँत सफेद होते हैं। राजा नल के घोड़े के दाँत भी सफेद थे। अपने दाँतों से निकलने वाली श्वेत किरणों अर्थात् श्वेत आभा के कारण राजा नल का घोड़ा अपने मन में सूर्य के घोड़ों की शक्तिहीनता पर हँसता हुआ प्रतीत हो रहा था। प्रत्येक शक्तिशाली शक्तिहीनों की हँसी उड़ाता है। राजा नल का घोड़ा भी ऐसा ही कर रहा था। काव्यशास्त्र के अनुसार हँसी का रंग भी श्वेत है।

संस्कृत व्याख्या—महारथस्य = दश सहस्र रथिमिः सह योद्धम् समर्थस्य। चक्रवर्तिनः = सार्वभौम शासकस्य। अध्वनि = आकाश मार्गे। परानपेक्षोद्धहनात् = परेषाम् अन्येषाम् अनपेक्षया सहायतां विना प्रापणात्, कारणात्। यशः सितम् = कीर्त्या धवलम्। रवेः = सूर्यस्य। अनीदृशाम् = इत्थम्भूतत्वाभाववताम्, नलस्याश्वस्य समानतां कर्तुमयोग्यानाम्। अर्वाताम् = अश्वानाम्। बलम् = शक्तिम्। अन्तः = स्वमनसि। हसन्तम् = उपहासं कुर्वन्। अयं राजा नलः इत्थं भूतं स्वम् अश्वम् आरुरोह।

सितत्विषश्चंचलता मुपेयुषो,
मिषेण पुच्छस्य च केसरस्य च।
स्फुटां चलच्चामर युग्मचिह्नकै
रनिहनुवानं निजवाजिराजताम्॥ ६२॥

अन्वय—सितत्विषाः चंचलताम् उपेयुषः पुच्छस्य च केसरस्य च मिषेण चलच्चामररयुग्मचिह्नकैः स्फुटां निजवाजिराजताम् अनिहनुवानम् (अश्वम् अयं नलः आरुरोह)।

शब्दार्थ—सितत्विषः = श्वेत किरणों वाली। चंचलताम् = चंचलता को। उपेयुषः = प्राप्त होने वाली। पुच्छस्य = पूँछ के। केसरस्य = गर्दन के बालों अर्थात् अयाल के। मिषेण = बहाने से। चलच्चामर युग्मचिह्नकैः = हिलते हुए दो चामर-रूपी लक्षणों से। स्फुटाम् = प्रसिद्ध। निज वाजिराजताम् = अपने अश्वराज होने के भाव को। अनिहनुवानम् = प्रकट करते हुए को, प्रकट करते हुए पर (घोड़े पर राजा नल सवार हुए)।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में राजा नल उद्यान की सैर को जाने के लिए अपने घोड़े पर सवार हुए। कविवर श्रीहर्ष राजा नल के घोड़े का वर्णन कर रहे हैं।

हिन्दी अनुवाद—श्वेत कान्ति वाली तथा हिलती-डुलती हुई पूँछ के तथा गर्दन के बालों अर्थात् अयाल के बहाने हिलते हुए दो चामरों के चिह्नों के द्वारा स्पष्ट रूप से अपनी अश्वराजता अर्थात् घोड़ों का राजा होने के भाव को प्रकट करते हुए घोड़े पर राजा नल आरूढ़ हुए।

हिन्दी व्याख्या—राजा का एक चिह्न यह है कि उसके दोनों ओर चामर दुलाये जाते हैं। राजा नल के घोड़े की पूँछ श्वेत वर्ण की है तथा उसकी गर्दन के बाल अर्थात् अयाल भी श्वेत रंग के हैं। घोड़ा अपनी पूँछ और अयाल दोनों को हिला रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि इनके बहाने वह हिलाये जाते हुए दो चामर चिह्नों के द्वारा प्रकट कर रहा है कि वह घोड़ों का राजा अर्थात् सभी घोड़ों में श्रेष्ठ है।

NOTES

संस्कृत व्याख्या—सितत्विषः = धवलकान्तेः। चंचलताम् = चपलताम्। उपेयुषः = प्राप्तवतः। चंचलताम् उपेयुषः = चंचलतां कुर्वतः। पुच्छस्य = लांगूलस्य। केसरस्य = स्कन्धदेशवार्तिनः केशसमूहस्य। मिषेण = छलेन = चलच्चामर युग्मचिह्नैः = चंचलस्य, गतिशीलस्य वा चामर द्वयस्य लक्षणैः। निजवाजिराजताम् = स्वस्य अश्व श्रेष्ठताम्। अनिहनुवानम् = प्रकटन्तम्। (एवादृशम् अश्वम् राजा नलः आरूरोह)।

अपि द्विजिह्वाभ्यवहारपौरुषे

मुखानुषक्तायतवल्गुवल्गाया।

उपेयिवांसं प्रतिमल्लतां रय

स्मयेजितस्य प्रसभं गरुत्मतः॥ ६३॥

अन्वय—रयस्मये प्रसभं जितस्य गरुत्मतः मुखानुषक्तायतवल्गुवल्गाया द्विजिह्वाभ्यवहारपौरुषे अपि प्रतिमल्लतां उपेयिवांसम्।

शब्दार्थ—रयस्मये = अपनी तीव्र गति के मद में। प्रसभम् = बलपूर्वक। जितस्य = जीत गये। गरुत्मतः = गरुड की। मुखानुषक्तायतवल्गुवल्गाया = मुख में लगी हुई लम्बी तथा सुन्दर लगाम के द्वारा। प्रतिमल्लताम् = प्रतिद्वन्द्विता को। द्विजिह्वाभ्यवहारपौरुषे = सर्पभक्षण के पुरुषार्थ में। उपेयिवांसम् = प्राप्त किये हुए।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से अवतरित प्रस्तुत श्लोक में वेग से गरुड़ विजयी नल के अश्व का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद—घोड़े के द्वारा अपनी तीव्र गति के मद में बलपूर्वक जीते गये घोड़े के गरुड़ को मुख में लगी हुई लम्बी तथा सुन्दर लगाम के द्वारा सर्पभक्षण के पुरुषार्थ में भी प्रतिद्वन्द्विता को प्राप्त करने वाले (घोड़े पर नल सवार हुए)।

हिन्दी व्याख्या—नल के घोड़े ने अपनी तीव्र गति की प्रसिद्धि से गरुड़ को पहले ही पराजित कर दिया था, लेकिन गरुड़ की सर्पभक्षण की प्रसिद्धि अभी शेष थी, यह शक्ति भी नल के घोड़े के द्वारा मुख में पड़ी हुई सर्पाकार लगाम की रस्सी के द्वारा मानो गरुड़ का प्रतिद्वन्द्वी होकर जीत ली गयी थी। भाव यह है कि नल उस अश्व पर सवार हुए, जिसके मुख की दोनों रस्सियाँ दो सर्पों के समान प्रतीत हो रही थीं।

संस्कृत व्याख्या—रयस्मये = वेगप्रयुक्ताहंकारे। प्रसभं प्रसह्य = जितस्य प्रागेव निर्जितस्य। गरुत्मतः = गरुडस्य। मुखानुषक्तायतवल्गुवल्गाया = मुखे आनने अनुषक्ता संलग्ना आयता दीर्घा वल्गुः सुन्दरी या वल्गा प्रग्रहः तथा। द्विजिह्वाभ्यवहारपौरुषे अपि = सर्पभक्षणपुरुषार्थेऽपि। प्रतिमल्लताम् = प्रतिद्वन्द्विताम् उपेयिवांसम् = प्राप्तम् (अश्वं नलः आरूरोह)।

स सिन्धुजं शीतमहःस्सहोदरं,

हरन्तमुच्चैःश्रवसः श्रियं हयम्।

जिताखिलक्ष्माभृदनल्पलोचनः,

तमारूरोह क्षितिपाकशासनः॥ ६४॥

अन्वय—जिताखिलक्ष्माभृदनल्पलोचनः क्षितिपाकशासनः सः सिन्धुजं शीतमहः सहोदरं उच्चैः श्रवसः श्रियं हरन्तं तं हयं आरुरोह ।

नैपथीयचरितम् (श्रीहर्ष)

NOTES

शब्दार्थ—सिन्धुजम् = सागर से उत्पन्न को। शीतमहः सहोदरम् = ठण्डी किरणों वाले चन्द्रमा के सगे भाई को। उच्चैःश्रवसः = इन्द्र के अश्व उच्चैःश्रवा की। श्रियम् = शोभा को। हरन्तम् = हरण करते हुए को। तम् = उसको। हयम् = घोड़े को। जिताखिलक्ष्माभृदनल्पलोचनः = जित + अखिल + क्ष्माभृत + अनल्पलोचनः = सभी राजाओं को जीतने वाला तथा विशाल नयनों वाला। क्षितिपाकशासनः = पृथ्वी के इन्द्र के समान। सः = वह, नल। आरुरोह = सवार हुआ।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में इन्द्र के अश्व उच्चैः श्रवा को भी अपनी शोभा से पराजित करने वाले नल के घोड़े का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद—समस्त राजाओं पर विजय प्राप्त करने वाला, विशाल नयनों वाला तथा धरती का इन्द्र वह राजा नल सागर से उत्पन्न, चन्द्रमा के सगे भाई एवं इन्द्र के घोड़े उच्चैःश्रवा की शोभा को हरण करने वाले घोड़े पर सवार हुआ।

हिन्दी व्याख्या—राजा नल ने सभी राजाओं को पराजित करके विजय प्राप्त की थी। उसके नयन विशाल थे तथा वह धरती का इन्द्र था। सभी राजाओं को पराजित करने से नल की शक्ति और शौर्य का, विशाल नयनों वाला होने से सौन्दर्य का और धरती का इन्द्र होने से यश का ज्ञान होता है।

संस्कृत व्याख्या—जिताखिल क्ष्माभृत = सर्वेषां नृपाणां विजेता। अनल्पलोचनः = विशाल नेत्रः। क्षितिपाकशासनः = धराया इन्द्रः, यथेन्द्रः स्वर्गे शासनं करोति तथैव नलः भूमौ शासनकर्त्ता आसीत्। सः नलः। सिन्धुजम् = सागरादुत्पन्नम्, सिन्धुदेशोत्पन्नम् वा। शीतमहःसहोदरम् = शीतांशोः चन्द्रस्योत्पत्ति स्थलात् सागरादुत्पन्नम्। उच्चैः श्रवसः = इन्द्रस्य वाजिनः। तन्नामधेयस्य। श्रियम् = शोभाम्। हरन्तम् = आकर्षयन्तम्। उच्चैः श्रवसः श्रियं हरन्तम् = उच्चैःश्रवरूः = अधिक सुन्दरम्। तम् हयम् = स्वकीयम् अश्वम्। समारुरोह = आरोहणं कृतवान्।

निजा मयूखा इव तिग्मदीधिति

स्फुटारविन्दाङ्कितपाणिपङ्कजम्।

तमश्ववारा जवनाश्वयायिनं

प्रकाशरूपा मनुजेशमन्वयुः ॥ ६५ ॥

अन्वय—निजाः प्रकाशरूपाः अश्ववाराः स्फुटारविन्दाङ्कितपाणिपङ्कजं जवनाश्वयायिनं तं मनुजेशं मयूखाः तीक्ष्णदीधितिमिव अन्वयुः।

शब्दार्थ—निजाः = अपने। प्रकाशरूपाः = उज्ज्वल आकार वाले। अश्ववाराः = घुड़सवारों ने। स्फुटारविन्दाङ्कितपाणिपङ्कजम् = खिले हुए कमल से अङ्कित कर-कमल वाले। जवनाश्वयायिनं = तीव्र गति वाले अश्व पर चढ़कर गमन करने वाले। तम् मनुजेशम् = उस राजा नल का। मयूखाः = किरणों ने। तीक्ष्णदीधितिम् इव = सूर्य के समान। अन्वयुः = अनुसरण किया।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से अवतरित प्रस्तुत श्लोक में राजा का अनुगमन करने वाले घुड़सवारों का चित्रण किया गया है।

NOTES

हिन्दी अनुवाद—अपने उज्ज्वल आकार वाले किरणसमूह जैसे विकसित रक्त कमलों से चिह्नित करकमल वाले तथा वेगवाले सात घोड़ों से गमन करने वाले सूर्य का अनुगमन करते हैं, उसी प्रकार प्रसिद्ध सौन्दर्य वाले उस राजा नल के घुड़सवारों ने खिले हुए कमल से अङ्कित कर-कमल वाले तथा तीव्र गति वाले अश्व पर चढ़कर गमन करने वाले राजा नल का अनुगमन किया।

हिन्दी व्याख्या—जिस प्रकार सूर्य की चमकती हुई किरणें विकसित कमलों से युक्त कमल सदृश किरणों वाले तथा अत्यन्त वेगशील घोड़ों से युक्त अपने रथ पर आरूढ़ सूर्य का गमन करती हैं, उसी प्रकार अपने उज्ज्वल आकार वाले, घुड़सवार वेगशील घोड़े पर आरूढ़ राजा नल का अनुगमन कर रहे थे।

संस्कृत व्याख्या—प्रकाशरूपाः = द्योतस्वरूपाः। भास्वरूपाः वा निजाः = स्वकीयाः। मयूखाः = किरणाः। स्फुटारविन्दाङ्कित पाणिपङ्कजम् = विकसितरक्तकमल चिह्नित करकमलम्। जवनाऽश्वयायिनम् = वेगयुक्त-सप्तहयगामिनम्। तीक्ष्णदीधितिम् इव = सूर्यम् इव। प्रकाश रूपा = प्रसिद्ध सौन्दर्या। निजाः = आत्मीयाः। अश्ववाराः = अश्वारोहाः। स्फुटाऽरविन्दाऽङ्कित पाणिपङ्कजम् = स्पष्ट पदमरेखा चिह्नित हस्त कमलम् जवनाऽश्वयायिनम्। = वेगवद्धहयगामिनम्। तम् = पूर्वोक्तं राजानम् नलम्। अन्वयुः = अनुगतवन्तः।

चलन्नलंकृत्य महारयं हयं,

स वाहवाहोचित वेषपेशलः।

प्रमोदनिष्पन्दितराक्षि पक्ष्मभिः,

व्यलोकि लोकैर्नगरालयैर्नलः॥ ६६॥

अन्वय—स्ववाहवाहोचितवेषपेशलः, महारयं हयम् अलंकृत्य चलन् नलः प्रमोदनिष्पन्दितराक्षिपक्ष्मभिः नगरालयैः लोकैः व्यलोकि।

शब्दार्थ—स्ववाह वाहोचित वेष पेशलः = अपने वाहन अश्व के अनुकूल वेग के कारण सुन्दर। महारयम् = अत्यधिक वेग वाले, तीव्र गतिशील। हयम् = घोड़े को। अलंकृत्य = सुशोभित करके, सजाकर। चलन् = चलता हुआ, यात्रा प्रारम्भ करता हुआ। नलः = राजा नल। प्रमोद निष्पन्दितराक्षि पक्ष्मभिः = सुख के कारण अधिक मात्रा में निष्पन्दित पलकों वाले के द्वारा। नगरालयैः = नगर + आलयैः = नगर-निवासियों, प्रजाजनों के द्वारा। लोकैः = लोगों के द्वारा। नगरालयैः लोकेः = नागरिक जनों के द्वारा। व्यलोकि = देखा गया।

प्रसंग—राजा नल अपने और अपने वाहन अश्व की शोभा के अनुकूल वेशभूषा धारण करके चला। उस समय प्रजाओं द्वारा आश्चर्यचकित होकर उसे देखने का वर्णन कवि श्रीहर्ष नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत इस श्लोक में कर रहे हैं—

हिन्दी अनुवाद—अपने वाहन घोड़े के अनुकूल वेशभूषा धारण करने के कारण सुन्दर, अत्यधिक वेग से चलने वाले घोड़े को अलंकृत करके चलता हुआ राजा नल अत्यधिक प्रसन्नता के कारण टकटकी लगाये हुए नेत्रों के पलकों वाले नागरिक प्रजाजनों द्वारा देखा गया।

NOTES

हिन्दी व्याख्या—राजा नल और उनका घोड़ा स्वाभाविक रूप से सुन्दर थे। राजा नल ने अपने घोड़े के सौन्दर्य के अनुकूल ही वेशभूषा धारण की थी, इसलिए वह बहुत सुन्दर लग रहा था। वस्त्राभूषणों से सुसज्जित सुन्दर व्यक्तियों की सुन्दरता में वृद्धि होना स्वाभाविक है। राजा नल ने स्वयं तो उचित और आकर्षक वेशभूषा धारण की ही थी, अपने अत्यधिक तीव्र गति से चलने वाले घोड़े को भी सजाया था। ऐसे घोड़े पर सवार होकर राजा नल अपने महल से निकला और राजमार्ग पर चलता हुआ उद्यान की ओर उन्मुख हुआ। इस प्रकार चलते हुए राजा नल को नागरिकजनों अर्थात् राजधानी की प्रजाओं द्वारा टकटकी बाँधकर देखा जाना सहज स्वाभाविक था। अपने राजा के प्रति उस समय प्रजा की अपार श्रद्धा थी। प्रजाजन राजा में ईश्वर का अंश मानते थे और उसके दर्शन को पुण्य का आधार समझते थे। दूसरे राजा नल एक प्रजावल्लभ नरेश था, तीसरे वह परम सुन्दर था। ऐसा व्यक्ति प्रजाओं द्वारा निश्चल पलकों वाली आँखों से देखा ही जाना चाहिए।

संस्कृत व्याख्या—स्ववाहवाहोचितवेषपेशलाः = स्वकीयस्य अश्वस्यानुकूलेन वेशेन शोभनः। महारयम् = तीव्रवेगवन्तम्। हयम् = वाजिनम्। अलंकृत्य = सुसज्जितं कृत्वा। चलन् = गच्छन्। नलः = निषध देशस्य नरेशः। प्रमोदनिष्पन्दितराक्षिपक्ष्मभिः = आनन्देनात्यन्त निश्चलाक्षिपक्ष्मयुक्तैः। नगरालयैः, नागरिकप्रजाजनैः। लोकैः = प्रजावर्गैः। व्यलोकित = दृष्टः।

क्षणादथैष क्षणदापतिप्रभः

प्रभञ्जनाध्येयजवेन वाजिना।

सहैव ताभिर्जनदृष्टिवृष्टिभिः

बहिः पुरोऽभूत् पुरुहूतपौरुषः॥ ६७॥

अन्वय—अथ क्षणदापतिप्रभः पुरुहूतपौरुषः एषः प्रभञ्जनाध्येयजवेन वाजिना क्षणात् ताभिः जनदृष्टिवृष्टिभिः सहैव पुरः बहिः अभूत्।

शब्दार्थ—अथ = उसके पश्चात्। **क्षणदापतिप्रभः** = चन्द्रमा के समान कान्तिवाले। **पुरुहूतपौरुषः** = इन्द्र सदृश पराक्रम वाले। **एषः** = यह। **प्रभञ्जनाध्येयजवेन** = वायु द्वारा अध्ययन करने योग्य वेग वाले। **वाजिना** घोड़े द्वारा। **क्षणात्** = क्षणमात्र में। **ताभिः** = उन। **जनदृष्टिवृष्टिभिः** = नागरिकों की दृष्टि रूपीवृष्टि के। **सहैव** = साथ ही। **पुरः** = नगर से। **बहिः** = बाहर। **अभूत्** = हो गये।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में राजा नल के रूप एवं पराक्रम का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद—चन्द्रमा के समान कान्ति वाले तथा इन्द्रसदृश पराक्रम वाले ये नल वायु अध्ययन करने योग्य वेग वाले घोड़े द्वारा नागरिकों की दृष्टि रूपी वृष्टि के साथ ही क्षणमात्र में नगर से बाहर हो गये।

हिन्दी व्याख्या—राजा नल रात्रि के स्वामी चन्द्रदेव के समान शुभ कान्ति से युक्त थे। पराक्रम एवं सामर्थ्य में राजा नल इन्द्र की समता रखते थे। उनके घोड़े की गति अत्यधिक तीव्र थी, जिसे देखकर लगता था कि वायु भी उससे शिक्षा ग्रहण कर सकती थी। कहने का तात्पर्य है कि वायु की अपेक्षा कहीं अधिक वेग वाला राजा नल का घोड़ा था। जैसे ही वे घोड़े पर सवार होकर चलने लगे, वैसे ही वे नगर के बाहर पहुँच गये। नगरवासी हर्ष और आश्चर्य के साथ देख ही रहे थे कि क्षण भर में वे नगर से बाहर हो गये।

NOTES

संस्कृत व्याख्या—अथ = तदनन्तरम्। क्षणदापतिप्रभः = चन्द्र-समप्रभाशाली। पुरुहूतपौरुषः = इन्द्रतुल्यबलयुक्तः। एषः = राजा नलः। प्रभञ्जाध्येय जवेन = झंझावातात् शिक्षितेन शीघ्रगमनेन। वाजिना = अश्वेन। क्षणात् = अल्प-समयात्। तांभिः = उक्ताभिः। जनदृष्टि वृष्टिभिः = मनुष्याणां दृष्टिरूपाभिः वर्षाभिः। सह = सार्द्धम्। पुरः = नगरात्। बहिः = बाह्यस्थलम्। अभूत् = अभवत्।

ततः प्रतीच्छ प्रहरेति भाषिणी

परस्परोल्लासित शल्यपल्लवे।

मृषा मृधं सादिबले कुतूहला

नलस्य नासीरगते वितेनतुः॥ ६८॥

अन्वय—ततः “प्रतीच्छ” “प्रहर” इति भाषिणी नासीरगते परस्परोल्लासितशल्यपल्लवे नलस्य सादिबले कुतूहलात् मृषा मृधं वितेनतुः।

शब्दार्थ—ततः = पश्चात्। प्रतीच्छ = पकड़ो। प्रहर = मारो। भाषिणी = कहने वाली। नासीरगते = सेनामुख में स्थित। परस्परोल्लासित शल्य पल्लवे = परस्पर पल्लव के समान भाले की नौक ताने हुए। नलस्य = नल के। सादिबले = सैनिकों के। कुतूहलात् = कुतूहलवश। मृषामृधम् = मिथ्या युद्ध का। वितेनतुः = अभिनय किया।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में नल के सहयात्री घुड़सवारों के परस्पर मिथ्या युद्ध का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद—उसके पश्चात् ‘पकड़ो’, ‘मारो’, ऐसा कहते हुए सेना के अग्रभाग में स्थित, एक-दूसरे पर पल्लव के समान भाले की नौक ताने हुए नल के घुड़सवारों के दो दल कौतूहलवश मिथ्यायुद्ध का प्रदर्शन करने लगे।

हिन्दी व्याख्या—युद्ध में शक्ति प्रदर्शन करना वीरों का कर्तव्य है। बिना युद्ध के वीर का जीवन निरर्थक है। यही भाव प्रस्तुत पद्य में भी द्योतित हो रहा है। नगर से बाहर होने के पश्चात् सेना के अग्रभाग में स्थित घुड़सवारों के दो दल कुतूहल के साथ ‘पकड़ो’, ‘मारो’, ऐसा कहते हुए परस्पर एक-दूसरे की ओर भालों के अग्रभागों को उठाये हुए कृत्रिम युद्ध का प्रदर्शन करने लगे अर्थात् उनका यह युद्ध वास्तविक युद्ध न होकर बनावटी था वे तो मात्र युद्ध का अभ्यास कर रहे थे।

संस्कृत व्याख्या—ततः = तत्समयानन्तरम्। प्रतीच्छ = ग्रहाण। प्रहर = प्रहारं कुरु। इति = एवं प्रकारेण। भाषिणी = कथनं कृतवती। नासीरगते = सेनायाः अग्रभागे स्थिते। परस्परोल्लासितशल्यपल्लवे = अन्यन्योन्योपरि प्रसारितानि तोमराणि याम्थां तथोक्ते भल्लाग्रभागे समरे। नलस्य = निषधनरेशस्य। सादिबले = तुरंग सैन्ये। कुतूहलात् = ज्ञातुम् औत्सुक्यमभावात्। मृषामृधम् = कल्पित युद्धम्। वितेनतुः = चक्रतुः।

प्रयातुमस्माकमियं कियत्पदं,

धरा तदम्भोधिरपि स्थलायताम्।

इतीव वाहैर्निजवेगदर्पितैः,

पयोधिरोधक्षममुद्धतं रजः॥ ६९॥

अन्वय—इयं धरा अस्माकं प्रयातुं कियत् पदम् (अस्ति) तत् अम्भोधिरपि स्थलायताम्। इति इव निजवेगदर्पितैः वाहैः पयोधिरोधक्षमं रजः उद्धतम्।

नैपधीयचरितम् (श्रीहर्ष)

NOTES

शब्दार्थ—इयम् = यह। धरा = धरती। अस्माकम् = हमारे लिए। प्रयातुम् = चलने के लिए, गमन करने के लिए। कियत् पदम् = कितने चरण हैं, कितने कदम हैं, अर्थात् अपर्याप्त है, बहुत थोड़ी है। तत् = इस कारण से। अम्भोधिः अपि = सागर भी। स्थलायताम् = स्थल बन जाये, धरती का रूप धारण कर ले। इति इव = मानो ऐसा सोचकर, मानो इस कारण से। निजवेग दर्पितैः = अपने वेग के कारण गर्व करने वाले। वाहैः = घोड़ों के द्वारा। पयोधिरोधक्षमम् = सागर को पाटने में समर्थ। रजः = धूल। उद्धतम् = उड़ाई।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में निषध नगरी का स्वामी राजा नल जिस रथ पर सवार होकर जा रहा है, उस रथ की घोड़ों द्वारा उड़ाई हुई धूल का वर्णन कर रहे हैं।

हिन्दी अनुवाद—यह पृथ्वी हम घोड़ों के चलने अर्थात् दौड़ने के लिए कितनी छोटी है अर्थात् अपर्याप्त है। इसलिए सागर भी स्थल बन जाये, ऐसा सोचकर अपने वेग पर अभिमान करने वाले नल के घोड़ों ने सागर को पाटने में समर्थ धूल उड़ाई अर्थात् समुद्र को सुखाने के लिए धूल को उड़ाया।

हिन्दी व्याख्या—राजा नल के घोड़े तीव्र गति से दौड़ रहे हैं। दौड़ते हुए घोड़ों की टापों से अधिक मात्रा में धूल उड़ रही है। कवि कल्पना करता है कि घोड़े दौड़ते समय इतनी अधिक धूल क्यों उड़ा रहे हैं। घोड़े यह समझ रहे हैं कि हमारे तीव्र वेग के सामने धरती का विस्तार पर्याप्त नहीं है अर्थात् यह पृथ्वी बहुत छोटी है। धरती के विस्तार को तो हम थोड़ी देर में ही पूरा कर लेंगे। हमारी दौड़ने की इच्छा अधूरी रह जायेगी। अगर सागर भी स्थल बन जाये तो हमें दौड़ने का पूरा अवसर प्राप्त हो सकता है। इसी विचार से राजा नल के घोड़े तेज दौड़ते समय अधिक मात्रा में धूल उड़ा रहे हैं। यदि घोड़े धीरे-धीरे चलें तो धूल बिल्कुल नहीं उड़ेगी। घोड़े बहुत तेज दौड़ रहे हैं, इसी कारण इतनी अधिक धूल उड़ रही है जो सागर को भी पाटने में सक्षम है। अधिक मात्रा में धूल उड़ना घोड़ों के तीव्र वेग से दौड़ने को स्पष्ट कर रहा है।

संस्कृत व्याख्या—इयम् = एषा, सम्मुखं वर्तमाना। धरा = पृथ्वी। अस्माकम् = अश्वानाम्। प्रयातुम् = गन्तुम्, धावितुम्। कियत् पदम् = स्वल्प संख्यानां चरण निवेशानां विषयम्, अपर्याप्ता इति भावः। तत् = तस्मात् कारणात्। अम्भोधिः अपि = समुद्रः अपि। स्थलायताम् = स्थलीभवतु। इतीव = इत्येव विचार्य। निजवेग दर्पितैः = स्वकीयस्य जवस्य कारणात् गर्वयुक्तैः। वाहैः = अश्वैः। पयोधिरोधक्षमम् = सागरं पूरमितुम् समर्थम्। रजः = धूलिः। उद्धतम् = उत्थापिता।

हरेर्यदक्रामि पदैककेन खं,
पदैश्चतुर्भिः क्रमणेऽपि तस्य नः।
त्रपा हरीणामिति नम्रिताननैः,
न्यवर्ति तैरर्धनभः कृतक्रमैः॥ ७०॥

अन्वय—यत् खम् हरेः एककेन पदा अक्रामि, तस्य चतुर्भिः पदैः क्रमणेः अपि नः हरीणाम् त्रपा इति (इव) नम्रिताननैः। अर्धनभः कृतक्रमैः तैः न्यवर्ति।

NOTES

शब्दार्थ—यत् = जो, जिस। खम् = आकाश को। हरेः = विष्णु के। एककेन = एक ने ही, केवल एक ने। पदेनः = चरण ने, चरण-विन्यास ने। अक्रामि = आक्रान्त कर लिया था, पार कर लिया था, नाप लिया था। तस्य = उसको, आकाश को। चतुर्भिः पदैः = चार चरणों के द्वारा। क्रमणे अपि = लाँघने पर भी, पार कर लेने पर भी। नः = हम। हरीणाम् = घोड़ों के लिए। त्रपा = लज्जा, लज्जा की बात होगी। इति = इस प्रकार, विचार करके। नम्रिताननैः = नम्रित + आननैः = मुँह झुकाने वाले, झुके हुए मुख वाले। तैः = उन घोड़ों के द्वारा। अर्धनमः = आधे आकाश में। कृतक्रमैः = पैर उठाने वालों के द्वारा। न्यवर्ति = लौट आया गया, निवर्तन किया गया।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में राजा नल के घोड़ों द्वारा भगवान विष्णु द्वारा एक पग में धरती नापने की बात स्मरण करके लज्जित हो मुख नीचा कर लेने का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद—जिस आकाश को हरि अर्थात् विष्णु के एक चरण ने लाँघ लिया था, उसी आकाश को चार पैरों वाले हम हरियों अर्थात् घोड़ों के द्वारा लाँघना लज्जा की बात होगी। मानो ऐसा सोचकर मुँह नीचे किये हुए उन घोड़ों के द्वारा आधे आकाश में पैर उठाये हुए ही लौट आया गया।

हिन्दी व्याख्या—तेज दौड़ने वाले घोड़े चारों पैरों को ऊपर उठाकर तथा मुँह नीचा करके छलांग लगाते हुए दौड़ते हैं। यह घोड़ों का स्वभाव है। राजा नल के घोड़े भी ऐसा ही कर रहे थे। हरि शब्द के अनेक अर्थों में विष्णु और घोड़ा भी है। राजा के घोड़ों ने सोचा कि एक हरि विष्णु थे, जिन्होंने एक चरण-विन्यास में आकाश को पार कर लिया था। हम तो बहुत से हरि अर्थात् घोड़े हैं और हमारे सबके चार-चार पैर हैं अर्थात् हम तो चार पैरों वाले हरि हैं। अगर हम आकाश को लाँघ जाते हैं तो यह हमारे लिए लज्जा की बात होगी।

संस्कृत व्याख्या—यत् = उपरि स्थितम्। खम् = आकाशम्। हरेः = वामन रूप धारिणः विष्णोः। एककेन पदा = एकैनैव चरणविन्यासेन। अक्रामि = आक्रान्तम्। तस्य = आकाशस्य, लङ्घित पूर्वस्य। चतुर्भिः पदैः = चतुः संख्याकैः चरणैः। क्रमणेऽपि = लङ्घनेऽपि। नः = अस्माकम्। हरीणाम् = बहूनाम् घोटकानाम्। त्रपा = लज्जा वर्तते। इति = एवं विचार्य। नम्रिताननेः = अधोमुखैः। तैः = घोटकैः। अर्धनमः = आकाशस्य अधः भागस्य एव। कृतक्रमैः = कृतपादविक्षेपैः। न्यवर्ति = निवृत्तम्।

चमूचरास्तस्य नृपस्य सादिनो

जिनोक्तिषु श्राद्धतयेव सैन्धवाः।

विहारदेशं तमवाप्य मण्डली-

मकारयन् भूरि तुरङ्गमानपि।। ७१।।

अन्वय—तस्य नृपस्य चमूचराः सादिनः जिनोक्तिषु श्राद्धतया सैन्धवाः इव तं विहारदेशम् अवाप्य तुरङ्गमान् अपि भूरि मण्डलीम् अकारयन्।

शब्दार्थ—तस्य = उसका। नृपस्य = राजा का। चमूचराः = सैनिक। सादिनः = घुड़सवार। जिनोक्तिषु = जैन वचनों में। श्राद्धतया = श्रद्धा रखने के कारण। सैन्धवाः = सिन्धु देश में उत्पन्न। विहारदेशम् = सञ्चरणशील भूमि में। अवाप्य = प्राप्त होकर। तुरङ्गमानपि = घोड़ों को भी। भूरि = अत्यधिक। मण्डलीयम् = मण्डलाकार रूप में। अकारयन् = कराया।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में 'राजा नल के सैनिक पर्याप्त भूमि पाकर अपने घोड़ों को वृत्ताकार रूप में खड़े करने का प्रयास कर रहे हैं' इसका वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद—उस राजा नल के सैनिक घुड़सवारों ने 'जैन' वचनों में श्रद्धा रखने के कारण सिन्धु देशज जैनियों के सृदश उस सञ्चरणशील भूमि में पहुँचकर बहुत से घोड़ों को भी वृत्ताकार खड़ा कराया।

हिन्दी व्याख्या—जिस प्रकार जैन दर्शन में विश्वास रखने वाले श्रद्धालु अपने मठों में पहुँचकर मण्डलाकार अर्थात् वृत्ताकार रूप में स्थित हो जाया करते हैं, उसी प्रकार राजा नल के घुड़सवार सैनिक जब राजा के भ्रमण योग्य उपवन में पहुँच गये, तब उन्होंने घोड़ों को गोलाकार रूप में घुमाकर मण्डलाकार रूप में खड़ा कर दिया। कहने का तात्पर्य यह है कि राजा नल के सिन्धु देश में उत्पन्न घोड़ों पर सवार सैनिकों ने भ्रमणशील भूमि में जाकर उसी प्रकार घोड़ों को गोलाकार चक्कर लगवाया, जिस प्रकार 'जैन धर्म' के वचनों में श्रद्धा रखने के कारण सिन्धु देश में उत्पन्न जैनी लोग अपने मन्दिर में पहुँचकर वृत्ताकार आसन लगाते हैं।

संस्कृत व्याख्या—तस्य = पूर्वोक्तस्य नृपस्य राज्ञः। चमूचराः = सेनाचराः सादिनः = अश्वारोहिणः अश्वसादिनः। जिनोक्तिषु = जिनवचनेषु। श्राद्धतया जैनदर्शनश्रद्धालुतयैव इति। सिन्धु देशभवाः सैन्धवाः इव तम् विहारदेशम् = सञ्चारभूमिं सुगतालयञ्च 'विहारो भ्रमणे स्कन्धे लीलायां सुगतालय' इति विश्वः। अवाप्य = तुरङ्गमान् भूरि बहुलं मण्डलीम् अपि मण्डलाकारं च अकारयन् = कारितवन्तः। अन्यत्र मण्डलीं मण्डलासन मित्यर्थः। जैनाः स्वकर्मानुष्ठाने प्रायेण मण्डलानि कुर्वन्ति इति प्रसिद्धः।

द्विषद्भिर्भरेवास्य विलङ्घिता दिशो,

यशोभिरेवाब्धिरकारि गोष्पदम्।

इतीव धारामवधीर्यमण्डली-

क्रियाश्रियामण्डि तुरंगमैः स्थली ॥ ७२ ॥

अन्वय—अस्य द्विषद्भिः एव दिशिः विलङ्घिताः, यशोभिः अब्धिः गोष्पदम् अकारि, इतीव अवधार्य तुरंगमैः मण्डलक्रियाश्रिया स्थली अमण्डि।

शब्दार्थ—अस्य = इस राजा नल के। द्विषद्भिः = शत्रुओं के द्वारा। एव = ही। विलङ्घिताः = लांघी गयी है। दिशः = दिशाएँ। यशोभिः = कीर्तियों के द्वारा। अब्धिः = सागरः। गोष्पदम् = गाय के खुर के बराबर छोटा गड्ढा। अकारि = किया गया। इतीव = मानो ऐसा विचार करके। धाराम् = गति करो। अवधीर्य = त्यागकर। तुरंगमैः = राजा नल के घोड़ों द्वारा। मण्डली क्रियाश्रिया = चक्कर काटने की शोभा के द्वारा। स्थली = धरती को। अमण्डि = सुशोभित किया गया।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में घोड़ों द्वारा मण्डलाकार स्थिति में भूमि को अलंकृत करके राजा नल के यश को बढ़ाया जाने का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद—इस राजा नल के शत्रुओं द्वारा ही दिशाओं को लांघा गया है। इसके यश ने ही सागर को गाय के खुर का गड्ढा बना दिया। मानो मन में ऐसा सोचकर घोड़ों ने अपनी विभिन्न गतियों को त्यागकर मण्डली क्रिया की शोभा से भूमि को सुशोभित किया।

NOTES

NOTES

हिन्दी व्याख्या—राजा नल जब अपने अभीष्ट स्थान अर्थात् विहार-स्थल पर पहुँच गये और उन्होंने अपने घोड़ों को रोक दिया तो घोड़े अपने ही स्थान पर चक्कर काटने लगे। इस क्रिया पर कवि ने कल्पना की है कि घोड़े यह सोचकर रुक गये थे कि राजा नल के शत्रु पराजित और भयभीत होकर दिशाओं से भी आगे भाग गये हैं और इसका यश सागर को इस प्रकार पार कर गया है, जैसे कोई गाय के खुर रखने से बने गड्ढे को पार कर जाता है। तात्पर्य यह है कि राजा नल का यश सागर के पार पहुँच गया था, ऐसा सोचकर घोड़ों ने सोचा कि हम दिशाओं के पार जा सकते हैं और न सागर को लांघ सकते हैं, इसलिए हमारा दौड़ना व्यर्थ है। यही सोचकर घोड़े गोल चक्कर काटने लगे। इसके द्वारा कवि यह व्यक्त करना चाहता है कि राजा नल के सभी शत्रु पराजित और लज्जित होकर दूर भाग गये थे और उसका यश सागर के पास तक फैल गया था।

संस्कृत व्याख्या—अस्य = धारा नरेशस्य नलस्य। द्विषद्भिः एव = शत्रुभिः एव। दिशः = ककुभाः। विलंघिताः = लंघन विषयीकृताः। यशोभिः = कीर्तिभिः। अब्धिः = समुद्रः। गोष्पदम् = धेनुखुरप्रमाणं गर्तम्। अकारि = कृतम्। इति एव = मूनसि इदमेव विचार्य। धाराम् = अश्व गतिम्। अवधीर्य = अनादृत्य, अनादरं कृत्वा। तुरंगमैः = अश्वैः। मण्डली क्रियाश्रिया = मण्डली करणस्य क्रियायाः शोभया। स्थली = भूमिः। अमण्डि = मण्डिता।

अचीकरच्चारु हयेन या भ्रमी-

निजातपत्रस्य तलस्थले नलः।

मरुत् किमद्यापि न तासु शिक्षते,

वितत्य वात्यामयक्रचंक्रमान्॥ ७३॥

अन्वय—नलः निजातपत्रस्य तलस्थले हयेन याः भ्रमीः चारु अचीकरत्, तासु मरुत् वात्यामय चक्र चंक्रमन् वितत्य किम् अद्यापि शिक्षते।

शब्दार्थ—नलः = राजा नल ने। निजातपत्रस्य = निज + आतपत्रस्य = अपने छत्र के। तलस्थले = नीचे के स्थान में। हयेन = अश्व के द्वारा। चारु = सुन्दर। याः = जो। भ्रमीः = गोल चक्कर, भ्रमण। अचीकरत् = बार-बार एवं अधिक संख्या में किये। तासु = उनके विषय में। मरुत् = पवन। अद्यापि = अद्य + अपि = आज भी। किम् = क्या। वात्याचक्र चंक्रमान् = वात्याचक्र के विस्तारों को। न = नहीं। शिक्षते = शिक्षा प्राप्त करता है।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक मार्ग में जाते हुए धारा नगरी के राजा नल ने अपने घोड़े को जो गोलाकार घुमाया उसी का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद—राजा नल ने अपने छत्र के नीचे अपने घोड़े के द्वारा जो चक्कर कटवाये, क्या वायु आज भी वात्याचक्रों के विस्तार की शिक्षा प्राप्त नहीं कर रहा है अर्थात् कर रहा है।

हिन्दी व्याख्या—नल वहाँ पहुँच गये जो उनके मनोरंजन का स्थल था। नल अपने घोड़े से नीचे उतरने से पूर्व अपने घोड़े को चक्कर कटवाने लगे। राजा नल घोड़े घर बैठे हुए थे। राजा नल के ऊपर उनका राजछत्र था। राजछत्र के नीचे राजा नल का घोड़ा चक्कर काट रहा था। घोड़े के साथ-साथ नल का छत्र भी घूम रहा था। ऐसा लगता है कि जो वात्याचक्र उठते हैं, उनके द्वारा वायु आज भी उसी प्रकार के चक्कर काटने की शिक्षा प्राप्त कर

रहा है। तात्पर्य यह है कि राजा नल के घोड़े इतनी सुन्दरता से गोलाई में चक्कर काट रहे थे कि उस पर आकृष्ट होकर इतने वर्षों बाद भी वायु मानो अपने वात्याचक्र का विस्तार करके उसको सीखने का प्रयास कर रहा है।

नैषधीयचरितम् (श्रीहर्ष)

NOTES

संस्कृत व्याख्या—नल = निषधनरेशः। निजातपत्रस्य = स्वीकृतस्य राजछत्रस्य। तलस्थले = अधोभागे। हयेन = अश्वेन। याः भ्रमीः = यानि भ्रमणानि। अचीकरत् = पुनः पुनः अतिशयेन अकरोत्। तासु = भ्रमीषु। मरुत् = वायुः। किम् = कथम्। अद्यापि = इदानीम् अपि। वात्याचक्र चक्रमान् = वायुसमूह रूपाः चक्राकाराः गतीः, मंडलाकारा गतीः। न शिक्षते = नाभ्यस्ते, अभ्यस्यते एव इति भावः।

विवेश गत्वा स विलासकाननं

ततः क्षणात् क्षौणिपतिर्धृतीच्छया।

प्रवालरागच्छुरितं सुषुप्सया

हरिर्घनच्छायमिवाम्भसां निधिम्॥ ७४॥

अन्वय—ततः क्षौणिपतिः सः क्षणाद् गत्वा धृतीच्छया प्रवालरागच्छुरितं घनच्छायं विलासकाननं अम्भसां निधिं सुषुप्सया हरिः इव विवेश।

शब्दार्थ—ततः = उसके बाद। क्षौणिपतिः = भूपति। क्षणाद् = शीघ्र ही। गत्वा = जाकर। धृतीच्छया = धैर्य की इच्छा से। प्रवाल रागच्छुरितम् = नवीन पल्लवों के रंगों से युक्त। घनच्छायम् = सघन छाया वाले। विलासकाननम् = क्रीडावन में। अम्भसाम् = समुद्र में। सुषुप्सया = सोने की इच्छा से। विवेश = प्रवेश किया।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में राजा नल द्वारा सघन छाया से युक्त उपवन में विश्राम किये जाने का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद—उसके बाद भूपति ने शीघ्र ही जाकर नवीन पल्लवों की लालिमा से युक्त सघन छाया वाले क्रीडावन में धैर्य की इच्छा से प्रवेश किया। जिस प्रकार भगवान् विष्णु सोने की इच्छा से सर्पों के स्थान बने हुए मूँगों के वर्ण से रंजित मेघ के समान क्रान्ति से युक्त समुद्र में प्रवेश करते हैं।

हिन्दी व्याख्या—जिस प्रकार विष्णु भगवान् विष्णु मूँगों की लालिमा से मिश्रित तथा मेघों के सदृश कान्ति को धारण करने वाले क्षीरसागर में विश्राम करने की अभिलाषा से प्रवेश करते हैं अथवा जिस प्रकार सिंह नूतन किसलयों की लालिमा से युक्त घनी छाया से परिपूर्ण वन में सोने की इच्छा से प्रवेश करता है, उसी प्रकार राजा नल ने उस क्रीडावन में जो नवीन पल्लवों की लालिमा से पूर्ण तथा सघन छाया वाला था, में शीघ्र ही विश्राम प्राप्त करने की इच्छा से प्रवेश किया।

संस्कृत व्याख्या—ततः = तदनन्तरम्। सः = नलः। क्षौणिपतिः = पृथ्वीपतिः। क्षणाद्गत्वा = शीघ्रमेव प्राप्य। धृतीच्छया = सन्तोषाकांक्षया। प्रबालाः पल्लवाः अन्यत्र प्रबालाः विद्रुमाः = नवकिसलयाः विद्रुमाश्च तेषां रागेण आरुणयेन छुरितं रुषितम्। घनच्छायां सान्द्रानातपमन्यत्र मेघकान्तिं वा। विलासकाननम् = क्रीडावनम् अन्यत्र बवयोरभेदात् विलासकानां बिलेशयानां सर्पाणाम् आननं प्राणनं। अम्भसांनिधिम् = समुद्रम्। सुषुप्सया = शेतुमिच्छया हरिः इव = विष्णुः इव विवेश = प्रवेशयामास।

NOTES

अन्वय—अनुव्रजद्बन्धु समाजबन्धुभिः पुरौकसां दृष्टिप्रकरैः वनान्तपर्यन्तं सस्पृहम् उपेत्य क्रमेण तस्मिन् अवतीर्णं दृक्पथे न्यवर्ति।

शब्दार्थ—अनुव्रजत् = पीछे चलता हुआ। समाज बन्धुभिः = इष्टजनों के समाज। पुरौकसाम् = नगरवासियों के। दृष्टिप्रकरैः = नयनसमूहों के द्वारा। वनान्तपर्यन्तम् = वन की सीमा तक। सस्पृहम् = स्पृहा अर्थात् अभिलाषापूर्वक। उपेत्य = पहुँचकर। क्रमेण = क्रमशः। तस्मिन् = उस राजा नल के विषय में। अवतीर्णं दृक्पथे = दृष्टि के मार्ग से बाहर हो जाने पर। न्यवर्ति = लौट आया गया।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्री हर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में राजा नल का प्रजाजनों की दृष्टि से ओझल होने का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद—इष्टजनों के समान नगरवासियों के दृष्टिसमूह वन की सीमा तक अभिलाषापूर्वक क्रमशः उस नल का पीछा करते रहे, जब नल उनकी दृष्टियों के मार्ग से ओझल हो गया तो उनके नेत्र लौट आये।

हिन्दी व्याख्या—शास्त्रों में वर्णित है कि अपना कोई इष्टजन जब अपने घर से कहीं जाता है तो उस समय घर के लोग उसे कुछ दूर तक छोड़ने जाते हैं और वे उसे तब तक देखते हैं, जब तक वह आँखों से ओझल नहीं हो जाता है। इसी प्रकार राजा नल इतना लोकप्रिय और सुन्दर था कि प्रजाजन उसे तब तक देखते रहते थे, जब तक वह उन्हें दिखाई देता रहता था। राजा नल जब अपने विहार-स्थल अर्थात् उपवन को गया, तब भी यही हुआ। प्रजाजन नल को तब तक क्रमशः देखते रहे, जब तक वह उनकी दृष्टि से ओझल नहीं हो गया। जब नल उन्हें दिखायी देना बन्द हो गया, तब उन्होंने उधर देखना बन्द किया।

संस्कृत व्याख्या—अनुव्रजद्बन्धु समाजबन्धुभिः = स्नेहाद् अनुगच्छत्संघसदृशैः। पुरौकसाम् = नगर निवासिनाम्। दृष्टिप्रकरैः = दृष्टिसमूहैः नेत्रसमूहैः वा। वनान्तपर्यन्तम् = काननोपान्तसीमाम् उदकप्रान्तपर्यन्तञ्चेति गम्यते वने सलिलकानने इत्यमरः। सस्पृहं = साभिलाषं यथा तथा उपेत्य गत्वा क्रमेण = क्रमशः तस्मिन् नले अवतीर्णं दृक्पथे = अतिक्रान्तं दृष्टिविषये सति। न्यवर्ति = निवृत्तम्। यथा बन्धुभिः उदकान्तं प्रियं पान्थमनुव्रजेदित्यागमात्प्रवसन्तमनुव्रज्य निवर्त्यते तद्वत् इत्यर्थः।

ततः प्रसूने च फले च मञ्जुले

स सम्मुखस्थाङ्गुलिना जनाधिपः।

निवेद्यमानं वनपालपाणिना

व्यलोकयत् काननरामणीयकम् ॥ ७६ ॥

अन्वय—ततः स जनाधियः मञ्जुले प्रसूने च फले च सम्मुखीनाङ्गुलिना वनपालपाणिना निवेद्यमानं काननरामणीयकं व्यलोकयत्।

शब्दार्थ—जनाधिपः = राजा नल ने। मञ्जुले = सुन्दर। प्रसूने = फलों। सम्मुखीनाङ्गुलिना = दिखाई देने वाली अँगुली वाले। वनपालपाणिना = वनपाल के हाथ द्वारा। निवेद्यमानम् = बतलाये जाते हुए। काननरामणीयकम् = वन के सौन्दर्य को। व्यलोकयत् = देखा।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में राजा नल द्वारा निर्देशित उपवन की शोभा देखने का वर्णन है।

नैषधीयचरितम् (श्रीहर्ष)

हिन्दी अनुवाद—इसके बाद राजा नल ने सुन्दर फूलों और फूलों की ओर उद्यानरक्षक के द्वारा अपनी अँगुली से निर्देशित वन की शोभा को देखा।

NOTES

हिन्दी व्याख्या—राजा नल ने विश्राम की अभिलाषा से जब उपवन में प्रवेश किया तो वहाँ का माली राजा नल को फूलों और फलों से युक्त उस वन की शोभा को दिखाने लगा। वह अपनी अँगुली के संकेत द्वारा राजा को नाम और गुणों के माध्यम से फलों और फूलों से अवगत करा रहा है।

संस्कृत व्याख्या—ततः = वनप्रवेशानन्तरम्। सः जनाधियः = स राजा नलः। मञ्जुले = मनोहरे। प्रसूने = पुष्पे। फले च विषये। सम्मुखीनाङ्गुलिना = सम्मुखस्थिताङ्गुलिना = संमुखावास्थितवस्तुप्रकाशिकेति यावत्। यथा मुखसम्मुखस्य दर्शनः ख इति खप्रत्ययान्तो निपातः। तादृशी अङ्गुली यस्य तेन वनपालपाणिना = अरण्यपालकरेण, निवेडायमानम् इदमिदमित्यङ्गुल्या पुष्पफलादिनिर्देशेन विज्ञाप्यमानम् इत्यर्थः। काननरामणीयकं = वन शोभाम्। व्यलोकयत् = अपश्यत्।

फलानि पुष्पाणि च पल्लवे करे

वयोऽतिपातोद्गतवातवेपिते।

स्थितैः समाधाय महर्षिवार्धकाद्

वने तदातिथ्यमशिक्षि शाखिभिः॥ ७७॥

अन्वय—वयोऽतिपातोद्गतवातवेपिते पल्लवे करे फलानि पुष्पाणि च समाधाय वने स्थितैः शाखिभिः महर्षिवार्धकाद् तदातिथ्यं अशिक्षि।

शब्दार्थ—वयोऽतिपातोद्गतवातवेपिते = पक्षियों के उड़ने से उत्पन्न वायु द्वारा हिलते हुए। पल्लवे करे = पल्लवरूपी हाथ में। समाधाय = लेकर। स्थितैः = खड़े हुए। शाखिभिः = वृक्षों ने। महर्षिवार्धकाद् = वृद्ध महर्षियों के समूह से। अशिक्षि = सीखा।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में सचेतन प्रकृति का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद—पक्षियों के उड़ने से उत्पन्न वायु द्वारा हिलते हुए पल्लवरूपी हाथ में फल और पुष्प लेकर वन में विद्यमान वृक्षों ने मानो अत्यधिक अवस्था के कारण वात रोग से कम्पित फल और पुष्प हाथ में लेकर वन में विद्यमान वृद्ध महर्षियों के समूह से उनका आतिथ्य सत्कार करना सीखा है।

हिन्दी व्याख्या—‘अतिथि देवो भव’ अर्थात् अतिथि को भगवान् मानने वाले बनो अपने समक्ष किसी भी अतिथि के आने पर उसका आदर करना चाहिए। इसी भाव को कवि ने प्रकृति के माध्यम से यहाँ इस प्रकार व्यक्त किया है। इस उपवन में वृद्ध महर्षि भी रहा करते थे, अत्यधिक अवस्था के कारण जिनके हाथ-पैर कम्पन किया करते थे। अपने उन्हीं कँपते हुए हाथों से वे राजा नल का फल पुष्पादि देकर स्वागत किया करते थे। जब राजा नल ने उस वन में प्रवेश किया तो मानो उस वन के वृक्षों ने भी महर्षियों से स्वागत सत्कार की शिक्षा ग्रहण कर राजा का सत्कार किया। पक्षियों के उड़ने से वृक्षों के पत्ते हिलने लगे। उन पत्ते रूपी हाथों में फल पुष्प लेकर वृक्षों ने राजा नल का स्वागत सत्कार किया।

NOTES

संस्कृत व्याख्या—वयोऽतिपातेन = पक्षिपातेन। बाल्याद्यपगमेन = चोदगतेनोत्थितेन। वातेन = वायुना। वातदोषेण। च वेपिते = कम्पिते। खगबाल्यादिनोर्वयः इत्यमरः। पल्लव एव कर इति व्यस्तरूपकं फलानि पुष्पाणि च समाधाय = गृहीत्वा। वने = अरण्ये। स्थितैः = तिष्ठद्भिः। शाखिभिः = वृक्षैः वेदशाखाध्यायिभिः च। महर्षीणां वार्धकाद्वृद्धसमूहात्। तदातिथ्यम् = नलस्वागतम्। अशिक्षि = शिक्षितम् अभ्यस्तम्। अन्यथा कथमिदमाचरितमिति भावः।

विनिद्रपत्रालिगतालिकैतवान्,

मृगाङ्क चूडामणि वर्जनार्जितम्।

दधानमाशासु चरिष्णु दुर्यशः,

स कौतुकी तत्र ददर्श कैतकम्॥ ७८॥

अन्वय—कौतुकी सः तत्र मृगाङ्क चूडामणि वर्जनार्जितम् अशासु चरिष्णुः दुर्यशः विनिद्रपत्रालिगतालिकैतवात् दधानं कैतकं ददर्श।

शब्दार्थ—कौतुकी = आश्चर्यपूर्ण, विचित्र। मृगाङ्क = चन्द्रमा। चूडामणि = शिर का आभूषण। वर्जनार्जितम् = त्याग देने से प्राप्त। अशासु = दिशाओं में। चरिष्णु = संचरणशील। दुर्यशः = अपयश। दधानम् = धारण करते हुए को। कैतकम् = केतकी नाम के पुष्प को। ददर्श = देखा।

प्रसंग-सन्दर्भ—उपवन की विविध प्राकृतिक छटाओं का वर्णन करता हुआ प्रस्तुत श्लोक श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है।

हिन्दी अनुवाद—आश्चर्य से पूर्ण राजा नल ने केतकी के उन पुष्पों को देखा, जिनका अपयश चन्द्रमौलि भगवान् शंकरजी द्वारा त्यागे गये के रूप में सभी दिशाओं में फैला हुआ है। अपनी खिली हुई पंखुड़ियों के ऊपर बैठे हुए भँवरों के बहाने केतकी का पुष्प अपने उसी अपयश को धारण कर रहा था।

हिन्दी व्याख्या—राजा नल अपने विहार-स्थल उपवन में पहुँचा। वहाँ अनेक प्रकार के पुष्प खिले हुए थे। उन्हीं पुष्पों में केतकी का पुष्प भी था। उस केतकी के पुष्प पर भ्रमरों का समूह बैठा हुआ था। उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि उस फूल के ऊपर भौरे नहीं, अपितु केतकी फूल का अपयश ही था। वह अपकीर्ति फूल में से निकलकर उड़ते हुए भ्रमरों के रूप में सभी दिशाओं में व्याप्त हो रही थी। केतकी का पुष्प शिवपूजा में वर्जित है, इसी कारण उसकी यह अपकीर्ति हुई है।

संस्कृत व्याख्या—कौतुकी = आश्चर्ययुक्तः। सः = धारानरेशः नलः। तत्र = विलासस्थले, वने। मृगाङ्क चूडामणि वर्जनार्जितम् = भगवता शिवेन परित्यागादुत्पन्नम्। आशासु = दिशासु। चरिष्णु = विचरणशीलम्। दुर्यशः = अपयशः, अपकीर्तिम्। विनिद्रपत्रालिगतालिकैतवात् = विकसितासु दलं = पंक्तिषु स्थितानां भ्रमराणां छलेन। दधानम् = धारयन्तम्। कैतकम् = केतक संज्ञं सुमनम्। ददर्श = अपश्यत्।

वियोगभाजां हृदि कण्टकैः कटु-

निधीयसे कर्णिशरः स्मरेण यत्।

ततो दुराकर्षतया तदन्तकृद्,

विगीयसे मन्मथदेहदाहिना॥ ७९॥

अन्वय—यत् (त्वम्) स्मरेण वियोगभाजां हृदि कण्टकैः कटु कर्णि शरः निधीयेस, ततः दुराकर्षणतया तदन्तकृत् मन्मथदेहदाहिना विगीयसे।

शब्दार्थ—स्मरेण = कामदेव के द्वारा। वियोग भाजाम् = वियोगियों के। हृदि = हृदय में। कण्टकैः = काँटों के कारण। कटु = तीक्ष्ण। कर्णिशरः = नोंक वाला बाण। निधीयसे = रखा जाता है। ततः = इसी कारण। दुराकर्षतया = कठिनता से खींचने योग्य होने के कारण। तदन्तकृत् = उनका अन्त करने वाला। मन्मथदेहदाहिना = कामदेव के शरीर को जलाने वाले के द्वारा। विगीयसे = निन्दित किये जाते हो।

NOTES

प्रसंग-सन्दर्भ—अपनी राजधानी धारा नगरी से चलकर राजा नल प्रमोद वन में पहुँचा। वहाँ उसने केतकी का पुष्प देखा। केतकी के पुष्प के प्रति राजा नल के मन में जो भाव उत्पन्न हुआ, उसका वर्णन श्रीहर्ष प्रणीत नैषधीय चरितम् के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में किया गया है।

हिन्दी अनुवाद—हे केतकी के पुष्प ! कामदेव तुम्हीं वियोगी जनों के हृदय में काँटों से भी अधिक तीक्ष्ण बाण के रूप में प्रयुक्त करता है। तुम्हें वियोगियों के हृदय से कठिनता से खींचा जा सकता है। इसी कारण तुम वियोगी जनों का आदर करते हो। यही कारण है कि कामदेव का दहन करने वाले भगवान् शंकर के द्वारा तुम्हारी निन्दा की जाती है।

हिन्दी व्याख्या—केतकी का पुष्प शिवजी पर नहीं चढ़ाया जाता, क्योंकि भगवान् शंकर ने इसका त्याग कर दिया है। यह एक प्रकार से इसका अपमान है। कवि श्रीहर्ष भगवान् शंकर के द्वारा केतकी के पुष्प के परित्याग के दूसरे कारण का अनुमान करते हैं। भगवान् शंकर ने कामदेव को जला दिया। इससे स्पष्ट है कि कामदेव भगवान् शंकर का शत्रु है। कामदेव वियोगियों पर केतकी के पुष्प को बाण के रूप में प्रयोग करके प्राणापहारी प्रहार करता है। कामदेव उनका प्राण हरण करने के कारण वियोगियों का शत्रु है। केतकी का पुष्प कामदेव का सहयोगी होने के कारण वियोगियों का शत्रु है। शत्रु का मित्र शत्रु होता है। इस दृष्टि से वियोगी तो भगवान् शंकर के मित्र हुए। कामदेव का सहयोगी होने के कारण केतकी का पुष्प शिवजी का शत्रु हुआ।

संस्कृत व्याख्या—यत् = यस्मात् कारणात्। त्वम् = केतकी पुष्पम्। स्मरेण = कामदेवेन। वियोगभाजाम् = वियोगिजनानाम्। हृदि = हृदये, मर्मस्थले। कण्टकैः = निजतीक्ष्णावचवैः। कटुः = तीक्ष्ण। संतापकारकः। कर्णिशरः कर्णिकोबाणः। निधीयसे = निक्षिच्चसे। ततः = तस्मात् कारणात्। दुराकर्षतया = दुःखेन कर्षितुं योग्यतया। तदन्तकृत् = वियोगिनां मारणकर्ता। मन्मथदेहदाहिना = कामस्यशरीर दाहकेन शिवेन। विगीयसे = विगर्ह्यसे निन्दविषयी क्रियते।

त्वदग्रसूचीसचिवः स कामिनो-

र्मनोभवः सीव्यति दुर्यशः पटौ।

स्फुटञ्च पत्रैः करपत्रमूर्तिभि-

र्वियोगिहृद्दारुणि दारुणायते ॥ ८० ॥

अन्वय—त्वदग्रसूचीसचिवः स मनोभवः कामिनोः दुर्यशः पटौ सीव्यति। च स्फुटं करपत्रमूर्तिभिः पत्रैः वियोगिहृद्दारुणि दारुणायते।

शब्दार्थ—त्वदग्रसूचीसचिवः = तुम्हारे अग्रभाग रूपी सूची के द्वारा। मनोभवः = कामदेव। कामिनोः = कामिनी और कामी दोनों के। दुर्यशः = अपयश। पटौ = पट को। सीव्यति = सीता है। स्फुट = स्पष्ट ही। करपत्रमूर्तिभिः = आरे के समान आकार वाले। पत्रैः = पत्तों से। वियोगिहृद्दारुणि = वियोगियों के हृदयरूपी लकड़ी को। दारुणायते = चीरता सा है।

प्रसंग-सन्दर्भ—केतकी के नृशंस आचरण का वर्णन करने वाला प्रस्तुत श्लोक श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है।

हिन्दी अनुवाद—तुम्हारे अग्रभाग रूपी सूची के द्वारा कामदेव कामिनी और कामी दोनों के अपयश रूपी वस्त्रों को सिलता है। स्पष्ट रूप से वह आरे के समान आकार वाले पत्तों के द्वारा वियोगियों के हृदय रूपी लकड़ी को चीरता-सा है।

NOTES

हिन्दी व्याख्या—विरही राजा नल केतकी पुष्प को देखकर और अधिक व्यथित हो उठता है। वह उसकी निन्दा करते हुए कहता है कि तुम्हारी नोंक रूपी सुई के द्वारा कामदेव विरही जनों के दुर्यश रूपी वस्त्रों को सीता है और जिस प्रकार लकड़ी को चीरने के लिए आरे का प्रयोग किया जाता है, उसी प्रकार वियोगियों के हृदय को चीरने के लिए तुम अपने पत्तों का उपयोग करते हो। अतः तुम अत्यन्त ही क्रूर हो।

संस्कृत व्याख्या—विरही नलः केतकी पुष्पं दृष्ट्वा अति व्यथितो भवति, सः तं निन्दयन् कथयति - त्वदग्रसूच्या = तव अग्रमेव सूची तथा, सचिवेन = सहायेन (कृत्वा) सचिवाः सहकारिणो यस्य स तथोक्तः सः प्रसिद्धो मनोभवः कामिनी च कामी च कामिनोः तयोः स्त्रीपुरुषयोः, दुर्यशः पटौ = दुष्कीर्तिवस्त्रे, सीव्यति = कण्टकस्यूतं करोति, स्फुटतम् = स्पष्टतम्, सः मन्मथः करपत्रमूर्तिभिः = क्रकचाकोरैः, पत्रैः = पर्णैः तैः वियोगिनां हृदि एव दारुणि दारयति इति दारुणे विदारको भेत्ता स इवाचरति इति दारुणायते।

धनुर्मधुस्विन्नकरोति भीमजा-

परं परागैस्तव धूलिहस्तयन्।

प्रसूनधन्वा शरसात्करोति माम्-

मिति क्रुधाऽऽक्रुश्यत तेन कैतकम्॥ ८१॥

अन्वय—प्रसूनधन्वा धनुर्मधुस्विन्न करोऽपि तव परागैः धूलि हस्तयन् भीमजापरं, माम् शरसात्करोति, इति तेन क्रुधा कैतकम् आक्रुश्यत।

शब्दार्थ—प्रसूनधन्वा = फूलों के धनुष वाला, कामदेव। धनुर्मधुस्विन्न करः = धनुष के पुष्प के कारण गीले हाथों वाला। परागैः = चूर्णों से। धूलि हस्तयन् = हाथ से धूल बनाता हुआ। भीमजापरम् = राजा भीम की पुत्री दमयन्ती के प्रति आसक्त। माम् = मुझको। शरसात्करोतिः = बाण का निशाना बनाता है। क्रुधा = क्रोध से। कैतकम् = केतकी के पुष्प के प्रति। आक्रुश्यत = आक्रोश किया।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से प्रस्तुत श्लोक में केतकी के पुष्प के प्रति राजा नल के क्रोध का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद—पुष्पों के धनुष वाले कामदेव का हाथ फूलों से निकलने वाले रस के कारण गीला हो जाता है। कामदेव केतकी के पुष्प के पराग का प्रयोग करता हुआ अपने गीले हाथ को सुखाता है। इस प्रकार कामदेव दमयन्ती के प्रति आसक्त राजा नल को अपने बाणों का लक्ष्य बना रहा है। इस कारण राजा नल ने क्रोध के कारण केतकी के पुष्प की निन्दा की है।

हिन्दी व्याख्या—पुष्प में दो तत्त्व होते हैं—एक रस अथवा मकरन्द जो द्रव होता है और दूसरा पराग जो चूर्ण के समान शुष्क होता है। कामदेव का बाण पुष्पों का है। पुष्पों के रस के कारण कामदेव का हाथ गीला हो जाता है। गीले हाथ से बाण और धनुष का हाथ फिसलना सम्भव है। इस प्रकार धनुषधारी अपने लक्ष्य पर ठीक से प्रहार नहीं कर पाता। केतकी के पुष्प में जो पराग होता है, वह धूल के समान होता है। लोग अपने गीले हाथों को धूल के सहारे सूखा कर लेते हैं। कामदेव भी केतकी के पराग से अपना गीला हाथ सुखा लेता है। इसके बाद वह विदर्भ-नरेश भीम पुत्री दमयन्ती पर आसक्त राजा नल को अपने बाणों का लक्ष्य बनाने में सफल होता है। इस प्रकार केतकी का पुष्प राजा नल की पीड़ा का कारण बनता है। यही कारण नल के द्वारा केतकी के पुष्प की निन्दा का है।

संस्कृत व्याख्या—प्रसूनधन्वा = कुसुम धनुषवान् कामदेवः। धनुर्मधुस्विन्नकरः = स्वधनुषः मधुना कारणेन आर्द्रस्तः सन्। तव = केतकी कुसुमस्य। परागैः = रजोभिः। धूलिहस्तयन् = धूलिना हस्तं शुष्कं कुर्वन्। भीमजापरम् = दमयन्तीं प्रति आसक्तम्। माम् = नलम्। शरसात्करोति = बाणानां नाद करोति। इति = अनेकेन कारणेन। तेन = नलेन। क्रुधा = कोपेन। केतकम् = केतक्याः पुष्पम्। आक्रुश्यत = आक्रोशं कृतम्।

विदर्भसुभ्रूस्तन तुङ्गताप्तये,
घटानिवापश्यदलं तपस्यतः।
फलानि धूमस्य धयानधोमुखान्,
स दाडिमे दोहदधूपिनि द्रुमे ॥८२॥

अन्वय—स दोहदधूपिनि दाडिमे द्रुमे विदर्भ सुभ्रूस्तन तुङ्गताप्तये अलं तपस्यतः धूमस्य धया इव फलानि अपश्यत्।

शब्दार्थ—दोहदधूपिनि = उपाय रूपी धूप से युक्त। दाडिमे द्रुमे = अनार के वृक्ष पर। विदर्भ सुभ्रू = विदर्भ देश निवासिनी तथा सुन्दर भौंहों वाली। स्तन तुङ्गताप्तये = स्तनों की ऊँचाई को प्राप्त करने के लिए। अलम् = पर्याप्त। तपस्यतः = तपस्या करते हुए। धूमस्य = धुएँ के पीने वाले। अधोमुखान् = नीचे की ओर मुख किये हुए। घटान् इव = घड़ों के समान। फलानि = फलों को। अपश्यत् = देखा।

प्रसंग-सन्दर्भ—अनार के वृक्ष का वर्णन करने वाला यह श्लोक श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है।

हिन्दी अनुवाद—उस राजा नल ने धुएँ से युक्त अनार के वृक्ष पर दमयन्ती के स्तनों की उच्चता प्राप्त करने के हेतु धूम्र को पीते हुए अतिशय तपस्या करने वाले फलों को नीचे की ओर मुँह किये हुए घड़ों के समान देखा।

हिन्दी व्याख्या—अभीष्ट फल की प्राप्ति के लिए लोग कठोर तपस्या करते हैं। उनमें एक तपस्या नीचे की ओर पेड़ पर लटकते हुए धुआँ पीना भी है। अनार के वृक्ष पर अनेक फल नीचे की ओर मुँह किये लटक रहे हैं। दमयन्ती के स्तन विशाल थे। अनार के फल दमयन्ती के स्तनों के समान विशालता प्राप्त करना चाहते थे। अनार के वृक्ष पर लगे फल घड़ों के समान बड़े थे, पर वे दमयन्ती के उच्च स्तनों की समानता नहीं कर पा रहे थे। इससे स्पष्ट है कि दमयन्ती के स्तन घड़ों से भी अधिक बड़े थे। राजा नल को अनार के वृक्ष पर लगे विशाल फल देखकर ऐसा प्रतीत हुआ कि वे फल दमयन्ती के स्तनों के समान विशालता प्राप्त करने के लिए दोहद के रूप में अधोमुख लटककर धूम्रपान की तपस्या कर रहे हैं।

संस्कृत व्याख्या—सः = धारा नरेशः नलः। दोहदधूपिनि = अति फलादि रूपस्य समृद्ध्यर्थं कृतोपायः तस्य धूपयुक्ते। दाडिमे द्रुमे = दाडिम नामके वृक्षे। विदर्भ सुभ्रूस्तनतुङ्गताप्तये = दमयन्त्याः कुचयोः उच्चता प्राप्त्यर्थम्। अलम् = पर्याप्तम्, अतिशयेन। तपस्यतः = तपं कुर्वतः। धूमस्य = दोहदहेतोः धूम्रस्य। धयान् = पातृन्। अधोमुखान् = नीचैः कृत वदनाम्। घटान् = कुम्भान्। इव = तुल्यम्। अपश्यत् = दृष्टवान्।

वियोगिनीमैक्षत दाडिमीमसौ
प्रियस्मृतेः स्पष्टमुदीतकण्टकाम्।
फलस्तनस्थानविदीर्णरागिहृद्-
बिशच्छुकास्यस्मरकिंशुकाशुगाम् ॥८३॥

अन्वय—असौ प्रियस्मृतेः स्पष्टं उदीतकण्टकां फलस्तनस्थानविदीर्णरागि हृद्विशच्छुकास्यस्मर किंशुकाशुगां दाडिमीं वियोगिनीम् ऐक्षत ।

NOTES

शब्दार्थ—असौ = उसने। प्रियस्मृतेः = प्रिय के कारण। उदीतकण्टकाम् = निकले हुए काँटों से युक्त। फलस्तनस्थान = स्तनसदृश फलों के मध्य। विदीर्णरागिहृद्विशत् = विदीर्ण एवं रक्तवर्ण वाले मध्य भाग में प्रवेश करते हुए। शुकास्यस्मर किंशुकाशुगाम् = शुकमुख रूपी कामदेव के पलाश पुष्परूपी बाणों से युक्त। दाडिमीम् = अनार के वृक्ष को। ऐक्षत = देखा।

प्रसंग-सन्दर्भ—अनार के वृक्ष का वियोगिनी के रूप में वर्णन करने वाला प्रस्तुत श्लोक श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है।

हिन्दी अनुवाद—उसने प्रिय के कारण रोमाञ्च से युक्त वियोगिनी स्त्री के समान कण्टकयुक्त नायिका के फल सदृश स्तनों के भीतर अनुरागयुक्त विदीर्ण हृदय में प्रविष्ट कामदेव के पलाश पुष्प रूप बाण के सदृश जिसके विदीर्ण लाल फल में प्रविष्ट तोते की चोंच दिखाई पड़ती थी, ऐसा अनार का वृक्ष देखा।

हिन्दी व्याख्या—उपवन की रमणीयता देखते समय राजा नल की दृष्टि अनार के वृक्ष पर पड़ी। अनार का वृक्ष कण्टकयुक्त तथा फलों से पूर्ण था। अनार का फल पकने पर बीच से फट जाता है और उसके लाल-लाल दाने दिखाई देने लगते हैं। शुक अनार के फलों के बीच के दानों को खाने के लिए अपनी चोंच का प्रयोग करते हैं। उन फलों को देखकर राजा नल को प्रिया दमयन्ती का स्मरण हो गया। दमयन्ती के स्तन रोमाञ्च से युक्त थे। स्तनों के मध्य भाग विदीर्ण होने से लालिमा युक्त दिखाई पड़ रहे थे। उस विदीर्ण हृदय में पलाश पुष्प रूप कामदेव का बाण प्रवेश कर गया था।

संस्कृत व्याख्या—असौ = नलः। प्रियास्मृतेः = दमयन्तीस्मरणादिव। स्पष्टव्यक्तम् = उदीतकण्टकाम् = उदीताः उद्गताः कण्टकाः स्वावयव सूचय एव कण्टका रोमाञ्चा यास्यास्ताम् इति। फलस्तनस्थानविदीर्णरागि हृद्विशच्छुकास्यस्मरकिंशुकाशुगां = फलानि एवं स्तनौ तावेव स्थानं तत्र विदीर्णो रागो चस्यास्तीति रागिरक्तवर्णम् अनुरक्तञ्च यत्तस्मिन् हृदि विशन्ति यानि। शुकास्यानि = शुकमुखानि तान्येव स्मरस्य कामदेवस्य किंशुकानि = पलाशपुष्पाण्येव। आशुगाः = बाणाः यस्याः तादृशीम्। दाडिमीम् = वियोगिनीम्। विरहिणीमैक्षत = अपश्यत्।

स्मरार्द्धचन्द्रेषुनिभे कृशीयसां,

स्फुटं पलाशेऽध्वजुषां पलाशनात्।

स वृन्तमालोकत खण्डमन्वितं,

वियोगिहृत्खण्डिनि कालखण्डजम्॥ ८४॥j

अन्वय—सः स्मरार्द्धचन्द्रेषुनिभे वियोगिहृत्खण्डिनि कृशीयसाम् अध्वजुषाम् पलाशनात् स्फुटं पलाशे अन्वितं वृन्तं, कालखण्डजं खण्डम् आलोकत।

शब्दार्थ—स्मरार्द्धचन्द्रेषुनिभे = कामदेव के आधे चन्द्रमा के आकार वाले बाण के समान। वियोगिहृत्खण्डिनि = वियोगियों के हृदय को टुकड़े-टुकड़े करने वाले। कृशीयसाम् = अत्यधिक दुबले। अध्वजुषाम् = पथिकों के। पलाशनात् = मांस खाने के कारण। स्फुटम् = स्पष्ट रूप से। पलाशे = मांस-भक्षण करने वाले। अन्वितम् = सम्बन्धित। वृन्तम् = डंठलों की। कालखण्डजम् = यकृत से उत्पन्न। खण्डम् = टुकड़ा। आलोकत = देखा।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में पलाश पुष्प का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद—राजा नल ने कामदेव के अर्द्धचन्द्राकार बाण के समान वियोगी जनों के हृदय को विदीर्ण करने वाले तथा अत्यधिक दुर्बल पथिकों का मांस-भक्षण करने के कारण स्पष्ट रूप से पलाश वृक्ष के फूल में लगे हुए डंठल को देखा जो नल को यकृत के टुकड़े के समान प्रतीत हुआ।

हिन्दी व्याख्या—पलाश के वृक्ष पर जो फूल उगते हैं, उनका आकार आधे चन्द्रमा के समान होता है। युद्ध स्थल में धुनर्धर वीर शत्रु का मस्तक काटने हेतु अर्द्धचन्द्राकार बाणों का प्रयोग करते हैं। राजा नल को पलाश वृक्ष पर लगा पुष्प कामदेव के वियोगी-जनघातक अर्द्धचन्द्राकार बाण के समान प्रतीत हुआ। पलाश के पुष्प के ऊपर काले रंग का डंठल होता है। कवि श्रीहर्ष ने कल्पना की है कि कामदेव ने अपने पलाश पुष्परूपी अर्द्धचन्द्राकार बाण से वियोगी जनों के दाहिने भाग पर प्रहार किया है। सीने के दाहिने भाग में यकृत होता है। कामदेव के अर्द्धचन्द्राकार बाण में वियोगी पुरुष के यकृत का काले रंग का मांस का टुकड़ा लगा रह गया है।

संस्कृत व्याख्या—सः = धारायाः स्वामी नलः। स्मरार्द्धचन्द्रेषुनिभे = कामदेवस्य अर्द्धचन्द्रसदृशे बाणे। वियोगिहृत्खण्डिनि = वियोगिनां पुरुषाणां हृदयविदारके। क्रशीयसाम्। अधिकतरं क्षीणानाम्। अध्वजुषाम् = पथिकानाम्। पलाशनात् = मांसभक्षणात्। स्फुटम् = स्पष्टम्। पलाशे = किंशुक वृक्षे। अन्वितम् = सम्बद्धम्। वृन्तम् = पुष्पबन्धम् = यकृतात् उत्पन्नम्, यकृतात् पृथक्कृतम्। खण्डजम् = भागम्। इव = तुल्यम्। आलोकित = दृष्टवान्।

नवा लता गन्धवहेन चुम्बिता

करम्बिताङ्गी मकरन्दशीकरैः।

दृशा नृपेण स्मितशोभिकुड्मला

दरादराभ्यां दरकम्पिनी पपे ॥८५॥

अन्वय—गन्धवहेन चुम्बिता मकरन्दशीकरैः करम्बिताङ्गी स्मितशोभिकुड्मला दरकम्पिनी नवा लता नृपेण दृशा दरादराभ्याम् पपे।

शब्दार्थ—गन्धवहेन—पवन के द्वारा। चुम्बिता = चूमी गयी, स्पर्श की गयी। मकरन्दशीकरैः = पुष्प रस की बूँदों से। करम्बिताङ्गी = मिले हुए अंगों वाली। स्मितशोभिकुड्मला = खिली हुई कलियों से सुशोभित। दरकम्पिनी = कुछ-कुछ काँपती हुई। नवा = नयी। लता = बेल। नृपेण = राजा ने। दृशा = अपने नेत्रों से। दरादराभ्याम् = भय और आदर के साथ। पपे = पी, देखी।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में प्रकृति का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद—पवन के द्वारा स्पर्श की गयी, फूलों के रस अर्थात् मकरन्द की छोटी-छोटी बूँदों से युक्त अंगों वाली, खिली होने के कारण सुशोभित कलियों से युक्त तथा कुछ-कुछ हिलती हुई नवीन लता राजा नल के द्वारा भय और आदर के साथ देखी गयी।

हिन्दी व्याख्या—गन्ध को वहन करने वाले पवन ने नवीन लता रूपी नवयुवती अथवा मुग्धा नायिका का स्पर्श किया। खिली हुई कलियाँ नायिका लता के मुस्कुराने अर्थात् प्रसन्न होने का संकेत करती हैं, जिसके कारण नवीन पल्लवों और विकसित कुसुमों वाली लता वियोगीजनों को दुःखी करती है। राजा नल दमयन्ती के वियोग में व्याकुल था। दमयन्ती को प्राप्त न कर पाने की दशा उसे व्याकुल कर रही थी। इसी कारण राजा नल ने नवीन लता को भय के साथ देखा। नवीन लता किसी नवयौवना के समान थी, अतः राजा नल ने उसे आदर के साथ देखा।

NOTES

NOTES

संस्कृत व्याख्या—गन्धवहेन = पवनेन। चुम्बिता = स्पृष्टा, विषयीकृता। मकरन्दशीकरैः = पुष्पाणां रसस्य लघु बिन्दुभिः। करम्बितांगी = सिंचित शरीरा, आर्द्र देहा। स्मितशोभिकुड्मला = विकासेन सुशोभिता कलिकावती। दरकम्पिनी = ईषत् कम्पनसहिता। नवा = अभिनवा। लता = वल्ली। नृपेण = राज्ञा नलेन। दरादराभ्याम् = भयेन आदरेण च। पपे = दृष्टिविषयीकृता।

विचिन्वतीः पान्थपतङ्गहिंसनै

रपुण्यकर्माण्यलिकज्जलच्छलात्।

व्यलोकयच्चम्पककोरकावलीः

स शम्बरारेर्बलिदीपिका इव ॥ ८६ ॥

अन्वय—स पान्थपतङ्गहिंसनैः अलिकज्जलच्छलात् अपुण्यकर्माणि विचिन्वतीः शम्बरारेः बलिदीपिका इव चम्पककोरकावलीः व्यलोकयत्।

शब्दार्थ—सः = उसने। पान्थपतङ्गहिंसने = पथिक रूपी पतंगों की हिंसा करने के कारण। अलिकज्जलच्छलात् = कज्जल सदृश कृष्ण वर्ण के भ्रमरों के बहाने से। अपुण्यकर्माणि = पापकर्मों का। विचिन्वतीः = संचय करने वाली। शम्बरारेः = कामदेव के। बलिदीपिका इव = पूजादीपों के समान। चम्पक कोरकावलीः = चम्पा की कलियों की पंक्ति को। व्यलोकयत् = देखा।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में भी प्रकृति का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद—उसने पथिक रूपी पतंगों की हिंसा करने के कारण कज्जल सदृश कृष्णवर्ण के भ्रमरों के बहाने से पापकर्मों का संचय करने वाली कामदेव के पूजादीपों के समान चम्पा की कलियों की पंक्ति को देखा।

हिन्दी व्याख्या—चम्पा की कलियाँ अत्यधिक कामोत्तेजक हुआ करती हैं। विरही पथिकों द्वारा उन्हें देख लेने से वे उसी प्रकार मर जाते हैं, जिस प्रकार दीपक की लौ पर बैठने वाले पतंगे मर जाते हैं। चम्पा की कलियों पर बैठने वाले काले-काले भ्रमर दीपक के काजल के रूप में दिख रहे थे, उन्हें देखकर ऐसा लग रहा था मानो दीपक की लौ ने पतंगों को मारने के पाप के रूप में उन्हें सिंचित किया हो। इस प्रकार भ्रमरयुक्त चम्पक कलियों को कामदेव के पूजा-दीपक के समान नल ने देखा।

संस्कृत व्याख्या—पन्थानं गच्छन्ति नित्यमिति पान्थाः नित्यपथिकाः पन्थादेशश्च। ते एव पतङ्गाः पक्षिणः तेषां हिंसनैः वधै पथिकशलभमारणे, अपुण्य-कर्माणि = पाप कर्माणि, अलिकज्जलच्छलात् = भ्रमर कालुष्य व्याजात् = अलयः कज्जलानि इन्न तेषां छलात् विचिन्वतीः = अर्जयन्तीः = संगृह्णतीः हिंसापापकारिणीत्यर्थः। शम्बरारेः = कामदेवस्य - मनसिजस्य बलिदीपिकाः पूजादीपिका इव चम्पककोरकावलीः = चम्पककुड्मलपंक्तीः सः नलः व्यलोकयत् = अपश्यत्।

अमन्यतासौ कुसुमेषुगर्भजं

परागमन्थङ्करणं वियोगिनाम्।

स्मरेण मुक्तेषु पुरा पुरारये

तदङ्गभस्मेव शरेषु सङ्गतम् ॥ ८७ ॥

अन्वय—असौ कुसुमेषु गर्भजं वियोगिनां अन्धङ्करणं पुरा स्मरेण मुक्तेषु शरेषु सङ्गतं तदङ्गभस्म इव अमन्यत।

नैषधीयचरितम् (श्रीहर्ष)

NOTES

शब्दार्थ—कुसुमेषु = पुष्पों में। गर्भजम् = अन्दर स्थित। वियोगिनाम् = विरहियों को। अन्धङ्करणम् = अन्धा बनाने वाले। परागम् = पराग को। स्मरेण = कामदेव द्वारा। पुरारये = शिवजी पर। मुक्तेषु = छोड़े गये। शरेषु = बाणों में। संगतम् = लगी हुई। अमन्यत = माना।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में शिव भस्म का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद—उसने पुष्पों में अन्दर स्थित 'पराग' को विरहियों को अन्धा बनाने वाला, पूर्वकाल में कामदेव द्वारा शिव पर छोड़े गये बाणों में लगा हुआ शिवजी के शरीर का भस्म माना।

हिन्दी व्याख्या—भस्म अथवा धूलि जब आँखों में गिर जाती है तो वह व्यक्ति अन्धा हो जाता है। पुष्प परागों का दर्शन करने पर विरही व्यक्ति काम पीड़ित होकर अन्धे अर्थात् अविवेकी हो जाते हैं। यही सोचकर राजा नल ने पुष्पों के मध्य स्थित पराग कणों का पूर्वकाल में कामदेव द्वारा शिवजी पर छोड़े गये पुष्पनिर्मित बाणों में लगी हुई शिवजी के शरीर की भस्म समझा।

संस्कृत व्याख्या—असौ नलः कुसुमान्येव इषवः कामबाणास्तेषां गर्भजं गर्भजातं वियोगिनाम् = विरहिणाम्, अन्धङ्करणम् = लोचनोपघतकम्, परागम् पुष्परजः, पुरा पूर्वम्, स्मरेण = कन्दर्पेण, पुरारये = शंकराय, मुक्तेषु = त्यक्तेषु शरेषु सङ्गतं संसक्तं तदङ्ग भस्म इव = शंकर शरीर भस्म इव, अमन्यत।

पिकाद्वने शृण्वति भृङ्गहृत्कृतैः-

दशामुदञ्चत्करुणं वियोगिनाम्।

अनास्थया सूनकरप्रसारिणीं,

ददर्श दूनः स्थलपद्मिनीं नलः ॥ ८८ ॥

अन्वय—दूनः नलः उदञ्चत्करुणे, पिकात् भृङ्गहृत्कृतैः वियोगिनां दशाम् शृण्वति वने अनास्थया सूनकरप्रसारिणीं, स्थलपद्मिनीम् ददर्श।

शब्दार्थ—दूनः = दुःखी, सन्तप्त। उदञ्चत्करुणे = विकसित होते हुए करुण वृक्षों वाले। पिकात् = कोयल से। भृङ्गहृत्कृतैः = भौरों के हँकारों से। वियोगिनाम् = वियोगी जनों की। दशाम् = दशा को। शृण्वति = सुनने वाले, सुनते हुए। वने = वन में। अनास्थया = अनिच्छा से। सूनकर प्रसारिणीम् = फूलों-रूपी हाथों को फैलाये हुए। स्थल-पद्मिनीम् = स्थल पर उत्पन्न होने वाली कमलिनी को। ददर्श = देखा।

प्रसंग-सन्दर्भ—राजा नल की विरहावस्था का वर्णन करने वाला यह श्लोक श्री हर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है।

हिन्दी अनुवाद—दुःखी नल ने विकसित करुण वृक्षों वाले तथा कोयलों द्वारा एक भौरों की हँकारों से वियोगी-जनों की विषम दशा को सुनते जा रहे वन में अनादर से हाथ फैलाये हुई स्थल-कमलिनी को देखा।

हिन्दी व्याख्या—प्रमोदवन में करुण वृक्ष फूले हुए थे। उन पर कोयल कूक रही थी। ऐसा लगता था कि वह वियोगीजनों की विषम दशा का वर्णन कर रही है। उन वृक्षों पर भौरें गूँज रहे थे। उनका गुंजन ऐसा जान पड़ता था कि वे कोयल के वचनों का अपने गुंजन द्वारा समर्थन कर रहे थे। वहाँ पर स्थल-कमलिनी पत्रों और

पुष्पों से युक्त थी। ऐसा लगता था कि उसे वियोगियों की दशा एवं उसका समर्थन अरुचिकर लग रहा है। ऐसा प्रतीत होता था कि वह हाथ फैलाकर अपना अनादर भाव व्यक्त करती हुई कोयल और भौरों को मना कर रही है। राजा नल पहले ही दुःखी था। इसे देखकर उसको अधिक दुःख हुआ।

NOTES

संस्कृत व्याख्या—दूनः = कृशः। संतप्तः। उदञ्चत्करुणे = विकसिते करुणनामके वृक्षविशेषे। पिकात् = कोकिलात्। भृङ्गहुंकृतैः = भ्रमराणां हुंकारैः। वियोगिनां = वियोगि जनानाम्। दशाम् = स्थितिम्। शृण्वति = आकर्णनं कुर्वन्ति। वने = कानने। अनास्थया = उपेक्षाभावेन। सूनकर प्रसारिणीम् = पुष्परूपे हस्ते विस्तारितवतीम्। स्थलपद्मिनीम् = स्थल कमलिनीम्। ददर्श = दृष्टवान्।

रसालसालः समदृश्यतामुना

स्फुरद्विरेफारवरोषहुङ्कृतिः।

समीर लोलैर्मुकुलैर्वियोगिने

जनाय दित्सन्निव तर्जनाभियम् ॥८९॥

अन्वय—अमुना स्फुरद्विरेफारवरोषहुङ्कृतिः रसालसालः समीरलोलैः मुकुलैः वियोगिने जनाय तर्जनाभियं दित्सन् इव समदृश्यत।

शब्दार्थ—स्फुरद्विरेफारवरोषहुङ्कृतिः = घूमते हुए भँवरों की गुञ्जार रूपी हुँकार से युक्त। रसालसालः = आम का वृक्ष। समीरलोलैः = वायु के कारण चञ्चल। मुकुलैः = कलियों के द्वारा। तर्जनाभियम् = तर्जना रूपी भय को। दित्सन् = देने की इच्छा करते हुए। समदृश्यत = देखा गया।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में वर्णन है कि आम वृक्ष अपनी मञ्जरियों को हिलाकर वियोगियों को डरा रहा है।

हिन्दी अनुवाद—नल द्वारा घूमते हुए भँवरों की गुञ्जार रूपी हुँकार से युक्त, आम का वृक्ष वायु के कारण चञ्चल कलियों के द्वारा वियोगीजनों को तर्जना रूपी भय देने की इच्छा से युक्त देखा गया।

हिन्दी व्याख्या—प्रमोद वन में आम के वृक्षों पर मंजरियाँ लगी हुई थीं। जो तेज हवा चलने के कारण हिल रही थीं। उन मंजरियों पर गुंजार करते हुए भ्रमर इधर-उधर घूम रहे थे। इसे देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो आम का पेड़ भ्रमरों के गुञ्जन रूपी हुँकारों के रूप में क्रोध कर रहा हो और अपनी मंजरियों को हाथों के रूप में हिला-हिलाकर वियोगी जनों को भयभीत कर रहा हो।

संस्कृत व्याख्या—अमुना नलेन स्फुरद्विरेफारवरोषहुङ्कृतिः = स्फुरन्तः भ्रमन्तः द्विरेफाः भ्रमराः तेषाम् आरवः 'भ्रमर झङ्कार एव रोषणे या हुङ्कृति हुङ्कारो यस्य सः समीरलोलैर्वायुचलैर्मुकुलैर्दुगुलिभिरितिभावः। वियोगिने = विरहिणे, जनाय = लोकाय तर्जनाभियम् = भर्त्सनाभीतिम्, दित्सन् इव = दातुमिच्छन् इव। स्थितः रसालसालः = आम्रवृक्षः समदृश्यत = सम्यग्दृष्टः।

दिने-दिने त्वं तनुरेधि रेऽधिकं,

पुनः पुनर्मूर्च्छं च मृत्युमृच्छ च।

इतीव पान्थं शपतः पिकान् द्विजान्,

सखेदमैक्षिष्ट स लोहितेक्षणां ॥ ९० ॥

अन्वय—रे! त्वं दिने-दिने अधिकं तनुः एधि, पुनः-पुनः च मूर्च्छं, तापं च ऋच्छ। इतीव पान्थान् शपतः लोहितेक्षणां पिकान् द्विजान् सः सखेदम् ऐक्षिष्ट।

शब्दार्थ—रे = रे नीचे। दिने-दिने = आने वाले प्रत्येक दिन में। तनुः = क्षीण, दुर्बल। एधि = हो। तापम् = सन्ताप को। ऋच्छ = प्राप्त हो। पान्थान् = पथिकों को। शपतः = शाप देते हुए। लोहितेक्षणान् = लाल आँखों वालीयों को। कोकिलान् = कोयलों को। द्विजान् = पक्षियों को। ददर्श = देखा।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष प्रणीत नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में कोयलों का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद—हे पथिक ! तू प्रतिदिन क्षीण होता जा और बार-बार मूर्च्छित होने के साथ ही सन्ताप को प्राप्त कर। मानो इस प्रकार पथिकों को शाप देती हुई, लाल आँखों वाली कोयल पक्षियों को उस राजा नल ने खिन्नता के साथ देखा।

हिन्दी व्याख्या—वसन्त ऋतु में प्रकृति का रूप अत्यन्त आकर्षक और मोहक हो जाता है। इसी आधार पर वसन्त को ऋतुराज अर्थात् ऋतुओं का राजा कहा जाता है। वसन्त ऋतु के अनेक आकर्षणों में एक कोयल का कूकना भी है। वसन्त ऋतु की प्राकृतिक शोभा और कोकिल की कल-काकली संयोग में जितना सुखी करती है, वियोगियों को यह उतना ही दुःखी करती है। वियोगीजनों को कोयल की मधुर कूक ऐसी होती है, मानो वह कह रही है कि हे पथिक ! तू प्रतिदिन दुबला-पतला होता जा, बार-बार मूर्च्छित हो और सन्ताप प्राप्त कर। यह तो वियोगी पथिकों को एक प्रकार का शाप है। राजा नल स्वयं वियोगी था, दमयन्ती को प्राप्त न करके वह वियोग-व्यथा सह रहा था। यही कारण था कि राजा नल ने उन कोयल पक्षियों को खिन्नतापूर्वक देखा।

संस्कृत व्याख्या—रे = हे नीचे पथिक। त्वम् = भवान्। दिने-दिने = प्रतिदिवसम्। अधिकम् तनुः = अतिशयं दुर्बलः। एधि = भव। पुनः-पुनः = बारम्बारम्। मूर्च्छ = मूर्च्छाम् प्राप्नुहि। तापम् = सन्तापम्। ऋच्छ = प्राप्तं कुरु। लभस्व। इतीव = इति + इव। पूर्वोक्त प्रकारेण एव। पान्थान् = पथि गमनं कुर्वतः पुरुषान्। शपतः = शापितवान्। कुर्वतः = विदधतः। लोहितेक्षणान् = रक्त वर्ण नयनान्। पिकान् = कोकिलान्। द्विजान् पक्षिणः। सखेदम् = खेदसहितम्। ददर्श = दृष्टवान्।

अलिम्रजा कुड्मलमुच्चशेखरम्
निपीय चाम्पेयमधीरया दृशा।
स धूमकेतुं विपदे वियोगिना-
मुदीतमाशङ्कितवानशङ्कत ॥११॥

अन्वय—अलिम्रजा उच्चशेखरं चाम्पेयं कुड्मलं अधीरया दृशा निपीय आशङ्कितवान् स वियोगिनाम् विपदे उदीतं धूमकेतुं अशङ्कत।

शब्दार्थ—अलिम्रजा = भ्रमर पंक्ति से युक्त। उच्चशेखरम् = उन्नत चोटी वाली। चाम्पेयम् = चम्पा की। कुड्मलम् = कली को। अधीरया = व्याकुल। दृशा = दृष्टि से। निपीय = अच्छी प्रकार देखकर। आशङ्कितवान् = आशंका से युक्त। वियोगिनाम् = वियोगियों की। विपदे = विपत्ति में। उदीतम् = उत्पन्न हुए। अशङ्कत = समझा।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में चम्पा की कलियों का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद—भ्रमरपंक्ति से युक्त उन्नत चोटी वाली चम्पा की कली को व्याकुल दृष्टि से अच्छी प्रकार देखकर आशंका से युक्त नल ने वियोगियों की विपत्ति में उत्पन्न हुए धूमकेतु समझा।

NOTES

NOTES

हिन्दी व्याख्या—चम्पा की कली अत्यधिक कामोदीपक होने के कारण विरहियों के लिए अनिष्टकारक ही हुआ करती है। अतः उसे धूमकेतु कहा गया है। धूमकेतु भी अनिष्टकारक होता है। उपवन में चम्पा की कलियों पर भ्रमरों को बैठा देखकर राजा नल किसी अनिष्ट की सम्भावना से अत्यन्त व्याकुल हो उठे। चम्पा की कलियों पर काले-काले चोटी के समान भँवरों को देखकर उन्हें ऐसा लगा मानो वियोगियों के विनाश के लिए धूमकेतु अर्थात् पुच्छल तारा उदित हो गया हो।

संस्कृत व्याख्या—अलिम्रजा = भ्रमर पंक्त्या। उच्चशेखरम् = उनतशिरो भूषणम्। चाम्पेयम् = चम्पक विकारम्। कुड्मलम् = मुकुलम्। अधीरया = धैर्य रहितया। दृशा = दृष्ट्या। निपीय = सादरं दृष्ट्वा। आशङ्कितवान् = किञ्चिद् निष्ठमुत्प्रेक्षितवान्। इति भावः। सः = राजा नलः। वियोगिनाम् = विरहिणाम्। विपदे = विनाश सूचनाय। उदीतं = उत्थितम्। धूमकेतुम् = उत्पात विशेषम् अशुभसूचकं तारापुञ्जम्। अशङ्कतवान् = शङ्कितवान्।

गलत्परागं भ्रमिभङ्गिभिः पतत्-

प्रसक्तभृङ्गावलि नागकेसरम्।

स मारनाराच निघर्षणस्खल-

ज्वलत्कणं शाणमिव व्यलोकयत् ॥१२॥

अन्वय—सः गलत्परागं भ्रमिभङ्गिभिः पतत्-प्रसक्तभृङ्गावलि नागकेसरम् मारनाराचनिघर्षणस्खलत् ज्वलत् कणम् शाणमिव व्यलोकयत्।

शब्दार्थ—गलत् परागम् = नीचे गिरते हुए पराग वाले। भ्रमिभङ्गिभिः = विशेष प्रकार के चक्करों से। पतत् = नीचे उतरते हुए। प्रसक्त-भृङ्गावलि नागकेसरम् = भौरों के समूह से युक्त नागकेसर को। मारनाचनिघर्षण = कामदेव के बाण को तेज करना। स्खलत् = गिरते हुए। ज्वलत् कणम् = जलते हुए स्फुलिंगों वाले। मारनाराच निघर्षण स्खलत् ज्वलत् कणम् = कामदेव द्वारा अपने बाणों को घिसते समय गिरते एवं जलते हुए अग्नि कणों वाले। शाणम् इव = निकष पत्थर के समान। व्यलोकयत् = देखा।

प्रसंग-सन्दर्भ—नागकेसर के पुष्प विरही नल के लिए सन्तापदायक कैसे नहीं होंगे ? यही वर्णन श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में किया गया है।

हिन्दी अनुवाद—उस राजा नल ने नीचे गिरते हुए पराग वाले तथा विशेष प्रकार के चक्करों से नीचे उतरते हुए भ्रमरों से युक्त नागकेसर को कामदेव द्वारा अपने बाण घिसकर तेज बनाने के साधन पत्थर के समान देखा।

हिन्दी व्याख्या—राजा नल ने अपने प्रमोद वन में पहुँचकर नागकेसर के वृक्ष को देखा। नागकेसर के वृक्ष के पुष्पों से पराग के कण नीचे गिर रहे थे। ऊँचाई पर चारों ओर चक्कर काटने वाले भौरों से नीचे की ओर आते हुए उस नागकेसर वृक्ष के पुष्पों पर बैठ रहे थे। बाण की नौक को तेज करने के लिए उसे पत्थर पर घिसा जाता है। बाण की नौक लोहे की बनी होती है। उसे पत्थर पर घिसने से चिनगारियाँ निकलती हैं। नागकेसर के पुष्पों से झड़ते हुए पराग के कण उस पत्थर से निकलने वाली आग की चिनगारियों के समान प्रतीत हो रहे थे।

संस्कृत व्याख्या—सः = राजा नलः। गलत् परागम् = भ्रष्ट पुष्प = धूलिम्। भ्रमिभङ्गिभिः = भ्रमणस्यप्रकारैः। पतत् = नीचैः आगच्छत्। प्रसक्तभृङ्गावलि = भ्रमर समूहने युक्तम्। नागकेसरम् एतन्नामकस्य वृक्षस्य पुष्पम्। मारनाराचनिघर्षणस्खलत् ज्वलत्कणम् = कामदेवस्य बाणानयं निघर्षणेन भ्रष्टदग्धिः ज्वलत् कणै सहितम्। शाणमिव = निकषपाषाणाम् इव। व्यलोकयत् = दृष्टवान्।

तदङ्गमुद्दिश्य सुगन्धि पातुकाः

शिलीमुखालीः कुसुमाद् गुणस्पृशः ।

स्वचापदुर्निर्गतमार्गणभ्रमात्

स्मरः स्वनन्तीरवलोक्य लज्जितः ॥ ९३ ॥

नैपधीयचरितम् (श्रीहर्ष)

NOTES

अन्वय—सुगन्धि तदङ्गमुद्दिश्य गुणस्पृशः कुसुमात् पातुकाः स्वनन्तीः शिलीमुखालीः अवलोक्य स्मर स्वचापदुर्निर्गतमार्गणभ्रमात् लज्जितः ।

शब्दार्थ—सुगन्धि = सुगन्धित । उद्दिश्य = उद्देश्य करके । गुणस्पृशः = गुणाभिलाषिणी । कुसुमात् = पुष्पों से । पातुकाः = दौड़ने वाली । स्वनन्तीः = शब्द करती हुए । शिलीमुखालीः = भँवरों की पंक्तियों को । अवलोक्य = देखकर । स्मरः = कामदेव । स्वचापदुर्निर्गतमार्गणभ्रमात् = अपने धनुष से गलत रूप से निकले हुए बाणों के भ्रम से । लज्जितः = लज्जित हो गया ।

प्रसंग-सन्दर्भ—“नल का शरीर पुष्पों की अपेक्षा अधिक सुन्दर था,” यह वर्णन श्री हर्ष विरचित नैपथ महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में किया गया है ।

हिन्दी अनुवाद—सुगन्धित नल के अङ्ग को उद्देश्य करके गुणाभिलाषिणी पुष्पों से दौड़ने वाली शब्द करती हुई भँवरों की पंक्तियों को देखकर कामदेव अपने धनुष से गलत रूप से निकले हुए बाणों के भ्रम से लज्जित हो गया ।

हिन्दी व्याख्या—नल का रूप सौन्दर्य पुष्पों से अधिक सुन्दर था । जब नल उधर से निकल रहे थे तो भ्रमरपंक्तियाँ पुष्पों को छोड़कर उनके चारों ओर मँडराने लगीं । यह देखकर कामदेव को यह भ्रम हो गया कि उनकी अपनी धनुष की डोरी का स्पर्श करने वाले बाणों की पंक्तियाँ लक्ष्य भ्रष्ट होकर भ्रमरों की पंक्तियों के रूप में नल के चारों ओर गुञ्जन कर रही हैं ।

संस्कृत व्याख्या—सुगन्धि = मनोहरगन्धम्, तदङ्गम् = नल शरीरम्, उद्दिश्य = लक्ष्यकृत्य, गुणस्पृशः = गन्धादि स्पृशः, मौर्वीस्पृशश्च, कुसुमात् = पुष्पात्, पातुकाः = धावन्तीः, स्वनन्तीः = धवनन्तीः शिलीमुखालीः = भ्रमर पंक्तीः - बाण पंक्तिश्च, अवलोक्य = दृष्ट्वा, स्मरः = कामदेवः, स्वचापदुर्निर्गतमार्गणभ्रमात् = स्वचापात् स्वधनुषः दुर्निर्गता दुःखेन निर्गताः मार्गणाः बाणाः तेषां भ्रमात्, लज्जितः = व्रीडितः अभवत् नूनमिति भावः ।

मरुल्ललत्पल्लवकण्टकैः क्षतं

समुच्चरच्चन्दनसारसौरभम् ।

स वारनारीकुचसञ्चितोपमं

ददर्श मालूरफलं पचेलिमम् ॥ ९४ ॥

अन्वय—सः मरुल्ललत्पल्लवकण्टकैः क्षतं समुच्चलच्चन्दनसारसौरभं वारनारीकुचसञ्चितोपमं पचेलिमं मालूरफलं ददर्श ।

शब्दार्थ—मरुल्ललत्पल्लवकण्टकैः = वायु से प्रकम्पित पल्लवों के काँटों से । क्षतम् = क्षत । समुच्चलत् = फैलते हुए । चन्दनसारसौरभम् = चन्दन के समान गन्ध से युक्त । वारनारीकुचसञ्चितोपमम् = वेश्याओं के स्तनों की समानता करने वाले । पचेलिमम् = पके हुए । मालूरफलम् = बेल के फल को । ददर्श = देखा ।

प्रसंग-सन्दर्भ—बिल्व फलों को वेश्या के स्तनों के रूप में वर्णित करने वाला प्रस्तुत श्लोक श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है।

NOTES

हिन्दी अनुवाद—नल ने वायु से प्रकम्पित पल्लवों के काँटों से क्षत, फैलते हुए चन्दन के समान गन्ध से युक्त, वेश्याओं के स्तनों की समानता करने वाले पके हुए बेल के फल को देखा।

हिन्दी व्याख्या—जिस प्रकार विलास करने वाले धूर्त नायक के काँटों के समान नाखूनों से क्षत विक्षत एवं विलिप्त चन्दन की सुगन्ध से युक्त वेश्या के स्तन प्रकम्पित होते हैं, उसी प्रकार पल्लवों के काँटों से क्षतविक्षत एवं फैलते हुए सुगन्ध से युक्त पके हुए बेल के फलों को वायु से हिलते हुए नल ने देखा।

संस्कृत व्याख्या—सः = नलः। मरुल्ललत्पल्लवकण्टकैः = मरुता वायुना ललन्तः विलसन्तः ये पल्लवाः तेषां कण्टकैः (अन्यत्र मरुत् देवः तद्वत् ललन् विलापं कुर्वन् यः पल्लवः विटः तस्य कण्टकाः कण्टकवत्तीक्ष्णाः नखाः तैः) क्षतम् = आहतम्। समुच्चरच्चन्दन सारसौरभम् = समुच्चरत् = परितः प्रसरत् चन्दनसारस्य इव सौरभं गन्धं यस्मात् तादृशम् (अन्यत्र - चन्दनस्य सारसौरभं यस्मात् तादृशम्) वारनारी कुच सञ्चितोपमम् = वारनारीकुचेन वेश्यास्तनेन सञ्चितोपमम् सम्पादित सादृश्यम् = वेश्यास्तनतुल्यशोभम् = इत्यर्वाः पचेलिमम् = स्वतःपक्वम्, मालूरफलम् = बिल्वफलम्, ददर्श = अवलोकयामास।

युवद्वयीचित्तनिमज्जनोचित-

प्रसून शून्येतरगर्भगह्वरम्।

स्मरेषुधीकृत्य धिया भियान्धया,

स पाटलायाः स्तवकं प्रकम्पितः ॥९५॥

अन्वय—सः युवद्वयीचित्त निमज्जनोचितम् प्रसून-शून्येतर गर्भगह्वरम् पाटलायाः स्तवकम् भियान्धया धिया स्मरेषुधीकृत्य प्रकम्पितः।

शब्दार्थ—युवद्वयी = युवक और युवती दोनों के। चित्तनिमज्जनोचितम् = चित्तों में डूबने योग्य। प्रसून-शून्येतर गर्भगह्वरम् = पुष्पों से पूर्ण बीच के भाग वाले। पाटलायाः = गुलाब के। स्तवकम् = गुच्छे को। भियान्धया = भय के कारण अन्धी बनी हुई। धिया = बुद्धि के कारण। प्रकम्पितः = काँप गया।

प्रसंग-सन्दर्भ—पाटल पुष्पों के गुच्छों का वर्णन करने वाला प्रस्तुत श्लोक श्री हर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है।

हिन्दी अनुवाद—वह राजा नल युवक और युवती दोनों के चित्तों में प्रवेश करने योग्य पुष्पों से पूर्ण मध्य भाग वाले पाटल वृक्ष के पुष्पों के गुच्छों को भय के कारण अन्ध बुद्धि से कामदेव का तरकस समझकर काँप उठा।

हिन्दी व्याख्या—पाटल पुष्प के गुच्छे युवकों और युवतियों दोनों को पसन्द आते हैं, दोनों को रुचिकर लगते हैं, लेकिन वियोगावस्था में पाटल के गुच्छे तीर रखने वाले तरकस के समान लगते हैं। राजा नल स्वयं भी विरहावस्था में थे, अतः उस पाटलपुष्प के गुच्छे को देखकर उनका भयभीत हो जाना स्वाभाविक ही था। भय के कारण उनकी सोचने-समझने की शक्ति नष्ट हो गयी थी। पाटल पुष्प के गुच्छे देखकर उन्हें यह लगा कि कामदेव का बाण न लग जाये।

संस्कृत व्याख्या—सः = धारानरेशः नलः। युवद्वयीचित्त निमज्जनोचित प्रसून शून्येतर गर्भगह्वरम् = युवकस्य युवत्याः च मनसि अवगाहन योग्यैः पुष्पैः पूर्णमध्य भागम्। पाटलायाः = पाटल नामकस्यतरौः।

स्त्वकम् = पुष्प समूहम्। भिया = भयेन कारणेन। अन्धया = मूढया। धिया = बुद्ध्या। स्मरेषुधीकृत्य = कामदेवस्य बाण रक्षणपात्रम् ज्ञात्वा। प्रकम्पितः अकम्पत्।

नैपथीयचरितम् (श्रीहर्ष)

मुनिद्रुमः कोरकितः शितिद्युति

वनेऽमुनाऽमन्यत सिंहिकासुतः।

तमिस्रपक्ष त्रुटिकूटभक्षितं

कलाकलापं किल वैधवं वमन् ॥१६॥

NOTES

अन्वय—अमुना वने कोरकितः शितिद्युतिः मुनिद्रुमः तमिस्रपक्षत्रुटिकूट भक्षितं वैधवं कलाकलापं वमन् सिंहिकासुतः अमन्यत किल।

शब्दार्थ—अमुना = इसने। कोरकितः = कलियों से युक्त। शितिद्युतिः = कृष्ण कान्ति वाले। मुनिद्रुमः = अगस्त्य वृक्ष। तमिस्रपक्षत्रुटिकूट भक्षितम् = कृष्ण पक्ष में चन्द्रकला के घटने के बहाने से निगले गये हुए। वैधवम् = चन्द्रमा के। कलाकलापम् = कला समूह को। वमन् = उगलता हुआ। सिंहिकासुतः = राहु। अमन्यत = जाना।

प्रसंग-सन्दर्भ—अगस्त्य वृक्ष को राहु के रूप में वर्णित करने वाला प्रस्तुत श्लोक श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है।

हिन्दी अनुवाद—नल ने वन में कलियों से युक्त कृष्ण कान्ति वाले अगस्त्य वृक्ष को कृष्ण पक्ष में चन्द्रकला के घटने के बहाने से निगले गये हुए चन्द्रमा के कला समूह को उगलता हुआ राहु जाना।

हिन्दी व्याख्या—अगस्त्य वृक्ष की पत्तियाँ काली तथा पुष्प श्वेत होते हैं। जब राजा नल ने वन में अगस्त्य वृक्ष को देखा तो उन्हें ऐसा लगा, मानो चन्द्रमा को राहु ने निगल लिया था और अब धीरे-धीरे उसे उगल रहा है। राहु द्वारा चन्द्रमा को उगलते हुए देखकर राजा नल ने सोचा कि जब इस राहु ने चन्द्रमा को निगल लिया था तो यह मेरे सन्ताप की वृद्धि नहीं कर रहा था लेकिन अब यह राहु चन्द्रमा का वमन कर रहा है इसलिए यह मेरे सन्ताप को निश्चित ही बढ़ायेगा।

संस्कृत व्याख्या—अमुना नलेन, वने = विपिने। कोरकितः = मुकुलितः। शितिद्युतिः = कृष्णकान्तिः शितिः कृष्णः द्युतिः छविः यस्य तादृशः। मुनिद्रुमः = अगस्त्यवृक्षः। तमिस्रपक्षत्रुटिकूटभक्षितम् = कृष्णपक्षक्षयव्याजगलितम् वैधवम् = चन्द्रसम्बन्धिनम्। कलाकलापम् = कलासमूहम्। वमन् = उद्गिरन् सिंहिकासुतः = राहुः। अमन्यत = ज्ञातः। किल = निश्चयेन।

पुरो हठाक्षिप्ततुषारपाण्डर-

च्छदावृतेवीरुधि बद्धविभ्रमाः।

मिलनिमीलं विदधुर्विलोकिताः,

नभस्वतस्तं कुसुमेषु केलयः ॥१७॥

अन्वय—पुरः हठाक्षिप्ततुषार पाण्डुरच्छदावृतैः नभस्वतः वीरुधि बद्धविभ्रमाः कुसुमेषु केलयः विलोकिताः तं मिलनिमीलं विदधुः।

शब्दार्थ—पुरः = सामने। हठात् = हठपूर्वक। क्षिप्ततुषारपाण्डरच्छदावृतेः = हटा दिया है, बर्फ के कारण धवल हुए पत्तों रूपी आवरण को जिसने। नभस्वतः = पवन के। वीरुधि = लताओं में। बद्धविभ्रमाः

= भ्रमण करने वाली। **कुसुमेषु** = फूलों में। **केलयः** = क्रीड़ाएँ। **विलोकिताः** = देखीं। **तम् नलम्** = उस नल को। **मिलनिमीलम्** = नयनों को बन्द करने वाला। **विदधुः** = बना दिया।

NOTES

प्रसंग-सन्दर्भ—वायु द्वारा लताओं के साथ की जा रही कामक्रीड़ा का वर्णन करने वाला प्रस्तुत श्लोक श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है।

हिन्दी अनुवाद—नल के सामने ही वायु बर्फ से धवल हो गयी पत्तियों को हठपूर्वक हटा रहा था। भ्रमण करता हुआ लताओं में लगे पुष्पों के साथ विशेष क्रीड़ाएँ कर रहा था। उन्हें देखकर नल ने आँखें बन्द कर लीं।

हिन्दी व्याख्या—वन में एक ओर कुछ लताएँ थीं। बर्फ अथवा तुषार उनके ऊपर जम गया था। इससे उन लताओं के पत्ते श्वेत दिखाई दे रहे थे। पवन हठपूर्वक उन पत्तों को हटाता हुआ लताओं और उनके पुष्पों के साथ खेल रहा था, पवन खेल करने के साथ ही लताओं के चारों ओर घूम रहा था। नल को ऐसा प्रतीत हुआ कि लता नायिका है, पवन नायक है और तुषार के कारण श्वेत बने पत्ते और फूल नायिका के वस्त्र हैं। लता के चारों ओर घूमकर क्रीड़ा करता हुआ और पत्तों को हटाता हुआ पवन राजा नल को नायिका को निर्वस्त्र करता हुआ नायक लगा। राजा नल के आँखें बन्द कर लेने का यही कारण था।

संस्कृत व्याख्या—पुरः = सम्मुखं, अग्रे। हठात् = बलपूर्वकम्। क्षिप्त तुषार पाण्डुरच्छदावृत्तैः = हिमेन आकृष्ट। धवलानाम् = पत्राणाम् आवरणम् येन तस्य। नभस्वतः = पवनस्य। विरुधि = वल्लयाम्। बद्धविभ्रमाः = सम्बद्ध भ्रमरणमणयः विलासाः। कुसुमेषु = पुष्पेषु। केलयः = पवनस्य क्रीडा। विलोकिताः नलेन दृष्टाः ता क्रीडाः। तम् = नलम्। मिलनिमीलम् = संकुचितनेत्रवन्तम्। विदधुः = चक्रुः।

गता यदुत्सङ्गतले विशालतां

द्रुमाः शिरोभिः फलगौरवेण ताम्।

कथं न धात्रीमतिमात्रनामितैः

स वन्दमानानभिनन्दति स्म तान् ॥१८॥

अन्वय—द्रुमाः यदुत्सङ्गतले विशालतां गताः तां धात्रीं फलगौरवेण अतिमात्रनामितैः शिरोभिः वन्दमानान् तान् स कथं न अभिनन्दति स्म।

शब्दार्थ—द्रुमाः = वृक्ष। यदुत्सङ्गतले = जिसकी गोद में। विशालताम् = विशालता को। गताः = प्राप्त हुए। तां = उसकी। धात्रीम् = धाय को। फलगौरवेण = फल के भार से। अतिमात्रनामितैः = अत्यधिक ङुकाये गये। शिरोभिः = सिरों से। वन्दमानान् = वन्दना करने वाले। अभिनन्दति = अभिनन्दन करते।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में फल पुष्पों से गौरवान्वित वृक्ष पृथ्वी की वन्दना कर रहे हैं।

हिन्दी अनुवाद—जिसकी गोद में विशालता को प्राप्त हुए और फलपुष्प के भार से अत्यधिक ङुकाये गये सिरों से वन्दना करने वाले उन वृक्षों का नल अभिनन्दन कैसे न करते।

हिन्दी व्याख्या—जिस प्रकार संसार में जिस धाय की गोद में पलकर पुत्र बड़ा होता है और पुण्य जन्म गौरव से युक्त होकर वह नतमस्तक होकर उनकी वन्दना करता है, वह पुत्र अभिनन्दनीय होता है, उसी प्रकार जब नल ने वन में फलों और फूलों के भार से लदे हुए वृक्षों को देखा तो उन्हें ऐसा लगा, जैसे वे वृक्ष अपनी मातृभूमि का ङुके हुए सिरों से वन्दन कर रहे हों, ऐसे वृक्षों के दर्शन पाकर राजा नल स्वयं उनका अभिनन्दन करने लगे।

संस्कृत व्याख्या—द्रुमाः = वृक्षाः। यदुत्सङ्गतले = यस्याः धात्र्याः उत्सङ्गतले। अंकस्थले विशालतां गताः = विवृद्धिम् प्राप्ताः ताम् धात्रीम् = उपमातरं। फलगौरवेण = फलभरेण फलाधिक्येन वा। अतिमात्रनामितैः = अतिमात्र अतिशयेन नामितैः। शिरोभिः = अग्रभागैः उत्तमाङ्गैश्च वन्दमानान् = स्पृशतः। अभिवादनमानांश्च। नमस्कारं कुर्वतो वा, तान् द्रुमान् सः नलः। कथं = केन प्रकारेण न अभिनन्दति स्म = अभिनन्दति। वृक्षाणां क्षेत्रानुरूपफलस्य सम्पत्तिम्। अपत्यानां च मातृभक्तिं च को नाभिनन्दतीति भावः।

नृपाय तस्मै हिमितं वनानिलैः,

सुधीकृतं पुष्परसैरहर्महः।

विनिर्मितं केतकरेणुभिः सितं,

वियोगिनेऽदत्तं न कौमुदी मुदः ॥९९॥

अन्वय—वनानिलैः हिमितम् पुष्परसैः सुधीकृतम् केतकरेणुभिः सितम् विनिर्मितम् अहर्महः तस्मै वियोगिने नृपाय कौमुदीमुदः न अदत्त।

शब्दार्थ—वनानिलैः = वन के पवनों द्वारा। हिमितम् = शीतल बनाया गया। पुष्परसैः = फूलों के रसों के द्वारा। सुधीकृतम् = अमृत तुल्य बनाया हुआ। केतक रेणुभिः = केतकी के पुष्पों के पराग के द्वारा। सितम् = धवल। विनिर्मितम् = बनाया गया। अहर्महः = दिवस का तेज। तस्मै वियोगिने = उस वियोगी नल के लिए। नृपाय = राजा के लिए। कौमुदीमुदः = चाँदनी का सुख। न अदत्त = प्रदान नहीं कर पाया।

प्रसंग-सन्दर्भ—केतकी के पुष्पों का प्रभाव वियोगी राजा नल पर पड़ने का वर्णन 'नैषधीय चरितम्' के प्रथम सर्ग से उद्धृत इस श्लोक में कवि श्रीहर्ष द्वारा किया गया है।

हिन्दी अनुवाद—उपवन की वायु के द्वारा शीतल, केतकी के फूलों के मकरन्द के रस से अमृत तुल्य बनाया हुआ तथा पराग के कणों द्वारा धवल किया हुआ दिन का तेज उस वियोगी राजा नल को चाँदनी का सुख प्रदान नहीं कर पाया।

हिन्दी व्याख्या—राजा नल ने अपने प्रमोदवन में जाकर केतकी की लता को देखा। वन में जो शीतल पवन चल रहा था, उसने दिन को शीतल बना दिया था। केतकी के पुष्पों के मकरन्द रस ने दिन को अमृत के समान सुगंधित एवं स्वादमय कर दिया था। केतकी के पुष्पों के पराग के कारण दिन श्वेत हो गया था। इतने पर भी दिन का तेज राजा नल को चाँदनी का आनन्द प्रदान नहीं कर सका। इसका कारण नल का वियोगी होना था। विरहावस्था में शीतल वस्तुएँ भी नल को कष्ट पहुँचा रही थीं।

संस्कृत व्याख्या—वनानिलैः = वन + अनिलैः = उपवनस्य पवनैः। हिमितम् = शीतलीकृतम्। पुष्परसैः = पुष्पाणां मकरन्दैः। सुधीकृतम् = अमृततुल्यं निर्मितम्। केतक रेणुभिः = केतक लतायाः पुष्पाणां परागस्य कणैः। सितम् = श्वेतम्। विनिर्मितम् = सम्पादितम्। अहर्महः = दिवसस्य आतपः। तस्मै वियोगिने = दमयन्त्याः वियोग सहमानाय। नृपाय = राज्ञे नलाय। कौमुदी मुदः = चन्द्रिकायाः सुखम्। न अदत्त = दातुं समर्थो, न अभवत्।

वियोगभाजोऽपि नृपस्य पश्यता

तदेव साक्षादमृतांशुमाननम्।

पिकेन रोषारुणचक्षुषा मुहुः

कुहूरुताऽऽहूयत चन्द्रवैरिणी ॥१००॥

अन्वय—वियोगभाजः अपि नृपस्य तत् आननं साक्षात् अमृतांशु एवं पश्यता रोषारुणचक्षुषा पिकेन मुहुः कुहूरुता चन्द्रवैरिणी आहूयत।

NOTES

शब्दार्थ—वियोगभाजः = वियोगी होने पर। नृपस्य = राजा के। आननम् = मुख को। साक्षात् = प्रत्यक्ष रूप में। अमृतांशु = चन्द्रमा। पश्यता = देखते हुए। रोषारुण = क्रोध से लाल। चक्षुषा = नेत्रों वाले। पिकेन = कोयल के द्वारा। मुहुः = बार-बार। कुहूरुता = कुहू शब्द द्वारा। चन्द्रवैरिणी = अमावस्या। आहूयत = बुलायी गयी।

प्रसंग-सन्दर्भ—विरहावस्था में भी नल का मुख चन्द्र से अधिक सुन्दर था, ऐसा वर्णन करने वाला प्रस्तुत श्लोक श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है।

हिन्दी अनुवाद—वियोगी होने पर भी राजा के उस मुख को प्रत्यक्ष रूप में चन्द्रमा ही देखते हुए क्रोध से लाल नेत्रों वाले कोयल द्वारा कुहू शब्द से बार-बार अमावस्या को बुलाया।

हिन्दी व्याख्या—उस उपवन में चारों ओर अत्यधिक कामोद्दीपक परिस्थितियाँ और वातावरण राजा नल की विरहावस्था को और अधिक उत्तेजित कर रहे थे। फिर भी विरही राजा नल का मुख चन्द्रमा के समान सुन्दर दिख रहा था। वन में कुहू-कुहू शब्द करती हुई लाल नेत्रों वाली कोयल ऐसी प्रतीत हो रही थी, मानो वह नल के मुख को चन्द्रमा समझकर अत्यन्त क्रोध के साथ चन्द्रमा की वैरिणी अमावस्या को बुला रही हो।

संस्कृत व्याख्या—वियोगभाजः अपि = वियोगिनः अपि। नृपस्य = राज्ञः, नलस्येत्यर्थः। तत् आननम् एव = मुखम् एव। साक्षात् = प्रत्यक्षम्। अमृतांशु = चन्द्रम्। पश्यता = विलोकयता। अतएव रोषारुण चक्षुषा = क्रोधरक्त नयनेन। रोषेण क्रोधेन अरुणे रक्ते चक्षुषी नेत्रे यस्य तथाविधेन। पिकेन = कोकिलेन मुहुः = बारम्बारम्। कुहूरुता = कुहूः इति रुत् शब्दों यस्य तेन अथवा कुहूः इति रुत् शब्दः तया। चन्द्रवैरिणी = चन्द्रस्य वैरिणी - विरोधिनी - अमावस्या। आहूयत = आहूता।

अशोकमर्थान्वित नामताशया,

गतान् शरण्यं गृहशोचिनोऽध्वगान्।

अमन्यतावन्तमिवैष पल्लवैः,

प्रतीष्टकामज्वलदस्त्र जालकम् ॥१०१॥

अन्वय—एषः पल्लवैः प्रतीष्टकामज्वलदस्त्रजालकम् अशोकम् अर्थान्वितनामताशया शरण्यं गतान् गृहशोचिनः अध्वगान् अवन्तमिव अमन्यत।

शब्दार्थ—पल्लवैः = पत्तों के द्वारा। प्रतीष्ट कामज्वलदस्त्र जालकम् = कामदेव के जलते हुए अस्त्र अर्थात् बाण को स्वीकार करने वाले। अशोकम् = अशोक वृक्ष का। अर्थान्वितनामताशया = शोकरहित इस सार्थक नाम की आशा से। शरण्यम् = शरण के योग्य समझकर। गतान् = गये हुए। गृहशोचिनः = घर की चिन्ता करने वालों को। अध्वगान् = पथिकों को। अवन्तमिव = रक्षा करते हुए के समान। अमन्यत = माना।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में अशोक वृक्ष का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद—अशोक वृक्ष अपने पत्तों के द्वारा कामदेव के अस्त्र समूह को स्वीकार करने तथा अपना शोकरहित नाम सार्थक करने वाला था। अपने घरों की चिन्ता करने वाले जो पथिक अशोक को शरणागत की रक्षा करने योग्य समझकर आते थे, उनकी रक्षा करता था।

NOTES

हिन्दी व्याख्या—अशोक वृक्ष के पत्ते लाल रंग के अथवा लालिमा लिए हुए होते हैं। राजा नल को लगा कि कामदेव ने अशोक वृक्ष पर जो बाण छोड़े, उन्हें इसने सहन किया है। बाणों के घावों से निकले रक्त के कारण ही अशोक वृक्ष के पत्तों का रंग लाल हो गया है। अशोक का अर्थ है—शोकरहित। जहाँ शोक का अभाव हो, जहाँ पहुँचने वाला शोकरहित हो जाये, उसे अशोक कहा जाता है। अशोक का वृक्ष राजा नल को यथा-नाम तथा-गुण अथवा अपने सार्थक नाम वाला प्रतीत हुआ, क्योंकि अपने घरों अर्थात् पत्नियों को चिन्ता करने वाले जो पथिक अशोक के वृक्ष के नीचे आते थे तथा उसे शरण देने वाला समझते थे, उनकी यह वृक्ष रक्षा कर रहा था।

संस्कृत व्याख्या—एषः = राजा नलः। पल्लवैः = नवपत्रैः। प्रतीष्टकामज्वलदस्त्रजालकम् = कामदेवस्य अस्त्र समूह सदृशम्। अशोकम् = एतन्नामकं वृक्षम्। अर्थान्विततनामताशया = स्वनाम्नः अर्थस्यानुकूलतया, नाम्नः सार्थकतया। शरण्यम् = शरणं दातुं योग्यम्। गतान् = प्राप्तान्। गृहशोचिनः = गृहगत = पत्नी = सम्बन्धि। त शोकं कुर्वतः। अध्वगान् = पथिकान्। अवन्तमिव = रक्षां कुर्वन्तमिव। अमन्यत = मनसि कृतवान्।

विलासवापीतटवीचिवादानात्

पिकालिगीतेः शिखिलास्यलाघवात्।

वनेऽपि तौर्यत्रिकमारराध तं

क्व भोगमाप्नोति न भाग्यभाग्यजनः ॥१०२॥

अन्वय—विलासवापीतटवीचिवादानात् पिकालिगीतेः शिखिलास्यलाघवात् तौर्यत्रिकं वने अपि तं आरराध
१। भाग्यभाक् जनः क्व भोगं न आप्नोति ?

शब्दार्थ—विलासवापीतटवीचिवादानात् = क्रीड़ा करने सम्बन्धी बावड़ी के तटों पर तरंगों के शब्द से। पिकालिगीतेः = कोयलों और भ्रमरों के गाने से। शिखिलास्यलाघवात् = मयूरों के नृत्य द्वारा। तौर्यत्रिकम् = गायन, वादन और नृत्य द्वारा। वने = वन में। आरराध = सेवा की गयी। भाग्यभाक् = भाग्यशाली। क्व = कहाँ। आप्नोति = प्राप्त करता है।

प्रसंग-सन्दर्भ—भाग्यशाली पुरुष को सर्वत्र सर्व वस्तु सुलभ होती है, यही वर्णन श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में किया गया है।

हिन्दी अनुवाद—क्रीड़ा करने सम्बन्धी बावड़ी के तटों पर तरंगों के शब्द से कोयलों और भ्रमरों के गाने से तथा मयूरों के नृत्य द्वारा वन में भी उनकी गायन, वादन और नृत्य इन तीनों से सेवा की गयी। भाग्यशाली जन कहाँ सुख को प्राप्त नहीं करता है ?

हिन्दी व्याख्या—राजा नल अपने राजमहल में काम पीड़ा से दुःखी थे, अतः वे उपवन में काम पीड़ा की शान्ति हेतु आये थे, लेकिन उस वन में क्रीड़ा बावली के तट पर तरंगों के बाजे बज रहे थे। कोयल कूजन कर रही थी भ्रमर गुंजन कर रहे थे और मोर नृत्य द्वारा आनन्द दे रहे थे। इस प्रकार गायन, वादन और नृत्य तीनों से युक्त संगीत से राजा नल को विरह वेदना से मुक्त करने का प्रयास किया जा रहा था, क्योंकि भाग्यवान् मनुष्य को भोग विलास के साधन सर्वत्र प्राप्त हो जाते हैं।

संस्कृत व्याख्या—विलासवापीतटवीचिवादानात् = विलासरूपी विहारदीर्घिका तस्याः तटे तीरे वीचीनां तरङ्गाणां वादानात् नादानात्। पिकालिगीतैः = पिकानां कोकिलानां अलीनां च भ्रमराणां च गीतैः गानात्। शिखिलास्यलाघवात् = मयूरनृत्य नैपुण्यात्। वनेऽपि उपवने अपि। तं नलम्। आरराध = आराधयामास, तथाहि भाग्यभाक् = भाग्यवान्। जनः = पुरुषः। क्व = कुत्रस्थाने गृहे वनेऽपि वा इति शेषः। भोगं सुखं न आप्नोति = न प्राप्नोति। सर्वत्रैव सुखं प्राप्नोति इति भावः।

NOTES

अन्वय—जनेन तदर्थं अध्याप्य तद् वने विमुक्ताः पटवः शुकाः तं अस्तुवन्। च तथैव तत्पौरुषगायनीकृताः शारिकाः स्वरामृतेन उपजगुः।

शब्दार्थ—जनेन = लोगों द्वारा। अध्याप्य = पढ़ाकर। वने = वन में। विमुक्ताः = छोड़े गये। शुकाः = तोते। अस्तुवन् = स्तुति करते थे। तत्पौरुष गायनीकृताः = उनके पौरुष की गायिका बनायी गयी। शारिकाः = शारिकाओं ने। स्वरामृतेन = मधुर स्वर से। उपजगुः = गाना गया।

प्रसंग-सन्दर्भ—शुक शारिकाओं द्वारा नल की स्तुति का श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद—लोगों द्वारा उस नल के मनोरंजन के लिए पढ़ाकर उस वन में छोड़े गये चतुर तोतों ने उनकी स्तुति की। उसी प्रकार उनके पौरुष की गायिका बनायी गयी शारिकाओं ने मधुर स्वर से गान किया।

हिन्दी व्याख्या—उस वन में शुक शारिकाओं को राजा नल को प्रसन्नता प्रदान करने के लिए तथा उनके पराक्रम का वर्णन करने के लिए सिखाया पढ़ाया गया था। अतः जब नल उस उपवन में पहुँचे तो भली-भाँति शिक्षित किये गये चतुर स्पष्ट उच्चारण करने में कुशल तोतों द्वारा उनकी स्तुति की गयी और उसी प्रकार राजा नल के पराक्रम सम्बन्धी गानों का गान करने में अभ्यस्त एवं शिक्षित शारिकाओं ने अमृत के समान मधुर स्वर से वर्णन किया।

संस्कृत व्याख्या—जनेन = सेवकजनेन। तदर्थम् = प्रशंसार्थम्। अध्याप्य = स्तुतिं पाठयित्वा। तद्वने = तस्मिन् वने। विमुक्ताः = विसृष्टाः। पटवः = व्यक्त गिरः। शुकाः = कीराः तं नलम् अस्तुवन् = स्तुतवन्तः। तथैव = तेन प्रकारेणैव। शुकवत् एव। तत्पौरुषगायनीकृताः = तत्पौरुषस्य नलपराक्रमस्य गायिन्यः गायकाः कृता गायनीकृताः। शारिकाः = शुकबन्धवः। स्वरामृतेन = मधुर स्वरेण इतिभावः। उपजगुश्च = अगायन्।

इतीष्टगन्धाढ्यमटन्नसौ वनं,

पिकोपगीतोऽपि शुकस्तुतोऽपि च।

अविन्दतामोदभरं बहिःपरं,

विदर्भसुभ्रूविरहेण नान्तरम् ॥१०४॥

अन्वय—इति इष्टगन्धाढ्यम् वनम् अटन् पिकोपगीतोऽपि, शुकस्तुतोऽपि च असौ बहिश्चरम् आमोदभरम् अविन्दित। विदर्भसुभ्रूविरहेण आन्तरम् न।

शब्दार्थ—इति = इस प्रकार। अटन् = घूमता हुआ। पिकोपगीतोऽपि = कोयल के द्वारा गाये जाने पर। शुकस्तुतोऽपि = तोते के द्वारा स्तुति करने पर भी। बहिश्चरम् = बाहर संचरण करते हुए, बाहरी रूप से। आमोदभरम् = प्रसन्नता के भार को, अतिशय प्रसन्नता को। अविन्दत = प्राप्त किया। विदर्भसुभ्रूविरहेण = विदर्भ राज्य की सुन्दरी दमयन्ती के वियोग के कारण। आन्तरम् = आन्तरिक।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में वन देखने के पश्चात् हुई राजा नल की दशा का वर्णन किया गया है।

NOTES

हिन्दी अनुवाद—इस प्रकार अभीष्ट गन्ध वाले वन में घूमते हुए कोयलों द्वारा गाये हुए गीतों और तोतों के द्वारा की गयी स्तुति को सुनकर भी राजा नल ने बाहरी रूप से अतिशय आनन्द प्राप्त किया। विदर्भ राज्य की सुन्दरी दमयन्ती के वियोग के कारण आन्तरिक आनन्द प्राप्त नहीं किया।

हिन्दी व्याख्या—राजा नल जिस प्रमोद वन में भ्रमण कर रहा था, उसमें वही गंध भरी हुई थी, जिसे राजा नल पसन्द करता था। उस उपवन के पुष्पों की गंध राजा नल की रुचि के अनुकूल थी। उस उपवन में जो कोयलें कूक रही थीं, वे भी राजा नल को अपनी प्रशंसा में गीत गाने वाली जान पड़ीं। उस उपवन में बोलने वाले तोते राजा नल को अपनी स्तुति करने वाले जान पड़े। उस वन को सभी प्रकार अपने अनुकूल जानकर राजा नल को जो आनन्द प्राप्त हुआ, वह आन्तरिक नहीं, बाह्य था। अपनी प्रेयसी दमयन्ती के वियोग के कारण नल को आन्तरिक आनन्द की प्राप्ति नहीं हुई।

संस्कृत व्याख्या—इति = अनेन प्रकारेण। इष्टगन्धाद्यम् = रुचि सम्बन्धि सुगन्धिना युक्तम्। वनम् = आरण्यम्। अटन् = भ्रमणं कुर्वन्। पिकगीतः अपि = कोकिलानां गानं शृण्वन् अपि। शुकस्तुतः अपि = कीरैः कृताम् स्वकीयाम् प्रशंसाम् आकर्णयन् अपि। असौ = राजा नलः। बहिश्चरम् = बाह्यम्। आमोदभरम् = अत्यधि-
क हर्षम्। अविन्दत = प्राप्तवान्। आन्तरम् = आन्तरिकम् आनन्दम् न = नहि प्राप्तवान्।

करेण मीनं निजकेतनं दधत्

दुमालवालाम्बुनिवेशशङ्कया।

व्यतर्किं सर्वर्तुघने वने मधुं

स मित्रमत्रानुसरन्निव स्मरः॥१०५॥

अन्वय—स निजकेतनं मीनं दुमालवालाम्बुनिवेशशङ्कया करेण दधत् सर्वर्तुघने अत्र वने मित्रं मधुं अनुसरन् स्मर इव व्यतर्कि।

शब्दार्थ—निजकेतनम् = अपने चिह्न को। मीनम् = मछली को। दुमालवालाम्बु = वृक्षों के आलबाल के जल में। निवेशशङ्कया = प्रवेश करने की शंका से। करेण = हाथ द्वारा। दधत् = धारण करते हुए। सर्वर्तुघने = सभी ऋतुओं से युक्त। मधुम् = बसन्त को। अनुसरन् = अनुगमन करता हुआ। स्मर = कामदेव। व्यतर्कि = समझा।

प्रसंग-सन्दर्भ—नल को कामदेव के रूप में वर्णित करने वाला प्रस्तुत श्लोक श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है।

हिन्दी अनुवाद—नल को अपने चिह्न मछली को वृक्षों के आलबाल के जल में प्रवेश करने की शंका से हाथ द्वारा धारण करते हुए, सभी ऋतुओं से युक्त इस वन में अपने मित्र का अनुगमन करता हुआ कामदेव के समान समझा।

हिन्दी व्याख्या—राजा नल चक्रवर्ती राजा थे। उनके हाथ में मत्स्य रेखा थी जो चक्रवर्ती होने की सूचक मानी जाती है। मछली को जल से अत्यधिक प्रेम होता है, अतः वह कहीं पेड़ों के थालों के जल में न घुस जाये, इस भय से मानो नल ने उसे अपने हाथ में ही धारण कर लिया था। मछली कामदेव की पताका मानी जाती है। अतः राजा नल को मत्स्य रूपी पताका धारण करने के कारण अपने मित्र वसन्त का अनुगमन करते हुए कामदेव के रूप में वहाँ उपस्थित सभी लोगों ने समझा।

NOTES

संस्कृत व्याख्या—सः = नलः। निजकेतनम् = स्वलाञ्छनम्। मीनम् = मत्स्याम्। द्रुमालवालाम्बुनिवेशशङ्कया = द्रुमाणां वृक्षाणां आलवालेषु आवापेषु यत् अम्बु जलं तस्मिन् निवेशः प्रवेशः, तस्य शङ्कया भयकारणेन = हस्तेन, दधत् = धारयन्। मत्स्यरेखाच्छलेन दधानं इति भावः। सर्वर्तुघने = सर्वर्तुसङ्कुले अत्र = अस्मिन्, वने = विपिने। मित्रम् = सखायम्। मधुम् = वसन्तम्। अनुसरन् = अन्विष्यन्। स्मर इव = काम इव व्यतिक्रि = अमन्यत तत्रस्थजनैः इति शेषः।

लताऽबलालास्यकलागुरुस्तरु-

प्रसून गन्धोत्करपश्यतोहरः।

असेवतामुं मधुगन्धवारिणि,

प्रणीत लीलाप्लवनो वनानिलः॥ १०६॥

अन्वय—लताऽबलालास्यकलागुरुः तरुप्रसून गन्धोत्कर पश्यतोहरः मधुगन्धवारिणि प्रणीतलीलाप्लवनः, वनाऽनिलः अमुम् असेण्।

शब्दार्थ—लताऽलालास्यकलागुरुः = लताओं-रूपी युवतियों को नृत्य विद्या सिखाने वाला गुरुः। तरु प्रसूनं गन्धोत्कर पश्यतोहरः = हरे वृक्षों के फूलों की अधिक मात्रा वाली गन्ध चुराने वाला। मधुगन्धवारिणि = पुष्पों के रस से सुगन्धित जल में। प्रणीत लीलाप्लवनो = जल-केलित करने वाला। वनानिलः = वन के पवन ने। अमुम् = इस राजा नल की। असेवत = सेवा की।

प्रसंग-सन्दर्भ—शीतल, मन्द सुगन्ध पवन के प्रभाव का वर्णन श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत इस श्लोक में किया गया है।

हिन्दी अनुवाद—लताओं-रूपी युवतियों को नृत्य की शिक्षा देने वाले गुरु, वृक्षों के पुष्पों की अत्यधिक गंध को चुराने वाले तथा पुष्पों के मकरन्द के कारण सुगन्धित जल में तैरने की क्रीड़ा करने वाले पवन ने राजा नल की सेवा की।

हिन्दी व्याख्या—जिस वन में राजा नल ने भ्रमण किया, उसमें पवन के चलने से लताएँ हिल रही थीं। ऐसा जान पड़ता था कि पवन तो नृत्य सिखाने वाला गुरु है और लताएँ नृत्य सिखाने वाली युवतियाँ हैं। उस वन में चलने वाला पवन फूलों के रस अर्थात् मकरन्द की गन्ध के कारण सुगन्धित हो रहा था। उस वन के सरोवरों और सरिताओं का जल पुष्पों के मकरन्द की गंध के कारण सुगन्धित हो गया था। उसमें तैरने के कारण पवन भी सुगन्धित हो गया था। जब राजा नल उस उपवन में पहुँचे तो सुगन्धित शीतल पवन ने उनका स्पर्श किया, जिससे राजा नल को आनन्द का अनुभव हुआ। इस प्रकार अपने मधुर सुगन्धित स्पर्श से वन की वायु ने राजा नल की सेवा की।

संस्कृत व्याख्या—लताबलालास्य गुरुः = लता + अबला + लास्य + गुरुः = व्रतति रूपिणीनाम् युवतीनां नृत्यस्य शिक्षकः। तरुप्रसूनगन्धोत्करपश्यतोहरः = तरु + प्रसून + गन्ध + उत्कर + पश्यतोहरः = वृक्षाणां पुष्पाणां गन्ध समूहस्य चौरः। मधुगन्ध वारिणि = पुष्पाणां मकरन्देन सुगन्धिते जले। प्रणीत लीला प्लवनः = सम्पादित क्रीडावगाहनः। वनानिलः वन + अनिलः = अरण्यस्य पवनः। अमुम् = नृपं नलम्। असेवत = सेवितवान्।

अथ स्वमादाय भयेन मन्थना

च्चिरत्नरत्नाधिकमुच्चितं चिरात्।

निलीय तस्मिन्निवसन्नपान्निधि

र्वने तडागो ददृशेऽवनीभुजा॥ १०७॥

अन्वय—अथ अवनीभुजा मन्थनात् भयेन चिरात् उच्चितं चिरत्नरत्नाधिकं स्वं आदाय तस्मिन् वने निलीय निवसन् अपान्निधिः तडागः ददृशे।

नैषधीयचरितम् (श्रीहर्ष)

शब्दार्थ—अवनीभुजा = राजा ने। मन्थनात् = मन्थन से। भयेन = भय द्वारा। चिरात् = चिरकाल से। उच्चितम् = बढ़ाए हुए। चिरत्नरत्नाधिकम् = प्राचीन रत्नों की अधिकता वाले। स्वम् = धन को। आदाय = लेकर। निलीय = छिपकर। निवसन् = निवास करते हुए। अपान्निधिः = समुद्र। तडागः = जलाशय। ददृशे = देखा।

NOTES

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में विशाल सरोवर का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद—इसके बाद राजा ने मन्थन के भय से चिरकाल से बढ़ाये हुए प्राचीन रत्नों की अधिकता वाले अपने धन को लेकर उस वन में छिपकर निवास करते हुए समुद्र के समान सरोवर को देखा।

हिन्दी व्याख्या—जिस प्रकार कोई धनवान् अपने धन को लेकर चोरी के भय से कहीं छिपकर रहता है, उसी प्रकार मानो समुद्र अपने मन्थन के भय से अपने अन्दर विद्यमान रत्नादि लेकर राजा नल के उस उद्यान में जाकर विशिष्ट जलाशय के रूप में स्थित हो गया हो, ऐसे विशाल जलाशय को राजा नल ने उस उपवन में देखा। वह जलाशय वस्तुतः राजा का क्रीड़ा सरोवर था, जो समुद्र के समान अत्यन्त गम्भीर और विविध रत्नों से युक्त था।

संस्कृत व्याख्या—अथ = वनावलोकनानन्तरम्। अवनीभुजा = राजा नलेन। भयेन = भीत्या। धनाऽर्थ पुनर्मथिष्यति इति भिया इति भावः। चिरात् = बहुकालात्, उच्चितम् = सञ्चितम्। चिरत्नरत्नाधिकम् = चिरत्नं चिरातनं पुरातनं वा रत्नाधिकं श्रेष्ठम् = वस्तुभूयिष्ठम्। स्वं = धनम्। आदाय = गृहीत्वा। तस्मिन् वने = विपिने। निलीय = तिरोहितीभूय। निवसन् = वर्तमानः। अपान्निधिः = समुद्रः (इव) तडागः = पद्माकरः सरोविशेषः इति भावः। ददृशे = दृष्टः।

पयोनिलीनाभ्रमुकामुकावली-

रदानन्तोरग पुच्छसच्छवीन्।

जलार्द्धरुद्धस्य तटान्तभूभिदो

मृणालजालस्य निभाद्बभार यः॥ १०८॥

अन्वय—यः जलार्द्धरुद्धस्य तटान्तभूभिदः मृणालजालस्य निभात् अनन्तोरग पुच्छसच्छवीन् पयोनिलीनाभ्रमुकामुकावलीरदान् बभार।

शब्दार्थ—यः = जो। जलार्द्धरुद्धस्य = जल में आधे छिपे हुए। तटान्त भूभिदः = किनारे के अन्त की भूमि का भेदन करने वाले। मृणालजालस्य = कमल के डंठलों के समूह के। निभात् = बहाने से। अनन्तोरग-पुच्छसच्छवीन् = शेषनाग की पूँछ के समान उत्तम शोभा वाले। पयोनिलीन = सागर के जल में डूबे हुए। अभ्रमुकामुकावली = ऐरावत गजों के समूह के। रदान् = दाँतों को। बभार = धारण किया।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में विशिष्ट सरोवर का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद—जो जल में आधे छिपे हुए किनारे के अन्त की भूमिका भेदन करने वाले मृणाल समूह के बहाने शेषनाग की पूँछ के समान उत्तम शोभा वाले जल में छिपे हुए ऐरावतों के दाँतों को धारण करता था।

NOTES

हिन्दी व्याख्या—उस विशाल सरोवर में अत्यधिक मात्रा में कमल थे, जिनके मृणाल सरोवर के जल में आधे डूबे हुए थे। तात्पर्य यह है कि कमलों के शेष नाल, पत्र और पुष्प सरोवर के जल के ऊपर थे और सरोवर के किनारों की भूमि को विदीर्ण कर रहे थे। वे कमल-नाल शेषनाग की पूँछ के समान प्रतीत हो रहे थे। कमल-नालों के अतिरिक्त ऐरावत के समान विशाल हाथियों के दाँत भी उस सरोवर की शोभा को बढ़ा रहे थे।

संस्कृत व्याख्या—सः = उपवनस्य सरोवरः। जलार्द्धरुद्धस्य = सलिल रुद्धावस्यार्द्ध भागस्य। तटान्तभूमिदः = सरोवर तटस्थ भूमेः दारण शीलस्य। मृणाल समूहस्य = कमलनालवृन्दस्य। निभात् = व्याजात्। अनन्तोरगपुच्छसच्छ्वीन् = अनन्तनागः सर्पस्य, शेषनागस्य पुच्छस्य शोभा सहितान्। पयोनिनीनाभ्रमुकामुकावलीरदान् = सरोवर जले मग्नानाम् ऐरावत् सदृशानां गजानाम् दन्तान्। बभार = धारयामास।

तटान्तविश्रान्ततुरङ्गमच्छटा-

स्फुटानुबिम्बोदयचुम्बनेन यः।

बभौ चलद्वीचिकशान्तशान्तनैः

सहस्रमुच्चैः श्रवसामिव श्रयन्॥ १०९॥

अन्वय—यः तटान्तविश्रान्ततुरङ्गमच्छटास्फुटानुबिम्बोदयचुम्बनेन वीचिकशान्त-शान्तनैः चलत् उच्चैः श्रवसां सहस्रं श्रयन् इव वभौ।

शब्दार्थ—यः = जो। तटान्त विश्रान्त = तट के समीप में ठहरे हुए। तुरङ्गमच्छटा = घोड़ों के प्रतिबिम्बों के। उदय चुम्बनेन = उदय के चुम्बन से। वीचिकशान्तशान्तनैः = तरंग रूपी कोड़ों के छोर के प्रहार से। चलत् = चलते हुए। उच्चैः श्रवसाम् = उच्चैःश्रवाओं की। श्रयन् = धारण करता हुआ। वभौ = शोभित होता था।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में भी सरोवर की विशेषता प्रतिपादित की गयी है।

हिन्दी अनुवाद—जो सरोवर के तट के समीप ठहरे हुए घोड़ों के प्रतिबिम्बों के सम्बन्ध से तरङ्गरूपी कोड़ों के छोर के प्रहारों से चलते हुए हजारों उच्चैःश्रवाओं को धारण करते हुए के समान शोभित होता है।

हिन्दी व्याख्या—घोड़ों पर जब चाबुक का प्रहार किया जाता है तो वे चञ्चल होकर चलते हैं। नल के साथ आये हुए घोड़े उस जलाशय के तट पर आराम कर रहे थे। उनकी परछाईं उसमें पड़ रही थी और उस जलाशय से उठने वाली चाबुक रूपी तरंगें मानो उन प्रतिबिम्बित अश्वों पर प्रहार कर रही थीं, जिससे वे चञ्चल होकर उच्चैःश्रवाओं के समान तेज भागते हुए प्रतीत हो रहे थे।

संस्कृत व्याख्या—यः = राजा नलः। तटान्तविश्रान्ततुरङ्गमच्छटास्फुटानु बिम्बोदयचुम्बनेन = तटस्य समीपे स्थितानाम् अश्वानां शोभया सम्बन्धिना बिम्बेन उत्पन्नेन चुम्बनेन। वीचिकशान्तशान्तनैः = जलस्य लहरिरूपिभिः कशनां ताडितैः। चलत् = गच्छत्। उच्चैःश्रवसाम् = इन्द्राश्वानाम्। सहस्रम् = दशशतम्। श्रयन् इव = आश्रयं कुर्वन् इव। बभौ = शुशुभे।

सिताम्बुजानां निवहस्य यश्छलाद्

बभावलिश्यामलितोदर श्रियाम्।

तमः समच्छायकलङ्कसङ्कुलं

कुलं सुधांशोर्बहलं वहन् बहु॥ १००॥

अन्वय—यः अलिश्यामलितोदरश्रियां सिताम्बुजानां निवहस्य छलात् तमः समच्छय-कलङ्कसङ्कुलं बहलं बहु सुधांशोः कुलं बहन् वभौ ।

नैपथीयचरितम् (श्रीहर्ष)

शब्दार्थ—अलिश्यामलितोदरश्रियाम् = भ्रमरों के बैठने के कारण श्यामवर्ण की कान्ति से युक्त । सिताम्बुजानाम् = श्वेत कमलों के । निवहस्य = समूह के । छलात् = बहाने से । तमः = अन्धकार । कलङ्कसङ्कुलम् = कलंक के कारण । बहलम् = विस्तृत । सुधांशोः = चन्द्रमा के । बहन = धारण करता हुआ । वभौ = शोभित हुआ ।

प्रसंग-सन्दर्भ—चन्द्रमा के समान अनेक श्वेत कमल समूहों को धारण करने वाले तालाब का वर्णन श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में है ।

हिन्दी अनुवाद—जो तालाब भ्रमरों के बैठने के कारण श्याम वर्ण वाली कान्ति से युक्त श्वेत कमलों के बहाने श्याम वर्ण वाले कलंकों से व्याप्त बहुत से चन्द्रमाओं को धारण करता हुआ अधिक शोभित हुआ ।

हिन्दी व्याख्या—उस जलाशय के मध्य में अत्यधिक कमल खिले हुए थे और उन पर काले-काले भ्रमर बैठे हुए थे । उन भ्रमरों के कारण वे श्वेत कमल चन्द्रमा के समान कृष्ण वर्ण रूपी कलंक से युक्त थे । इस प्रकार श्वेत कमल रूप चन्द्र समूह को धारण करने वाला वह तालाब एक ही चन्द्रमा को धारण करने वाले समुद्र से श्रेष्ठ था ।

संस्कृत व्याख्या—यः = तडागः । अलिश्यामलितोदरश्रियाम् = अलिभिः भ्रमरैः श्यामलिता श्यामलीकृता उदरश्रीः मध्यभागीयशोभा येषां तादृशानाम् । सिताम्बुजानाम् = श्वेतपङ्कजानाम् पुण्डरीकाणां वा । निवहस्य = समूहस्य । छलात् = कैतवात् व्याजात् वा । तमः समच्छयकलङ्कसङ्कुलम् = तिमिरवर्णलाञ्छन व्याप्तं । बहलम् = प्रचुरम् । सुधांशोः = चन्द्रमसः । कुलम् = समूहम् । वहन् = धारयन् । वभौ = शुशुभे ।

रथाङ्गभाजा कमलानुषङ्गिणा,

शिलीमुखस्तोम सखेन शार्ङ्गिणा ।

सरोजिनीस्तम्बकदम्ब कैतवात्-

मृणाल शेषहिभुवान्वयायि यः ॥ १११ ॥

अन्वय—यः रथाङ्गभाजा कमलानुषङ्गिणा शिलीमुखस्तोमसखेन, मृणाल शेषाहिभुवा सरोजिनीस्तम्बकदम्बकैतवात् शार्ङ्गिणा अन्वयायि ।

शब्दार्थ—यः = जो । रथाङ्गभाजा = चक्रवे से युक्त, चक्र सुदर्शन से युक्त । कमलानुषङ्गिणा = कमलों से युक्त लक्ष्मी से सम्बन्धित । शिलीमुखस्तोम सखेन = भौरों के समूह के समान श्याम वर्ण वाले । मृणाल शेषाहिभुवा = कमल नाल के समान शेषनाग की शय्या वाले । सरोजिनी-स्तम्बकदम्ब कैतवात् = कमलिनी के पुष्प समूह के बहाने । शार्ङ्गिणा = विष्णु से । अन्वयाहि = अनुगत था ।

प्रसंग-सन्दर्भ—सरोवर को विष्णु के समान बताने वाला यह श्लोक श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है ।

हिन्दी अनुवाद—जो चक्रवाक से युक्त, कमलों से सम्पृक्त, भ्रमर समूह रूप सहचर वाले तथा मृणालरूप शेषनाग की उत्पत्ति स्थल होने से कमलिनी के गुच्छों के समूह के कपट से सुदर्शन चक्रयुक्त, लक्ष्मी से संसक्त भ्रमर समूह के समान तथा मृणाल रूपी शेषनाग की शय्या वाले विष्णु से अनुगत था ।

NOTES

NOTES

हिन्दी व्याख्या—वह सरोवर भगवान् विष्णु का अनुगमन कर रहा था अर्थात् भगवान् विष्णु के समान था। विष्णु रथांग अर्थात् चक्र, सुदर्शन चक्र से युक्त हैं, वह सरोवर रथांग अर्थात् चक्रों से युक्त था। भगवान् विष्णु कमलानुषंगी अर्थात् लक्ष्मी से सम्बन्धित लक्ष्मी के पति हैं, वह सरोवर भी कमलों से युक्त था, भगवान् विष्णु शिलीमुखस्तोम सखा हैं अर्थात् भँवरों के समान काले रंग के हैं। वह सरोवर भी भ्रमर-समूह का मित्र था, वहाँ बहुत से भँवरे मँडराते थे। वह सरोवर कमलिनी के पुष्प-गुच्छों के बहाने भगवान् विष्णु की समानता कर रहा था। भगवान् विष्णु मृणाल शेषाहिभू अर्थात् कमल-नाल के समान कोमल शेषनाग के शय्या वाले हैं, वह सरोवर शेषनाग के समान कमल नाल का उत्पत्ति स्थान था।

संस्कृत व्याख्या—यः = सरोवरः। रथांगभाजा = सरोवर पक्षे चक्रवाकयुक्तेन। विष्णुपक्षे सुदर्शनचक्रयुक्तेन। कमलानुषंगिणा = सरोवरपक्षे कमलसहायेन। विष्णुपक्षे लक्ष्मीसहायेन। शिलीमुखस्तोमसखेन = सरोवरपक्षे भ्रमणसमूह सहचरेण। विष्णुपक्षे भ्रमरसमूह सदृश वर्णेन। मृणाल शेषाहिभुवा = सरोवरपक्षे शेषनागतुल्य कमलनालानाम् उत्पत्ति स्थानेन। विष्णुपक्षे मृणालतुल्य कोमलस्य शेषनागस्य शैयावता। सरोजिनीस्तम्ब कदम्बकैतवात् = कमलिनीनां गुल्म कदम्बस्य छलेन। शार्ङ्गिणा = विष्णुना। अन्वयायि = अनुगतः समधिष्ठित इति।

रथांगभाजा, कमलानुषंगिणा, शिलीमुखस्तोमसखेन, मृणालशेषाहिभुवा में श्लेष अलंकार है। शिलीमुखस्तोमसखेन में लुप्तोपमा है। कैतव शब्द के द्वारा सरोजिनीस्तम्ब का निषेध करके विष्णु की स्थापना होने से अपहृति अलंकार है।

तरङ्गिणीरङ्गजुषः स्वबल्लभाः-

• तरङ्गरेखा बिभ्राम्बभूव यः।

दरोद्गतैः कोकनदौघकोरकै-

धृतप्रवालाङ्कुरसञ्चयश्च यः॥ १२२॥

अन्वय—यः अङ्गजुषः स्वबल्लभाः तरङ्गरेखाः तरङ्गिणीः बिभ्राम्बभूव च यः दरोद्गतैः कोकनदौघकोरकैः धृतप्रवालाङ्कुरसञ्चयः।

शब्दार्थ—अङ्गजुषः = गोद में स्थित। स्वबल्लभाः = अपनी प्रिया। तरङ्गरेखाः = तरंग रेखा रूपी। तरङ्गिणी = नदियों को। बिभ्राम्बभूव = धारण किये हुए था। यः = जो। दरोद्गतैः = कुछ खिले हुए। कोकनदौघकोरकैः = लाल कमलों की खिली हुई कलियों के रूप में। धृतप्रवालाङ्कुरसञ्चयः = मूँगों के अंकुरों के समूह को धारण करने वाला।

प्रसंग-सन्दर्भ—जलाशय की समुद्र रूपता का वर्णन करने वाला यह श्लोक श्री हर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है।

हिन्दी अनुवाद—जो गोद में स्थित अपनी प्रिया तरंग रेखारूपी नदियों को धारण करता था तथा जो कुछ खिले हुए लाल कमलों की खिली हुई कलियों के रूप में मूँगों के अंकुरों के समूह को धारण करने वाला था।

हिन्दी व्याख्या—पहाड़ों से बहकर आती हुई नदियाँ समुद्र में जाकर मिलती हैं। वे उसकी प्रियतमा होती हैं। समुद्र में लाल-लाल मूँगों के अंकुरों का समूह भी होता है। उपवन में स्थित जलाशय में भी तरंग रेखा रूपिणी नदियाँ विद्यमान थीं तथा थोड़ा बाहर की ओर दिखाई पड़ते हुए लाल कमलों के अंकुर समूह मूँगों के अंकुरों के रूप में विद्यमान थे। इस प्रकार प्रिया तरंग रूपिणी नदियों तथा कमल की अध खिली कलियों को धारण करने के कारण वह जलाशय सागर के सदृश ही था।

संस्कृत व्याख्या—यः तडागः अपां निधिरिव इतिशेषः। अङ्कजुषः = निकटवर्तिनोः। उत्सङ्गसङ्गिन्यश्च। तरङ्गरेखा = तरङ्गराजी एव। तरङ्गिणी = नद्यः। विभराम्बभूव = धारयामास। (किञ्च) यः तडागः दरोद्गतः = ईषदुद्बुद्धैः। कोकनदौधकोरकैः = रक्तोत्पलसमूह कलिकाभिः। धृतप्रवालऽङ्कुरसञ्चचश्च = गृहीतविद्रुमाङ्कुर निकरश्च अस्तीति शेषः।

NOTES

महीयसः पङ्कजमण्डलस्य

यश्छलेन गौरस्य च मेचकस्य च।

नलेन मेने सलिले निलीनयो-

स्त्विषं विमुञ्चन् विधुकालकूटयोः॥ ११३॥

अन्वय—यः नलेन महीयसः गौरस्य मेचकस्य च पङ्कजमण्डलस्य छलेन सलिले निलीनयोः विधुकालकूटयोः त्विषं विमुञ्चन् मेने।

शब्दार्थ—नलेन = नल द्वारा। महीयसः = महान्। गौरस्य = श्वेत। मेचकस्य = नीले। पङ्कजमण्डलस्य = कमल समूह के। छलेन = बहाने से। सलिले = जल में। निलीनयोः = छिपे हुए। विधुकालकूटयोः = चन्द्रमा और हलाहल की। त्विषम् = कान्ति को। विमुञ्चन् = छोड़ते हुए। मेने = माना।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में जलाशय में विकसित श्वेत एवं नील कमलों का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद—जो नल द्वारा विष महान् श्वेत एवं नील कमल समूह के बहाने से जल में छिपे हुए चन्द्रमा और हलाहल विष की कान्ति को फैलता हुआ माना।

हिन्दी व्याख्या—समुद्र मन्थन के समय चन्द्रमा और हलाहल दोनों ही पदार्थ समुद्र से बाहर निकले थे अर्थात् चन्द्रमा और हलाहल विष की उत्पत्ति का स्थान समुद्र ही है। अतः जिस प्रकार समुद्र चन्द्रमा और हलाहल नामक विष से युक्त है उसी प्रकार यह तालाब भी श्वेत कमल रूपी चन्द्रमा और नील कमल रूपी विष के विद्यमान होने से समुद्र सदृश ही है।

संस्कृत व्याख्या—यः = तडागः। नलेन = राज्ञा नलेन। महीयसः = महत्तरस्य। गौरस्य = श्वेतस्य। मेचकस्य च = नीलस्य च। पङ्कज मण्डलस्य = कमलसमूहस्य। (सितासितसरोजयोः) छलेन = कैतवेन। सलिले = जले। निलीनयोः = निमग्नयोः। विधुकालकूटयोः = सितासितयोः चन्द्रविषयोः। त्विषम् = कान्तिम्। विमुञ्चन् = विसृजन्निव मेने = संभावितः।

चलीकृता यत्र तरङ्गरिङ्गणै-

रबालशैवाललता परम्पराः।

ध्रुवन्द धुर्वाडवहव्यवाडव-

स्थितिप्ररोहत्तमभूम धूमताम्॥ ११४॥

अन्वय—यत्र तरङ्गरिङ्गणैः चलीकृताः अबालशैवाललतापरम्पराः वाडवहव्यवाडव-स्थिति प्ररोहत्तमभूमधूमतां दधुः ध्रुवम्।

शब्दार्थ—तरङ्गरिङ्गणैः = तरंगों के कम्पन से। चलीकृताः = चंचलता को प्राप्त कराई गयी। अबाल शैवाललता परम्परा = बड़ी-बड़ी शैवाल लताओं के समूह। वाडवहव्यवाडव = स्थिति वाडवाग्नि की

स्थिति से। प्ररोहत् तमभूम धूमताम् = अतिशय निकलती हुई धूम राशि के स्वरूप को। दधुः = धारण किया। ध्रुवम् = प्रतीत होता है।

NOTES

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में शैवाल घास का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद—जिसमें तरंगों के कम्पन से चंचलता को प्राप्त करायी गयी बड़ी-बड़ी शैवाल लता के समूह, वाडवाग्नि की स्थिति से अतिशय निकलती हुई धूम राशि के स्वरूप को धारण किया है, ऐसा प्रतीत होता है।

हिन्दी व्याख्या—समुद्र के भीतर वडवानल निवास किया करती है। उपवन में स्थित जलाशय में बड़ी-बड़ी शैवाल लताएँ थीं, जो चञ्चल तरंगों से चलायमान था और उनका रंग धूमिल था। उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो उस तालाब के अन्दर वाडवाग्नि का निवास हो और ये शैवाल लताएँ उसकी घनी धूम राशि हो। जलाशय में वडवाग्नि की सम्भावना से वह समुद्र के समरूप हो गया है।

संस्कृत व्याख्या—यत्र = यस्मिन्, तडाग इतिभावः। तरङ्गरिङ्गणैः = तरङ्गकम्पनैः, चलीकृताः = चञ्चलीकृताः, अबाल शैवाल लतापरम्पराः = अबालानां कठोराणां शैवाललतानां परम्पराः पङ्क्तयः, वाडवहव्यवाडवास्थितिप्ररोहत्तममूम धूमत्वं = वडवानलाडवस्थानबहिः प्रादुर्भवत्तम बाहुल्य धूमतां, दधुः = धारयामासुः ध्रुवम् = इव, बहिरुत्थित धूमपटलवद्बभुः।

प्रकाममादित्यमवाप्य कण्टकैः,

करम्बितामोदभरं विवृण्वती।

धृतस्फुट श्रीगृह विग्रहा दिवा,

सरोजिनी यत्प्रभवाप्सरायिता।। ११५।।

अन्वय—आदित्यम् अवाप्य कण्टकैः प्रकामं कदम्बिता आमोदभरं विवृण्वती दिवा धृतस्फुट श्रीगृह विग्रहा यत्प्रभवा सरोजिनी अप्सरायिता।

शब्दार्थ—आदित्यम् = सूर्य को। अवाप्य = प्राप्त करके। कण्टकैः = काँटों के द्वारा। प्रकामम् = अधिक मात्रा में। करम्बिता = व्याप्त। आमोदभरम् = प्रसन्नता अथवा सुगन्धि के भार को, समूह को। विवृण्वती = प्रकट करती हुई। दिवा = दिवस में। धृतस्फुट श्रीगृह विग्रहा = खिले हुए कमल के फूलरूपी शरीर वाली। यत्प्रभवा = जिसमें जन्म लेने वाली। सरोजिनी = कमलिनी। अप्सरायिता = अप्सरा प्रतीत हो रही थी।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में सरोजिनी की शोभा का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद—जिस सरोवर में उत्पन्न अर्थात् प्रतिबिम्बित सूर्य को पाकर अत्यधिक संख्या वाले काँटों से युक्त, अपनी सुगन्धिरूपी सम्पत्ति को प्रकट करती हुई तथा दिन में खिलने वाले कमल के फूल-रूपी शरीर को धारण करने वाली कमलिनी उस अप्सरा के समान आचरण कर रही थी जो इन्द्रदेव को पाकर अतिशय रोमांचित, आनन्द के अतिरेक को प्रकट करती हुई एवं स्वर्ग में धारण की गयी स्पष्ट शोभा वाली थी।

हिन्दी व्याख्या—जिस प्रकार राजा इन्द्र को प्राप्त करके, रोमाञ्चों से युक्त होती हुई अतिशय आनन्द को प्राप्त करते हुए, अपने अन्दर स्थित गन्ध की सम्पत्ति रूप में प्रकट करती हुई तथा स्वर्ग से धारण किये

प्रकाशमान शोभाधाम रूप शरीर वाली अप्सराएँ सुशोभित होती हैं, उसी प्रकार जलाशय में विकसित कमलिनी सूर्य के तेज से शोभा प्राप्त करके काँटों से युक्त होती हुई भी गन्ध को फैलाती हुई अप्सरा के समान सुशोभित हो रही थी।

नैपथीयचरितम् (श्रीहर्ष)

NOTES

संस्कृत व्याख्या—आदित्यम् = सूर्यम्। इन्द्रम्। अवाप्य = प्राप्य। कण्टकैः = मृणालगतैः तीक्ष्णाग्रैः। अवयवैः = रोमसमूहैः। प्रकामम् = अतिशयेन। करम्बिता = दन्तुरिता, रोमांचिता। आमोदभरम् = सुगंधि। समूहम्। आनन्दधनम्। विवृण्वती = प्रकटं कुर्वती। दिवा = दिने, स्वर्गेण। धृतस्फुट श्रीगृहविग्रहा = गृहीत विकसित पद्मरूप शरीरा। धृत प्रकाशमान लक्ष्म्याः स्थान शरीरा। यत्प्रभवा = सरोवरेउत्पन्त्या। सरोजिनी = कमलिनी। अप्सरायिता = अप्सरा इव आचरणम् अकरोत्।

यदम्बुपूरप्रतिबिम्बितायतिः

मरुत्तरङ्गैस्तरलस्तटद्रुमः।

निमज्ज्य मैनाकमहीभृतः सत-

स्ततानपक्षान् ध्रुवतः पक्षताम्॥ ११६॥

अन्वय—यदम्बुपूरप्रतिबिम्बितायतिः मरुत्तरङ्गैस्तरलः तटद्रुमः निमज्ज्य सतः पक्षान् ध्रुवतः मैनाकमहीभृतः सपक्षतां ततान।

शब्दार्थ—अम्बुपूर = जल प्रवाह में। प्रतिबिम्बितायतिः = प्रतिबिम्बित हो रही थी लम्बाई जिसकी। मरुत्तरङ्गैः = वायु द्वारा चालित लहरों से। तरलः = चञ्चल। तटद्रुमः = किनारे पर स्थित वृक्ष। निमज्ज्य = छिपकर। सतः = अवस्थित। पक्षान् = पंखों को। ध्रुवतः = हिलाते हुए। मैनाकमहीभृतः = मैनाक पर्वत की। सपक्षताम् = समानता को। ततान = फैला रहा था।

प्रसंग-सन्दर्भ—जलाशय में वृक्ष का प्रतिबिम्ब मैनाक पर्वत के समान लग रहा है, यह वर्णन श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में किया है।

हिन्दी अनुवाद—जिसके जलप्रवाह में प्रतिबिम्बित हो रही थी लम्बाई जिसकी तथा वायु द्वारा चालित लहरों से चञ्चल किनारे पर स्थित वृक्ष छिपकर अवस्थित पंखों को हिलाते हुए मैनाक पर्वत की समानता को फैला रहा था।

हिन्दी व्याख्या—सरोवर के तट पर स्थित वृक्ष उसके जल में दिखाई दे रहे थे। हवा के चलने के कारण सरोवर का जल हिल रहा था, जिससे वे प्रतिबिम्ब भी हिल रहे थे। प्रतिबिम्बित वृक्षों के हिलने से ऐसा प्रतीत हो रहा था कि जिस प्रकार समुद्र के जल में डूब कर मैनाक पर्वत अपने पंखों को हिलाता है, उसी प्रकार वृक्ष रूपी पर्वत अपने प्रतिबिम्ब रूप पंखों को हिला रहे थे। इस प्रकार वह सरोवर समुद्र सदृश ही था।

संस्कृत व्याख्या—यदम्बुपूरप्रतिबिम्बितायतिः = यस्य तडागस्य अम्बुनः जलस्य पूरे प्रवाहे प्रतिबिम्बिता प्रतिफलिता आयतिः आयामः यस्य एवम्भूतः। मरुत्तरङ्गैः = वातवीजनैः। तरलः = चञ्चलः। तटद्रुमः = तीरवृक्षः। निमज्ज्य = निमग्नीभूय। सतः = विद्यमानस्य। पक्षान् = पतत्राणि। ध्रुवतः = कम्पयतः। मैनाकमहीभृतः = मैनाकनाम्नः = पर्वतस्य। सपक्षताम् = समानताम् पक्षयुक्ततां च। ततान = विस्तारयामास।

पयोधिलक्ष्मीमुषि केलिपल्लवे

रिरंसुहंसीकलनादसादरम्।

स तत्र चित्रं विचरन्तमन्तिके

हिरण्मयं हंसमबोधि नैषधः॥ ११७॥

NOTES

अन्वय—स नैषधः पयोधिलक्ष्मीमुषि केलिपल्लवले रिरंसुहंसीकलनादसादरम् बालासु रतिक्षमासु च प्रियासु चञ्चवोः चरणद्वयस्य च मिषेण द्विपत्रितं पल्लवितं च स्मरार्जितं रागमहीरुहाङ्कुरं विभ्रतं त? अन्तिके विचरन्तं चित्रं हिरण्मयं हंसम् अबोधि।

शब्दार्थ—पयोधिलक्ष्मीमुषि = समुद्र की शोभा को चुराने वाला। केलिपल्लवले = क्रीडा सरोवर में। रिरंसुहंसीकलनादसादरम् = रमण की इच्छुक हंसियों के अस्फुट मधुरालाप के प्रति अभिलाषा युक्त। बालासु = बालाओं में। रतिक्षमासु = रमणयोग्य। चञ्चवोः = दो चोंचों। चरणद्वयस्य = दो चरणों के। मिषेण = बहाने से। द्विपत्रितम् = दो पत्तों वाले। स्मरार्जितम् = कामदेव द्वारा उत्पादित। रागमहीरुहाङ्कुरम् = प्रेम रूपी वृक्ष के अंकुर को। विभ्रतम् = धारण करने वाले। अन्तिके = समीप में। विचरन्तम् = विचरण करते हुए। अबोधि = देखा।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत इस युग्म श्लोक में सुवर्णमय हंस का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद—समुद्र की शोभा को चुराने वाले उस क्रीडा सरोवर में रमण की इच्छुक हंसियों के अस्फुट मधुरालाप के प्रति अभिलाषा युक्त, समीप में ही विचरण करने वाले अद्भुत, सुनहले तथा बालाओं और रमण योग्य प्रियाओं के विषय में दो चोंचों और दो चरणों के बहाने दो पत्तों तथा किसलयों वाले कामदेव द्वारा सम्मोहित अनुराग रूपी वृक्ष के अंकुर को धारण करने वाले हंस को राजा नल ने देखा।

हिन्दी व्याख्या—समुद्र के समतुल्य उस क्रीडा सरोवर की शोभा देखने के बाद राजा नल ने उसमें एक सुवर्णमय अद्भुत हंस को देखा। वह हंस रमणभिलाषिणी हंसिनियों के अव्यक्त एवं मधुर शब्द को सुनने का इच्छुक था। वह सुरत क्रीडा में समर्थ युवती, प्रियाओं के विषय में दोनों चोंचों और दोनों चरणों के बहाने से दो पत्तों और किसलयों से युक्त कामोत्पन्न प्रेम रूपी वृक्ष के अंकुर को धारण करने वाला था। राजा नल उस हंस को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

संस्कृत व्याख्या—सः पूर्वोक्तः नल। पयोधिलक्ष्मीमुषि = समुद्र शोभाहरे। समुद्र सदृम् इति भावः। तत्र = तस्मिन्। केलिपल्लवले = क्रीडासरसि। रिरंसुहंसी कलनादसादरम् = रमणेच्छुकानां मधुरशब्दसस्पृहं। बालासु = आसन्नयौवनासु अरतिक्षमास्विति भावः। रतिक्षमासु च = रति योग्यासु। युवतीष्विति भावः। इत्थं द्विविधासु। प्रियासु = बल्लभासु। क्रमात् चञ्चवोः = त्रोट्योः चरणद्वयस्य च = पादद्वयस्य च। मिषेण = व्याजेन। द्विपत्रितम् = द्विपत्रयुक्तम्। पल्लवितम् = किसलययुक्तम् च। स्मरार्जितम् = कामजनितम्। रागमहीरुहाङ्कुरम् = अनुरागवृक्षनूतनोद्भिदम् विभ्रतम् = धारयत्तम्। चच्चुपुटमिषेण द्विपत्रितं बालागोचररणं। चरणमिषेण पल्लवितं युवतिविषये रागं च धारयन्तमिति भावः। अन्तिके = हंसी निकटे विचरन्तम् = गच्छन्ताम्। चित्रम् = अद्भुतम्। हिरण्मयम् = सुवर्णमयं। हंसम् = चक्राङ्गम्। अबोधि = ज्ञातवान्। अद्राक्षीदिति भावः।

महीमहेन्द्रस्तमवेक्ष्य स क्षणं,

शकुन्तमेकान्त मनोविनोदिनम्।

प्रिया वियोगाद्विधुरोऽपि निर्भरं,

कुतूहलाक्रान्तमना मनागभूत्॥ ११९॥

अन्वय—महीमहेन्द्रः सः एकान्तमनोविनोदिनं तम् शकुन्तं क्षणम् अवलोक्य प्रिया वियोगात् निर्भरं विधुरः अपि मनाक् कुतूहलाक्रान्तमना अभूत्।

नैषधीयचरितम् (श्रीहर्ष)

NOTES

शब्दार्थ—महीमहेन्द्रः = धरती का राजा। एकान्त मनोविनोदिनम् = अतिशय मनोरंजन। तम् = उस हंस को। शकुन्तम् = पक्षी को। क्षणम् = एक क्षण तक। अवेक्ष्य = देखकर। प्रियावियोगात् = प्रेयसी दमयन्ती के वियोग के कारण। निर्भरम् = अत्यधिक। विधुरः अपि = व्याकुल होने पर भी। मनाक् = थोड़ा। कुतूहलाक्रान्तमना = आश्चर्य से पूरित मन वाला। अभूत् = हो गया।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में हंस को देखकर विचलित मन वाले राजा नल का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद—धरती का इन्द्र अर्थात् वह राजा नल अत्यधिक मनोरंजनकारी उस हंस पक्षी को एक क्षण तक देखकर थोड़ी देर के लिए कौतुक से आक्रान्त चित्त वाला हो गया। यद्यपि अपनी प्रिया दमयन्ती के वियोग के कारण वह अत्यन्त व्याकुल था।

हिन्दी व्याख्या—प्रेयसी के वियोग में जो व्यक्ति दुःखी होता है, उसे न कुछ अच्छा लगता है और न कुछ आकर्षित कर पाता है। इसके विपरीत राजा नल दमयन्ती के वियोग में व्याकुल होने पर भी थोड़ी देर के लिए उस हंस के प्रति कुतूहलपूर्ण हो गया। हंस का रूप सौन्दर्य इतना अधिक मनोहारी था कि विरहावस्था में होने पर भी राजा नल उसको पकड़ने की दृष्टि से उत्सुकतावश देखते रहे।

संस्कृत व्याख्या—महीमहेन्द्रः = भूमेर्महान् इन्द्रः। नलः इत्यर्थः। सः = नलः। एकान्तमनोविनोदिनम् = अत्यधिक मनोरंजनकारकम्। तम् = पूर्वोक्तम्। शकुन्तम् हंसम्। क्षणम् = मुहूर्तमेकम्। अवेक्ष्य = विलोक्य। प्रिया वियोगात् = दमयन्त्या विरहात्। निर्भरम् = अतिशयम्। विधुरः अपि दुःखितः अपि। मनाक् = ईषत्। कुतूहलाकृष्टमनाः = आश्चर्याभिभूतः चेताः। अभूत् = अभवत्।

अवश्यभव्येष्वनवग्रहग्रहा

यया दिशा धावति वेधसः स्पृहा।

तृणेन वात्येव तयाऽनुगम्यते

जनस्य चित्तेन भृशावशात्मना ॥ १२० ॥

अन्वय—अवश्यभव्येषु अनवग्रहग्रहा वेधसः स्पृहा यया दिशा धावति तया भृशावशात्मना जनस्य चित्तेन तृणेन वात्या इव अनुगम्यते।

शब्दार्थ—अवश्यभव्येषु = अवश्य होने वाले विषयों में। अनवग्रहग्रहा = बिना बाधा के चलने वाली। वेधसः = ब्रह्मा की। स्पृहा = इच्छा। धावति = दौड़ती है। भृशावशात्मना = अत्यन्त परतन्त्र मन वाला। जनस्य = लोगों के। चित्तेन = मन से। तृणेन = घास से। वात्या = आँधी के। अनुगम्यते = अनुगमन किया जाता है।

प्रसंग-सन्दर्भ—भाग्य की प्रबलता द्योतित करने वाला यह श्लोक श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है।

हिन्दी अनुवाद—अवश्य होने वाले विषयों में बिना बाधा के चलने वाली ब्रह्मा की इच्छा जिस दिशा में दौड़ती है, उसी ओर अत्यन्त परतन्त्र मन वाले लोगों का मन आँधी के साथ घास के समान अनुगमन किया करता है।

NOTES

हिन्दी व्याख्या—‘होनी’ को कोई नहीं टाल सकता। अच्छे बुरे कर्मों में भाग्य अर्थात् विधाता की इच्छा ही प्रबल होती है। उसमें कोई बाधा नहीं आती। जो कार्य जिस समय होना होता है, उसी समय होता है। व्यक्ति का मन विधि के अनुकूल ही कार्य करता है, उसकी बुद्धि वैसी ही हो जाती है। जिस प्रकार हवा के तेज झोंके से तिनका हवा की दिशा में ही उड़ता है, वैसे ही व्यक्ति भाग्य के अनुकूल ही कार्य करता है। इसीलिए धीर प्रकृति नल का मन हंस को पकड़ने के लिए चञ्चल हो उठा।

संस्कृत व्याख्या—अवश्यंभाव्येषु = अवश्यं भाव्येषु विषये। अनवग्रहग्रहाः = अनवग्रहः अबाध्यमानः निरर्गलः ग्रहः अभिनिवेशः प्रसरो यस्याः - एतादृशीः वेधसः = विधातुः ब्रह्मणः वा। स्मृहा = इच्छा। यया दिशा = येन मार्गेण। धावति = गच्छति। तया = दिशा। भृशा वशात्मना = अत्यर्थपरतन्त्रस्वभावेन। जनस्य = लोकस्य। चित्तेन = मानसेन। तृणेन = अर्जुनेन। वात्या इव = वात समूह इव अनुगम्यते = अनुस्रियते।

अथावलम्ब्य क्षणमेकपादिकां

तदा निदद्रावुपपल्वलं खगः।

स तिर्यगावर्जित कन्धरः शिरः

पिधाय पक्षेण रतिक्लमालसः॥ १२१॥

अन्वय—अथ तदा रतिक्लमालसः स खगः एकपादिकां अवलम्ब्य तिर्यगावर्जित-कन्धरः पक्षेण शिरः पिधाय क्षणं उपपल्वलं निदद्रौ।

शब्दार्थ—रतिक्लमालसः = रतिजन्य परिश्रम से आलस्ययुक्त। खगः = पक्षी। एकपादिकां = एक पैर से स्थिति को। अवलम्ब्य = सहारा लेकर। तिर्यगावर्जित कन्धरः = गर्दन को तिरछी करके। शिरः = सिर को। पक्षेण = पंख से। पिधाय = ढककर। निदद्रौ = सो गया।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में हंस की शयन क्रिया का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद—उसके बाद उस समय रतिजन्य परिश्रम से आलस्ययुक्त वह पक्षी एक पैर की स्थिति का सहारा लेकर गर्दन को तिरछी करके तथा पंख से सिर को ढककर क्षण भर के लिए उस सरोवर के निकट सो गया।

हिन्दी व्याख्या—राजा नल सरोवर के समीप सुवर्णमय हंस को देखकर प्रसन्न हुआ। वह हंस रतिक्रीडा करने के कारण अत्यन्त थक गया था। अतः परिश्रम से खिन्न मन वाला वह हंस अपनी गर्दन को तिरछी करके तथा एक पैर पर खड़े होकर पंखों से मुँह ढककर वहीं तालाब के किनारे से सो गया।

संस्कृत व्याख्या—अथ = अनन्तरम्, तदा = तस्मिन् समये, रतिक्लमालसः = सुरतखेदालस्य युक्तः सः खगः = हंसः पक्षी विशेषः इत्यर्थः। एकपादिकाम् = एकपादेन अवस्थानम्, अवलम्ब्य = आश्रित्य, तिर्यगावर्जितकन्धरः = तिर्यगावर्जितग्रीवः (सन्)। पक्षेण = पतत्रेण। शिरः = मूर्धानम्। पिधाय = आच्छाद्य। उपपल्वलम् = क्रीडा सरोवर निकटम्। क्षणम् = कच्चित्कालम् निदद्रौ = सुष्वाप।

सनालमात्मानननिर्जितप्रथं

ह्रियानतं काञ्चनमम्बुजन्म किम्।

अबुद्धं तं विद्रुमदण्डमण्डितम्

सपीतमम्भः प्रभुचामरञ्च किम्॥ १२२॥

अन्वय—सः तं आत्मानननिर्जितप्रभं ह्रिया नतं सनालं काञ्चनम् अम्बुजन्म किम् विद्रुमदण्डमण्डितं पीतं अम्भः प्रभुचामरं च किम् अबुद्धः।

NOTES

शब्दार्थ—आत्मानननिर्जितप्रभम् = अपने मुख की कान्ति से जीते गये। ह्रिया = लज्जा से। नतम् = झुका हुआ। सनालम् = नाल सहित। काञ्चनम् = सुवर्णमय। अम्बुजन्म = कमल। विद्रुमदण्डमण्डितम् = मूँगे के दण्ड से सुशोभित। पीतम् = पीले। अम्भः = जल के। प्रभुचामरम् = वरुण का चँवर। अबुद्ध = जाना।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में हंस की शोभा का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद—उसने उस हंस को अपने मुख की कान्ति से जीते गये अतः लज्जा से झुके हुए नाल सहित सुवर्णमय कमल समझा क्या ? अथवा मूँगों के दण्ड से सुशोभित पीले जल के स्वामीवरुण का चँवर जाना क्या ?

हिन्दी व्याख्या—वह हंस सरोवर के निकट एक पैर पर सो रहा था। हंस के पैर लाल होते हैं, अतः वह नाल सहित सुवर्ण कमल जैसा प्रतीत हो रहा था। वह हंस नीचे मुख करके सो रहा था, अतः वह हंस नल को अपने मुख की शोभा से पराजित लाल मूँगों से जड़ित दण्ड वाला वरुण का चँवर प्रतीत हुआ अर्थात् नल ने एक पैर पर सोये हुए उस हंस को रक्त नाल वाले सुवर्णमय कमल के समान तथा विद्रुम दण्ड वाले सुनहरे वरुण के चँवर के समान समझा।

संस्कृत व्याख्या—सः = नलः। तम् = निद्राणं हंसम्। आत्मानननिर्जितप्रभम् = स्वमुखपराजित कान्ति। अतएव ह्रिया = लज्जया। नतम् = नम्रम्। सनालम् = नालसहितम्। एकचरणाऽवस्थानादितिशेषः। काञ्चनम् = सौवर्णम्। अम्बुजन्म = जलजं कमलमित्यर्थः। किम् = किमु (तथा) विद्रुमदण्डमण्डितम् = प्रवालदण्डभूषितम्-प्रवालदण्डेन मण्डितम् सुशोभितम्। पीतम् = पीतवर्णम्। अम्भः प्रभु चामरम् = अम्भः प्रभोः वरुणस्य चामरम्। वरुण प्रकीर्णकं च किम् = किमु इति अबुद्ध = बुद्धवान्-उत्प्रेक्षितवानित्यर्थः।

कृतावरोहस्य हयादुपानहौ

ततः पदे रेजतुरस्य बिभ्रती।

तयोः प्रवालैर्वनयोस्तथाऽम्बुजै-

नियोद्धुकामे किमु बद्धवर्मणी ॥ १२३ ॥

अन्वय—ततः हयात् कृतावरोहस्य अस्य उपानहौ विभ्रती पदे तयोः प्रवालैः तथा अम्बुजैः नियोद्धुकामे बद्धवर्मणी किमु रेजतुः।

शब्दार्थ—हयात् = घोड़े से। कृतावरोहस्य = उतरे हुए। उपानहौ = जूतों को। विभ्रती = धारण करने वाले। प्रवालैः = नवकिसलयों से। अम्बुजैः = कमलों के साथ। नियोद्धुकामे = युद्ध करने की इच्छा वाले। बद्धवर्मणी = कवच बाँधे हुए। रेजतुः = शोभित हुए।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में जूतों से युक्त राजा नल के चरणों का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद—उसके बाद घोड़े से उतरे हुए उनके जूते धारण किये हुए पैर मानो उन दोनों वनों के किसलयों और कमलों से युद्ध करने की इच्छा से कवच बाँधे हुए शोभित हुए।

NOTES

हिन्दी व्याख्या—जब राजा नल उपवन में आये और घोड़े से उतरे तो उनके पैरों में जूते थे। जूते धारण किये हुए राजा नल के पैर इस प्रकार शोभित हो रहे थे, मानो उपवन के नवीन किसलयों और जलाशय के कमलों से युद्ध करने की इच्छा से कवच धारण करके तैयार हो गये हों अर्थात् राजा नल के पैर कमल के समान सुन्दर तथा नवीन किसलयों के समान कोमल थे, अतः वे हंस के सौन्दर्य को सहन नहीं कर पा रहे थे।

संस्कृत व्याख्या—ततः = तदनन्तरम्। हयात् = अश्वात् तुरङ्गात् वा। कृताश्वरोहस्य = विहिताऽवतरणस्य। अस्य = नलस्य। उपानहौ = पादत्राणौ। वर्मरूपे इति भावः। विभ्रती = धारयती। पदे = चरणौ। तयोः। वनयोः = सलिलकाननयोः। प्रवालैः = पल्लवैः। तथा = च। अम्बुजैः = पद्मैश्च। नियोद्धुकामे = युद्धकामे - इत्यर्थः। अतः बद्धवर्मणी = सन्नद्धकवचे। रेजतुः = शुशुभाते। किमु।

विधाय मूर्तिं कपटेन वामनीं,

स्वयं बलिध्वंसिविडम्बिनीमयम्।

उपेतपार्श्वचरणेन मौनिना,

नृपः पतङ्गं समधत्त पाणिना ॥ १२४ ॥

अन्वय—अयं नृपः स्वयं कपटेन बलिध्वंसिविडम्बिनीम् वामनीम् मूर्तिम् विधाय मौनिना चरणेन उपेत पार्श्वः पाणिना पतंगम् समधत्त।

शब्दार्थ—अयं नृपः = इस राजा नल ने। कपटेन = कपट के सहारे। बलिध्वंसिविडम्बिनीम् = विष्णु का अनुसरण करने वाली। वामनीम् = लघु, छोटी। मूर्तिम् = मूर्ति को। विधाय = बनाकर, धारण करके। पाणिना = हाथ से। पतंगम् = पक्षी हंस को। समधत्त = पकड़ लिया।

प्रसंग-सन्दर्भ—दमयन्ती के वियोग में व्याकुल राजा नल द्वारा हंस को पकड़ने का वर्णन श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में किया गया है।

हिन्दी अनुवाद—उस राजा ने कपट के द्वारा राजा बलि का ध्वंस करने वाले वामनरूपधारी विष्णु का अनुसरण करने वाली वामनी मूर्ति धारण करके चुपचाप, निःशब्द कदम बढ़ाते हुए उस हंस को हाथ से पकड़ लिया।

हिन्दी व्याख्या—भगवान् विष्णु ने अपने आकार को लघु बनाकर राजा बलि को पकड़ने का कार्य किया था। विष्णु के समान राजा नल ने भी हंस को पकड़ने हेतु अपने आकार को छोटा बनाया अर्थात् नल खड़े होने की अपेक्षा बैठकर अथवा झुककर हंस के पास गया। उसने निःशब्द चरण रखते हुए हाथ बढ़ाकर हंस को पकड़ लिया। अगर शब्द करते हुए कदमों से राजा नल उसकी ओर बढ़ता तो हंस उड़ सकता था।

संस्कृत व्याख्या—अयम् = एषः। नृपः = क्षितीशः नलः। स्वयम् = स्वयमेव, बिना सहायकेन। कपटेन = छलेन। बलिध्वंसि-विडम्बिनीम् = राज्ञः बलेः विध्वंसकर्तुः विष्णोः समानाम्। वामनीम् = लघुरूपाम्। मूर्तिम् = आकृतिम्। विधाय = कृत्वा। मौनिना = शब्दहीनेन, चरणेन = पाद विन्यासेन। उपेतपार्श्वः = हंसस्य समीपं गत्वा। पाणिना = हस्तेन। पतंगम् = विहंगं हंसम्। समधत्त = गृहीतवान्।

तदात्तमात्मानमवेत्य संभ्रमात्

पुनः पुनः प्रायसदुत्प्लवाय सः।

गतो विरुत्योड्डयने निराशतां

करौ निरोद्धुर्दशति स्म केवलम् ॥ १२५ ॥

अन्वय—तदा सः आत्मानं आत्तं अवेत्य संभ्रमात् पुनः पुनः उत्प्लवाय प्रायसत् उड्डयने निराशतां गतः विरुत्य निरोद्धुः करो केवलं दशति स्म।

नैषधीयचरितम् (श्रीहर्ष)

NOTES

शब्दार्थ—आत्मानम् = स्वयं को। आत्तम् = पकड़ा हुआ। अवेत्य = जानकर। संभ्रमात् = भय के साथ। उत्प्लवाय = उड़ने के लिए। प्रायसत् = प्रयास किया। उड्डयने = उड़ने में। निराशताम् = निराशा को। गतः = प्राप्त हुआ। विरुत्य = रो-रोकर। निरोद्धुः = पकड़ने वाले के। करौ = हाथों को। दशति स्म = काटने लगा।

प्रसंग-सन्दर्भ—नल के हाथ से स्वयं को छुड़ाने का प्रयास करते हुए हंस का वर्णन श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में किया गया है।

हिन्दी अनुवाद—वह स्वयं को पकड़ा हुआ जानकर भय के साथ बार-बार उड़ने का प्रयास करने लगा। उड़ने में निराशा को प्राप्त हुआ रो-रोकर पकड़ने वाले के हाथों को काटने लगा।

हिन्दी व्याख्या—राजा नल ने हंस की सुन्दरता पर मोहित होकर सोते हुए हंस को पकड़ लिया। जब स्वयं को हंस ने नल के हाथों में पकड़ा हुआ जाना तो वह उससे छूटने का प्रयास करने लगा। वह हाथों से छूटकर किसी भी प्रकार से उड़ जाना चाहता था, लेकिन वह राजा नल के हाथों से न छूट सकने के कारण निराश हो गया और रो-रोकर उनके हाथों को ही काटने लगा।

संस्कृत व्याख्या—सः = हंसः। आत्मानम् = स्वम्। तदातम् = नलगृहीतम्। अवेत्य = ज्ञात्वा। संभ्रमात् = त्वरायाः। उत्प्लवाय = उत्पतनाय। पुनः पुनः = भूयोभूयः। प्रायसत् = प्रयत्नमकरोत्। उड्डयने = उत्पतने निराशताम् = आशाराहित्यम्। गतः = प्राप्तः। विरुत्य = विक्रुश्य। विरोद्धुः गृहीतुः (नलस्य) करौ = हस्तौ, केवलम् = मात्रम्। दशतिस्म = दष्टवान्।

ससम्भ्रमोत्पाति पतत्कुलाकुलं

सरः प्रपद्योत्कतयाऽनुकम्पिताम्।

तर्मिलोलैः पतगग्रहान्पं

न्यवारय द्वारिरुहैः करैरिव।। १२६।।

अन्वय—ससंभ्रमोत्पातिपतत्कुलाकुलं सरः उत्कतया अनुकम्पितां प्रपद्य ऊर्मिलोलैः वारिरुहैः करैः तं नृपं पतगग्रहात् न्यवारयत् इव।

शब्दार्थ—ससंभ्रम = घबराकर। उत्पातिपतत्कुलाकुलम् = उड़ते हुए पक्षी समूह से युक्त। सरः = तालाब। उत्कतया = ऊपर उठते हुए जल के कारण। अनुकम्पिताम् = कम्पनशीलता को। प्रपद्य = प्राप्त करके। ऊर्मिलोलैः = लहरों से चंचल। वारिरुहैः = कमल रूपी। करैः = हाथों से। पतगग्रहात् = पक्षियों को पकड़ने से। न्यवारयत् = मना कर रहा था।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में प्रकृति में मानवसदृश संवेदना का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद—घबराकर उड़ते हुए पक्षी समूह से युक्त सरोवर उठते हुए जल के कारण कम्पनशीलता को प्राप्त करके लहरों से चंचल कमलरूप हाथों से उस राजा को पक्षियों को पकड़ने से मना-सा कर रहा था।

NOTES

हिन्दी व्याख्या—राजा नल द्वारा हंस को पकड़े जाने पर सरोवर में स्थित अन्य पक्षी भय के कारण उड़ने लगे। उड़ने पर उनके पंखों की हवा से सरोवर का जल कम्पायमान हो गया, जिसके कारण जलाशय में स्थित कमल हिलने-डुलने लगे। उन्हें देखकर ऐसा लग रहा था, मानो वह जलाशय कमल रूपी हाथ हिला-डुलाकर राजा से हंस को न पकड़ने के लिए कह रहा हो अर्थात् वह जलाशय दयाभाव युक्त होकर अपने कमलरूपी हाथों से नल को हंस को छोड़ने के लिए कह रहा था।

संस्कृत व्याख्या—ससंभ्रमोत्पातिपतत्कुलाऽऽकुलम् = सत्त्वरोत्पतनशीलपक्षिसमूह व्याकुलम्। सरः = तडागः। उत्कतया = उत्कण्ठितत्वेन। अनुकम्पिताम् = दयालुताम्। प्रपद्य = प्राप्य। तम् = पूर्वोक्तम्। नृपं = राजानं नलमितिभावः। ऊर्मिलोलैः = तरङ्गचञ्चलैः। वारिरुहैः = कमलैः। करैः इव = हस्तैः इव। पतग्रहात् = पक्षिग्रहणात्। न्यवारयत् इव = निवारितवान् इव।

पतत्रिणा तद्वचिरेण वञ्चितं

श्रियः प्रयान्त्याः प्रविहाय पल्लवम्।

चलत्पदाम्भोरुहनूपुरोपमा

चुकूज कूले कलहंसमण्डली ॥ १२७ ॥

अन्वय—रुचिरेण पतत्रिणा वञ्चितं तत् पल्लवं प्रविहाय प्रयान्त्याः श्रियः चलत्पदाम्भोरुहनूपुरोपमा कलहंसमण्डली कूले चुकूज।

शब्दार्थ—रुचिरेण = सुन्दर। पतत्रिणा = पक्षी से। वञ्चितम् = रहित। पल्लवम् = जलाशय को। प्रविहाय = छोड़कर। प्रयान्त्याः = जाती हुई। श्रियः = लक्ष्मी के। चलत् = चञ्चल। पदाम्भोरुहनूपुरोपमा = चरण कमल के नूपुर के समान। कलहंसमण्डली = राजहंस समूह ने। कूले = तट पर। चुकूज = कूजन किया।

प्रसंग-सन्दर्भ—सुवर्णमय हंस के पकड़े जाने के विरोध में राजहंस समूह द्वारा किये गये विवाद का श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद—सुन्दर पक्षी से रहित उस जलाशय को छोड़कर जाती हुई लक्ष्मी के चञ्चल चरण कमल के नूपुर के समान राजहंस समूह ने तट पर कूजन किया।

हिन्दी व्याख्या—स्वर्णहंस के पकड़ लिये जाने से सरोवर की शोभा समाप्त हो गयी। उस सुन्दर पक्षी से रहित हो जाने पर तालाब को छोड़कर जाती हुई लक्ष्मी रूपी शोभा के चञ्चल चरण रूपी कमल के नूपुरों की झंकार के समान ही जलाशय में स्थित अन्य राजहंसों का समूह रुष्ट होकर जोर-जोर से चिल्लाकर विवाद करने लगा।

संस्कृत व्याख्या—रुचिरेण = सुन्दरेण मनोज्ञेन वा। पतत्रिणा = हंसनेति भावः। वञ्चितम् = विरहितम्। तत् = पूर्वोक्तम् = पल्लवलम् = तडागम्। प्रविहाय = संत्यज्य। प्रयान्त्याः = गच्छन्त्याः। श्रियः = लक्ष्म्याः - शोभायाः। चलत्पदाम्भोरुहनूपुरोपमा = चलद्भ्यां चरणकमलनूपुराभ्यां उपमा साम्यं यस्याः सा। कलहंसमण्डली = राजहंससंहतिः। कूले = तीरे। चुकूज = अव्यक्तशब्दं चकार।

न वासयोग्या वसुधेयमीदृशः-

त्वमंग ! यस्याः पतिरुज्झितस्थितिः।

इति प्रहाय क्षितिमाश्रिताः नभः,

खगास्तमाचुकुशुरारवैः खलु ॥ १२८ ॥

अन्वय—अंग ! इयं वसुधा वासयोग्या न (वर्तते), यस्याः उज्झितस्थितिः ईदृशः त्वं पतिः (असि) । इति क्षितिम् प्रहाय नभः आश्रिताः खगाः तम् आरवैः आचुक्रुशुः ।

नैषधीयचरितम् (श्रीहर्ष)

NOTES

शब्दार्थ—अंग = हे। इयम् = यह। वसुधा = धरती। वासयोग्या = निवास करने योग्य। यस्याः = जिसका। उज्झितस्थितिः = मर्यादा त्यागने वाला। ईदृशः = इस प्रकार का। त्वम् = तुम। पतिः = स्वामी हो। क्षितिम् = धरती को। प्रहाय = त्यागकर। नभः = आकाश में। आश्रिताः = पहुँचे हुए। खगाः = पक्षीगण ने। आरवैः = ध्वनियों से, शब्दों से। आचुक्रुशुः = निन्दा की।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में पक्षियों द्वारा तीव्र शब्दों द्वारा नल को निन्दा किये जाने का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद—हे राजन् ! इस प्रकार की यह धरती रहने योग्य नहीं है, क्योंकि तुम जैसा मर्यादाहीन व्यक्ति इसका स्वामी है। इस प्रकार धरती को त्यागकर आकाश में पहुँचे हुए पक्षियों ने अपने शब्दों से राजा नल की निन्दा की।

हिन्दी व्याख्या—राजा प्रजा का रक्षक और अत्याचारियों का विनाशक होता है। राजा का काम किसी निर्दोष को पीड़ा देना और किसी के साथ धोखा करना नहीं है। राजा ने एक निरपराध हंस को धोखे से पकड़ लिया। उसका यह काम मर्यादा के विरुद्ध था। अतः पृथ्वी का त्याग करके आकाश का आश्रय प्राप्त करने वाले पक्षियों ने जोर-जोर से राजा नल की निन्दा की।

संस्कृत व्याख्या—अंग = भोः। इयम् = एषा। वसुधा = धरित्री। वासयोग्या = निवसतिताम् अयोग्या। यस्याः = धरायाः। उज्झितस्थितिः = मर्यादात्यागकर्ता। ईदृशः = एवंभूतः निकृष्टः। त्वम् = भवान् नलः। पतिः = स्वामी। इति = अनेन कारणेन। क्षितिम् = धरित्रीम्। प्रहाय = त्यक्त्वा। नभः = आकाशम्। आश्रिताः = प्राप्ताः। खगाः = पक्षिणः। तम् = राजानम् नलम्। आरवैः = स्वोच्चरितैः = शब्दैः। चुक्रुशुः = आक्रोशितवन्तः। खलु = निश्चयेन।

न जातरूपच्छदजातरूपता

द्विजस्य दृष्टेयमिति स्तुवन् मुहुः।

अवादि तेनाथ स मानसौकसा

जनाधिनाथः करपञ्जरस्पृशा ॥ १२९ ॥

अन्वय—इयं जातरूपच्छदजातरूपता द्विजस्य न दृष्टा इति मुहुः स्तुवन् स जनाधिनाथः अथ करपञ्जरस्पृशा तेन मानसौकसा अवादि।

शब्दार्थ—जातरूपच्छदजातरूपता = सोने के पंखों से उत्पन्न सुन्दरता। द्विजस्य = पक्षी की। दृष्टा = देखी। मुहुः = बार-बार। स्तुवन् = प्रशंसा करने वाले। जनाधिनाथः = राजा नल ने। करपञ्जर स्पृशा = हाथ रूपी पिंजड़े में स्थित। मानसौकसा = हंस द्वारा। अवादि = कहा।

प्रसंग-सन्दर्भ—हंस की शोभा का वर्णन करने वाला यह श्लोक श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है।

हिन्दी अनुवाद—पक्षी की तरह यह स्वर्णमय पंखों की सुन्दरता नहीं देखी गई है, इस प्रकार बार-बार प्रशंसा करते हुए राजा नल ने हाथ रूपी पिंजड़े में स्थित उन हंस से कहा गया।

हिन्दी व्याख्या—जलाशय में स्थित हंस की सुन्दरता पर मोहित होकर राजा नल ने उसे पकड़ लिया। वह हंस सुवर्णमय था। आकर्षित होकर राजा नल हंस की प्रशंसा करते हुए बोले कि सोने के पंख से उत्पन्न सुन्दरता किसी पक्षी की कभी नहीं देखी है। राजा नल के मुख से अपनी प्रशंसा सुनकर वह हंस बोला।

NOTES

संस्कृत व्याख्या—इयम् = ईदक्। जातरूपच्छदजातरूपता = सुपर्णपक्षेत्पन्नसौन्दर्यता। द्विजस्य = सुवर्णस्य पक्षिणः। न दृष्टा - हिरण्यमयः पक्षी न कुत्रापि दृष्टः, इत्यर्थः। इति = इत्थम्। मुहुः = वारंवारम्। स्तुवन् = प्रशंसन्। सः = पूर्वोक्तः। जनाधिनाथः = सः राजा नलः। अथ = अनन्तरं। करपञ्जरस्पृशा = हस्तपिञ्जरस्पर्शकारिणा। तेन = पूर्वोक्तेन। मानसौकसा = मानसरोवरवासिना। हंसेनेत्यर्थः। अवादि = उक्तः।

धिगस्तु तृष्णातरलं भवन्मनः

समीक्ष्य पक्षान्मम हेमजन्मनः।

तवार्णवस्येव तुषारशीकरै-

र्भवेदमीभिः कमलोदयः कियान्॥ १३०॥

अन्वय—मम हेमजन्मनः पक्षान् समीक्ष्य तृष्णातरलं भवन्मनः धिक् अस्तु। तुषारसीकरैः अर्णवस्य इव तव अमीभिः कियान् कमलोदयः भवेत्।

शब्दार्थ—मम = मेरे। हेमजन्मनः = स्वर्ण से उत्पन्न। पक्षान् = पंखों को। समीक्ष्य = देखकर। तृष्णातरलम् = लोभ से चञ्चल। धिक् = धिक्कार। अस्तु = है। तुषारसीकरैः = बर्फ की बूँदों से। अर्णवस्य = समुद्र के। तव = तुम्हारा। अमीभिः = इनसे। कियान् = कितनी।

प्रसंग-सन्दर्भ—सुवर्ण पंखों के प्रति लोभी राजा नल को हंस द्वारा धिक्कारने का श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद—मेरे स्वर्ण से उत्पन्न पंखों को देखकर लोभ से चञ्चल आपके मन को धिक्कार है। बर्फ की बूँदों से समुद्र के समान आपकी इनसे कितनी श्रीवृद्धि होगी।

हिन्दी व्याख्या—जब राजा नल ने हंस के सुवर्णमय पंखों की प्रशंसा की तो हंस राजा के लोभ को धिक्कारने लगा। वह हंस राजा नल से बोला, जिस प्रकार बर्फ की बूँदों से समुद्र के अथाह जल में कोई वृद्धि नहीं होती, उसी प्रकार मेरे सुवर्णमय पंखों से आकर्षित आपका मन लोभ से चञ्चल हो गया है। अतः आपको लोभ करना ठीक नहीं है।

संस्कृत व्याख्या—अथ हंसः पद्य चतुष्टयेन राजानमुपालभते-धिगिति। हेम जन्मनः = सौवर्णान्, मम = हंसस्य, पक्षान् = पतत्राणि, समीक्ष्य = दृष्ट्वा, तृष्णातरलम् = लालसाचञ्चलम्, भवन्मनः धिक् = त्वच्चित्तं, धिक्, भवन्मनसो निन्देत्यर्थः। अस्तु = भवतु, तुषार शीकरैः = हिमकणैः, अर्णवस्य इव = समुद्रस्य इव, तव = भवतः, अमीभिः = एभिः, हेमजन्मभिः पक्षैरिति भावः, कियान् = किं परिमाणः, कमलोदयः-भवतः-कमलायाः = लक्ष्म्याः, समुद्रस्य = कमलस्य = जलस्य, उदयः = वृद्धिः, भवेत् = स्यात् अतिस्वल्पः स्यादिति भावः।

न केवलं प्राणिवधो वधो मम

त्वदीक्षणाद्विश्वसितान्तरात्मनः।

विगर्हितं धर्मधनैर्निवर्हणं

विशिष्य विश्वासजुषां द्विषामपि॥ १३१॥

अन्वय—त्वदीक्षणाद विश्वसितान्तरात्मनः मम वधः केवलं प्राणिवधः न, विश्वासजुषां द्विषामपि निर्वहणं धर्मधनैः विशिष्य विगर्हितम्।

नैषधीयचरितम् (श्रीहर्ष)

NOTES

शब्दार्थ—त्वदीक्षणाद् = आपके दर्शन से। विश्वसितान्तरात्मनः = विश्वस्त मन वाले। मम = मेरे। वधः = वध। विश्वासजुषाम् = विश्वास करने वाले। निर्वहणं = वध करना। धर्मधनैः = धर्म ही है धन जिनका, उनके द्वारा। विशिष्य = विशेष करके। विगर्हितम् = निन्दित किया गया है।

प्रसंग-सन्दर्भ—हिंसा करना निन्दनीय कार्य है। यह आशय श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में व्यक्त किया गया है।

हिन्दी अनुवाद—आपके दर्शन से विश्वस्त मन वाले मेरा वध केवल प्राणिमात्र का वध नहीं होगा, विश्वासयुक्त शत्रुओं का भी वध, धर्म ही है धन जिनका, उनके द्वारा विशेष रूप से निन्दित किया गया है।

हिन्दी व्याख्या—जब नल ने हंस को पकड़ लिया तो हंस उनकी निन्दा करते हुए कहता है कि मेरे द्वारा आपके दर्शन मात्र से ही विश्वास कर लिया गया था। यदि अब आप मेरा वध करते हैं तो वह जीव हिंसा मात्र ही नहीं कही जायेगी, अपितु विश्वासघात रूपी महान् पाप के भी आप भागी होंगे, क्योंकि मनु आदि धर्मशास्त्रकारों ने जो धर्म को ही अपना धन मानते हैं, विश्वास में आये हुए शत्रु का वध करना भी अत्यन्त निन्दनीय कर्म कहा है।

संस्कृत व्याख्या—(हे नृप) त्वदीक्षणाद् = भवन्मूर्तिदर्शनात्, विश्वसितान्तरात्मनः = विश्वसितः विश्वासं प्राप्तः अन्तरात्मा मनो यस्य तादृशस्य, मे = मम, वधः = हननम् व्यापादनम्, केवलः प्राणिवधः = जन्तु व्यापादनमात्रम्, न = न अस्ति। किन्तु विश्वासजुषाम् = विश्वसन्भ्राजान्, द्विषाम् अपि = शत्रूणाम् अपि, निर्वहणम्, हिंसनम्, धर्मधनैः = धर्म एव धनं येषां तैः मन्वादिभिः इति शेषः। विशिष्य = अतिरिच्य, विगर्हितम् = अत्यन्त निन्दितम् इति अर्थः।

पदे पदे सन्ति भटा रणोद्भटा,

न तेषु हिंसारस एष पूर्यते।

धिगीदृशं ते नृपतेः कुविक्रमं,

कृपाश्रये यः कृपणे पतत्रिणि ॥ १३२ ॥

अन्वय—पदे-पदे रणोद्भटाभराः सन्ति। एष हिंसारसः तेषु न पूर्यते। ते नृपतेः ईदृशं कुविक्रमं धिक्, यः कृपाश्रये पतत्रिणि (वर्तते)।

शब्दार्थ—पदे-पदे = कदम-कदम पर। रणोद्भटाः = युद्ध करने में कुशल। भटाः = योद्धा। हिंसा-रस = हिंसा का आनन्द। तेषु = उनमें। पूर्यते = पूर्णरूपेण। ईदृशम् = इस प्रकार के। कुविक्रमम् = निन्दित पराक्रम को। धिक् = धिक्कार है। कृपाश्रये = कृपा के आश्रय, कृपा करने योग्य पर। कृपणे = करुणा करने योग्य पर। पतत्रिणि = पक्षी पर। प्रदर्श्यते = दिखाया जा रहा है।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में हंस अपने आपको रमणीय एवं कृपा का आश्रय समझता हुआ राजा नल को धिक्कार रहा है।

हिन्दी अनुवाद—हे राजन् ! पग-पग पर युद्ध-कला में प्रचण्ड योद्धा प्राप्त होते हैं। तुम्हारा यह हिंसा सम्बन्धी प्रेम क्या उनमें पूरा नहीं होता ? तुम्हारे इस निन्दित पराक्रम को धिक्कार है। तुम दया के पात्र मुझ हीन पक्षी पर अपना पौरुष दिखा रहे हो।

NOTES

हिन्दी व्याख्या—वीर और योद्धा को अपने समान शक्ति वाले पर अपने बल और पौरुष का प्रदर्शन करना चाहिए। वीर और मैत्री दोनों ही तुल्य बल वाले लोगों के बीच प्रशंसनीय होती हैं। राजा नल को किसी योद्धा से युद्ध करके अपने हिंसा-रस को, अपनी हिंसा-वृत्ति को शान्त करना चाहिए। निर्बल और विवश पक्षी तो सभी की करुणा का पात्र है। जो व्यक्ति इस प्रकार के निरीह पक्षी पर अपने बल का प्रदर्शन करता है, उसके बल को धिक्कार है अर्थात् मुझ जैसे कृपापात्र पक्षी पर अपने पराक्रम का प्रयोग करना अपने लिए सर्वथा अनुचित एवं निन्दनीय है।

संस्कृत व्याख्या—हे नृपते = हे राजन्। पदे-पदे = स्थाने-स्थाने, सर्वत्र। रणोद्भटाः = रण + उद्भटाः = समरे प्रचण्डाः। भटाः = शूराः। सन्ति = वर्तन्ते। एष = अयम्। ते = तव, भवतः। हिंसारसः = प्राणिवधानुरागः, मारणरूपं व्यसनम्। न = नहि। पूर्यते = पूर्णतां गच्छति। ते = तव, भवतः। ईदृशम् = एवं भूतम्। कुविक्रमम् = निन्दित पराक्रमम्। धिक् = धिक्कारः। अस्तु = भवतु। यः = पराक्रमः। कृपाश्रये = कृपा + आश्रये = करुणापात्रे। कृपणे = दीने। पतत्रिणि = खगे। प्रदर्श्यते = प्रकटं क्रियते।

फलेन मूलेन च वारिभूरुहां

मुनेरिवेत्यं मम यस्य वृत्तयः।

त्वयाद्य तस्मिन्नपि दण्डधारिणा

कथं न पत्या धरणी हणीयते ॥ १३३ ॥

अन्वय—यस्य मम मुनेः इव वारिभूरुहाम् फलेन मूलेन च इत्थं वृत्तयः, तस्मिन् अपि दण्डधारिणा त्वया पत्या अद्य धरणी कथं न हणीयते।

शब्दार्थ—मुनेः = मुनि के। वारिभूरुहाम् = कमलों के। इत्थम् = इस प्रकार। वृत्तयः = जीविकाएँ होती हैं। दण्डधारिणा = दण्ड धारण करने वाले के द्वारा। पत्या = पति से। हणीयते = लज्जित होती है।

प्रसंग-सन्दर्भ—सत् असत् कर्मों की व्याख्या प्रस्तुत करने वाला यह श्लोक श्री हर्ष विरचित नैघध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है।

हिन्दी अनुवाद—मुझ जिसकी जीविका मुनि के समान कमलों के फल और मूल से है, उस पर दण्ड धारण करने वाले आप पति से आज पृथ्वी क्यों नहीं लज्जित होती है ?

हिन्दी व्याख्या—जिस प्रकार वन में रहने वाले, मुनि फल फूल आदि खाकर जीवन का निर्वाह करते हैं, उसी प्रकार मैं हंस भी जल में उत्पन्न होने वाले कमल आदि से अपनी जीविका चलाता हूँ अर्थात् मुनियों के समान मेरी वृत्ति है। ऐसे दया पात्र मुझ पर आप दण्ड का प्रयोग क्यों करते हैं ? मुनि सदृश मुझको कष्ट देते हुए आप भूपति से पृथ्वी उसी प्रकार लज्जित होगी, जिस प्रकार असताचरण करने वाले पति से पत्नी लज्जित होती है।

संस्कृत व्याख्या—यस्य, मम = हंसस्य। मुनेः इव = ऋषेः इव। वारिभूरुहाम् = जलरुहां पदमादीनाम्, पद्मवृक्षादीनामित्यर्थः। फलेन = सस्येन। मूलेन च = कन्दादिना मृणालेन च। इत्थम् = अनेन दृश्यमानप्रकारेण। वृत्तयः = जीविकाः सन्तीतिशेषः। तस्मिन् अपि = निरपराधेऽपि मुनिसदृशेऽपि। निर्दोषोऽपीति शेषः, दण्डधारिणा = निग्रहकारिणा, अदण्ड्यदण्डकेनेत्यर्थः। त्वया = भवता। पत्या = पालकेन राज्ञेत्यर्थः। अद्य = अस्मिन् दिने। धरणी = धरित्री। कथं = केन प्रकारेण। न हणीयते = जुगुप्सते एव-इत्यर्थः।

इतीदृशैस्तं विरचय्य वाङ्मयैः

सचित्रवैलक्ष्यकृपं नृपं खगः।

NOTES

अन्वय—इति ईदृशैः वाङ्मयैः तं नृपं सचित्रवैलक्ष्यकृपं विरचय्य स खगः दयासमुद्रे तदाशये कारुण्यरसापगाः गिरः अतिथीचकार।

शब्दार्थ—ईदृशैः = ऐसे। वाङ्मयैः = वचनों से। तम् = उसको। सचित्र वैलक्ष्यकृपम् = आश्चर्य लज्जा और दयापूर्ण। विरचय्य = बनाकर। दयासमुद्रे = दया के सागर में। कारुण्यरसापगाः = करुण रस की नदी रूपी। अतिथीचकार = प्रवेश कराया।

प्रसंग-सन्दर्भ—‘सहृदय व्यक्ति पर सारगर्भित वाणी का प्रभाव अवश्य ही पड़ता है’ यही आशय श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में व्यक्त किया गया है।

हिन्दी अनुवाद—इस प्रकार ऐसे वचनों से उस राजा को आश्चर्य, लज्जा और दयापूर्ण करके उस पक्षी ने दया के सागर रूपी नल के हृदय में करुण रस की नदी रूपी वाणी को प्रवेश कराया।

हिन्दी व्याख्या—जिस प्रकार सागर में विभिन्न नदियाँ आकर प्रवेश करती हैं, उसी प्रकार हंस के सुवर्णमय स्वरूप को देखकर चकित हुए, अपनी निन्दा सुनने से लज्जित तथा दीन वचन सुनने से कृपायुक्त राजा नल के हृदय में करुणा रूपी जल की नदी रूपी वाणी प्रवाहित हो गयी अर्थात् हंस ने दयालु राजा से करुणापूर्ण वचन उसी प्रकार कहे, जिस प्रकार नदियाँ जलपूर्ण समुद्र में प्रवेश करती हैं।

संस्कृत व्याख्या—इति = इत्थम्। ईदृशैः = एतादृशैः। वाङ्मयैः = वचनैः। तम्, नृपम् = राजानम् नलमित्यर्थः। सचित्रवैलक्ष्यकृपम् = चित्रं च वैलक्ष्यं च कृपा च तत्सहितम्। विरचय्य = विधाय। दयासमुद्रे = दयासागरे। तदाशये = तस्य नलस्य आशये हृदये। कारुण्यरसापगाः = करुणारसनदीः। गिरः = वाचः। अतिथीचकार = प्रवेशयामासे व्यर्थः। समुद्रे नदीप्रवेशो युक्त इति भावः।

मदेकपुत्रा जननी जरातुरा,

नव प्रसूतिर्वरटा तपस्विनी।

गतिस्तयोरेष जनस्तमर्दयन्,

अहो विधे ! त्वां करुणा रुणद्धि नो॥ १३५॥

अन्वय—मदेकपुत्रा जननी जरातुरा (अस्ति), तपस्विनी वरटा नवप्रसूतिः (वर्तते) एष (एव) जनः तयोः गतिः (अस्ति) तम् अर्दयन् विधे ! त्वाम् करुणा न रुणद्धि, इति अहो।

शब्दार्थ—मदेकपुत्रा = मुझ एक पुत्र वाली। जननी = मेरी माता। जरातुरा = वृद्धावस्था से पीड़ित है। तपस्विनी = प्रतिव्रता। वरटा = हंसिनी। नव प्रसूतिः = कुछ समय पूर्व सन्तान उत्पन्न करने वाली। एष जनः = यह व्यक्ति अर्थात् मैं। तयोः = उन दोनों की। गतिः = सहारा। तम् = उसको। अर्दयन् = पीड़ित अर्थात् मारते हुए। विधे = हे विधाता। त्वाम् = आपको। करुणा = दया। न रुणद्धि = नहीं रोकती। अहो = यह आश्चर्य का विषय है।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में हंस की कारुणिक गाथा का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद—मुझ एक पुत्र वाली मेरी माता वृद्धावस्था से पीड़ित है। मेरी पतिव्रता पत्नी हंसिनी ने कुछ समय पूर्व ही बच्चे को जन्म दिया है। उन दोनों की गति एकमात्र मैं ही हूँ। हे विधाता ! उसको भी मारते हुए तुम्हें करुणा की भावना रोकती नहीं। यह आश्चर्य का विषय है।

NOTES

हिन्दी व्याख्या—परिवार में स्त्रियों का सहारा पुरुष होता है। हंस के घर में दो स्त्रियाँ हैं—एक उसकी माता और दूसरी पत्नी। माता वृद्धावस्था से परेशान है और पत्नी कुछ समय पूर्व बच्चे को जन्म देने के कारण कुछ कार्य कर पाने में असमर्थ है। अकेला हंस ही अपने परिवार का सहारा है। विधाता ने ऐसा बुरा संयोग उपस्थित किया कि उसके भी मरने की स्थिति उपस्थित है। विधाता को ऐसे व्यक्ति पर तो दया करनी चाहिए।

संस्कृत व्याख्या—मदेकपुत्रा = एकाकिना मया पुत्रवती। जननी = माता। जरातुरा = वृद्धावस्था पीड़िता। तपस्विनी = पतिव्रता। वरटा = हंसिनी। नवप्रसूता = नतूना शिशुजन्मदात्री। एषः जनः = अहम्। तम् अपि = तम् जनम् माम् हंसम् अपि। अर्दयन् = पीडयन्। विधे = हे विधातः। त्वाम् = विधातारम्। करुणा = दया। न = नहि। रुणद्धि = वारयति।

मुहूर्त्तमात्रं भवनिन्दया दया-

सखा:- सखायः स्रवदश्रवो मम।

निवृत्तिमेष्यन्ति परं दुरुत्तर-

स्त्वयैव मातः ! सुतशोकसागरः ॥ १३६ ॥

अन्वय—हे मातः। मम दयासखाः सखायः स्रवदश्रवः मुहूर्त्तमात्रं भवनिन्दया निवृत्तिम् एष्यन्ति, परं त्वया एव सुतशोकसागरः दुरुत्तरः।

शब्दार्थ—दयासखाः = दयालुजन। सखायः = मित्र। स्रवदश्रवः = आँसू बहाते हुए। मुहूर्त्तमात्रम् = क्षणभर। भवनिन्दया = संसार की निन्दा से। निवृत्तिम् = शान्ति को। सुतशोकसागरः = पुत्रजन्य शोक का सागर। दुरुत्तरः = पार करना कठिन होगा।

प्रसंग-सन्दर्भ—पुत्र वियोग जन्य माता के दुःख का वर्णन श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में किया गया है।

हिन्दी अनुवाद—हे माता ! मेरे दयालु मित्र आँसू बहाते हुए क्षणभर में संसार की निन्दा से शान्ति को प्राप्त कर लेंगे, परन्तु तुम्हारे द्वारा पुत्रजन्य शोक का सागर पार करना कठिन होगा।

हिन्दी व्याख्या—संसार में माता का स्नेह सर्वथा निःस्वार्थ होता है। पत्नी, पुत्र का कष्ट तो क्षणमात्र का होता है, परन्तु पुत्र का दुःख माता के लिए जीवनपर्यन्त कष्टकारी होता है। इस प्रकार के कारुणिक भाव को व्यक्त करता हुआ हंस कहता है कि अश्रुधारा बहाते हुए दयालु मेरे सखा आदि यह सोचकर कि यह संसार क्षणभंगुर है, यहाँ जो जन्म लेता है, वह मृत्यु को भी प्राप्त करता है, कुछ समय के बाद मेरी मृत्यु के दुःख को भूल जायेंगे, किन्तु जिस प्रकार सागर को पार करना अत्यन्त दुष्कर है, उसी प्रकार हे माता ! मेरी मृत्यु से तुमको जीवनपर्यन्त कष्ट सहन करना होगा।

संस्कृत व्याख्या—हे मातः = हे जननि। मम = मे। दयासखाः = दयालवः। सखायः = मित्राणि (अन्ये पक्षिणः)। स्रवदश्रवः = स्रवन्ति गलन्ति अश्रूणि येषां तादृशा। मुहूर्त्तमात्रम् = क्षणमात्रम्। भवनिन्दया = संसार गर्हणेन-भवस्य संसारस्य निन्दया। निवृत्तिम् = शोकोपरतिम्। एष्यन्ति = यास्यन्ति। परम् = किन्तु। त्वया एव, भवत्या एव। सुतशोकसागरः = सुतशोकः पुत्रशोकः एव सागरः समुद्रः। दुरुत्तरः = दुस्तरः दुखेन एव तरितुं योग्यः भविष्यति।

प्रियः कियद्दूर इति त्वयोदिते ।

विलोकयन्त्या रुदतोऽथ पक्षिणः

प्रिये ! स कीदृग्भविता तव क्षणः ।। १३७ ।।

NOTES

अन्वय—प्रिये ! मदर्थसन्देश मृणालमन्थरः प्रियः कियद्दूरे इति त्वया उदिते, अथ रुदतः पक्षिणः विलोकयन्त्याः तव स क्षणः कीदृग् भविता ।

शब्दार्थ—मदर्थ = मेरे लिए। कियद्दूरे = कितनी दूर। त्वया = तुम्हारे द्वारा। उदिते = पूछने पर। रुदतः = रोते हुए। विलोकयन्त्याः = देखती हुई। भविता = होगा।

प्रसंग-सन्दर्भ—हंस की पत्नी के प्रति विलाप गाथा का श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद—हे प्रिये ! मेरे लिए सन्देश और मृणाल भेजने में देर करने वाले मेरे प्रिय कितनी दूर हैं ? ऐसा तुम्हारे पूछने पर रोते हुए पक्षियों को देखती हुई तुम्हारा वह क्षण कैसा होगा ?

हिन्दी व्याख्या—हंस अपनी प्रिया पत्नी की कही गयी बातों का स्मरण करके अत्यन्त कारुणिक विलाप करता हुआ कहता है कि जब वन से वापस लौटकर मेरे अन्य सखा पक्षी तुम्हारे पास पहुँचेंगे तो तुम उनसे पूछोगी कि मेरे लिए सन्देश और मृणाल लाने वाले मेरे पति कितनी दूर हैं ? तब वे पक्षी मेरे पकड़े जाने की बात मुख से न कहकर केवल आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित करने लगेंगे, तब उनको रोता हुआ देखकर तुम अनिष्ट को समझ जाओगी। तब तुम्हारी क्या दशा होगी ? तुम किसी अनिष्ट को समझकर वज्राहत सी हो जाओगी अर्थात् वह क्षण तुम्हारे लिए अत्यन्त कष्टकारक होगा।

संस्कृत व्याख्या—हे प्रिये ! = हे बल्लभे ! मदर्थसन्देशमृणालमन्थरः = मह्यम् इमे मदर्थे सन्देशमृणाले-तयोः सन्देशमृणालयोः वाचिक विसयोः विषये मन्थरः आलसः (तत्प्रेषणे विलम्बित प्रवृत्तिः वा)। प्रियः = वल्लभः। कियद्दूरे = कियति दूरे देशे। वर्तते इति, किं परिमाणं विप्रकृष्टप्रदेशे, वर्तत इति शेषः। इति, त्वया = भवत्या, उदिते = उक्ते पृष्टे सतीति भावः। अथ = प्रश्नाऽनन्तरं। रुदतः = अश्रूणि विमुञ्चतः। अनिष्टोच्चारणशक्त्या अश्रूणि विमुञ्चतः। पक्षिणः = खगान् विहङ्गान् इतो गतानीति शेषः। विलोकयन्त्याः = पश्यन्त्याः। तव = भवत्याः सः क्षणः = कालः कीदृक् = कीदृशः। भविता = भविष्यति। वज्रपातसदृशः असहनीय इति भावः।

कथं विधातर्मयि पाणिपङ्कजात्

तव प्रियाशैत्यमृदुत्वशिल्पिनः ।

वियोक्ष्यसे वल्लभयेति निर्गता

लिपिललाटन्तपनिष्ठुराक्षरा ।। १३८ ।।

अन्वय—हे विधातः ! प्रियाशैत्यमृदुत्वशिल्पिनः तव पाणिपङ्कजात् मयि 'वल्लभया वियोक्ष्यसे' इति ललाटन्यनिष्ठुराक्षरा लिपिः कथं निर्गता ।

शब्दार्थ—प्रियाशैत्यमृदुत्वशिल्पिनः = प्रिया की शीतलता और कोमलता बनाने वाले। तव = तुम्हारे। पाणिपङ्कजात् = कमल रूपी हाथों से। वल्लभया = प्रिया से। वियोक्ष्यसे = वियुक्त होओगे। ललाटन्तपनिष्ठुराक्षरा = मस्तक को संतप्त करने वाले कठोर अक्षरों से युक्त। निर्गता = निकली।

प्रसंग सन्दर्भ—ब्रह्मा की सृष्टि को धिक्कारते हुए हंस का वर्णन श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में किया गया है।

NOTES

हिन्दी अनुवाद—हे ब्रह्मदेव ! प्रिया की शीतलता और कोमलता बनाने वाले तुम्हारे कमल रूपी हाथों से मेरे विषय में तुम प्रिया से वियुक्त होओगे, इस प्रकार मस्तक को सन्तप्त करने वाले कठोर अक्षरों से युक्त लिपि कैसे निकली ?

हिन्दी व्याख्या—विधाता के कार्य पर आश्चर्य प्रकट करता हुआ हंस कहता है कि ब्रह्मा ने अपने जिन कमल समान हाथों से मेरी प्रिया रानी की शीतलता और कोमलता की रचना की है, उनके वह हाथ इसी प्रकार की वस्तुएँ निर्मित करने में चतुर हैं। इसके विपरीत कठोर वस्तु की रचना या लेख उचित नहीं है। फिर भी उन्होंने मेरे विषय में प्रियतमा से वियोग सम्बन्धी अति कठोर लेख कैसे लिख दिया ?

संस्कृत व्याख्या—हे विधातः ! हे विधे ! प्रियाशैत्यमृदुत्वशिल्पिनः = बल्लभाशीतलत्व-कोमलत्वनिर्मातुः, तव = भवतः, पाणिपङ्कजात् = कमलसदृशमृदुशिशिरात् पाणेः, मयि = मद्भिषये, वल्लभया = दयितया, वियोक्ष्यसे = वियोगं प्राप्स्यसि इति = एवंप्रकार, ललाटन्तपनिष्ठुराक्षरा = ललाटं तपन्ति दहन्ति-इति ललाटन्तपानि तानि निष्ठुराणि कर्मकठोराणि च अक्षराणि यस्या सा, भालतापिकठिनवर्णा, लिपिः = अक्षरविन्यासनः, केन प्रकारेण, निःसृता निर्गता = निःसृता।

अपि स्वयूथैरशनिक्षतोपमं

ममाद्य वृत्तान्तमिमं बतोदिता।

मुखानि लोलाक्षि ! दिशामसंशयं

दशापि शून्यानि विलोकयिष्यसि।। १३९।।

अन्वय—अपि लोलाक्षि ! अद्य स्वयूथैः अशनिक्षतोपमं मम इमं वृत्तान्तं उदिता, वत असंशयं दिशां दशापि मुखानि शून्यानि विलोकयिष्यसि।

शब्दार्थ—लोलाक्षि = चञ्चल नेत्रों वाली। **स्वयूथैः** = अपने समूह के पक्षियों के द्वारा। **अशनिक्षतोपमम्** = वज्र के प्रहार के सदृश। **वृत्तान्तम्** = समाचार को। **उदिता** = कहे जाने पर। **असंशयम्** = निश्चित रूप से। **विलोकयिष्यसि** = देखोगी।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में अबला के सबसे बड़े कष्ट प्रियतम वियोग का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद—अरे चञ्चल नेत्रों वाली ! आज अपने समूह के पक्षियों के द्वारा वज्र के प्रहार के सदृश मेरे इस समाचार को कहे जाने पर खेद है कि तुम निश्चित रूप से दिशाओं के दर्शों मुखों को शून्य देखोगी।

हिन्दी व्याख्या—प्रिया पत्नी के दुःख का वर्णन करते हुए हंस कहता है कि प्रिय के वियोग में पत्नी की सभी आशाएँ समाप्त हो जाती हैं। जिस प्रकार प्रिय के आत्यन्तिक वियोग से बढ़कर कोई दूसरा कष्ट नहीं होता, उसी प्रकार जब मेरे झुण्ड के पक्षी आकर वज्रपात करने वाले मेरे मृत्यु के दुःखद समाचार को तुमसे कहेंगे तो निश्चय ही यह तुम्हें असह्य दुःख देगा। तुम्हारे लिए सभी दिशाएँ शून्य होंगी, क्योंकि तुम्हारे लिए कोई सहारा नहीं रह जायेगा।

संस्कृत व्याख्या—अपि च = अन्यच्च। अद्य = अस्मिन् दिने। स्वयूथैः = आत्मसङ्गमैः। हंसैरित्यर्थः। अशनिक्षतोपमम् = वज्रप्रहार सदृशम्। मम = प्रियस्य। इमम् = तम्। वृत्तान्तम् = उद्गमम्। नरहस्तपतनरूपमिति

शेषः। बत् = इति खेदे, असंशयम् = निः सन्देहम्। दिशाम् = ककुभम्। दश अपि। मुखानि। न्यानि = रिक्तामि। विलोकयिष्यसि = द्रक्ष्यसि। मद्वियोगादिति भावः।

नैषधीयचरितम् (श्रीहर्ष)

ममैव शोकेन विदीर्णवक्षसा,
त्वयाऽपि चित्रांगि ! विपद्यते यदि।
तदस्मि दैवेन हतोऽपि हा हतः,
स्फुटं यतस्ते शिशवः परासवः॥ १४०॥

NOTES

अन्वय—हे चित्रांगि ! यदि मम एव शोकेन विदीर्णवक्षसा त्वया विपद्यते, तदा हा दैवेन हतः अपि (पुनः) हतः अस्मि, यतः स्फुटं ते असवः परासवः।

शब्दार्थ—हे चित्रांगि = हे आकर्षक अंगों वाली। मम एव = मेरे ही। शोकेन = शोक से। ममैव शोकेन = मेरी ही मृत्यु के शोक से। विदीर्णवक्षसा = विदीर्ण हृदय वाली। त्वया = तेरे द्वारा। विपद्यते = मरा जाता है। त्वया विपद्यते = तू मर जायेगी। हा = हाय। दैवेन = दैव के द्वारा। हतः = मारा हुआ। पुनः हतः = फिर मरा हुआ। स्फुटम् = स्पष्ट है, निश्चित है। ते = तुम्हारे। शिशवः = बच्चे। परासवः = प्राण त्याग देंगे।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में हंस के मरने के बाद उसके परिवार की दशा का वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद—हे सुन्दर शरीर वाली प्रिये ! यदि मुझ अकेले की मृत्यु के शोक से विदीर्ण हृदय वाली तू मर जाओगी तो हाय दैव के द्वारा मारा हुआ मैं दुबारा मर जाऊँगा, क्योंकि निश्चय ही तब तुम्हारे वे छोटे बच्चे प्राणहीन हो जायेंगे।

हिन्दी व्याख्या—पति और पत्नी दो शरीर होकर भी एक प्राण होते हैं। पक्षियों में विशेषकर अपने जोड़े के प्रति मनुष्यों की अपेक्षा अधिक लगाव होता है। एक के बिना जोड़े का दूसरा पक्षी रो-रोकर मर जाता है। इस आधार पर हंस को विश्वास है कि उसकी मृत्यु के दुःख से उसकी पत्नी का सीना फट जायेगा और उसकी मृत्यु हो जायेगी। हंस यह आशंका करता है कि उस दशा में दैव के द्वारा मारा हुआ मैं दुबारा मर जाऊँगा। इसका कारण यह है कि माँ के अभाव में बच्चों का जीवन भी नहीं बचेगा। हंस को अपनी मृत्यु की अपेक्षा अपनी पत्नी की मृत्यु का अधिक शोक है।

संस्कृत व्याख्या—हे विचित्रांगि = हे रुचिरशरीरे ! यदि = कदाचित्। मम एव = हंसस्य एव। शोकेन = दुःखेन। विदीर्णवक्षसा = विदलित हृदयया। त्वया = भवत्या हंसिन्या। अपि = स्यात्। विपद्यते = म्रियते। तदा = तस्मिन् समये। हा = विषादविषयम्। दैवेन = भाग्येन। हतः व्यापादितः। अपि अहम् = हंसः। हतः पुनः मारितः। अस्मि भवामि। यतः = तस्मात् कारणात्। स्फुटम् = निश्चितम्। ते = आश्रयरहिताः। शिशवः = लघु बालकाः। परासवः = प्राणहीनाः भवेयुः।

तवापि हा हा विरहात्क्षुधाकुलाः,
कुलायकूलेषु विलुण्ठ्य तेषु ते।
चिरेण लब्धा बहुभिर्मनोरथैः,
गता क्षणेनास्फुटितेक्षणाः मम॥ १४१॥

अन्वय—हा-हा ! तव अपि विरहात् क्षुधाकुलाः (सन्तः) तेषु कुलायकूलेषु विलुण्ठ्य मम बहुभिः मनोरथैः ! (सह) चिरेण लब्धा (अपि) ते अस्फुटितेक्षणा (एव) क्षणेन गताः (भविष्यन्ति)।

NOTES

शब्दार्थ—विरहात् = वियोग से। क्षुधाकुलाः = भूख से व्याकुल। कुलाय कूलेषु = घोंसलों के किनारों पर। विलुप्य = लुढ़ककर। बहुभिः मनोरथैः = बहुत-से मनोरथों से, बहुत-सी अभिलाषाओं के साथ। लब्धाः = प्राप्त हुए। ते = वे बच्चे। अस्फुटितेक्षणाः = अस्फुटित। ईक्षणा = बिना आँखों वाले। क्षणेन = एक क्षण में। गताः = मर जायेंगे।

प्रसंग-सन्दर्भ—हंस के मरने के बाद उसके बच्चे किस प्रकार मर जायेंगे। श्री हर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत श्लोक में यही वर्णन है।

हिन्दी अनुवाद—हाय-हाय ! तुम्हारी मृत्यु के कारण तुम्हारे वियोग से एवं भूख के कारण व्याकुल वे बच्चे उन घोंसलों के किनारों पर तड़पकर मर जायेंगे जो मेरे बहुत से मनोरथों के फलस्वरूप बहुत समय बाद प्राप्त हुए हैं। अभी उनकी आँखें भी नहीं खुली हैं।

हिन्दी व्याख्या—हंस और हंसिनी दोनों ही उन बच्चों के भोजन का प्रबन्ध करते थे। अभी बच्चों की आँखें भी नहीं खुली थीं, इसलिए वे स्वयं अपना भोजन प्राप्त नहीं कर सकते। हंस के मरने पर हंसिनी भी मर जायेगी। वह अपने साथी के बिना जीवित नहीं रहेगी, क्योंकि वह पतिव्रता है। माता-पिता दोनों के अभाव में अशक्त बच्चे घोंसले के किनारों पर तड़पते हुए प्राण दे देंगे। इस प्रकार हंस का पूरा परिवार समाप्त हो जायेगा।

संस्कृत व्याख्या—हा-हा = विषादस्य विषयः वर्तते। तव अपि = भवत्याः अपि, हंसिन्याः अपि। विरहात् = वियोगात्। क्षुधाकुलाः = बुभुक्षया व्याकुलाः। तेषु कुलायुकूलेषु = निज नीडाभ्यन्तर भागेषु। विलुप्य = अंगपरिवर्तनं कृत्वा। मम = हंसस्य। बहुभिः मनोरथैः = अनेकाभिः कामनाभिः। चिरेण = अतिदीर्घ समयानन्तरम्। लब्धाः प्राप्ताः। ते = बालकाः। अस्फुटितेक्षणा = अनुद्घाटित लोचनाः। गताः = मृताः भविष्यन्ति।

सुताः कमाहूय चिराय चुङ्कृतैः-

विधाय कम्प्राणि मुखानि कं प्रति।

कथासु शिष्यध्वमिति प्रमील्य च

सुतस्य सेकाद् बुबुधे नृपाश्रुणः।। १४२।।

अन्वय—सुताः चुङ्कृतैः कं चिराय आहूय कं प्रति मुखानि कम्प्राणि विधाय कथासु शिष्यध्वं इति प्रमील्य सः सुतस्य नृपाश्रुणः सेकाद् बुबुधे।

शब्दार्थ—सुताः = पुत्रो। चुङ्कृतैः = चूँ-चूँ शब्द द्वारा। चिराय = देर तक। आहूय = बुलाकर। कम्प्राणि = कम्पन्नपूर्ण। विधाय = करके। शिष्यध्वम् = शेष रहोगे। प्रमील्य = मूर्च्छित होकर। नृपाश्रुणः = राजा के आँसू। बुबुधे = चेतना प्राप्त की।

प्रसंग-सन्दर्भ—प्रिया को सम्बोधित करने के बाद बच्चों को सम्बोधित करके उनके दुःख का हंस द्वारा वर्णन श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में किया गया है।

हिन्दी अनुवाद—हे पुत्रो ! चूँ-चूँ शब्द द्वारा किसको देर तक बुलाकर किसके प्रति मुखों को कम्पित करके कथाओं में शेष रहोगे। इस प्रकार मूर्च्छित होकर वह हंस बहे हुए राजा के आँसुओं के सेचन से चेतना प्राप्त कर पाया।

NOTES

हिन्दी व्याख्या—अपनी प्रिया के दुःख से दुःखी हंस अपने बच्चों को सम्बोधित करते हुए बोला कि तुम हम माता-पिता के न रहने पर चूँ-चूँ शब्दों से किसको भोजनादि के लिए बुलाओगे। तुम्हें चलना-बोलना आदि कौन सिखायेगा ? किसके प्रति तुम अपने मुखों को कम्पित करोगे। भूख प्यास से तड़प-तड़पकर तुम भी मर जाओगे। इतना कहकर वह हंस मूर्च्छित हो गया। हंस के उपर्युक्त वचनों को सुनकर तथा उसकी मूर्च्छित अवस्था को देखकर राजा का हृदय दया से भर गया और उसकी अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। वह अश्रुधारा हंस के ऊपर गिरी, जिससे उसने चेतनता प्राप्त की अर्थात् वह होश में आया।

संस्कृत व्याख्या—हंसः शिशूनद्य भूयः परिदेवयते - हे सुताः = हे पुत्राः। चूङ्कृतैः = चूङ्करैः। “चूँ, चूँ” इत्यव्यक्तशब्दैः। कम् = कतरं जनम्। चिराय = बहुकालपर्यन्तम् आहूय = आकार्यम्। मुखानि = आननानि। कम्प्राणि = चञ्चलानि। विधाय = कृत्वा। कथासु शिष्यध्वम् = शब्दमात्रेषु अवशिष्टा भवत। इति = एवम् उक्तेति शेषः। प्रमील्य = मूर्च्छां प्राप्य। सः = हंसः। स्तुतस्य = गलितस्य। नृपाऽश्रुणः = नलनयनजलस्य। सेकाद् = सेचनाद्। बुबुधे = सज्ञां लेभे।

इत्थममुं विलपन्तममुञ्चद्-

दीनदयालुतयाऽवनिपालः।

रूपमदर्शि धृतोऽसि यदर्थ

गच्छ यथेच्छमथेत्यभिधाय ॥ १४३ ॥

अन्वय—दीनदयालुतया अवनिपालः ‘यदर्थं धृतः असि रूपं अदर्शि। अथ यथेच्छं गच्छं इति अभिधाय इत्थं विलपन्तम् अमुम् अमुञ्चत्।’

शब्दार्थ—दीनदयालुतया = दोनों के प्रति दयालुता के कारण। अवनिपालः = राजा नल। धृतः = पकड़े गये। अदर्शि = देख लिया गया। अभिधाय = कहकर। विलपन्तम् = विलाप करते हुए। अमुञ्चत् = छोड़ दिया।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में राजा नल की दयालुता का परिचय दिया गया है।

हिन्दी अनुवाद—दोनों के प्रति दयालुता के कारण राजा ने “जिसके लिए पकड़े गये हो, वह रूप देख लिया गया है” ऐसा कहकर इस प्रकार विलाप करते हुए उसको छोड़ दिया।

हिन्दी व्याख्या—हंस द्वारा विभिन्न प्रकार से राजा नल के सामने छोड़ने के लिए विलाप किया गया। अपनी पत्नी और बच्चों की कारुणिक एवं दीन दशा को राजा के समक्ष उपस्थित करने वाले उस हंस पर दयालुता दिखाते हुए राजा नल ने कहा कि तुम्हारे जिस रूप को देखने के लिए मैंने तुमको पकड़ा था, वह रूप अब मैंने देख लिया है, अब तुम अपनी इच्छा के अनुसार जहाँ जाना चाहते हो, वहाँ चले जाना। मैंने तुमको अपने बन्धन से मुक्त कर दिया है। इस प्रकार राजा ने हंस को बन्धन मुक्त कर दिया।

संस्कृत व्याख्या—दीनदयालुतया = दीनेषु आर्तेषु दयालुतया कारुणिकतया, अवनिपालः = राजा नलः। “यदर्थम् = यस्मै प्रयोजनाय। धृतः = गृहीतः असि। (तत्) रूपम् = आकृतिः। अदर्शि = अवलोकितम्। अपूर्वत्वादिति शेषः। अथ = अतः परम् यथेच्छम् = स्वेच्छानुस्तरम्। गच्छ”। इति = इत्थम्। अभिधाय = उक्त्वा। विलपन्तम् = विलापं कुर्वन्तम्। अमुम् = हंसम्। अमुञ्चत = मुक्तवान्।

NOTES

अन्वय—स चक्रनिभचङ्क्रमणच्छलेन नीराजनां जनयतां निजबान्धवानां प्राक्छशोकनिर्गलितनेत्रपयः प्रवाहान् आनन्दजाश्रुभिः अनुस्त्रियमाणमार्गान् चक्रे।

शब्दार्थ—चक्रनिभचङ्क्रमणच्छलेन = चक्र के समान भ्रमण के बहाने से। नीराजनाम् = आरती। जनयताम् = करते हुए। निजबान्धवानाम् = अपने बन्धुओं के। प्राक्छशोकनिर्गलितनेत्रपयः = पहले शोक से निकले हुए आँसुओं के। प्रवाहान् = प्रवाहों को। आनन्द जाश्रुभिः = आनन्द से उत्पन्न आँसुओं से। अनुस्त्रियमाणमार्गान् = अनुसरण किये गये मार्गों वाला। चक्रे = बना दिया।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत श्लोक में हंस के छूटने की खुशी में अन्य हंसों के हर्ष को व्यक्त किया गया है।

हिन्दी अनुवाद—उसने चक्र के समान भ्रमण के बहाने से आरती करते हुए अपने बन्धुओं के पहले शोक से निकले हुए आँसुओं के प्रवाहों को आनन्द से उत्पन्न आँसुओं से अनुसरण किये गये मार्गों वाला बना दिया।

हिन्दी व्याख्या—जलाशय में स्थित हंस को जब राजा नल ने पकड़ लिया था उस समय उसके साथी मित्र सभी शोक में दुःखी होकर आँसू बहा रहे थे, लेकिन जब राजा नल ने हंस की कारुणिक दशा को सुनकर उसे छोड़ दिया, तब वे हर्षित होकर हंस के प्रति आँसू बहाकर अपनी खुशी व्यक्त कर रहे थे। वे हंस के चारों ओर एकत्रित होकर इस प्रकार बैठे प्रतीत हो रहे थे, मानो उस बन्धनमुक्त हंस की वे आरती उतार रहे हों।

संस्कृत व्याख्या—सः = हंसः। चक्रनिभचङ्क्रमणच्छलेन = चक्रनिभं मण्डलाकारं चङ्क्रमणं भ्रमणं तस्य छलेन व्याजेन। नीराजनाम् अर्तिक्रियम्। जनयताम् = कुर्वताम्, पयः निजबान्धवानाम् = स्वीयमित्राणाम्। प्राक् = मोचनात् पूर्वम्। शोकनिर्गलितनेत्रपयः प्रवाहान् = शोकेन शुचा निर्गलितान् निःसरितान् नेत्रपयः प्रवाहान् अश्रुपूरान् आनन्दाजाश्रुभिः = हर्षजनयन सलिलैः। अनुस्त्रियमाणमार्गान् = अनुगम्यमानाऽध्वनः। चक्रे = कृतवान्।

श्रीहर्षः कविराजराजिमुकुटालङ्कारहीरः सुतम्

श्रीहीरः सुषुवे जितेन्द्रियचयं मामल्लदेवी च यम्।

तच्चिन्तामणिमन्त्रचिन्तनफले शृंगारभङ्ग्या महा-

काव्ये चारुणि नैषधीयचरिते सर्गोऽयमादिर्गतः॥ १४५॥

अन्वय—कविराजराजिमुकुटालङ्कारहीरः श्रीहीरः मामल्लदेवी च यं जितेन्द्रियचयं श्रीहर्ष सुतं सुषुवे, तच्चिन्तामणिमन्त्रचिन्तनफले शृङ्गारभङ्ग्या चारुणि नैषधीयचरिते महाकाव्ये अयं आदिः सर्गः गतः।

शब्दार्थ—अलङ्कारहीरः = अलङ्काररूपी हीरामणि के समान। यम् = जो। जितेन्द्रियम् = जितेन्द्रिय। सुतम् = पुत्र। सुषुवे = जन्म दिया। चिन्तनफले = चिन्तन के फलस्वरूप। शृङ्गार भङ्ग्या = शृंगार की रचना से। चारुणि = मनोहर। गतः = समाप्त हुआ।

प्रसंग-सन्दर्भ—श्रीहर्ष विरचित नैषध महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत श्लोक परिचयात्मक श्लोक है।

हिन्दी अनुवाद—कविवरों की पंक्ति के मुकुट के अलङ्कार रूपी हीरा मणि के समान श्रीहीर तथा मामल्लदेवी ने जिस जितेन्द्रिय श्रीहर्ष पुत्र को जन्म दिया, उनके चिन्तामणि मन्त्र के चिन्तन के फलस्वरूप शृंगार रस की रचना से सुन्दर नैषधीय चरित महाकाव्य में यह प्रथम सर्ग समाप्त हुआ।

NOTES

हिन्दी व्याख्या—अपने माता-पिता का नाम स्मरण करके अपना परिचय प्रस्तुत करते हुए महाकवि श्रीहर्ष कहते हैं कि उनके पिता का नाम श्रीहीर था जो श्रेष्ठ कवियों के मुकुट की मणि के समान थे अर्थात् कविवरों में अग्रणी थे। उनकी माता का नाम मामल्लदेवी था, जिन्होंने अपने पुत्र श्रीहर्ष को उत्पन्न किया था। महाकवि श्री हर्ष को चिन्तामणि नामक सिद्धमन्त्र प्राप्त था, जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने शृंगार प्रधान नैषधीय चरितम् महाकाव्य की रचना की। यह उस काव्य का प्रथम सर्ग समाप्त हुआ।

संस्कृत व्याख्या—अस्मिन् श्लोके महाकविः सर्गान्ते काव्यवर्णनं सर्गं समाप्तिं च पद्य - बन्धेन प्रदर्शयति - कविराजराजिमुकुटालङ्कारहीरः = पण्डितश्रेष्ठश्रेणीकिरीट - भूषणवज्रमणिः श्रीहीरः = श्रीहीर नामकः, मामल्लदेवी च = मामल्लदेवीनाम्नी च जितेन्द्रियचयम् = वशीकृतहृषीक समूहम्। यं श्रीहर्षम् = श्री हर्ष नामकं सुतम् = पुत्रम्, सुषुवे = जनयामास, तच्चिन्तामणिमन्त्रचिन्तनफले = तस्यचिन्तनं उपासना तस्य फले फलभूते। शृङ्गारभङ्ग्या = आदिरसविच्छित्या। चारुणि = मनोहरे। नैषधीयचरिते = नैषधीयचरितनामके। नैषधीय नल सम्बन्धिचरितं विद्यते यस्मिन् एवं विधे महाकाव्ये अयम् आदिः = प्रथमः। सर्गः गतः = समाप्तः।

सारांश :

इस इकाई में श्रीहर्ष रचित 'नैषधीयचरितम्' महाकाव्य का समालोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। आलोचना एवं व्याख्या भाग में विभाजित इस इकाई का आलोचना भाग 'नैषधीयचरितम्' के रचयिता श्रीहर्ष के संक्षिप्त जीवनवृत्त, स्थितिकाल एवं कृतियों के साथ-साथ उनकी काव्यकला पर भी प्रकाश डालता है। आलोचना भाग में श्रीहर्ष की भाषा शैली, रस-अलंकार एवं छन्द योजना आदि की विशिष्टता का भी वर्णन है। महाकाव्यों में 'नैषधीयचरितम्' का क्या स्थान है तथा श्रीहर्ष को संस्कृत साहित्य का चमत्कारी कवि क्यों माना जाता है? इन प्रश्नों का उत्तर इसी आलोचना भाग में प्राप्त होता है।

इकाई का द्वितीय भाग 'नैषधीयचरितम्' के प्रथम सर्ग की सप्रसंग व्याख्या प्रस्तुत करता है। इस भाग में श्रीहर्षकृत 'नैषधीयचरितम्' के प्रथम सर्ग की कथा का उल्लेख है। कथानुसार निषध देश का राजा नल अपने रूप, गुण, पराक्रम एवं विद्वत्ता के लिए प्रसिद्ध था। दमयन्ती अपने पिता विदर्भ नरेश की राजसभा में स्तुतिपाठकों (भाटों) द्वारा राजा नल के सौन्दर्य, पराक्रम आदि की कीर्तिगाथा सुनकर राजा नल के प्रेम करने लगती है। राजा नल भी दमयन्ती के गुणों को सुनकर उससे प्रेम करने लगा। एक बार राजा नल उद्यान में अपने मित्रों के साथ विहार कर रहा था तो उसने एक स्वर्ण हंस को देखा और कौतूहल वश उसे पकड़ लिया। हंस की करुण दशा को देखकर राजा नल ने अंततः उसे मुक्त कर दिया। इसी वृत्तान्त के साथ प्रथम सर्ग की कथा का समापन हो जाता है।

अभ्यास-प्रश्न

1. श्रीहर्ष का संक्षिप्त जीवन-परिचय देते हुए उनकी कृतियों का उल्लेख कीजिए।
2. श्रीहर्ष की काव्यकला एवं भाषा-शैली का विवेचन कीजिए।
3. 'नैषधीयचरितम्' के महाकाव्यत्व की समीक्षा कीजिए।

NOTES

4. महाकाव्यों में 'नैषधीयचरितम्' का स्थान निर्धारित कीजिए।
5. 'नैषधीयचरितम्' के भाव एवं कला पक्ष का विवेचन कीजिए।
6. पठित अंश के आधार पर राजा नल के गुणों का वर्णन कीजिए।
7. अपनी मुक्ति हेतु हंस द्वारा किये गये करुण निवेदन का वर्णन कीजिए।
8. 'नैषधीयचरितम्' के प्रथम सर्ग की कथा का सारांश लिखिए।
9. निम्नलिखित पद्य की सप्रसंग हिन्दी-व्याख्या कीजिए :
'निमीलितादक्षियुगाच्च स महन्महीपतिः' ।।40।।
10. निम्नलिखित पद्य की संस्कृत-व्याख्या कीजिए :
'दिने-दिने त्वं स लोहितेक्षणान्' ।।90।।

इकाई में सम्मिलित है :

- अध्ययन के उद्देश्य
- प्रस्तावना
- संस्कृत वाङ्मय का स्वरूप एवं विकास
- महाकाव्य के लक्षण
- कालिदास का सामान्य परिचय एवं स्थिति काल
- कालिदास की कृतियाँ एवं काव्य-सौष्ठव
- 'कुमार संभवम्' के प्रथम सर्ग की सम्पूर्ण व्याख्या
- महाकाव्य एवं गद्यकाव्य
- साहित्यिक गद्य का उद्भव एवं विकास
- गद्य साहित्य के प्रमुख लेखक
- काव्य साहित्य एवं काव्यभेद
- गीतिकाव्य एवं उसकी विशेषताएँ
- नाट्य साहित्य एवं उसकी विविधता

अध्ययन के उद्देश्य :

इस इकाई में कालिदास-कृत 'कुमारसंभवम्' के प्रथम सर्ग की व्याख्या एवं समालोचना के साथ-साथ संस्कृत साहित्य के महाकाव्यों एवं गद्य काव्यों का आलोचनात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् छात्र निम्नलिखित बिन्दुओं से पूर्णतया परिचित हो सकेंगे :

- संस्कृत साहित्य का उद्भव एवं विकास
- महाकाव्य के लक्षण एवं विशेषताएँ
- कालिदास का व्यक्तित्व एवं कृतित्व
- कालिदास के स्थिति काल सम्बन्धी विभिन्न मत
- कालिदास के काव्यकला का वैशिष्ट्य
- 'कुमारसंभवम्' के प्रथम सर्ग की आलोचना एवं व्याख्या
- महाकाव्य एवं गद्य काव्य का उद्भव और विकास
- गद्य साहित्य के प्रसिद्ध रचनाकार
- काव्य साहित्य एवं उसके भेद
- गीतिकाव्य एवं नाट्य साहित्य

NOTES

‘कुमारसम्भव’ कालिदास की काव्य-कला की सुन्दर रचना है। इसमें सुन्दर भाव व्यंजना, उदात्त एवं कोमल कल्पना तथा प्रांजल पद-विन्यास का अत्यन्त सौष्ठव प्राप्त होता है। इस महाकाव्य के अनेक स्थलों पर महाकवि की वर्णना-शक्ति का सुन्दर निदर्शन हुआ है, यथा—बसन्त वर्णन, हिमालय वर्णन, वनश्री का वर्णन तथा तपस्विनी पार्वती का शिव से संवाद। ये सभी वर्णन कवि की उत्कृष्ट प्रसादपूर्ण शैली में रचित हैं। इनमें कवि की लक्षणा शक्ति की सुन्दर अभिव्यंजना हुई है। यह शृंगार रस प्रधान महाकाव्य है। मदन-दहन में शारीरिक वासना के बाह्य रूप का तथा वासना जनित क्षणभंगुर प्रेम का विरोध प्रकट हुआ है। बिना तपस्या के स्नेह कभी परिनिष्ठित नहीं हो सकता—यह महाकवि कालिदास का महाकाव्य ‘कुमारसम्भवम्’ के माध्यम से अमर सन्देश है।

कुमारसंभवम् (आलोचना भाग)

संस्कृत वाङ्मय का स्वरूप एवं विकास:

संस्कृत भाषा चिरकाल से तपश्चर्या, साधना एवं निष्ठा की भाषा रही है। इसी कारण अधिकांश रचनाकारों ने संस्कृत में स्वान्तः सुखाय साहित्य की रचना की। ऐसी रचनाओं की सम्प्रेषणीयता यदि विलक्षण रही हो, तो उसमें कोई आश्चर्य नहीं। संस्कृत भाषा के तपःपूत साधकों ने अधिकांश कृतियों का सृजन स्वमनोविनादार्थ ही किया है, जिनकी प्रेषणीयता अद्भुत है। संस्कृत रचना धर्मिता की इस तापसी प्रवृत्ति का ही यह सुपरिणाम रहा है कि उसका अजस्र प्रवाह इतिहास के बदलते काल खण्डों में कहीं अवरुद्ध नहीं हुआ। वस्तुतः संस्कृत साहित्य भारतीय समाज के भव्य विचारों का रुचिर दर्पण है। वस्तुतः संस्कृत साहित्य वह उच्चगिरि शृंग है जिस पर चढ़कर मनुष्य काल के सुदीर्घ स्रोत को बड़ी दूर तक देख सकता है। इस महानद के तट पर मनुष्य के उत्थान और पतन के अनेक चिह्न दिखाई देते हैं। संस्कृत साहित्य हमें बताता है कि साम्राज्य और धर्मराज्य उठते हैं और ध्वस्त हो जाते हैं, लेकिन मनुष्य फिर भी शेष रहता है। इतिहास विधाता की अज्ञात योजना का ठीक-ठीक स्वरूप हमें नहीं बताता, लेकिन संस्कृत साहित्य उच्च स्वर से पुकार कर कहता है कि वह योजना मंगल की ओर अग्रसर हो रही है।

संस्कृत वाङ्मय को सामान्यतः दो भागों में विभक्त किया जाता है—(१) वैदिक संस्कृत वाङ्मय, (२) लौकिक संस्कृत वाङ्मय। वैदिक साहित्य के अन्तर्गत ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद चार संहिताएँ, ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक ग्रन्थ तथा उपनिषदों का समावेश किया जाता है। वैदिक साहित्य लौकिक साहित्य की अपेक्षा पूर्ववर्ती भाषा में तो है ही, साथ ही ध्वन्यात्मक एवं व्याकरणात्मक अन्तर भी पर्याप्त मात्रा में मिलता है।

लौकिक संस्कृत साहित्य में वैदिक साहित्येत्तर सभी कृतियों की परिगणना की जा सकती है। इनमें भाषागत साम्य सर्वत्र मिलता है। वेदाङ्ग साहित्य तथा सूत्र साहित्य को वैदिक तथा लौकिक साहित्य के मध्य की शृंखला कहने में कोई विप्रतिपत्ति नहीं होगी।

लौकिक संस्कृत का प्रारम्भ वाल्मीकि कृत रामायण और वेदव्यास रचित महाभारत से माना जाता है। वस्तुतः ये दोनों कृतियाँ उत्तरकालीन रचनाकारों के लिए प्रेरणा-स्रोत एवं आदर्श रही हैं। रामायण, महाभारत लोक-विश्रुत काव्य तथा मानवीय आचार की कसौटी हैं। इन्हें सामाजिक व्यवहार का मानदण्ड माना गया है। इनमें वर्णव्यवस्था का व्यवहार, धर्म एवं ज्ञान का भण्डार, कर्तव्य का निदर्शन तथा परिवार की संहिता है। काव्य के लिए कथानक, पात्र, चरित्र-चित्रण, छन्द, अलंकार, रस, रीति पद्धति आदि विनियोग के आदर्श हैं। अन्य काव्य-दृष्टियों से इन दो कृतिकारों ने बाद के सहस्रों रचनाधर्मी लेखकों को उपकृत किया है। सम्पूर्ण राष्ट्र का

साहित्य आज भी रामायण और महाभारत का क्षीर पानकर बलिष्ठ हो रहा है जिससे यह ध्वनित हो उठता है कि भारतवर्ष की विचारधारा एक है, भारत की मानसिकता एक है एवं भारत की एक ही संस्कृति है, जिसकी सेवा अनेक भाषाओं में की जा रही है। संस्कृत के कवियों में कवि कुलगुरु कालिदास राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति करने वाले महानतम साधक हैं। कालिदास की कविता देववाणी का शृंगार है। कमनीय काव्य के समस्त लक्षणों से ओत-प्रोत उनकी कविता भारतीय संस्कृति एवं भारतीय जनजीवन की मार्मिक झाँकी प्रस्तुत करती है। वस्तुतः कालिदास शृंगार तथा प्रेम के भावुक कवि हैं, अतः उनकी दृष्टि सौन्दर्य की कोमल भावना प्रकट करने की ओर अधिक रही है। वाल्मीकि एवं वेदव्यास के बाद संस्कृत वाङ्मय को उच्चतम स्थान दिलाने का श्रेय महाकवि कालिदास को प्राप्त है। इनका अभिज्ञान शाकुन्तलम् तथा मेघदूतम् सम्पूर्ण विश्व के सहृदयों द्वारा समादृत हैं।

कालिदास के अनन्तर अश्वघोष, भारवि भट्टि, कुमारदास, माघ, प्रवरसेन आदि अनेक कवियों ने महत्त्वपूर्ण रचनाओं के माध्यम से संस्कृत साहित्य की अभिवृद्धि की। इन्होंने सहस्रों उत्तरकालीन लेखकों के लिए रचना मार्ग को प्रशस्त कर श्रेय प्राप्त किया है। कालिदास के ग्रन्थों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि उनके पूर्व प्रबन्ध शैली के अनेक काव्य लिखे जाते रहे हैं और उन्हीं से काव्यों के अनेक रूपों का विकास हुआ है।

काव्य के अनेक रूपों का वर्णन संस्कृत अलंकारशास्त्र में मिलता है। काव्य के मुख्यतया दृश्य और श्रव्य दो भेद होते हैं। दृश्य काव्य वह होता है जिसका रंगमंच पर अभिनय किया जाता है, जो नेत्रों का सहारा लेकर हृदय को आनन्दित करता है। दृश्य काव्य के अन्तर्गत समस्त दस रूपक और अठारह उप-रूपक आते हैं।

श्रव्य काव्य में केवल श्रवण ही मुख्य होता है। श्रव्य काव्य का अभिनय नहीं होता। वह कानों के सहारे रसिक के चित्त को आनन्दित करता है। इसके पद्य, गद्य तथा चम्पू तीन उपभेद होते हैं। छन्दों में लिखे गये काव्यों को पद्य कहते हैं, जो तीन उपभेदों—महाकाव्य, खण्डकाव्य और मुक्तक काव्य—में विभक्त हैं।

महाकाव्य के लक्षण

यद्यपि भारतीय कवियों को काव्य-निर्माण की प्रेरणा रामायण-महाभारत जैसे उपजीव्य ग्रन्थों से ही मिली है, तथापि महाकाव्यों की उत्पत्ति का बीज हम वेदों में ही पाते हैं। ऋग्वेद में ऐसे कई स्थल हैं, जहाँ मन्त्रदृष्टा ऋषि को काव्यत्व सम्पन्न देखते हैं। वेद की ऋचायें, जिनमें कुछ दानशील, उदार राजाओं की स्तुतियाँ हैं, नाराशंसी कहलाती हैं। इस नाराशंसी से ऐतिहासिक वीर काव्य रामायण-महाभारत आदि विकसित हुए, जो आगे चलकर उपजीव्य काव्य के रूप में संसार में प्रसिद्ध हुए। रामायण को इतिहास ग्रन्थ माना जाता है। इन्हीं बृहद आकृति रचनाओं से प्रेरणा लेकर भास, कालिदास, अश्वघोष, भारवि, माघ आदि असामान्य लेखक बन गये।

रामायण-महाभारत जैसे आर्ष महाकाव्यों की रचना के बाद कालिदास आदि महाकवियों के द्वारा रचित संस्कृत महाकाव्यों की उच्च धारा प्रवाहित हुई, वह उत्तरोत्तर अविच्छिन्न गति से प्रवाहित होती रही है और न्यूनाधिक रूप में वह आज भी वर्तमान है।

महाकाव्यों की विकासात्मक परम्परा में महर्षि पाणिनि (ई. पू. ४००) का नाम भी लिया जाता है जिन्होंने 'जाम्बवती विजय' सहित दो महाकाव्य लिखे थे। वररुचि के नाम से भी अनेक सुन्दर पद्यों का संकलन विभिन्न सुभाषित संग्रहों में मिलता है, जिनमें 'सदुक्तिकर्णामृत', 'सुभाषितावली', 'शार्ङ्गधर-पद्धति' आदि के नाम स्मरणीय हैं। इन वररुचि के सम्बन्ध में भी विवाद है। ये वार्तिककार कात्यायन वाररुचि निरुक्त-समुच्चय के रचयिता अथवा प्राकृत प्रकाश के लेखकों में एक हैं। ईसा पू. १५० के लगभग लब्धजन्मा महर्षि पतंजलि का नाम वैयाकरण महाभाष्य के लेखक के रूप में तो प्रसिद्ध रहा ही है, ये कंस वध तथा बलिबन्ध नामक नाट्य रचनाओं के लेखक भी रहे हैं। इन रचनाओं में काव्यत्व का सुन्दर चित्रण दृष्टिगत होता है। यहाँ इनके उल्लेख

NOTES

NOTES

का यही आशय है कि ईसा पू. १५० तक काव्य साहित्य की अनेक विधाओं का प्रादुर्भाव हो चुका था। इनके अतिरिक्त ईसा की प्रथम शताब्दी में तथा इसके बाद अनेक शिलालेख प्राप्त होते हैं। रुद्रदामन कृत गिरनार का शिलालेख जिसका समय १५० ई. निश्चित है, अलंकृत काव्य शैली का सुन्दर उदाहरण है। हरिषेण की समुद्रगुप्त प्रशस्ति (३५० ई.) तथा वत्सभट्ट का मन्दसौर का शिलालेख (४७३ ई.) आदि प्रौढ़ काव्य-शैली के उदाहरण हैं। यदि समुद्रगुप्त विरचित 'कृष्णचरित' को प्रामाणिक काव्य माना जाये तो यह काव्य भास आदि से भी प्राचीन सिद्ध होगा।

इसके बाद महाकवि कालिदास का काव्याकाश में उदय होता है। कालिदास को ही वस्तुतः प्रौढ़, परिष्कृत, प्राञ्जल एवं मनोज्ञ काव्यशैली का प्रवर्तक कहा जा सकता है। उसने जो आदर्श उपस्थित किये, वह परकालीन कवियों और महाकवियों के लिए अनुकरणीय हुए।

जहाँ कालिदासोत्तर कालीन काव्य सीमित वर्ग को भी प्रसन्न करने के लिए रचा गया, वह काव्य जगत् आलंकारिकों द्वारा नियमित किया जाने लगा था। आलंकारिकों ने काव्य के अनेक भेदोपभेद कर उन्हें नियमबद्ध कर दिया था। परिणामस्वरूप इन काव्यों को आलंकारिक नियमों की परिधि में आबद्ध करके लिखा जाने लगा। इस काल के कवियों ने व्याकरण सम्मत शब्द और भाषा का प्रयोग करके उन्हें अलंकृत बना दिया है।

महाकाव्य सर्गों में निबद्ध महान् पुरुषों के चरित्र का निरूपण करने वाला होता है। यह ग्राम्य शब्दों में रहित, अर्थसौष्ठव से समुचित अलंकारयुक्त होता है। मन्त्रणा, दूत प्रेषण, युद्धयात्रा के लिए गमन, नायक के कल्याण और पाँचों सन्धियों से युक्त होना चाहिए। यह अति व्याख्या से रहित, वैभव सम्पन्न, सरल भाषा में चतुर्वर्ग का प्रतिपादन करने वाला होना चाहिए, लेकिन अर्थ का उपदेश ही वहाँ मुख्य रूप है। यह लौकिक व्यवहार और सभी रसों से युक्त होना चाहिए। महाकाव्य का जो नायक हो, उसके जन्म, वंश, युद्ध-कौशल, शास्त्र-ज्ञान आदि गुणों का वर्णन काव्य के प्रारम्भ में कर देना चाहिए। किसी अन्य पात्र का उत्कर्ष दिखलाते हुए नायक के वध का वर्णन नहीं करना चाहिए, ऐसा करने से पाठक को गहरा आघात पहुँचता है। यदि महाकाव्य में नायक का उत्कर्ष करना कवि को अभीष्ट न हो, तो नायक का वंशादि उत्कर्ष पहले नहीं दिखाना चाहिए। अतः महाकाव्य के लिए आवश्यक है कि उसमें कथा नायक को आदि से अन्त तक विद्यमान रहना चाहिए। काव्यशास्त्रकार की यह विशेषता मानी जायेगी कि वह आदि से लेकर अन्त तक उसका उत्कर्ष दिखावे।

इन लक्षणों के आधार पर यह स्पष्ट प्रतिभासित होता है कि आचार्य भामह महाकाव्य के लक्षण स्पष्ट करने में सफल सिद्ध नहीं हुए हैं। अतएव दण्डी ने परिष्कृत रूप में महाकाव्य के लक्षण इस प्रकार प्रस्तुत किये हैं—

जहाँ कथानक सर्गों में उपनिबद्ध हों, वहाँ महाकाव्य कहलाता है। ऐसे महाकाव्य का प्रारम्भ त्रिविध मंगलाचरण—आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक अथवा वस्तुनिर्देशात्मक—से होना चाहिए। इसका कथानक ऐतिहासिक कथा पर आधारित हो अथवा किसी अन्य प्रसिद्ध कथा पर आश्रित होना चाहिए। इसमें धर्मार्थकामादि चारों पुरुषार्थों का विस्तार से वर्णन होना चाहिए। धीरोदात्त आदि गुणों से युक्त इसका नायक होना चाहिए। महाकाव्य में कवि नीरसता को समाप्त करने के लिए नगर, समुद्र, पर्वत, ऋतु, वन, उपवन, सूर्योदय, चन्द्रोदय आदि का वर्णन करता है। जल क्रीड़ा, मधुपान और प्रेमोत्सव आदि के वर्णनों से यह अलंकृत होना चाहिए। वियोगजन्य प्रेम, विवाह, कुमारोत्पत्ति, विचार-विमर्श, राजदूतत्व अभियान, युद्ध तथा नायक के जय-लाभादि के मनोहर प्रसंगों से युक्त विभिन्न वृत्तान्तों से सुशोभित तथा सविस्तार वर्णनों से युक्त होना चाहिए। इसके साथ ही वर्णन में रसभाव होना आवश्यक है। इसके सर्ग अति विस्तीर्ण नहीं होने चाहिए। श्रवण, मधुर छन्दों से युक्त कथानक सन्धियों से समन्वित होना चाहिए। सर्गों का अन्तिम श्लोक परिवर्तित छन्द वाला होना चाहिए। इन लक्षणों से युक्त उत्तम काव्य महाप्रलय के बाद भी कल्पपर्यन्त स्थित रहता है।

महाकाव्य के किसी भी अंग की न्यूनता होने पर यदि उसमें प्रतिपाद्य वस्तुरूप सम्पत्ति का गुण सौन्दर्य सहृदय काव्य-रसिकों के चित्त को आकृष्ट कर लेता है, तो वह काव्य दूषित नहीं माना जाता है। नायक के वंश के साथ-साथ शत्रु के भी वंश पराक्रम तथा पाण्डित्य का वर्णन करने के पश्चात् नायक द्वारा उस पर विजय प्राप्ति के माध्यम से नायक के उत्कर्ष का वर्णन हम लोगों को सन्तोष प्रदान करने वाला होता है।

उपर्युक्त प्रतिपादित लक्षणों के पश्चात् रुद्रट आदि अन्य आचार्यों ने भी महाकाव्य के लक्षणों पर प्रकाश डाला है, लेकिन उनके लक्षण पूर्व आचार्यों द्वारा कथित लक्षणों के समान ही थे। बारहवीं शताब्दी में आचार्य विश्वनाथ ने महाकाव्य के लक्षणों को जिस प्रकार स्पष्ट किया है, वे इस प्रकार हैं—

महाकाव्य सर्गों में विभक्त होता है इसका नायक देवता, कुलीन क्षत्रिय या एक वंशज कुलीन अनेक राजा होते हैं। महाकाव्य में शृंगार, वीर, शान्त रसों में से एक का प्रधान रस के रूप में तथा अन्य को उसके सहायक रूप में प्रयोग करना चाहिए। इसमें सभी नाटकीय सन्धियाँ होती हैं। इसका कथानक ऐतिहासिक अथवा सज्जन से सम्बद्ध होता है। धर्मार्थकाममोक्ष चतुर्वर्गों में से किसी एक को फल की प्राप्ति का आधार बनाया जाता है। प्रारम्भ में देवादि को नमस्कार, आशीर्वाद या वस्तुनिर्देशात्मक कथानक होता है। कहीं-कहीं दुर्जनों की निन्दा और सज्जनों के गुणों की प्रशंसा भी रहती है। प्रत्येक सर्ग में एक छन्द वाले पद्य रहते हैं तथा सर्गान्त में छन्द परिवर्तन होता है। महाकाव्य में आठ से अधिक सर्ग होने चाहिए, जो विस्तार में न अधिक छोटे और न अधिक बड़े हों। कहीं-कहीं कई छन्दों वाले सर्ग भी दिखाई देते हैं। सर्ग के अन्त में आगे आने वाले सर्ग की कथा होनी चाहिए। सन्ध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, सागर, युद्ध प्रस्थान, विवाह मन्त्र, पुत्रोदय, पर्वत, ऋतु, वन, उपवन आदि प्राकृतिक वर्णन होने चाहिए। ग्रन्थ का नाम कवि, कथानक, नायक या प्रतिनायक के नाम पर रखना चाहिए और सर्ग का नाम सर्गगत कथा के आधार पर होना चाहिए।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि महाकाव्य के परिष्कृत एवं स्पष्ट लक्षण आचार्य विश्वनाथ ने वर्णित किये हैं उनका परवर्ती साहित्य में भली प्रकार से अनुकरण किया गया है।

महाकाव्य के लक्षणों के आधार पर 'कुमारसंभवम्' की समीक्षा :

कालिदास का "कुमारसंभवम्" एक श्रेष्ठ महाकाव्य है। संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् आचार्य विश्वनाथ द्वारा प्रतिपादित काव्य लक्षणों के अनुसार अनेक महाकवियों की रचनाओं का विवचेन एवं विश्लेषण करके यहाँ 'कुमारसंभवम्' की समीक्षा की जा रही है—

(१) साहित्य दर्पण के अनुसार महाकाव्य की रचना सर्गबद्ध होनी चाहिए। कुमारसंभवम् सर्गबद्ध महाकाव्य है जो सत्रह सर्गों में निबद्ध है।

(२) महाकाव्य में नायक धीरोदात्त प्रकृति या महान् चरित्र वाला होना चाहिए। नायक के गुण उदात्त हो सकते हैं।

कुमारसंभव का नायक देवता है—कुमार कार्तिकेय। उसमें धीरोदात्त नायक की समस्त विशेषताएँ विद्यमान हैं। वह महान् चरित्र वाला, उदात्त गुण सम्पन्न है।

(३) महाकाव्य के लक्षणों के अनुसार शृंगार, वीर और शान्त में से एक रस प्रधान और अन्य रस गौण होने चाहिए।

कुमारसंभव का प्रमुख रस शृंगार है। करुण और शान्त रस उसके सहायक रस हैं। कुमारसंभव के चतुर्थ सर्ग में रति विलाप का करुण रस का हृदयविदारक उदाहरण है। महाकवि का हास्य रस उच्च एवं सभ्य है। इनकी हास्य रस की कविता सुनकर पाठक केवल मुस्करा देते हैं। पंचम सर्ग में उद्धृत पार्वती के तप के समय अतिथि रूप में आये ब्रह्मचारी वेशधारी शिव द्वारा स्वयं पार्वती के समक्ष निन्दा इसका स्पष्ट उदाहरण है—

NOTES

(४) महाकाव्य में समस्त नाट्य सन्धियों का विधान होना चाहिए। कुमारसंभवम् के कथानक में नाटकीय सन्धियों का सुन्दर विनियोजन किया गया है।

(५) महाकाव्य की कथावस्तु ऐतिहासिक अथवा किसी महापुरुष के जीवन से सम्बद्ध होनी चाहिए। कुमारसंभव की कथावस्तु प्राचीन आख्यान है। इसमें शिव-पार्वती के विवाह तथा देव सेनापति कुमार कार्तिकेय के जन्म की कथा वर्णित है। इस प्रकार कथानक की दृष्टि से यह एक महाकाव्य है।

(६) महाकाव्य में पुरुषार्थ चतुष्टय में से किसी एक फल की प्राप्ति का उद्देश्य होना चाहिए। कुमारसंभव का प्रमुख उद्देश्य चतुर्वर्ग धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—की प्राप्ति है। इसमें चारों वर्गों का फल सुचारु रूप से वर्णित है।

(७) महाकाव्य में प्रारम्भ में मंगलाचरण का विधान आवश्यक माना गया है और यह भी निर्देश दिया गया है कहीं-कहीं दुष्टों की निन्दा और सज्जनों की प्रशंसा भी होनी चाहिए। कुमारसंभव के प्रारम्भ में 'अस्त्युत्तरस्यां दिशि' श्लोक में वस्तु निर्देशात्मक मंगलाचरण है।

उपर्युक्त लक्षण महाकवि कालिदास के रघुवंश और कुमारसंभव महाकाव्यों के आधार पर ही निर्धारित किये गये हैं। अतः इनका आधार स्वरूप होने के कारण कुमारसंभव भी एक महाकाव्य है। इसमें कहीं-कहीं दुष्टों की निन्दा और सज्जनों के गुणों का वर्णन भी किया गया है।

(८) महाकाव्य में आठ से अधिक सर्ग होने चाहिए। प्रत्येक वर्ग में एक ही प्रकार का छन्द होना चाहिए किन्तु सर्ग के अन्त के कुछ श्लोक भिन्न छन्दों में भी होते हैं और सर्ग के अन्तिम श्लोक में अगले सर्ग की कथा की सूचना होनी चाहिए। कुमारसंभवम् में सत्रह सर्ग हैं। प्रत्येक सर्ग में एक ही प्रकार का छन्द है और सर्गान्त में छन्द परिवर्तन है।

(९) महाकाव्य में नगर, समुद्र, पर्वत, ऋतु, जल-क्रीड़ा, उद्यान-विहार, विवाह, यात्रा, युद्ध तथा विजय प्राप्ति आदि विविध विषयों का वर्णन कथावस्तु के अन्तर्गत उपयुक्त स्थलों पर किया जाता है।

कुमारसंभवम् में सन्ध्या, सूर्य, चन्द्र, रात्रि, दिन, प्रातः, मध्याह्न, मृगया, नदी, पर्वत, वन-उपवन, नगर, समुद्र, ऋतु, यात्रा, विवाहोत्सव, पुत्र जन्म आदि विविध वर्णनों का सौन्दर्य देखने योग्य है।

(१०) महाकाव्य का नाम कवि या नायक के नाम पर अथवा वर्ण्यवस्तु के नाम पर होना चाहिए। कुमारसंभव का नामकरण वर्ण्य विषय कुमार कार्तिकेय के जन्म के वर्णन के आधार पर होने से पूर्णतया सार्थक एवं उपयुक्त है। इस महाकाव्य का प्रमुख उद्देश्य कुमार कार्तिकेय के जन्म का वर्णन करना है।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि कुमारसंभवम् एक सफल महाकाव्य है। महाकाव्य के सभी लक्षणों का इसमें समुचित निर्वाह हुआ है।

कालिदास का सामान्य परिचय एवं स्थितिकाल

संस्कृत साहित्य के महत्वपूर्ण महाकाव्य कुमारसंभवम् के रचयिता महाकवि कालिदास की कीर्ति, आज दो हजार वर्ष बीतने पर उतनी ही प्रखर है। वे संस्कृत के सर्वमान्य कवि, नाटककार, काव्यकार एवं गीतिकाव्यकार हैं, इस प्रकार का तीनों विभागों में आधिपत्य जितना कालिदास का रहा है, उतना किसी भी देश

का कोई भी कवि बराबरी नहीं कर सका है। इसलिए विद्वान समीक्षकों की धारणा बनती जा रही है कि महाकवि कालिदास विश्व के श्रेष्ठतम कवि हैं।

कुमारसंभवम् एवं महाकाव्य
और गद्यकाव्य

NOTES

इनके समय, जन्म स्थान एवं जीवन के विषय में अन्य प्राचीन भारतीय साहित्यकारों की भाँति कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। किंवदन्तियों एवं अन्तः साक्ष्यों के आधार पर ही थोड़ा-बहुत जाना जा सकता है।

संस्कृत साहित्य के कवियों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी उनकी रचनाओं के आधार पर सरलता से नहीं मिल पाती है। इसी श्रेणी में कालिदास को भी रखा जा सकता है। महाकवि कालिदास के किसी भी ग्रन्थ में उनके जीवन के विषय में कुछ नहीं लिखा है। उनके सम्बन्ध में यह किंवदन्ती प्रचलित है कि वे बचपन में मूर्ख थे। उनके लिए काला अक्षर भैंस बराबर था। जिस डाली पर बैठे थे, उसी को काट रहे थे। इसी सन्दर्भ में विद्योत्पा वृत्तान्त भी जुड़ जाता है। बाद में पत्नी के द्वारा घर से निकाल दिये जाने पर कालिदास ने भगवती की आराधना करके महाकवि का पद प्राप्त कर लिया।

कालिदास का स्थितिकाल—संस्कृत साहित्य में प्रकृति सौन्दर्य का सजीव वर्णन करने वाले महाकवि कालिदास भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के अन्तःकरण में काव्य रसास्वाद को बहाने वाला एकमात्र कवि हैं, जो संसार के प्रसिद्ध कवियों में गिने जाते हैं। महाकवि कालिदास को कवि कुलगुरु की उपाधि से विभूषित किया गया है। ऐसे कवि की देशी और विदेशी विद्वानों ने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। ऐसे महाकवि के विषय में प्रामाणिक सामग्री का नितान्त अभाव है, अर्थात् कालिदास के स्थितिकाल वंश, स्वभाव, चरित्र एवं जन्मस्थान आदि के विषय में भी आज विश्वसनीय सामग्री उपलब्ध नहीं है। कालिदास ने स्वयं या उनके समकालीन किसी कवि ने अपनी रचनाओं में कहीं भी उनके विषय में कुछ नहीं लिखा है। पूर्व समय के लगभग सभी ऐसे कवि हैं, जो अपना परिचय देना उचित नहीं समझते थे। वे केवल अपने रचना कौशल से ही जानकारी करा देना चाहते थे। कालिदास के समय के विषय में केवल एक तथ्य अकाट्य माना जाता रहा है, वह है कालिदास का विक्रमादित्य के नवरत्नों में होना। एक ओर भारतीय परम्परा के अनुसार महाकवि कालिदास शकारि विक्रमादित्य के नवरत्नों में प्रधान थे। विक्रमादित्य नामक सम्राट् (५७ ई. पू.) को कालिदास का आश्रयदाता मानते हैं, दूसरी ओर पाश्चात्य एवं कतिपय भारतीय विद्वान 'विक्रमादित्य' उपाधिधारी चन्द्रगुप्त द्वितीय (३७५-४१३ ई.) को कालिदास का आश्रयदाता मानते हैं।

अधिकांश विद्वानों ने विक्रमादित्य को कालिदास का आश्रयदाता माना है। लोकगाथाओं तथा अन्यत्र भी कालिदास और विक्रमादित्य समाज में अर्जुन और कृष्ण की जोड़ी के समान संमाहत होते चले आ रहे हैं। फिर भी इतिहास ग्रन्थों में कालिदास के समय निर्धारण में तीन मत प्रधान हैं।

(१) ई. पू. प्रथम शताब्दी—प्राचीन भारतीय अनुश्रुति के अनुसार कालिदास विक्रम संवत् के प्रवर्तक विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक थे। विक्रमादित्य का समय ई. पू. प्रथम शताब्दी था। इस मत को कई दृष्टियों से समर्थन प्राप्त हुआ है। व्याख्यात्मक आधार के लिए सबसे पहले भाषा-शैली को लिया जाना चाहिए। कालिदास की भाषा-शैली रामायण और महाभारत की शैली के बहुत समीप है। इसमें वह कृत्रिमता समास बहुलता आदि नहीं मिलती है, जो गुप्तकालीन शिलालेखों में मिलती है। कहाँ प्रयाग प्रशस्ति वाला स्तम्भलेख, जिसमें ३०-३५ पंक्तियों का एक लम्बा समास प्रधान वाक्य है और कहाँ कालिदास की दो-तीन शब्दों वाली समासों की भाषा। कालिदास के सभी ग्रन्थों में उन सभी वैदिक शब्दों का प्रयोग मिलता है, जो छठी शताब्दी तक आते-आते अप्रचलित हो गये। कालिदास के ग्रन्थों में वैदिक छन्दों की विपुलता कालिदास को वैदिक युग के निकट ला खड़ा करता है। 'पातयां आस' ऐसे व्याकरणिक प्रयोग वैदिक परम्परा के हैं, पाणिनीय व्याकरण

इसमें अनिवार्य सन्धि की व्यवस्था देता है पर कालिदास के रघुवंशम् का 'तं पातयां प्रथमास पपात पश्चात्' प्रयोग उस समय का है, जबकि पाणिनि व्याकरण को पूरी दृढ़ता प्राप्त नहीं हुई थी।

NOTES

जैनाचार्य मेरुतुंग की पद्यावली के अनुसार मर्दिभिल्ल के पुत्र विक्रमादित्य ने शकों को पराजित कर उज्जयिनी का राज्य लौटाया था। यह घटना महावीर के निर्वाण के बाद ५२७-४७० = ५७ ई. पू. की थी। जो कालिदास के समय को निर्धारित कर रही है। कालिदास के विक्रमोर्वशीयम् नाटक का नामकरण तथा उनके ग्रन्थों में यत्र-तत्र विक्रम शब्द का सहेतुक प्रयोग भी यही ध्वनित करता है। गाथा सप्तशती, कथासरित्सागर में विक्रमादित्य की वीरता, उदारता एवं दानशीलता का वर्णन है जिसमें विक्रमादित्य नामक प्रतापी राजा ने अपनी विजय के उपलब्ध में लाखों रुपया पुरस्कार में दिया था। अतः विक्रमादित्य का समय प्रथम शताब्दी माना गया है।

'मालविकाग्निमित्रम्' में शुंगवंशीय राजा पुष्यमित्र के पुत्र अग्निमित्र का नायक के रूप में वर्णन से यह पुष्ट होता है कि वे अग्निमित्र के सन्निकट हैं, जिनका समय १५० ई. पू. है।

कालिदास ने परशुराम को ऋषि माना है, अवतार नहीं। ईसवीय सन् में ही परशुराम को अवतार मानने की कल्पना हुई है। इस प्रकार कालिदास की परशुराम सम्बन्धी धारणा भी उनको ईसवीय सन् के पूर्व ठहराती है। रघुवंश के इन्दुमती स्वयंवर के अवसर पर वर्णित 'पाण्ड्य राजा' प्रथम शताब्दी में ही हुआ है। इस इतिहास प्रसिद्ध राजा की राजधानी दक्षिण में उरगपुर में थी।

बौद्ध कवि अश्वघोष का समय ७८ ई. निश्चित है और इनके काव्यों पर कालिदास का प्रभाव भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित है। कथानक की सृष्टि, वर्णन शैली, अलंकारों तथा छन्दों के प्रयोग में साम्य मिलता है। इन तथ्यों से निर्णय निकाला जा सकता है कि कालिदास का समय ई. पू. का है। प्रभावोत्पादक उदाहरण इस प्रकार हैं—

तं वीक्ष्य वेपथुमती सरसांगयष्टि निक्षेपणाय पदमुद्धतमुद्धहन्ती।
मार्गाचलव्यतिकराकुलितेव सिन्धुः शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ।।

(कुमारसम्भव, ५/८५)

तं गौरव बुद्धगतं चकर्ष भार्यानुरागः पुनराचकषैः।
सो निश्चयात् नापि ययौ न तस्थौ तरंस्तरंगैर्हि ववराजहंसः।।

(सौन्दरानन्द, ४/४२)

रघुवंशम् के प्रथम सर्ग में दिलीप का वर्णन करते हुए कालिदास ने लिखा है—

व्यूढोरस्को वृषस्कन्धः शालप्रांशुर्महाभुजः।

यही शब्दावली अश्वघोष ने 'सुन्दर' के शरीर का वर्णन करने में प्रयोग की है।

दीर्घाबाहुमहाक्षः सिंहासोवृषभेक्षणाः।।

इस तुलना से स्पष्ट है कि कालिदास अश्वघोष से पूर्व के हैं।

कालिदास ने अपने ग्रन्थों में शिव के प्रति विशेष आस्था प्रकट की है। अतएव वे गुप्तवंशीय वैष्णव राजाओं की अपेक्षा शैव राजाओं के ही आश्रित अधिक प्रतीत होते हैं। गुप्त राजा पाटलिपुत्र के अधीश्वर थे, जबकि कालिदास के आश्रयदाता उज्जयिनी के सम्राट् थे। अतः कालिदास का समय प्रथम शताब्दी ही मानना उचित है।

कालिदास ने रघुवंशम् में रघु-दिग्विजय में पण्डित राजा का वर्णन किया है। इन राजाओं का राजत्व काल ई. पू. प्रथम सदी माना जाता है। चतुर्थ शताब्दी ई. में तो इनका राज्य समाप्त ही हो गया था। इस ऐतिहासिक तथ्य से पुष्ट होता है कि कालिदास गुप्तकालीन चतुर्थ शताब्दी ई. के न होकर ई. पूर्व प्रथम शताब्दी के थे।

आर्केलाजीकल सर्वे ऑफ इण्डिया की रिपोर्ट में बताया गया है कि इलाहाबाद के निकट भीटा नामक स्थान की खुदाई में जो 'मेडालियन' प्राप्त हुआ था, उस पर शकुन्तला का चित्र उकेरा हुआ जान पड़ता है जिसमें सारथी के रूप में दुष्यन्त भी हैं। यह मेडालियन ई. पू. का आँका गया है।

इस प्रकार से स्पष्ट हो जाता है कि कालिदास का स्थिति काल ई. पू. था। वे सम्वत् प्रवर्तक विक्रमादित्य शकारि मालवाधीश के आश्रित कवि थे।

(२) चतुर्थ शताब्दी ईसवीय—कुछ विद्वान् कालिदास को गुप्तकाल का स्वीकार करते हैं। कालिदास का समय गुप्तवंश का अभ्युदय काल चतुर्थ शताब्दी मानने के लिए अनेक युक्तियाँ इस प्रकार हैं—

डॉ. बेबर विलियम मॉनियर आदि का मत है कि कालिदास का समय ईसा की दूसरी शताब्दी से चतुर्थ शताब्दी के बीच है। डॉ. रामकृष्ण भण्डारकर, साहित्याचार्य पण्डित रामावतार शर्मा ने कालिदास को चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय (३७५ ई. से ४७५ ई.) में माना है। डॉ. एस. के. दे महोदय ने भी कालिदास को इसी युग का माना है। इसी मत के समर्थक डॉ. कीथ, डॉ. मेकडॉनल, जैकोबी और सी. एच. टानी ने भी पुष्टि इस प्रकार की है—

(१) चन्द्रगुप्त द्वितीय के पुत्र कुमारगुप्त के प्रसिद्ध जन्मोत्सव का आधार लेकर ही कालिदास ने 'कुमारसंभवम्' की रचना की होगी।

(२) कालिदास ने अपने काव्यों में ग्रीक शब्दों का प्रयोग किया है। इस सम्बन्ध में डॉ. कीथ 'आमित्र' शब्द का उल्लेख करते हैं। जैकोबी महोदय ने 'जामित्र' को Diometron शब्द का रूपान्तरण माना है। इस प्रकार ग्रीक शब्दों का आदान भारतीय साहित्य में चौथी सदी से पूर्व का नहीं है।

(३) कालिदास के रघुवंश में रघु की दिग्विजय और चन्द्रगुप्त की दिग्विजय में बहुत कुछ साम्य है। इसके अतिरिक्त कालिदास का रघुवंश में बार-बार चन्द्र और इन्दु शब्द का प्रयोग चन्द्रगुप्त की ओर संकेत करता है।

(४) कालिदास ने कुमार, गोप्ता, गोप्तरि आदि शब्दों का बार-बार प्रयोग किया है। इससे प्रतीत होता है कि वे गुप्तकाल में चन्द्रगुप्त द्वितीय के पुत्र कुमारगुप्त के आश्रय में भी रहे होंगे।

(५) चन्द्रगुप्त का समय ही सुख और शान्ति का समय माना जाता है। कालिदास ने अपने काव्यों में उसी प्रकार सुख-शान्ति सम्पन्न समाज का वर्णन किया है।

उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि महाकवि कालिदास चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय में विद्यमान रहे हैं।

(६) कालिदासीय भाषा एवं भावसाम्य गुप्तकालीन अभिलेखों में प्राप्त होने से कालिदास का समय गुप्तकाल माना गया है।

(७) गुप्तवंशीय प्राप्त सिक्कों पर, मयूर पर आसीन स्कन्द का वर्णन खुदा हुआ है। इसका वर्णन कालिदास ने अपने काव्य में बहुत बार किया है।

NOTES

(८) कालिदास ने अपने खण्डकाव्य मेघदूत में जिस उज्जयिनी नगरी का वर्णन किया है वह चन्द्रगुप्त विक्रमादित की राजधानी थी।

(९) अभिज्ञानशाकुन्तलम् में कालिदास ने जिन मानव मूर्तियों का वर्णन किया है, वे केवल गुप्तकालीन शिल्प में ही प्राप्त होती हैं।

(१०) तीसरी शताब्दी में जो वात्स्यायन हुए थे उनका अनुकरण महाकवि कालिदास ने अपनी रचनाओं में किया है।

इस प्रकार उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर विद्वान कालिदास का समय गुप्तकाल में स्वीकार करते हैं।

उपर्युक्त तर्कों के विरोध में भारतीय समीक्षाकार इस प्रकार सामग्री प्रस्तुत करते हैं—

कुमार शब्द के आधार पर कुमारसम्भवम् महाकाव्य को कुमारगुप्त के जन्मोत्सव पर लिखा हुआ मानना भ्रान्त कल्पना है। वस्तुतः कालिदास ने 'कुमार' शब्द का प्रयोग सामान्य अर्थ जैसे 'पुत्र', 'आत्मज' के रूप में किया है।

कालिदास के काव्यों में सम्पन्न समाज के चित्रण से उनका समय गुप्तकाल नहीं ठहराया जा सकता है, क्योंकि गुप्तकाल से पूर्व भी सातवाहनों के युग में देश सभी प्रकार से समृद्ध एवं सुखी था।

सिकन्दर या सैल्यूकस (चतुर्थ शताब्दी ई. पू.) के आक्रमण के समय ग्रीक शब्दों के प्रयोग की सम्भावना से जैकोबी के मत का खण्डन हो जाता है।

रघु-दिग्विजय का वर्णन कुछ पुराणों के वर्णन से साम्य रखता है। अतः काव्य की दृष्टि से साम्य देखना उचित है। ऐतिहासिक तथ्य खोजने के आधार पर कोई निष्कर्ष निकालकर उतना समीचीन वर्णन नहीं किया जा सकता।

(३) छठी शताब्दी—इस मत के विचारक जेम्स फर्गुसन का मत है कि कालिदास पंचम अथवा षष्ठ शतक में हुए होंगे। डॉ. हार्नेली का मत है कि छठी शताब्दी में मालव नरेश यशोधर्मन ने हूणों को परास्त कर विक्रमादित्य की उपाधि प्राप्त की थी और उस बड़ी विजय के उपलक्ष्य में उन्होंने विक्रम नाम से एक नवीन संवत् चलाया। यहाँ यह भी उल्लेख है कि इसे प्राचीनता का पुट देने के लिए छः सौ वर्ष पूर्व से (५७ ई. पू. से) प्रचलित किया। इस आधार पर कालिदास का समय षष्ठ शतक मानना चाहिए। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने भी अन्य अनेक असम्बद्ध प्रमाणों से सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि कालिदास महाकवि भारवि के अनन्तर छठी सदी में विद्यमान थे। इसके अतिरिक्त बौद्ध दार्शनिक दिङ्नाग का समय षष्ठ शतक माना जाता है और मेघदूत में वास्तविक बौद्ध दार्शनिक दिङ्नाग का उल्लेख होने से कालिदास को दिङ्नाग का समसामयिक माना जाता है। विक्रमादित्य की सभा के रत्नों में एक रत्न वराहमिहिर भी थे जो ज्योतिष के आचार्य थे। इनका समय विद्वानों ने ईसा की छठी शताब्दी सिद्ध किया है। अतएव कालिदास भी उनके समसामयिक होने के कारण षष्ठ शतक के होने चाहिए। वराहमिहिर के द्वारा प्रतिपादित ज्योतिषीय सिद्धान्तों का उल्लेख कालिदास ने किया है। वराहमिहिर ने वर्षागम का जो समय निर्धारित किया है, वही समय कालिदास के द्वारा स्वीकृत है। अतः प्रबल प्रमाणों के आधार पर कालिदास का समय ईसा की छठी शताब्दी होना चाहिए।

अनेक विद्वानों ने इस मत का खण्डन अनेक युक्तियुक्त तथ्यों में किया है। यह कथन भ्रमपूर्ण है कि प्रसिद्ध विक्रम सम्वत् छठी शताब्दी में राजा यशोधर्मन् ने चलाया। मालव सम्वत् के नाम से यह सम्वत् प्राचीन काल से ही प्रचलित रहा है। कालिदास के 'मालविकाग्निमित्रम्' नाटक के आधार पर कालिदास का समय १५० ई. पू. से पूर्व निर्धारित नहीं किया जा सकता, क्योंकि इस नाटक के नायक शुंगवंशीय अग्निमित्र का समय १५० ई. पू. के आस-पास है।

बाण कृत 'हर्ष चरित' की भूमिका के १६वें श्लोक में कालिदास का उल्लेख किया गया है। बाण हर्ष (६०६ ई. से ६४८ ई.) के आश्रित कवि थे। इस आधार पर कालिदास का समय ६०६ ई. से पूर्व ठहरता है।

कुमारसंभवम् एवं महाकाव्य
और गद्यकाव्य

मन्दसौर के शिलालेख पर कालिदास के ग्रन्थों का समय ४७३ ई. स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। इसी प्रकार ४७३ ई. के कुमारगुप्त की प्रशस्ति के कर्त्ता वत्सभट्ट की रचना में ऋतुसंहार के अनेक पद्यों की झलक है। इन प्रमाणों पर कालिदास का समय पाँचवीं सदी के अनन्तर नहीं ठहराया जा सकता।

उपर्युक्त मतों के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कालिदास का स्थितिकाल ईसा पू. प्रथम शताब्दी ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध होता है। शेष मत अनेक किंवदन्तियों पर आधारित हैं। इसलिए ऐतिहासिक पुष्टि के अभाव में इन किंवदन्तियों का कोई महत्त्व नहीं है, जबकि विक्रमादित्य का शासनकाल मानना अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है, क्योंकि वीर विक्रमादित्य अत्यधिक उदार, दानी एवं विद्वत्प्रेमी थे। ऐसे उदार राजा के दरबार में कालिदास जैसे कवियों का होना उचित ही है। अतः कालिदास का समय ई. पू. प्रथम शताब्दी मानना अधिक समीचीन है।

NOTES

कालिदास का कृतित्व

महाकवि कालिदास संस्कृत के मूर्धन्य विद्वानों में से अन्यतम थे, उन्होंने विविध शास्त्रों का अध्ययन तथा तत्कालीन सामाजिक मान्यताओं का परिशीलन किया था। पूर्वकालीन परम्पराओं एवं भारतीय संस्कृति के उदात्त तत्वों का अधिग्रहण किया था। भौगोलिक सूक्ष्म ज्ञान के आधार पर उनको ज्योतिष ज्ञान का महापण्डित माना जाता है। आदर्श का चरम रूप कालिदास ने सर्वत्र अपने समक्ष रखा। वास्तव में कालिदास स्वयं संस्कृति की प्रतिमा, ज्ञान के रत्नाकर, समाज की रीतियों के आकार तथा विधाओं के कोष थे। ऐसे समग्र भारत-भूमि के सपूत कालिदास के व्यक्तित्व की व्यापकता का सहज अनुमान उनके कृतित्व से ही आँका जा सकता है।

संस्कृत साहित्य के इतिहास में महाकवि कालिदास का स्थान सर्वोच्च है। उन्होंने खण्डकाव्य, महाकाव्य एवं नाटकों की रचनाएँ की हैं। कालिदास की प्रमुख सात रचनाएँ हैं—(१) ऋतुसंहारम्, (२) मालविकाग्निमित्रम्, (३) विक्रमोर्वशीयम्, (४) कुमारसंभवम्, (५) मेघदूतम्, (६) रघुवंशम्, और (७) अभिज्ञान शाकुन्तलम्।

विद्वानों के अनुसार ऋतुसंहार उनकी सर्वप्रथम कृति है। इस ग्रन्थ में कवि की शैली उत्तरोत्तर विकसित अवस्था में दिखाई देती है। ऋतुसंहार के बाद मेघदूत की रचना हुई है। कुमारसंभवम् के रचनाकाल के उत्तरार्द्ध में रघुवंशम् को रचा गया। नाटकों में मालविकाग्निमित्रम् पहली, विक्रमोर्वशीयम् दूसरी तथा अभिज्ञानशाकुन्तलम् तीसरी तथा अन्तिम रचना है।

(१) ऋतुसंहारम्—'ऋतुसंहारम्' महाकवि कालिदास की प्रथम काव्यकृति मानी जाती है। १५७ श्लोकों में पूर्ण तथा छः सर्गों में विभक्त खण्डकाव्य ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर और वसन्त, इन ऋतुओं का स्वाभाविक एवं मनोहारी वर्णन प्रस्तुत करता है। वियोग शृंगार की प्रधानता लिये हुए बाह्य प्रकृति का मानव प्रकृति के साथ बहुत ही मनोहारी रूप में चित्रण किया है। प्रकृति के दोनों पक्षों का अतीव आह्लादक एवं हृदयकर्षक वर्णन किया गया है। सभी ऋतुओं का एक-एक सर्ग में संहरण करके अन्त में मनोहर एवं रमणीय वसन्त ऋतु, जो सम्पूर्ण ग्रन्थ का प्राण है, का आह्लादकारी वर्णन सरस और सरल भाषा में किया गया है।

(२) मेघदूतम्—मेघदूत कालिदास की सर्वोत्तम रचना है। इसमें कवि की काव्यकला मर्मज्ञता का स्पष्ट परिचय मिलता है। एक कुशल चित्रकार की भाँति कवि ने अत्यन्त अल्प शब्दों में रमणीय उदार भावों का चित्र कुशलता के साथ सुन्दर रूप में उतार दिया है।

NOTES

१३० श्लोकों में निबद्ध सम्पूर्ण काव्य 'पूर्वमेघ' एवं 'उत्तरमेघ' दो भागों में विभक्त है, जिसे कुवेर के शाप से निर्वासित विरही यक्ष की विरह पीड़ा का मार्मिक एवं हृदयग्राही वर्णन किया गया है। मेघदूत के पूर्व भाग में यक्ष के द्वारा मेघ को रामगिरि से अलका तक के मार्ग का वर्णन किया गया है तथा उत्तरमेघ में वह यक्ष अलकापुरी, अपने भवन और पत्नी की विरहदशा का वर्णन कर अन्त में अपना सन्देश सुनाता है। मेघदूत का वर्ण्य विषय तो वियोग शृंगार की अबाध धारा में कथनीय सन्देश का अवतरण है, परन्तु कालिदास भारत भूमि के पुजारी हैं, भारतीय संस्कृति के उपासक हैं, इसलिए उन्होंने समाज से रिश्ता रखकर महाकाल मन्दिर की सन्ध्योपासना में धार्मिकता का, नभचारी वक्रपंक्ति की स्वच्छन्दता का, स्वभाव का, जीवन का, लोककथाओं का, नदियों के गमन में शृंगारिक वृत्तियों तथा भौगोलिक दशाओं का भी चित्रण किया है। अतः कहा जा सकता है कि मेघदूत किसी प्रणयी की वियोगजन्य प्रणय-कथा की मार्मिक अभिव्यक्ति ही नहीं, अपितु शृंगार की संवेदना है। पशु-पक्षी जगत् के हावभाव तथा नैसर्गिक क्रियायें, धर्म, पुराण, नीति लोककथा, भवन निर्माण आदि का आगम एक रचना में हुआ है।

मेघदूतम् में सर्वत्र विप्रलम्भ शृंगार का ही चित्रण हुआ है। विशेषकर उत्तरमेघ में यक्ष अपनी और अपनी पत्नी की विरहावस्था का वर्णन जिन श्लोकों में करता है, वे अत्यन्त करुणोत्पादक एवं मार्मिक हैं। सम्पूर्ण मेघदूतम् मन्दाक्रान्ता छन्द में प्रणीत है जो विरह की तीव्रतम अनुभूतियों के चित्रण में पूर्णतया समक्ष है।

(३) मालविकाग्निमित्रम्—कालिदास का यह प्रथम नाटक है जिसमें मालविका और अग्निमित्र के प्रणय और विवाह का वर्णन पाँच अंकों में प्रस्तुत किया गया है।

यह नाट्य-कला की दृष्टि से उत्कृष्ट रचना है। नाटक के सभी पात्र, सारी घटनायें एवं अवस्थाएँ एक ही उद्देश्य अग्निमित्र की प्रणयसिद्धि की पूर्ति में सहायक हैं। नाटक में संवाद बड़ी प्रचुरता से रचे गये हैं। भाषा प्रसादपूर्ण और मनोहर है। चटकीले और चुभते उत्तर प्रत्युत्तर सरस, विनोद तथा सामयिक श्लेष उक्तियों से नाटक के संवादों में सजीवता आ गई है, किन्तु रोचक होने पर भी कवि की प्रकृति पर्यवेक्षण शक्तिपूर्ण तथा प्रस्फुटित नहीं हुई है। इस नाटक में कालिदास का क्रान्तिकारी रूप परिलक्षित हुआ है।

(४) विक्रमोर्वशीयम्—'विक्रमोर्वशीयम्' नाटक ऋग्वेद के 'पुरुवा-उर्वशी' आख्यान को आधार बनाकर लिखा गया महानतम नाटक है। यह नाटक पार्थिव और स्वर्गीय दोनों ही प्रकार की घटनाओं के आधार पर लिखा गया है। इसी कारण से इसे त्रोटक की संज्ञा दी गई है। पाँच अंकों के इस त्रोटक में कवि की प्रतिभा का पर्याप्त रूप से विकास हुआ है। इसमें 'मालविकाग्निमित्रम्' नाटक की अपेक्षा पात्रों की अन्तर्दशा का सुन्दर चित्रण हुआ है। दिव्य उर्वशी में मानवीय भावों का सुन्दर रूप प्रस्तुत है। कालिदास ने सरल एवं प्राञ्जल भाषा का प्रयोग किया है। प्रसाद के साथ माधुर्य गुण है। भावों में अन्तर्द्वन्द्व और मानसिक दशा का सुन्दर विश्लेषण है। इस त्रोटक में कवि की वर्णन शक्ति प्रबुद्ध रूप में परिलक्षित हो रही है।

इसमें चन्द्रवंशीय राजा पुरुरवा और उर्वशी के परस्पर प्रणय का अतीव रोचक वर्णन है। सर्वप्रथम राजा पुरुरवा उर्वशी नामक अप्सरा को केशी नामक राक्षस से छुड़ाता है और वहीं दोनों प्रणय में बँध जाते हैं। उर्वशी राजा के पास पहुँचती है, लेकिन सभी देवताओं के आदेशानुसार उसे स्वर्ग में 'लक्ष्मी स्वयंवर' नामक नाटक में अभिनय के लिए जाना पड़ता है। वहाँ 'पुरुषोत्तम' के स्थान पर पुरुरवा उच्चारण हो जाने पर वह शाप की भागिनी बनती है, लेकिन कुछ समय के लिए पुनः राजा पुरुरवा के पास आ जाती है। एक दिन विहार के समय पुरुरवा के अन्यत्र देखने पर यह कार्तिकेय वन में प्रविष्ट होकर लता बन जाती है। पुरुरवा विरह पीड़ित होकर भटकता फिरता है। अन्त में संगमनी मणि के स्पर्श से ही वह पुनः उर्वशी रूप में परिवर्तित हो जाती है। नाट्यकला की दृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण नाटक है। कालिदास की कला का इसमें रमणीयतम प्रदर्शन है।

(५) अभिज्ञानशाकुन्तलम्—कालिदास की विश्वविख्यात कृति अभिज्ञानशाकुन्तलम् संस्कृति साहित्य की ही नहीं अपितु विश्वसाहित्य की अद्वितीय रचना है। इस नाटक के सात अंकों में कालिदास ने दुष्यन्त और शकुन्तला के प्रेम वियोग और पुनर्मिलन का वर्णन किया है। इसका चित्रपट अत्यन्त व्यापक एवं समृद्ध है। एक नवयौवना निसर्गकन्या आश्रम के लतादि की कोमल बाहुओं से परिचर्या करती हुई अन्ततः राजमहिषी बन जाती है, लेकिन परिवसान तक पहुँचने में उसे अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ता है। इस प्रकार नाटक में सर्वत्र संघर्ष, अन्तर्द्वन्द्व एवं सजीवता बनी रहती है, जिसे कालिदास ने नाटकीय तत्त्वों के आधार पर नाट्यकला का उत्कृष्टतम उदाहरण प्रस्तुत किया है।

कालिदास ने इस नाटक के अन्तर्गत केवल नाटकीय तत्त्वों का चित्रण ही नहीं किया अपितु अद्वितीय कथानक, महानतम चरित्र-चित्रण, अनूठी संवाद योजना, सन्तुलित भाषा-शैली, मनोहर वाक्य-विन्यास, पाण्डित्यपूर्ण व्यंजना-व्यापार, हृदयग्राही प्रकृति-चित्रण, अनूठी अलंकार-योजना, पवित्र प्रणय-बन्धन, आह्लादक भावाभिव्यंजकता तथा मधुरतम लालित्य योजना को भी प्रस्तुत किया है। शृंगार के संयोग एवं विप्रलम्भ दोनों ही पक्ष सहृदयों को हठात् आकर्षित करने वाले हैं। यही कारण है कि 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' की भारतीय एवं पाश्चात्य सभी आलोचकों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटककार कालिदास की श्रेष्ठ नाट्य रचना है जिसके विषय में यह कथन सर्वथा सत्य है—

“काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला।
तत्रापि चतुर्थो अंकस्तत्र श्लोक चतुष्टयम्॥

(६) रघुवंशम्—कालिदास की समस्त रचनाओं में रघुवंशम् एक उत्कृष्टतम रचना है, जो संस्कृति साहित्य का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। इसलिए भारतीय आलोचकों ने कालिदास के लिए रघुकार अभिधान का प्रयोग किया है। इसके उन्नीस सर्गों में ३१ सूर्यवंशी राजाओं का यशोगान किया गया है। रघुवंशम् एक इतिवृत्तात्मक काव्य न होकर चरित्रों की चित्रशाला के समान प्रतीत होता है। प्रथम नौ सर्गों में राम के चार पूर्वजों—दिलीप, रघु, अज तथा दशरथ का वर्णन है, दस से पन्द्रह सर्गों तक राम के चरित्र को अनेक उपादानों के साथ उपस्थित किया गया है तथा अन्तिम चार सर्गों में राम के वंशजों का वर्णन मिलता है। समग्र काव्य में कालिदास की तूलिका रघु तथा राम के चरित्रों को सँवारने में सर्वाधिक रमी है। रघुवंशम् के पूर्वाद्ध में रघु का आदर्श चरित्र अत्यधिक उदात्त है तथा उत्तराद्ध में राम का।

रघुवंश की कथावस्तु कवि कल्पना प्रसूत न होकर प्राचीन आख्यान एवं ऐतिहासिक वृत्त पर आधारित है। दिलीप और सुदक्षिणा के तपोमय जीवन का, रघु की मानशीलता और उदारता का, इन्दुमती के स्वयंवर का, अज के प्रिया वियोग में करुण विलाप का, दशरथ के सत्य, पराक्रम और परायणता का, राम के अभिराम रूप का, लंका से सीता सहित विमान से यात्रा का, संगम की पवित्रता का, हृदयग्राही वर्णन कालिदास की अनुपम उत्कृष्ट कला का परिचायक है। कालिदास थोड़े से शब्दों में अत्यन्त कठिन परिस्थितियों का चित्रोपम वर्णन करने में सिद्धहस्त थे। इनकी भाषा इतनी सरल है कि साधारण संस्कृत जानने वाले आबालवृद्ध इसका रसास्वादन कर सकते हैं। कवि की भाषा सर्वत्र मधुर एवं प्रासादिक है। जहाँ-तहाँ उपमा, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास आदि अलंकार नग की तरह जड़ दिये गये हैं। उपमा के लिए तो कालिदास संस्कृत साहित्य में सर्वतोभावेन प्रसिद्ध है। रघुवंश की अनुपम उपमाओं के कारण वे दीपशिखा कालिदास कहलाये।

रघुवंशम् के अनुशीलन से स्पष्टतः प्रकट होता है कि प्रकृति रंजन के कारण राज्य की समृद्धि होती है तथा प्रकृति हिंसन के कारण राज्य का सर्वनाश होता है। रघुवंशम् के उत्तराद्ध में क्रमशः पतनोन्मुख राजचरित्रों

NOTES

(७) **कुमारसम्भवम्**—यह महाकवि कालिदास का दूसरा महाकाव्य है। इसमें कुल १७ सर्ग हैं, जिसमें उत्कृष्ट काव्यशैली के दर्शन होते हैं। इस महाकाव्य का कार्यक्षेत्र हिमालय है, जिसमें शिव, पार्वती के विवाह, कुमार कार्तिकेय की उत्पत्ति तथा तारकासुर के वध का अत्यधिक रमणीय शैली में चित्रण किया गया है। १७ सर्गों में आठ सर्ग कालिदास द्वारा रचित माने गये हैं। यह महाकाव्य कवि की शैली की रमणीयता का परिचायक है। जो कि कवि की कला की सुन्दर सृष्टि है। अपनी सुन्दर भाव व्यंजना, उदात्त एवं कोमल कल्पना तथा प्राञ्जल पद-विन्यास के कारण वह आधुनिक रुचि के विशेष अनुकूल है। कालिदास की वर्णना शक्ति 'कुमारसम्भवम्' में चार रूप से प्रकट हुई है। कहीं वसन्त का स्निग्ध मनोहर वर्णन है, कहीं वैवाहिक सौख्यों का आनन्द प्रसार पा रहा है, कहीं प्रियतम की वियोग जन्य ज्वाला चित्त को दग्ध और संसार को शून्य कर रही है। बाह्य प्रकृति का मनोरम चित्रण इस काव्य की विशेषता है।

कालिदास का काव्य-सौष्ठव

महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। महाकाव्यकार के रूप में इनकी दो ही रचनाएँ उपलब्ध हैं—प्रथम कुमारसम्भवम् और द्वितीय रघुवंशम्। इन्होंने महाकाव्य एवं गीतिकाव्यों के साथ नाटकों की भी रचना की है। समस्त कृतित्व में इनके भारतीय संस्कृति की प्रति अगाध प्रेम और प्राचीन भारतीय जीवन का दर्शन होता है।

इन्होंने अपनी काव्य प्रतिभा के कारण ही संस्कृत साहित्य में अद्वितीय स्थान प्राप्त किया है। कवि ने जिस प्रकार भाषा, भाव, कल्पना तथा वर्णन के क्षेत्र में जिस प्रतिज्ञा का निदर्शन किया है ऐसा कम कवियों को प्रतिभा में देखने को मिलता है। महाकवि कालिदास का नाम काव्य-शैली की विशेषताओं के कारण ही स्वर्णाक्षरों में अंकित है। उनकी काव्य-शैली की विशेषताओं में प्रकृति-चित्रण, रसविधान, उपमा के लिए प्रसिद्ध अलंकार विधान, रीति, गुण आदि का सुन्दर प्रस्तुतीकरण है।

भाषा-शैली—कालिदास का भाषा पर पूर्ण अधिकार है, क्योंकि उनकी भाषा सरल, सुबोध, प्रसाद गुण से परिपूर्ण है। उनकी कलात्मक तूलिका नीरस में सरसता, कर्कश में कोमलता, कठोर में सुकुमारता और प्रसाद में माधुर्य का संचार करती है। उनकी कलात्मक सुरुचि की छाप पग-पग पर दृष्टिगोचर होती है। भाषा पर उनका असाधारण अधिकार काव्य को ध्वन्यात्मक बना देता है। उनकी भाषा में क्लिष्टता तथा दुरुहता का अभाव है। पद योजना में उनकी सहजता परिलक्षित होती है। उनके शब्द प्रयोग सटीक एवं सारगर्भित होते हैं। उनकी शैली में भाषा-सौष्ठव मनोरम भावाभिव्यक्ति, अलंकारों का सहज विन्यास, रसों का सुन्दर परिपाक परिलक्षित होता है। उनके सभी ग्रन्थों में वैदर्भी शैली मिलती है। व्यंजना शक्ति की प्रधानता के कारण सभी काव्य सजीव से मालूम पड़ते हैं। भावों के चित्रण में तो कालिदास की शैली अनूठी है। इनकी शैली में कहीं उपमाओं का लालित्य है तो कहीं अर्थान्तरन्यास का अर्थ गाम्भीर्य, कहीं प्रसाद है तो कहीं माधुर्य, कहीं कला प्रधान है तो कहीं कल्पना प्रधान।

कालिदास ने भाषा-सौष्ठव, पद लालित्य पर भी पूरा ध्यान दिया है। कालिदास की भाषा की प्रमुख विशेषता यह है कि उसकी भाषा रसानुकूल होती है। प्रकरण, प्रसंग, पात्र और वर्ण्य-विषय के अनुरूप शब्दावली का संचयन मिलता है। कालिदास का शब्द-भण्डार अगाध है। उन्होंने शब्दों का सारल्य और भावों का गाम्भीर्य दोनों का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया है।

रस-विधान—काव्य का आत्मभूत तत्त्व रस है, सरस पदावली ही काव्य-रसिकों को आह्लादित करने में समर्थ हो सकती है। इस वास्तविकता से कालिदास पूर्ण परिचित थे। इसी कारण उन्होंने रसवत्ता और रस-परिपाक को पूर्ण महत्त्व दिया है। उन्होंने महर्षि वाल्मीकि द्वारा प्रवर्तित रसमयी पद्धति को ही अपने काव्यों में स्थान दिया है।

महाकवि कालिदास सभी रसों के वर्णन में अद्वितीय हैं फिर भी कालिदास के काव्य में शृंगार और वीर रसों की प्रधानता है। शृंगार और वीर रसों का विशेष रूप से वर्णन किया है। शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों के सरस एवं हृदयग्राही वर्णन मिलते हैं। वीर रस के प्रयोग में दानवीरता, धर्मवीरता एवं कर्मवीरता का मिश्रण मिलता है। मेघदूत में वियोग शृंगार का अद्वितीय चित्रण है। कुमारसंभवम् में संयोग शृंगार के सात्विक रूप में दर्शन होते हैं। रघुवंशम् के अज विलाप के प्रकरण में करुण रस अपनी सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए सहृदय पाठकों को रुलाये बिना नहीं रहता।

अलंकार-विधान—महाकवि कालिदास के काव्यों से यह ज्ञात होता है कि वे लौकिक सौन्दर्य में नैसर्गिकता को ही प्राथमिकता देते हैं, कृत्रिमता को उन्होंने सर्वथा गौण स्थान दिया है। इसलिए उन्होंने कविता वनिता को अलंकारों के बोझ से बोझिल नहीं किया है। फिर भी अलंकारों का यथास्थान विनियोग किया है। अनुप्रास के साथ ही उपमा तथा अर्थान्तरन्यास के प्रयोग में सर्वाधिक सफलता प्राप्त की है। इसलिए आलोचकों ने कालिदास को 'उपमा सम्राट्' स्वीकारा है। कालिदास ने भी अपने साहित्य में यद्यपि समस्त अलंकारों का मञ्जुल प्रयोग किया है फिर भी कवि को अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास आदि अलंकार अधिक प्रिय मालूम पड़ते हैं।

छन्द-योजना—छन्द-योजना का काव्यार्थ के उत्कर्ष में विशिष्ट स्थान है। मानव के अन्तस् भाव तरंगों का सम्बन्ध काव्य की आत्मा रस से होता है। ये मनोवेग काव्य में प्रयुक्त शब्दों की स्वरलहरी से चलायमान होते हैं। यही स्वर लहरी छन्द की आत्मा है। इस कारण रस और छन्द का घनिष्ठ सम्बन्ध कवि की कुशल काव्यकला का परिचायक है। महाकवि कालिदास ने छन्द औचित्य पर विशेष ध्यान रखा है। मेघदूत में उन्होंने मन्दाक्रान्ता का तथा कुमारसंभवम्, रघुवंशम्, अभिज्ञानशाकुन्तलम् आदि में वर्णानुकूल छन्दों में कथानक को आबद्ध किया है। इस प्रकार उचित छन्दों का प्रयोग कालिदास के काव्यों की अनुपम विशेषता है।

प्रकृति-चित्रण—कालिदास ने प्रमुख रूप से प्रकृति के भव्य, मनोरम एवं सौन्दर्य समुज्ज्वल पक्ष का उद्घाटन किया है। वे प्रकृति देवी के पुजारी हैं। मानव और प्रकृति दोनों का ही मञ्जुल सम्पर्क तथा अद्भुत एकरसता का प्रदर्शन करके महाकवि ने प्रकृति के अन्दर स्फुरित होने वाले हृदय की पहचान की है। इस प्रकार कालिदास के प्राकृतिक चित्रण ने प्रकृति को सजीव बना दिया है। इसलिए कालिदास को प्रकृति का सुकुमार कवि कहा जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

कालिदास के काव्यों में प्रकृति-चित्रण की विविधता है। वे प्रकृति के बाह्यरूप का जितना भव्य विवेचन करते हैं अन्तःप्रकृति के भी उतने ही पारखी हैं। अनुभवजन्य ज्ञान के आधार पर वे प्राकृतिक दृश्यों का सफल चित्रण करते हैं। कालिदास की निरीक्षण शक्ति अत्यन्त सूक्ष्म एवं पैनी है। उनका प्रकृति-वर्णन वैज्ञानिक होने के साथ-साथ प्रतिभा मण्डित भी है। उनके काव्य में सर्वत्र प्रकृति के रमणीय चित्र उपस्थित होते हैं। कुमारसंभव के प्रथम सर्ग में हिमालय का वर्णन प्रकृति का मनोहर दृश्य प्रस्तुत करता है।

शुभ मूर्हूर्त में शिव पार्वती का विवाह सम्पन्न होता है, इसी मंगल अवसर पर पार्वती की वेशभूषा का वर्णन सप्तम सर्ग में है। इस सर्ग में कवि ने प्रवेश के समय नगर नर-नारी की शीघ्रता तथा विवाह उत्सव का अत्यन्त रमणीय वर्णन किया है।

नवम सर्ग में शिवजी अग्नि में वीर्यस्थापन करते हैं जो उसे सहन न कर सका और इन्द्र के आदेश से स्वर्ग की गंगा में डाल देता है।

NOTES

दशम सर्ग में शिव के तेज से अग्नि संतप्त होने लगी तब उन्होंने इन्द्र से कहा कि क्या करना है। इन्द्र के गंगा स्नान के परामर्श से अग्नि ने उस शिवतेज को गंगा में प्रक्षिप्त कर दिया।

एकादश सर्ग में शिव-पार्वती की विमान यात्रा का वर्णन है। उनकी दृष्टि वेतसवन में छोड़े बालक पर पड़ती है और वह उसे अपने वीर्य से उत्पन्न समझकर ले आते हैं। वह बालक (कुमार) केवल छः दिनों की अवधि में बड़ा होकर समस्त शस्त्र एवं शास्त्रों में पारङ्गत हो जाता है।

द्वादश सर्ग में उस समय का वर्णन है जब तारक से त्रस्त होकर इन्द्रादि देवता शिव के पास आकर रक्षा की प्रार्थना करते हैं, तब उन्होंने कार्तिकेय को सेनापति बनाकर विजेता होने का उपदेश दिया।

त्रयोदश सर्ग में देवता इन्द्र के आदेश से कुमार को सेनापति बनाकर युद्ध यात्रा पर चल देते हैं।

चतुर्दश सर्ग में देव सेना के पूर्ण सुसज्जित होने और दिव्य शासनकारी अस्त्रों और शस्त्रों का विशद वर्णन है।

पन्द्रहवें सर्ग में देवताओं और असुरों के बीच युद्ध का वर्णन है जो षोडश सर्ग में भी चलता है।

सप्तदश सर्ग में कुमार द्वारा तारकासुर का वध, स्वर्ग की देवियों द्वारा कुमार पर पुष्प वर्षा का वर्णन है। देवताओं की विजय होने से स्वर्ग में आनन्द छा जाता है। इन्द्र स्वर्ग में आनन्द से रहने लगता है। यहीं पर कुमारसंभव महाकाव्य की कथा की परिसमाप्ति हो जाती है।

उपर्युक्त के आधार पर स्पष्ट है कि महाकाव्य के पहले आठ सर्गों में जितनी उत्कृष्टता, स्वाभाविकता, कोमलता और सरस शैली देखी जाती है, उतनी अन्य शेष सर्गों में नहीं जान पड़ती। अतः सिद्ध होता है कि इन सर्गों का कवित्व कालिदास जैसा नहीं कर सकता। इन सर्गों के कथानक में कोई विशेषता नहीं है।

कुमारसंभवम् के कथानक का मूल स्रोत

कालिदास विरचित 'कुमारसंभवम्' महाकाव्य में शिव और पार्वती के पुत्र कार्तिकेय की उत्पत्ति का वर्णन है। इस महाकाव्य के कथानक का मूल स्रोत महाभारत और रामायण दोनों का अध्ययन कवि कालिदास के लिए प्रेरणादायी सिद्ध हुआ है। इस महाकाव्य के स्रोत के सम्बन्ध में डॉ. ए. बी. कीथ ने वाल्मीकि रामायण की पुष्टि की है।

रामायण के किष्किन्धा वन के वर्णन में वासन्ती सौन्दर्य का जो मनोहारी चित्रण मिलता है, उससे राम की मानसपीड़ा और अधिक बढ़ जाती है। महाकवि कालिदास ने रामायण से प्रभावित होकर बालि की पत्नी तारा की निराशापूर्ण अवस्था के समान ही रीति की वियोग जन्य अवस्था को कुमारसंभव का आधार बनाया। रावणवध के आधार पर तारकासुर के वध का वर्णन भी कुमारसंभव में किया गया है।

रामायण बालकाण्ड के तेतीसवें सर्ग में उल्लेख किया है कि शिव द्वारा विवाह के पश्चात् अङ्गदेश में तपस्या की जा रही है। उस तपस्या को भंग करने के लिए कामदेव ने वहाँ पहुँचकर शिव को प्रेमलीला के प्रति आकृष्ट करने का प्रयास किया। तपस्या में विघ्न उत्पन्न करने के कारण कामदेव को शिव ने भस्म कर दिया। कालिदास ने इसी अंश को कुछ परिवर्तन के साथ कुमारसंभव के तृतीय सर्ग में निबद्ध किया है। इससे स्पष्ट होता है कि महाकवि कालिदास के कुमारसंभव महाकाव्य का आधार रामायण का बालकाण्ड ही रहा होगा। कालिदास ने रामायण की इस कथा को महाकाव्यीय रूप प्रदान करते हुए कुमारसंभव की रचना की है। कवि

ने अपने अगाध ज्ञान के आधार पर मूल कथानक में आवश्यक संशोधन, परिवर्द्धन करके एक नया रूप इस महाकाव्य के रूप में प्रस्तुत किया है।

कुमारसंभवम् एवं महाकाव्य
और गद्यकाव्य

NOTES

कुछ विद्वानों के अनुसार कुमारसंभव की कथा के प्रमुख अंशों की उपजीव्यता के लिए महाभारत को आधार माना है। कुमारसंभव के प्रथम सर्ग में प्रथम श्लोक से सत्रहवें श्लोक तक हिमालय का वर्णन है, उसी हिमालय का वर्णन महाभारत के वन पर्व में १०८/५-१२ शान्तिपर्व में ३२७/२-७ मिलता है। कुमारसंभव के प्रथमसर्ग के २२वें श्लोक में हिमालय की कन्या पार्वती का वर्णन आया है जो महाभारत के शान्तिपर्व ३४२/६२ से उद्धृत हुआ मालूम पड़ता है। इस तरह जहाँ पार्वती महाभारत में उपचर्या के लिए पार्वती के पास आती है वहीं कालिदास ने पार्वती को प्रतिदिन शिव की सेवा में संलग्न दर्शाया है। महाभारत के अनुशासन पर्व के अनुसार देवता गण तारक नामक असुर से संतप्त होकर ब्रह्मा के पास जाते हैं जहाँ वे तारक के वध का विधान ब्रह्मा से प्राप्त करते हैं इसी कथानक को परिवर्तित करके कालिदास ने कुमारसंभव के छठे सर्ग में वर्णित किया है कि तारकासुर के अत्याचार से संतुष्ट देवता-गण ब्रह्मा के पास जाकर स्तुति करते हैं। ब्रह्मा द्वारा पूछे जाने पर इन्द्र बताते हैं कि आपका वरदान पाकर तारक हम लोगों को कष्ट दे रहा है। हमें उसके आतंक से बचाकर उसके विनाश का कोई उपाय सुझाइये। ब्रह्मा ने कहा शिव पार्वती का पुत्र कुमार कार्तिकेय ही ऐसा कर सकता है। यह कथांश कुमारसंभव में शिव के विवाह के पूर्व का है, जबकि महाभारत के अनुसार यह वृत्तान्त शिव विवाह के पश्चात् का है। महाभारत के अनुशासन पर्व के १४०वें अध्याय में हिमालय पर शिव तपस्या का वर्णन है। उसी समय शिव के सामने व्रतचर्या करने वाली पार्वती स्वर्ण कलश में तीर्थों का जल संचित करके पहुँचती है। हँसती हुई पार्वती ने शिव के दोनों नेत्रों को अपने हाथों से मूँद लिया उसी समय शिव के ललाट से महती ज्वाला प्रदीप्त होती है। वह शिव का तृतीय नेत्र सूर्य के समान था जिससे हिमालय जलने लगा। इसी कथा को कुमारसंभव के तृतीय सर्ग में कालिदास ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है—जब पार्वती प्रेमपूर्वक सेवा करके शिव को प्रसन्न कर रही थी उसी समय कामदेव का प्रभाव देखकर पार्वती के सामने ही शिव ने कामदेव को भस्म कर दिया। कुछ विद्वानों के अनुसार इस महाकाव्य का कथानक शिवपुराण से लिया गया है। यहाँ उल्लेख है कि तारकासुर से त्रस्त देवताओं ने उससे बचाव का साधन जब ब्रह्मा से पूछा, तब बताया कि शिव से उत्पन्न, कुमार कार्तिकेय तारकासुर का वध कर सकेगा। ब्रह्मा के कथन को मानकर देवताओं ने शिव और पार्वती का विवाह कामदेव की सहायता लेकर चलाया और कुमार कार्तिकेय ने जन्म लेकर देव सेनापति बनकर तारकासुर का वध किया तथा देवगुण भयमुक्त हुए। इस कार्य में कामदेव शिव के क्रोध के भाजन बने।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह सत्य है कि कवि कालिदास ने काव्यात्मकता प्रदान करते हुए इन प्रसंगों की कल्पना स्वयं की है और मूल कथानक को काव्यानुरूप बनाने का सफल प्रयास किया है।

कुमारसंभवम्—एक दृष्टि में

प्रणेता	: महाकवि कालिदास।
उपाधि	: दीपशिखा कालिदास।
प्रणेता का स्थिति काल	: ई. पू. प्रथम शताब्दी से चतुर्थ शताब्दी ई. के बीच।
प्रणेता का जन्म स्थान	: चमोली (गढ़वाल) जनपद के अन्तर्गत मन्दाकिनी के पार्श्ववर्ती सिद्ध पीठ कालीमठ के सन्निकट ग्राम कविल्डा (यह मत लगभग दो दशक से उभरकर आ रहा है)।
प्रणेता का घरेलू नाम	: बन्दरू (चंचलता के कारण)।

NOTES

प्रणेता का गढ़वाली नाम	: कालू, कालीचरण, कालिका प्रसाद, कालिकादत्त।
कृतित्व	: दो खण्ड काव्य—ऋतुसंहारम् तथा मेघदूतम्, तीन नाटक—मालविकाग्निमित्रम् विक्रमोर्वशीयम्, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, दो महाकाव्य—रघुवंशम् तथा कुमारसंभवम्।
उपजीव्य	: महाभारत (कथांश का अंशतः उपजीव्य वाल्मीकि रामयण भी है शिवपुराण)।
सर्ग संख्या	: १७ सर्ग (कुछ समीक्षक ८ सर्ग भी मानते हैं)।
रस	: शृंगार रस।
छन्द	: अनुष्टुप, मालिनी, वंशस्थ, उपजाति आदि।
प्रमुख पात्र	: शिव, पार्वती, हिमालय, नारद, तारकासुर, कामदेव इन्द्र, कुमार कार्तिकेय।
कुमारसंभवम् का आरम्भ	: हिमालय वर्णन से।

कुमारसंभव के 'प्रथम सर्ग' का कथासार

इस सर्ग का प्रारम्भ हिमालय के वर्णन से होता है तथा अत्यन्त चित्रोपम एवं अनुभूतिपूर्ण है। वस्तु-वर्णन में महाकवि की निपुणता, शब्द-योजना एवं साभिप्राय अलंकारों के विन्यास में द्रष्टव्य है। पार्वती का नख-शिख वर्णन एवं प्राकृतिक वातावरण का स्वाभाविक चित्रण भी सौन्दर्य से परिपूर्ण है। इन्हीं विशेषताओं के कारण कुमारसंभव का प्रथम सर्ग काव्यत्व की दृष्टि से श्रेष्ठ माना जाता है।

प्रारम्भ में कवि उत्तर-दिशा में स्थित हिमालय का वर्णन करता है, जो उत्तर में पूर्व से पश्चिमी समुद्र तक फैला हुआ पृथ्वी के मानदण्ड की भाँति स्थित है। कवि पौराणिक कल्पना प्रस्तुत करता है कि इसी नगाधिराज को बछड़ा बनाकर और मेरु को दोग्धा बनाकर सभी पर्वतों ने पृथ्वी रूपी गाय से भास्कर रत्नों एवं महौषधियों को दुहा था। कवि हिमालय की सबसे बड़ी विशेषता हिमाच्छादन का वर्णन करता है, जो उसके सौन्दर्य को बढ़ा रही है। हिमालय अनन्त रत्नों एवं औषधियों का भण्डार है। हिमालय की गैरिक आदि धातुएँ अपने रंगों को मेघखण्डों से संक्रमण करके अपने शिखरों पर अकालसन्ध्या के समान लालिमापूर्ण दृश्य उपस्थित करती हैं। हिमालय के उच्च शिखरों के नीचे बादल चलते हैं। सूर्य के ताप की उष्णता को न सहने वाले सिद्धमण उन शिखरों पर आश्रय ग्रहण करते हैं। वहाँ किरात लोग हाथियों को मारकर रक्त से सने सिंहों के पद-चिन्ह देखकर उनके जाने के मार्ग का ज्ञान कर लेते हैं। हिमालय के शिखरों पर उत्पन्न होने वाले भोजपत्र विद्याधरों की स्त्रियों के प्रेम-पत्र लिखने के काम आते हैं। हिमालय पर बाँसों के छिद्रों में हवा भर जाने से उत्पन्न ध्वनि (वशी ध्वनि) किन्नरों की संगीत गोष्ठी में तान मिला रही है। जहाँ पर हाथियों के सिर खुजलाने के कारण देवदारु का दूध चूने से उत्पन्न गन्ध शिलाओं को सुरभित कर देती है। जहाँ पर उत्पन्न भास्वर औषधियाँ संभोगेच्छु किन्नर मिथुनों के लिए बिना तेल के सुरत-दीपक का काम करती हैं। हिमालय पर किन्नरियाँ हिम से पीड़ित हो स्वाभाविक विलासपूर्ण गति से गमन करती हैं। वह हिमालय सूर्य के भय से भयभीत उलूक पक्षी की तरह कन्दराओं से छिपे हुए अन्धकार की सूर्य से रक्षा करता है।

कवि हिमालय के वर्णन से थकता नहीं है। नवीन-नवीन कल्पनाएँ उसके उर्वर मस्तिष्क से निःसृत होती रहती हैं। वह चँवरी गायों द्वारा चाँदनी सदृश शुभ्रपूँछों के हिलाने में गिरिराज हिमालय को चँवर डुलाने की कल्पना करता है। इसी प्रकार हिमालय की कन्दराओं के द्वारों पर लटकने वाले बादल सम्भोग के समय प्रियतम

NOTES

द्वारा वस्त्र खींचे जाने से अत्यन्त लज्जित किन्नरियों के लिए परदे का काम करते हैं। हिमालय पर गंगाजी के झरनों के जलकणों के कारण शीतल पवन से देवदारु वृक्ष झूमने लगते हैं, मोर पंख फैलाकर नाचने लगते हैं और मृगों के पीछे दौड़ने से थके हुए किरात उस शीतल, मन्द और सुगन्धित पवन का सेवन करके अपनी थकान मिटाते हैं। हिमालय के ऊपरी भाग में स्थित सरोवरों के कमल सप्तर्षि अपनी आराधना के लिए तोड़ते हैं और हिमालय से नीचे चलता हुआ सूर्य ऊपर उठने वाली किरणों से कमलों को विकसित करता है। वह हिमालय पर्वत यज्ञ के साधन द्रव्यों की उत्पत्ति के कारण एवं पृथ्वी को धारण करने में पूर्ण समर्थ होने के कारण ब्रह्माजी द्वारा शैलाधिराज की पदवी से विभूषित हुआ है।

नगाधिराज हिमालय ने अपनी वंशोन्नति के लिए मेना नाम की शीलवती कन्या से शास्त्रोक्त विधि से विवाह किया, जिससे कुछ समय पश्चात् मैनाक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। इसके पश्चात् महादेव की पूर्व पत्नी दक्षसुता सती ने मेना के गर्भ से जन्म लिया। उस समय उसके जन्म के प्रभाव से दिशाएँ निर्मल हो गयीं, धूलरहित पवन प्रवाहित होने लगा और शंख ध्वनि एवं पुष्प वृष्टि होने लगी। पार्वती का जन्म चराचर प्राणियों के लिए सुखदायी बन गया। पार्वती शुक्ल पक्ष की चन्द्रकला के समान दिन-दिन बढ़ने लगी और अपने पिता की प्रिय बनी। पार्वती बाल्यकाल में मन्दाकिनी के तट पर शिशु लीलाएँ करती, कभी घरोंदे बनाती तथा कभी गुड़ियों से खेला करती थी। शैशव के पश्चात् पार्वती ने यौवन प्राप्त किया और उसका शरीर सूर्य किरण से विकसित कमल की भाँति पूर्ण रूप से निखार को प्राप्त हुआ। उसके चरणों की नूपुर ध्वनि राजहंसों के स्वर के समान थी। उसकी जाँघें हाथी की सूँड़ और केले के खम्भे से भी अधिक सुन्दर थीं। उसकी रोमावलि नीलमणि के समान नाभि में प्रविष्ट होती हुई सुन्दर प्रतीत होती थी। वेदी के समान पतली कमर वाली षोडशी पार्वती ने मध्य भाग में सुन्दर त्रिवली को मानो कामदेव के चढ़ने के लिए नवयौवन द्वारा बनाये गये सोपान के रूप में धारण किया।

पार्वती उन्नत स्तनों वाली और कण्ठ में मुक्ताहार से सुशोभित थी। उन्नत स्तनों वाली पार्वती के कण्ठ और गोल मोतियों की माला एक-दूसरे की शोभा बढ़ाने के कारण परस्पर भूषण-भूष्य भाव के समान थे। चंचल लक्ष्मी रात्रि में चन्द्रमा में कमल सुगन्ध को और दिन में कमल में चाँदनी का आह्लाद न प्राप्त कर सकी, किन्तु पार्वती के मुख को पाकर एक ही स्थान पर चन्द्रमा और कमल दोनों के गुणों को पाकर आनन्द को प्राप्त हुई। पार्वती के रक्तिम अधरों पर मन्दहास विराजमान था। उसके अमृतवर्षा मधुर वचन बोलने पर मधुर कण्ठ वाली कोयल को कूक अच्छी नहीं लगती थी। उसके नील कमल के सदृश चंचल दृष्टिपात बड़े आकर्षक थे। उसकी भूलता कामदेव के चाप के समान थी। उसकी केश-रचना को देखकर चँवरी मृगियाँ लज्जा से सिर झुका लेती थीं। पार्वती के अवयवों में ब्रह्मा जी ने समग्र सौन्दर्य को देखने की इच्छा पूर्ण की।

एक दिन स्वेच्छाचारी नारद मुनि विचरण करते हुए हिमवान के घर पहुँचे और पार्वती को देखकर कहा कि 'यह कन्या शंकर की एकमात्र अर्धांगिनी पत्नी होगी।' नारद जी के इस प्रकार कहने पर हिमालय ने पार्वती के लिए दूसरे वर की खोज नहीं की। सती की मृत्यु के पश्चात् शंकर जी विरक्त होकर तपश्चर्या में विलीन हो गये। पर्वतराज ने पार्वती को शिव जी की सेवा में नियुक्त किया। जितेन्द्रिय शिवजी ने समाधि में विघ्नकारिणी होने पर भी सेवा करती हुई पार्वती को नहीं रोका। सुकेशी पार्वती जी नित्य-प्रति पूजा के लिए पुष्प चयन करके लातीं, वेदिका को स्वच्छ रखतीं और कुश एवं जल लातीं थीं। इस प्रकार वे शिवजी की सेवा करने लगीं।

प्रथम सर्ग में काव्यत्व का उत्कृष्ट रूप विद्यमान है। इसमें शृंगार रस का मनोरम वर्णन है। हिमालय वर्णन चित्ताकर्षक है तो पार्वती का नख-शिख वर्णन भी अत्यन्त सरस है। कवि की वर्णना-शक्ति, भाव-गाम्भीर्य, रसमयता और उर्वर कल्पना-शक्ति अद्भुत है। कवि ने हिमालय का वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से मनोरम रूप में किया है। प्रथम सर्ग महाकाव्य की पूर्वपीठिका है। इसमें नायक-नायिका का परिचय प्रकृति के रमणीक सानिध्य में कराया गया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रथम सर्ग का कुमारसंभव महाकाव्य में विशेष महत्त्व है।

NOTES

कुमारसंभवम्

प्रथम सर्ग

हिमालयवर्णनम्

[1]

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।

पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः॥ 1॥

अन्वय—उत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः पूर्वापरौ तोयनिधीवगाह्य स्थितः पृथिव्या मानण्डः इव स्थितोऽस्ति।

शब्दार्थ—उत्तरस्यो दिशि = उत्तर दिशा में। देवतात्मा = देवतास्वरूप। हिमालयो नाम = हिमालय नाम का। नगाधिराजः = पर्वतों का राजा। पूर्वापरौ = पूर्व और पश्चिम। तोयनिधी = समुद्रों को। वगाह्य = प्रवेश कर। मानदण्ड इव = नापने के दण्डे की तरह। स्थितः अस्ति = वर्तमान है।

प्रसंग—यह छन्द कवि कुलगुरु कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमार सम्भव' के प्रथम सर्ग से लिया गया है। इस छन्द के माध्यम से कालिदास जी ने हिमालय पर्वत की स्थिति का वर्णन किया है।

हिन्दी अनुवाद—भारतवर्ष की उत्तर दिशा में देवताओं से अधिष्ठित पर्वतों का राजा हिमालय पूर्वी और पश्चिमी समुद्रों का अवगाहन करके पृथ्वी की लम्बाई नापने के मानदण्ड की तरह विद्यमान है।

संस्कृत व्याख्या—भारतदेशस्य उत्तरदिशायां हिमालय नाम्ना प्रसिद्धः पर्वतराजः पूर्वसागरस्य पश्चिमसागरस्य च अवगाहनं कृत्वा धरायाः मानदण्डस्य समानः तिष्ठते।

अलंकार—पूर्व एवं पश्चिम सागरों में प्रविष्ट हिमालय में पृथ्वी के मानदण्ड की सम्भावना के कारण उत्प्रेक्षा अलंकार है।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में की गयी है। उपजाति छन्द का लक्षण इस प्रकार है—

• अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयानुपजातयस्ताः।

इससे पहले जिन दो छन्दों का लक्षण कहा गया है, जिन छन्दों में उन्हीं लक्षणों वाले चरण होते हैं, वे छन्द उपजाति कहलाते हैं। इससे अर्थात् उपजाति छन्द से पहले इन्द्रवज्रा तथा उपेन्द्रवज्रा छन्दों के लक्षण दिये गये हैं। इन्द्रवज्रा तथा उपेन्द्रवज्रा छन्दों के लक्षण इस प्रकार हैं—

स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः।

(जिस छन्द के प्रत्येक चरण में दो तगण, एक जगण तथा दो गुरु होते हैं, उसे इन्द्रवज्रा छन्द कहा जाता है।)

उपेन्द्रवज्रा जतजस्ततो गौ।

(जिस छन्द के प्रत्येक चरण में जगत, तगण, जगण एवं दो गुरु वर्ण होते हैं, उसे उपेन्द्रवज्रा कहा जाता है।)

कुमारसंभव के इस पद्य में प्रथम एवं तृतीय चरणों में इन्द्रवज्रा छन्द है तथा द्वितीय और चतुर्थ चरणों में उपेन्द्रवज्रा छन्द है।

NOTES

[2]

यं सर्वशैलाः परिकल्प्य वत्सं मेरौ स्थित दोग्धरि दोहदक्षे।

भास्वन्ति रत्नानि महोषधींश्च पृथूपदिष्टां दुदुहूर्धरित्रीम्॥ 2॥

अन्वय—सर्वशैलाः यं वत्सं परिकल्प्य दोहदक्षे मेरौ दोग्धरि स्थिते पृथूपदिष्टां धरित्रीम् भास्वन्ति रत्नानि महोषधीन्ः च दुदुहुः।

शब्दार्थ—सर्वशैलाः = सभी पर्वतों ने। यम् = जिसको। वत्सम् = बछड़ा। परिकल्प्य = बनाकर। दोहदक्षे = दोहनकर्म में कुशल। मेरौ = मेरु पर्वत को। दोग्धरि = दूध दुहने वाला। स्थिते = होने पर। पृथूपदिष्टाम् = राजा पृथु के द्वारा बतायी हुई। धरित्रीम् = पृथिवी को। दुदुहुः = दुहा।

प्रसंग—यह छन्द कविकुलगुरु महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसंभव' के प्रथम सर्ग से लिया गया है। इस छन्द के माध्यम से कालिदास जी ने धरती के दोहन में हिमालय को बछड़ा बनाये जाने की कल्पना प्रस्तुत की है।

हिन्दी अनुवाद—जिस हिमालय को सभी पर्वतों ने बछड़ा बनाकर तथा दोहन की क्रिया में कुशल मेरु पर्वत के दूध दुहने वाले होने पर राजा पृथु द्वारा उपदेश का आधार बनायी हुई धरती से प्रकाश करते हुए रत्नों तथा महती औषधियों को दुहा।

संस्कृत व्याख्या—यं हिमगिरिं सकलैः पर्वतैः गोवत्सं कृत्वा गोदोहनक्रियायां कुशले मेरुपर्वते दोहनकर्मणि स्थिते पृथुनरेशस्योपदेशानुसारं धरायाः प्रकाशमयानि रत्नानि महत्यः औषध्ययदः दोहनेन प्राप्ताः।

अलंकार—इस छन्द में रत्नों तथा औषधियों का एक ही धर्म दोहनक्रिया से सम्बन्ध होने के आधार पर तुल्योगिता अलंकार है।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है।

[3]

अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य हिमं न सौभाग्यविलोपि जातम्।

एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्द्रोः किरणेष्विवांकः॥ 3॥

अन्वय—अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य हिमं सौभाग्यविलोपि न जातम्। हि एको दोषो गुणसन्निपाते इन्द्रोः किरणेषु अंक इव निमज्जति।

शब्दार्थ—अनन्तरत्नप्रभवस्य = असंख्य रत्नों को उपदेश करने वाले। यस्य = जिसका। हिमम् = बर्फ। सौभाग्यविलोपि = सौन्दर्य का नाश करने वाला। न जातम् = नहीं हुआ। इन्द्रोः = चन्द्रमा की। किरणेषु = किरणों में। अंकः इव = कलंक के समान। निमज्जति = छिप जाता है।

प्रसंग—यह छन्द कविकुलगुरु कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमार सम्भव' के प्रथम सर्ग से लिया गया है। इस श्लोक के माध्यम से कालिदास जी ने हिम (बर्फ) को हिमालय की शोभा नष्ट करने में असमर्थ बताया है।

NOTES

हिन्दी अनुवाद—असंख्य रत्नों को उत्पन्न करने वाले हिमालय के सौन्दर्य को बर्फ नष्ट नहीं कर सका, क्योंकि गुणों में एक दोष चन्द्रमा की किरणों में कलंक के समान छिप जाता है।

संस्कृत व्याख्या—हिमालयः अन्तहीनानां रत्नानाम् उत्पत्तिस्थानं वर्तते। तस्मिन् तुषारस्य बहुलता अस्ति। तत् तुषारं तथैव हिमालयस्य सौभाग्यस्य नाशकः भवितुं न अभवत्, यथा चन्द्रस्य रश्मिसमूहेषु एकाकी कलंकोऽन्तर्लीनो भवति।

अलंकार—किरणेष्विवांकः में उपमा अलंकार है। यहाँ हिमालय उपमेय तथा चन्द्रमा उपमान है। इव उपमा वाचक शब्द है। पूर्वार्द्ध के विशेष कथन का उत्तरार्द्ध के सामान्य कथन से समर्थन होने के कारण यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है।

[4]

यश्चाप्सोविभ्रममण्डनानां संपादयित्री शिखरैर्विभर्ति।

बलाहकच्छेदविभक्तरागामकालसंध्यामिव धातुमत्ताम् ॥ 4 ॥

अन्वय—यः च अप्सरोविभ्रममण्डनानां सम्पादयित्री बलाहकच्छेदविभक्तरागां धातुमत्ताम् अकालसन्ध्याम् इव शिखरैः विभर्ति।

शब्दार्थ—यः = जो हिमालय। च = और। अप्सरोविभ्रममण्डनानाम् = अप्सराओं के विलास अर्थात् क्रीडामय अलंकरणों अर्थात् सौन्दर्य प्रसाधनों के। सम्पादयित्रीम् = सम्पादन करने वाली को, पूर्ण करने वाली को। बलाहकच्छेदविभक्तरागम् = मेघ खण्डों अर्थात् बादलों के टुकड़ों में रंगों का संक्रमण करने वाली को। धातुमत्ताम् = सिन्दूर, गेरु आदि धातुओं की सम्पत्ति को, धातुओं के मेल को। अकालसन्ध्याम् इव = असमय हुई साँझ के समान। शिखरैः = शृंगों से, चोटियों से। विभर्ति = धारण करता है।

प्रसंग—यह छन्द कविकुलगुरु कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमार सम्भव' के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। इस छन्द के माध्यम से कालिदास जी ने हिमालय के शिखरों की शोभा का वर्णन किया है।

हिन्दी अनुवाद—जो हिमालय अप्सराओं के विलासपूर्ण प्रसाधनों का सम्पादन करने वाली तथा बादलों के टुकड़ों में लालिमा का संक्रमण करने वाली सिन्दूर, गेरु आदि धातुओं को असमय उपस्थित साँझ के समान अपने शिखरों के द्वारा धारण करता है।

संस्कृतव्याख्या—यः हिमालय देवांगनानां विलासपूर्णशृंगारस्य सम्पादयित्री मेघखण्डेषु च रक्तवर्णस्य संक्रमणकारयित्री सिन्दूरगैरिकादिधातुसम्पदम् असमय प्राप्तसंध्यावेलाम् इव धारयति।

अलंकार—अकालसन्ध्याम् इव में सन्ध्या शब्द के जातिवाचक होने के कारण इस छन्द में जाति-उत्प्रेक्षा अलंकार है।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है।

आमेखलं संचरतां घनानां छायामधः सानुगतां निषेव्य ।
उद्वेजिता वृष्टिभिराश्रयन्ते शृंगाणि यस्यातपवन्ति सिद्धाः ॥ 5 ॥

NOTES

अन्वय—सिद्धाः आमेखलं सञ्चरताम् घनानाम् अधः सानुगताम् छायाम् निषेव्य वृष्टिभिः उद्वेजिताः यस्य आतपवन्ति शृंगाणि आश्रयन्ते ।

शब्दार्थ—सिद्धाः = सिद्ध पुरुष, सिद्ध देवजाति के पुरुष । आमेखलम् = मेखला अर्थात् मध्यभाग तक । सञ्चरताम् = संचरण करते हुआ की, चलते हुआ की । घनानाम् = मेघों के, बादलों की । अधःसाधानुगताम् = शिखरों के नीचे स्थित । छायाम् = छाया को । निषेव्य = सेवन करके । छायां निषेव्य = छाया का सेवन करके । वृष्टिभिः = वर्षाओं से, अधिक मात्रा में हुई वर्षा से । उद्वेजिताः = व्याकुल, उद्विग्न । यस्य = जिसके, जिस हिमालय के । आतपवन्ति = आतप वाले, धूप घाम वाले । शृंगाणि आश्रयन्ते = शिखरों अर्थात् चोटियों का आश्रय लेते हैं ।

प्रसंग—यह छन्द कविकुलगुरु महाकवि कालिदास के द्वारा रचित महाकाव्य 'कुमारसम्भव' के प्रथम सर्ग से उद्धृत है । इसमें कवि ने सिद्धजनों के हिमालय पर्वतों की चोटियों में आश्रय के सम्बन्ध में बताया है ।

हिन्दी अनुवाद—सिद्धजन अथवा सिद्धजाति के पुरुष जिस हिमालय की मेखला अर्थात् मध्यभाग तक विचरण करने वाले मेघों की पर्वत की चोटी के नीचे वाली छाया का सेवन करके मेघों की अधिक वर्षा से व्याकुल होकर हिमालय की घाम वाली चोटियों का आश्रय लेते हैं ।

संस्कृत व्याख्या—सिद्धजनाः सिद्धजातिदेव विशेषस्य पुरुषाः वा यस्य हिमालस्य मेखलापर्यन्तं मध्यभागपर्यन्तं वा विचरणं कुर्वतां मेघानां पर्वतशिखरस्य मध्यवर्तिन्याः छायायाः सेवनं कृत्वा वृष्टिभिः व्याकुलाः भूत्वा तस्य हिमगिरेः आतपयुक्तानां शिखराणाम् आश्रयं स्वीकुर्वन्ति ।

अलंकार—इस छन्द में दो स्थानों पर परिकर अलंकार है । वृष्टिभिः उद्वेजिताः वाक्यांश सिद्धाः पद का तथा आतपवन्ति पद सिद्धाः का विशेषण है । इन दोनों विशेषणों का प्रयोग साभिप्राय है । परिकर अलंकार विशेषण के साभिप्राय प्रयोग पर ही होता है ।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है ।

[6]

पदं तुषारस्तुति धौतरक्तं यस्मिन्नदृष्ट्वापि हतद्विपानाम् ।
विदन्ति मार्गं नखरन्ध्रमुक्तैर्मुक्ताफलैः केसरिणां किराताः ॥ 6 ॥

अन्वय—यस्मिन् किराताः तुषारस्तुतिधौतरक्तं हतद्विपानां केसरिणां पदम् अदृष्ट्वा अपि नखरन्ध्रमुक्तेः मुक्ताफलैः मार्गं विदन्ति ।

शब्दार्थ—यस्मिन् = जिस हिमालय पर्वत पर । किराताः = शबर जाति के लोग । तुषारस्तुतिधौतरक्तम् = पिघले हुए बर्फ के बहाव से धुले हुए रक्त वाले को । हतद्विपानाम् = हाथियों को मारने वालों के । केसरिणाम् = सिंहों के । मार्गम् = मार्ग को । नखरन्ध्रमुक्तैः = नाखूनों के छेदों से निकले हुए । अदृष्ट्वाऽपि = न देखकर भी । मुक्ताफलैः = मोतियों के द्वारा । विदन्ति = जान लेते हैं ।

प्रसंग—यह छन्द कविकुलगुरु कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमार सम्भव' के प्रथम सर्ग से उद्धृत है । इस छन्द के माध्यम से कवि कालिदास ने हाथियों को मारने वाले सिंहों का मार्ग जानने का वर्णन किया है ।

हिन्दी अनुवाद—जिस हिमालय पर किरात जाति के पुरुष बर्फ पिघलने के कारण हाथियों को मारने वाले सिंहों के पदचिह्नों का रक्त धुल जाने के कारण उनके मार्ग को उन सिंहों के नखों के छेदों से गिरे हुए गजमुक्ताओं के द्वारा उनके जाने के मार्ग को जान लेते हैं।

NOTES

संस्कृत व्याख्या—यस्मिन् हिमालयपर्वते किरातजातेः पुरुषाः गजमारण समार्थानां सिंहानां गमनमार्गं तेषां पगचिह्नानां रक्तस्य चिह्नं तुषारस्तुत्वा धौतेऽपि सिंहानां नखानां छिद्रेभ्यः मुक्ताफलैः जानन्ति।

अलंकार—यहाँ अलौकिक रत्न गजमुक्ताओं के वर्णन से उदात्त अलंकार है।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपेन्द्रवज्रा छन्द में हुई है।

[7]

न्यस्ताक्षरा धातुरसेन यत्र भूर्जत्वचः कुञ्जरबिन्दुशोणा।

ब्रजन्ति विद्याधरसुन्दरीणां अनंगलेखक्रिययोपयोगम् ॥ 7 ॥

अन्वय—यत्र धातुरसेन न्यस्ताक्षराः कुञ्जरबिन्दुशोणाः भूर्जत्वचः विद्याधर सुन्दरीणाम् अनंगलेखक्रियया उपयोगम् व्रजन्ति।

शब्दार्थ—यत्र = जहाँ, 'जिस हिमालय पर। **धातुरसेन** = सिन्दूर, गेरू आदि धातुओं के रस से। **न्यस्ताक्षराः** = जिन पर अक्षर लिखे गये हैं। **कुञ्जरबिन्दु शोणाः** = हाथी के मस्तक पर रचित बिन्दुओं के समान लाल। **भूर्जत्वचः** = भोजवृक्ष की छाल। **विद्याधरसुन्दरीणाम्** = विद्याधर नाम की देवजाति की सुन्दर स्त्रियों के। **अनंगलेखक्रियया** = कामपत्र अथवा प्रेमपत्र को लिखने की क्रिया के द्वारा। **उपयोगम्** = उपयोग को प्राप्त होते हैं, उपयोग किये जाते हैं।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसम्भव' के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। कालिदास जी ने इस छन्द के द्वारा हिमालय पर्वत पर होने वाले भोजपत्र की उपयोगिता का वर्णन किया है।

हिन्दी अनुवाद—जिस हिमालय पर्वत पर सिन्दूर, गेरू आदि धातुओं के रस से लिखे अक्षरों से युक्त हाथियों के मस्तकों पर बने कमल के बिन्दुओं के समान लाल रंग के भोजपत्र विद्याधर जाति की सुन्दरियों के प्रेमपत्र लिखने की क्रिया के उपयोग में आते हैं।

संस्कृत व्याख्या—यस्मिन् हिमालयपर्वते सेन्दूरगैरिकदिधातूनां रसेन लिखितैः अक्षरैः युक्तानां गजानां मस्तकेषु निर्मितानां कमलबिन्दूनां समतुल्यैः रक्तवर्णस्य भूर्जपत्रौणि विद्याधरदेव जातिविशेषायाः सुन्दरीणां प्रेमपत्रलेखनस्य क्रियायाः उपयोगं प्राप्नुवन्ति।

अलंकार—कुञ्जरबिन्दुशोणाः में लुप्तोपमा अलंकार है। यहाँ उपमा के वाचक शब्द इव का लोप हो रहा है।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है।

[8]

यः पूरयन्कीचकरन्ध्रभागान्दरीमुखोत्थेन समीरणेन।

उद्गास्यतामिच्छति किन्नराणां तानप्रदायित्वमिवोपगन्तुम् ॥ 8 ॥

अन्वय—यः दरीमुखोत्थेन समीरणेन कीचकरन्ध्रभागान् उद्गास्यतां किन्नराणां तानप्रदायित्वम् इच्छति इव।

NOTES

शब्दार्थ—यः = जो हिमालय। **दरीमुखोत्थेन** = गुफा रूपी मुख से उठे हुए। **समीरेन** = पवन के द्वारा। **कीचकरन्ध्रभागान्** = बाँस के छेदों के भागों को। **पूरयन्** = पूर्ण करता हुआ, भरता हुआ। **उद्गास्यताम्** = उच्च स्वर से गाने के इच्छुकों को। **किन्नराणाम्** = किन्नर जाति विशेष के पुरुषों की। **तानप्रदायित्वम्** = तान देने की भावना को। **उपगन्तुम्** = जाने के लिए। **इच्छति इव** = इच्छा सी करता है। मानो इच्छा करता है।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसंभव' के प्रथम सर्ग से लिया गया है। कालिदास जी ने इस छन्द के द्वारा हिमालय पर्वत पर खड़े बाँसों के छिद्रों से निकलने वाले पवन का वर्णन किया है।

हिन्दी अनुवाद—जो हिमालय गुफारूपी मुख से उत्पन्न वायु के द्वारा बाँसों के छिद्रों को पूर्ण करता हुआ उच्च स्वर से गायन करने के इच्छुक किन्नरजाति विशेष के पुरुषों को मानो तान देने की इच्छा करता है।

संस्कृत व्याख्या—यः हिमालयपर्वतः गुहारुपिमुखेन उत्पन्नेन पवनेन वेणूनां वंश विशेषाणां छिद्राणि पूर्णानिकुर्वन् उच्चस्वरेण गानं कर्तुमिच्छुकान् किन्नजातेः पुरुषान् तानप्रदानस्य इच्छामिव करोति।

अलंकार—गुहामुखोत्थेन में रूपक अलंकार है। यहाँ गुहा पर मुख का आरोप किया गया है।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है।

[9]

**कपोलकण्डूः करिभिर्विनेतुं विघट्टितानां सरलद्रुमाणाम्।
यत्रस्तुतक्षरितया प्रसूतः सानूनि गन्धः सुरभीकरोति।। 9।।**

अन्वय—यत्र करिभिः कपोलकण्डूः विनेतुं विघट्टितानां सरलद्रुमाणां स्तुतक्षीरतया प्रसूतः गन्धः सानूनि सुरभीकरोति।

शब्दार्थ—यत्र = जहाँ, हिमालय पर्वत पर। **करिभिः** = हाथियों के द्वारा। **कपोलकण्डूः** = गाल की, गण्डस्थल की खुजली की। **विनेतुम्** = दूर करने के लिए, समाप्त करने के लिए। **विघट्टितानाम्** = घर्षण किये गये, रगड़े गये। **सरलद्रुमाणाम्** = देवदारु वृक्षों के। **स्तुतक्षीरतया** = टपकते हुए अथवा रिसते हुए दूध के कारण। **प्रसूतः** = उत्पन्न। **गन्धः** = सौरभ। **सानूनि** = शिखरों को। **सुरभीकरोति** = सुगन्धित करता है।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसंभव' के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। इस छन्द के माध्यम से कालिदास जी ने देवदारु के क्षीर अर्थात् रस से हिमालय के शिखरों के सुगन्धित होने का वर्णन किया है।

हिन्दी अनुवाद—जहाँ अर्थात् जिस हिमालय पर्वत पर हाथियों द्वारा अपने कपोलों की खुजली समाप्त करने के लिए रगड़े गये देवदारु वृक्षों से रिसने वाले दूध जैसे श्वेतवर्ण के रस से उत्पन्न सुगन्ध शिखरों को सुगन्धित करता है।

संस्कृत व्याख्या—यस्मिन् हिमालये हस्तेभिः स्वकीयानां कपोलानां पामा अपनेतुं घर्षितानां देवदारुवृक्षाणां सम्बन्धिभ्यः निःसृतेः दयाः रसः आरकेयाः उत्पन्नः पर्वत शिखराणि सुगन्धितानि करोति।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है।

वनेचराणां वनितासखानां दरीगृहोत्संगनिषक्तभासः ।

NOTES

भवन्ति यत्रौषधयो रजन्यामतैलपूराः सुरतप्रदीपाः ॥ 10 ॥

अन्वय—यत्र रजन्यां दरीगृहोत्संगनिषक्तभासः औषधयः वनितासखानां वनेचराणां अतैलपूराः सुरतप्रदीपाः भवन्ति ।

शब्दार्थ—यत्र = जहाँ, जिस हिमालय पर । रजन्याम् = रात्रि में । दरीगृहोत्संगनिषक्तभासः = गुफा रूपी घर के भीतर फैले हुए प्रकाश वाली । औषध्यः = औषधियाँ । वनितासखानाम् = पत्नियों के मित्रों के, उनके साथ रमण करने वालों के । वनेचराणाम् = वनवासियों के । अतैलपूराः = तेल से बिना भरे हुए, तेल रहित । सुरतप्रदीपाः = मैथुनकाल के दीपक । भवन्ति = होते हैं ।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसम्भव' के प्रथम सर्ग से उद्धृत है । इस छन्द के माध्यम से कालिदास जी ने औषधियों द्वारा गुफाओं में रात के समय प्रकाश करने का वर्णन किया है ।

हिन्दी अनुवाद—जहाँ अर्थात् जिस हिमालय पर रात्रि में गुफा रूपी गृहों के भीतर प्रकाश करती हुई औषधियाँ पत्नियों सहित रहने वाले वनवासियों के लिए बिना तेल के संभोगकालीन दीपक बन जाते हैं ।

संस्कृत व्याख्या—यस्मिन् हिमालयपर्वतं रात्रौ गुहारुपिषु भवनेषु प्रकाशं कुर्वन्त्यः औषधयः सपत्नीकानां वनवासिनां कृते तैलरहिताः संभोगकालीन दीपकाः जायन्ते ।

अलंकार—यहाँ औषधियों पर दीपकों का आरोप होने के कारण वे सम्भोग में उपयोगी हो गये हैं । इस आधार पर यहाँ परिणाम अलंकार है ।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है ।

[11]

उद्वेजयत्यङ्गुलिपार्ष्णिभागान्मार्गे शिलीभूतहिमेऽपि यत्र ।
न दुर्वहश्रोणिपयोधरार्ता भिन्दन्ति मन्दां गतिमश्वमुख्यः ॥ 11 ॥

अन्वय—यत्र शिलीभूतहिमे अङ्गुलिपार्ष्णिभागान् उद्वेजयति अपि मार्गे श्रोणि-पयोधरार्ता अश्वमुख्यः मन्दां गतिं न भिन्दन्ति ।

शब्दार्थ—यत्र = जहाँ, जिस हिमालय पर । शिलीभूतहिमे = पत्थर की शिला के समान बन गये बर्फ वाले पर । अङ्गुलिपार्ष्णिभागान् = अँगुलियों तथा तलवों के भागों को । उद्वेजयति = व्याकुल करने वाले पर । मार्गे = मार्ग पर । अपि = भी । दुर्वहश्रोणिपयोधरार्ताः = कठिनाई से वहन करने योग्य नितम्बों एवं स्तनों के कारण दुःखी । अश्वमुख्यः = किन्नरियाँ, घोड़ों के समान मुखों वाली । मन्दाम् = मन्द, मन्थर । गतिम् = चाल को । न = नहीं । भिन्दन्ति = त्यागती हैं ।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसम्भव' के प्रथम सर्ग से लिया गया है । कालिदास जी ने इस छन्द के माध्यम से जमे हुए बर्फ पर मन्द गति से चलने वाली किन्नरियों का वर्णन किया है ।

हिन्दी अनुवाद—जिस हिमालय पर पत्थर के समान जमी हुई बर्फ पैरों की उँगलियों एवं तलवों के द्वारा क्लेश पहुँचाने वाले मार्ग में भी वहन करने में कठिन नितम्बों एवं स्तनों से पीड़ित किन्नरियाँ अपनी मन्द गति का त्याग नहीं करती हैं।

कुमारसंभवम् एवं महाकाव्य
और गद्यकाव्य

NOTES

संस्कृत व्याख्या—यस्मिन् हिमालये पाषाणवत् सघनं हिमं चरणानाम् अंगुलीः तलान् च क्लेशयति, मार्गेऽपि दुर्वहैः नितम्बैः स्तनैश्च पीड़िताः किन्नर्यः मन्दां गगन क्रियां न त्यजन्ति।

अलंकार—यहाँ श्रोणिपयोधरार्त्ताः पद में हेतु छिपा है। यह हेतुगर्भ विशेषण है। इस आधार पर यहाँ काव्यलिंग अलंकार है।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है।

[12]

दिवाकराद्रक्षति यो गुहासु लीनं दिवाभीतमिवान्धकारम्।
क्षुद्रेऽपि नूनं शरणं प्रयन्ने ममत्वमुच्चैः शिरसां सतीव ॥ 12 ॥

अन्वय—यः दिवाभीतमिव गुहासु लीनं अन्धकारं दिवाकरात् रक्षति, उच्चैः शिरसां शरणं प्रपन्ने क्षुद्रेऽपि सति इव नूनं ममत्वम्।

शब्दार्थ—यः = जो हिमालय। दिवाभीतम् = दिन में डरे हुए को। इव = समान। गुहासु = गुफाओं में, कन्दराओं में। लीनम् = छिपे हुए को। अन्धकारम् = अन्धकार को। दिवाकरात् = सूर्य से। रक्षति = रक्षा करता है। उच्चैः शिरसाम् = ऊँचे शीश वालों की, महापुरुषों की। शरणम् = शरण में, आश्रय में। प्रपन्ने = आये हुए पर। क्षुद्रेऽपि = नीच व्यक्तियों के प्रति भी, सामान्यों पर भी। सति इव = सज्जनों पर होने के समान। नूनम् = निश्चय ही, निश्चित रूप से। ममत्वम् = अपनापन होता है, आत्मीयता होती है।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसंभव' के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। कालिदास जी ने इस छन्द के माध्यम से हिमालय का महत्व रेखांकित किया है।

हिन्दी अनुवाद—जो हिमालय दिन में भयभीत की भाँति गुफाओं में छिपे हुए अन्धकार की सूर्य से रक्षा करता है। शरण में आये हुए तुच्छ व्यक्तियों के प्रति भी महापुरुषों में सज्जनों के समान आत्मीयता हो जाती है। तात्पर्य यह है कि महापुरुष शरण में आये हुए सज्जन को जितना आत्मीय समझते हैं, उतना ही तुच्छ के प्रति भी अपनापन रखते हैं।

संस्कृत व्याख्या—यो हिमालयः दिवसात् भयभीतसमानम् स्वकीयाम् कन्दरासु प्रविष्टं ध्वान्तं सूर्यात् त्रायते। कन्दरासु प्रविष्टस्य अन्धकारस्य सूर्यात् रक्षा करोति इति भावः। उच्चशिरो भागानां महापुरुषाणां यः तुच्छः शरणं प्राप्नोति तं प्रति ते सज्जनः तुल्याम् आत्मीयतां कुर्वन्ति।

अलंकार—पूर्वार्द्ध के विशेष कथन का समर्थन उत्तरार्द्ध के सामान्य कथन से होने के कारण इस छन्द में अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है।

[13]

लाङ्गूलविक्षेपसिर्पिशोभैरितस्ततश्चन्द्रमरीचिगौरैः।
यस्यार्थयुक्तं गिरिराजशब्दं कुर्वन्ति बालव्यजनैश्चमर्यः ॥ 13 ॥

अन्वय—चमर्यः इतस्ततः लाङ्गूल विक्षेपविसर्पिशोभैः चन्द्रमरीचिगौरैः बालव्यजनैः गिरिराजशब्दमर्थवन्तं कुर्वन्ति।

NOTES

शब्दार्थ—चमर्यः = चमरी नाम की गायें। इतस्ततः = इधर-उधर। लाङ्गूल विक्षेप विसर्पिशोभैः = पूँछ को हिलाने से विस्तृत शोभा वालों से। चन्द्रमरीचिगौरैः = चन्द्रमा की किरणों के समान श्वेतों के द्वारा। बालव्यजनैः = बालों रूपी व्यंजनों के द्वारा। यस्य = जिस हिमालय के। गिरि राजशब्दम् = पर्वतराज नाम को। अर्थयुक्तम् = सार्थक। कुर्वन्ति = करती हैं।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसंभव' के प्रथम सर्ग से लिया गया है। इस छन्द के माध्यम से कालिदास जी ने चमरी गायों के पूँछ हिलाने से हिमालय के पर्वतराज होने की सार्थकता सिद्ध की है।

हिन्दी अनुवाद—चमरी नाम की वनगायें इधर-उधर अपनी पूँछों को हिलाने से शोभा की वृद्धि करने वाले तथा चन्दा की किरणों के समान श्वेत रंग के चँवररूपी व्यंजनों से जिस हिमालय के गिरिराज शब्द को सार्थक करती हैं।

विशेष—राजा जब सिंहासन पर बैठते हैं, तब उनके दोनों ओर चँवर हिलाये अथवा डुलाये जाते हैं। चमरी गायों की अत्यधिक श्वेत रंग की पूँछ चँवर है। इससे हिमालय का भी पर्वतराज होना स्पष्ट है।

संस्कृत व्याख्या—चमरी संज्ञकाः गावः इतस्ततः स्वकीया नि पुच्छानि गतिशीलानि कुर्वत्यः शोभायाः वृद्धिकारकानां पुच्छानां शशिकिरणतुल्य गौरवर्णैः चँवररूपैः व्यजनैः यस्य हिमालयगिरेः पर्वतराज शब्दं सार्थकं कुर्वन्ति।

अलंकार—'चन्द्रमरीचिगौरैः' में वाचक शब्द 'इव' का लोप होने से लुप्तोपमा तथा गिरिराज शब्द की सार्थकता का हेतु होने के कारण काव्यलिंग अलंकार है।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है।

[14]

यत्रांशुकाक्षेपविलज्जितानां यदृच्छया किंपुरुषांगनानाम्।
दरीगृहद्वारविलबिम्बा स्तिरस्करिण्यो जलदाः भवन्ति॥ 14॥

अन्वय—यत्र अंशुकाक्षेपविलज्जितानां किं पुरुषांगनानाम् यदृच्छया दरीगृहद्वारविलम्बि—बिम्बा जलदाः तिरस्करिण्यः भवन्ति।

शब्दार्थ—यत्र = जहाँ, हिमालय पर्वत पर। अंशुकाक्षेपविलज्जितानाम् = वस्त्र के खींचे जाने से विशेष लज्जितों के। किम्पुरुषांगनानाम् = किम्पुरुषों की नारियों के अर्थात् किन्नरियों के। यदृच्छया = अकस्मात्, दैवगति से। दरीगृहद्वारविलम्बि बिम्बाः = गुफा रूपी घर के द्वार पर लटकते हुए शरीर वाले। जलदाः = मेघ समूह। तिरस्करिण्यः = परदे, जवनिका। भवन्ति = हो जाते हैं, बन जाते हैं।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसंभव' के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। इस छन्द के माध्यम से कालिदास जी ने बादलों के गुफारूपी द्वार पर दैवगति से पर्दा बन जाने का वर्णन किया है।

हिन्दी अनुवाद—जिस हिमालय पर्वत पर संभोग के समय प्रियतमों द्वारा वस्त्र खींचने से लज्जित किन्नरियों के हेतु गुफारूपी घर के द्वार पर लटकते मण्डलों वाले बादल दैवगति से पर्दा बन जाते हैं।

संस्कृत व्याख्या—यस्मिन् हिमालयपर्वते प्रियतमैः वस्त्राकर्षणजनित लज्जायुक्तानां किन्नरीणां दैवगत्या कन्दराभवनद्वारेऽवलम्बमानः शरीराः मेघाः जवनिकाः जायन्ते ।

कुमारसंभवम् एवं महाकाव्य
और गद्यकाव्य

अलंकार—यहाँ मेघ पर जवनिका का अर्थात् पर्दे का आरोप होने से रहस्यगोपन रूप कार्य का वर्णन होने से परिणाम अलंकार है।

NOTES

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है।

[15]

भागीरथीनिर्झरसीकराणां वोढा मुहुः कम्पितदेवदारुः ।
यद्वायुरन्विष्टमृगैः किरातैरासेव्यते भिन्नशिखण्डिबर्हः ॥ 15 ॥

अन्वय—भागीरथीनिर्झरसीकराणां वोढा मुहुः कम्पितदेवदारुः भिन्नशिखण्डिबर्हः यद्वायुः अन्विष्टमृगैः किरातैः आसेव्यते ।

शब्दार्थ—भागीरथीनिर्झरसीकराणाम् = गंगा के जल प्रपात के जल बिन्दुओं का। वोढा = वहन करने वाला, ढोने वाला। मुहुः = बार-बार। कम्पित देवदारुः = देवदारु के वृक्षों को कँपाने वाला। भिन्नशिखण्डिबर्हः = मोरों के पंखों को अलग-अलग करने वाला। यद्वायुः = जो पवन। अन्विष्टमृगैः = हरिणों का अन्वेषण करने वाले, हिरणों को खोजने वाले। किरातैः = शबरों के द्वारा। आसेव्यते = भली-भाँति सेवन किया जाता है।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसंभव' के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। कालिदास जी ने इस छन्द के माध्यम से गंगा के झरने की बूँदों को ढोने वाली वायु का वर्णन किया है।

हिन्दी अनुवाद—गंगा के झरनों की बूँदों को ढोने वाले, बार-बार देवदारु वृक्षों को कँपाने वाले तथा मोरों के पंखों को अलग-अलग करने वाला पवन, हिरणों को खोजने वाले शबर जाति के पुरुषों के द्वारा भलीभाँति सेवन किया जाता है।

संस्कृत व्याख्या—गंगासरितायाः निर्झराणां लघुजलबिन्दूनां वाहकः बारम्बारं देवदारुवृक्षाणां प्रकम्पकः मयूराणां पक्षाणां विलगकर्ता पवनः मृगाणाम् अन्वेषणकर्तृभिः शबरजातेः पुरुषैः सम्यग्रूपेण सेव्यते ।

अलंकार—यहाँ पर पवन एवं किरातों का स्वाभाविक वर्णन होने के कारण स्वाभावोक्ति अलंकार है।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है।

[16]

सप्तर्षिहस्तावचितावशेषाण्यधो विवस्वान्परिवर्तमानः ।
पद्मानि यस्याग्रसरोरुहाणि प्रबोधयत्यूर्ध्वमुखैर्मयूखैः ॥ 16 ॥

अन्वय—सप्तर्षिहस्ताऽवचितावशेषाणि यस्य अग्रसरोरुहाणि पद्मानि अधः परिवर्तमानः विवस्वान् उर्ध्वमुखैः मयूखैः प्रबोधयति ।

शब्दार्थ—सप्तर्षिहस्तावचितावशेषाणि = सप्तर्षियों के हाथों द्वारा तोड़े जाने के पश्चात् बचे हुए। यस्य = जिसके, जिस हिमालय के। अग्रसरोरुहाणि = ऊपर के भाग के सरोवरों में उत्पन्न। पद्मानि = कमलों को। अधः = नीचे। परिवर्तमानः = भ्रमण करता हुआ। विवस्वान् = सूर्य। ऊर्ध्वमुखैः = ऊर्ध्वगामी, ऊपर की ओर उठने वाली। मयूखैः = किरणों के द्वारा। प्रबोधयति = जगाता है, विकसित करता है।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसम्भव' के प्रथम सर्ग से लिया गया है। कालिदास जी ने इस पद्य के माध्यम से हिमालय के ऊर्ध्व भाग के सरोवरों के कमलों के खिलने का वर्णन किया है।

NOTES

हिन्दी अनुवाद—सप्तर्षियों के द्वारा तोड़े जाने के बाद बचे हुए जिस हिमालय के ऊपरी भाग के सरोवरों में उत्पन्न होने वाले कमलों को वहाँ से नीचे भ्रमण करता हुआ सूर्य अपनी ऊर्ध्वमुखी किरणों के द्वारा विकसित करता है।

संस्कृत व्याख्या—सप्तर्षीजां करेभ्यः अवचयनादवशिष्टाणि यस्य हिमालयस्य उपरिभागे अवस्थितेषु सरोवरेषु, शेषाणि कमलपुष्पाणि अधः प्रदेश भ्रमणं कुर्वन् सूर्यः स्वकीयैः ऊर्ध्वमुखीभिः किरणैः विकसितानि करोति।

अलंकार—इस छन्द में हिमालय को सूर्य की अपेक्षा उच्च वर्णित करने के कारण उदात्त अलंकार है।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है।

[17]

यज्ञांगयोनित्वमवेक्ष्य यस्य सारं धरित्रीधरणक्षमं च।

प्रजापतिः कल्पितयज्ञभागं शैलाधिपत्यं स्वयमन्वतिष्ठत् ॥ 17 ॥

अन्वय—यस्य यज्ञांगयोनित्वं धरिणीधरणक्षमं सारं च अवेक्ष्य प्रजापतिः स्वयं कल्पितयज्ञभागं शैलाधिपत्यम् अन्वतिष्ठत्।

शब्दार्थ—यस्य = जिसके। यज्ञांगयोनित्वम् = यज्ञ के अंग की योनि होने को। धरिणीधरणक्षम् = पृथिवी को धारण करने में सक्षम। सारम् = शक्ति को। अवेक्ष्य = देखकर। प्रजापतिः = ब्रह्मा जी ने। स्वयम् = अपने आप। कल्पितयज्ञभागम् = कल्पित है यज्ञ का भाग जिसमें। शैलाधिपत्यम् = पर्वतों का स्वामी होने का अधिकार दिया है।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसम्भव' के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। इस छन्द के माध्यम से ब्रह्माजी के द्वारा हिमालय को पर्वतों के राजा होने का गौरव प्रदान करने का वर्णन किया गया है।

हिन्दी अनुवाद—जिस हिमालय को यज्ञ के अंग सोमलता आदि की उत्पत्ति में तथा धरती के भार को धारण करने में सक्षम समझकर ब्रह्माजी ने अपने आप यज्ञ का भाग बनने वाले पर्वतों के राजा होने का अधिकार प्रदान किया।

संस्कृत व्याख्या—यस्य हिमालयस्य यज्ञस्य अंगस्य सोमलतायः उत्पत्तौ धरायाः भारस्य धारणे सक्षमं ज्ञात्वा ब्रह्मा स्वयमेव यज्ञस्य भागस्य निर्मातृत्वं पर्वतानां स्वामित्वं च कल्पितवान्।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है।

[18]

स मानसीं मेरुसखः पितॄणां कन्यां कुलस्य स्थितये स्थितिज्ञः।

मेनां मुनीनामपि माननीयामात्मानुरूपां विधिनोपयेमे ॥ 18 ॥

अन्वय—मेरुसखः स्थितिज्ञः सः पितृणां मानसीं मुनीनाम् अपि माननीयां आत्मानुरूपां मेनां कन्यां कुलस्य स्थितये विधिना उपयेमे।

कुमारसंभवम् एवं महाकाव्य
और गद्यकाव्य

NOTES

शब्दार्थ—मेरुसखः = मेरु पर्वत के मित्र से। स्थितिज्ञः = मर्यादा को जानने वाले। सः = उसने, हिमालय पर्वत ने। पितृणाम् = पितरों की। मानसीम् = मन के संकल्प से उत्पन्न को। मुनीनामपि = मुनियों की भी। माननीयाम् = माननीय आदरपात्र को। आत्मानुरूपाम् = अपने अनुरूप को। मेनाम् = मेना को। कन्याम् = कन्या को। विधिना = शास्त्र की विधि से। कुलस्य = कुल की। स्थितये = स्थिति के लिए। उपयेमे = विवाह किया, पत्नी बनाया।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसम्भव' के प्रथम सर्ग से लिया गया है। इस छन्द के माध्यम से कालिदास जी ने हिमालय के मेना से विवाह करने का वर्णन किया है।

हिन्दी अनुवाद—मेरु पर्वत के मित्र तथा मर्यादा को जानने वाले उस हिमालय ने पितरों की मानसी कन्या, मुनिजनों की आदरणीया एवं अपने गुणों के अनुरूप मेना से अपने कुल की स्थिति के लिए विधिपूर्वक विवाह किया।

संस्कृत व्याख्या—मेरुपर्वतस्य मित्रं मर्यादाया ज्ञाता च हिमालयः पितृणां मानसीं कन्यां ऋषीणामपि आदरणीयां मेनानाम्नीं स्वगुणानुरूपां कन्यां स्वकीयस्य वंशस्य प्रतिष्ठायै शास्त्रीयविधिना परिणोतवान्, तया सह विवाहं एतवान् इति तात्पर्यम्।

अलंकार—हिमालय तथा मेना के विशेषणों का साभिप्राय वर्णन से यहाँ परिकर अलंकार है।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है।

[19]

कालक्रमेणाथ तयोः प्रवृत्ते स्वरूपयोग्ये सुरतप्रसंगे।

मनोरमं यौवनमुद्वहन्त्या गर्भोऽभवद् भूधरराजपत्न्याः ॥ 19 ॥

अन्वय—अथ कालक्रमेण तयोः स्वरूपयोग्ये सुरतप्रसंगे मनोरमम् यौवनम् उद्वहन्त्या भूधरराजपत्न्याः गर्भः अभवत्।

शब्दार्थ—अथ = इसके बाद। कालक्रमेण = कालक्रम से, कुछ समय व्यतीत होने पर। तयोः = उन दोनों के, हिमालय और मेना के। स्वरूपयोग्ये = स्वरूप के योग्य में। सुरतप्रसंगे = सम्भोग की क्रिया में। प्रवृत्ते = तल्लीन होने पर। मनोरमम् = मन को रमाने वाले। यौवनम् = तारुण्य को। उद्वहन्त्या = धारण करने वाली में। भूधरराजपत्न्याः = भूमि को धारण करने वाले अर्थात् पर्वतों के राजा हिमालय की पत्नी मेना का। गर्भः = गर्भ। अभवत् = हुआ।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसम्भव' के प्रथम सर्ग से लिया गया है। इस छन्द के माध्यम से कालिदास जी ने हिमालय की पत्नी मेना द्वारा गर्भधारण करने का वर्णन किया है।

हिन्दी अनुवाद—इसके बाद कालक्रम से अर्थात् समय बीतने पर उन दोनों अर्थात् हिमालय तथा मेना के स्वरूप के योग्य सम्भोग क्रिया के आरम्भ होने पर मनोहर यौवन को वंहन करने वाली पर्वतराज हिमालय की पत्नी का गर्भ हुआ। तात्पर्य यह है कि मेना ने गर्भ धारण किया।

संस्कृत व्याख्या—विवाहस्य पश्चात् गच्छता समयेन तयोः मेनाहिमालययोः स्वरूपानुसारं सम्भागेकार्ये प्रवृत्ते मनोहरस्य यौवनस्य धारयित्री पर्वतराजस्य पत्नी मेना गर्भधारणं कृतवती। मेना गर्भवती अभवत् इत्याशयः।

NOTES

अलंकार—स्वरूपयोग एवं मनोरम विशेषणों के साभिप्राय होने से यहाँ परिकर अलंकार है।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है।

[20]

असूत सा नागवधूपभोग्यं मैनाकमम्भोनिधिबद्धसंख्यम्।

क्रुद्धेऽपि पक्षच्छिदि वृत्रशत्रावेदनाज्ञं कुलिशक्षतानाम्॥ 20॥

अन्वय—सा नागवधूपभोग्यम् अम्भोनिधिबद्धसंख्य पक्षच्छिदि वृत्रशत्रौ क्रुद्धे अपि कुलिशक्षतानाम् अवेदनाज्ञं मैनाकम् असूत।

शब्दार्थ—सा = उसने, मेना ने। नागवधूपभोग्यम् = नाग जाति के पुरुषों की पत्नियों के उपभोग के योग्य। अम्भोनिधिबद्धसंख्यम् = सागर से स्थायी मित्रता रखने वाले। पक्षच्छिदि = पंख काटने वाले। वृत्रशत्रौ = वृत्र राक्षस के शत्रु इन्द्र के। क्रुद्धे = क्रोधित होने पर। अपि = भी। कुलिशक्षतानाम् = वज्र के घावों के। अवेदनाज्ञतम् = कष्ट से अपरिचित। मैनाकम् = मैनात पर्वत को। असूत = जन्म दिया।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसम्भव' के प्रथम सर्ग से लिया गया है। कालिदास जी ने इस श्लोक के माध्यम से मेना द्वारा मैनाक पर्वत को जन्म देने का वर्णन किया है।

हिन्दी अनुवाद—उस मेना ने नागजाति की वधुओं के उपभोग के योग्य, सागर से मित्रता स्थापित करने वाले, पर्वतों के पंखों को काटने वाले तथा वृत्र राक्षस के शत्रु इन्द्र के क्रोधित होने पर भी पंख काटने के कण्ठ से को न जानने वाले मैनाक को जन्म दिया।

विशेष—ऐसा विश्वास किया जाता है कि अति प्राचीन काल में पर्वतों के पंख थे। पर्वत उड़ते थे। इन्द्र ने अपने वज्र से पंख काटकर पर्वतों को अचल बना दिया। उस समय मैनाक पर्वत ने सागर में डूबकर अपने को बचाया।

संस्कृत व्याख्या—सा मेना नागवधूनामुपभोगयोग्यं, सागरेण सह कृतमैत्रीभावं, पर्वतानां पक्षच्छेदनकर्तारि वृत्रशत्रौ चो इन्द्रक्रुद्धे अपि वज्रस्य वेदनाया अनुभवरहितं मैनाकं जन्म दत्तवती।

अलंकार—इस छन्द में मैनाक के विशेषणों—अम्भोनिधिबद्धसंख्यम् तथा वेदनाज्ञं का साभिप्राय प्रयोग के कारण परिकर अलंकार है। पक्षच्छिदि वृत्रशत्रौ क्रुद्धे अपि में कारण होने पर भी कार्य न होने से विशेषोक्ति अलंकार है।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है।

पार्वतीजन्मवर्णनम्

[21]

अथावमानेन पितुः प्रयुक्ता दक्षस्य कन्या भवपूर्वपत्नी

सती सती योगविसृष्टदेहा तां जन्मने शैलवधूं प्रपेदे॥ 21॥

अन्वय—अथ दक्षस्य कन्या भवपूर्वपत्नीसती पितुः अवमानेन प्रयुक्ता योग-विसृष्टदेहा सती सती जन्मने ता शैलवधूँ प्रपेदे।

कुमारसंभवम् एवं महाकाव्य
और गद्यकाव्य

NOTES

शब्दार्थ—अथ = इसके बाद। दक्षस्य = दक्ष प्रजापति की। कन्या = पुत्री ने। भवपूर्वपत्नी = शंकर जी की पहली भार्या ने। सती = सती नाम वाली ने। पितुः = पिता के। अवमानेन = अपमान के कारण। प्रयुक्ता = प्रेरित होकर। योग्यविसृष्टदेहा = योग अग्नि से शरीर का त्याग करने वाली। सती = करती हुई। जन्मने = जन्म लेने के लिए। शैलवधूम् = पर्वतराज हिमालय की धर्मपत्नी मेना को। प्रपेदे = प्राप्त हुई।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसंभव' के प्रथम सर्ग से लिया गया है। इस छन्द के माध्यम से कालिदास जी ने हिमालय की पत्नी मेना के गर्भ में शंकर जी की पहली पत्नी सती के आने का वर्णन किया है।

हिन्दी अनुवाद—पुत्र मैनाक को मैना द्वारा जन्म देने के बाद दक्ष प्रजापति की पुत्री तथा शंकर जी की पहली पत्नी सती ने पिता के द्वारा शंकर जी के अपमान से प्रेरित होकर योग मार्ग से शरीर का त्याग करके पुनर्जन्म लेने के लिए उस पर्वत पुत्री मेना को प्राप्त किया। तात्पर्य यह है कि सती मेना के गर्भ में आयी।

संस्कृत व्याख्या—शिवस्य पत्नी मेना मैनाकं जन्म दत्तवती। तत्पश्चात् दक्षप्रजापतेः पुत्री सती नाम्नी पित्रा दक्षेन स्वपतेः शंकरस्य अपमानेन योगसाधनया शरीरं त्यक्वती। सा जन्म लब्धुं मैनाया गर्भे समागत।

अलंकार—सती सती में यमक अलंकार है।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है।

[22]

सा भूधराणामधिपेन तस्यां समाधिमत्यामुदपादि भव्य।

सम्यक्प्रयोगादपरिक्षतायां नीताविवोत्साहगुणेन सप्त॥ 22॥

अन्वय—भव्या सा भूधराणाम् अधिपेन समाधिमत्यां तस्यां सम्यक्प्रयोगात् अपरिक्षतायां नीतौ उत्साहगुणेन सम्पत् इव उदपादि।

शब्दार्थ—भव्य = कल्याणी, सुन्दरी। सा = वह। भूधराणाम् = पर्वतों के। अधिपेन = स्वामी अर्थात् हिमालय ने। समाधिमत्याम् = एकाग्र मन वालों में। तस्याम् = उसमें, मेना में। सम्यक्प्रयोगात् = उचित प्रयोग से। अपरिक्षतायाम् = भ्रष्ट न होने वाली में। नीतौ = रीति में, रीति से। उत्साहगुणेन = उत्साह रूपी गुण के द्वारा। सम्पत् इव = सम्पत्ति के समान। उदपादि = उत्पन्न की, जन्म दिया।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसंभव' के प्रथम सर्ग से लिया गया है। कालिदास जी ने इस छन्द के माध्यम से हिमालय द्वारा मेना से पार्वती के जन्म का वर्णन किया है।

हिन्दी अनुवाद—वह कल्याणी सती पर्वतों के स्वामी हिमालय के द्वारा एकाग्र मन वाली अपनी पत्नी के प्रति उचित आचरण का पालन करते हुए नीति के माध्यम से इस प्रकार उत्पन्न की गयी, जिस प्रकार उत्साह रूपी गुण से सम्पत्ति उत्पन्न होती है, प्राप्त होती है।

संस्कृत व्याख्या—कल्याणी सती पर्वतानां, स्वामिना हिमालयेन नियमपालनवत्यां साधु आचरणात् भ्रष्टतारहितायां। तस्यां स्वपत्यां मेनायां तथोत्पन्ना यथा उत्साहशक्त्या सम्पत्तिः उत्पद्यते।

अलंकार—इस छन्द में वाचक इव के द्वारा पर्वतराज हिमालय की उत्साह गुण से, मेना की नीति तथा पार्वती की सम्पत्ति से समानता के प्रदर्शन के कारण उपमा अलंकार है।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है।

NOTES

[23]

प्रसन्नदिक्पांसुविविक्तवातं शंखस्वनान्तरपुष्पवृष्टिः।

शरीरिणां स्थावरजंगमानो सुखाय तज्जन्मदिनं बभूव॥ 23॥

अन्वय—प्रसन्नदिक् पांसुविविक्तवातं शंखस्वनान्तरपुष्पवृष्टि तज्जन्मदिन स्थावरजङ्गमानां शरीरिणां सुखाय बभूव।

शब्दार्थ—प्रसन्नदिक् = निर्मल दिशाओं वाला। पांसुविविक्तवातम् = धूलरहित वायु वाला। शंखस्वनान्तरपुष्पवृष्टिः = शंख की ध्वनि के तुरन्त बाद पुष्प वर्षा वाला। तज्जन्मदिनम् = उस पार्वती का जन्मदिन। स्थावरजंगमानाम् = न चलने वालों तथा चलने वालों के। शरीरिणाम् = देह धारण करने वालों के। सुखाय = सुख के लिए। बभूव = हुआ।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसम्भव' के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। कालिदास जी ने इस छन्द के माध्यम से पार्वती के जन्मदिन की विशेषताएँ प्रस्तुत की हैं।

हिन्दी अनुवाद—उनका अर्थात् पार्वती का जन्मदिन निर्मल दिशाओं वाला, धूलिरहित पवन वाला, शंख की ध्वनि के पश्चात् पुष्पवर्षा वाला तथा चर और अचर प्राणियों के लिए सुख देने वाला।

संस्कृत व्याख्या—तस्याः पार्वत्याः जन्मदिवसं स्वच्छाभिः दिशाभिः सुशोभितम्, शंखध्वनेः पश्चात् पुष्पवर्षयामण्डितं गतिशीलानां गतिसहितानां च प्राणिनां कृते सुखस्य कारणम् अभवत्।

अलंकार—इस छन्द में प्रसन्नदिक् आदि साभिप्राय विशेषणों के सोद्देश्य प्रयोग के कारण परिकर अलंकार है।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है।

[24]

तया दुहित्रा सुतरां सवित्री स्फुरत्प्रभामण्डलया चकासे।

विदूरभूमिर्नवमेघशब्दादुद्भिन्नया रत्नशलाकया॥ 24॥

अन्वय—स्फुरत्प्रभामण्डलया तया दुहित्रा सवित्री विदूरभूमिः नवमेघशब्दात् उद्भिन्नया रत्नशलाकया इव सुतराम् चकासे।

शब्दार्थ—स्फुरत्प्रभामण्डलया = देदीप्यमान प्रकाश मण्डल वाली से। तया = उससे। दुहित्रा = पुत्री से। सवित्री = जननी, माता। नवमेघशब्दात् = नये बादल के गर्जन से। उद्भिन्नया = उत्पन्न हुई। रत्नशलाकया = रत्न की शलाका अर्थात् रत्न की कान्ति से। विदूरभूमिः = विदूर पर्वत की धरती। इव = समान। सुतराम् = भलीभाँति, अधिकता से। चकासे = सुशोभित हुई।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसम्भव' के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। इस छन्द के माध्यम से कालिदास, जी ने पुत्री पार्वती के जन्म के कारण गिरिराज हिमालय की पत्नी मेना के बड़े हुए सौन्दर्य का वर्णन किया है।

हिन्दी अनुवाद—देदीप्यमान प्रकाशमण्डलयुक्त उस पुत्री के कारण माता मेना नये बादल के गर्जन से उत्पन्न रत्नों के अंकुरों के द्वारा सुशोभित विदूर पर्वत की धरती के समान सुशोभित हुई।

कुमारसंभवम् एवं महाकाव्य
और गद्यकाव्य

संस्कृत व्याख्या—लसत्कान्तिमण्डलया तथा कन्यया तस्याः जननी मेना तथा सुशोभिताः अभवत् यथा विदूरपर्वतस्य धरित्री नूतनजलदस्य गर्जनात् भूमिं विदार्य निर्गतया रत्नशलाकाया अत्यन्तं शोभते।

अलंकार—यहाँ विदूर पर्वत की भूमि से मेना की तथा रत्न शलाका से पुत्री पार्वती की समता प्रदर्शित करने के कारण उपमा अलंकार है।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है।

[25]

दिने दिने सा परिवर्धमाना लब्धोदया चान्द्रमसीव लेखा।

पुपोष लावण्यमयान्विशेषाञ्ज्योत्स्नान्तराणीव कलान्तराणि॥ 25॥

अन्वय—लब्धोदया दिने दिने परिवर्धमाना सा चान्द्रमसी लेखा इव लावण्यमान् विशेषान् ज्योत्स्नान्तराणि इव पुपोष।

शब्दार्थ—लब्धोदया = जन्म प्राप्त करने वाली। दिने दिने = प्रतिदिन, एक-एक दिन के अन्तर से। परिवर्धमाना = बढ़ती हुई, वृद्धि को प्राप्त होती हुई। सा = यह, मेना और हिमालय की पुत्री। चान्द्रमसी = चन्द्रमा सम्बन्धिनी। लेखा इव = प्रभा के समान। लावण्यमयान् = सौन्दर्य से पूर्ण। विशेषान् = अंगों को। ज्योत्स्नान्तराणि = चाँदनी से सम्बन्धित। कलान्तराणि इव = विशेष कलाओं के समान। पुपोष = पुष्ट होने लगी, बढ़ने लगी।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसंभव' के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। कालिदास जी ने इस छन्द के माध्यम से मेना और हिमालय की पुत्री के दिन-दिन बढ़ते सौन्दर्य का वर्णन किया है।

हिन्दी अनुवाद—जन्म प्राप्त करके प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त होती हुई वह पार्वती चन्द्रमा की कला के समान सौन्दर्यपूर्ण अंगों को पुष्ट करने लगी।

संस्कृत व्याख्या—जन्म प्राप्तवती सा पार्वती प्रतिदिवसम् वृद्धिं प्राप्य चन्द्रमसः कलायाः समानं सौन्दर्यपूर्णान् अंगान् पुष्टान् अकरोत्।

अलंकार—इस छन्द में चन्द्रकला सम्बन्धी वाक्य द्वारा पार्वती से सम्बन्धित वाक्य की समानता प्रस्तुत की गयी है। इस आधार पर वाक्योपमा अलंकार है। अलंकार उपमा का यह भेद आचार्य दण्डी द्वारा स्वीकृत है।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है।

[26]

तां पार्वतीत्याभिजनेन नाम्ना बन्धुप्रियां बन्धुजनो जुहाव।

उमेति मात्रा तपसो निषिद्धा पश्चादुमाख्यां सुमुखी जगाम॥ 26॥

अन्वय—बन्धुप्रियां तां बन्धुजनः आभिजनेन नाम्ना 'पार्वती' इति जुहाव। पश्चात् मात्रा उ मा इति तपसः निषिद्धा सुमुखी उमावख्यां जगाम।

NOTES

NOTES

शब्दार्थ—बन्धुप्रियाम् = बन्धुजनों की प्रिय को। **ताम्** = उसको। **बन्धुजनः** = परिवारीजन। **आभिजनेन** = परिवार से सम्बन्धित से। **नाम्ना** = नाम से। **पार्वती इति** = पार्वती इस प्रकार से। **जुहाव** = पुकारते में। **पश्चात्** = बाद में। **उ** = हे पुत्री। **मा** = नहीं। **इति** = इस प्रकार। **तपसः निषिद्धा** = तपस्या से रोकी गयी। **सुमुखी** = सुन्दर मुख वाली। **उमाख्याम्** = उमा + आख्याम् = उमा नाम को। **जगाम्** = प्राप्त हुई।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसम्भव' के प्रथम सर्ग से लिया गया है। इस छन्द के माध्यम से कालिदास जी ने मेना और हिमालय की पुत्री का नाम पार्वती तथा उमा होने का कारण बताया है।

हिन्दी अनुवाद—बन्धुजनों को प्रिय मेना और हिमालय की उस पुत्री को परिवारीजनों ने वंश सम्बन्धी नाम से 'पार्वती' ऐसा कहकर पुकारा। हे पुत्री ! तपस्या मत करो, इस प्रकार माता मेना के द्वारा कही गयी सुन्दर मुख वाली वह इस उमा नाम को प्राप्त हुई।

विशेष—बन्धुजनों को प्रिय मेना और हिमालय की उस कन्या को कुलपरम्परा सम्बन्धी 'पार्वती' इस नाम से पुकारा। बाद में माता मेना के द्वारा उ अर्थात् हे पुत्री तथा मा अर्थात् नहीं, इस प्रकार तपस्या करने से रोकी हुई सुन्दर मुख वाली वह कन्या उस नाम को प्राप्त हुई। तात्पर्य यह है कि उसका नाम उमा पड़ा।

संस्कृत व्याख्या—बन्धुबान्धवाः बान्धवजनप्रियां मेना हिमालयोः तां पुत्रीं वंशपरम्परागतेन पार्वती इति नामधेयेन आह्वानं कृतवन्तः। पश्चात् जनन्मा उ मा च इति शब्द द्वयेन हे पुत्रि ! तपस्यां मा कुरु। अनेनरूपेण तपःकरणं प्रतिनिषिद्धा सा पश्चात् उमा इतिनाम प्राप्तवती।

अलंकार—इस छन्द में पार्वती तथा उमा नामों का हेतु स्पष्ट करने से काव्यलिंग अलंकार है।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है।

[27]

महीभृतः पुत्रवतोऽपि दृष्टिस्तस्मिन्नपत्ये न जगाम तृप्तिम्।

अनन्तपुष्पस्य मधोर्हि चूते द्विरेफमाला सविशेषसंगाः ॥27॥

अन्वय—पुत्रवतोऽपि महीभृतः दृष्टिः तस्मिन् अपत्ये तृप्तिं न जगाम। हि अनन्तपुष्पस्य मधोः द्विरेफमाला चूते सविशेषसंज्ञा।

शब्दार्थ—पुत्रवतोऽपि = पुत्रवतः + अपि = पुत्र वाले की भी। **महीभृतः** = पर्वत की। **दृष्टिः** = दर्शन साधन। **तस्मिन्** = उसमें। **अपत्ये** = सन्तान में, सन्तान के प्रति। **तृप्तिम्** = सन्तुष्टि को। **न** = नहीं। **जगाम** = गयी। **तृप्तिं न जगाम** = तृप्त नहीं हुई। **हि** = निश्चित रूप से। **अनन्तपुष्पस्य** = अन्तहीन पुष्पों वाले की। **मधोः** = वसन्त की। **द्विरेफमाला** = भ्रमरों की पंक्ति, भौरों का समूह। **चूते** = आम में, आम के प्रति। **सविशेषसंगा** = विशेष रुचि वाली होती है।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसम्भव' के प्रथम सर्ग से लिया गया है। इस छन्द के माध्यम से कालिदास जी ने पार्वती के प्रति उसके पिता की विशेष रुचि का वर्णन किया है।

हिन्दी अनुवाद—पुत्र वाला होने पर भी धरती को धारण करने वाले हिमालय की दृष्टि उस सन्तान पार्वती पर तृप्ति प्राप्त नहीं करती थी। तात्पर्य यह है कि पार्वती से उनका मन नहीं भरता है, जैसा कि अनगिनती फूलों वाले वसन्त की भ्रमर पंक्ति आम के प्रति विशेष आसक्ति वाली होती है। तात्पर्य यह है कि भौरों की पंक्ति वसन्त ऋतु के अनन्त पुष्पों को छोड़कर आम के बौर के प्रति ही विशेष आसक्ति रखती है।

संस्कृत व्याख्या—महीं चारणकर्ता हिमालयः पुत्रवान् आसीत् तथापि तस्य दृष्टिः पार्वती नाम्नीं सन्ततिं प्रति विशेषाकर्षणपूर्ण आसीत्। यथा वसन्ते ऋतौ तस्य अनन्तानि पुष्पाणि भवन्ति, परन्तु भ्रमराणां पंक्तिः आम्रमञ्जरीं प्रति विशेषाकर्षणवती दृश्यते।

कुमारसंभवम् एवं महाकाव्य
और गद्यकाव्य

NOTES

अलंकार—इस छन्द में अधिक आसक्ति रूपी साधारण धर्म को, शब्दान्तर से निरूपित करने के कारण प्रतिवस्तूपमा अलंकार है।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है।

[28]

प्रभामहत्या शिखयेव दीपस्त्रिमार्गयेव त्रिदिवस्य मार्गः।
संस्कारवत्येव गिरा मनीषी तथा स पूतश्च विभूषितश्च ॥28॥

अन्वय—प्रभामहत्या शिखया दीपः इव, त्रिमार्गया त्रिदिवस्य मार्ग इव, संस्कारवत्या गिरा मनीषी इव, तथा स पूतः विभूषितः च।

शब्दार्थ—प्रभामहत्या = अधिक प्रकाश वाली से। शिखयेव = शिखा + इव = जिस प्रकार भूख से। दीपः = दीपक, प्रदीप। इव = समान। त्रिमार्गया = तीन मार्गों वाली गंगा से। त्रिदिवस्य = स्वर्ग का। मार्गः = पन्थ। इव = समान। संस्कारवत्या = संस्कारों वाली से। गिरा = वाणी से। मनीषी = विद्वान्। तथा = उससे, पार्वती से। सः = वह, हिमालय। पूतः = पवित्र हुआ। च = और। विभूषितः = सुशोभित हुआ।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसंभव' के प्रथम सर्ग से लिया गया है। इस छन्द के माध्यम से कालिदास जी ने पार्वती के कारण हिमालय के पवित्र तथा विभूषित होने का वर्णन किया है।

हिन्दी अनुवाद—जिस प्रकार अधिक प्रकाश वाली शिखा से दीपक, तीन मार्गों वाली गंगा से स्वर्ग का मार्ग तथा संस्कार वाली वाणी से विद्वान् पवित्र और सुशोभित होता है, उसी प्रकार उस पार्वती से हिमालय पवित्र भी हुआ और सुशोभित भी हुआ।

संस्कृत व्याख्या—यथा प्रकाशाधिक्यवत्या शिखाया दीपकः त्रिमार्गया गंगया स्वर्गस्य मार्गः, संस्कारपूर्णया वाण्या विद्वान् पवित्रो भवति शोभते वा तथैव कन्यसा स हिमालयः पवित्रोऽभवत् शोभापूर्णश्च जातः।

अलंकार—इस छन्द में एक उपमेय के लिए अनेक उपमानों को प्रस्तुत करने के कारण मालोपमा अलंकार है।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है।

[29]

मन्दाकिनीसैकतवेदिकाभिः सा कन्दुकैः कृत्रिमपुत्रकैश्च।
रेमे मुहुर्मध्यगता सखीनां क्रीडारसं निर्विशतीव बाल्ये ॥29॥

अन्वय—सा बाल्ये क्रीडारसम् निर्विशती इव सखीनाम् मध्यगता (सती) मन्दाकिनी सैकतवेदिकाभिः कन्दुकैः कृत्रिमपुत्रकैश्च मुहुः रेमे।

NOTES

शब्दार्थ—सा = वह, पार्वती। **बाल्ये** = शैशव में, बचपन में। **क्रीडारसम्** = खेल के आनन्द को। **निर्विशती** = पूर्ण रूप से उपभोग करती हुई। **इव** = सी, समान। **सखीनाम्** = सखियों के। **मध्यगता** = बीच में रहकर, बीच में स्थित होकर। **मन्दाकिनीसैकतवेदिकाभिः** = गंगा की बालू से बनी वेदिकाओं के द्वारा। **कन्दुकैः** = गेंदों के द्वारा। **कृत्रिमपुत्रकैश्च** = कृत्रिमपुत्रकैः + च = बनावटी पुतलियों से। **मुहुः** = बार-बार। **रेमे** = रमण करती थी, खेलती थी।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसम्भव' के प्रथम सर्ग से लिया गया है। इस छन्द के माध्यम से कालिदास जी ने बालिका पार्वती की क्रीडा का वर्णन किया है।

हिन्दी अनुवाद—वह पार्वती अपने बाल्यकाल में खेल के आनन्द का उपभोग करती हुई सखियों के मध्य में रहकर गंगा की बालू से बनी वेदिकाओं से, गेंदों से तथा कठपुतलियों से बार-बार खेला करती थी।

संस्कृतव्याख्या—मेनाहिमालययोः पुत्री सा पार्वती शैशवकाले क्रीडायाः आनन्दस्य उपभोगं करोति स्म। सखीनां मध्यगता सा पार्वती गंगातटे बालुकाभिः निर्मितासु वेदिकासु कन्दुकैः, काष्ठपुतलिकाभिः, बारम्बारं क्रीडां करोति स्म।

अलंकार—'बाल्ये क्रीडारसं निर्विशतीव' में इव का प्रयोग संभावना के अर्थ में होने के कारण यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है।

[30]

तां हंसमालाः शरदीव गंगां महौषधिं नक्तमिवात्मभासः।

स्थिरोपदेशामुपदेशकाले प्रपेदिरे प्राक्तनजन्मविद्याः ॥30॥

अन्वय—स्थिरोपदेशां ताम् उपदेशकाले प्राक्तनजन्मविद्याः शरदि गंगा हंस मालाः इव, नक्तं महौषधिम् आत्मभासः इव प्रपेदिरे।

शब्दार्थ—**स्थिरोपदेशाम्** = स्थिर उपदेश वाली अर्थात् मेधाविनी को। **ताम्** = उसको, पार्वती को। **उपदेशकाले** = उपदेश काल में, विद्याभ्यास के समय में। **प्राक्तनजन्मविद्याः** = पूर्व जन्म की विद्याएँ। **शरदि** = शरद् ऋतु में। **गंगाम्** = गंगा को। **हंसमाला इव** = हंसों की पंक्तियों के समान। **नक्तम्** = रात्रि के समय। **महौषधिम्** = संजीवनी आदि महा औषधियों को। **आत्मभासः इव** = अपनी कान्ति के समान। **प्रपेदिरे** = प्राप्त हुई।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसम्भव' के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। कालिदास जी ने इस छन्द के माध्यम से पार्वती को पूर्वजन्म की विद्याएँ प्राप्त होने का वर्णन किया है।

हिन्दी अनुवाद—स्थिर उपदेश वाली अर्थात् मेधाविनी उस पार्वती को विद्याभ्यास के समय पूर्व जन्म की विद्याएँ उसी प्रकार प्राप्त हुई, जिस प्रकार शरद् ऋतु में गंगा को हंसों की पंक्तियाँ प्राप्त होती हैं और संजीवनी आदि महा औषधियों को रात में उनकी कान्ति प्राप्त होती है।

संस्कृत व्याख्या—स्थिरोपदेशो मेधाविनी वा तां पार्वताम् विद्याभ्यास समये पूर्वजन्मनः विद्याः तथैव प्रातः, यथा शरदि ऋतौ गंगां हंसानां पंक्तयः प्राप्यन्ते, निशाकाले संजीवन्यादि महौषधीः तासां स्वकीयः प्रकाशः प्राप्यते।

अलंकार—इस छन्द में उपमा की वाचक शब्द इव का प्रयोग होने से उपमा अलंकार है।

यौवनवर्णनम्

[31]

NOTES

असंभृतं मण्डनमगयष्टेरनासवाख्यं कारणं मदस्य।

कामस्य पुष्पव्यतिरिक्तमस्त्रं बाल्यात्परं साऽथ वयः प्रपेदे ॥31॥

अन्वय—अथ सा अंगयष्टेः असंभृत मण्डनम् अनासवाख्यं मदस्य कारणं कामस्य पुष्पव्यतिरिक्तम् अस्त्रं बाल्यात् परं वयः प्रपेदे।

शब्दार्थ—अथ = इसके बाद। सा = उसने, पार्वती ने। अंगयष्टेः = शरीर के। असंभृतम् = स्वाभाविक। मण्डनम् = अलंकरण, शोभा का साधन। अनासवाख्यम् = अनासव + आख्यम् = आसव अर्थात् मदिरा से भिन्न नाम वाला। मदस्य = मत्तता का, मतवालेपन का। करणम् = कारण। कामस्य = कामदेव का। पुष्पव्यतिरिक्तम् = कुसुम के अतिरिक्त। अस्त्रम् = बाण। बाल्यात्परम् = शैशव से बाद वाली। वयः = आयु। प्रपेदे = प्राप्त की, प्राप्त हुई।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसंभव' के प्रथम सर्ग से लिया गया है। कालिदास जी ने इस छन्द के माध्यम से पार्वती के यौवन को प्राप्त होने का वर्णन किया है।

हिन्दी अनुवाद—इसके बाद उस पार्वती ने शरीर के स्वाभाविक आभूषण, मदिरा से भिन्न मस्ती के कारण तथा कामदेव के पुष्प से अतिरिक्त बाण यौवन को प्राप्त किया जो शैशव के पश्चात् की वय है।

संस्कृत व्याख्या—विद्याग्रहणानन्तरं सा पार्वती शैशवस्य पश्चाद्वर्तिनं यौवनं प्राप्तवती। इदं यौवनं स्वाभाविकभूषणं, मदस्य मदिरा व्यतिरिक्तं कारणं कामदेवस्य च पुष्पेभ्यः भिन्नं बाणं कथ्यते।

अलंकार—इस छन्द में मदिरा रूप कार्य के अभाव में मद रूप कार्य के होने से विभावना अलंकार है।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है।

[32]

उन्मीलितं तूलिककेव चित्रं सूर्याशुभिर्भिन्नमिवाऽरविन्दम्।

बभूव तस्याश्चतुरस्त्रशोभि बपुर्विभक्तं नवयौवनेन ॥ 32 ॥

अन्वय—नवयौवन विभक्तम् तस्याः वपुः तूलिकया उन्मीलितम् चित्रम् इव सूर्याऽशुभिः भिन्नम् अरविन्दम् इव चतुरस्त्रशोभि बभूव।

शब्दार्थ—नवयौवनेन = नये यौवन से। विभक्तम् = अभिव्यक्ति को प्राप्त, सबसे भिन्न दिखाई देने वाला। तस्याः = उसका, पार्वती का। वपुः = शरीर। तूलिकया = तूलिका के द्वारा। उन्मीलितम् = अंकित। चित्रम् इव = चित्र के समान। सूर्याशुभिः = सूर्य की किरणों द्वारा। भिन्नम् = विकसित, खिले हुए। अरविन्दम् इव = कमल के समान। चतुरस्त्रशोभि = पूर्णतया सुन्दर। बभूव = हुआ।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसंभव' के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। कालिदास जी ने इस छन्द के माध्यम से पार्वती के सौन्दर्य का वर्णन किया है।

हिन्दी अनुवाद—नवयौवन के कारण सबसे भिन्न प्रतीत होने वाला उस पार्वती का शरीर तूलिका द्वारा निर्मित चित्र के समान तथा दिनकर की किरणों से विकसित कमल के समान पूर्ण रूप से सुन्दर हुआ।

NOTES

संस्कृत व्याख्या—अभिनव यौवनेन उद्भासितं तत्याः पार्वत्याः शरीरं तूलिकया निर्मितं चित्रतुल्यां दिवाकरस्य किरणसमूहेन विकसितेन पद्मेन समानं च पूर्णरूपेण सुशोभितम् अभवत्।

अलंकार—यहाँ पार्वती के नवयौवन से सुन्दर शरीर की समानता चित्र एवं विकसित कमल से होने के कारण उपमा अलंकार है।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है।

शरीरवर्णनम्

[33]

अभ्युन्नताङ्गुष्ठनखप्रभाभिर्निक्षेपणात् रागमिवोद्गिरन्तौ।

आजहतुस्तच्चरणौ पृथिव्या स्थलारविन्दश्रिमयव्यवस्थाम्॥ 33॥

अन्वय—अभ्युन्नताङ्गुष्ठनखप्रभाभिः निक्षेपणात् रागम् उद्गिरन्तौ इव तच्चरणौ पृथिव्याम् अव्यवस्थां स्थलाऽरविन्दश्रियम् आजहतुः।

शब्दार्थ—अभ्युन्नताङ्गुष्ठनखप्रभाभिः = ऊपर की ओर उठे हुए अँगूठों के नाखूनों की किरणों के द्वारा। निक्षेपणात् = बाहर निकालने से, ऊपर की ओर उछालने से। रागम् = रंग को, लाल रंग को। उद्गिरन्तौ = उगलते हुए, बिखराते हुए। इव = समान। तच्चरणौ = उस पार्वती के दोनों चरण। पृथिव्याम् = पृथिवी पर। अव्यवस्थाम् = अस्थिर, चंचल। स्थलारविन्दश्रियम् = स्थल कमल की शोभा को। आजहतुः = प्राप्त कर रहे थे।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसम्भव' के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। महाकवि कालिदास ने इस छन्द के माध्यम से पार्वती के अँगूठों के नाखूनों की प्रभा अथवा कान्ति का वर्णन किया है।

हिन्दी अनुवाद—ऊपर उठे हुए अँगूठों के नाखूनों की कान्तियों के द्वारा निक्षेप के कारण लाक्षारस अर्थात् लाख के रंग को उगलते, उस पार्वती के दोनों चरण पृथिवी पर गतिशील स्थलकमलों की शोभा को प्राप्त कर रहे थे।

संस्कृत व्याख्या—पार्वत्याः चरणयौः अङ्गुष्ठौ उन्नतौ आस्ताम्। तयोः किरणैः गमनकारणात् रक्तिमाम् प्रकटयन्तौ इव पार्वत्याः चरणौ भूमौ अस्थिराणाम् स्थलकमलानां शोभां प्राप्नुतः।

अलंकार—अरुणिमा के उद्गिरण के असम्भव वर्णन के कारण यहाँ अतिशयोक्ति अलंकार है। यहाँ पार्वती के चरण उपमेय हैं। उनमें समान स्थलकमल की शोभा का उद्गिरण होने से निदर्शना अलंकार है।

छन्द—इस लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है।

[34]

सा राजहंसैरिव सन्नताङ्गी गतेषु लीलाञ्जितविक्रमेषुः।

व्यनीयत प्रत्युपदेशलुब्धैरादित्सुभिर्नूपुरसिंजितानि॥ 34॥

अन्वय—प्रत्युपदेशलुब्धैः नूपुरसिञ्चतानि आदित्सुभिः राजहंसैः सन्नतांगी सा लीलाञ्जितविक्रमेषु गतेषु व्यनीयत इव ।

कुमारसंभवम् एवं महाकाव्य
और गद्यकाव्य

NOTES

शब्दार्थ—प्रत्युपदेशलुब्धैः = उपदेश का बदला देने के लोभियों द्वारा । नूपुरशिञ्जितानि = नूपुरों की कर्णमधुर ध्वनियों को । आदित्सुभिः = ग्रहण करने के इच्छुकों द्वारा । राजहंसैः = राजहंसों के द्वारा । सन्नतांगी = अधिक झुके हुए अंशों वाली, इसका कारण स्तनों का भार है । सा = वह पार्वती । लीलाञ्जितविक्रमेषु = विलासपूर्ण चरण विन्यास वाली । गतेषु = गमन क्रियाओं में । व्यनीयत इव = मानो शिक्षित की गयी ।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास जी द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसम्भव' के प्रथम सर्ग से लिया गया है । इस छन्द के माध्यम से कालिदास जी ने पार्वती के गमन से नूपुरों के शब्द का वर्णन किया है ।

हिन्दी अनुवाद—उपदेश का बदला देने के इच्छुक एवं पार्वती के नूपुरों की मधुर ध्वनि को सीखने की अभिलाषा वाले राजहंसों के द्वारा स्तनों के भार से झुके हुए अंगों वाली उस पार्वती को मानो विलासपूर्वक गन्धरचरण विन्यास वाली गमन क्रिया की शिक्षा दी गयी ।

संस्कृत व्याख्या—राजहंसाः पार्वत्याः नूपुराणां मधुरध्वनेः शिक्षणाय इच्छुकः आसन् । स्तनभारेण पार्वती अवनतांगी आसीत् । ते राजहंसाः शिक्षायाः प्रतिदानमपि दातुम् उत्सुकाः आसन् । तैः राजहंसैः सविलासमन्थरचरणविन्यासयुक्तायाः गमनक्रियायाः पार्वत्यै शिक्षा अपि प्रदत्ता ।

अलंकार—इस छन्द में राजहंसों द्वारा पार्वती को विलासपूर्ण गमन क्रिया की शिक्षा प्रदान करने की सम्भावना प्रतीत होती है । उससे यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है ।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है ।

[35]

वृत्तानुपूर्वे च न चातिदीर्घे जंघे शुभे सृष्टवतस्दीये ।

शेषांगनिर्माणविधौ विधातुः लावण्य उत्पाद्य इवास यत्नः ॥ 35 ॥

अन्वय—वृत्तानुपूर्वे न च अतिदीर्घे तदीये शुभे जंघे सृष्टवतः विधातुः शेषांग-निर्माणविधौ उत्पाद्ये लावण्ये यत्नः आस इव ।

शब्दार्थ—वृत्तानुपूर्वे = वृत्ताकार अर्थात् गोल तथा अनुपूर्व अर्थात् ऊपर से मोटी और नीचे की ओर क्रमशः पतली । न = नहीं । च = और । नातिदीर्घे = अधिक लम्बी नहीं । शुभे = सुन्दर, अच्छे लक्षणों वाली । जंघे = दो जंघाओं को । सृष्टवतः = निर्माण करने वाले, बनाने वाले । विधातुः = विधाता अर्थात् ब्रह्माजी को । शेषांग निर्माणविधौ = शेष अंगों के निर्माण की विधि में । उत्पाद्ये = उत्पन्न करने योग्य । लावण्ये = सौन्दर्य में । यत्नः = प्रयत्न । आस इव = प्रयत्न सा करना पड़ा, मानो प्रयत्न करना पड़ा ।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसम्भव' के प्रथम सर्ग से उद्धृत है । कालिदास जी ने इस छन्द के माध्यम से पार्वती के लावण्य के निर्माण में विशेष प्रयत्न का संकेत किया है ।

हिन्दी अनुवाद—उस पार्वती की गोल आकार वाली न अधिक छोटी और न अधिक बड़ी के अतिरिक्त ऊपर से नीचे की ओर मोटाई कम होती हुई दोनों जंघाओं को बनाने वाले विधाता अर्थात् ब्रह्मा जी को उसके शेष अंगों को बनाने की विधि में प्रयत्न सा करना पड़ा ।

संस्कृत व्याख्या—ब्रह्माणा पार्वत्याः जंघायुगलंवर्तुलं पूर्वानुगतम् गोपुच्छाकारं वा रचयितुः ब्रह्मणः तस्याः अवशिष्टानाम् अंगानाम् निर्माणकार्ये सौन्दर्योत्पादने प्रयत्न इव बभूव ।

NOTES

अलंकार—‘यत्न आस इव’ में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

छन्द—इस श्लोक की रचना इन्द्रवज्रा छन्द में हुई है।

[36]

नागेन्द्रहस्तास्त्वचिकर्कशत्वादेकान्तशैत्याऽकदलीविशेषः ।

लब्ध्वाऽपि लोकेपरिणाहि रूपं जातास्तदूर्वरूपमानबाह्याः ॥ 36 ॥

अन्वय—नागेन्द्रहस्ताः त्वचिकर्कशत्वात् कदलीविशेषाः एकान्तशैत्यात् लोके परिणाहि रूपं लब्ध्वाऽपि तदूर्वोः उपमानबाह्याः जाताः ।

शब्दार्थ—नागेन्द्रहस्ताः = गजराजों की शुण्डाएँ, सूँड़ें। **त्वचि** = त्वचा में, खाल में। **कर्कशत्वात्** = कठोर होने से। **कदलीविशेषाः** = केले के विशेष वृक्ष। **एकान्तशैत्यात्** = अत्यधिक शीतल होने से। **तदूर्वोः** = उसकी अर्थात् पार्वती की दोनों जंघाओं के। **लोके** = संसार में। **परिणाहि** = विशाल। **रूपम्** = रूप को। **लब्ध्वा** = प्राप्त करके। **अपि** = भी। **उपमानबाह्याः** = उपमान से बाहर, उपमान के अयोग्य। **जाताः** = हुए, हो गये।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा निर्मित महाकाव्य ‘कुमारसम्भव’ के प्रथम सर्ग से लिया गया है। इस छन्द के माध्यम से कालिदास जी ने पार्वती की जंघाओं के उपमान का अभाव वर्णित किया है।

हिन्दी अनुवाद—गजराजों की शुण्डाएँ अति कठोर होने के कारण तथा विशेष प्रकार के कदली स्तम्भ अर्थात् केलों के तने अत्यधिक शीतल होने के कारण लोक में विशेष रूप से प्राप्त करके भी पार्वती की दो जंघाओं के उपमान होने से पृथक् हो गये। तात्पर्य यह है कि गजराजों की सूँड़ और विशेष केलों के तनों को पार्वती की जंघाओं का उपमान नहीं बनाया जा सकता है।

संस्कृत व्याख्या—गजराजानां शुण्डाः त्वचायां कठोराः भवन्ति । कदली विशेषाणां स्तम्भाः अत्यधिकं शीतला भवन्ति । एते जगति विशालं रूपं समवाप्य अपित पार्वत्याः जंघयोः उपमानेभ्यः बाह्याः संजाताः । नैते पार्वत्याः जंघयोः उपमाने भवितुं शक्नुतः ।

अलंकार—उपमान उपमेय से श्रेष्ठ होता है। यहाँ उपमान नागेन्द्रहस्त तथा कदली विशेष उपमान होते हुए भी उपमेय की अपेक्षा हीन है। इस आधार पर यहाँ व्यतिरेक अलंकार है।

छन्द—इस श्लोक की रचना इन्द्रवज्रा छन्द में हुई है।

[37]

एतावता नन्वनुमेयशोभि काञ्चीगुणस्थानमनिन्दितायाः ।

आरोपितं यद्गिरिशेन पश्चादनन्यनारीकमनीयमंकम् ॥ 37 ॥

अन्वय—अनिन्दितायाः काञ्चीगुणस्थानम् एतावता ननु अनुमेयशोभि यद् पश्चात् गिरिशेन अनन्यनारीकमनीयम् अंकम् आरोपितम् ।

शब्दार्थ—अनिन्दतायाः = निन्दाहीना अर्थात् शुद्ध चरित्र वाली का। **काञ्चीगुणस्थानम्** = मेखला के सूत्र का स्थान, नितम्ब। **एतावता** = इसी के द्वारा, इसी से। **ननु** = निश्चित रूप से। **अनुमेयशोभि** = 'शोभा अर्थात् सौन्दर्य का अनुमान करने योग्य। **यत्** = जो। **पश्चात्** = बाद में, विवाह के उपरान्त। **गिरिशेन** = शिवजी के द्वारा **अनन्यनारीकमनीयम्** = किसी अन्य नारी इच्छा करने पर भी प्राप्त न होने वाले। **अंकम्** = गोद में, उत्संग में। **आरोपितम्** = स्थापित किया, रखा।

कुमारसंभवम् एवं महाकाव्य
और गद्यकाव्य

NOTES

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसम्भव' के प्रथम सर्ग से लिया गया है। इस छन्द के माध्यम कालिदास जी ने पार्वती के नितम्बस्थल का महत्त्व रेखांकित किया है।

हिन्दी अनुवाद—उस शुद्ध चरित्र वाली पार्वती के मेखला सूत्र के स्थान अर्थात् नितम्ब स्थल की शोभा का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि विवाह के पश्चात् शिवजी ने अन्य नारियों द्वारा इच्छा करने पर भी दुर्लभ अपनी गोद में उसे स्थान दिया।

संस्कृत व्याख्या—पार्वती अनिन्दिता शुद्धचरित्रा वा आसीत्। तस्याः मेखला सूत्रस्थानं नितम्बस्थलं वा एतावता निश्चितरूपेण शोभायाः अनुमानस्य आधारं वर्तते, यत् विवाहोपरान्तं शिवेन अन्याभिः नारीभिः इच्छयापि प्राप्तुं न योग्ये स्वकीये अंके तदेव नितम्बस्थलं स्थापितम्।

अलंकार—भगवान् शिव की गोद में बैठने वाली भगवती पार्वती के सौभाग्य का अनुमान लगाने में समर्थ होने के कारण इस छन्द में अनुमान अलंकार है।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है।

[38]

तस्याः प्रविष्टा नतनाभिरन्ध्रं रराज तन्वी नवलोमराजिः।

नीवीमतिक्रम्य सितेतरस्य तन्मेखलोमध्यणेरिवाऽर्चिः॥ 38॥

अन्वय—नीवीम् अतिक्रम्य नतनाभिरन्ध्रं प्रविष्टा तन्वी तस्याः नवलोमराजिः सितेतरस्य तन्मेखलामध्यमेणः अर्चिः इव रराज।

शब्दार्थ—नीवीम् = नीवी को, कमर के अधोवस्त्र की गाँठ को। **अतिक्रम्य** = उल्लंघन करके। **नतनाभिरन्ध्रम्** = नीची अथवा गहरी नाभि के विवर अर्थात् बिल में। **प्रविष्टा** = घुसी, प्रविष्ट हुई। **तन्वी** = पतली। **नवलोमराजिः** = नवीन रोमावली। **सितेतरस्य** = श्वेत से भिन्न नील अथवा श्यामवर्ण की। **तन्मेखलामध्यमणेः** = उस पर्वती की करधनी के बीच वाली मणि की। **अर्चिः** = प्रभा, प्रकाश। **इव** = समान। **रराज** = सुशोभित हुई।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा निर्मित महाकाव्य 'कुमारसम्भव' के प्रथम सर्ग से लिया गया है। कालिदास जी ने इस छन्द के माध्यम से पार्वती की नाभि के नीचे की रोमपंक्ति का वर्णन किया है।

हिन्दी अनुवाद—नीवी अर्थात् कटि के वस्त्र की गाँठ का उल्लंघन करके गहरे नाभिरूपी गड्ढे में प्रवेश करने वाली पतली एवं नयी रोमावली नील वर्ण की उस पार्वती की करधनी के मध्य में स्थित इन्द्रनीलमणि की कान्ति के समान सुशोभित हुई।

संस्कृत व्याख्या—पार्वत्याः कटिवस्त्रप्रस्थिम् उल्लंघ्य गहननाभिविवरप्रवेशं कृतवती कृशा नवीना च रोमपंक्तिः नीलवर्णस्य मेखलायाः मध्यभागे स्थितस्येन्द्रनीलमणेः प्रभातुल्यं चकाशे।

अलंकार—पार्वती के नाभि विवर में प्रवेश करने वाली नवरोमावलि में मेखला के मध्य में स्थित इन्द्रनील मणि की सम्भावना होने के कारण इस छन्द में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है।

NOTES

[39]

मध्येन सा वेदिविलग्नमध्या वलित्रयं चारु बभार बाला ।

आरोहणार्थं नवयौवनेन कामस्य सोपानमिव प्रयुक्तम् ॥ 39 ॥

अन्वय—वेदिविलग्नमध्या सा बाला मध्येन चारु वलित्रयं कामस्य आरोहणार्थं नवयौवनेन प्रयुक्तं सोपानम् इव बभार ।

शब्दार्थ—वेदिविलग्नमध्या = यज्ञ की वेदी के समान पतली कमर वाली । सा = वह पार्वती । बाला = कुमारी । मध्येन = मध्य भाग अर्थात् कमर के द्वारा । वलित्रयम् = उदर की तीन रेखाओं को । चारु = सुन्दर । कामस्य = कामदेव के । आरोहणार्थम् = चढ़ने के लिए । नवयौवनेन = नये यौवन के द्वारा । प्रयुक्तम् = विरचित । सोपानम् इव = सीढ़ियों के समान । बभार = वहन करती थी, धारण करती थी ।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसम्भव' के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। कालिदास जी ने इस छन्द के माध्यम से पार्वती के उदर की तीन रेखाओं त्रिवली का वर्णन किया है।

हिन्दी अनुवाद—यज्ञ वेदी के समान क्षीण कटि प्रदेश वाली अर्थात् पतली कमर वाली पार्वती ने कामदेव के आरोहण अर्थात् ऊपर चढ़ने के लिए नवयौवन के द्वारा निर्मित सोपान के समान अपने कटि प्रदेश में अत्यधिक सुन्दर त्रिवली अर्थात् तीन रेखाओं को धारण किया ।

संस्कृत व्याख्या—यज्ञवेदिसमानकृशकटिभागा सा कुमारी पार्वती स्वकीयेन कटिभागेन कम्पीयम् उदररेखात्रयम् गदनस्य आरोहणनिमित्तं नवयौवनेनरचितं सोपानमिव धारयामास ।

अलंकार—यहाँ पार्वती का कटिप्रदेश त्रिवली उपमेय है। उसमें उपमान सोपान की सम्भावना के आधार पर उत्प्रेक्षा अलंकार है।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है।

[40]

अन्योन्यमुत्पीडयदुत्पलाक्ष्याः स्तनद्वयं पाण्डु तथा प्रवृद्धम् ।

मध्ये यथा श्याममुखस्य तस्य मृणालसूत्रान्तरमप्यलभ्यम् ॥ 40 ॥

अन्वय—अन्योन्यम् उत्पीडयत् पाण्डु उत्पलाक्ष्याः स्तनद्वयम् तथा प्रवृद्धम् यथा श्याममुखस्य तस्य मध्ये मृणालसूत्रान्तरम् अपि अलभ्यम् ।

शब्दार्थ—अन्योन्यम् = एक-दूसरे को । उत्पीडयत् = पीड़ित करते हुए, एक-दूसरे से संलग्न । पाण्डु = गौर वर्ण के । उत्पलाक्ष्याः = कमल के समान नयनों वाली के । स्तनद्वयम् = दो स्तन । तथा = इस प्रकार । प्रवृद्धम् = बढ़े, वृद्धि को प्राप्त हुए । श्याममुखस्य = काले अग्रभाग वाले के । तस्य = उस स्तरद्वय के, उन दोनों स्तनों के । मध्ये = बीच में । मृणालसूत्रान्तरम् = विसतन्तु मात्र का अन्तर, स्थान । बिस = कमल का डंठल तोड़ने पर जो धागे जैसा दिखाई देता है, उसे बिस कहते हैं । अपि = भी । अलभ्यम् = अप्राप्त था ।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसम्भव' के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। इस छन्द के माध्यम से कालिदास ने पार्वती के परस्पर सटे हुए विशाल स्तनों का वर्णन किया है।

कुमारसम्भवम् एवं महाकाव्य
और गद्यकाव्य

NOTES

हिन्दी अनुवाद—कमल के समान नयनों वाली उस पार्वती के एक-दूसरे को पीड़ा पहुँचाते हुए तथा गोरे रंग के दोनों स्तन इस प्रकार बढ़े कि काले अग्र भाग वाले उन दोनों स्तनों के बीच में बिस तन्तु के समान भी अवकाश अर्थात् रिक्त स्थान प्राप्त नहीं था।

संस्कृत व्याख्या—पार्वती उत्पलाक्षी कमलनयनी वा आसीत्। तस्याः स्तनद्वयं गौरवर्णम् अति प्रवृद्धम् आसीत्। तस्य स्तनौ कृष्णमुखौ आस्ताम्। पार्वत्याः स्तनद्वयस्य मध्ये बिसतन्तोः स्थापनस्य अपि अवकाशो नासीत्।

अलंकार—उत्पलाक्षी अर्थात् कमलनयनी में वाचक शब्द इव, वत् आदि का अभाव होने से इस छन्द में लुप्तोपमा अलंकार है। स्तनों की अधिक विशालता के वर्णन से यहाँ अतिशयोक्ति अलंकार है।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है।

[41]

शिरीषपुष्पाधिकसौकुमार्यौ बाहू तदीयाविति मे वितर्कः।

पराजितेनापि कृतौ हरस्य यौ कण्ठपाशौ मकरध्वजेन॥ 41॥

अन्वय—यौ (बाहू) पराजितेन अपि मकरध्वजेन हरस्य कण्ठपाशौ कृतौ (अतः) शिरीषपुष्पाधिकसौकुमार्यौ इति मे वितर्कः।

शब्दार्थ—यौ = जो दोनों। पराजितेन = हारे हुए ने। अपि = भी। मकरध्वजेन = कामदेव ने। हरस्य = शिवजी के। कण्ठपाशौ = ग्रीवा के बन्धन, गले के फन्दे। कृतौ = किये। तदीयौ = उस पार्वती के। बाहू = दोनों बाहु, दोनों भुजाएँ। शिरीषपुष्पाधिकसौकुमार्यौ = शिरीष के पुष्प से अधिक सुकुमारता वाले। इति = ऐसा। मे = मेरा। वितर्कः = अनुमान है।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसम्भव' के प्रथम सर्ग से लिया गया है। कालिदास जी ने इस छन्द के माध्यम से पार्वती की भुजाओं की कोमलता का अनुमान प्रस्तुत किया है।

हिन्दी अनुवाद—पार्वती के जिन दोनों बाहुओं को पराजित होने पर भी कामदेव ने शिवजी के कंठ का फन्दा बनाया, उसके वे दोनों बाहु शिरीष के फूल से अधिक कोमल थे, ऐसा मेरा अनुमान है।

संस्कृत व्याख्या—कामदेवः शंकरं पराजितुम् उद्योगं कृतवान्, परं स्वयमेव तेन शंकरेण पराजितः अभवत्। तेन कामदेवेन पार्वत्याः बाहुयुगलम् महेशस्य कंठस्य पाशौ कृतौ। एतेन अहम् अनुमानं करोमि यत् पार्वत्याः बाहुयुगलं शिरीषकुसमात् अधिक सुकुमारौ आस्ताम्। कामदेवस्य पंचबाणेषु शिरीष कुसुममेव मुकुमारतटं वर्तते। यत् कार्यं शिरीषकुसुमं कर्तुं नाशकत् तत् पार्वत्याः बाहुयुगलेन कृतम्। एतेन अनुमीयते यत् पार्वत्याः बाहुयुगलं शिरीषकुसुमात् कोमलतरं आस्वाम्, इति कालिदासस्य अनुमानं समीचीनम्।

अलंकार—पार्वती के बाहुयुगल शंकर जी के कंठ के पाश बने, इस आधार पर यहाँ परिणाम अलंकार है।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है।

कण्ठस्य तस्याः स्तनबन्धुरस्य मुक्ता कलापस्य च निस्तलस्य ।

अन्योन्यशोभाजननाद् बभूव साधारणो भूषणभूष्यभावः ।। 42 ।।

NOTES

अन्वय—तस्याः स्तनबन्धुरस्यः कण्ठस्य निस्तलस्य मुक्ताकलापस्य च अन्योन्य शोभाजननाद् साधारणे भूषणभूष्यभावः बभूव ।

शब्दार्थ—तस्याः = उस पार्वती के । स्तनबन्धुरस्य = पयोधरों के कारण ऊपर उठे हुए के । कण्ठस्य = कंठ के । वर्तुलस्य = गोल आकार वाले के । मुक्ताकलापस्य = मोतियों के समूह के, मोतियों की माला के । अन्योन्यशोभा जननात् = एक-दूसरे की शोभा के जनक होने के कारण । भूषण-भूष्यभावः = अलंकार और अलंकार्य भाव । साधारणः = समान । बभूव = हुआ, हो गया ।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसम्भव' के प्रथम सर्ग से उद्धृत है । कालिदास जी ने इस छन्द के माध्यम से पार्वती के कंठ तथा उसमें पहने गये मोतियों के हार को एक-दूसरे की शोभा बढ़ाने वाला बताया है ।

हिन्दी अनुवाद—उस पार्वती का कण्ठ उसके विशाल स्तनों के कारण ऊँचा था । अपने कण्ठ में पार्वती ने मोतियों का हार पहना था । ये दोनों एक-दूसरे की शोभा बढ़ा रहे थे । इस प्रकार इन दोनों का आपस में अलंकार तथा अलंकार्य भाव समान हो गया था ।

संस्कृत व्याख्या—तस्याः पार्वत्याः स्तनौ विशालौ आस्ताम् । स्तनानां विशालत्वेन तस्याः कण्ठः उन्नतः आसीत् । पार्वत्या स्वकीये कण्ठे मुक्ताहारः धारितः आसीत् । पार्वत्याः कण्ठः, तस्मिन्धारितः मुक्ताहारश्चे परस्पर शोभावर्धकौ आस्ताम् । अनेन एतयोः अलंकारभावः, अलंकार्यभावश्च समानः अभवत् । कण्ठः मुक्ताहारस्य शोभां वर्धयति स्म, मुक्ताहारः कण्ठस्य शोभायाः वृद्धिकरोति स्म ।

अलंकार—पार्वती के कंठ से मुक्ताहार की शोभा वृद्धि से तथा मुक्ताहार से कंठ की शोभा वृद्धि से उस छन्द में अन्योन्य अलंकार है ।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है ।

[43]

चन्द्रं गता पद्मगुणान् भुङ्क्ते पद्माश्रिता चान्द्रमसीमभिख्याम् ।

उपामुखं तु प्रतिपद्य लोला द्विसंश्रयां प्रीतिमवाप लक्ष्मीः । 43 ।।

अन्वय—लोला लक्ष्मीः चन्द्रं गता (सती) पद्मगुणान् न भुङ्क्ते, पद्माश्रिता (सती) चान्द्रमसीम् अभिख्यां न भुङ्क्ते । उपामुखं प्रतिपद्य तु द्विसंश्रयां प्रीतिम् अवाप ।

शब्दार्थ—लोला = चंचला, चंचल । लक्ष्मीः = श्री, विष्णुप्रिया । चन्द्रं गता = चन्द्रमा के समीप जाने पर । पद्मगुणान् = कमल के गुणों को । न = नहीं । भुङ्क्ते = प्राप्त नहीं करती है । पद्माश्रिता = कमल पर आश्रित होने वाली । चान्द्रमसीम् = चन्द्रमा सम्बन्धिनी, चन्द्रमा की । अभिख्याम् = शोभा को । उपामुखम् = पार्वती के मुख को । प्रतिपद्य = प्राप्त करके । तु = तो । द्विसंश्रयाम् = दोनों पर, चन्द्रमा और कमल दोनों पर आश्रित । प्रीतिम् = सुख को । अवाप = प्राप्त किया ।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसम्भव' के प्रथम सर्ग से लिया गया है। इस छन्द के माध्यम से कालिदास जी ने पार्वती के मुख को पाकर लक्ष्मी अर्थात् शोभा के चन्द्रमा और कमल दोनों के आश्रय को प्राप्त करने की बात कही है।

कुमारसंभवम् एवं महाकाव्य
और गद्यकाव्य

NOTES

हिन्दी अनुवाद—चञ्चल स्वभाव वाली लक्ष्मी अर्थात् शोभा चन्द्रमा के समीप जाकर कमल के सौरभ आदि गुणों को प्राप्त नहीं करती और कमल पर आश्रित होकर चन्द्रमा की शोभा को अर्थात् अमृत के समान आनन्द देने वाली कान्ति को प्राप्त नहीं करती। वहीं लक्ष्मी पार्वती के मुख को प्राप्त करके चन्द्रमा और कमल दोनों के गुणों को प्राप्त कर रही थी।

संस्कृत व्याख्या—लक्ष्मीः शोभा वा चञ्चलस्वभावां कथ्यते। चन्द्रमसं प्राप्ता सा शोभा कमलस्य गुणानाम् अनुभवं न करोति। सा शोभा यदा कमलस्य आश्रयं प्राप्नोति तदा चन्द्रसम्बन्धिनी कान्तिम् न अनुभवति। सैव यदा पार्वत्याः मुखं प्राप्नोति, तदा इन्द्रोः अरविन्दस्य च उभयोः सुखं प्राप्तवती आसीत्।

अलंकार—पार्वती का मुख उपमेय है तथा चन्द्रमा और कमल उपमान हैं। उपमान उपमेय की अपेक्षा श्रेष्ठ होता है। इस छन्द में इन दोनों उपमानों की अपेक्षा उपमेय की श्रेष्ठता होने के कारण व्यतिरेक अलंकार है।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है।

[44]

पुष्पं प्रवालोलपहितं यदि स्यान्मुक्ताफलं वा स्फुटविद्रुमस्थम्।

ततोऽनुकुर्याद्विशदस्य तास्यास्ताम्रौष्ठपर्यन्तरुचः स्मितस्य ॥ 44 ॥

अन्वय—पुष्पं प्रवालोलपहितं स्यात् यदि मुक्ताफलं वा स्फुटविद्रुमस्थं स्यात् यदि ततः विशदस्य ताम्रौष्ठपर्यन्तरुचः तस्याः स्मितस्य अनुकुर्यात्।

शब्दार्थ—पुष्पम् = फूल। प्रवालोलपहितम् = प्रवाल + उपहितम् = नवीन पल्लव पर रखा हो। मुक्ताफलम् = मोती। यदि = अगर। स्फुटविद्रुमस्थम् = निर्मल मूँगे पर रखा हो। ततः = उस समय। विशदस्य = श्वेत वर्ण के। ताम्रौष्ठ पर्यन्तरुचः = लाल रंग के होठ पर फैली कान्ति वाले। स्मितस्य = मन्द हास्य का। अनुकुर्यात् = अनुकरण कर सकता है।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसम्भव' के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। कालिदास जी ने इस छन्द के माध्यम से पार्वती के मन्दहास्य का वर्णन किया है।

हिन्दी अनुवाद—यदि श्वेतवर्ण का फूल लाल रंग के नवीन किसलय पर रखा हो अथवा श्वेत रंग वाला मोती लाल रंग के स्वच्छ मूँगे पर रखा हो तो इन दोनों में से कोई एक श्वेतवर्ण का तथा लाल रंग के होठ पर फैली हुई कान्ति वाले पार्वती के मन्दहास्य का अनुकरण कर सकता है।

संस्कृत व्याख्या—यदि श्वेतवर्णस्य पुष्पं रक्तवर्णस्य नवकिसलयस्य उपरिस्थितं स्यात् अथवा यदि श्वेतवर्णस्य मौक्तिकं स्वच्छरक्तवर्णस्य विद्रुमस्य उपरि तिष्ठते तदैव पार्वत्याः रक्तवर्णस्यौष्ठपर्यन्तं विकीर्णितस्य निर्मलस्य मन्दहास्य अनुकरणं कर्तुं समर्थः भवेत्।

अलंकार—पुष्प और पल्लव का मुक्ताफल तथा विद्रुम से सम्बन्ध न होने पर भी सम्बन्ध की कल्पना होने पर अतिशयोक्ति अलंकार है। पार्वती का मन्दस्मित उपमेय है तथा पुष्प एवं मुक्ताफल उपमान हैं। इस छन्द में उपमेय को उपमान तथा उपमान को उपमेय बना देने के कारण प्रतीप अलंकार भी सम्भव है।

[45]

NOTES

स्वरेण तस्याममृतस्रुतेव प्रजल्पितायामभिजातवाचि।

अप्यन्यपुष्टा प्रतिकूलशब्दा श्रोतुर्वितन्त्रीरिव ताड्यमाना ॥ 45 ॥

अन्वय—अभिजातवाचि तस्यां अमृतस्रुता इव स्वरेण प्रजल्पितायां, अन्यपुष्टा अपि ताड्यमाना वितन्त्रीः इव श्रोतुः प्रतिकूलशब्दा (भवति)।

शब्दार्थ—अभिजातवाचि = उच्च कुल के उचित वचन वाली में। तस्याम् = उसमें, पार्वती में। अमृतस्रुता = अमृत टपकाने वाले के द्वारा। स्वरेण = स्वर के द्वारा। प्रजल्पितायाम् = भाषण करने अथवा बोलने पर। अन्यपुष्टा = कोकिला, कोयल। अपि = भी। ताड्यमाना = बजाई जाती हुई। वितन्त्री = विषम खिंचे तारों वाली वीणा के। इव = समान। श्रोतुः = सुनने वाले के प्रति, श्रोता को। प्रतिकूल शब्दा = कर्ण कठोर नाद वाली। भवति = हो जाती है, होती है।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसम्भव' के प्रथम सर्ग से लिया गया है। इस छन्द के माध्यम से कालिदास जी ने पार्वती के मधुरभाषण का वर्णन किया है।

हिन्दी अनुवाद—मधुर भाषण करने वाली उस पार्वती के अमृत टपकाने वाले स्वर के द्वारा वार्तालाप पर कोयल भी सुनने वाले को विषम अर्थात् अनमेल तारों वाली बजायी हुई वीणा के समान कर्णकटु जान पड़ती थी।

संस्कृत व्याख्या—पार्वती उच्चकुलोत्पन्नत्वेन मधुरभाषिणी आसीत्। सा यदा अमृतस्पन्दिना स्वरेण कथनं करोति स्म, तदा श्रोतुः कोकिला अपि ताड्यमाना विषम तारवती वीणा इव कर्णकठोरनादा भवति स्म।

अलंकार—इस छन्द में 'अमृतस्रुता इवस्वरेण' शब्दों में अमृत वर्षा की सम्भावना होने के कारण उत्प्रेक्षा अलंकार है। कोकिला की वाणी की तुलना विषम तारों वाली वीणा के नाद से होने के कारण उपमा अलंकार है।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है।

[46]

प्रवातनीलोत्पलनिर्विशेषमधीर विप्रेक्षितमायताक्ष्या।

तया गृहीतं नु मृगागङ्गाभ्यस्ततो गृहीत नु मृगांगनाभिः ॥ 46 ॥

अन्वय—प्रवातनीलोत्पलनिर्विशेषम् अधीरविप्रेक्षितम् आयताक्ष्याः तया मृगांगनाभ्यः गृहीतं नु, यद्वा मृगांगनाभिः ततो गृहीतं नु ?।

शब्दार्थ—प्रवातनीलोत्पलनिर्विशेषम्—पर्याप्त वायु वाले स्थान में खिले हुए नीलकमल के समान। अधीरविप्रेक्षितम् = चञ्चल अवलोकन। आयताक्ष्याः = विशाल नयनों वाली के द्वारा। तया = उसके द्वारा। मृगांगनाभ्यः = हरिणियों से। नु = क्या। गृहीतम् = ग्रहण किया, सीखा था। मृगांगनाभिः = हरिणियों के द्वारा। ततः = उससे, पार्वती से।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसम्भव' के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। कालिदास जी ने इस छन्द के माध्यम से पार्वती की चञ्चल चितवन का वर्णन किया है।

हिन्दी अनुवाद—पर्याप्त वायु वाले स्थान में खिले हुए नील कमल के समान चञ्चल चितवन को विशाल नयनों वाली पार्वती ने क्या हरिणियों से सीखा अथवा हरिणियों ने क्या पार्वती से सीखा था ?

कुमारसंभवम् एवं महाकाव्य
और गद्यकाव्य

NOTES

संस्कृत व्याख्या—पर्याप्त वायुयुक्ते स्थले यत् नीलकमलं विकसति तत्सदृशमेव पार्वत्याः दृष्टिपातमासीत् । ईदृशं दृष्टिपातं पार्वत्या हरिणीभ्यः शिक्षितं हरिणीभिः वा पार्वत्याः शिक्षितम् इति प्रश्नस्योत्तरं न प्राप्यते ।

अलंकार—प्रवातनीलोत्पलनिर्विशेषम् में **लुप्तोपमा अलंकार** है। यहाँ पार्वती के नेत्रों की तुलना नीलकमल से की गयी है। वाचक शब्द इव का अभाव है। पार्वती ने चञ्चल चितवन की शिक्षा हरिणियों से प्राप्त की, इस आधार पर **उत्प्रेक्षा अलंकार** है। पार्वती ने चञ्चल चितवन की शिक्षा हरिणियों से प्राप्त की अथवा हरिणियों ने पार्वती से प्राप्त की, इसका निर्णय न होने से **सन्देह अलंकार** है।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपेन्द्रवज्रा छन्द में हुई है।

[47]

तस्याः शलाकाञ्जननिर्मितेव कान्तिर्भुवोरायतलेखयोर्या ।

तां वीक्ष्य लीलाचतुरामनंगः स्वचापसौन्दर्यमदं मुमोच ॥ 47 ॥

अन्वय—आयतलेखयोः तस्याः भ्रुवोः शलाकाञ्जननिर्मिता इव, या कान्तिः (आसीत्) लीलाचतुरां तां वीक्ष्य अनंगः स्वचापसौन्दर्यमदं मुमोच ।

शब्दार्थ—आयतलेखयोः = लम्बी रेखाओं वाली। तस्याः = उस पार्वती की। भ्रुवोः = दो भौंहों की। शलाकाञ्जननिर्मिता = सलाई के माध्यम से काजल से बनी हुई। या = जो। कान्तिः = शोभा। स्थिता = थी। लीलाचतुराम् = विलास के कारण सुन्दर। ताम् = उसको। वीक्ष्य = देखकर। अनंगः = कामदेव ने। स्वचापसौन्दर्यमदम् = अपने धनुष की सुन्दरता के अभिमान को। मुमोच = त्याग दिया।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा निर्मित महाकाव्य 'कुमारसंभव' के प्रथम सर्ग से लिया गया है। इस छन्द के माध्यम से कालिदास जी ने पार्वती की भौंहों की सुन्दरता का वर्णन किया है।

हिन्दी अनुवाद—उस पार्वती की विशाल रेखाओं वाली भौंहों की शलाका द्वारा अंजन से विरचित जो शोभा थी, वह विलास के कारण बढ़ी एवं अधिक सुन्दर हो गयी थी। उसको देखकर कामदेव ने अपने धनुष के सौन्दर्य के गर्व को त्याग दिया। तात्पर्य यह है कि अंजन शलाका अर्थात् काजल लगी हुई सलाई के कारण पार्वती की भौंहें कामदेव के धनुष से अधिक सुन्दर बन गयी थीं।

संस्कृत व्याख्या—पार्वत्याः भ्रुवौ विस्तृरेखासमानौ आस्ताम् । अंजनशलाकाया तयोः भ्रुवोः शोभायाः वृद्धिः कृता । पार्वत्या विलास लीलायातयोः भ्रुवोः सौन्दर्यमतिशयवर्धितम् आसीत् । तं विलोक्य कामदेवः स्वीकीयस्यचापस्य सौन्दर्यस्य गर्वं त्यक्तवान् ।

अलंकार—इस छन्द में पार्वती की दोनों भौंहों के निर्माण में अंजन शलाका से निर्मित होने की सम्भावना के कारण यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है। कामदेव ने अपने धनुष के सौन्दर्य को त्याग दिया। इस आधार पर यहाँ अतिशयोक्ति अलंकार है।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है।

लज्जा तिरश्चां यदि चेतसि स्यादसंशयं पर्वतराजपुत्र्याः।

तं केशपाशं प्रसमीक्ष्य कुर्युर्बलिप्रियत्वं शिथिलं चमर्यः॥ 48॥

NOTES

अन्वय—तिरश्चां चेतसि लज्जा स्याद् यदि, असंशयं पर्वतराजपुत्र्याः तं केशपाशं प्रसमीक्ष्य चमर्यः बालप्रियत्वं शिथिलं कुर्युः।

शब्दार्थ—तिरश्चम् = पशु-पक्षियों के। चेतसि = चित्त में। स्यात् = हो। यदि = अगर। असंशयम् = बिना सन्देह के। पर्वतराजपुत्र्याः = पर्वतों के राजा हिमालय की पुत्री पार्वती के। तम् = उसको। केशपाशम् = केशसमूह को। प्रसमीक्ष्य = भलीभाँति देखकर। चमर्यः = चमरी नाम वाली गायें। बालप्रियत्वम् = अपने बालों के प्रति प्रेम को। शिथिलम् = मन्द। कुर्युः = कर देती।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसम्भव' के प्रथम सर्ग से लिया गया है। कालिदास जी ने इस छन्द के माध्यम से पार्वती के केशों के सौन्दर्य का वर्णन किया है।

हिन्दी अनुवाद—पशु-पक्षियों के चित्त में यदि लज्जा होती तो निःसन्देह पर्वतराज हिमालय की पुत्री पार्वती की केशराशि को देखकर चमरी नाम वाली गायें अपने बालों के प्रति प्रेम को शिथिल कर देती।

संस्कृत व्याख्या—यदि पशुपक्षिणां चित्ते लज्जायाः भावना स्यात्, तदा अस्मिन् विषये कोऽपि संशयो नास्ति यत् पर्वतराजहिमालयस्य कन्यायाः पार्वत्या केशपाशं दृष्ट्वा चमर्यः स्वकीयान् बालान् प्रति प्रेमभावं शिथिलं कुर्युः।

अलंकार—यहाँ चमरी गायों के प्रति अपने बालों के प्रति सौन्दर्य का अभिमान न त्यागने का कारण उनकी लज्जाहीनता होने से काव्यलिंग अलंकार है।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है।

[49]

सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन यथाप्रदेशं विनिवेशितेन।

सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्नादेकस्थसौन्दर्यदिदृक्षयेव॥ 49॥

अन्वय—सा विश्वसृजा एकस्थसौन्दर्यदिदृया इव प्रयत्नात् यथाप्रदेशम् विनिवेशितेन सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन निर्मिता।

शब्दार्थ—सा = वह पार्वती। विश्वसृजा = संसार की रचना करने वाले ब्रह्माजी ने। एकस्थसौन्दर्यदिदृक्षया = एक स्थान पर सौन्दर्य देखने की इच्छा से। इव = मानो। प्रयत्नात् = प्रयत्न से, प्रयत्न करे। यथाप्रदेशम् = उचित स्थान में। विनिवेशितेन = स्थापना के द्वारा। सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन = उपमान बनी हुई सभी वस्तुओं के समूह से। निर्मिता = निर्माण किया, रचना की।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा निर्मित 'कुमारसम्भव' के प्रथम सर्ग से लिया गया है। इस छन्द के माध्यम से कालिदास ने पार्वती के शरीर में सौन्दर्य के समस्त प्रतिमानों के होने की घोषणा की है।

हिन्दी अनुवाद—संसार की रचना करने वाले ब्रह्मा जी ने समस्त सौन्दर्य को एक ही स्थान पर देखने की अभिलाषा से पार्वती को प्रयत्न करके बनाया है। शरीर की जितनी उपमान बनने वाली वस्तुएँ हैं, उन्हें एक स्थान पर रखकर पार्वती की रचना की गयी है।

संस्कृत व्याख्या—विश्वस्य रचनाकत्री ब्रह्मणा तस्याः पार्वत्या रचना समस्तस्य सौन्दर्यस्य एकस्मिन् स्थाने दर्शनस्य इच्छया कृतः आसीत्। तस्मात् कारण तेन ब्रह्मणा सौन्दर्यस्य उपमानसम्बन्धीनि समस्तानि वस्तूनि एकत्र निवेश्य तस्याः पार्वत्याः रचना कृता।

कुमारसंभवम् एवं महाकाव्य
और गद्यकाव्य

NOTES

अलंकार—इस छन्द में इव का प्रयोग सम्भावना के अर्थ में होने के कारण उत्प्रेक्षा अलंकार है।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में की गयी है।

पार्वती परिणय प्रसंग

[50]

तां नारदः कामचरः कदाचित्कन्यां किल प्रेक्ष्य पितुः समीपे।

समादिदिशैकवधूं भवित्रीं प्रेम्णा शरीरार्धहरां हरस्य ॥ 50 ॥

अन्वय—कामचरः नारदः कदाचित् पितुः समीपे कन्यां तां प्रेक्ष्य किल प्रेम्णा हरस्य शरीरार्धहरां एकवधूं भवित्रीं समादिदेश।

शब्दार्थ—कामचरः = स्वेच्छाचारी। पितुः = पिता हिमालय के। समीपे = समीप में। ताम् कन्याम् = उस कन्या पार्वती को। प्रेक्ष्य = देखकर। किल = निश्चित रूप से। प्रेम्णा = प्रेम के द्वारा। हरस्य = शिवजी की। शरीरार्धहराम् = आधे शरीर का हरण करने वाली, अर्द्धांगिनी। एकवधूम् = एकमात्र पत्नी। भवित्रीम् = होने वाली को। समादिदेश = घोषित किया।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसंभव' के प्रथम सर्ग से लिया गया है। इस छन्द के माध्यम से कालिदास जी ने पार्वती के शिवजी की पत्नी होने का भाव व्यक्त किया है।

हिन्दी अनुवाद—स्वेच्छाचारी नारद जी ने कभी पिता हिमालय के समीप उस कन्या पार्वती को देखकर कहा कि यह निश्चित रूप से अपने प्रेम के द्वारा शिवजी की एकमात्र अर्द्धांगिनी पत्नी होगी।

संस्कृत व्याख्या—कदाचित् स्वेच्छाचारी नारदः हिमालयस्य गृहमागतः। पितु हिमालयस्य समीपे तां कन्यां पार्वतीं दृष्ट्वा नारदेन कथितम् यत् इयं स्वप्रेम्णा भगवतः शंकस्स्य एकाकिनी अर्द्धांगिनी भविष्यति।

अलंकार—इस छन्द में क वर्ण की आवृत्ति के कारण अनुप्रास अलंकार है।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है।

[51]

गुरुः प्रगल्भेऽपि वयस्यतोस्यास्तस्थौ निवृत्तान्यवराभिलाषः।

ऋते कृशानोर्न हि मन्त्रपूतमर्हन्ति तेजांस्यपराणि हव्यम् ॥ 51 ॥

अन्वय—गुरुः अतः अस्याः प्रगल्भे वयसि अपि निवृत्तान्यवराभिलाषः सन् तस्थौ। मन्त्रपूतं हव्यं कृशानोः ऋते अपराणि तेजांसि न अर्हन्ति।

शब्दार्थ—गुरुः = पिता हिमालय ने। अतः = इस कारण से, इसलिए। अस्याः = इसके, पार्वती के। प्रगल्भे वयसि = यौवन वय में। अपि = भी। निवृत्तान्यवराभिलाषः = अन्य वरों की इच्छा से हीन होकर। तस्थौ = स्थित रहे, बैठे रहे। हि = निश्चित रूप से। मन्त्रपूतम् = मन्त्र से पवित्र। हव्यम् = हवन सामग्री को।

कृशानोः = अग्नि से। ऋते = भिन्न, अलग। ऊपराणि = अन्य। तेजांसि = तेज। न = नहीं। अर्हन्ति = समर्थ हैं, योग्य हैं।

NOTES

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा निर्मित महाकाव्य 'कुमारसम्भव' के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। इस छन्द के माध्यम से कालिदास जी ने पार्वती के विवाह के विषय में पिता हिमालय के निश्चित होकर बैठने का कारण बताया है।

हिन्दी अनुवाद—इसलिए अर्थात् नारदजी की भविष्यवाणी पर विश्वास करके पिता हिमालय पार्वती की यौवनावस्था में भी अन्य वर की अभिलाषा का त्याग करके निश्चित बैठे रहे। यह निश्चय है कि मन्त्रों से पवित्र सामग्री को अग्नि के अतिरिक्त अन्य तेज ग्रहण करने के योग्य नहीं है।

संस्कृत व्याख्या—नारदस्य भविष्यवाण्याः कारणेन यौवनवस्थां प्राप्तवतीमपि पार्वती विलोस्य पिता हिमालयः अन्येषां वराणाम् अभिलाषां प्रति अनिच्छुकः स्थितः। निश्चयेन या हवन सामग्री मननपूता भवति तां स्वीकर्तुं शेषाणि तेजांसि पात्राणि न मदन्ति।

अलंकार—इस छन्द में सामान्य कथन से विशेष कथन का समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है।

[52]

अयाचितारं न हि देवदेवमद्रिः सुतां ग्राहयितुं शशाक।

अभ्यर्थनाभंगभयेन साधुर्माध्यस्थमिष्टेऽप्यवलम्बतेऽर्थे ॥ 52 ॥

अन्वय—अद्रिः अयाचितारम् देवदेवम् सुताम् ग्राहयितुम् न शशाक। हि साधुः अभ्यर्थनाभंगभयेन इष्टे अपि अर्थे माध्यस्थम् अवलम्बते।

शब्दार्थ—अद्रिः = पर्वत, हिमालय। अयाचितारम् = याचना न करने वाले को। देवदेवम् = देवों के देव महादेव को। सुताम् = पुत्री, पार्वती को। ग्राहयितुम् = स्वयं बुलाकर विवाह के द्वारा ग्रहण कराने के लिए। न = नहीं। शशाक = समर्थ हुए। हि = निश्चित रूप से। साधुः = सज्जन। अभ्यर्थनाभंगभयेन = प्रार्थना अस्वीकार करने के कारण पूर्ण न होने के भय से। इष्टे अपि = मन चाहे भी। अर्थे = विषय में। माध्यस्थम् = उदासीनता। अवलम्बते = ग्रहण करना है।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसम्भव' के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। कालिदास जी ने इस छन्द के माध्यम से युवती पार्वती के विवाह के प्रति पिता की उदासीनता का कारण प्रस्तुत किया है।

हिन्दी अनुवाद—पर्वतों के राजा हिमालय ने याचना न करने वाले देवों के भी देव शंकर जी को अपनी पुत्री पार्वती को ग्रहण नहीं करा सके। सज्जन पुरुष अपनी प्रार्थना असफल होने के भय से मनचाहे विषय में भी उदासीनता का आश्रय लेता है।

संस्कृत व्याख्या—देवनामपि देवेन शिवेन पार्वती पत्नीरूपेण प्राप्तुं पर्वतराजो हिमालयः न याचितः। तस्मात् कारणात् हिमालयः स्वकन्यां पार्वतीं शिवाय दातुं नाशाकनोत्। अस्य कारणम् इदं वर्तते यत् सज्जनः स्वयाचनायाः असफलतां विचार्य इष्टे वस्तुनि अपि उदासीनः तिष्ठति।

अलंकार—इस छन्द में सामान्य कथन का विशेष कथन के द्वारा समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

कुमारसंभवम् एवं महाकाव्य
और गद्यकाव्य

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है।

[53]

NOTES

यदैव पूर्वे जनेन शरीरं सा दक्षरोषात् सुदती ससर्ज।

तदा प्रभृत्येव विमुक्तसंगः पतिःपशूनामपरिग्रहोऽभूत्॥ 53॥

अन्वय—सुदती सा पूर्वे जनेन यदा दक्षरोषात् शरीरं ससर्ज, तदा प्रभृत्येव पशूनांपतिः विमुक्तसंगः (सन्)
उपरिग्रहः अभूत्।

शब्दार्थ—सुदती = सुन्दर दाँतों वाली। सा = उस पार्वती ने। पूर्वजनेन = अपने पूर्व जन्म में, सती के रूप में जन्म लेकर। यदा = जब, जिस समय। दक्षरोषात् = पिता दक्ष के प्रति क्रोध के कारण। शरीरम् = देह को। ससर्ज = त्याग दिया। तदा = उस समय से। प्रभृत्येव = प्रभृति। एव = आरम्भ करके ही। पशूनांपतिः = पशुपति शंकर। विमुक्त संगेः = विषयवासना का त्याग करके। सन् = रहते हुए। अपरिग्रहः = अपत्नीक, पत्नीरहित। अभूत् = हो गये।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसम्भव' के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। कालिदास जी ने पूर्व पत्नी सती के शरीर त्याग के समय से ही शिवजी के पत्नी रहित जीवन को प्रस्तुत किया है।

हिन्दी अनुवाद—सुन्दर दाँतों वाली उस पार्वती ने पहले जन्म में अपने पिता दक्ष प्रजापति के प्रति रोष के कारण सती के रूप में शरीर त्याग दिया था। उसी समय से पशुपति अर्थात् शिवजी विषयासक्ति से रहित होते हुए पत्नीविहीन हो गये थे।

संस्कृत व्याख्या—पूर्वस्मिन् जन्मनि पार्वती दक्षप्रजापतेः पुत्री सती आसीत्। दक्षप्रजापतिना सत्याः स्वामिनः शिवस्य अपमानं कृतम्। तस्मात् कारणात् पितुः दक्षं प्रति रोषात् सती शरीरं व्यक्तवती। पशुपतिः शिवः तदा प्रसृत्येव कामवासनाहीनोऽभूत् हीनः सन् पत्नीरहितो अभूत्। तेन विवाहो न कृतः इति तात्पर्यम्।

अलंकार—यहाँ सती के शरीर त्याग का कारण पिता दक्ष के प्रति रोष होने से काव्यलिंग अलंकार है।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है।

[54]

स कृत्तिवासास्तपसे यतात्मा गंगाप्रवाहोक्षित देवदारु।

प्रस्थं हिमाद्रैर्मृगनाभिगन्धि किञ्चित्क्वणत् किन्नरमध्युवास॥ 54॥

अन्वय—कृत्तिवासाः यतात्मा सः तपसे गंगाप्रवाहोक्षित देवदारु मृगनाभिगन्धि क्वणत् किन्नरं किञ्चित् हिमाद्रेः प्रस्थम् अध्युवास।

शब्दार्थ—कृत्तिवासाः = चर्म का वस्त्र धारण करने वाला। यतात्मा = इन्द्रियों को जीतने वाला। सः = वह, वे भगवान् शिव। तपसे = तपस्या करने के लिए। गंगाप्रवाहोक्षितदेवदारुः = गंगा के प्रवाह से जहाँ देवदारु वृक्ष सिंचित हो रहे थे। मृगनाभिगन्धि = कस्तूरी की गन्ध से पूर्ण। क्वणत्किन्नरम् = जहाँ किन्नर गान कर रहे थे। हिमाद्रेः = हिमालय के। किञ्चित् = किसी। प्रस्थम् = शिखर पर। अध्युवास। = निवास करने लगे।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसम्भव' के प्रथम सर्ग से लिया गया है। कालिदास जी ने इस छन्द के द्वारा पत्नी सती के दक्षयज्ञ में भस्म हो जाने के पश्चात् शंकर जी के जीवनक्रम का वर्णन किया है।

NOTES

हिन्दी अनुवाद—पत्नी सती की मृत्यु के पश्चात् भगवान शिव गजचर्म का वस्त्र धारण करके तथा जितेन्द्रिय बनकर तपस्या करने के हेतु हिमालय के किसी ऐसे शिखर पर निवास करने लगे, जहाँ देवदारु के वृक्ष गंगा के प्रवाह से सिंचित हो रहे थे, जहाँ कस्तूरी की गंध व्याप्त थी तथा जहाँ किन्नर गान करते थे।

संस्कृत व्याख्या—पत्न्याः सत्याः मृत्यूपरान्तं शंकरः चर्माम्बरधारी भूत्वा इन्द्रियाणि च वशे कृत्वा हिमालयस्य एतादृशि शिखरे न्यवसत् यत्र देवदारुवृक्षाः गंगायाः प्रवाहेण सिञ्चिता आसन्, कस्तूरिका गन्धः व्याप्तः वर्तते स्म, किन्नराश्च गायन्ति स्म।

अलंकार—इस छन्द में हिमालय के शिखर के विशेषणों का साभिप्राय प्रयोग हुआ है। इस कारण यहाँ परिकर अलंकार है।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है।

[55]

गणा नमेरुप्रसवावतंसा भूर्जत्वचः स्पर्शवतीर्दधानाः।

मनःशिला विच्छुरिता निषेधुः शैलेय नद भेषु शिलातलेषु। 55।।

अन्वय—गणाः नमेरु प्रसवावतंसाः स्पर्शवतीः भूर्जत्वजः दधानाः मनःशिलाविच्छुरिताः शैलेयदर्भेषु शिलालतेषु निषेदुः।

शब्दार्थ—गणाः = शिवजी के प्रमथ, नन्दी आदि। नमेरुप्रसवावतंसाः = नमेरु वृक्ष के पुष्पों को कर्णाभूषण बनाये हुए। स्पर्शवतीः = सुखपूर्ण स्पर्श वाली। भूर्जत्वचः = भोज वृक्ष के वल्कलों को, भोजपत्रों को। दधानाः = धारण करते हुए, पहनते हुए। मनःशिलाविच्छुरिताः = मैनसिल धातु का शरीर पर लेप किये हुए। शैलेयनदधेषु = शिला जीत से व्याप्त। शिलातलेषु = प्रस्तरखण्डों पर, शिलाओं के ऊपर। निषेदुः = बैठे रहते थे।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसम्भव' के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। कालिदास जी ने इस छन्द के माध्यम से शिवजी के गणों की दशा का वर्णन किया है।

हिन्दी अनुवाद—शिवजी के प्रमथ, नन्दी आदि गण पुन्नाग वृक्ष के पुष्पों को कानों का आभूषण बनाये हुए, भोजपत्र को शरीर पर धारण किये हुए तथा शरीर पर मैनसिल नाम के धातु के चूर्ण को लगाये हुए शिलाजीत से व्याप्त शिलाओं पर बैठे रहते थे।

संस्कृत व्याख्या—प्रमथ नन्दी आद्याः शिवस्य गणाः कर्णेषु सुरपुन्नागवृक्षाणां पुष्पाणि कर्णाभूषणानि कुर्वाणाः सुखस्पर्शवन्ति भूर्जवृक्षवल्कानि धारयन्तः मनःशिलाभिधानस्य धातुविशेषस्य चूर्णेन लिप्तशरीराः शिलाजतु गन्धौषधि विशेषेण व्याप्तेषु शिलातलेषु स्थिताः आसन्।

अलंकार—इस छन्द में शिवजी के गणों की स्थिति के स्वाभाविक वर्णन के कारण यहाँ स्वभावोक्ति अलंकार है।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है।

तुषारसंघातशिलाः खुराग्रैः समुल्लिखन् दर्पकलः ककुद्मान्।

दृष्टः कथञ्चित् गवयैर्विविग्नैरसोढसिंहध्वनिः सन्ननादः॥ 56॥

NOTES

अन्वय—तुषारसंघातशिलाः खुराग्रैः समुल्लिखन् दर्पकलाः विलिग्नैः गवयैः कथञ्चित् दृष्टः ककुद्मान् असोढसिंहध्वनिः उन्नादः।

शब्दार्थ—तुषारसंघातशिलाः = बर्फ जमी हुई चट्टानों को, तुषार घनीभूत है जिनमें, ऐसी शिलाओं को। खुराग्रैः = खुरों के अग्र भाग के द्वारा। समुल्लिखन् = विदीर्ण करता हुआ। दर्पकलः = गर्व के कारण मधुर ध्वनि करने वाला। विविग्नैः = भयभीतों के द्वारा। गवयैः = नीलगायों द्वारा। कथञ्चित् = किसी प्रकार। दृष्टः = देखा गया। ककुद्मान् = बैल, वृषभ। असोढसिंहध्वनिः = सिंहों के गर्जन को सहन न करने वाला। सन् = होता हुआ। दृष्टः = देखा गया।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसम्भव' के प्रथम सर्ग से लिया गया है। इस छन्द के माध्यम से कालिदास जी ने शिवजी के बैल नन्दी का वर्णन किया है।

हिन्दी अनुवाद—हिम की कठोर चट्टानों को अपने अगले पैर के खुरों से विदीर्ण करता हुआ, मधुर गर्जन करने वाला तथा भयभीत नील गायों के द्वारा किसी प्रकार देखा जाता हुआ शिवजी का वह नन्दी नाम का बैल सिंहगर्जन को सहन न करके ऊँचे स्वर से गर्जन कर रहा था।

संस्कृत व्याख्या—हिम निर्मित सघन प्रस्तर खण्डान् खुरयोः अग्रभागाम्यां विदारयन्, दर्पेण मधुरगर्जनं कुर्वन् गो सदृशैः गवय नामधेयैः पशुविशेषैः कृच्छ्रेण दृष्टः ककुदधारी शिववृषभः नन्दी सिंहानां गर्जनध्वनिं सहनं न कुर्वन् उच्चस्वरेण गर्जनं करोति स्म।

अलंकार—इस छन्द में नन्दी बैल की स्वाभाविक क्रियाओं के वर्णन के आधार पर स्वभावोक्ति अलंकार है।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है।

[57]

तत्राग्निमाधाय समित्समिद्धं स्वमेव मूर्त्यन्तरमष्टमूर्तिः।

स्वयंविधाता तपसः फलानां केनापि कामेन तपश्चचार। 57॥

अन्वय—तपसः फलानां स्वयं विधाता अष्टमूर्तिः तत्र स्वयं एव मूर्त्यन्तरम् समित्समिद्धम् अग्निम् आधाय केनापि कामेन तपः चचार।

शब्दार्थ—तपसः फलानाम् = ताप के फलों के। स्वयंविधाताः = अपने आप बनाने वाले। अष्टमूर्तिः = आठ मूर्तियों वाले भगवान् शिव। तत्र = वहाँ स्वयमेव = अपने आप। मृत्युन्तरम् = अपनी दूसरी मूर्ति अर्थात् अग्नि को। समित्समिद्धम् = समिधाओं से प्रज्वलित। अग्निम् = अग्नि को। आधाय = स्थापना करके। केनापि = किसी भी। कामेन = फल की इच्छा से। तपः चचार = तपस्या करने लगे।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसम्भव' के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। कालिदास जी ने इस छन्द के माध्यम से शिवजी के तपस्या करने का वर्णन किया है।

हिन्दी अनुवाद—तपस्या के फलों का स्वयं ही विधान करने वाले अष्टमूर्ति भगवान् शंकर वहाँ अर्थात् हिमालय के शिखर पर अपनी ही अन्य मूर्ति अग्नि को समिधाओं से प्रज्वलित करके किसी अज्ञात अभिलाषा से तपस्या करने लगे।

NOTES

विशेष—जल, अग्नि, यजमान, सूर्य, चन्द्र, वायु, आकाश तथा धरती—ये शिव जी की आठ मूर्तियाँ मानी जाती हैं।

संस्कृत व्याख्या—तपस्यायाः फलानां स्वयेव विधानकर्ता शिवः, यस्य अष्टमूर्तयः सन्ति, स तत्र हिमालयस्य शिखरे स्वयमेव समिधाभिः अग्निम् प्रज्वलितं कृत्वा कयापि अनिश्चितया कामनया तपस्यां कर्तुम् आरेभे, तपश्चर्याम् आरब्धवान्।

अलंकार—इस छन्द में म वर्ण का अनेक बार प्रयोग होने के कारण अनुप्रास अलंकार है।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है।

[58]

अनर्ध्यमर्ध्येण तमद्रिनाथः स्वर्गोक्तसामर्चितमर्चयित्वा।

आराधनायास्य सखी समेतां समादिदेश प्रयतां तनूजाम्॥ 58॥

अन्वय—अद्रिनाथः अनर्ध्यं स्वर्गोक्तसाम् अर्चितम् तम् अर्ध्येण अर्चयित्वा अस्य आराधनाय सखी समेतां प्रयतां तनूजां समादिदेश।

शब्दार्थ—अद्रिनाथः = पर्वतों का स्वामी हिमालय। अनर्ध्यम् = दुर्लभ। स्वर्गोक्तसाम् = देवताओं के। अर्चितम् = पूज्य को। तम् = उसको, शिव को। अर्ध्येण = पूजा के जल से। अर्चयित्व = पूजा करके। अस्य = इसकी, शिव की। आराधनाय = पूजन के लिए, पूजा के लिए। सखीसमेताम् = सखियों सहित। प्रयताम् = नियमों का निर्वाह करने वाली, पवित्र। तनूजाम् = पुत्री पार्वती की। समादिदेश = आदेशित किया, आज्ञा दी।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसम्भव' के प्रथम सर्ग से लिया गया है। कालिदास जी ने इस छन्द के माध्यम से हिमालय द्वारा अपनी पुत्री पार्वती को सखियों समेत शिवजी की पूजा करने की अनुमति का वर्णन किया है।

हिन्दी अनुवाद—पर्वतों के राजा हिमालय ने दुर्लभ एवं देवताओं के द्वारा पूजित शिवजी की पूजा के जल से अर्चना करके उनकी पूजा के लिए सखियों समेत अपनी पुत्री पार्वती को आदेश दिया।

संस्कृत व्याख्या—भगवान् शिवः दुर्लभः आसीत्। स्वर्गवासिभिः देवैः अपि तस्य शिवस्य पूजा कृता। एवंभूतं शिवम् अर्ध्योदकेन अर्चयित्वा हिमालयः शिवस्य आराधनाय सखिभिः सहितां स्वपुत्रीं पार्वतीम् आदेशं दत्तवान्।

अलंकार—इस छन्द में म व्यंजन का अनेक बार प्रयोग होने से अनुप्रास अलंकार है।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द में हुई है।

[59]

प्रत्यर्थिभूतामपितां समाधेः शुश्रूषमाणां गिरिशोऽनुमेने।

विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः॥ 59॥

अन्वय—गिरिशः समाधेः प्रत्यर्थभूताम् अपि ताम् अनुमेने। विकारहेतौ सति येषां चेतांसि न विक्रियन्ते ते एव धीराः।

कुमारसंभवम् एवं महाकाव्य
और गद्यकाव्य

NOTES

शब्दार्थ—गिरिशः = शिवजी ने। समाधेः = समाधि की। प्रत्यर्थभूताम् = विघ्नकारिणी को। अपि = भी। ताम् = उस पार्वती को। शुश्रूषमाणाम् = सेवा परायणा को, सेवा करती हुई को। अनुमेन = अनुमति प्रदान की। विकारहेतौ सति = विकार का कारण होने पर। येषाम् = जिनके। चेतांसि = चित्त, मन। न = नहीं। विक्रियन्ते = विकृत होते हैं, विकार उत्पन्न होता है। ते = वे। एव = ही। धीराः = धैर्य वाले होते हैं।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसंभव' के प्रथम सर्ग से लिया गया है। कालिदास जी ने इस छन्द के माध्यम से शिवजी द्वारा पार्वती को अपनी सेवा की अनुमति देने को उचित सिद्ध किया है।

हिन्दी अनुवाद—शिवजी ने समाधि में विघ्न करने वाली भी सेवा करती हुई उस पार्वती को अनुमति प्रदान की। इसका कारण यह था कि विकार का कारण होने पर भी जिनका मन विकृत नहीं होता, वे ही धीर पुरुष होते हैं।

संस्कृत व्याख्या—रूपवती युवतिः पार्वती समाधौ विघ्नकारिणी अस्ति। इति जानन् अपि सेवार्थम् उपस्थितां तां पार्वतीमनुमतिं प्रदत्तवान्। अस्य कारणम् इदं वर्तते यद् विकारस्य कारणे वर्तमाने अपि येषां चित्तेषु विकारोत्पत्तिर्न भवति, ते पुरुषाः एव धीराः कथ्यन्ते।

अलंकार—इस छन्द में विशेष का समर्थन सामान्य के द्वारा होने पर अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

छन्द—इस श्लोक की रचना उपजाति छन्द से हुई है।

[60]

अवचितबलिपुष्पा वेदिसम्मार्गदक्षा,
नियमविधिजलानां बर्हिषां चोपनेत्री।
गिरिशमुपचचार प्रत्यहं सा सुकेशी,
नियमितपरिखेदा तच्छिरश्चन्द्रपादैः॥ 60॥

अन्वय—सुकेशी सा अवचित बलिपुष्प वेदिसम्मार्गदक्षा, नियम विधिजलानां बर्हिषां च उपनेत्री (सती) तच्छिरश्चन्द्र पादैः नियमितपरिखेता (सती) गिरिशम् उपचचार।

शब्दार्थ—सुकेशी = सुन्दर केशों वाली। सा = वह पार्वती। अवचित बलिपुष्पा = अर्चना के हेतु पुष्प चयन करने वाली। वेदिसम्मार्गदक्षा = वेदी को स्वच्छ करने में निपुण। नियमविधिजलानाम् = नित्य कर्म के लिए जलों का। बर्हिषाम् = कुशों का। च = और। उपनेत्री = लाने वाली। तच्छिरःचन्द्रपादैः = उन शिवजी के शीश पर विराजमान चन्द्रमा की किरणों से। नियमितपरिखेदा = थकान का अनुभव न करने वाली। प्रत्यहम् = प्रतिदिन। गिरिशम् = शिवजी को। उपचचार = सेवा करती थी।

प्रसंग—यह छन्द महाकवि कालिदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'कुमारसंभव' के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। इस छन्द के माध्यम से कालिदास जी ने पार्वती द्वारा समाधिस्थ शिवजी की सेवा का वर्णन किया है।

हिन्दी अनुवाद—सुन्दर केशों वाली यह पार्वती देवपूजा हेतु पुष्प चयन करके, वेदी को स्वच्छता में दक्षता प्राप्त करके, नित्य कर्म को पूर्ण करने हेतु जलों तथा कुशों को लाकर प्रतिदिन शिवजी की पूजा करने लगी। शिवजी के शीश पर विराजमान चन्द्रमा की किरणों से पार्वती अपनी थकान दूर कर रही थी।

संस्कृत व्याख्या—शोभनानां केशानां स्वामिनी सां पार्वती प्रतिदिनं शिवस्य सेवां करोति स्म । सा पूजार्थं पुष्पाणां चयनं करोति स्म । सा प्रतिदिनं दक्षतापूर्वम् वेदयाः परिमार्जनं करोति स्म । सा शिवस्य नियमानां निर्वाहाय जलानां कुशानां च आहरणं करोति स्म । शिवस्य मस्तके विराजमानः चन्द्रः पार्वत्याः खेदम् अपनयति स्म ।

NOTES

अलंकार—इस छन्द में पार्वती के विशेषणों का प्रयोग साभिप्राय हुआ है। इस आधार पर इस छन्द में परिकर अलंकार है।

छन्द—इस श्लोक की रचना मालिनी छन्द में हुई है। इस छन्द का लक्षण निम्नलिखित हैं—

ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः ।

(जिस छन्द के प्रत्येक चरण में दो नगण, एक मगण तथा दो यगण के रूप में 15 वर्ण होते हैं तथा 8 और 7 पर विराम होता है, वह मालिनी कहलाता है।)

NOTES

प्रत्येक भाषा में व्यवहार की दृष्टि से पद्य की अपेक्षा गद्य का ही विशेष महत्व होता है, क्योंकि परस्पर विचार-विनिमय का सरल साधन गद्यमय भाषा ही होती है। साधारण बातचीत आदि में गद्य का प्रयोग करना हम स्वाभाविक एवं अधिक सुविधाजनक समझते हैं, जबकि ऐसे अवसरों पर पद्यमय भाषा का व्यवहार करना हमें अस्वाभाविक एवं विशेष प्रयत्नसाध्य प्रतीत होता है। लेकिन साधारण बातचीत आदि की यह व्यवस्था साहित्य पर लागू होती नहीं दिखाई देती। विश्व की सभी भाषाओं के साहित्य में (संस्कृत भी जिसका अपवाद नहीं) गद्य की अपेक्षा पद्य की प्रचुरता पाई जाती है, लेकिन ऐसा क्यों है?

इसका कारण यह है कि पद्यमय विचारों को स्मरण रख पाना गद्य की अपेक्षा सरल होता है। दूसरे, पद्य में लय अथवा संगीतात्मकता विशेष आकर्षण की वस्तु होती है। यह सत्य है कि पद्य में छन्द का बन्ध न होने के कारण कवि को अपने भाव गुम्फित करने में कठिनाई होती है, गिने चुने वर्णों मात्राओं की सीमा में रहकर अपने विचार प्रकट करने होते हैं, किन्तु साथ ही उसे यह सुविधा भी रहती है कि छन्द की लय पर ध्यान बंटने के कारण उसमें भाव अथवा रस का पूर्ण उत्कर्ष न होने पर पाठक को अधिक नहीं अखरता-जबकि गद्यकवि तो छन्द की लय की सुविधा से वञ्चित ही रहता है। वह छन्द आड़ लेकर भाव-रस-व्यञ्जना, कल्पना-शक्ति, शब्द-चयन पटुता आदि से सम्बन्धित अपनी दुर्बलता को छिपा नहीं सकता। सुवर्ण का खरा खोटापन निकष (=कसौटी के पत्थर) पर कसकर परखा जाता है, उसी प्रकार कवि की प्रतिभा की परीक्षा गद्य रचना में होती है। 'गद्य कवीनां निकषं वदन्ति' यह प्राचीन आलोचक की उक्ति मात्र नहीं, एक तथ्य है। इसीलिये भारतीय मनीषियों ने गद्य-साहित्य को जो गौरव-पूर्ण स्थान दिया है, वह सर्वथा समीचीन ही है।

भावप्रधान साहित्यिक गद्य का उद्भव और विकास

प्रत्येक भाषा के साहित्य की विधाओं के विकास-क्रम पर दृष्टिपात करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि साहित्य विकास की दिशा सरलता सुबोधता की ओर से जटिलता-दुरूहता की ओर को रहती है। अनलङ्कृत एवम् अपरिष्कृत रचनाएं परवर्ती काल की अलङ्कृत प्रौढ़ कृतियों का मार्ग प्रशस्त करती हैं। साहित्य की कोई भी परम्परा, नवीन शैली रातोरात अस्तित्व में नहीं आ जाती। उसके बीज रूप कारण सुदूर अतीत की साहित्यिक गतिविधियों में (भले ही वे प्रौढ़ रूप में न हों) निहित होते हैं। संस्कृत-गद्य भी इस सार्वत्रिक विकास का अपवाद नहीं है।

प्रारम्भ युग - यों तो वैदिक संहिताओं, ब्राह्मण-ग्रन्थों, अरण्यकों, उपनिषदों तथा सूत्र-ग्रन्थों में गद्य का प्रयोग हुआ है किन्तु लौकिक संस्कृत भाषा के अलङ्कृत साहित्यिक गद्या का प्रयोग कब से प्रारम्भ हुआ तथा उसका प्रारम्भिक विकास किन-किन रूपों में हुआ इन प्रश्नों के उत्तर ढूँढ़ने के लिए प्रायः हमें अंधेरे में ही टटोलना पड़ता है। साहित्यिक गद्य का प्रारम्भिक रूप आज हमें उपलब्ध नहीं है, किन्तु प्रामाणिक सूत्रों में उल्लेखों से उसका अस्तित्व अवश्य सिद्ध हो जाता है।

गद्य-काव्य का स्वर्ण-युग

क्रमिक विकास में आस्था रखने वाला आधुनिक समालोचक साहित्यिक गद्य की गिनी-चुनी रचनाओं के उल्लेखों के बाद अचानक ही संस्कृत गद्य का अत्यन्त परिष्कृत एवम् अलङ्कृत रूप दण्डी, सुबन्धु और बाण के गद्य-काव्यों में देख कर आश्चर्यचकित रह जाता है। दण्डी, सुबन्धु और बाण का रचनाकाल जो कि एक सौ वर्ष से भी कम समय की परिधि में है, निःसन्देह संस्कृत गद्यकाव्य का स्वर्णयुग ही कहा जाना चाहिए। इन तीनों गद्य-कवियों की रचनाओं में अलङ्कृत साहित्यिक गद्य का सर्वोत्कृष्ट स्

देखने को मिलता है। निःसन्देह इनसे पूर्व भी अनेक गद्य-कवियों ने साहित्यिक गद्य को प्रौढ़ रूप प्रदान करने में योगदान किया होगा, जिनके बारे में यही कह कर संतुष्ट होना पड़ता है कि वह गद्य साहित्य काल-क्रम-वश आज उपलब्ध नहीं है।

NOTES

दण्डी - इनके जीवन के विषय में हमारी जानकारी नहीं के बराबर है। इनके ग्रन्थों के अनुशीलन से ऐसा आभास होता है कि ये दक्षिणात्य थे। इनका स्थितिकाल 300 ई० के लगभग माना जाता है।

१. (क) 'आख्यानाख्यायिकेतिहासपुराणेभ्यश्च' - अष्टाध्यायी के 4-2.60 सूत्र पर वार्तिक के द्वारा गद्यकाव्य के 'आख्यान' और 'आख्यायिका' नामक भेदों का पता चलता है।

(ख) पतञ्जलि (15 ई० पू०) ने 'वासवदत्ता' - 'सुमनोत्तरा', और 'भैरव' गद्य काव्यों का उल्लेख किया है।

(ग) भोजकृत 'शृङ्गारप्रकाश' में 'मनोवती' और सातकर्णीहरण का उल्लेख है।

(घ) स्वयं बाण ने 'भट्टारहरिश्चन्द्र गद्यबन्धो नृपायते' लिखकर अपने पूर्ववर्ती भट्टारहरिश्चन्द्र नामक गद्यकाव्यकार की प्रशंसा की है।

(ङ) इसके अतिरिक्त रुद्रदामन (150 ई०) का गिरनार वाला शिलालेख तथा हरिषेण (350) द्वारा लिखित प्रशस्ति अलंकृत साहित्यिक गद्य के ही उदाहरण हैं।

दण्डी की तीन कृतियाँ बताई जाती हैं- काव्यादर्श, अवन्ति-सुन्दरीकथा (अपूर्ण) और दशकुमारचरित।

इनमें से प्रथम अलङ्कारशास्त्र का ग्रन्थ है। अवन्ति-सुन्दरीकथा को दण्डीकृत मानने में विद्वानों में मतभेद है। दण्डी की कीर्ति का आधार दशकुमारचरित गद्य-काव्य है। मूल दशकुमारचरित में आठ राजकुमारों की ही कथाएँ हैं। शेष कथाएँ पूर्वपीठिका में सब कथाओं का उपसंहार जोड़ दिया गया है।

जैसा कि दशकुमारचरित नाम से ही प्रकट है इसमें दस राजकुमारों की साहसपूर्ण, रोमांचक कथाएँ हैं। छल-कपट, हत्या आदि का जैसा यथार्थवादी चित्रण दण्डी ने किया है, वैसा संस्कृत में केवल एक कवि ही कर पाएँ हैं और वे हैं मृच्छकटिका के रचयिता शूद्रक। दण्डी ने समाज के सभी वर्गों के पात्रों का चयन किया है। स्वामिभक्त मन्त्री, दुर्बुद्धि सभासद, कामान्धा पुरुषों, निष्ठुर वेश्याओं तथा पाखण्डी पण्डितों आदि का स्वाभाविक चित्रण करके कवि ने संस्कृत कवियों के घिसे पिटे आदर्शवाद के परिवेश के बाहर झाँककर अपना पृथक् मार्ग निर्माण किया है।

दण्डी की गद्य शैली प्रसादगुण युक्त तथा सशक्त है। दण्डी ने वर्ण्य-विषय और शैली-शिल्प के बीच सामञ्जस्य रक्खा है। समस्त पदों का विरलता से प्रयोग तथा माधुर्य-व्यञ्जक ललित वर्णों की सुन्दर योजना दण्डी गद्य-शैली की उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं जिनके कारण 'दण्डिनः पदलालित्यम्' की उक्ति विद्वत्समाज में प्राचीनकाल से प्रचलित है। जटिल श्लेष-योजना तथा निरर्थक शब्दाडम्बर से दण्डी का गद्य सर्वथा मुक्त है।

सुबन्धु - दण्डी के बाद संस्कृत-गद्य अधिक जटिलता तथा कृतिमता की ओर उन्मुख हुआ। गद्य का सुबोध व्यावहारिक रूप प्रायः विरलता से प्राप्त होने लगा। गद्य को शब्दाडम्बरयुक्त तथा 'प्रत्यक्षश्लेषमय' बनाना अधिक अच्छा समझा गया। इस गद्य शैली का चरमोत्कर्ष हमें सुबन्धु (600 ई० लगभग) के गद्य में मिलता है।

सुबन्धुकृत 'वासवदत्ता' में एक राजकुमार और राजकुमारी की प्रेम-कथा का वर्णन है। इस काव्य की संक्षिप्त कथा को कवि ने प्रासङ्गिक वर्णनों के बल पर पल्लवित करके एक बड़ा रूप प्रदान किया है।

सुबन्धु गौड़ी गद्य-रीति के आचार्य हैं जिसमें अक्षराडम्बर तथा समस्त पदावली का बाहुल्य होता है। सुबन्धु के काव्य में कलापक्ष का उत्कर्ष है और भावपक्ष प्रायः उपेक्षित है। पौराणिक सन्दर्भों की बहुलता, श्लेषों की भरमार तथा शब्दाडम्बरयुक्त दीर्घकाय काव्यों की योजना से सुबन्धु का काव्य अधिक दुरूह बन गया है। हाँ, अपवाद स्वरूप कुछ स्थलों पर जहाँ कवि ने सामाजिक पदावली और श्लेष के मोह को त्यागा है, वहाँ कवि की गद्य-शैली अत्यन्त स्वाभाविक एवं सुगम बन पड़ी है।

कुमारसंभवम् एवं महाकाव्य
और गद्य काव्य

NOTES

वाणभट्ट - बाण संस्कृत गद्य-काव्य-गगन के दिनमणि हैं। अलंकृत साहित्यिक गद्य शैली का जो रूप हमें दण्डी और सुबन्धु के गद्य-काव्यों में मिलता है उसका प्रौढ़तम एवं अत्यन्त परिमार्जित रूप वाणभट्ट के गद्य में पाया जाता है। इनके विषय में विस्तारपूर्वक अध्ययन हम आगे करेंगे।

बाणोत्तरकाल का गद्य - बाण के बाद उन्हीं की शैली को आदर्श मानकर वादीभसिंह (दशम शताब्दी उत्तरी) 'गद्यचिन्तामणि' की, वामनभट्ट बाण (1420 ई0) ने 'वेमभूपालचरित' की, अनन्त शर्मा (1650 ई0) ने मुद्राराक्षसपूर्वसंकथानक की रचना की।

अनेक अलंकृत गद्य तथा पद्य-मिश्रित रचनायें - जिन्हें चम्पूकाव्य कहा जाता है बाण की गद्यशैली से प्रभावित होकर रची गयी हैं। इनमें त्रिविक्रमभट्ट (10वीं शती) का 'नलचम्पू' सोमदेव (10वीं शती) का 'यशोधर्मराजचरित', भोज (11वीं शती) का 'रामायणचम्पू' सोड्डल (11वीं शताब्दी) द्वारा रचित 'उदयसुन्दरीकथा' आदि प्रमुख हैं।

आधुनिक काल में गद्य

अंग्रेजों के भारत आगमन के बाद वर्तमान समय में हृषीकेश भट्टाचार्य (1850-1913 ई0), अम्बिकादत्त व्यास (1858-1900 ई0) तथा पंडिताक्षमाराव एवं प्राञ्जल शैली में निबन्ध लिखे हैं। व्यास जी ने छत्रपति शिवाजी के चरित्र को आधार मान कर प्रौढ़ एवं प्रासादिक शैली में 'शिवराजविजय' उपन्यास की रचना की है तथा पंडिताक्षमाराव ने आधुनिक लघुकथाओं (Short Stories) जैसी रोचक घटना-विचित्र युक्त एवं सामयिक समस्याओं से सम्बद्ध कथायें संस्कृत में लिखी हैं।

अन्य वर्तमान गद्य लेखकों में अनेक चरितात्मक गद्य-ग्रन्थों के लेखक श्रीपाद शास्त्री हसूरकर, रघुवंशविमर्शकार श्री कृष्णमाचार्य, 'कुमुदिनीचन्द्र' के उपन्यासकार पं० मेघाव्रत कतिरत्न, उपन्यास-लेखिका श्रीमती राजम्भा तथा 'सेतुयात्रावर्णनम्' के लेखक टी० के० गणपति शास्त्री के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

इनके अतिरिक्त बंकिम बाबू के कुछ उपन्यासों तथा भारतीय संविधान का भी संस्कृत में अनुवाद हुआ है। संस्कृत में अनेक पत्र-पत्रिकाओं का भी प्रकाशन हो रहा है।

किन्तु आधुनिक संस्कृत-गद्य पर दृष्टि डालने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि अब गद्य को उस प्रकार अलंकृत करने का प्रयत्न नहीं किया जाता जैसी कि बाण के समय में साहित्यिक परम्परा थी। अब तो असमस्त अथवा सरलविरल समासों से युक्त प्रासादिक गद्य-रचना करने पर बल दिया जा रहा है। यह अंग्रेजी तथा अन्य प्रान्तीय भाषाओं का प्रभाव तथा युग की परिवर्तित विचारधारा को अभिव्यक्ति प्रदान करने का प्रयास कहा जा सकता है। फिर भी दण्डी, सुबन्धु और बाण के अमर गद्य-काव्यों में संस्कृत गद्य का जो नितान्त प्रौढ़ रूप मिलता है, उसका अपना अलग ही महत्व है।

गद्य काव्य के दो रूप : कथा और आख्यायिका

संस्कृत-गद्य-काव्यों को कथा और आख्यायिका इन दो प्रमुख भेदों के अन्तर्गत परिगणित किया जाता है। अतः यहाँ कथा और आख्यायिका के लक्षणों का विचार करना प्रासङ्गिक होगा।

दण्डी ने कथा और आख्यायिका के उस समय प्रचलित जो लक्षण बताये हैं, उनका सारांश इस प्रकार है -

NOTES

(क) 'आख्यायिका' में नायक सब कहानी कहता है, 'कथा' में नायक या अन्य पात्र द्वारा कहानी कही जा सकती है।

(ख) 'आख्यायिका' में उच्छवास नामक अध्याय होते हैं, कथा में नहीं।

(ग) 'आख्यायिका' में वक्त्र और अपवक्त्रक छन्द रहने आवश्यक हैं, कथा में नहीं।

किन्तु स्वयं दण्डी ने ही कथा और आख्यायिका के इन पूर्व प्रचलित भेदक लक्षणों की अत्यन्त उपेक्षा करते हुए लिखा है कि नायक द्वारा कहानी कही जाना या अन्य द्वारा, वक्त्र और अपवक्त्रक छन्दों का प्रयोग होना या न होना उच्छवासों का पाया जाना अथवा न पाया जाना - ये सब महत्व की बातें नहीं हैं। वस्तुतः कथा और आख्यायिका में कोई मौलिक अन्तर नहीं है, अन्तर है केवल नाम का।

ऊपर बताए गये भेदक लक्षणों के अतिरिक्त भामह ने दो अन्य बातों का समावेश अपने लक्षणों में किया है। एक तो यह कि कथा में कवि किसी विशेष प्रयोजन के लिये किन्हीं विशेष शब्दों का प्रयोग करता है, दूसरे, कवि में कन्याहरण, युद्ध, विरह, सूर्योदय, चन्द्रोदय आदि का चित्रण रहता है, आख्यायिका के लिए ऐसा कोई नियम नहीं है। किन्तु दण्डी के उपर्युक्त विचारों को पढ़ने से अनुमान होता है कि सम्भवतः उन्होंने भामह को ही आलोचना का लक्ष्य बनाया है।

विश्वनाथ के अनुसार कथा में एक सरस कथानक गद्य में निबद्ध होता है। इसमें बीच-बीच में आर्या और वक्त्रापक्त्रक छन्दों का भी प्रयोग रहता है। प्रारम्भ में पद्यों द्वारा देवस्तुति और खल निन्दा होती है। आख्यायिका में कवि-वंश वर्णन और अन्य कवियों का उल्लेख भी होता है। बीच-बीच में पद्य भी रहते हैं कहानी को 'आश्वास' में बाँटा जाता है। आश्वास के प्रारम्भ में आर्या या वक्त्रापक्त्रक छन्द द्वारा भावी घटना की सूचना दी जाती है।

अमरकोष के अनुसार कथा और आख्यायिका में एक ही अन्तर है और वह यह कि आख्यायिका ऐतिहासिक वृत्त पर आधारित होती है और कथा कविकल्पित।

वस्तुतः इन समस्त लक्षणों की सीमा में रहकर किसी गद्य कवि ने कथा अथवा 'आख्यायिका' की रचना नहीं की है। ऊपर उद्धृत दण्डी के विचारों को पढ़ने से भी यही ज्ञात होता है कि प्राचीन समय में निर्धारित इन लक्षणों की प्रायः उपेक्षा ही होने लगी थी। 'कथा' और 'आख्यायिका' में मोटा अन्तर हम यही मान सकते हैं कि एक में ऐतिहासिक कथानक होता है और दूसरी में कवि कल्पित।

1. तत्कथाख्यायिकेत्येत्येका जातिः संज्ञाद्वयाङ्किता। (काव्यादर्शः 128)
2. कुछ विद्वान् भामह को दण्डी का परवर्ती मानते हैं। ऐसा मानने पर यह स्वीकार करना होगा कि दण्डी ने अपने अन्य पूर्ववर्ती अलङ्कार-शास्त्रियों की आलोचना की है।
3. देखिये, साहित्यदर्पण, षष्ठ परिच्छेद।
4. आख्यायिकापलब्धार्था प्रबन्धकल्पना कथा। अमरकोष, 1956।

गद्य साहित्य के प्रमुख लेखक

प्रत्येक कवि जहाँ अपने काव्य में मौलिकता प्रदर्शित करता है, वहाँ साथ ही पूर्व प्रचलित साहित्यिक रूढ़ियों तथा अपने पूर्ववर्ती कवियों से भी अप्रभावित नहीं रह पाता। बाण को भी हम अनेक कवियों से प्रभावित तथा अनेक कवियों को प्रभावित हुआ पाते हैं।

१. प्रजापतिदृढनिष्पीडितमध्यभागगलितं जघनशिलातलप्रतिधाताल्लावण्यस्रोत इव द्विध
गतमरुद्वयं दधानम्...उन्नतकुचान्तरमुखदर्शनदुःखेनेव क्षीयमाणमध्यभागाम्।

—पूर्वकादम्बरी

कुमारसंभवम् एवं महाकाव्य
और गद्य काव्य

NOTES

कविकुलगुरु कालिदास का महत्व संस्कृत के पाठक से छिपा नहीं है। बाण कालिदास की प्रासादिक शैली को तो भले ही भिन्न पथ का पथिक होने के नाते न अपना सके हों किन्तु जैसा कि हम ऊपर 'प्रेम वर्णन' शीर्षक के अन्तर्गत देख चुके हैं, बाण ने प्रणय के सम्बन्ध में कालिदास के ही दृष्टिकोण को स्वीकार किया है। राजकुमारों आदि का दर्शन करने को उत्कण्ठित पुर-स्त्रियों का वर्णन करने को संस्कृत-साहित्य में परम्परा ही प्रचलित हो गई जिसके जन्मदाता कालिदास थे। बाण के पूर्ववर्ती अश्वघोष और भारवि ने भी इस प्रकार के वर्णन किये हैं। चन्द्रापीड के विद्यागृह से लौटने पर पुरनारियों के भावालापों का चित्रण करते हुये बाण ने उसी परम्परा का निर्वाह किया है। बाण के परवर्ती माघ कवि के काव्य में भी श्री कृष्ण को देखने को उत्कण्ठित रमणियों का ठीक वैसा ही वर्णन देखा जा सकता है।

दण्डी, सुबन्धु और बाण संस्कृत के सर्वोत्कृष्ट गद्य-कवियों में गिने जाते हैं। तीनों ही अलंकृत शैली के गद्यकाव्यकार हैं। तीनों ने कल्पित वृत्त पर आधारित कथाओं की रचना की है। कई काव्यरूढ़ियों को इन कवियों ने समान रूप से ग्रहण किया है। उदाहरणार्थ शुक द्वारा कथा कहलवाने की रूढ़ि को हम कादम्बरी और सुबन्धु की वासवदत्ता दोनों में पाते हैं दोनों ही गद्य-काव्यों में आकाशवाणी द्वारा नायिकाओं को जीवन-त्याग करने से रोका जाता है। शाप का दुष्प्रभाव कुछ काल तक दोनों गद्य-काव्यों में घटनाचक्र को एक विषादपूर्ण अवस्था की ओर मोड़ देता है। कादम्बरी में कपिञ्जल द्वारा पुण्डरीक को दिया गया उपदेश वासवदत्ता में मकरन्द द्वारा कन्दर्पकेतु को दिये गये उपदेश से साम्य रखता है। नवयुवतियों के पहरहासपूर्ण आलाप भी संस्कृत साहित्य में रूढ़ि ही बन गये हैं जिसका एक जैसा ही रूप कादम्बरी के कुमारीपुर वृत्तान्त और वासवदत्ता की सखियों के परिहासालाप में देखा जा सकता है।

जहाँ तक काव्य शैली का प्रश्न है, सुबन्धु अपने काव्य को प्रयत्नपूर्वक 'प्रत्यक्षरश्लेषमय' बनाने के फेर में पड़ गये हैं। वर्ण्य-विषय का चित्रण उनके लिये गौण है। वे प्रायः शब्दाडम्बर या चमत्कार-प्रदर्शन करने के लिये ही वर्णन करने में प्रवृत्त होते हैं जिसके कारण उनकी काव्य-शैली में वह विविधता तथा प्रभावात्पादकता नहीं है जो बाण की शैली में मिलती है। बाण भी श्लेषों की योजना करके काव्य में चमत्कार उत्पन्न करते अवश्य हैं किन्तु 'बाण' सुबन्धु की तरह इन कलाबाजियों में सदा नहीं फँसते और पहले के वर्ण्य-विषय को पूरी ईमानदारी से वर्णित कर देते हैं, तब श्लेष की जटिल पगदण्डी का आश्रय लेते हैं। परिणामस्वरूप बाण के काव्यों जैसी भावतरलता का सुबन्धु की कृति में अभाव ही दृष्टिगोचर होता है।

दण्डी, जिनकी प्राचीन आलोचकों ने पदलालित्य के लिये बड़ी प्रशंसा की है, निःसन्देह उन दोषों से मुक्त है जो सुबन्धु के काव्य में पाये जाते हैं, किन्तु दण्डी के वर्णन में वह विशदता तथा विविधता नहीं मिलती जो बाण के विधि चित्रणों में देखी जा सकती है। बाण को प्रकृति से कितना अनुराग है, इसका प्रमाण हमें उनके काव्यों में अनेक स्थलों पर आने वाले विस्तृत प्रकृति-वर्णनों से मिल जाता है। किन्तु दूसरी ओर दण्डी के काव्य में इस प्रकार के विशद प्रकृति-चित्रों का अभाव ही दृष्टिगोचर होता है। परम्परा निर्वाह के लिये सूर्यास्त, आदि के कुछ चित्र दण्डी ने अवश्य प्रस्तुत किये हैं। दण्डी और बाण में मुख्य अन्तर विचारधारा का है जिसका संकेत हम पहले कर आये हैं, जबकि दण्डी का दृष्टिकोण घोर यथार्थवादी है, वे छल-कपट, अनुचित प्रणय चोरी, हत्या आदि सभी कुछ काव्य के चित्रपट पर अनावृत रूप से प्रस्तुत कर देते हैं, यद्यपि ऐसा करने में उनका दृष्टिकोण सुधारवादी ही रहता है वे समाज की दुर्बलताओं का वास्तविक अंकन करके उनके निराकरण के पक्षपाती प्रतीत होते हैं।

NOTES

बाण के अनेक परवर्ती कवियों ने उनका अनुकरण किया है जिनमें तिलक-मंजरी के लेखक धनपाल, गद्य-चिन्तामणि के रचयिता वादीभसिंह, उदयसुन्दरी कथा के लेखक सोड्डल आदि प्रमुख हैं। परवर्ती कवियों पर बाण की वर्णन-शैली का भी प्रभाव पड़ा, गाण के वर्णनों की भी छाया कहीं-कहीं स्पष्ट दीखती है। उदाहरण के लिये महाश्वेता के अभिसार से पूर्व किये अन्धकार रूपी हाथी के कुम्भ-स्थलों के मोतियों के चूर्ण से धवल की हुई बताया गया है। इसी भाव को प्रसन्नराघवकार के निम्नलिखित श्लोक के द्वारा व्यक्त किया है—

‘मयूखनखत्रुटित्तिमिरकुम्भिकुम्भस्थलो
छलत्तरलतारकाप्रकरकीणमुक्ताकणः
पुन्दरहरिददरीकुहरगर्भसप्तोस्थित—
स्तुषारकरकेसरी गगनकाननं गाहते॥’

हिन्दी कवि आचार्य केशवदास ने भी रामचन्द्रिका में वसिष्ठाश्रमवर्णन के प्रसंग में कादम्बरी के जावाल्याश्रमवर्णनान्तर्ग ‘यत्र च मलिता हविर्धूमेधु, न चरितेषु’, ‘कपीना श्रीफलाभिलाषः’ ‘मूलानामधोगतिः’ आदि अंशों को हिन्दी छन्दों में प्रायः ज्यों का त्यों ग्रहण कर लिया है।

बाण वस्तुतः संस्कृत गद्य कवियों के शिरोमणि हैं। उन्होंने अपने काव्यों में कला का प्रोढ़तम रूप प्रस्तुत किया तथा अपनी सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति एवं कल्पना का ऐसा चमत्कार प्रदर्शित किया कि बाद के कवि उनसे प्रभावित हुए बिना न रह सके और तभी प्राचीन आलोचक को ‘बाणच्छिष्ट जगत्सर्वम्’ घोषित करके बाण की सर्वाङ्गसम्पूर्ण काव्य-प्रतिभा का लोहा मानना पड़ा।

प्राचीन आलोचकों द्वारा महानगद्यकार बाण की प्रशंसा.

प्राचीन भारतीय समालोचकों ने मुक्त-कण्ठ से बाण की प्रशंसा की है। गोवर्धनाचार्य के मतानुसार तो बाण के रूप में साक्षात् सरस्वती देवी ने ही अधिक क्षमता प्राप्त करने के लिये अवतार लिया है (प्रागल्भ्यमधिकमाप्तु वाणी वभूव है।)

‘विदग्धमुखमण्डलनकार ने बाण की वाणी की कथोपकथन की शैली में सरल श्लिष्ट पदों के द्वारा सुन्दर रीति से प्रशंसा की है।

‘सुन्दर स्वर, वर्ण तथा पद वाली एवं रस तथा भावों वाली वह संसार के मन को हरती है।’

‘क्या वह (सुन्दर आवाज, सुन्दर रङ्ग तथा सुन्दर पैरों वाली रसिक तथा भावुक प्रकृति वाली) कोई युवती ?’

‘नहीं, वह (सुन्दर, स्वरों, अक्षरों के विन्यास, पद-योजना शृङ्गारादि रस एवं रति आदि भावों वाली) बाण की मधुर वाणी है।’

प्रसन्नराघवकार को बाण हृदय में निवास करने वाले कामदेव प्रतीत हुए हैं। निःसन्देह बाण के शृङ्गार-वर्णनों से प्रभावित होकर ही उन्हें ‘पञ्चबाण’ की उपाधि से अलंकृत किया गया है।

संस्कृत साहित्य

किसी भी देश की संस्कृति का मूल वाहन वहाँ का साहित्य ही होता है, अतएव किसी भी देश की संस्कृति का स्वरूप तत्रत्य में देखा जा सकता है। इसी प्रकार विभिन्न देशों के सांस्कृतिक प्रचार एवं प्रसार तथा परिरक्षण, परिवर्तन एवं परिवर्धन भी तत्रत्य साहित्य के ही माध्यम से होते हैं। इतना ही नहीं, प्रत्येक देश की संस्कृति का मूल स्वरूप भी, चाहे वह भौतिक हो और चाहे आध्यात्मिक, तत्रत्य तात्कालिक

साहित्य में ही प्रस्फुटित होता हुआ देखा जाता है। इसका कारण यह है कि मानव की सर्वविध आध्यात्मिक, राजनैतिक, सामाजिक आदि मान्यताओं एवं विचारों को समाज का दर्पण कहा गया है। समाज के उत्थान-पतन, वृद्धि-हास्य, समृद्धि-व्यृद्धि तथा समाजिक सामयिक उत्कर्षा पकर्ष का पूर्ण एवं सुपरिनिष्ठित ज्ञान हमें तद्देशीय एवं तत्काली साहित्य से ही होता है।

कुमारसंभवम् एवं महाकाव्य
और गद्य काव्य

NOTES

साहित्य के इस महत्व को दृष्टिगत रखते हुये यह कहा जा सकता है कि संस्कृत साहित्य, भारतीय समाज के आचार-विचारों का उसकी उन्नति अवनति का तथा उसकी सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतनाओं का प्रतीक है, और इस बात का प्रमाण भी है कि संस्कृत प्रचीन साहित्य का चरम लक्ष्य भारतीय जीवन के लिये सदा ही शाश्वत आनन्दोपलब्धि ही रहा है। अन्य देशों की भांति संस्कृत साहित्य सदा भौतिक समुन्नति-साधक जीवनोपयोगी सामग्री जुटाने में ही व्यस्त न रहकर, शाश्वत आनन्द और परम शान्ति की साधना में निरत रहा है और विपम परिस्थितियों में भी अविचल भाव से स्थिर रहकर जीवन के शाश्वत मूल्यों की खोज में ही व्यस्त रहा है। त्रिकालावाधित सत्य, शान्ति और शाश्वत आनन्द ही उसके दीर्घकालीन जीवन के साध्य रहे हैं। इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिये संस्कृत साहित्य का प्रमुख प्रतिपाद्य भी रस या आनन्द ही रहा है। शेष सब साधन आनुपङ्गिक मात्र रहे हैं, जिन्हें संस्कृत साहित्य के सुविस्तृत प्राङ्गण में यत्र-तत्र देखा जा सकता है। ये सभी साधन भी वस्तुतः उसी परम साध्य आनन्द की ही ओर ले जाने वाले हैं, भले ही इनका वाह्य रूप कुछ भिन्न-सा प्रतीत होता हो। निष्कर्ष यह कि संस्कृत साहित्य में सर्वत्र परमानन्दोपलब्धि का ही प्रयास है।

न केवल वैदिक साहित्य ही लौकिक संस्कृत साहित्य भी इसी प्रकार भारतीय संस्कृति का समुज्ज्वल निदर्शन है। भारतीय संस्कृति की आत्मा सदा ही आध्यात्मिक भावना ही रही है, अतएव इन लौकिक काव्यों में भी तप, त्याग, वैराग्य, दान, उपासना, दया, उदारता, सहानुभूति, लोक कल्याण आदि, विशिष्ट गुणों से अनुपादित भारतीय संस्कृति का भव्य स्वरूप दृग्गोचर होता है। न केवल महर्षि वेदव्यास और आदि कवि वाल्मीकि ने ही अपितु कालिदास, भास, भवभूति, अश्व, घोष, भारवि, माघ, वाण, दण्डी आदि कवियों ने भी अपनी रचनाओं में उसी भारतीय संस्कृति में भव्य रूप को प्रस्तुत किया है, जो कि हमें वैदिक साहित्य में देखने का मिलता है। यह दूसरी बात है कि यहां वह रूप, इन महाकवियों की कान्तासम्मित उपदेश की परिधि में बँधकर विधि चरित्रों एवं विचित्र अतिशयोक्ति पूर्ण आरूपायनों एवं वर्णनों तथा वाह्य प्रकृति प्रकृति के उपादनों के परिवेश में प्रस्तुत हुआ हो, पर उसकी अन्तरात्मा, वहीं आध्यात्मिक भावना एवं रसप्रवणता ही है। आज इन कवियों की रचनाओं को जो इतना, सर्वत्र देश विदेश में, भी आदर की दृष्टि से देखा जाता है, इसका कारण इनकी काव्यकला दिग्दधना के साथ-साथ इनके द्वारा अपनी रचनाओं में प्रदर्शित भारतीय संस्कृति और शिष्टाचार का उदात्त एवं भव्य रूप भी हैं इससे स्पष्ट है कि संस्कृति साहित्य भारतीय संस्कृति एवं समाज का आदर्श है।

प्रचीनता की दृष्टि से संस्कृत साहित्य विश्व के सभी साहित्यों से प्रचीन है। भारतीय साहित्य के प्रचीनतम साहित्य 'ऋग्वेद' की रचना, यदि पाश्चात्य दृष्टिकोण को ही सत्य मान लिया जाये तो भी आज से लगभग दस हजार वर्ष पूर्व ही हो चुकी थी और तब से ही लेकर यहां संस्कृत साहित्य की धारा अवच्छिन्न रूप से प्रवाहित होती चली आ रही है। इस बीच कितने ही देशों के साहित्य उत्पन्न हुये और कुछ दिन चलकर विस्मृत के गर्त में विलीन होकर आस्तित्वहीन हो गये, पर संस्कृत साहित्य आज भी अपसर है, भले ही उसकी गति उसकी तीव्र न हो जितनी कि अब तक होनी चाहिये थी पर इसमें भी सन्देह नहीं कि इसकी धारा का प्रवाह कभी अवरूद्ध नहीं हुआ है। वैदिक संहिता काल के उपरान्त ब्राह्मण ग्रन्थों, तदनन्तर आरण्यकों एवं उपनिषदों के रूप में यह प्रवाहित हुआ, और इसके उपरान्त पुनः इन्हीं ग्रन्थों की व्याख्या के रूप में सूत्र साहित्य एवं अन्य वेदाङ्गों-शिक्षा, व्याकरण, ज्योतिष आदि की रचना हुई है तथा लगभग इसी काल में संस्कृत साहित्य की लौकिक धारा के रूप में काव्यों, नाटकों एवं आख्यान साहित्य

NOTES

प्राचीनता के साथ-साथ संस्कृत-साहित्य सर्वाङ्ग परिपूर्ण है। जहाँ इस साहित्य में एक ओर आध्यात्मिक चेतना की कुछ रुक्षता-सी आजकल के लोगों को परिलक्षित होती है। वहाँ इसमें दूसरी ओर मानव जीवन की मनोरञ्जकता एवं मनोज्ञता की भी नहीं है। भारतीय संस्कृत साहित्य का लक्ष्य कभी भी कोरा अध्यात्मवाद नहीं रहा है अपितु इसमें निःश्रेयस् की साधना के साथ-साथ अभ्युदय-साधना का भी पर्याप्त प्रशस्त पथ प्रदर्शित हुआ है। अर्थात् इसमें मानव जीवनोपयोगी चारों ही पदार्थ-धर्म, अर्थ, मोक्ष संवत्र उपलब्ध होते हैं। प्रारम्भ से लेकर अन्त तक इस साहित्य में इन चतुर्विध परम पुरुषार्थों का बड़ा ही विशद विवेचन हुआ है। आज के मानव की इस भ्रान्ति पूर्ण धारणा के निराकरण के लिये कि संस्कृत साहित्य केवल धर्म-प्रधान निःश्रेयस् सिद्धिपरक साहित्य है, न केवल अर्वाचीन ही अपितु प्राचीन साहित्यकारों की रचनायें भी प्रमाण है, जिनमें मानव जीवन अथवा भौतिक जगत् के उपयोगी अर्थ और काम सूत्र इसके निदर्शन हैं। इन ग्रन्थों में यह समझकर कि अर्थ और काम ही भौतिक जगत् में सुख के चरम सान हैं इन दोनों का बड़ी तत्परता एवं सूक्ष्मेक्षिका से सविस्तार वर्णन किया गया है। इन्हीं, ग्रन्थों को बड़ी तत्परता एवं सूक्ष्मेक्षिका से सविस्तार वर्णन किया गया है इन्हीं, ग्रन्थों को आधार मानकर उत्तर काल में अनेक एतत्सम्यन्धी ग्रन्थों की रचना हुई है। कौन कह सकता है कि विज्ञान ज्योतिष आयुर्वेद स्थापत्य पाकशस्त्र संगीत वाद्यकला आदि विषयों से सम्बद्ध कितने ही ग्रन्थ जो कि आज भी संस्कृत साहित्य में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं और जिनकी रचना का एकमात्र लक्ष्य भौतिक सुख साधना ही है, केवल अध्यात्मक सिद्धि परक धर्म ग्रन्थ है। कौन-सा ऐसा जीवनोपयोगी विषय है जो कि संस्कृत साहित्य में स्थान न पा सका हो? सच तो यह है कि संस्कृत साहित्य ही एक मात्र ऐसा साहित्य में स्थान न पा सका हो? सच तो यह है कि संस्कृत साहित्य ही एक साथ ऐसा साहित्य है जिससे श्रेयः और प्रेयः का अपूर्व अनन्य साधारण अन्यत्राश्रुतिगोचर सामञ्जस्य दृग्गोचर होता है। संस्कृत साहित्य के उदार दृष्टिकोण में श्रेयः और प्रेयः को समान कोटि में रख कर देखा गया है जिसके प्रमाण स्वरूप आज भी अनेक प्राचीन और नवीन ग्रन्थ देखे जा सकते हैं। यदि हम निष्पक्ष बुद्धि से देखें तो अन्य देशों के साहित्य में श्रेय और प्रेय का इतना सामञ्जस्य देखने को न मिलेगा। अन्य देशों के साहित्य में जीवनापयोगी विषयों के ही विवेचन पर विशेष ध्यान दिया जाता रहा है। न वहाँ हल्कलिका विशेषतः भारतीय संस्कृति भावना-भावित हल्कलिका को विकसित करने वाली कला ही है और न निःश्रेयस् साधक विवेचन ही जबकि मानव जीवन से परम साफल्य के लिये अभ्युदय के साथ-साथ निःश्रेयस् की भी परम आवश्यकता है। दोनों का अपेक्षित सामञ्जस्य ही मानव को सच्चे मानव के रूप में प्रतिष्ठापित कर सकता है। संस्कृत साहित्य ही जितने अंश में वह आज भी उपलब्ध है, मैं उसकी बात नहीं करता जो क्रूर काल कवलित हो चुका है, या हस्तलिखित के रूप में कही अन्धकार में पड़ा हुआ है, मानव की पूर्णता के लिये परम एवं नरम साधक है।

सांस्कृतिक चेतना, धार्मिकता और और प्रसार की दृष्टि से संस्कृत साहित्य का क्या और कितना महत्व है यह सभी भारतीय मनीषियों को प्रत्यक्ष है। संक्षेपतः इन्हीं सब विशेषताओं को लेकर संस्कृत लौकिक साहित्य अवतरित हुआ है। इसी साहित्योद्धान को कालिदास भवभूति जैसे महाकवियों एवं नाटककारों ने, कालिदास जयदेव जैसे गीतिकारों ने तथा बाण सुवन्धु दण्डी जैसे गद्य काव्यकारों ने अपने कोमल कान्त मधुर वचनमृत से सिंचित कर पल्लवित एवं विकसित किया है। इसी लौकिक संस्कृत साहित्य में श्री हर्ष जैसे कवि भी हुए हैं जिन्होंने एक ओर दर्शन और दूसरी ओर काव्य कला को रखकर सहृदय जन मानस को आद्गादित किया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि संस्कृत साहित्य में न तो कभी कोई कमी थी और न आज के ह्रसकाल में भी है। वह सर्वाङ्गपूर्ण मानव जीवनोपयोगी साहित्य है।

यद्यपि भारतीय कवियों को, इस विशाल संस्कृत साहित्य के एक अंश-काव्यसाहित्य के निर्माण की प्रेरणा रामायण महाभारत जैसे उपजीव्य ग्रन्थों से ही मिली है, तथापि काव्योत्पत्ति का बीज हमें वेदों में ही उपलब्ध होता है। प्राचीनतम वेद ऋग्वेद में ही ऐसे स्थल हैं जहाँ हम मन्त्रद्रष्टा ऋषि को काव्यत्व सम्पन्न देखते हैं। इस वेद की वे कुछ ऋचायें जिनमें दानशील उदार राजाओं की स्तुतियाँ हैं, “नाराशसी” कहलाती है। इनमें कुछ स्तुतियों में कवित्व की स्पष्ट झलक दीख पड़ती है। यहाँ श्यावास्य ऋषि ने अपने आश्रयदाता राजा एवं राज्ञी की दानप्रशंसा में कवित्वमयी भाषा का प्रयोग किया है। इसी प्रकार अथर्ववेद में राजा परीक्षित के सौख्य वर्णन प्रसंग में कुछ काव्यात्मक उक्तियाँ देखी जाती हैं। ब्राह्मण का शुनःशेष आख्यान आदि। ऐसे ही कई अन्य स्थलों पर भी हमें कवित्व का बीज उपलब्ध होता है। किन्तु जिसे हम काव्यशैली या कविमाग कहते हैं उसका पूर्ण परिपाक हमें वैदिक साहित्य में नहीं मिलता। यद्यपि कालिदास आदि कुछ कवियों ने वैदिक आख्यानों को लेकर अपनी रचनायें की हैं जैसे कालिदास के ‘विक्रमोर्वशीय नाटक’ का कथानक जो कि ऋग्वेदीय उर्वशी और पुरुरवा राजा के सम्वाद को लेकर लिखा गया है, तथापि मुख्यतः भारतीय काव्यकला के प्रेरण स्रोत रामायण और महाभारत ही हैं। यदि काव्य रामायण की काव्य-शैली ने ही कालिदास आदि सभी संस्कृत कवियों का मार्गदर्शन किया है। इन दोनों उपजीव्य ग्रन्थों से अनेक प्रसंगों एवं आख्यानों को लेकर संस्कृत कवियों ने अपने-अपने काव्यों की रचनायें की हैं।

रामायण महाभारत जैसे ऐतिहासिक आर्ष महाकाव्यों के निर्माण के बाद संस्कृत काव्यों की जो धारा प्रवाहित हुई वह उत्तरोत्तर अविच्छिन्न गति से प्रवाहित होती रही है और न्यूनाधिक रूप में आज भी विद्यमान है। पर फिर भी मैक्समूलर महोदय ने गुप्तकाल को संस्कृत काव्य का ‘पुनर्जागरण’ काल कहकर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि विक्रम की आरम्भिक चार शताब्दियाँ संस्कृत काव्य के लिए घोर निराशा का काल रही है जिनमें विदेशियों और मुख्यतः शकों के आक्रमणों से भारत की अन्तर्दशा नितान्त अशान्त एवं अस्त-व्यस्त हो गई थी, राजनैतिक वातावरण सर्वथा विशुब्ध हो गया था, ऐसी स्थिति में राजाश्रय के बिना काव्य-रचना सर्वथा असम्भव थी। गुप्तकाल में जब शकों को परास्त कर दिया गया तभी शान्त वातावरण में काव्य-रचना सम्भव हो सकी। इस प्रकार गुप्त काल में जब शकों को परास्त कर दिया गया तभी शान्त वातावरण ने काव्य-रचना सम्भव हो सकी। इस प्रकार गुप्तकाल ही संस्कृत काव्य-रचना का पुनर्जागरण काल है। परन्तु पुनर्जागरण का यह सिद्धान्त डॉ. व्यूलर एवं फ्लीट की खोजों द्वारा कुछ शिलालेखों एवं ऐतिहासिक तथ्यों द्वारा अपने आप तिरोहित हो जाता है। अतएव यह आज सर्वथा अमान्य एवं त्याज्य माना जाता है।

वस्तुतः शक जिन्हें संस्कृत काव्य रचना का बाधक बतलाया गया है, वे संस्कृत काव्य के अवरोधक नहीं, अपितु उत्रायक थे। वे शीघ्र ही भारतीय धर्म में घुल-मिलकर पूर्ण भारतीय बन गये थे। स्वयं कनिष्क (78 ई.) तथा उसके उत्तराधिकारी बौद्ध कवि अश्वघोष ने इसी युग में संस्कृत के दो महाकाव्यों की रचना की थी। इससे यह सिद्ध होता है कि ईशवीय प्रथम शतक में संस्कृत काव्य कला लोकप्रिय बन चुकी थी। डा. व्यूलर ने लिखा है कि इस युग में कमनीय स्तुति काव्यों के रूप में तथा राजाओं की यशोगाथा के रूप में अनेक संस्कृत काव्यों का निर्माण हो रहा था। शक क्षत्रप रुद्रदामन का 150 ई. का शिलालेख अपने संस्कृत काव्य शैली की रोचकता एवं सरसता के कारण एक लघुकाव्य गद्यकाव्य ही कहा जाता है। हरिषेण की प्रयाग वाली समुद्रगुप्त प्रशस्ति (350 ई.) इस बात का प्रमाण है कि संस्कृत काव्य साहित्य उत्तरोत्तर बढ़ रहा था। मन्दसौर की वत्सभट्टि की प्रशस्ति (589 त्रि.) से भी यह ज्ञात होता है कि ईसा की आरम्भिक चार पाँच शताब्दियों में गद्य एवं पद्य में अनेक सुन्दर रचनायें हुई थी। महाकवि कालिदास इससे पूर्व हो चुके थे क्योंकि वत्सभट्टि प्रशस्ति पर उनका स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। इसके अतिरिक्त फ्लीट के शिलालेखों के विवरण एवं अन्य ऐतिहासिक अन्वेषण इस बात के साक्षी हैं कि ईशवीय सन् की आरम्भिक शताब्दियों में संस्कृत काव्य-रचना अवरुद्ध नहीं हुई थी, अपितु इस काल की काव्य कला का वही विकसित

रूप देखने को मिलता है जो कि उत्तरकालीन अन्य काव्यों में देखा जाता है। इस प्रकार सिद्ध है कि वेदकाल से आरम्भ होकर संस्कृत काव्य साहित्य निरन्तर विकसित होता रहा है।

NOTES

इनके अतिरिक्त आचार्य पाणिनि ने (4000 ई. पू.) पातालविजय और जाम्बतीविजय नाम दो काव्य का नामतः उल्लेख किया है। भगवाद् पतञ्जलि (150 ई. पू.) ने अपने महाभारत में वाररुचंकाव्यम्, कंसवध, का भी नामतः उल्लेख किया है। और कितने ही अन्य कवियों के श्लोकांशों को भी उद्धृत किया है। इन सब प्रमाणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि ईशवीय सन् से पूर्व भी संस्कृत काव्य साहित्य अपनी समस्त शाखाओं में पूर्ण हो चुका था। इससे प्रमाणित है कि वेदकाल से लेकर ईशवीय पञ्चम शतक तक संस्कृत काव्यधारा अपनी निर्वाध और निरवच्छिन्नगति से उत्तरोत्तर प्रवाहित होती रही है। इस काल में कई महनीय कवियों एवं नाटककारों ने उत्पन्न होकर अपनी काव्यधारा द्वारा संस्कृत काव्योद्धान को सिञ्चित कर अनेक काव्यकुसुमों को विकसित किया है जिनकी सौरभ आज भी भारत भूमि को सौरभित कर रहा है।

काव्य भेद

संस्कृत काव्य साहित्य को मुख्यतः दो भागों में विभक्त किया गया है। (1) दृश्य काव्य (2) श्रव्य काव्य। दृश्य काव्य के अन्तर्गत रूपक आते हैं, इन्हीं का प्रमुख भेद एक नाटक है। रूपक रंगमञ्च पर अभिनीत होते हैं और वे जनता द्वारा दृश्य होते हैं किन्तु श्रव्य काव्य अभिनेय न होकर पठनीय और श्रवणीय ही होते हैं। दृश्य काव्यों में गद्य औश्च पद्य का मिश्रण होता है पर श्रव्य काव्यों में या तो केवल पद्य ही होते हैं, या केवल गद्य ही। यद्यपि श्रव्य काव्यों की एक विधा और भी है जिसमें गद्य और पद्य दोनों प्रायः मिश्रित रहते हैं जिसे 'चम्पूकाव्य' कहा जाता है पर यह चम्पूकाव्य, दृश्य काव्य कोटि में नहीं रखा जा सकता है, यह भी अन्य श्रव्य काव्यों की भाँति पठनीय और श्रवणीय ही होता है। इस प्रकार श्रव्य काव्य तीन प्रकार के होते हैं- पद्यकाव्य गद्यकाव्य और चम्पूकाव्य। पद्य-काव्य प्रबन्धात्मक और मुक्तक भेद से द्विधाविभक्त होता है और इस पद्य काव्य के तीन प्रमुख भेद होते हैं- महाकाव्य, खण्ड-काव्य, मुक्तक काव्य।

कुमारसम्भद, रघुवंश, किरातार्जुनीय, शिशुपालवध, नैषधीयचरित आदि संस्कृत के महाकाव्य हैं। क्योंकि इनमें मानव के समस्त जीवन की घटनाओं का विस्तृत वर्णन है। ऋतुसंहार, मधदूत आदि खण्डकाव्य हैं क्योंकि इनमें मानव जवन की किसी एक विशिष्ट घटना का ही चित्रण किया गया है। भर्तृहरि के शतकत्रय, पृथक् भावों से सम्बद्ध हैं। इनमें आद्योपान्त कोई एक कथानक नहीं चलता है, जबकि प्रबन्ध काव्यों में कोई एक ही कथानक अद्योपान्त चलता रहता है।

साहित्य दर्पणकार ने खण्ड काव्य का लक्षण करते हुए लिखा है "खण्डक व्यं भवेत् काव्यस्यैकदेशानुसारि च" अर्थात् खण्ड काव्य वह काव्य होता है जिसमें मानव जीवन की किसी एक घटना का वर्णन किया गया हो अर्थात् जो महाकाव्य के एक अंश का अनुसरण करता हो। अतः खण्डकाव्य में महाकाव्य के कुछ विषय का ही वर्णन होता है अतएव यह महाकाव्य की अपेक्षा आकार प्रकार में भी छोटा होता है।

गीतिकाव्य

यद्यपि काव्य शास्त्रों में गीतिकाव्य का एक पृथक् काव्याङ्ग के रूप में विवेचन नहीं मिलता है तथापि इस गीतिकाव्य को हम खण्डकाव्य के अन्तर्गत रख सकते हैं, क्योंकि इसमें भी मानव जीवन की किसी विशिष्ट घटना का बड़ी ही तन्मयता से चित्रण किया जाता है। आज गीतिकाव्य, ऐसे खण्डकाव्यों को कहा जाता है, जिनमें मानव जीवन की किसी एक विशेष घटना को बड़ी ही तन्मयता एवं रागात्मकता के साथ ध्वन्यात्मक शैली में छन्दोबद्ध किया गया हो और साथ ही जिनमें आत्मानुभूति की सरस व्यञ्जनात्मक अभिव्यक्ति हो और गेयता भी हो।

NOTES

वस्तुतः ऐसे काव्यों के साथ 'गीति' शब्द का प्रयोग अंग्रेजी "लिरिक" शब्द के अर्थ में किया गया है। ग्रीक भाषा में 'लायर' एक वाद्य विशेष का नाम है जिस पर एक ही व्यक्ति द्वारा गीत गाये जाते थे। इसी 'लायर' से यह लिरिक शब्द निकला है। अतः संगीत से इसका नित्य सम्बन्ध है अतएव गीतिकाव्यों में गेयता अनिवार्यतः ही रहती है, फिर भी 'गीति' शब्द से आजकल के 'संगीत' का अर्थ नहीं लिया जा सकता जिसमें साजशृंगार गायन, वादन और नृत्य आदि की प्रधानता रहती है, अपितु गीतिकाव्य के 'गीति' शब्द के तात्पर्य है, गीति कार द्वारा अपने हृदय की रागात्मक भावना को छन्दोबद्ध रूप में ध्वन्यात्मक शैली में लिपिवद्ध करना जिसमें आत्मानुभूति की सरस अभिव्यक्ति हो। अतएव गीतात्मकता के होते हुए भी जो पद्य रचना केवल बाह्य अभिव्यक्तिपरक होगी, वह गीतिकाव्य के अन्तर्गत शब्द रूप है जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके, इन प्रकार ध्वन्यात्मकता रागात्मकता ही गीतिकाव्य के प्रमुख तत्व हैं।

इन दो प्रमुख तत्वों के अतिरिक्त भावमयता भी गीतिकाव्यों का एक विशिष्ट तत्व माना जाता है। यद्यपि भावमयता सर्वतुकाव्यजगद् में अपेक्षित रहती है पर गीतिकाव्यों में तो यह अनिवार्य होती है, क्योंकि गम्भीर एवं तीव्र रागात्मक अनुभूतियों की मधुर ध्वन्यात्मक अभिव्यक्ति के बिना गीतिकाव्य स्वयं वेद्य एवं स्वयं पूर्ण होते हैं। महा काव्यकार को तो एक ऐतिहासिक अथवा उत्पाद्य कथानक को आश्रित कर तदनुरूप ही अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्त करना होता है पर गीतिकार की गीति उसकी एक आकस्मिक उच्छ्वास का प्रतिफल होता है जिसमें कवि की अन्तः प्रेरणा का स्वाभाविक स्फुरण रहता है, वहाँ उसकी अन्तःप्रेरणा ही सहासा मुखरित होकर लयात्मक गीति का रूप धारण कर लेती है, फिर चाहे यह प्रेमाप्लीवित हो, चाहे दुःखोर्वेलित हो अथवा भक्ति भावना से भरित होकर, अभिव्यक्त हुई हो। छन्दोबद्ध होने के कारण गीतिकाव्यों में लयात्मकता स्वतः आ जाती है। कवि की सहज एवं आकस्मिक उच्छ्वास से प्रस्फुरित होने के कारण इन काव्यों की भाषा में सरलता सरसता स्पष्टता के साथ-साथ स्वाभाविकता मधुरता एवं पदलालित्य स्वतः ही आ जाता है, गीतिकाव्य कवि के सच्चे हृदयोगार होते हैं, वह उन्हें जान-बूझकर अलंकृत करने का प्रयास कभी नहीं करता, अतएव ये काव्य कृत्रिमता एवं शाब्दीक्रीड़ा से सदा दूर रहते हैं, गीतिकाव्यों की भाषा में समाहार शक्ति तथा व्यञ्जनात्मक प्रासादिक शैली में ही सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। अपनी इन विशेषताओं के कारण ही गीतिकाव्य महाकाव्यों की अपेक्षा कहीं अधिक आकर्षक एवं मनोरंजक होते हैं।

गीतिकाव्यों के भेद

गीतिकाव्यों में मानव जीवन की किसी एक घटना का उद्घाटन अथवा मानवान्तरात्मा के किसी एक पटल का चित्रण होता है जबकि महाकाव्यों में मानव जीवन की समस्त घटनाओं को विस्तृत वर्णन होता है, इसीलिये गीतिकाव्य महाकाव्यों की अपेक्षा आकार-प्रकार में भिन्न एवं लघु होते हैं, और इनका लक्ष्य भी उनसे भिन्न होता है। इन गीतिकाव्यों का वर्ण-विषय कही श्रृङ्गार, कहीं धर्म और कहीं नीति होता है। इन काव्यों में सर्वत्र पदलालित्य रसवत्ता और व्यञ्जनात्मक प्रासादिक शैली का प्रयोग होता है। यद्यपि महाकाव्यों में भी पद्य यत्र-तत्र गीतात्मक माधुर्य युक्त कोमलकान्त पदावली गुम्फित होते हैं, पर गीतिकाव्य के सब ही पद्य इसी प्रकार के होते हैं, इनका एक भी पद्य शुष्क एवं नीरस नहीं होता।

श्रृङ्गार, धर्म और नीति, प्रमुखतः इन तीन विषयों को लेकर लिखे जाने वाले गीतिकाव्यों के मुख्यतः दो भेद होते हैं- प्रबन्धात्मक गीतिकाव्य, जिनका कथानक अद्योपान्त एक ही रहता है और जिनका प्रत्येक पद्य अर्थावबोध के लिए पूर्वापर पद्यों के सन्दर्भ की अपेक्षा रखता है, मेघदूत, गीतिगोविन्दम् जैसे गीतिकाव्य प्रबन्धात्मक गीतिकाव्य कहे जाते हैं। गीतिकाव्यों की दूसरी कोटि में मुक्तक गीतिकाव्य आते हैं। इनका प्रत्येक पद्य स्वतन्त्र और अर्थावबोध के लिए स्वतः अपने में पूर्ण होता है, और वह सरस एवं मधुर होता है। इन मुक्तक काव्यों में कोई भी एक कथानक नहीं होता, प्रत्येक पद्य एक नई भावानुभूति के परिपूर्ण होता है और रसपेशल होता है। भर्तृहरि के शतकत्रय और अमरूक शतक आदि मुक्तक गीतिकाव्य हैं। इन द्विविध

NOTES

गीतिकाव्यों के अतिरिक्त एक अन्य शतक आदि मुक्तक गीतिकाव्य हैं। इन द्विविध गीतिकाव्यों के अतिरिक्त एक अन्य प्रकार का भी गीतिकाव्य है जो न तो प्रबन्धात्मक ही कहा जा सकता और न मुक्तक ही। कालिदास की प्रथम रचना 'ऋतुसंहार' ऐसा ही काव्य है, इसके एक-एक सर्ग में एक-एक ऋतु का वर्णन है, इसे हम निबन्धात्मक गीतिकाव्य कह सकते हैं।

उक्त गीतिकाव्यों में प्रमुखतः श्रृङ्गार धर्म और नीति, ये तीन ही विषय देखे जाते हैं। उक्त निबन्धात्मक गीतिकाव्य श्रृङ्गारप्रधान है। स्तोत्रकाव्य धर्म प्रधान गीतिकाव्य है। नीति विषय को लेकर लिखे गये नीतिशतक आदि नीतिप्रधान गीतिकाव्य हैं। इन सभी प्रकार के गीतिकाव्यों का वर्ण्य-विषय अतिलघु होता है क्योंकि इसका लक्ष्य, प्रेम, भक्ति नीति, दुःख, शोक, धर्म, उपदेश आदि भावों की अभिव्यक्ति या स्तुति ही रहता है। अतः स्वभावतः इनका आकार छोटा होता है, और इनमें प्रायः एक ही भाव की अभिव्यक्ति होती है अतः अपने लक्ष्य के अनुसार गीतिकाव्य लघु आकार के और आत्मानुभूति प्रधान होते हैं और इनमें मानव भावनाओं का स्वभाविक प्रवाह तथा अनुभूतियों का स्वतः सिद्ध प्रकाशन होता है।

गीतिकाव्यों की परम्परा

अन्य साहित्य विधाओं की भाँति गीतिकाव्य का उदय भी वेदों से ही हुआ है, यद्यपि वेद आध्यात्मिक ज्ञान और कर्मकाण्ड के साधन हैं तथापि इनमें यत्र-तत्र स्तुतिपरक ऋचाओं में गीतिकाव्य के अर्धस्फुटित अंकुर देखे जाते हैं जहाँ अन्तःप्रेरणा से उद्दीप्त ऋषि की वाणी कवित्व मार्ग अपना लेती है। जब ऋषि की भावनाएँ अति प्रबल हो उठती हैं जब उसकी वाणी स्वतः संगीतमयी एवं कवित्वमयी बनकर प्रस्फुटित हुई है और ऐसे स्थलों में उसकी भाषा भी अति मधुर सरल एवं लालित्यपूर्ण तथा अलंकृत हो गई है। उदाहरणार्थ ऋषिकृत उषा देवी की स्तुति में गेयता एवं अलंकृत काव्यमपता देखी जाती है। मेघदूत जैसे काव्यों को सन्देश काव्य या दूतकाव्य भी कहा जाता है, इसका भी संकेत ऋग्वेद के उस स्थल पर मिलता है जहाँ सरमा नामक एक कुत्ते को प्राणियों के पास एक सन्देश वाहक के रूप में भेजा गया है। वेदों के स्तुतिपरक मन्त्रों में यत्र-तत्र सौन्दर्य भावना एवं कोमल भावनाओं का भी अधिक्य देखा जाता है। इस प्रकार वेदों में काव्यगत गुणों के पर्याप्त उदाहरण मिल जाते हैं। गये तो वेद मन्त्रों की विशेषता है ही। अतः यह कहा जा सकता है कि वेदों में गीतिकाव्य के पर्याप्त बीज उपलब्ध होते हैं।

वेदों के उपरान्त रामायण और महाभारत में भी अनेक ऐसे स्थल हैं जहाँ गीतिकाव्यों की भाषामयी अभिव्यक्ति स्पष्ट देखी जा सकती हैं रामायण में अनेक स्थल एवं अनेक श्लोक ऐसे देखे जाते हैं जिनमें वाल्मीकि के शोकोद्गारों में गीतिकाव्यनुरूप रागात्मक आत्मानुभूति देखी जाती है। और यहाँ श्रीराम द्वारा प्रवासिनी सीता के पास हनुमान को सन्देश वाहक के रूप में भेजा गया है। रामायण का यह कथानक ही सम्भवतः कालिदास के मेघदूत का आधार है, जो कि उत्तरकालीन दूतकाव्य की परम्परा का प्रवर्तक माना गया है। महाभारत में भी इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण को और हंस को, क्रमशः दुर्योधन के पास और दमयन्ती के पास दूत रूप में भेजा गया है। श्रीमद्भागवत की वीणुगीत तो इस क्षेत्र में प्रसिद्ध ही है, संस्कृत के दूतकाव्यों के यही सब आधार हैं।

विन्टरनिट्स के अनुसार बौद्धों की धेर गाथाओं में दुःखावाद की जो तीव्र एवं भावमयी अनुभूति देखी जाती है, उसे संस्कृत के उत्कृष्ट गीतिकाव्यों के समक्ष रखा जा सकता है। रूपक साहित्य के भी वे स्थल जो कि रूपक के कथानक से अपना पृथक् अस्तित्व रखते हैं, और तीव्र भावमय गीति के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं उनमें भी कवि हृदय की तीव्र अनुभूति परिलक्षित होती है। इसी प्रकार संस्कृत महाकाव्यों में भी कितने ही ऐसे स्थल एवं संस्कृत श्लोक उपलब्ध होते हैं जो कि कार्व हृदय की अत्यधिक भावुकता तन्मयता एवं भावाभिव्यक्ति के परिचालक हैं। इससे स्पष्ट है कि वैदिक साहित्य से जो गीतिकाव्य के अंकुर प्रस्फुटित हुए थे इस काल तक आते-आते अधिक विकसित हो चुके थे और गीतिकाव्य एक साहित्य की स्वतन्त्र विधा के रूप में साहित्य में स्थान पा चुका था।

NOTES

भगवान् पाणिनि के नाम से जो स्फुट पद्य उपलब्ध होते हैं, वे इस बात के परिचालक हैं कि सर्वोत्कृष्ट वैयाकरण भी पाणिनि का हृदय गीतिकाव्य की भावमयी अनुभूति से अस्पष्ट नहीं था। सुभाषित ग्रन्थों में भी इसी प्रकार के अनेक भावमय श्लोक देखे जाते हैं, जिन्हें गीतिकाव्य के समक्ष सरलता से रखा जा सकता है। यह सब इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि गीतिकाव्य परम्परा अति प्राचीनकाल से आरम्भ होकर उत्तरोत्तर विकसित होती रही है और गीतिकाव्य के प्रथम उपलब्ध कवि कालिदास के समय तक स्वतन्त्र रूप से अनेक गीतिकाव्य लिखे जा चुके थे जो आज उपलब्ध नहीं हैं, उनके स्फुट पद्य ही यत्र-तत्र मिलते हैं। कालिदास का मेघदूत भी इस बात का साक्षी है कि इसके पूर्व गीतिकाव्य एक स्वतन्त्र साहित्य विद्या के रूप में प्रचलित हो चुका था। पर अब इन ग्रन्थों के अभाव में आज कालिदास के मेघदूत को ही अगत्या गीतिकाव्य की सर्वोत्कृष्ट प्रथम रचना माना जाता है।

गीतिकाव्य की प्रमुख विशेषताएँ

संस्कृत साहित्य का परम रमणीय सरस एवं मधुर अंग, गीतिकाव्य है। ये गीतिकाव्य कुछ तो मुक्तक शैली में लिखे गये हैं जैसे 'भर्तृहरि' के शतकत्रय और अमरुकशतक आदि और कुछ प्रबन्धात्मक शैली में लिखे गये हैं जैसे मेघदूत, गीतिगोविन्दम आदि। मुक्तक गीतिकाव्य का प्रत्येक श्लोक अर्थावबोध की दृष्टि से अपने में पूर्ण होता है। सन्दर्भ आदि बाह्य उपकरणों से उन्मुक्त रहकर भी रसाभिव्यक्ति में पूर्णतः सक्षम होने के कारण ही इसे मुक्त कहा जाता है। इस प्रकार के काव्य में किसी विशिष्ट कथा-सूत्र के न रहने के कारण पूर्वापर सम्बन्ध देखने की आवश्यकता नहीं रहती। प्रत्येक पद्य अपने में पूर्ण, सरस, एवं मधुर होता है। जबकि प्रबन्धात्मक गीतिकाव्य में आरम्भ से अन्त तक एक ही कथा-सूत्र चलता रहता है, अतएव इसमें सन्दर्भ आदि के लिए पद्य का पूर्वापर सम्बन्ध अर्थावबोध के लिए अपेक्षित रहता है। कालिदास का 'ऋतुसंहार' जो कि वेघदूत से पूर्व की रचना है, गीतिकाव्य के इन द्विविध भेदों से भिन्न है, क्योंकि न तो समें एक कथा-सूत्र ऋतु का वर्णन है अर्थात् यहाँ प्रत्येक सर्ग का पद्य-समूह एक निबन्ध के रूप में प्रस्तुत किया गया है, अतः इसें निबन्धात्मक गीतिकाव्य कहा जाता है।

विषय की दृष्टि से ये प्रबन्धात्मक गीतिकाव्य जो मेघदूत के आधार पर लिखे गये हैं, दूतकाव्य अथवा सन्देशकाव्य भी कहे जाते हैं। इसी प्रकार प्रेम या श्रृंगार, भक्ति या धर्म दर्शन, अथवा लोकनीति के विषय का लेकर लिखे गये मुक्तक गीतिकाव्य भी, श्रृंगार मुक्तक, स्तोत्र मुक्तक एवं नीतिमुक्तक कहे जाते हैं।

कालिदास जैसे महाकाव्यकारों द्वारा लिखे गये गीतिकाव्यों में यद्यपि कबित्व एवं भावानुभूति महाकाव्यों जैसी ही है तथापि इनमें मानव जीवन के किसी एक ही सरस मधुर पक्ष का चित्रण होने के कारण ये अकार-प्रकार में लघु हैं, इनमें अन्तरात्मा के किसी एक पटल का अपूर्व तन्मयता के साथ उद्घाटन किया गया है, सम्पूर्ण जीवन का चित्र इनमें नहीं है। किन्तु इनका एक-एक पद्य सरस मधुर एवं परम रमणीय है।

भाषा और शैली की दृष्टि से गीतिकाव्यों की भाषा एवं परम सुबोध कोमलकान्त पदावली विशिष्ट और प्रवाहमयी होती है। दीर्घकाल समासों एवं प्रयत्नसाध्य अलंकारों का इनमें प्रायः अभाव ही रहता है। शैली सर्वत्र प्रासादिक स्वाभाविक और व्यञ्जनात्मक होती है। अपनी इस सरलता एवं सरसता तथा प्रासादिकता के कारण ही ये गीतिकाव्य, महाकाव्यों की अपेक्षा अधिक रुचिकर मनोरंजक एवं सहृदय जन को आकर्षक होते हैं।

सुख या दुःख की भावमयी अवस्थाओं का चित्रण ही गीतिकाव्यों का प्रमुख प्रतिपद्य होता है, दुःखात्मक या सुखात्मक भावों की तीव्रतम अनुभूति ही गीतिकाव्य को जन्म देती है। कवि की इस प्रकार की अनुभूति जब तीव्र से तीव्रतम होकर ध्वनियों के रूप में प्रस्फुटित होने लगती है तभी उसे गीति संज्ञा प्राप्त होती है। एक सम्पूर्ण गीतिकाव्य में, एक ऐसी ही सुखात्मक या दुःखात्मक भावानुभूति को सरस मधुर शब्दों में अभिव्यक्त पाकर पाठक भावभोर हो उठता है। इन गीतों में जो संगीतात्मकता होती है यह तो और

NOTES

भी श्रवण सुखद् एवं गेय होने के कारण आकर्षक होती है। अतएव यह कहना सर्वथा संगत है कि गीतिकाव्य मानव जीवन की भावमयी आत्मानुभूतियों एवं जीवन की मार्मिक घटनाओं का शब्द चित्र होता है।

गीतिकाव्यों में रगात्मक वृत्तियों को ही प्रमुख स्थान दिया जाता है अतएव इसमें प्रसाद और माधुर्य गुण तथा श्रृंगार करुण एवं शान्त रसों की व्यञ्जना का ही प्रधान्य रहता है, और एक ही अति तीव्रतम मनोभाव आद्योपान्त अभिव्यक्त होता है। इसलिए इनमें भावों की कोमलता, विचारों का सुसम्बद्धता एवं शिष्टता के साथ-साथ निरीक्षण की नवीनता एवं कल्पना की चारुता रहती है।

गीतिकाव्य कवि हृदय के अपने स्वतन्त्र हृदयोद्गार होते हैं अतएव उनमें स्वाभाविकता के साथ मधुरता एवं सरसता रहती है। वे अलंकारशास्त्र की नियमित रुढ़ियों में बंधकर नहीं चलते। गीतिकार कोई भी मार्मिक भाव या विषय स्वेच्छानुकूल चुनकर अपनी भावनाओं के अनुसार, अभिव्यक्त कर सकता है। अतएव गीतिकाव्य कवि हृदय के स्वच्छन्द उद्गारों का शब्दमात्र चित्र कहा जाता है।

गीतिकाव्यों का वर्ण्य-विषय प्रमुखतः श्रृङ्गार, नीति अथवा धर्म होता है। यद्यपि कुछ गीतिकाव्यों में प्रकृति सौन्दर्य और उसके प्रभाव का भी चित्रण देखा जाता है। फिर भी विषय कोई भी हो, उसे प्रकृति से अलग करके नहीं देखा जा सकता है। गीतिकाव्य का जीवन ही प्रकृति है, गीतिकार अपने भावों को प्रकृति के परिवेष में ही अभिव्यक्त करता है। गीतिकार की अभिव्यक्ति का सुकुमार साधन प्रकृति ही है।

इस गीतिकाव्य धारा में श्रृंगार प्रधान ही गीतिकाव्य अधिक लिखे गये हैं जिनमें स्वभावतः रमणी-सौन्दर्य बड़ी ही स्फुटता, मनोज्ञता और सुन्दरता के साथ चित्रित हुआ है। नारी की बाह्य रूप छटा को और उसके सात्विक तथा आंगिक अनुभावों को जितनी न्ययता एवं सहृदयता के साथ चित्रित किया गया है, उतनी ही तन्मयता एवं सहृदयता के साथ उसके मनोगत भावों, अन्तर्चेतनाओं, आकांक्षाओं, उत्कण्ठाओं एवं अन्तःकल्पनाओं का भी अधिव्यक्तीकरण किया गया है।

यद्यपि श्रृङ्गार की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं एवं काम-दशाओं के मार्मिक चित्रण ही इन श्रृङ्गार प्रधान काव्यों की विशेषता है, तथापि संस्कृत गीतिकार की दृष्टि से नारी का अन्तःसौन्दर्य कभी ओझल नहीं हुआ है। अतएव नारी के आकर्षक हाव-भावों एवं चेष्टाओं के मनोरम चित्रों के बीच हमें नारी के वे भव्य चित्र भी देखने को मिलते हैं जहाँ गीतिकार ने उसे कठोर कर्तव्यपालन में, लोकाचार एवं मर्यादा के संरक्षण में और शिष्टाचार-प्रदर्शन में मनोयोग से निरत दिखलाया है, और उसकी मनोवृत्तियों का मार्मिक और क्वचित्कारुणिक चित्र प्रस्तुत किया है। इसीलिये इन गीतिकाव्यों में कहीं तो नारी हृदय की विलासोल्लासमयी आनन्दमयी मन्दाकिनी रसिकों को रसाप्लावित कर रही है और कहीं विरहाग्निदग्धा विरहिणी की विरह-यथाओं की करुणधारा सहृदयों को आवर्जित कर रही है। इसलिये कहीं तो इनमें जीवन के आमोद-प्रमोदों को संगीत लहरी है तो कहीं विरह-विधुरा के दग्ध हृदय के मर्मोच्छवासों का मर्मस्पर्शी करुण क्रन्दन है। अतः कहा जा सकता है कि संस्कृत गीतिकाव्यों में नारी के अन्तः एवं बाह्य सौन्दर्य का परिष्कृतचित्र मिलता है।

वस्तुतः गीतिकाव्यों का प्रमुख तत्व अथवा उनका रमणीय एवं सुकुमार साधन प्रकृति ही है। इस प्रकृति-परिवेष के बिना गीतिकाव्य निष्प्राण हो जायेंगे, इनमें जो कुछ श्राणतत्त्व है वह प्रकृति का अन्तर् एवं बाह्य तत्व ही है। इसीलिये गीतिकार ने इन दोनों के बीच चलने वाले आदान-प्रदान प्रभाव एवं परस्पराणुरञ्जन को बड़ी ही तन्मयता के साथ ललित पदावली में प्रस्तुत किया है और यह दिखलाया है कि मानव मनोविकारों और प्रकृति उपकरणों में परस्पर को प्रभावित करने की अपूर्ण क्षमता रही है, इन दोनों में घनिष्ठ ही नहीं अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है, एक के बिना दूसरा निस्तत्त्व और निष्प्राण है।

इससे यह समझना चाहिये कि गीतिकाव्यों में केवल अनुभूति का ही प्राधान्य है, हृदय पक्ष ही सब कुछ है, वस्तुतः इनमें अभिव्यक्ति पक्ष भी उतना ही उत्कृष्ट है जितना कि अनुभूति पक्ष। मधुर शब्द-योजना,

पदालालित्य, भावानुगामिनी भाषा, अकृत्रिमता और संगीतमयता तो गीतिकाव्य के अपरिहार्य अंग हैं। इनमें सर्वत्र ध्वन्यात्मक पदावली, व्यञ्जनाप्रधान सरस, स्वाभाविक शैली सर्वत्र देखी जाती है।

कुमारसंभवम् एवं महाकाव्य
और गद्य काव्य

इनमें न कहीं नीरसता है नह कहीं कृत्रिमता और न कहीं अतिरंजना, अपनी इन विशेषताओं के कारण ही गीतिकाव्य इतने लोकप्रिय हो सके हैं।

NOTES

काव्य का सामाजिक महत्त्व

मनुष्य की आध्यात्मिक, आधिक-भौतिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक मान्यताओं की अभिव्यञ्जना का मुख्य साधन या एकमात्र साधन, साहित्य ही होता है। किसी भी समाज या राष्ट्र की उन्नति-अवनति, समृद्धि-असमृद्धि एवं उत्कर्ष-अपकर्ष इत्यादि का ज्ञान उस समाज या राष्ट्र के तत्कालीन साहित्य से ही हुआ करता है। अतः एव साहित्य को समाज के दर्पण माना गया है। भारतीय आचार-विचार, भारतीय-सभ्यता एवं संस्कृति, इन सभी की उन्नति-अवनति एवं सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना इत्यादि को भारतीय संस्कृत-साहित्य में स्पष्ट देखा जा सकता है।

विश्व के साहित्यों में संस्कृतसाहित्य प्राचीनतम हैं तथा सभी साहित्यों में श्रेष्ठ हैं। क्योंकि संस्कृतसाहित्य का मुख्य व अन्तिम लक्ष्य है- जीवन के लिए शाश्वत आनन्द को प्राप्त कराते हुए 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' को अभिव्यक्ति देना। संस्कृतसाहित्य भौतिक सुख सुविधाओं तथा जीवनोपयोगी सामग्री को जुटाने में संलग्न नहीं रहा है, अपितु वह परमशान्ति की साधना में संलग्न रहा है, अविचल भाव से जीवन में मूल्यों के अन्वेषण में रत रहा है सर्वथा सत्य शान्ति एवं परमानन्द की अभिव्यक्ति ही संस्कृतसाहित्य के साध्य रहे हैं।

भारतीय संस्कृति के स्रोत - विश्व की प्रचीनतम रचना वेद एवं वेद-सम्बद्ध साहित्य से लेकर लौकिक संस्कृतसाहित्य तक सम्पूर्ण वाङ्मय भारतीय संस्कृति के अजस्र स्रोत हैं। भारतीय संस्कृति के प्राण तत्व हैं- आध्यात्मिक चेतना। और यह लौकिक संस्कृतसाहित्य में कूट-कूट कर भरी है। हमारे इस साहित्य में- तप, त्याग, वैराग्य, दया, औदार्य, सहानुभूति, दान, उपासना एवं लोक-कल्याण इत्यादि विशिष्ट लोक-गुणों को देखा जा सकता है। और ये ही विशिष्ट-गुण भारतीय संस्कृति की विलक्षणताएँ हैं। प्रभृति महाकवियों ने उपर्युक्त सांस्कृतिक विलक्षणताओं को अपनी-अपनी रचनाओं में कान्तासम्मित उपदेश के साथ गुम्फित किया है। **संस्कृतसाहित्य** को दो भागों में बाँटा गया है- (1) वैदिक-साहित्य, (2) लौकिक-साहित्य।

वैदिक-साहित्य में ऋग्वेद से लेकर संहिता बाह्यण-ग्रन्थ, आरण्यक एवं उपनिषदों का ग्रहण किया जाता है। इन वैदिक-साहित्यों की व्याख्या के रूप में, या इनमें प्रतिपादित तत्वों के सहज बोध के लिए सूत्र-साहित्य, वेदाङ्ग-शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्द एवं ज्योतिष इत्यादि रचे गये। और इसी क्रम में संस्कृतसाहित्य की लौकिकधारा का प्रवाह भी प्रस्फुटित होने लगा। जो काव्यों, नाटकों, आख्यानों एवं कथानकों के रूप में हमारे सम्मुख आया और साहित्य के रूप में जाना गया।

काव्य-साहित्य

विशाल लौकिक संस्कृतसाहित्य का एक भाग है- काव्य-साहित्य। विश्व के प्रथम लौकिक-काव्य वाल्मीकि-रामायण एवं सबसे विशाल कविरचना-महाभारत, अन्य सभी लौकिक काव्यों के उपजीव्य ग्रन्थ हैं। काव्यकला का समाश्रयण वाल्मीकि रामायण से, तथा काव्यकथा का बीज महाभारत से, प्रायशः कवियों ने ग्रहण किया है अतः लौकिक-काव्यों के आधारभूत ये - रामायण एवं महाभारत हैं, ऐसा कहा जाता है। फिर भी यह कहने में अतिशक्ति नहीं है कि काव्योत्पत्ति के बीज वेदों में उपलब्ध होते हैं।

ऋग्वेद में 'नाराशंसी' नाम की ऋचाओं में दानशील नृपों का वर्णन है। इन ऋचाओं में मन्त्रद्रष्टा ऋषि कीकाव्यकला, या कवित्वशक्ति देखी जा सकती है। अथर्ववेद में परीक्षित (राजा) के सौख्यवर्णन के प्रसङ्ग

NOTES

में ऋषि की काव्यात्मकता का अवलोकन किया जा सकता है। ब्राह्मण-ग्रन्थों में प्राक्कालीन नृपों के जीवन-चरित्र में काव्यत्व की छटा मिलती है। परन्तु काव्यशैली की परिपुष्टि वैदिक-साहित्य में नहीं है। यहां तो काव्य की उत्पत्ति के बीज मिलते हैं, जिन्हें विकसित एवं पल्लवित कर कवियों ने लौकिक काव्यों के चरमोत्कर्ष का निदर्शन हमारे सामने रखा। महाकवि कालिदास ने ऋग्वेदीय पुरुरवा और उर्वशी के सम्वाद-रूप बीज को लेकर ही 'विक्रमोर्वशीयम्' का विकास किया।

वैदिक-काल के उपरान्त एवं महाभारत नामक ऐतिहासिक महाकाव्यों की रचना के बाद लौकिक संस्कृत-काव्यों की रचना का प्रवाह अद्यवधि निरन्तर प्रवाहित है। लौकिक संस्कृत-काव्यों की परम्परा में रामायण एवं महाभारत के बाद एवं ईसा से पूर्व के वर्षों में रचित काव्यों की संख्या पर्याप्त प्रतीत नहीं होती है। न ही इस समय के काव्य पूर्णतः उपलब्ध होते हैं। ईसा पूर्व के संस्कृत-काव्यों में केवल भास की ही रचनाएँ उपलब्ध हो पाई हैं। किन्तु ऋषि पाणिनि ने पातालविजय एवं जाम्बवतीविजय नामक उत्कृष्ट काव्य की रचना की थी। आचार्य वररुचि ने कंसवध नामक नाटक लिखा था। महाभाष्यकार पतञ्जली ने अपने महाभाष्य में उक्त रचनाओं का नामोल्लेख किया है। साथ ही वलिबन्ध, वासवदत्ता, सुमनोत्तरा, भैरवश्ची आदि अनेक कवियों की काव्य रचना का नामशः उल्लेख किया है।

इससे सिद्ध है कि वेद-काल से लेकर संस्कृत-काव्यों की धारा निरन्तर, निर्बाध गति से प्रवाहित होती रही है। इस काल में उत्पन्न हुए अनेकों महाकवियों ने जहां अपने रचना-कुसुमों से भारतीय प्रज्ञा एवं प्रज्ञा को आनन्दित किया, वहीं उन्होंने विश्व को भी चमत्कृत किया, तथा भारत के गौरव को विष्वविख्यात करते हुए स्वयं भी विश्वविश्रुत हुए।

संस्कृत-काव्यों के भेद

लोकोत्तरचमत्कारी कुछ काव्यों की रचना के उपरान्त अलङ्कार-शास्त्रियों ने काव्य-साहित्य-निर्माण के कुछ नियम बनाये। काव्यों के लक्षण, उनके भेद, रस, अलङ्कार, वृत्तियाँ, गुण इत्यादि के लक्षणों को निध रित किया। अलङ्कारशास्त्रियों के अनुसार, हम काव्य-साहित्य के मुख्य रूप से दो भोगों में विभाजित कर सकते हैं- (1) दृश्य-काव्य, (2) श्रव्य-काव्य। जिस काव्य का आनन्द सुनने के साथ-साथ देखने से अधिक प्राप्त हो, वह दृश्य-काव्य कहलाता है। साहित्य-दर्पण में कहा गया है-

दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम्।

दृश्यं तत्राभिनेयं स्यात् रूपारोपात्तु रूपकम्॥

दृश्य-काव्य अभिनय के योग्य होता है, तथा अन्य पात्रों के रूप में नटादि द्वारा अनुकरण करने से दृश्य-काव्य को रूपक भी कहते हैं। रङ्गमञ्च पर अभिनेय दृश्य-काव्यों में अर्थात् रूपक में गद्य-पद्य का सम्मिश्रण होता है। नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अङ्ग, वीथी एवं प्रहसन ये दशरूपक कहलाते हैं, तथा दृश्य-काव्य के रूप में जाने जाते हैं।

श्रव्य-काव्य प्रायशः पद्यात्मक होते हैं, तथा पढ़ा एवं सुना जा सकता है, या केवल गद्यात्मक-काव्य भी श्रव्य ही होते हैं। विश्वनाथ ने कहा है-

श्रव्यं श्रोतव्यमात्रं तत्पद्यगद्यमयं द्विधा।

केवल श्रवणीय या पठनीय श्रव्य-काव्य प्रबन्ध एवं मुक्तक के भेद से दो प्रकार के हैं। काव्य का एक अन्य भेद भी है, जिसे 'चम्पू' कहते हैं। 'गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते'। किन्तु चम्पूकाव्य के दृश्य-काव्य की कोटि में नहीं रखा जा सकता है। अतः ये चम्पूकाव्य भी श्रव्य के अन्तर्गत ही आ जाते हैं। इस तरह श्रव्य-काव्य गद्यात्मक, पद्यात्मक तथा तथा चम्पू (गद्य-पद्यात्मक) इन तीन भेदों में विभक्त हैं।

होते हैं। पद्य-काव्य प्रबन्धात्मक एवं मुक्त के भेद से दो भागों में बाँटे जा सकते हैं, और इन पद्य-काव्यों के मुख्यतः तीन भेद माने जाते हैं- (1) महाकाव्य, (2) खण्डकाव्य, (3) मुक्तककाव्य।

कुमारसम्भवम् एवं महाकाव्य
और गद्य काव्य

महाकाव्य

NOTES

लक्षणकार महाकाव्य का लक्षण करत हुए प्रायशः एक जैसी बातें कहते हैं। आचार्य विश्वनाथ ने माना है कि महाकाव्य सर्गों में विभक्त होता है तथा उसमें एक नायक होता है, जो देव, या उच्चकुल प्रसूत, या क्षत्रिय हो, तथा धीर उदात्त आदि गुणों से युक्त हो। कहीं-कहीं एक वंश में उत्पन्न कुलीन नृपगण भी महाकाव्य के नायक होते हैं।

महाकाव्यों में शृङ्गार, वीर और शान्त रसों में कोई एक रस प्रधान (अङ्गी) हुआ करता है तथा अन्य सभी रस अङ्ग (अप्रधान) हुआ करते हैं। महाकाव्य की कथा-वस्तु ऐतिहासिक या लोक में प्रसिद्धि को प्राप्त महापुरुष से सम्बद्ध होती है। धर्मार्थकाम एवं मोक्ष इन चतुर्वर्गों में से उसका एक ही फल होता है।

आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा।
क्वचित्रिन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम्॥

महाकाव्य के प्रारम्भ में नमस्कार, आशीर्वाद या वर्ण्य कथा-वस्तु का निर्देश होता है इनमें दुष्टों की कहीं निन्दा तो कहीं सज्जनों के गुणों का वर्णन होता है।

महाकाव्यों में न्यूनतिन्यून आठ सर्ग होते हैं। महाकाव्य में सर्गरचना न तो बहुत बड़ी हो, न ही अत्यन्त छोटी हो। एक वर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग हो, किन्तु अन्तिम पद्य में भिन्न छन्द होना चाहिये। कहीं-कहीं महाकाव्य के एक ही सर्ग में अनेक छन्दों का प्रयोग भी किया जा सकता है। साथ ही प्रत्येक सर्ग के अन्तिम पद्य द्वारा आगे आने वाली कथा की सूचना भी दी जानी चाहिए।

सन्ध्यासूर्येन्दुरजनी-प्रदोषध्वान्तवासराः।
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागराः॥

महाकाव्य में सन्ध्या, सूर्य, चन्द्र, रजनी, प्रदोष, अंधकार, दिन, प्रातः, मध्याह्न, शिकार (मृगया), पर्वत, ऋतु, वन एवं सागरों का वर्णन होना चाहिये। इसमें सम्भोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, युद्धप्रयाण, विवाह, मन्त्र, पुत्र और उदय आदि का साङ्गोपाङ्ग वर्ण होना चाहिए।

कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा।
नामास्य सर्गोपादेयकया सर्गनाम तु॥

महाकाव्य का नामकरण कवि के नाम पर या चरित्रनायक के नाम पर या कहीं-कहीं इससे भिन्न आधार पर भी होता है। महाकाव्य के सर्गों का नाम सर्ग की वर्ण्यकथा के आधार पर होता है। **माघकाव्य** माघ कवि के नाम से **कुमारसम्भव** **रघुवंश** आदि चरित्र नायक के नाम से जाने जाते हैं। आचार्य दण्डी, भामह आदि ने भी महाकाव्य के विषय में उपर्युक्त कथनों की ही पुष्टि की है।

महाकाव्य के उक्त लक्षणों की कसौटी पर रघुवंश, कुमारसम्भव, किरातार्जुनीयम्, शिशुपालवधम्, नैषधीयचरितम् इत्यादि महाकाव्य खरे उतरते हैं। इन महाकाव्यों में मानवीय लोकजीवन की घटनाएँ व्यापक रूप से वर्णित हैं।

खण्डकाव्य या गीतिकाव्य

मानव-जीवन की किसी एक घटना को आधार बनाकर रचा जाने वाला काव्य खण्ड-काव्य या गीतिकाव्य कहलाता है। खण्डकाव्य में महाकाव्य के एक भाग का अनुसरण होता है, या महाकाव्य के कुछ

ही विषय इसमें वर्णित होते हैं। अतः एव खण्डकाव्य का आकार महाकाव्य की तुलना में लघु होता है। साहित्य-दर्पण के खण्डकाव्य के “खण्डकाव्य भवेत् काव्यस्यैकदेशानुसारि च” इस लक्षण से उपर्युक्त की पुष्टि होती है।

NOTES

अलङ्कार-शास्त्रियों ने काव्याङ्ग के रूप में गीतिकाव्य के नाम से किसी पृथक् काव्यभेद को उल्लेख नहीं किया है। फिर भी समालोचक विद्वानों ने खण्डकाव्य के रूप में या खण्डकाव्य के अन्तर्गत गीतिकाव्य को अन्तर्भूत किया है। क्योंकि गीतिकाव्य में भी मानवजीवन की किसी विशिष्ट घटना का बड़ी तन्मयता के साथ चित्रण किया जाता है। खण्डकाव्य के उस निर्माण को गीतिकाव्य कहते हैं, जिसमें विशेष घटना का वर्णन ध्वन्यात्मक शैली में रागात्मकता के साथ छन्दोबद्ध हो, साथ ही स्वानुभूति की सरस अभिव्यक्ति हो। गेयता इसका प्राणभूत तत्त्व है। खण्डकाव्य के लिए गीतिकाव्य का प्रयोग वैदेशिक शब्द-भावना पर आधारित है। वस्तुतः -‘गीति’ शब्द का प्रयोग अंग्रेजी भाषा के ‘लिरिक’ (Lyric) शब्द के अर्थ में किया गया प्रतीत होता है। ग्रीक भाषा का ‘लायर’ एक विशेष प्रकार बाद्य है। इस बाद्य पर एक व्यक्ति द्वारा गीत गाये जाते थे। इसी ‘लायर’ शब्द से प्रादुर्भूत ‘लिरिक’ शब्द है। इस शब्द का सम्बन्ध संगीत से है। और मेघदूत इत्यादि खण्डकाव्यों में गेयता को दृष्टिगत रखते हुए ही हमारे विद्वानों ने खण्डकाव्य को गीतिकाव्य भी कहना प्रारम्भ कर दिया है।

गीतिकाव्य का एक विशेष तत्त्व है- भावात्कता। यद्यपि भावात्कता सभी काव्यों का अनिवार्य तत्त्व है, फिर भी गम्भीर अनुभूति एवं मधुर अभिव्यञ्जना इसकी विशेषता है। एक ही प्रकार के भाव की अनुभूति गीतिकाव्य में व्याप्त रहती है, अतः एव यह स्व-संवेद्य एवं पूर्ण होता है। वैयक्तिक सीमा में रहते हुए सुख एवं दुःख, उभयानुभूति का शब्दरूप, जो ध्वन्यात्मक में गेय हो तथा जिसमें रागात्मकता हो, वही गीतिकाव्य है।

प्रश्न- नाट्य एवं नाट्य-साहित्य का स्वरूप बताइए तथा महत्व प्रतिपादित कीजिए।

उत्तर- प्रत्येक मनुष्य स्वभाव से ही मनोरंजन प्रिय होता है। उसका यह मनोरंजन अनुकरण वृत्ति पर आधारित होता है। अनुकरण वृत्ति का एक मात्र लक्ष्य आनन्द प्राप्ति के लिए मनोरंजन ही नहीं, बल्कि इससे भी महत्वपूर्ण है। इसी आधार पर पाश्चात्य दार्शनिक ‘अरस्तु’ ने कला को अनुकरण ही मान लिया है। इसके पश्चात् धनञ्जय की नाट्य तथा रूपक की परिभाषा इसे भली-भाँति स्पष्ट करती है- ‘अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्’ ‘रूपक तत्समारोपात्’ अर्थात् अवस्था के अनुकरण को ही नाट्य कहते हैं। काव्य में निबद्ध धीरोदात्त आदि नायकों का आङ्गिक, वाचिक आदि चार प्रकार के अभिनयों द्वारा जिस अवस्था का अनुकरण किया जाता है, वही नाट्य है। जिस प्रकार इन्द्र, मधवा तथा शक्र तीनों नामों का अर्थ एक है, ठीक उसी प्रकार एक ही अर्थ में नाट्य, रूप और रूपक तीनों शब्दों का प्रयोग होता है।

विविधानन्द भूमि देववाणी के कोमल परिसर में विलसित होता हुआ नाट्य साहित्य अपने वैशिष्ट्य से विश्व प्रतिभा को चमत्कृत करता रहा है। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग तक के संस्कृत नाटक अपने भाव, कथ्य, शैली और रस-पेशलता के लिए स्वयं अपने निदर्शन बनते रहे हैं। दूसरी ओर संस्कृत नाटकों ने विश्व क्षितिज पर अलंकृत शुद्ध स्वर्ण की भाँति जो स्थान बनाया है। उसमें भरत भामह, वामन, आनन्दवर्धन, मम्मट, धनञ्जय आदि आचार्यों की प्रमुख भूमिका रही है।

नाट्य शब्द सर्वप्रथम भरत के नाट्यशास्त्र में शीर्ष स्थान प्राप्त करता है। भरत नाट्यशास्त्र को कलाओं का विश्व कोष कहा जाता है। इसमें भरत मुनि (द्वितीय शताब्दी ई. पू.) ने नाट्यशास्त्र का प्रामाणिक और विस्तृत विवेचन 36 अध्यायों में किया है। नाट्यशास्त्र के सम्बन्ध में उनका मानना है कि संसार का ऐसा कोई ज्ञान, शिल्प, कला, योग, कर्म नहीं है जो नाट्य शास्त्र में न समा जाता हो-

न तज्ज्ञानं न तच्छिष्यं न सा विद्या न सा कला।

नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते॥ नाट्य. १/११६

संस्कृत वाङ्मय को काव्यशास्त्रियों ने दृश्य एवं श्रव्य दो भागों में विभक्त किया है। जिसकी पुष्टि आचार्य विश्वनाथ की निम्न कारिका से हो रही है—

कुमारसंभवम् एवं महाकाव्य
और गद्य काव्य

दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम्।
दृश्यं तत्राभिनेयं तद् रूपारोपात्तु रूपकम्॥ सा. द. ६.१॥

NOTES

दर्शकों द्वारा देखे जाते हैं, इसलिए यह दृश्य काव्य कहलाता है। दृश्य काव्य में रूपकों तथा उपरूपकों का ग्रहण होता है। नाटक के लिए संस्कृत में 'रूपक' शब्द का प्रयोग किया जाता है क्योंकि अभिनय की अवस्था में अभिनेता अपने ऊपर नाटकीय पात्र के स्वरूप का आरोप कर लेता है। रूपक के ही दस भेदों में से एक भेद नाटक है। संस्कृत नाटकों की परम्परा भारतवर्ष में ही प्रारम्भ हुई और भारतीय मनीषियों ने इस साहित्य को विकसित किया। समग्र नाट्य साहित्य के अनुशीलन से उनकी कतिपय विशेषताएँ उजागर होती हैं जिन्होंने संस्कृत नाट्य को अत्यन्त उत्कृष्ट धरातल पर अवस्थित कर दिया है। साहित्य में काव्य और नाटक की मनोज्ञता की दृष्टि से प्राचीन सहृदयों ने कहा है—

“काव्येषु नाटकं रम्यम्”

कालिदास को शाकुन्तल जैसे नाटक के बल पर ही विश्व ख्याति प्राप्ति हुई है। स्वयं कालिदास ने नाट्य की बहुमुखी प्रशंसा करते हुए कहा है कि यह नाट्य तो देवताओं की आँखों को सुहाने वाला यज्ञ है। स्वयं महादेवजी ने उमा से विवाह करके अपने शरीर में इसके दो भाग कर दिये हैं— एक ताण्डव और दूसरा लास्य। इसमें सत्व, रज और तम तीनों ही गुण दिखाई पड़ते हैं और लोगों के चरित्र भी अनेक रसों में दिखाई पड़ते हैं। इसलिए अलग-अलग रुचि वाले लोगों के लिए प्रायः नाटक ही एक ऐसा उत्सव है जिसमें सबको एक समान आनन्द की अनुभूति होती है।

अतः यह नाट्य ही अलग-अलग रुचि वाले समग्रजनों का अद्वितीय समाराधन स्वरूप है। इस नाट्य को पंचम वेद कहा गया है। वेदों का सार लेकर ब्रह्मा ने इसकी रचना की, भरत मुनि ने जिसका अभिनय किया, शिव ने जिसका ताण्डव और पार्वती ने लास्य नृत्य किया। नाटक की मनोज्ञ अभिनेयता को देखकर दर्शन रससिक्त हो जाते हैं जिसकी पुष्टि वामन ने की है।

नट का भाव या कर्म नाट्य कहलाता है अर्थात् नायक की उदात्त आदि चार अवस्थाओं का अनुकरण अथवा अभिनय कौशल के द्वारा नट का अनुकार्य (राम आदि के साथ तादात्म्य प्राप्त करना) नाट्य है। आङ्गिक, वाचिक, आहार्य एवं सात्विक— ये अभिनय के चार रूप हैं। आंगिक अभिनय के अन्तर्गत भुजादि अंगों का चालन, मुख से निःसृत वचन द्वारा किया गया अभिनय वाचिक कहलाता है। आहरीयवेष रचनादि से निष्पन्न होने वाला आहार्य है तथा दूसरे की सुख-दुख भावना से भावित अन्तःकरण की सहज गति को सत्व कहते हैं। इसलिए सत्व से उत्पन्न भाव सात्विक कहलाते हैं तथा सात्विक भावों से सम्बद्ध अभिनय सात्विक कहलाता है। इसी सात्विक अभिनय की नाट्य में प्रधानता रहती है। जिस प्रकार दृश्य चाक्षुष ज्ञान का विषय होने के कारण श्वेत, नील आदि रूप कहलाते हैं। उसी प्रकार नाट्य को भी दृश्य होने के कारण रूप कहते हैं। धनञ्जय ने इसकी पुष्टि करते हुए कहा है— 'रूपं दृश्यतयोच्यते'। नेत्रों से गोचर होने के कारण दृश्य है जिसे रूपक कहते हैं। आचार्य विश्वनाथ एवं धनञ्जय ने भी आरोप किया जाने के कारण नाट्य को रूपक कहा है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि अभिनय या दृश्यकाव्य में उदात्त आदि अवस्थाओं का अनुकरण ही नाट्य है। दृश्य होने के कारण रूप कहलाते हैं और वहाँ नट में राम आदि के रूप का आरोप किया जाता है इसलिए रूपक कहलाते हैं। यह नाट्य आंगिक, वाचिक आदि अभिनयों का एक रसमय योग है जो अतीतकालीन इतिवृत्त को रसमय बनाकर दर्शक के समक्ष उपस्थित करता है।

NOTES

नाट्य रसरूप वाक्यार्थ का अभिनय है। इसलिए संस्कृत नाट्य रस-संवर्धित होने के साथ ही आदर्शवादी भी हैं। इसलिए धनञ्जय के अनुसार रस पर आश्रित होने वाले अभिनय रूपक कहलाते हैं। ब्रह्मानन्द सहोदर रस को ही नाट्य की आत्मा स्वीकार करते हैं। यही कारण है कि संस्कृत में दुखान्त नाटकों की रचना नहीं हुई। पाप पर पुण्य की विजय तथा अधर्म पर धर्म की स्थापना के मंत्र का अनुपालन करते हुए विद्वानों ने नाट्य में नायक की मृत्यु का सर्वथा निषेध किया है। नायक को अन्ततोगत्वा लक्ष्य सिद्धि होनी चाहिए क्योंकि वह तो नाट्य के फल का अधिकारी है जो समस्त विघ्नों तथा आपत्तियों से उबरकर स्वयं कार्यसिद्धि करता है और दर्शकों के मन-प्राण को भी आनन्दित एवं सौख्यपूर्ण कर देता है। नाट्य का सुखान्त स्वरूप भारतीय दर्शन की उस भावना को प्रतिफलित करता है जो जीवन का अवसान सुख में देखती है। इसलिए सम्पूर्ण नाट्य में जीवन के विविध रूपात्मक पक्षों का उद्घाटन करके भी नाट्य का अवसान सौख्य में होता है।

नाट्य शब्द की व्युत्पत्ति 'नट्' धातु से होती है। 'नट् अवस्पन्दने' इस धातु का अर्थ है—कुछ चलना। अतः नाट्य में आंगिक क्रिया कम और सात्विक अभिनय की प्रधानता होती है। इसलिए अभिनय करने वाले के लिए 'नट्' शब्द का प्रयोग किया होता है। नाट्य में वाक्यार्थ का अभिनय होता है। दशरूपककार के अनुसार रस निष्पत्ति वाक्यार्थ रूप में होती है।

रसाश्रय होने के कारण संस्कृत नाट्य में वस्तु, नेता और रस तीन प्रमुख भेदक तत्त्व माने गये हैं। ये तीनों तत्त्व परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। एक तत्त्व में न्यूनता आने पर स्वतः ही अन्य दोनों तत्त्वों का अपकर्ष हो जाता है फिर भी इन तीनों में रस का सर्वोच्च स्थान है। नाट्य का स्वरूप ही रसात्मक है। रस के इस परिपाक को ध्यान में रखते हुए यह स्वभाविक था कि नाट्यकार कदाचित् रसोद्रेक कराने में विस्मृत हो जाय कि वस्तु एवं नेता—इन दो अन्य तत्त्वों का इतना स्वाभाविक निर्वाह न हो सके। इसीलिए नाट्यशास्त्रकारों ने ऐसा विधान किया है कि आध्यात्मिक रस-पोषण के द्वारा कथावस्तु को अत्यन्त विच्छिन्न नहीं कर देना चाहिए और न ही वस्तु अलंकार तथा लक्षणों के द्वारा रस को तिरोहित कर देना चाहिए। अतः इस पर आश्रित रहने वाला यह रूपक दस प्रकार का होता है। धनञ्जय के अनुसार रस पर आश्रित रहने वाले अभिनय रूपक कहलाते हैं जो—नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, डिम, व्यायोग, समवकार, वीथी, अंक और ईहामृग—दस प्रकार के होते हैं। क्रम परिवर्तन करते हुए रूपकों के दस भेदों की पुष्टि आचार्य विश्वनाथ ने भी की है। संकीर्ण रूपकों को उपरूपकों के नाम से जाना जाता है जो संख्या में अठारह होते हैं— (1) नाटिका, (2) त्रोटक, (3) गोष्ठी, (4) सट्टक, (5) नाट्यरासक, (6) प्रस्थान, (7) उल्लाप्य, (8) काव्य, (9) प्रेङ्खण, (10) रासक, (11) संलापक, (12) श्रीगदित, (13) शिल्पक, (14) विलासिका, (15) दुर्भल्लिका, (16) प्रकरणी, (17) हल्लीश एवं (18) भाणिका।

नाट्य साहित्य का महत्व

नाटक की उपयोगिता के सम्बन्ध में विद्वानों का मानना है कि अभिनेय काव्य (नाटक) ही एक ऐसा काव्यांग है जिससे रंगमंच के वातावरण, पात्रों के आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक अभिनय एवं क्रिया व्यापार के द्वारा हृदयहीन सामाजिक भी सहृदय सामाजिक की भाँति अलौकिक आनन्द का रस प्राप्त कर लेता है। उपयोगिता का एक अन्य कारण यह भी है कि जनभावना की प्रधानता स्थापित करने के लिए जनरुचि को संस्कृत नाटकों में स्थान दिया गया है।

संस्कृत के नाटककारों ने अपने नाटकों की कथावस्तु धर्म ग्रन्थों, पुराणों या काव्यों से उधार लेकर उसको जनता की रुचि में ढालकर देश, काल और परिस्थितियों के अनुसार जनरंजन की दृष्टि से ऐसे नाटकों की योजना की जो विद्वत्समाज तथा जनसामान्य के लिए एक जैसी उपयोगिता अर्जित कर सकते थे। इस दृष्टि से एक काव्यकार की अपेक्षा एक नाटककार अधिक दायित्व अनिवार्य करता है क्योंकि नाटककार के समक्ष भविष्य की अपेक्षा वर्तमान का दायित्व अधिक बलवान् होता है। आचार्य भरतमुनि ने नाटक के महत्व का

प्रतिपादन विस्तार से करते हुए कहा है कि नाट में केवल धर्म एवं देवों की भावना निहित नहीं होतीं बल्कि विश्व की समस्त भावनाओं का प्रदर्शन किया जाता है। इसमें जीवन की धर्म, मनोरंजन, हास्य, युद्ध, शृंगार, श्रम आदि सभी घटनाओं का चित्रण रहता है। नाटक दर्शकों को उनकी इच्छा के अनुसार फल देने वाला होता है। उत्साह की वृद्धि करने वाला होता है। नाटकों की यह भी विशेषता है अपद सुपद हो जाते हैं और सुपद विशेषज्ञ हो जाते हैं। यह धनवानों के लिए मनोरंजन, पीड़ितों के लिए आश्वासन, व्यवसायियों के लिए आय का साधन और व्याकुलों के लिए शान्तिप्रद है। जीवनचर्या का पाठ पढ़ाने वाला नाटक ही होता है जो बड़े से लेकर छोटे तक सभी के लिए हितोपदेशक, मनोरंजक और सुखप्रद है। सभी के दुखों को दूर करने वाला, थकावट को मिटाने वाला, मनुष्य की सभी इच्छाओं की पूर्ति करने वाला नाटक ही महत्वपूर्ण है।

कुमारसंभवम् एवं महाकाव्य
और गद्य काव्य

NOTES

संस्कृत नाटकों का उद्भव एवं विकास

प्रश्न २. संस्कृत नाटकों के उद्भव एवं विकास परम्परा पर निबन्ध लिखिए।

उत्तर— 'काव्येषु नाटकं रम्यं' उक्ति सार्थक एवं प्रसिद्ध है। संस्कृत साहित्य में नाटक का एक प्रमुख स्थान है। वह दर्शकों को ऐतिहासिक व काल्पनिक पात्रों से साक्षात्कार करवाकर उनके जीवन चरित्र से शिक्षा ग्रहण करने की प्रेरणा देता है। इन नाटकों की अपनी एक विशिष्ट परम्परा रही है। वैदिक युग में नाट्यकला के अस्तित्व के सम्बन्ध में हमें पर्याप्त सामग्री मिलती है। इसीलिए भारत में नाट्यकला का प्रयोग अत्यन्त प्राचीनकाल से होता आया है। भारतीय नाट्यशास्त्र की उत्पत्ति की विवेचना करते हुए महामुनि भरत ने उल्लेख किया है कि सम्पूर्ण देवताओं ने ब्रह्मा से प्रार्थना की कि हमें ऐसे मनोरंजन की वस्तु दीजिए जो दृश्य और श्रव्य दोनों हों, जिसको चारों वर्णों के व्यक्ति समान रूप से अपना सकें। इसलिए ब्रह्मा ने देवताओं की प्रार्थना स्वीकार करते हुए चारों वेदों से सार ग्रहण करके नाट्यवेद की रचना की जिस पञ्चम वेद के नाम से जाना जाता है।

जग्राह पाठ्यमृगवेदात् सामभ्यो

गीतमेव च।

यजुर्वेदादभिनयान्

रसानाथर्वणादपि॥

अर्थात् ऋग्वेद से पाठ्य (संवाद, कथोपकथन आदि) सामवेद से संगीत, अभिनय की कलाओं को यजुर्वेद से तथा रस के विभिन्न तत्वों को अथर्ववेद से ग्रहण किया।

नाट्य साहित्य के उद्भव के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। धर्मशील, धर्मप्राण तथा धर्म में रुचि रखने वाले भारतीयजन कण-कण में ईश्वर की सत्ता का प्रतिपादन करते हुए नाटकों का उद्भव ईश्वर से मानते चले आये हैं। ऋग्वेद के निर्माण तक नृत्यकला पर्याप्त रूप में प्रकाश में आ चुकी थी। ऋग्वेद के सूक्तों में सोम-विक्रय के समय होने वाले एक प्रकार के मनोरंजनात्मक अभिनय का उल्लेख मिलता है। महाव्रत स्तोत्र अवसर पर कुमारियाँ अग्नि की परिक्रमा करती हुई नाचती-गाती दिखाई गई हैं। उषा के वर्णन प्रसंग में उसकी उपमा एक नर्तकी से दी गई है। पुरुरवा-उर्वशी, यम-यमी, आदि संवादों में नाट्यकला के बीज यथेष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं। कात्यायन श्रोतसूत्र में तो सोमपान के अवसर पर एक लघु अभिनय का प्रसंग आया है। सोमयाग नामक यज्ञ क्रिया की योजना सोमरसिक आत्मवादी इन्द्र के अनुयायी किया करते थे। यजुर्वेद में 'शैलूष' शब्द का उल्लेख हुआ है जो नट अथवा अभिनेता का समनार्थी है। इससे ज्ञात होता है कि शैलूष नामक जाति के लोग व्यावसायिक रूप से नाटकों का आयोजन कर जीविकोपार्जन किया

NOTES

करते थे। इस प्रसंग में बताया गया है कि यज्ञ के अवसरों पर नृत्य-गीतादि के लिए सूत और शैलूष लोगों की नियुक्ति की जाती थी, जोकि नृत्य एवं संगीत द्वारा नाट्याभिनय करते थे लेकिन अनुशीलन करने के पश्चात् यह नहीं कहा जा सकता है कि तत्कालीन समाज के या उक्त प्रसंगों में उद्धृत सूत और शैलूष लोग नाटक नियमों से पूर्णतया अभिज्ञ थे।

उत्तरवर्ती साहित्य में इस कमनीय कला की विद्यमानता के प्रमाण मिलते हैं। अष्टाध्यायी, रामायण, महाभारत, अर्थशास्त्र, बौद्ध जातक और महाकाव्य आदि में हमें नाट्यकला के विभिन्न अंगों, उसके पात्रों और इसके साथ ही पारिभाषिक शब्दों का पूर्ण विवरण प्राप्त होता है। रामायणकालीन अयोध्या नगरी में नाटक-मण्डलियाँ प्रभूत ख्याति अर्जित कर चुकी थीं। उस समय नट-नटी आदि का प्रचार प्रभूत मात्रा में हो चुका था। इसीलिए नट-नटी, नर्तकों और गायकों की कर्ण-सुखदवाणियों को जनता तन्मयता के साथ सुनती थी। महाभारत में 'नट' 'नर्तक', 'गायक', सूत्रधार आदि के निर्देश मिलते हैं। महाभारत के ही एक भाग 'हरिवंश' के प्रद्युम्न-विवाह प्रसंग में निर्देश किया गया है कि वसुदेव जी के अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर भद्र नामक एक नट ने अपने आकर्षक नाट्य प्रदर्शन से उपस्थित ऋषि-महाऋषियों को प्रसन्न किया था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अध्ययन से ज्ञात होता है कि अन्य कलाओं के अतिरिक्त जितनी भी ललित कलाएँ थीं, उनकी शिक्षा-दीक्षा के लिए उस समय राज्य की ओर से पूरा प्रबन्ध था। अर्थशास्त्रकार ने निर्देश दिया है कि राज्य की ओर से चौंसठ कलाओं के शिक्षण की व्यवस्था योग्य आचार्यों के माध्यम से होनी चाहिए। अर्थशास्त्र से हमें जानकारी मिलती है कि उस समय नट, नर्तक, गायक, वादक, कुशीलव प्लवक (रस्सी पर खेल दिखाने वाले) सौमित्र (ऐन्द्रजालिक) और चारण आदि की विभिन्न मण्डलियाँ गा-बजाकर और नाटक करके जीविकोपार्जन किया करती थीं। ईसवी पूर्व की शताब्दियों में रचे गये बौद्ध ग्रन्थों में भगवान् बुद्ध के शिष्यों के नाटकीय अभिनय देखने की चर्चा हुई है। प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनि ने अष्टाध्यायी में 'शिलालिन्' तथा 'कृशाश्व' द्वारा रचित नट सूत्रों का उल्लेख किया है जिससे सिद्ध होता है कि उस समय नाटक लोकप्रिय हो गये थे। पतञ्जलि ने महाभाष्य में कंस वध तथा बालि वध नामक नाटकों के अभिनय का स्पष्ट वर्णन किया है। कामशास्त्र के प्रख्यात आचार्य वात्स्यायन ने तत्कालीन कलापूर्ण सरस्वती भवनों में पक्ष अथवा मास के प्रसिद्ध पर्वों पर राजा की ओर से नियुक्त नटों द्वारा किये जाने वाले अभिनय का उल्लेख किया है। अभी हाल में मध्य एशिया में जो संस्कृत नाटकों के अवशेष मिले हैं, उनसे सिद्ध होता है कि कुषाण-युग के आरम्भ में नाटक लिखे और अभिनीत किये जाते थे। आधुनिक विद्वान् हजारी प्रसाद द्विवेदी का अभिमत है कि धार्मिक उत्सवों, पुत्रजन्मोत्सव या विवाहोत्सवों पर देवालयों, घरों में प्राचीनकाल में ही रंगशालीओं का निर्माण हो चुका था और नाट्यकला का प्रभूत मात्रा में प्रचार हो चुका था। इन सभी तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि वैदिक काल से वर्तमान समय तक नाटकों के प्रणयन एवं अभिनय का क्रम हमारे देश में चला आ रहा है। इस उद्भव एवं विकास के सम्बन्ध में देश-विदेश के आलोचकों ने पर्याप्त छानबीन की है। गम्भीर गवेषणाओं के पश्चात् इन समीक्षकों ने अपने-अपने मतानुसार इस पर कतिपयवादों की स्थापना की है। इस विषय पर प्रचलित तीन वाद इस प्रकार हैं—

(1) परम्परागत वाद, (2) धार्मिक भावनावाद, (3) लौकिक लीलावाद।

(१) परम्परागत वाद— परम्परावादी समुदाय का मानना है कि ब्रह्माजी ने सर्वप्रथम नाट्यवेद की रचना की थी और भरतमुनि ने सर्वप्रथम पृथ्वीमण्डल में उसका प्रचार किया था। इसमें भगवान् शंकर ने ताण्डव नृत्य, पार्वती ने लास्य नृत्य तथा विष्णु ने चार वृत्तियों का समावेश करके पूर्ण कलात्मकता उत्पन्न कर दी। विश्वकर्मा ने सुन्दर रंगमंच का निर्माण किया। उस पर सर्वप्रथम त्रिपुरदाह नाटक खेला गया। इसके बाद समुद्र मंथन इन्द्रध्वज पर्व में खेले गये थे जिसमें पुरुष और स्त्रियों ने अपने-अपने अनुसार अभिनय किया। इस कला को मर्त्यलोक तक लाने का श्रेय भरतमुनि को जाता है। इस विवेचन से इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है—

NOTES

- (1) नाट्य कला का निर्माण चारों वेदों के सहयोग से ही हुआ है।
- (2) वैदिक काल में कोई नाटक नहीं था, इसलिए सभी देवता मिलकर ब्रह्माजी के पस गये और उन्होंने नाट्य कला की उत्पत्ति की।
- (3) स्त्री-पुरुष दोनों प्रकार के पात्रों का सहयोग रहता था।
- (4) सभी नाटक धार्मिक पर्वों एवं महात्सवों पर ही खेले जाते थे।

अतः स्पष्ट है कि ब्रह्माजी द्वारा नाटक की उत्पत्ति होने के कारण इसे दैवी उत्पत्तिवाद के रूप में भी जाना जाता है।

(२) धार्मिक भावनावाद— इस वाद के प्रवर्तकों में अधिकांश पाश्चात्य विद्वान् हैं। जिनमें प्रो. मैक्समूलर, प्रो. सिल्वाँ लेवी, प्रो. फॉन श्रोएडर और डॉ. हर्टल के नाम सर्वोपरि हैं। इन विद्वानों ने पुरुरवा-उर्वशी, यम-यमी, इन्द्र-इन्द्राणी संवाद आदि सूक्तों के आधार पर नाटकों की उत्पत्ति मानी है। इन विद्वानों के अनुसार उक्त संवादों के अन्तर्गत नाटकों के बीज विद्यमान हैं। डॉ. ओल्डनवर्ग, विंडिश और पिशेल ने इन सूक्तों के विषय में कहा है कि प्रारम्भ में ये सूक्त गद्य-पद्य मिश्रित थे। इसीलिए नाटकों में गद्य-पद्य का मिश्रण दिखाई पड़ता है। इसके अतिरिक्त धार्मिक संवादों के वर्तालाप, भाषण और व्यंग्योक्ति ही नाटकीय संवादों के आधार बने।

(i) मृतक पूजावाद— मृतक पूजावाद के समर्थक डॉ. रिजवे के अनुसार नाटकों का उद्भव मृतात्माओं के प्रति की हुई श्रद्धा से है। श्रद्धा प्रकट करने की यह परम्परा प्रायः संसार के सभी ख्याति प्राप्त देशों में आरम्भ से ही प्रचलित है। मृतात्माओं को प्रसन्न करने के लिए विभिन्न अभिनयात्मक आयोजन आज भी प्रचलित है। रामलीला और कृष्णलीला इसके प्रमाण हैं। अपने पूर्वजों के प्रति श्रद्धा प्रदर्शित करने के लिए ही ये धार्मिक लीलाएँ होती हैं। इसी मृतक पूजा का विकसित रूप 'नाटक' है।

(ii) मे-पोल नृत्यवाद— मृतक पूजावाद सिद्धान्त का खण्डन करते हुए अन्य पाश्चात्य विद्वान् मानते हैं कि मृतक पूजा को आधार मान लेने पर नाटक के गम्भीर-प्रभाव के लिए घातक सिद्ध हो सकता है। इसलिए अन्य विद्वानों की दृष्टि में नाटक की उत्पत्ति मे-पोल नृत्य से हुई है। विदेशों में मई मास आनन्द तथा उत्सवों का महीना है। इसमें वहाँ के स्त्री पुरुष एक स्तम्भ गाढ़कर नृत्य करते हैं। भारतवर्ष में भी 'इन्द्रध्वज' का उत्सव प्रायः इसी प्रकार का होता है।

(iii) कृष्णोपासनावाद— कई भारतीय आचार्यों ने संस्कृत नाटक के उद्भव के विषय में कृष्ण उपासना को प्रमुख स्थान दिया है। उनका मानना है कि कृष्णोपासना के कई अंग जैसे-रथ यात्राएँ, नृत्य, वाद्य, संगीत एवं लीलाएँ ऐसे उपकरण हैं जो संस्कृत नाटक की उत्पत्ति में सहायक सिद्ध हुए हैं। इस मत के पोषक विद्वानों का कहना है कि सर्वप्रथम नाटक शूरसेन प्रदेश में खेला गया है। संस्कृत नाटकों में शौरसेनी प्राकृत की प्रबलता भी इसका प्रबल प्रमाण हो सकता है। फिर भी इस मत में सर्वाधिक दोष यह है कि कृष्ण से सम्बन्धित नाटक ही सर्वाधिक प्राचीन है न तो इसका कोई पुष्ट प्रमाण मिलता है और न कोई सबल तर्क ही। दूसरे कृष्ण के अतिरिक्त राम, शिव और विष्णु की लीलाएँ—जो कृष्ण की लीलाओं से जरा भी कम महत्वपूर्ण नहीं है उसकी अवहेलना कर दी गई है।

(३) लौकिक लीलावाद— पाश्चात्य विद्वानों ने नाटकों की उत्पत्ति वेदों से न मानकर लोक से मानी है जिसकी पुष्टि में अपने-अपने मत प्रस्तुत किये हैं—

पुत्तलिका नृत्यवाद— जर्मनी विद्वान् डॉ. पिशेल ने नाटकों की उत्पत्ति कठपुतली नाच से मानी है। उन्होंने बड़े विस्तार के साथ यह बताया है कि भारत में पुत्तलिका का प्रचार बहुत पुराना रहा है।

NOTES

महाभारत, कथासरित्सागर में पुत्तलियों का वर्णन है। डॉ. पिशेल ने लिखा है कि पुत्तलियों को नचाते समय नचाने वाला उनके धागों को पीछे से पकड़े रहता है। इसीलिए वह सूत्रधार है। आगे चलकर यही नाम नाटक संचालक को भी दे दिया गया है। इस मत का खण्डन करते हुए डॉ. रिजवे ने कहा है कि नाटक की कथावस्तु, नायक, रस आदि का सूत्र में वर्णन किया जाता है। इसलिए सूत्रधार कहलाता है न कि 'धागा' पकड़ने के कारण।

छाया नाटकवाद— प्रो. कोनो के अनुसार छाया नृत्यों की अनुकृति से नाटकों का उद्गम हुआ है। महाभाष्य में शौनिक नृत्यों का वर्णन है। समीक्षकों का कथन है कि शौनिक लोग मूक या छाया चित्रों के नृत्यों को दर्शकों को समझाया करते थे। लूड्स का मत है कि छाया नाटक ही अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित हैं। अतः ये ही नाटक के उद्भव का कारण होंगे। प्रो. कीथ इस विचार से सहमत नहीं है। क्योंकि नाटकों में गद्य-पद्य तथा प्राकृत के प्रयोग का कारण नहीं बताया गया है। इसके साथ ही छाया नाटकों की प्राचीनता सिद्ध नहीं है। तीसरा तथ्य यह है कि सुभट कवि का एक मात्र छाया नाटक 'दूताङ्गद' है। अतः भारतीय नाट्य कला के मत में यह उचित नहीं कहा जा सकता है।

स्वांगवाद— कुछ विद्वानों ने छोटे-छोटे पर्वों पर खेले जाने वाले स्वांगों को नाटकों की उत्पत्ति का आधार माना है। उन विद्वानों में से प्रो. हिलब्राण्ड तथा स्टेन कोनो का मत है कि लोकप्रिय स्वांगों से नाटकों की उत्पत्ति हुई है। उनका यह भी मानना है कि स्वांगों के साथ रामायण और महाभारत की कथाओं ने मिलकर नाटकों को जन्म दिया है।

यूनानी प्रभाववाद— संस्कृत नाटकों के विकास में कतिपय विद्वानों ने यूनानियों के प्रभाव का कथन किया है। जर्मन विद्वान् डॉ. वेबर ने सर्वप्रथम इस मत का उपपादन किया था। उसका कथन है कि नाटक के उपादान प्राक्तन संस्कृत साहित्य में इतने स्वल्प हैं कि उनके आधार पर ललित नाट्य कला का विकास सम्भव नहीं था। इसके विपरीत वैक्ट्रिया तथा पंजाब के यूनानी राजाओं के दरबारों में नाटकों का प्रचुर प्रचार था और उनके अभिनय से प्रेरणा और स्फूर्ति ग्रहण कर भारतीयों ने नाट्य कला का उपयोग प्रारम्भ किया।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि नाटकों की उत्पत्ति में प्राचीन नृत्य, गीत एवं संवादों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। सभी जातियों में इन नृत्य, गीत आदि का प्राचीन काल से प्रचलन था। भारत में सभ्यता के विकास के साथ ही इन तत्वों का भी द्रुत विकास प्रारम्भ हो गया और इन्हीं नृत्य गीतों का विकसित रूप आगे चलकर नाटक कहलाया।

संस्कृत-नाटक का विकास

संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति विषयक विवेचन के आधार पर पाश्चात्य विद्वान भी स्वीकार करते हैं कि नाटकों का प्रारम्भ सर्वप्रथम भारतवर्ष में हुआ। नाटकों का अस्तित्व वैदिक काल में अवश्य था लेकिन उनका विकसित रूप तो वैदिक काल के पश्चात् रामायण-महाभारत काल में स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। इन ग्रन्थों में नट, नटी, नर्तकों में रस परिपाक पर भी पूरा ध्यान दिया जाता था। शैलूष और उनकी स्त्रियों के उल्लेख से स्पष्ट होता है कि अभिनेता और अभिनेत्रियाँ भी थीं। रामायण काल में नाटक मण्डलियाँ प्रभूत ख्याति प्राप्त कर चुकी थीं। वाल्मीकि रामायण में अनेक श्लोकों में नाटक, नट, नर्तक आदि का स्पष्ट उल्लेख है। इसी के एक प्रसंग में कहा गया है कि नटों, नर्तकों, गायकों की कर्ण सुखद वाणियाँ जनता को प्रसन्न कर दिया करती थीं। कहा गया है— “नाराजके जनपदे प्रकृष्टनर्तकाः” ॥रामायण॥ 2-67-15॥ अर्थात् शासकहीन राज्य में नट तथा नर्तक प्रसन्न दिखाई देते हैं।

इसी प्रकार महाभारत में भी सूत्रधार, नट, नर्तक आदि का उल्लेख मिलता है—

(क) इत्यब्रवीत् सूत्रधारः सूतः पौराणिकस्तथा (महा. १/५१/१५)

(ख) आनर्ताश्च तथा सर्वे नट नर्तकगायकाः। महा. २/१५/१३॥

कुमारसंभवम् एवं महाकाव्य
और गद्य काव्य

NOTES

इनके अतिरिक्त महाभारत के विराट् पर्व में रंगशाला का उल्लेख है तथा इसी के हरिवंश पर्व (91 से 97 अध्याय) में वज्रनाभ नामक राक्षसनगरी में रामायण और कौबेररम्भाभिसार नामक नाटकों के अभिनय का उल्लेख मिलता है।

रामायण-महाभारत के उपरान्त पुराण साहित्य में यत्र तत्र नाटकों के अभिनय का प्रसंग आया है। मार्कण्डेय पुराण में राजाशुक्रजीत को नाटकों के अभिनय कराने का प्रेमी बतलाया गया है। बौद्ध एवं जैन साहित्य में भी संस्कृत नाटकों की प्राचीनता का विवेचन मिलता है।

महावैयाकरण पाणिनि की अष्टाध्यायी में दो नट सूत्रों अर्थात् नाट्यशास्त्रों का उल्लेख किया गया है जिनके रचयिता क्रमशः शिलालिन् एवं कृशाश्व थे। पाणिनि के अतिरिक्त पतञ्जलि (150 ई. पू.) ने अपने महाभाष्य में कंस वध और 'बालि वध' नामक नाटकों के खेले जाने का उल्लेख किया है। पतञ्जलि का कथन है—

ये तावदेते शोभनिका नामैते प्रत्यक्षं कंस घातयन्ति, प्रत्यक्षं च बलिं बन्धयन्तीति॥ महाभाष्य
३-२-१११॥

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में नाट्य विषयक सामग्री की प्रचुरता है।

यद्यपि ये नाटक आज सुलभ नहीं हैं लेकिन भारतीय नाट्यशास्त्र के प्रधान आचार्य भरतमुनि प्रणीत 36 अध्यायों के विशाल ग्रन्थ में नाट्य सम्बन्धी सभी विषयों का विस्तृत और प्रामाणिक विवेचन है। इसके आधार पर स्पष्टतः कहा जा सकता है कि ई. पू. तृतीय या चतुर्थ शताब्दी में भारतीय नाट्य कला अपनी उन्नतावस्था में थी।

कामशास्त्र के प्रणेत वात्स्यायन (द्वितीय शताब्दी ई.) ने कहा है कि तत्कालीन कलापूर्ण सरस्वती भवनों में पक्ष या मास के विशेष पर्वों पर राजा की ओर से नियुक्त नटों द्वारा अभिनय किया जाता था। नटों का यह निर्देश था कि वे नटे नागरिकों को नाटक दिखावे और दूसरे दिन यदि नागरिक चाहें तो फिर नाटक देखें, नहीं तो नटों को विदा कर दें।

संस्कृत साहित्य में नाटकों की व्यवस्थित परम्परा का अनुवर्तन भास से होता है जिन्होंने—दूत वाक्य, कर्णभार, दूतघटोत्कच, उरुभंग, मध्यम व्यायोग, पञ्चरात्र, अभिषेक, बालचरित्र, अविमारक, प्रतिमा नाटक, प्रतिज्ञा यौगन्धरायण, स्वप्नावसवदत्तम् तथा चारुदत्तम्—13 नाटक लिखे हैं। भास के पश्चात् उन्हीं के समकालीन शूद्रक का नाम भी संस्कृत नाट्य साहित्य के अन्तर्गत उल्लेखनीय है। शूद्रक का समय ई. पू. 300 वर्ष के लगभग माना जाता है। इन्होंने भास द्वारा विरचित 'चारुदत्त' नाटक पर आधारित एक प्रकरण 'मृच्छकटिकम्' की रचना की। इन दोनों नाटककारों के पश्चात् संस्कृत साहित्य के शिरोमणि महाकवि कालिदास आते हैं। इनकी तीन नाट्यकृतियाँ मालविकाग्निमित्रम्, विक्रमोर्वशीयम् तथा अभिज्ञान शाकुन्तलम् हैं। उनका अभिज्ञान शाकुन्तलम् विश्व प्रसिद्ध नाटक है। कालिदास के सम्बन्ध में कहा गया है कि स्वर्ग और मर्त्य का जो यह मिलन है, उसे कालिदास ने सहज ही सम्पादित कर लिया है। प्रेम और सौन्दर्य का जैसा चित्रण कालिदास ने किया वैसा अन्यत्र देखने को नहीं मिलता।

कालिदास के पश्चात् अश्वघोष का नाम उल्लेखनीय है। इनके तीन रूपक प्राप्त हुए हैं। जिनमें से 'शारिपुत्रप्रकरण' की हस्तलिखित प्रति को डॉ. लुईस ने सन् 1910 ई. में मध्य एशिया के तूरफान नामक स्थान से खोज निकाला था। अश्वघोष के पश्चात् हर्षवर्धन (606-648 ई.) का नाम आता है। यद्यपि इनके

NOTES

सम्बन्ध में कहा जाता है कि हर्ष ने किसी धावक नामक कवि को धन देकर रचनाएँ प्राप्त कर ली थीं जो हर्ष के नाम से प्रचलित हो गईं। वे कृतियाँ—प्रियदर्शिका, रत्नावली और नागानन्द हैं। रत्नावली इनमें सर्वोत्कृष्ट कृति है। इस नाट्य कृति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जहाँ उसका वस्तुविधान नाट्यशास्त्रोपयोगी शैली में संवर्तित है, वहीं वह अभिनय के लिए पूर्णतया उपयोगी है।

संस्कृत साहित्य में कालिदास के ही समान भवभूति भी बहुत लोकप्रिय नाटककार हुए हैं। इनकी नाट्यकला साहित्य में बेजोड़ है। इनकी तीन कृतियाँ—(1) उत्तररामचरितम्, (2) मालती माधव तथा (3) महावीरचरितम् हैं। इन तीनों कृतियों के आधार पर नाटककार के रूप में भवभूति के व्यक्तित्व का परिचय मिलता है। ये तीनों नाटक उज्जैन के कालप्रियनाथ के महोत्सव पर अभिनीत हुए थे। इनमें उत्तररामचरितम् उनकी सर्वोत्कृष्ट एवं संस्कृत के शीर्ष स्थानीय नाटकों की कोटि में गिनी जाने वाली करुण रस की अतिमार्मिक रचना है।

भवभूति के बाद विशाखदत्त का क्रम आता है। उनके नाटक की प्रस्तावना से प्रतीत होता है कि विशाखदत्त या विशाखदेव, सामन्त बटेश्वरदत्त के पौत्र तथा महाराज पृथु के पुत्र थे। उनका अद्वितीय राजनीति विषयक ज्ञान उनके द्वारा प्रणीत मुद्राराक्षस में प्राप्त होता है। यह कन्नौज के राजा अवन्ति वर्मा के आश्रित कवि थे। इनकी तीन रचनाएँ हैं—(1) मुद्राराक्षस, (2) देवीचन्द्रगुप्त, (3) राघवानन्द। मुद्राराक्षस विशाखदत्त का एक सर्वथा नई शैली का नाटक है। समस्त संस्कृत साहित्य में यह अपने ढंग का 'मृच्छकटिक' की भाँति अकेला नाटक है।

नारायण भट्ट के 'वेणीसंहार' का स्थान भवभूति एवं विशाखदत्त के नाटकों के बाद आता है। नाटकीयता की दृष्टि से वेणीसंहार को अत्युत्तम श्रेणी में गिना जाता है। इस नाट्यकृति को मम्मट (1100 ई.) आदि काव्यशास्त्रियों ने अपने ग्रन्थों में बड़े सम्मान से उद्धृत किया है।

संस्कृत के नाटकों की परम्परा को नारायण भट्ट के बाद मुरारि ने बढ़ाया है। इन्होंने 'अनर्घराव' की रचना की। मुरारि का स्थिति काल भवभूति एवं रत्नाकर के बीच आठवीं शताब्दी में ठहरता है। आठवीं शताब्दी के ही दूसरे नाटककार श्री अनंगहर्ष हैं। इनकी रचना 'तापस-वत्सराज' है। इसी प्रकार आठवीं शताब्दी के ही एक अज्ञात लेखक मायुराज ने रामायण के आधार पर 'उदात्तराघव' नाटक की रचना की जो अपने मूलरूप में उपलब्ध नहीं है। आठवीं शताब्दी के ही केरल के राजा कुलशेखर वर्मन् ने 'सुभद्रा धनंजय' और 'तपसीसंवरण' नामक दो नाटक लिखे।

आठवीं शताब्दी के ही नाटककार शक्ति भद्र ने आश्चर्य चूड़ामणि नामक नाटक लिखा है। कुप्पूस्वामी शास्त्री ने राम कथा पर लिखे गये नाटकों में उत्तररामचरित के बाद आश्चर्य चूड़ामणि को ही दूसरा स्थान दिया है।

आठवीं शताब्दी के बाद दक्षिण में एक हनुमन्नाटक या महानाटक लिखा गया। महानाटक की मूल रचना के उद्धरण आनन्दवर्द्धन (900 ई.) के ध्वन्यालोक में मिलते हैं इसलिए इसका समय 900 ई. माना जा सकता है लेकिन कुछ विद्वान महानाटक की मूल रचना को दसवीं शताब्दी की मानते हैं।

संस्कृत साहित्य की नाट्य परम्परा में विशाखदत्त के बाद जो हास की स्थिति आ गयी थी, उसको राजशेखर ने दूर किया। बाल रामायण से विदित होता है कि राजशेखर ने छः प्रबन्ध ग्रन्थों की रचना की जिनमें पाँच ही उपलब्ध हैं। उनके नाम हैं—(1) कर्पूरमञ्जरी, (2) विद्वशालभञ्जिका, (3) बालरामायण, (4) बालभारत। ये उनकी 4 नाट्य कृतियाँ हैं। पाँचवी कृति 'काव्यमीमांसा' है, जो अलंकार ग्रन्थ है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि यह नाट्य परम्परा निरन्तर अग्रसर रही है। प्रत्येक शताब्दी में नाटककारों ने अपनी नाट्यकृतियों के प्रणयन से संस्कृत साहित्य की श्री वृद्धि की है। विस्तारभ्य से यहाँ विकास क्रम के आधार पर रूपकों की तालिका दी जा रही है।

क्र. सं.	नाटककार का नाम	स्थितिकाल	नाट्य कृतियों की संख्या	प्रमुख नाट्यकृतियों के नाम
1.	भास	400 ई. पू.	13	प्रतिमानाटक, स्वप्नवासवदत्तम्, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, दूतवाक्य आदि
2.	शूद्रक	300 ई. पू.	1	मृच्छकटिकम्
3.	कालिदास	ई. पू. प्रथम शताब्दी	3	मालविकाग्निमित्रम्, विक्रमोर्वशीयम्, अभिज्ञान शाकुन्तलम्
4.	अश्वघोष	प्रथम शताब्दी	3	शमरिपुत्र प्रकरण दो अधूरे तथा अनुपलब्ध
5.	हर्ष	606-648 ई.	3	प्रियदर्शिका, रत्नावली, नागानन्द
6.	भवभूति	8 वीं शताब्दी	3	उत्तररामचरितम्, मालतीमाधव, महावीरचरितम्
7.	विशाखदत्त	400 ई.	3	मुद्राराक्षस, देवीचन्द्रगुप्त, राघवानन्द
8.	नारायणभट्ट	सातवीं शताब्दी	1	वेणीसंहार
9.	मुरारि	आठवीं शताब्दी	1	अनर्घराघव
10.	अनंगहर्ष	आठवीं शताब्दी	1	तापस वत्सराज
11.	मायुराज	आठवीं शताब्दी	1	उदात्त राघव
12.	कुलशेखर वर्मन्	आठवीं शताब्दी	2	सुभद्राधनञ्जय और तपती संवरण
13.	शक्तिभद्र	आठवीं शताब्दी तथा उन्मादवासवदत्ता-दोनों	1+2	आश्चर्य चूड़ामणि (वीणावासवदत्ता अनुपलब्ध)
14.	राजशेखर	दशवीं शताब्दी	4	बालरामायण, बालभारत, कर्पूर मञ्जरी, विद्धशालभञ्जिका
15.	क्षेमेन्द्र	1050 ई.	2	चित्तभारत, कनक जानकी
16.	विल्हण	1080 ई.	1	कर्ण सुन्दरी
17.	कृष्ण मिश्र	11 वीं शताब्दी	1	प्रबोध चन्द्रोदय
18.	जय देव	12 वीं शताब्दी	1	प्रसन्नराघव
19.	रविवर्मा	13 वीं शताब्दी	1	प्रद्युम्नाभ्युदय
20.	विद्यानाथ	14 वीं शताब्दी	1	प्रतापरुद्रीय कल्याण
21.	वामनभट्ट बाण	15 वीं शताब्दी	3	पार्वतीपरिण, कनकलेखा कल्याण और शृंगार भूषण

NOTES

NOTES

22.	ब्रह्मसूरि	15 वीं शताब्दी	1	ज्योतिप्रभा कल्याण
23.	गंगाधर	15 वीं शताब्दी	1	गंगादास प्रताप विलास
24.	हरिहर	15 वीं शताब्दी	1	भर्तृहरि निर्वेद
25.	रूपगोस्वामी	15 वीं शताब्दी	3	दानकेलिकौमुदी, विदग्ध माधव, ललित माधव
26.	रामदेव	15 वीं शताब्दी	3	सुभद्रा परिणय, रामाभ्युदय, पाण्डवाभ्युदय
27.	शेषकृष्ण	16 वीं शताब्दी	1	कंसवध
28.	श्री निवास दीक्षित	16 वीं शताब्दी	2	भैमीपरिणय, भावनापुरुषोत्तम
29.	रामानुज	16 वीं शताब्दी	1	वसुलक्ष्मी कल्याण
30.	जगज्योतिर्मल्ल	17 वीं शताब्दी	1	हरगौरी विवाह
31.	विश्वेश्वर	18 वीं शताब्दी	3	रुक्मिणी परिणय, नवनाटिका शृंगारमञ्जरी
32.	अम्बिकादत्त	19 वीं शताब्दी	1	सायवतम्
33.	लक्ष्मणसूरि	20 वीं शताब्दी	1	दिल्ली साम्राज्य
34.	डॉ. कपिल देव द्विवेदी	20 वीं शताब्दी	1	परिवर्तनम्

उपर्युक्त तालिका में मुख्य-मुख्य नाटकों को सूचीबद्ध किया गया है। इनके अतिरिक्त भी अनेक नाटककार अपनी नाट्य धारा से सबको आनन्दित कर रहे हैं।

रूपक के भेद तथा लक्षण

प्रश्न ३. रूपक क्या है, उसके भेद-प्रभेदों पर प्रकाश डालते हुए नाटक के लक्षण लिखिए।

उत्तर— संस्कृत के साहित्यशास्त्रियों ने काव्य को दो भागों में विभक्त किया है—श्रव्य एवं दृश्य। श्रव्य काव्य विशेषतः पठन और श्रवण द्वारा रसानुभूति कराता है। दृश्य काव्य की सौन्दर्यानुभूति में चक्षुओं की ही प्रमुखता होती है। अभिनय की प्रधानता के कारण दृश्यकाव्य अन्तःस्थल तक पहुँचकर अधिक एवं शीघ्र प्रभावित करता है। सद्यः परिनिर्वृत्ति का शीघ्र अनुभव दृश्यकाव्य के माध्यम से ही हो सकता है। इसके अन्तर्गत पात्रों की वेशभूषा, उनकी आकृति एवं भावभंगिमा, अनुकरणात्मक व्यापार तथा भावों का मधुरतम अभिनय होने के कारण साक्षात् जीवन जैसी सजीवता, भावाभिव्यंजकता आदि सहृदयों को रस का आस्वादन प्रदान करती है। विभिन्न भूमिकाओं के आरोप के कारण इसका नाम रूपक है—

‘तद्रूपारोपात्तरूपकम्’

रूपक को नाट्य भी कहते हैं। यह नाट्य ही विभिन्न रुचि वाले समग्र जनो का अद्वितीय समाराधन स्वरूप है। इस नाट्य को पंचम वेद कहा जाता है। ब्रह्मा ने सभी वेदों से सार ग्रहण कर नाट्य वेद की रचना की। इसमें भरतमुनि ने अभिनय किया, शंकर ने ताण्डव तथा पार्वती ने लास्य नृत्य किया। अतः नट

का भाव या कर्म नाट्य कहलाता है अर्थात् नायक की उदात्त आदि अवस्थाओं का अनुकरण अथवा अभिनय कौशल के द्वारा नट का अनुकार्य नाट्य कहलाता है—**अवधानुकृतिनाट्यम्**। चार प्रकार के— आंगिक, वाचिक, आहार्य एवं सात्विक— अभिनय द्वारा रंगमंच पर दिखाई देता है। इसलिए दृश्य होने के कारण यह नाट्य 'रूप' भी कहलाता है। धनञ्जय ने भी इसकी पुष्टि करते हुए कहा है—

रूप दृश्यतयोच्यते।

अभिनय के योग्य होने के कारण इसे दृश्य कहा गया है जिसकी पुष्टि में आचार्य विश्वनाथ ने अपना मत प्रस्तुत किया है— 'दृश्य तत्राभिनेयम्'। क्योंकि नायक आदि के चरित नट आदिकों के द्वारा रंगमंच पर अभिनीत होते हैं, इसलिए दृश्य काव्य कहलाते हैं। नेत्रों से गोचर योग्य होने के कारण ही इसका नाम दृश्य है। इसी दृश्य का नाम रूपक है। धनञ्जय ने रूपक का लक्षण करते हुए कहा है कि आरोप किये जाने के कारण वह नाट्य रूपक कहलाता है—

रूपक तत्समारोपात्।

धनञ्जय ने रूपक की व्युत्पत्ति 'रूप्यते दृश्यते इति' इस प्रकार की है। राम आदि के रूप में नट में आरोप करना ही रूपक शब्द की प्रवृत्ति का निमित्त है।

दृश्यकाव्य के लिए 'रूपक' शब्द का व्यवहार करना उचित है। चूँकि नाट्य को देखा जाता है इसलिए उसे दृश्य कहते हैं। दिखाई दिये जाने के कारण उन्हें रूप भी कहा जाता है। इतिहास प्रसिद्ध पात्र का नट आदि में उसके रूप का आरोप किया जाता है इसलिए उसे रूपक कहते हैं।

रूपक के दो भेद हैं— (1) शुद्ध रूपक, (2) संकीर्ण रूपक। धनञ्जय के अनुसार वस्तु नेता और रस के आधार पर एक-दूसरे से भिन्न स्वरूप वाले दस ही रूपक हैं। ये रूपक के शुद्ध भेद हैं। जिस रूपक में दो या तीन के कतिपय लक्षणों का मिश्रण होता है उसे संकीर्ण रूपक कहते हैं। इस प्रकार धनञ्जय का अभिप्राय यह है कि रस पर आश्रित होने वाले अभिनय रूपक कहलाते हैं। ये शुद्ध रूपक दस प्रकार के होते हैं। इन दस रूपकों में भिन्न-भिन्न रसों का आश्रय लिया जाता है। कहा भी है— 'दशधैव रसाश्रयम्'।

साहित्य दर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने रूपक के दस प्रकारों को इस क्रम में रखा है—

नाटकमथ प्रकारणं भाणव्यायोग समवकार डिमः।

ईहामृगाङ्ग वीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश॥

आचार्य धनञ्जय ने रस पर आश्रित रूपक के दस भेदों को इस क्रम में बतलाया है—

नाटकं सप्रकरणं भाणः प्रहसनं डिमः।

व्यायोग समवकारौ वीथ्यङ्गेहामृगा इति॥

अर्थात् नाट्य प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अंक, वीथी, प्रहसन इस प्रकार दस रूपक होते हैं।

नाटक— आचार्य विश्वनाथ एवं धनञ्जय दोनों ने ही रूपक के विस्तृत वर्णन करते समय सर्वप्रथम नाटक को ही लिया है क्योंकि नाटक अन्य सभी रूपकों का मूल है तथा इसमें सभी रसों का आश्रय लिया गया है।

नाटक के लक्षण विस्तार से बताने से पूर्व रूपक के शेष नौ भेदों के लक्षण संक्षेप में प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

प्रकरण— आचार्य धनञ्जय ने कहा है कि प्रकरण में लोक स्तर का कवि कल्पित कथावस्तु या इतिवृत्त तथा अमात्य, ब्राह्मण और वणिक् में से कोई एक नायक होना चाहिए जो धीर प्रशान्त हो तथा धर्म, अर्थ और काम में तत्पर हो।

NOTES

अथ प्रकरणे वृत्तमुत्पाद्यं लोकसंश्रयम्।
अमात्य विप्रवणिकमेकं कुर्याच्च नायकम्॥
धीर प्रशान्त सापाय धर्मकामार्थं तत्परम्।
शेषं नाटकवत् सन्धिप्रवेशकरसादिकम्॥

संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रकरण की कथावस्तु कवि कल्पित होनी चाहिए जो पाँचों सन्धि यों से सम्बन्धित हो। अमात्य, विप्र या वणिक में से कोई एक धीर प्रशान्त नायक होना चाहिए। प्रकरण में प्रधानरस शृंगार होना चाहिए। अंकों की संख्या कम से कम पाँच तथा अधिक से अधिक दस होनी चाहिए।

आचार्य विश्वनाथ ने प्रकरण का लक्षण देते हुए कहा है कि प्रकरण की कथावस्तु लौकिक एवं कवि कल्पित होनी चाहिए जो 5 से 10 अंकों में निबद्ध हो। नायक ब्राह्मण मंत्री अथवा वैश्य में से एक होना चाहिए जो विघ्नपूर्ण धर्म, काम और अर्थ में आसक्त धीर प्रशान्त हो। उदाहरण के लिए— 'मृच्छकटिकम्' में ब्राह्मण नायक, 'मानतीमाधवम्' में मन्त्री नायक तथा 'पुष्पभूषितम्' में वैश्य नायक है।

भवेत्प्रकरणे वृत्तं लौकिकं कविकल्पितम्।
शृङ्गारोऽङ्गी नायकस्तु विप्रोऽमात्योऽथवा वणिकम्।
सापायधर्म कामार्थपरो धीर प्रशान्तकः।
नायिका कुलजा क्वापि वेश्या क्वापि द्वयं क्वचित्॥

भाण—जिसमें कोई कुशल एवं बुद्धिमान विट अपने या किसी अन्य के द्वारा अनुभूत चरित्र का वर्णन करता है, वह भाण नामक रूपक कहलाता है। शौर्य वर्णन द्वारा वीर रस की तथा विलास के वर्णन द्वारा शृंगार रस की सूचना देता है।

भाणस्तु धूर्तचरितं स्वानुभूतं परेण वा।
यत्रोपवर्णयेदेको निपुणः पण्डितो विटः॥
सम्बोधनोक्तिप्रत्युक्ती कुर्यादाकाशभाषितैः।
सूचदेद्वीरशृंगारौ शौर्यसौभाग्य संस्तवैः॥

अर्थात् भाण की कथावस्तु कल्पित होती है। धूर्त के चरित्र का विशेष वर्णन, धूर्त या विट नायक, वीर तथा शृंगार रस, एक अंक तथा एक ही पात्र की उक्ति-प्रत्युक्ति का प्रयोग किया जाता है।

आचार्य विश्वनाथ ने भी भाण का लक्षण देते हुए कहा है कि धूर्त नायकों के चरित्रवाला, नाना प्रकार की विभिन्न अवस्थाओं के स्वरूप वाला, एक ही अंक के अन्तर्गत समाप्त होने वाला रूपक भाण कहलाता है—

भाणः स्याद् धूर्तचरितो नानावस्थान्तरात्मकः।
एकाङ्क एक एवात्र निपुणः पण्डितो विटः॥

प्रहसन- प्रहसन भाण के समान ही होता है। प्रहसन में कवि कल्पित कथावस्तु, एक ही अंक में निबद्ध होती है। विष्कम्भक तथा प्रवेशक से रहित रचना को प्रहसन की श्रेणी में रखा जाता है। प्रहसन तीन प्रकार का होता है-

(१) **शुद्ध प्रहसन-** जो पाखण्डी, विप्र, चेत, चेटी और विट से भरा हुआ हो, वेष और भाषा से युक्त, हास्य वचनों से व्याप्त हो, उसे शुद्ध प्रहसन कहते हैं।

(२) **विकृत प्रहसन-** जिसमें कामुक आदि की भाषा और वेष को धारण करने वाले नपुंसक, कञ्चुकी तथा तपस्वी पात्र हों वह विकृत प्रहसन कहलाता है।

(३) **संकीर्ण प्रहसन-** वीथी से मिश्रित तथा धूर्तों से युक्त प्रहसन संकीर्ण प्रहसन कहलाता है।

आचार्य विश्वनाथ ने प्रहसन का लक्षण देते हुए कहा है कि भाण के समान मुख निर्वहण सन्धि , नाना प्रकार के सध्यंग, दस लास्यांग तथा एक अंक से युक्त, कवि कल्पित निन्दनीय व्यक्तियों की कथावस्तु वाला प्रहसन कहलाता है। प्रहसन में आरभटी वृत्ति का प्रयोग नहीं होता, एक ही अंक होने के कारण विष्कम्भक और प्रवेशक भी नहीं होते हैं। हास्यरस की प्रमुखता रहती है।

भाणवत्सन्धि सन्ध्यङ्गलास्याङ्गाङ्कैर्विनिर्मितम्।

भवेत्प्रहसनं वृत्तं निन्द्यानां कवि कल्पितम्॥

.....॥

डिम- प्रसिद्ध कथावस्तु वाला रूपक डिम कहलाता है। इसमें देव, गान्धर्व, यक्ष, राक्षस आदि 16 उद्धत नायक होते हैं। इसका प्रधान रस रौद्र होता है। कैशिकी वृत्ति और विमर्श सन्धि से रहित होता है। डिम नामक रूपक माया, इन्द्रजाल, युद्ध, क्रोध और उद्भ्रान्त आदि चेष्टाओं से तथा चन्द्र और सूर्य ग्रहण से युक्त होता है। डिम के लक्षण देते हुए विश्वनाथ ने कहा है-

मायेन्द्रजालसंग्रामकोधोद्भ्रान्तादिचेष्टितैः।

उपरागैश्च भूयिष्ठो डिमः ख्यातेतिवृत्तकः॥

अर्थात् माया, इन्द्रजाल, संग्राम, क्रोध तथा उद्भ्रान्त आदिकों की चेष्टाओं से, सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण से व्याप्त प्रसिद्ध कथानक वाला डिम होता है।

व्यायोग- आचार्य धनञ्जय ने लक्षण देते हुए कहा है-

ख्यातेतिवृत्तो व्यायोगः ख्यातोद्धतनराश्रयः।

हीनो गर्भविमर्शाभ्यां दीप्ताः स्युर्दिमवद्रसाः॥

अस्त्रीनिमित्त संग्रामो जामदग्न्यजये यथा

एकाहाचरितैकाङ्को व्यायोगो बहुभिनरैः॥

अर्थात् व्यायोग वह रूपक का भेद है जिसकी कथावस्तु प्रसिद्ध एवं पौराणिक हो। गर्भ विमर्श रहित तीन सन्धियाँ अर्थात् मुख, प्रतिमुख तथा निर्वहण तीन सन्धियाँ हों। धीरोद्धत नायक, एक अंक, हास्य तथा शृंगार से रहित छः रस, स्त्री कारण के बिना युद्ध की उपस्थिति वाला हो। जिसकी एक अंक की कथावस्तु एक दिन में चरित दिखाने वाली हो।

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार व्यायोग का लक्षण इस प्रकार है-

NOTES

ख्यातेतिवृत्तौ व्यायोगः स्वल्पस्त्रीजनसंयुतः।

हीनो गर्भविमर्शाभ्यां नरैर्बहुभिराश्रितः॥

एकाङ्कश्च भवेदस्त्री निमित्त समरोदयः।

कैशिकीवृत्तिरहितः प्रख्यातस्तत्र नायकः॥

NOTES

अर्थात् प्रसिद्ध कथानक वाला, कम स्त्रियों से युक्त, गर्भ, विमर्श सन्धियों से रहित, अनेक पुरुषों से आश्रित, एक अंक वाला, कैशिकी वृत्ति से रहित व्यायोग होता है।

समवकार— धनञ्जय के अनुसार देव तथा असुरों की प्रसिद्ध कथावस्तु तथा नाटक आदि के समान आमुख वाला समवकार होता है। इसमें विमर्श के अतिरिक्त चारों मुखादि सन्धि, उदात्त प्रकृति के देव एवं दानव आदि बारह प्रकार के नायक तथा प्रमुख रस वीर होता है। समवकार में तीन अंक तथा आरभटी एवं सात्वती वृत्ति होती है।

आचार्य विश्वनाथ ने इसका लक्षण इस प्रकार किया है—

वृत्तं समवकारे तु ख्यातं देवासुराश्रयम्।

सन्धयो निविमर्शास्तु त्रयोऽङ्कास्तत्र चादि ते।

अर्थात् समवकार में देव और असुरों से सम्बन्धित पुराण एवं ऐतिहासिक कथानक होना चाहिए जो तीन अंकों में निबद्ध तथा विमर्श सन्धि से रहित चार सन्धियों से समन्वित होना चाहिए। समवकार में कैशिकी वृत्ति एवं बिन्दु व प्रवेशक का अभाव होता है।

वीथी— धनञ्जय ने वीथी का स्वरूप स्पष्ट करते हुए कहा है कि वीथी की कथावस्तु एक अंक में सिमट जाती है जिसमें मुख एवं निर्वहण सन्धियाँ होती हैं। शृंगार अङ्गीरस के रूप में तथा अन्य रस अंग रूप में प्रयुक्त होते हैं। पात्र एक या दो होते हैं।

वीथी तु कैशिकीवृत्तौ सन्ध्यङ्गाङ्गैस्तु भाणवत्।

रसः सूच्यस्तु शृंगारः स्पर्शेदपि रसान्तरम्॥

युक्ता प्रसतावनाख्यातैरङ्गैरुद्घात्यकादिभिः।

एवं वीथी विधातव्याद्वयेकपात्र प्रयोजिता॥

अङ्क— इसी का दूसरा नाम उत्सृष्टिकाङ्क है। इसमें इतिहास प्रसिद्ध कथावस्तु को कवि एक अंक में समेट देता है जिसमें भाण के समान मुख एवं निर्वहण सन्धियाँ होती हैं। कोई साधारणजन इसका नायक होता है। यह स्त्रियों के विलाप से युक्त होता है।

उत्सृष्टिकाङ्कके प्रख्यातं वृत्तं बुद्धया प्रपञ्चयेत्।

रसस्तु करुणः स्थायी नेतारः प्राकृता नराः॥

भाणवत्सन्धिवृत्त्यङ्गैर्युक्तिः स्त्रीपरिदेवितौ।

वाचा युद्धं विधातव्यं तथा जयपराजयौ।

आचार्य विश्वनाथ ने भी इसकी पुष्टि में कहा है कि

उत्सृष्टिकाङ्क एकाङ्को नेतारः प्राकृतानराः।

रसोऽत्र करुणः स्थायी बहुस्त्रीपरिदेवितम्॥

प्रख्यातमितिवृत्तं च

यह भी ध्यातव्य है कि प्रत्येक रूपक में प्रयुक्त होने वाले अंक से भिन्नता प्रदर्शित करने के लिए ही यहाँ उत्सृष्टिकाङ्क नाम दिया गया है।

कुमारसंभवम् एवं महाकाव्य
और गद्य काव्य

NOTES

ईहामृग— आचार्य धनञ्जय के अनुसार ईहामृग में चार अंक तथा तीन सन्धियों में समन्वित मिश्रित कथावस्तु होती है जिसमें इतिहास प्रसिद्ध तथा धीरोद्धत नर तथा देव नायक तथा प्रतिनायक होते हैं। शृंगार रस का आभास होता है। मृगी के समान अलभ्य कामिनी की इच्छा होने से इसका नाम ईहामृग है। आचार्य विश्वनाथ ने इसकी पुष्टि में लिखा है—

ईहामृगो मिश्रवृत्तश्चतुरङ्कः प्रकीर्तितः।
मुखप्रतिमुखे सन्धी तत्र निर्वहणं तथा॥
नरदिव्याव नियमौ नायक प्रतिनायकौ।
ख्यातौ॥
रूपक के लक्षण

रूपक के दस मुख्य भेद होते हैं जिनमें नाटक प्रथम तथा सबसे प्रमुख होता है। इसमें सूत्रधार सबसे पहले रंगमंच पर आकर नाटक के विषय में परिचय देकर चला जाता है। तत्पश्चात् नट रंगमंच पर किसी नाटक आदि के अभिनय का प्रबन्ध करता है तथा कथावस्तु की योग्यता के अनुसार रंगमंच पर सूचित करता है। नाटक का लक्षण देते हुए कहा गया है—

नाटक की कथावस्तु प्रख्यात अर्थात् इतिहास पुराणादि प्रसिद्ध होनी चाहिए। उसमें मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श एवं निर्वहण सन्धियों का निर्वाह होना चाहिए। कथावस्तु में उत्कृष्ट गुणों से युक्त, धीरोदात्त प्रतापशाली कीर्ति का इच्छुक, अत्यन्त उत्साही, तीनों वेदों का रक्षक, पृथ्वी का पालक, प्रसिद्धवंश वाला कोई राजर्षि या दिव्य जन नायक होना चाहिए। नाटक के आरम्भ में कार्य के उद्देश्य के अनुरूप विष्कम्भक या अंक की योजना करनी चाहिए। यह साधारण नियम है कि नीरस कथावस्तु के होने पर विष्कम्भक का विधान तथा सरस कथावस्तु के होने पर नाटक के आदि में ही अंक का विधान कर देना चाहिए। अंक में नायक का चरित प्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुत किया जाता है तथा अंक में रसों का आश्रय होता है। रसपरिपाक की दृष्टि से नाटक में वीर अथवा शृंगार रस को मुख्य रस के रूप में तथा अन्य रसों को अंग रूप में योजित करना चाहिए। नाटक में कम से कम पांच अंक और अधिक से अधिक दस अंक होने चाहिए। नाटक में अंकों का विधान इस प्रकार करना चाहिए जो एक प्रयोजन के लिए किये गये एक दिन के कार्यों से युक्त हों तथा जिसमें नायक उपस्थित हो तथा तीन-चार अन्य पात्र भी हों जो अंक के अन्त में रंगमंच से निकल जायें। साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने नाटक का लक्षण इस प्रकार दिया है—

नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात्पञ्चसन्धि समन्वितम्।
विलासद्वय्यादिगुणवद्युक्तं नाना विभूतिभिः॥
सुखदुःखसमुद्भूति नाना रस निरन्तरम्।
पञ्चादिका दशपरास्तत्राङ्काः परिकीर्तिताः।
प्रख्यातवंशो राजर्षिधीरोदात्त प्रतापवान्।
दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान्नायको मतः॥
एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा।
अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कार्या निर्वहणेऽद्भुतः।
चत्वारं पञ्च वा मुख्याः कार्यव्यापृतपुरुषाः।
गोपुच्छाग्रसमाग्रं तु बन्धनं तस्य कीर्तितम्॥

अर्थात् संक्षेप में कहा जा सकता है कि नाटक की कथावस्तु इतिहास, पुराण प्रसिद्ध होनी चाहिए। कम से कम 5 और अधिक से अधिक दस अंक होने चाहिए। इसका नायक प्रख्यात वंश का राजर्षि, धीरोदात्त, प्रतापी, दिव्य (कृष्णवत्) अथवा अदिव्य (दुष्यन्तवत्) होना चाहिए। वीर या शृंगार में से कोई रस

NOTES

सारांश :

इस इकाई में आपने कालिदास रचित 'कुमारसंभवम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग का आलोचनात्मक अध्ययन किया है। यह इकाई संस्कृत साहित्य के उद्भव एवं विकास पर भी प्रकाश डालती है। 'कुमारसंभवम्' के आलोचना-भाग में कालिदास का सामान्य जीवन-परिचय, उनकी कृतियाँ, उनकी विशिष्ट काव्य कला तथा संस्कृत साहित्य में उनके महत्वपूर्ण योगदान का वर्णन किया गया है। 'कुमारसंभवम्' के व्याख्या भाग में इसके प्रथम सर्ग की सप्रसंग हिन्दी एवं संस्कृत व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। इसमें हिमालय पर्वत का वर्णन करते हुए कवि ने हिमालय को भारतीय संस्कृति की महत्ता का परिचायक बताया है।

हिमालय और मैना के विवाह के पश्चात् पार्वती जन्म का वर्णन किया गया है। पार्वती के युवा होने पर एक दिन नारदजी हिमालय के घर आते हैं और पार्वती का विवाह शिव के साथ होने की भविष्यवाणी करते हैं। शिवजी हिमालय पर तपस्या में लीन हैं। हिमालय भी पार्वती को इसी उद्देश्य से शिवजी की सेवा करने की अनुमति दे देते हैं। प्रथम सर्ग की कथा का समापन इसी प्रसंग के साथ हो जाता है।

इकाई के 'महाकाव्य और गद्यकाव्य' शीर्षक के अन्तर्गत महाकाव्यों के लक्षण, उनके उद्भव एवं विकास, काव्य के लक्षण एवं भेद, गीतिकाव्यों की परंपरा, उनकी विशेषता एवं सामाजिक महत्ता आदि का वर्णन है। तत्पश्चात् गद्यकाव्य एवं संस्कृत नाट्य साहित्य के उद्भव एवं विकास का वर्णन किया गया है। इकाई के अंतिम भाग में रूपक के भेदों एवं लक्षणों का वर्णन है।

अभ्यास-प्रश्न :

1. संस्कृत साहित्य के स्वरूप एवं विकास का विवेचन कीजिए।
2. कालिदास के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।
3. कालिदास के स्थितिकाल संबंधी विभिन्न मतों की समीक्षा कीजिए।
4. कालिदास की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
5. 'कुमारसंभवम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग का कथासार लिखिए।
6. 'कुमारसंभवम्' के प्रथम सर्ग के निम्नलिखित पद्यों की सप्रसंग हिन्दी-व्याख्या कीजिए :
(अ) आमेखलं सिद्धाः ॥5॥
(ब) भागीरथी शिखण्डिबर्ह ॥15॥
7. 'कुमारसंभवम्' के प्रथम सर्ग के निम्नलिखित पद्यों की सप्रसंग संस्कृत-व्याख्या कीजिए :
(अ) अथावमानेन शैलवधूं प्रपेदे ॥21॥
(ब) तुषारसंघात सन्ननाद ॥56॥
8. महाकाव्य के लक्षणों की विवेचना कीजिए।
9. साहित्यिक गद्य के उद्भव एवं विकास पर टिप्पणी लिखिए।
10. संस्कृत नाट्य साहित्य की विविधता की विवेचना कीजिए।



सुझाव पत्र (विद्यार्थियों के लिये)

नाम	—	कार्यक्रम का नाम	—
नामांकन नं.	—	कोर्स का नाम	—
फोन नं.—		सत्र	—
ई-मेल आईडी	—		

प्रिय छात्र—छात्राओं,

विश्वविद्यालय के द्वारा दूरस्थ शिक्षण संस्था में पंजीकृत छात्र—छात्राओं को दी जाने वाली पाठ्यसामग्री को हमेशा बेहतर बनाने का प्रयास रहा है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु आपके विचार एवं सुझाव आमंत्रित हैं, कृपया आपको प्रदान की जाने वाली पाठ्य—सामग्री के संबंध में अपने विचार एवं सुझाव 500 शब्दों में लिखकर प्रेषित करें, ताकि उक्त विचार एवं सुझाव का अमल करते हुये हम अपने पाठ्य सामग्री को और अधिक सरल, सहज एवं रोचक बनाया जा सकें।

सुझाव —

.....		
.....		
.....		
.....		
.....		
.....		
.....		
.....		
.....		

छात्र का नाम एवं हस्ताक्षर

सुझाव पत्र (विषय विशेषज्ञ/पाठ्यक्रम समन्वयक/कार्यक्रम समन्वयक के लिये)

नाम	—	पद	—
विभाग/विषय	—	पता	—
फोन नं.—		सत्र	—
ई-मेल आईडी —			

प्रिय विषय विशेषज्ञ/पाठ्यक्रम समन्वयक/कार्यक्रम समन्वयक,

विश्वविद्यालय के द्वारा दूरस्थ शिक्षण संस्था में पंजीकृत छात्र-छात्राओं को दी जाने वाली पाठ्यसामग्री को हमेशा बेहतर बनाने का प्रयास रहा है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु आपके विचार एवं सुझाव प्रार्थनीय है, कृपया आप इस पाठ्य-सामग्री के संबंध में अपने विचार एवं सुझाव 500 शब्दों में लिखकर प्रेषित करें, ताकि उक्त विचार एवं सुझाव का अमल करते हुये हम अपने पाठ्य सामग्री को और अधिक सरल, सहज एवं रोचक बनाया जा सके।

सुझाव —

.....		
.....		
.....		
.....		
.....		
.....		
.....		
.....		

धन्यवाद,

नाम एवं हस्ताक्षर